# प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य

## 'ब'

सूरदास
तुलसीदास
बिहारी

एम.ए. हिन्दी (उत्तरार्द्ध)
**M.A. Hindi (Final)**

प्रथम प्रश्न पत्र
**Paper-1**

**Directorate of Distance Education**
**Maharshi Dayanand University, Rohtak**

# प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य

(ब)

सूरदास
तुलसीदास
बिहारी

प्रथम प्रश्न–पत्र
**Paper - 1**

एम.ए. हिंदी (उत्तरार्द्ध)
**M.A. Hindi (Final)**

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय
रोहतक–124 001

Copyright © 2004, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

# विषय सूची

## सूरदास


(खण्ड–क) आलोचना

1. व्यक्तित्व एवं कृतित्व
2. भाषा
3. भक्ति भावना
4. शृंगार वर्णन
5. वात्सल्य
6. सहृदयता और भावुकता
7. गीति तत्व
8. भ्रमरगीत परंपरा
9. भ्रमरगीत प्रतिपाद्य
10. राधा

(खण्ड – ख) व्याख्या


## तुलसीदास


(खण्ड–क) आलोचना

1. तुलसीदास का जीवन परिचय
2. तुलसीदास की काव्य कला
3. तुलसीदास की भक्ति भावना
4. तुलसीदास की दार्शनिक भावना
5. युगीन परिस्थितियाँ
6. तुलसीदास की सामाजिक चेतना
7. रामचरितमानस में लोकमंगल की चेतना
8. रामचरितमानस की प्रबन्ध कल्पना
9. तुलसीदास की विनय भावना
10. तुलसीदास का समन्वयवाद
11. तुलसीदास का प्रकृति चित्रण
12. रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड का सारांश
13. रामचरितमानस में उत्तरकाण्ड का महत्त्व
14. भरत का चरित्र
15. तुलसीदास की रामराज्य की कल्पना
16. तुलसी की काव्य भाषा
17. तुलसी की सांस्कृतिक योजना
18. तुलसी: यथार्थ बोध

(खण्ड–ख) व्याख्या


## बिहारी


(खण्ड–क) आलोचना

1. बिहारी का जीवन परिचय
2. बिहारी का प्रकृति वर्णन
3. बिहारी की भाषा
4. बिहारी की अलंकार योजना
5. बिहारी की युगीन परिस्थितियाँ
6. बिहारी की भक्ति–भावना
7. बिहारी की बहुज्ञता
8. सतसैया के दोहरे ज्यौं नावक के तीर।
   देखने में छोटे लगे धाव करे गम्भीर।।
9. सतसई परम्परा में बिहारी सतसई का स्थान
10. बिहारी का संयोग शृंगार
11. बिहारी का वियोग शृंगार
12. बिहारी की समास–शक्ति/समाहार शक्ति

(खण्ड–ख) व्याख्या

# एम.ए. हिंदी (उत्तरार्द्ध)
## प्रथम प्रश्न–पत्र
## प्राचीन एवं मध्यकालीन काव्य

**समय : 3 घण्टे**
**पूर्णांक : 100**

*निर्देश :*

1. पहले प्रश्न में खण्ड 'क' (I) में निर्धारित कवियों से संबंधित पाठ्य पुस्तकों में से एक–एक व्याख्या पूछी जाएगी, जिनमें से परीक्षार्थियों को किन्हीं तीन की व्याख्याएं करनी होंगी। प्रत्येक व्याख्या दस अंकों की होगी तथा पूरा प्रश्न दस अंकों का होगा।
2. खण्ड 'क' (II) में निर्धारित आलोच्य विषयों से संबंधित चार आलोचनात्मक प्रश्न पूछे जाएंगे, जिनमें से परीक्षार्थियों को दो प्रश्न करने होंगे। प्रत्येक प्रश्न 15-15 अंकों का होगा।
3. छठे प्रश्न में खण्ड 'ख' से आठ लघूत्तरी प्रश्न पूछे जाएंगे, जिनमें से परीक्षार्थियों को पांच प्रश्न (प्रत्येक लगभग 250 शब्दों में) के उत्तर लिखने होंगे। प्रत्येक प्रश्न चार अंकों का और पूरा प्रश्न बीस अंकों का होगा।
4. सातवें प्रश्न में दस अति लघूत्तरी प्रश्न पूछे जाएंगे। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर (प्रत्येक लगभग 50 शब्दों में), देना अनिवार्य होगा। प्रत्येक प्रश्न दो अंकों का होगा और पूरा प्रश्न 20 अंकों का होगा।

## पाठ्य विषय

1. **सूरदास**: भ्रमरगीत सार–सम्पादक: आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

   भक्ति–भावना, शृंगार वर्णन, भ्रमरगीर परम्परा, सूर के भ्रमरगीत का प्रतिपाद्य, सहृदयता और भावुकता, सूर की राधा, रीतितत्व।

   पाठ्यपद–21 से 70 = 50 पद

2. **तुलसीदास**

   भक्ति–भावना, सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि, लोकमंगल की भावना, तुलसीदास की सार्थकता, मानस की प्रबन्ध कल्पना।

   रामचरित मानस: उत्तरकाण्ड (81 - 130 = 50 दोहे–चौपाइयाँ)

3. **बिहारी**: बिहारी रत्नाकार–सम्पादक: जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'

   मुक्तक काव्य परम्परा और बिहारी, सतसई परम्परा और बिहारी, शृंगार वर्णन, सौन्दर्य बोध, बहुज्ञता।

लघूत्तरी प्रश्नों के लिए निर्धारित कवि

अमीर खुसरो, जायसी, रैदास, मीराबाई, रसखान, नन्ददास, दादू, रहीम, भूषण, घनानन्द = 10 कवि

# अध्याय 1

# व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व

## व्यक्तित्व

हिन्दी साहित्याकाश के सूर्य महात्मा सूरदास ने इस जगती–तल पर प्रकट होकर साहित्य, संगीत और कला को अपूर्व प्रकाश प्रदान किया किंतु आश्चर्य और खेद इस बात का है कि ऐसे महापुरुष की जीवन–गाथा का बहुत कम अंश ही ऐतिहासिकों को ज्ञात हो सका। अब से प्रायः 20 वर्ष तक सूरदास की अधिकांश जीवन घटनाएं अज्ञानांधकार से आच्छादित थी। उनके जीवन की जो थोड़ी–बहुत घटनाएं उस समय प्रकट थी; उन पर भी बिल्वमंगल आदि अन्य सूरदासों की जीवन घटनाएं इस प्रकार छाई हुई थी कि उनका वास्तविक जीवन वृत्तांत अप्रमाणिकता के निविड़ अंधकार में कठिनता से दृष्टिगोचर होता था। उन्होंने अपने संबध में 'साहित्य–लहरी' के एक पद के अतिरिक्त कहीं कुछ भी खुलकर नहीं लिखा, न उनके जन्म संवत् और न निधन संवत का ही आज तक निर्णय हो सका। यह समस्या इसलिए और भी जटिल हो गई है कि लगभग एक ही समय में अनेक सूरदास हुए हैं और उनके चरित्र एक दूसरे से मिल गए है।

इधर कुछ वर्षों से सूर–साहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन होने के परिणामस्वरूप सूर का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने इनकी रचनाओं के अंतर्साक्ष्य एवं समकालीन और परवर्ती रचयिताओं के बाहिर्साक्ष्य का विश्लेषण कर जीवन की अनेक घटनाएं निश्चित की हैं।

पुष्टिमार्ग की मान्यताओं के अनुसार वल्लभाचार्य जी का जन्म वैशाख कृष्ण एकादशी रविवार, संवत् 1535 विक्रमी और मृत्यु आषाढ़ शुक्ल 3 संवत् 1587 विक्रमी है और उन्होंने गौ–घाट पर सूरदास को अपना शिष्य बनाया था। इसी संप्रदाय की अन्य मान्यताओं के अनुसार सूर महाप्रभु से अवस्था में 10 दिन छोटे थे और गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी सूर की मृत्यु के समय जीवित थे। विठ्ठलनाथ का गोलोकवास संवत् 1642 है। अतः सूर का जन्म समय संवत् 1535 वैशाख शुक्ल 5 हुआ और मृत्यु संवत् 1640 विक्रमी के लगभग मानी गई है। सूर के जीवनचरित का संज्ञान हमें उपलब्ध समसामयिक एवं परवर्ती सामग्री के विचारोपरांत ही होता है

## जीवन–सामग्री

सूर के संबंध में प्राप्त सामग्री के दो रूप है :–

(1) बाह्य–साक्ष्य, (2) अंतः–साक्ष्य।

बाह्य–साक्ष्य में अधिगत सामग्री भी दो प्रकार की है–प्रथम कोटि में सूर के जीवन से संबद्ध वे घटनाएं आती हैं जिनका उल्लेख समसामायिक तथा परवर्ती प्राचीन लेखकों तथा कवियों ने अपनी कृतियों में किया है। इसके अंतर्गत साप्रदायिक साहित्य वार्ता–साहित्य, परवर्ती कवियों तथा भक्तों द्वारा उल्लेख तथा तत्कालीन इतिहास ग्रंथ आते हैं। दूसरी कोटि में आधुनिक सामग्री आती है जो हिंदी–साहित्य के इतिहास ग्रंथों तथा आलोचनात्मक प्रबंधों में है।

अंतः–साक्ष्य में उपलब्ध सामग्री के अंतर्गत सूर के आत्मकथन आते हैं जो उनके पदों में यत्र–तत्र उपलब्ध होते है। अनुमानित तिथियों के उल्लेख के कारण ये कथन अधिक सहायक नहीं हैं। क्योंकि दैन्य–भाव से प्रेरित प्रायः सभी भक्त कवियों के आत्म–प्रवंचना तथा आत्म–भर्त्सना संबंधी पद एक से मिलते हैं जिनके आधार पर उनके भौतिक जीवन तथा जीवन के आध्यात्मिक पक्ष की कल्पना करना उनके प्रति घोर अन्याय होगा।

सूर कवि से पूर्व भक्त थे और फिर कृष्ण के परमधाम ब्रज में निवास करते हुए वे अलौकिक बंधनों को विच्छिन्न कर अपने जीवन का स्वरूप ही बदल चुके थे।

**बाह्य–साक्ष्य**–बाह्य–साक्ष्य में अधिगत सामग्री में अत्यधिक महत्वपूर्ण सांप्रदायिक साहित्य तथा वार्ता साहित्य है, जिसमें सूर का उल्लेख हुआ है। वार्ता–साहित्य में (1) चौरासी वैष्णवन की वार्ता, (2) निज वार्ता तथा (3) श्री हरिराय जी कृत भाव–प्रकाश आते हैं। इनके अतिरिक्त सूर के जीवन पर प्रकाश डालने वाले संप्रदाय संबंधी निम्नलिखित ग्रंथ है :–

(1) वल्लभ–दिग्विजय। (2) संस्कृत–वार्ता–मणि–माला।

(3) अष्ट–सरवामृत। (4) संप्रदाय–कल्पद्रुम। (5) भाव संग्रह आदि।

संप्रदाय साहित्य के अतिरिक्त जिन समकालीन अथवा परवर्ती भक्तों के ग्रंथों में सूर का उल्लेख हुआ है, वे निम्नलिखित हैं

(1) भक्तमाल (नाभादास) तथा भक्तमाल की टीका (प्रियादास), (2) भक्त नामावली (ध्रुवदास),

# सूरदास

## (खण्ड–क)

### आलोचना

1. व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व
2. भाषा
3. भक्ति भावना
4. शृंगार वर्णन
5. वात्सल्य
6. सहृदयता और भावुकता
7. गीति तत्व
8. भ्रमरगीत परंपरा
9. भ्रमरगीत प्रतिपाद्य
10. राधा

## (खण्ड–ख)

### व्याख्या

(3) राम रसिकावली (ठा० रघुराज सिंह), (4) भक्त–विनोद (कवि मियां सिंह),

(5) नागर–समुच्चय (नागरी दास), (6) व्यास वाणी (हरिराम व्यास)।

जिन ऐतिहासिक ग्रंथों में सूर अथवा उनके पिता का उल्लेख हुआ, वे निम्नलिखित हैं :–

(1) आइने अकबरी। (2) मुंतखिब–उल–तवारीख़। (3) मुशीयात–अबुल–फ़जल।

इनके अतिरिक्त अनेक आलोचनात्मक तथा शोध–ग्रंथ हैं, जिनमें परंपरा के अनुकूल सूर के जीवन–वृत्त का उल्लेख किया गया है

संपूर्ण सामग्री के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि अपनी कीर्ति–ज्योति से दिग्दिगंत को समुद्भासित करने वाले अंध कवि के जीवन की कहानी अंधकार में ही तिरोहित है। अन्तः साक्ष्य में उपस्थित किए जाने वाले पदों में केवल दो पद ही ऐसे हैं जिनमें काल–प्रमाण का उल्लेख है। बाह्य–साक्ष्य में सूर संबंधी सर्वाधिक उल्लेख वार्ता–साहित्य में मिलते हैं। इसलिए सूर के जीवन–वृत्त का निर्धारण करने में प्रथम तो संपूर्ण वार्ता–साहित्य में दिए हुए सूर संबंधी अध्ययन की थोड़े–बहुत अंतर के साथ अन्विति मिल जाती है, दूसरे कुछ सामयिक रचनाओं को छोड़कर सूरदास का सर्वाधिक एवं सर्वप्रथम उल्लेख इसी वार्ता–साहित्य में है।

**नाम**—हिंदी–साहित्य की सुदीर्घ परंपरा में सूरदास नाम वाले कई कवि हो गए हैं। इनमें सूरदास, मनमोहन, सूरदास बिल्वमगल तथा अष्टछापी सूरदास विशेष प्रसिद्ध हैं। सूर या सूरदास शब्द चक्षुविहीन व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है। नेत्रविहीन कवितांकार को सूरदास की संज्ञा दी जाती है। विभिन्न सूरदासों के कारण हिंदी के प्रसिद्ध महाकवि का व्यक्तित्व भी उलझ गया था केतु अब वैज्ञानिक अनुसंधानों से प्राप्त प्रमाणों एवं तथ्यों के प्रकाश में आ जाने से सरल हो गया है। उनके जीवन संबंधी समस्त गुत्थियां सुलझती दिखाई देने लगी हैं।

**जन्मतिथि**—सूर की जन्मतिथि के संबंध में विद्वानों में अत्यधिक मतभेद हैं। उनके जन्म के बारे में वार्ता साहित्य में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, वास्तव में 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में सूर की कथा का आरंभ होता है जब वे आगरा–मथुरा के बीच गौ–घाट पर रहते थे। गौ–घाट पर रहने से पहले की श्रृंखला हरिराय जी ने अपने 'भाव–प्रकाश' में मिलाई है।

नवीन वैज्ञानिक अनुसंधानों के आधार पर उनके जन्म–समय का निर्णय हुआ। पुष्टि संप्रदाय की मान्यतानुसार सूर की जन्मतिथि वैशाख शुक्ला 5 मंगलवार, सवत् 1535 विक्रमी है। संप्रदाय के अन्य लेखों से भी इस तिथि की पुष्टि होती है। सूरदास के दीक्षागुरू वल्लभाचार्य के वंशज श्री गोपीकालंकार भट्ट जी महाराज ने भी सूर की जन्मतिथि के संबंध को स्पष्ट शब्दों में उल्लिखित किया है–

**'प्रगटे भक्त–शिरोमणि राय। माधव शुक्ला पंचमि ऊपर पंचमि ऊपर छट्ट अधिक सुखदाय।।**

श्री द्वारिकेश के भाव संग्रह और श्री गोकुलनाथ जी के 'निज–वार्ता' से भी इस तिथि की पुष्टि होती है। श्रीनाथ द्वारे में सूरदास का जन्मोत्सव श्री वल्लभाचार्य के जन्मोत्सव से दस दिन पश्चात् मनाया जाता है।

हिंदी विद्वानों ने सूर का जन्म प्रायः संवत् 1540 माना है और सभी इतिहासकारों ने इसे दुहराया है। मिश्रबधुओं ने अनुमान से सूर का जन्म संवत् 1540 लिखा था, फिर सभी विद्वानों ने उसी को मान्य समझा। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूरसारावली के पदानुसार सूरदास का जन्म संवत् 1620 के आस–पास अनुमानित किया है। पद द्रष्टव्य है–

**'गुरु परसाद होत यह दरसन सरसठ बरस प्रवीन।'**

सूर का जन्म संवत् 1540 मानने वालों ने 'सूर सारावली' और 'साहित्य–लहरी' की रचना लगभग साथ–साथ ही मानी है क्योंकि 'साहित्य–लहरी' का रचनाकाल 'मुनि–पुनि रसन के रस लेख' पद से संवत् 1607 ठहराया है, इसलिए सूर–सारावली की आयु 97 वर्ष थी, इसीलिए उनका जन्म संवत् 1540 अनुमानित किया गया है। सूर–निर्णय के लेखकों ने अंतः साक्ष्य के आधार पर सूर का जन्म संवत् 1535 विक्रमी ही निश्चित किया है। उन्होंने लिखा है कि वल्लभ संप्रदाय की सेवा–प्रणाली के इतिहास की संगति से 'सूर–सारावली' का रचना काल संवत् 1602 में से 67 साल कम कर देने से संवत् 1535 आता है, अतः अंतः साक्ष्य सूर–निर्णय के लेखकों के अनुसार सूर का जन्म संवत् 1535 सिद्ध होता है।

श्री वल्लभाचार्य के संबंध में अभी तक 'वल्लभ–दिग्विजय' ही प्रामाणिक है और उसमें सूर का जन्म सवत् 1535 माना है इसलिए सूर की जन्मतिथि वैशाख शुक्ल 5 मंगलवार संवत् 1535 विक्रमी ही ठहरती है।

**जन्म स्थान**—महाकवि सूरदास का जन्म कहां हुआ, इस संबंध में आलोचकों में गतिरोध रहा है। सूर की जन्मभूमि को लेकर मुख्यतया चार स्थानों की प्रसिद्धि है—गोपाचल, मथुरा प्रांत में कोई ग्राम, रुनकता तथा सीही। गोपाचल और गोपाद्रि ग्वालियर के प्राचीन नाम हैं। 'साहित्य–लहरी' के वंश परिचय वाले पद में सूर के पिता का निवास स्थान गोपाचल माना गया है। डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने ग्वालियर का नाम 'गोपाचल' सिद्ध किया है और इसे ही सूर की जन्म–भूमि माना है। कवि मियांसिंह– कृत

'भक्त–विनोद' में सूर की जन्म–भूमि के विषय में लिखा हैं–

**'मथुरा प्रांत विप्र कर गेहा। भो उत्पन्न भक्त हरि जेहा।।'**

इस पद में किसी स्थान विशेष का उल्लेख न होने के कारण सूर के आलोचकों में पर्याप्त भ्रांति रही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य के इतिहास' में सूर का जन्म स्थान रूनकता लिखा है तथा डॉ० श्याम सुंदरदास ने अपने ग्रंथ 'हिंदी भाषा और साहित्य' सूर की जन्मभूमि स्वीकारी है। इस भ्रांति का कारण सूर का गौ–घाट पर रहना है।

वार्ता–साहित्य के अनुसार सूर का जन्म–स्थान 'सीही' है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के भाव प्रकाश में श्री हरिराय जी ने सबसे पहले सूर का जन्म स्थान दिल्ली से चार कोस की दूरी पर 'सीही' स्थान बतलाया था। उससे पहले कहीं वार्ता–साहित्य में सूर के लौकिक जीवन की ओर संकेत नहीं हैं। गोकुलनाथ जी के समकालीन प्राणनाथ कवि ने भी 'अष्ट–सरवामृत' में सूर का जन्म–स्थान सीही ही माना है। सीही की स्थिति हरिराय जी ने अपने 'भाव–प्रकाश' में बताई है–

'दिल्ली के पास चार कोस उरे पर एक सीही ग्राम है, जहां परीक्षित के बेटा जन्मेजय ने सूर्य–यज्ञ किया है।' आज अधिकांश विद्वानों के सीही को सूर का जन्म स्थान मान लेने से कवि मियां सिंह वाले मत की संगति बैठ जाती है इसलिए सूर का जन्म–स्थान सीही ठहरता है।

**जाति तथा वंश**—महाकवि सूर की जाति तथा वंश भी विवादग्रस्त है। सूरदास के वंश–वृक्ष तथा माता–पिता का उल्लेख करने वाला एक पद 'साहित्य–लहरी' में मिलता है। इस वंश–वृक्ष की पुष्टि महामहोपाध्याय श्री हरिप्रसाद शास्त्री ने भी की है। इस वंश–वृक्ष में सूर का नाम और साहित्य–लहरी के वंश से बहुत साम्य रखता है। वार्ता में भी सूर को सारस्वत ब्राह्मण ही लिखा है।

सूरदास की जाति के संबंधों में आलोचकों ने स्वेच्छापूर्वक भांति–भांति के अनुमान लगाए है, किंतु प्राचीन प्रमाण उन्हें सारस्वत ब्राह्मण ही सिद्ध करते हैं। वल्लभाचार्य के पौत्र गोस्वामी यदुनाथ ने सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण ही कहा है–

**'ततोऽलर्कपुरे समागतः। तत्रावासः कृतः। ततो वृज समागमते सारस्वत यूस्दासोऽनुगृहीतः।'**

—वल्लभ दिग्विजय–पृ० ५०

संस्कृत साहित्य से इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। वस्तुतः भक्त अथवा साधन कवि की उक्तियां स्वान्तः सुखाय होते हुए भी सर्वभूत–हिताय होती है; क्योंकि आत्मसाक्षात्कार अथवा मुक्त हृदयत्व के कारण उसके 'स्व' का इतना विस्तार हो जाता है कि वह समस्त विश्व को अपनी बांहों में समेट लेता है, व्यष्टि–समष्टि में लीन हो जाता है और वह इस प्रकार की वैराग्यपरक उक्तियां प्रस्तुत करता है जो सर्वसाधारण के लिए पथ–प्रदर्शिका सिद्ध हों। इस प्रकार के कथन जहां एक ओर उसकी स्वयं की भक्ति को दृढ़ करते हैं वहां दूसरी ओर जनसाधारण के कल्याण का भी वहन करते हैं। सूर के संबंध में कहा जाता है कि वे सीही ग्राम में रहने लगे थे, वहां उनके पास यथेष्ट वैभव, शिष्य, सेवक और गाने–बजाने का प्रबंध हो गया था, जिसका उल्लेख हरिराय जी ने 'भाव–प्रकाश' में किया है। भक्ति का उदय होने पर उन्हें उस जीवन से विरक्ति हुई और वे उसका पश्चाताप बहुत दिनों तक करते रहे। तीसरा, विरक्ति–विषयक पद उनके दैन्य–विनय और शील को ही प्रकट करने वाला है, इसलिए उन पदों को आधार मानकर उनके जीवन के विषय में अन्यथा कल्पना करना समुचित नहीं।

**अंधत्व**—सूरदास नेत्रविहीन थे, यह निर्विवाद है किंतु वे जन्मांध थे अथवा बाद में अंधे हुए यह विवादग्रस्त है। सूर के काव्य में दृश्य जगत का ऐसा यथार्थ और सर्वांगपूर्ण वर्णन मिलता है जैसा आंखों से देखे बिना किसी कवि द्वारा संभव नहीं होता इसलिए आजकल के अनेक विद्वान सूर की जन्मांधता पर विश्वास नहीं करते, अन्यथा उनके पास जन्मांधता के विरुद्ध कोई ठोस प्रमाण नहीं है। वार्ता–साहित्य में सूर को न केवल साधारण जन्मांध ही माना है अपितु सलपट अंध भी, अर्थात् उनके चक्षु नाम मात्र को भी न थे, बल्कि कुहर रूप में केवल चक्षु चिह्न थे। वार्ता के अतिरिक्त गोस्वामी हरिराय जी, जिन्होंने सर्वप्रथम सूर का विस्तृत वृतांत लिखा है सूरदास को जन्मांध मानते है। बाह्य–साक्ष्य भी सूर को जन्मांध सिद्ध करते हैं–

(1) सूरदास के समकालीन श्रीनाथ भट्ट ने संस्कृत मणिमाला में इन्हें जन्मांध कहा है।

**'जन्मांधो सूरदासोऽभूत।'**

(2) श्री हरिराय जी ने सूरदास की मृत्यु के लगभग सौ वर्ष पश्चात् की रचना 'भाव–प्रकाश' में सूर की जन्मांधता का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया हैं।

**'सो सूरदास को जन्म ही सों नेत्र नाहीं हैं।'**

(3) प्राणनाथ कवि ने भी स्पष्ट जन्मांध कहा है :–

**'बाहर नैन–विहीन सो, भीतर नैन विसाल।**
**जिन्हें न जग कहु देखिवो, लखि हरि रूप निहाल।।'**

(4) मियांसिंह के 'भक्ति–विनोद' का कथन द्रष्टव्य हैं–

**'जन्म अंध दृग ज्योति–विहीना।'**

प्रचलित सूर–विषयक जन–श्रुतियों में भी सूर के अंधत्व की बात दुहराई गई है, किंतु आज के अधिकांश आलोचक इनके विचित्र रूप वर्णन, अंग–प्रत्यंगों के सौंदर्य का ब्योरेवार संश्लिष्ट चित्रण एवं विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों की अवतारणा को देखकर इन्हें जन्मांध मानने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं।

सूरसागर से अनेक पद सूर के अंधत्व के प्रतिपादन में प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किए जा सकते हैं जो दृष्टव्य हैं–

**'रास रस की रीति नहिं बरनि आवै।**
**इहै मंत्र, यह ज्ञान यह ध्यान है, दरस दंपत्ति भजन सार गाऊँ।**
**इन्हें मांगौ बार–बार प्रभु, सूर के नयन हुवै रहो, नर देह पाऊं।।'**

तथा

**'कहावत ऐसे त्यागी दानि। चार पदारथ दिये सुदामहिं, अरु गुरु के सुत आनि।।**
**रावन के दस मस्तक छेदे, सर गहिं सारंग पानि। लंका दई विभीषन जन कों, पूरबली पहिचानि।।**
**विप्र सुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि। सूरदास सौ बहुत निठुरता, नैननि हू की हानि।।'**

अन्तिम पंक्ति स्पष्टतः सूर के अंधत्व की सूचक है और अत्यंत निष्ठुरता जन्मांधत्व को ही सूचित करती है।

सूरसागर के पद सूर के जन्मांधत्व का स्पष्ट प्रतिपादन करते हैं–

**'नाथ मोहि अबके बेर उबारौ। करम–हीन जन्म को आंधो मोते कौन न कारो।।'**

सूर–निर्णय के लेखकों ने सूरदास के जन्मांधत्व को सिद्ध करने के लिए अंतः साक्ष्यों का आश्रय लिया जो उपर्युक्त पद द्रष्टव्य है किंतु इन पदों की प्रामाणिकता संदिग्ध है। अतः इनके आधार पर सूर को जन्मांध कहना असंदिग्ध नहीं कहा जा सकता।

यह कल्पना की जा सकती है कि पद–रचना के समय सूरदास नेत्र विहीन हो गए हों, जन्म से अंधे न हों जैसाकि आधुनिक विद्वानों ने माना है। इस प्रकार रुप–वर्णन, रंगों एवं विभिन्न वस्तुओं का चित्रण करने वाले पदों की अन्विति तो बैठ सकती है किंतु इस नितांत मौलिकतावादी दृष्टिकोण को अपनाने पर सूर की दिव्य आध्यात्मिक शक्ति की अवहेलना और उपेक्षा भी द्योतित होती है। यह अनिवार्य नहीं कि सूर ने जिन वस्तुओं का चित्रण किया है, उनका उपभोग भी किया हो या चर्म–चक्षु से देखा हो। इस प्रकार का वर्णन जिसमें अमूर्त भावों के आंतरिक पक्ष का भी उद्‌घाटन किया गया हो; सांत के प्रसार में झलकते हुए अनंत के पूर्ण चित्र उपस्थित किया गया है। मोहाधंकार को भेदकर शांति का शुभ संदेश लाने वाली विरक्ति–ऊषा की अरुण आभा का विकिरण हो, प्रवृत्ति और निवृत्ति का मधुर योग हो, विलास और साधनों के विकास का सुंदर विश्वास हो, स्वर्ग और वसुधा का समन्वय हो और मानवता में देवत्व की प्रतिष्ठा हो; केवल दिव्य–दृष्टि संपन्न महात्मा ही कर सकता है। जन्माध व्यक्तियों के अंतसचक्षु उन्मीलित हो जाते हैं और वे आंतरिक नेत्रों से ही बाह्य जगत का साक्षात्कार करते हैं। आज भी ऐसे महापुरुष देखे जाते हैं, जिनकी जन्मांधता प्रत्यक्ष प्रमाणित है जो अपनी क्रियाओं से चक्षुष्मान् व्यक्तियों को भी आश्चर्य–चकित कर देते है। फिर सूर तो सूर थे, भगवान का सान्निध्य प्राप्त कर चुके थे, प्रकाशमय आराध्य में विलीन होकर स्वयं तेजोमय हो चुके थे फिर उनके लिए संसार में कौन सी वस्तु अप्रकाशित रह जाती ? वे भक्ति द्वारा उस सिद्धावस्था पर पहुंच चुके थे, जहां पहुंचकर भक्त के लिए समस्त ब्रह्मांड हस्तामलकवत् हो जाता है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि बाह्य–साक्ष्य के अनुसार सूर का जन्मांध होना ही सिद्ध है। अंतः साक्ष्य में यत्र–तत्र उनके अंधत्व पर स्पष्ट प्रकाश पड़ता है किंतु जन्मांधत्व से संबंधित प्रामाणिक पदों की उपलब्धि नहीं हुई। जन्मांधता अथवा बाद में अंधा होने के संबंध में न कहीं साक्ष्य है और वृहत् सूरसागर में न कहीं कोई झलक ही हैं। अतः सूरदास को जन्मांध मानना ही तर्कसंगत एवं प्रामाणिक प्रतीत होता है।

**संप्रदाय–प्रवेश**—सूर अल्पायु में ही विभिन्न विद्याओं और कलाओं में निपुण हो गए थे। गायन–वादन में विशेष रुचि थी। मधुर कंठस्वर अत्यंत मधुर था वे संगीत–कला के दक्ष थे, अतः उनका गायन इतना प्रभावोत्पादक था कि सुनने वाले मंत्रमुग्ध हो जाते थे।

सीही के निकट एक ग्राम में तालाब के किनारे रहते हुए एक दिन उनके हृदय में अकस्मात् विचार उठा कि मैं भगवदभजन के लिए विरक्त होकर घर से निकला था, किंतु यहां माया के चुंगल में फंस गया। यह विचार आते ही आत्म–ग्लानि हुई और अपना समस्त वैभव वहीं छोड़ ब्रज चल दिए। इस समय उनकी आयु केवल 18 वर्ष थी। इस प्रकार सीही के निकटवर्ती ग्राम में सवत् 1553 तक रहे

वहां से चलकर वे मथुरा पहुंचे, जहां उन्होंने कुछ समय विश्राम किया। उनका मन स्थायी रूप से मथुरा निवास का था, लेकिन वहां की भीड़–भाड़ अशांति और कोलाहल का अनुभव कर वे वहां से चलकर मथुरा–आगरा मार्ग पर स्थित गौ–घाट नामक स्थान पर पहुंचे। यमुना नदी के तट पर निर्जन स्थल पर स्थान ग्रहण किया। यहां 12 वर्ष तक रहे। वहां रहते हुए वे दीनता– विनय और ज्ञान–वैराग्य के पद गाया करते थे। वे पद सूर की आरंभिक रचना के हैं, जो सूरसागर के प्रथम तथा द्वितीय स्कंधों में मिलते हैं। गौ–घाट पर जाने के बहुत दिन पश्चात् संवत् 1567 के लगभग पुष्टि संप्रदाय के प्रवर्त्तक महाप्रभु वल्लभाचार्य जी गौ–घाट पर आए। सूर का वल्लभाचार्य से साक्षात्कार हुआ। वल्लभाचार्य ने सूर को कृष्ण–लीला देखने के लिए दिव्य दृष्टि प्रदान कर उनका हीनता भाव नष्ट कर दिया–

**'सूर ह्वै घिघियात काहे कू है, कुछ भगवत्लीला वर्णन करो।'**

तत्पश्चात् सूर आचार्य जी के साथ गोकुल आए और नवनीतप्रिया जी को अपने सरस काव्य का रसास्वादन कराने लगे। कालांतर में वल्लभाचार्य ने पूरनमल खत्री द्वारा नवनिर्मित श्रीनाथ मंदिर में प्रतिष्ठित किया और पुष्टि संप्रदाय के प्रमुख आराधक के कीर्तन आरंभ किया था। यह घटना संवत् 1568 के लगभग की है। इस प्रकार सूर 33 वर्ष की आयु में पुष्टि संप्रदाय में दीक्षित हुए होंगे तथा अंतिम समय तक संप्रदाय की सेवा में संलग्न रहे अपने सुदीर्घ जीवन काल में उन्होंने प्रायः एक लाख पदों की रचना की थी। वे समस्त पद कालांतर में 'सूरसागर' तथा सूरदास की अन्य कृत्तियों में संकलित हुए हैं।

**सम्राट अकबर से भेंट**–महात्मा सूरदास के विषय में इधर–उधर जाने की जो जनश्रुतियां प्रचलित हैं उनकी प्रामाणिकता संदेह के गर्भ में अवस्थित हैं। 'सूरदास की वार्ता प्रसंग' 3 में उनकी अकबर के साथ भेंट का उल्लेख मिलता है। जिसमें अकबर के सदृश उदार व्यक्तित्व, सहिष्णु एवं कला–प्रेमी का सूरदास के प्रति श्रद्धा होना स्वाभाविक है, किंतु सूर के हृदय में अपने उपास्य के अतिरिक्त अन्य किसी के लिए स्थान न था–

**'प्रेम–गली अति संकरी वामें दो न समायं।'**

सूरदास के संगीत की प्रसिद्धि दूर–दूर तक हो गई थी। अति विख्यात गायक भी उनके पदों का गायन करने लगे। एक बार तानसेन ने सूर का पद अकबर बादशाह के दरबार में गाया। अकबर उस पद की रचना–माधुरी से अत्यधिक प्रसन्न हुआ और सूर से मिलने का विचार बनाया। इसके कुछ समय पश्चात् अकबर राजकीय कार्य से मथुरा गए। पता चला कि सूर भी कुछ समय के लिए श्रीनाथ जी के स्वरूप के साथ कुछ समय के लिए मथुरा आए थे। अतः संवत् 1623 सन् 1566 में मथुरा में अकबर बादशाह की आग्रह से एक उपदेशात्मक पद का गायन उनके सम्मुख किया जो 'सूर पच्चीसी' के नाम से प्रसिद्ध है।

डॉ० दीनदयाल गुप्त का अनुमान है कि 'अकबर सूर से सन् 1575 ई० से सन् 1582 ई० के बीच मिला होगा। गुप्त जी का मत दृष्टव्य है :–

'लेखक का अनुमान है कि अकबर या तो सन् 1577 की अजमेर यात्रा से लौटकर मिला हो या सन् 1579 की अजमेर यात्रा से फतेहपुर सीकरी को लौटता हुआ रास्ते में मथुरा में उनसे मिला हो। सन् 1579 में मिलना अधिक संगत लगता है क्योंकि अकबर ने उसी साल धार्मिक आचार्यों की बहसें सुनी थीं और अपने दरबार में भिन्न–भिन्न मतों के महात्माओं को बुलाया था।'

अकबर सूर–मिलन के संबंध में सूर–निर्णयकार ने लिखा है–

'हमारे अनुमान से सूरदास और अकबर का मिलन संवत् 1623 (सन् 1566) में मथुरा में हुआ था। सांप्रदायिक इतिहास से ज्ञात होता है कि संवत् 1623 की फागुन कृष्णा सप्तमी को गोस्वामी विठ्ठलनाथ जी की अनुपस्थिति में उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरधर जी श्रीनाथ जी के स्वरूप को गोवर्धन ले गए थे। उस समय श्रीनाथ जी दो माह बाईस दिन पर्यन्त मथुरा में रहे थे और उस अवधि में सूरदास को भी उनकी कीर्त्तन सेवा करते हुए मथुरा में रहना पड़ा था।'

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अकबर–सूर–मिलन सन् 1574 से सन् 1582 के बीच हुआ होगा।

**सूर–तुलसी भेंट**–सूर और तुलसी की भेंट का उल्लेख भी कतिपय ग्रंथों तथा जनश्रुतियों में मिलता है। इन ग्रंथों में तीन मुख्य हैं–(1) वार्ता, (2) 'भक्तमाल' की टीका में तथा (3) मूल गुसांई चरित्र।

'मूल गुसांई चरित' के अनुसार संवत् 1616 में श्री गोकुलनाथ की प्रेरणा से सूरदास तुलसीदास से चित्रकूट में मिले। एक मत यह भी है कि सूर–तुलसी की भेंट पारसौली में सूरदास के निवास–स्थान पर संवत् 1626 में हुई थी, जबकि तुलसीदास इसी समय अपने अनुज नंददास से मिलने आए थे। सुर–तुलसी–मिलन संबंधित ब्रज में कई जनश्रुतियां प्रचलित हैं; किंतु प्रामाणिकता संदिग्ध है। अरस्तु, तुलसी और सूर की भेंट घटना सत्य प्रतीत होती हैं, किन्तु उसकी तिथि एवं स्थान आदि के विषय में असंदिग्ध रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

**गोलोकवास**—सूरदास का जितना काव्य अभी तक प्रकाश में आया हैं, उसी के कारण वे हिंदी कवियों के मुकुटमणि माने जाते हैं। सूर को भगवद्भक्ति और कीर्तन–सेवा करते हुए बहुत समय हो गया था। उनके महाप्रयाण का समय आ गया था। जन्मतिथि की भांति सूर के गोलोकवास के संबंध में अत्यधिक मतभेद रहा है। उनकी निधनतिथि संवत् 1620 से संवत् 1642 तक दोलायमान रही है।

मिश्रबंधु तथा आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार सूर की मृत्यु संवत् 1620, डॉ० रामकुमार वर्मा संवत् 1620, सूर–निर्णयकार संवत् 1640 हैं। इस प्रकार सूर का देहावसान संवत् 1640 सिद्ध होता है। सूर ने अपना अंतिम समय निकट जानकर निवास स्थान पारसौली में श्रीनाथजी के मंदिर की ध्वजा को भक्तिभाव से प्रणाम किया और चबूतरे पर लेट गए। उन्होंने अपना मन समस्त लौकिक क्रियाओं से हटाकर एकाग्र भाव से श्रीनाथ जी और गुसांई जी के ध्यान में लगा दिया और अपने अंतिम काल की प्रतीक्षा करने लगे। गोसांई विठ्ठलनाथ को सूर की अवस्था का समाचार मिला। वे शीघ्र ही अपने शिष्यों–सेवकों सहित सूरदास के निवास स्थान पर आ गए। सूरदास के अंतिम समय में गोसांई विठ्ठलनाथ ने अपने भक्तों से कहा पुष्टिमार्ग का जहाज जा रहा है, जिसकी जो कामना हो वह इनसे प्राप्त कर सकता है–

**'पुष्टि–मार्ग कौ जहाज जात है। जाय कछु लैनो होय सो लेऊ।'**

गोसांई जी के मुख से "सूरदास जी! कैसे हो ?" शब्दों के सुनते ही सूर ने अपने नेत्र खोले और गुसांई जी को अंतिम प्रणाम किया। इसके उपरांत उन्होंने इस पद को गुनगुनाते हुए अपना भौतिक शरीर छोड़कर संवत् 1640 में कृष्ण के नित्य लीलाधाम में प्रवेश किया–

**'खंजन नैनं रूप रस माते। अतिशय चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते।।**
**चलि–चलि जात निकट स्रवनन के, उलटि पलटि ताटंक फंदाते। 'सूरदास' अंजन गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ जाते।।'**

## कृतित्व

वार्ता–साहित्य अथवा सूर के सम–सामयिक इतिहास–ग्रंथों में उनकी रचनाओं के संबंध में कोई उल्लेख नहीं मिलता। वार्ता–साहित्य में सूर के सहस्रावधि पदों अथवा असाक्षात् रूप से सवा लाख पदों की ओर संकेत अवश्य किया गया है, काशी–नागरी प्रचारिणी सभा की खोज–रिपोर्ट, इतिहास–ग्रंथ एवं पुस्तकालयों में सुरक्षित ग्रंथों की नामावली के अनुसार सूरदास के नाम पर अभी तक 25 रचनाएं प्राप्त हुई हैं इनमें कुछ रचनाएं प्रकाशित हैं कुछ अप्रकाशित हैं जिनमें अनेक रचनाओं की प्रामाणिकता भी संदिग्ध है। इन ग्रंथों में कई ग्रंथ ऐसे हैं, जो प्रायः सूरसागर के ही अंश हैं, वे ग्रंथ निम्नलिखित हैं–

(1) सूरसागर।
(2) सूर–सागर सार।
(3) सूर–सारावली।
(4) सूर–साठी।
(5) साहित्य–लहरी।
(6) भागवत भाषा।
(7) सूर–रामायण।
(8) गोवर्धन लीला।
(9) भंवर गीत।
(10) प्राण प्यारी।
(11) सूरदास के विनय आदि के स्फुट पद।
(12) एकादशी–माहात्मय।
(13) दशम स्कंध भाषा।
(14) मान–लीला।
(15) नाग–लीला।
(16) दृष्टि कूट के पद।
(17) सूर–पच्चीसी।
(18) नल दमयंती।
(19) राधा–रस केलि–कौतूहल।
(20) दान–लीला।
(21) व्याहलो।
(22) सूर शतक।
(23) सेवा फल।
(24) हरिवंश टीका।
(25) राम–जन्म।

इन ग्रंथों के बारे में डॉ० हरवंशलाल शर्मा के कथन अत्यधिक प्रचलित हैं–

'ऐसा प्रतीत होता है कि सूरदास के पदों एवं उनके नाम से प्रचलित पदों का संग्रह करके कुछ महानुभावों ने सुरक्षित रखा और जब अनुसंधानकार्य प्रारंभ हुआ, तब वे हस्तलिखित प्रतियां 'सूर' के नाम से अलग ग्रंथ मान ली गई।

डॉ० दीनदयालु गुप्त ने केवल सूरसागर, सूर–सारावली और साहित्य–लहरी ही सूर के प्रामाणिक ग्रंथ माने हैं, 'प्राण प्यारी' को उनकी संदिग्ध रचना माना है और 'नल–दमयंती', हरिवंश–टीका, रामजन्म और एकादशी–माहात्मय को अप्रामाणिक माना है।

द्वारिकादास पारीख और प्रभुदयाल मीतल ने 'सूर–निर्णय' में सूर की सात रचनाएं प्रामाणिक मानी हैं–सूर सारावली, साहित्य, लहरी, सूरसागर, सूरसाठी, सूर पच्चीसी, सेवाफल और सूरदास के विनयादि के स्फुट पद। उन्होंने हरिवंश टीका, एकादशी–माहात्मय, नल–दमयंती और राम जन्म को अप्रामाणिक तथा शेष ग्रंथों को डॉ० गुप्त के अनुसार सूरसागर के अंतर्गत माना है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने सूरकृत केवल तीन रचनाओं का उल्लेख किया है, जो उनके मतानुसार प्रामाणिक है–सूरसागर, साहित्य–लहरी और सूर सारावली।

डॉ० हरवंशलाल शर्मा ने २५ ग्रंथों का उल्लेख करके केवल सूरसागर, साहित्य–लहरी और सूर सारावली को प्रामाणिक माना है।

उपर्युक्त सभी ग्रंथ सूर द्वारा रचित नहीं हैं। कुछ ग्रंथ 'सूर सागर' से किए गए संग्रह मात्र हैं। सूर की भाषा, शैली और अभिव्यक्ति उपर्युक्त सभी ग्रंथों में नहीं मिलती। इस दिशा में पर्याप्त अनुसंधान करने की आवश्यकता है। इन्हीं पदों के संकलन आजकल विभिन्न ग्रंथों के रूप में सूर के नाम से प्रसिद्ध हैं। सूर के केवल तीन ग्रंथ ही हैं जिन पर सभी आलोचक एकमत हैं वे ग्रंथ इस प्रकार हैं–सूरसारावली, साहित्य लहरी और सूरसागर।

**सूरसारावली**–यह ग्रंथ सूरसागर के प्रारंभ में संकलित है। इसके दोनों संस्करणों का प्रकाशन 'वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई' और 'नवलकिशोर प्रेस लखनऊ' में प्रारंभ में छपा है। यह कोई स्वतंत्र ग्रंथ नहीं वरन् सूरसागर की भूमिका तथा सारांश के रूप में प्रस्तुत हुआ हैं। परंतु वास्तव में वह न सूरसागर की भूमिका है और न उसका सारांश ही। इसमें 1107 पद हैं। ग्रंथ के प्रारंभ में लिखा हैं–

अथ 'श्री सूरदास' जी रचित सूर–सागर–सारावली तथा सवा लाख पदों का सूचीपत्र'। ग्रंथ का श्रीगणेश 'वन्दों श्रीहरिपद सुखदाई' से किया है जबकि सूरसागर का प्रारंभ भी कुछ शाब्दिक हेर–फेर के साथ इसी पद से हुआ है। सूरसागर का पद है–**'चरण कमल बन्दों हरिराई'**। मंगलाचरण का श्लोक प्रसिद्ध हैं, क्योंकि सूरसारावली के प्रारंभ में मंगलात्मक पद दूसरा है–

'अविगत आदि अनंत अनुपम अलख पुरुष अविनाशी' और मंगलाचरण के प्रारंभ में एक अर्धाली होली के रूपक की हैं–

**'खेलत यह विधि हरि होरी हो, होरी हो वेद–विदित यह बात।'**

सूर के पद से प्रतीत होता है कि उन्होंने इस संसार को होली के खेल का रूपक माना है जिसमें लीला–पुरुष की अद्‌भुत लीलाएं निरंतर चलती रहती हैं। सूर सारावली के 16 वें पद में इस रूपक का विस्तार किया गया है–

**'आज्ञा करी नाथ चतुरानन करो सृष्टि–विस्तार। होली खेलन की विधि नीकी, रचना रचे अपार।।'**

सूर ने इसी क्रम में सृष्टि की रचना कर उसके स्वरूप को दर्शाया है और रूपक का विस्तार किया है। उनके 358–359 पदों में सृष्टि की रचना और स्वरूप द्रष्टव्य हैं–

**'सुर अरु असुर रची हरि रचना सो जग प्रकटहि कीन्हीं। क्रीड़ा करी बहुत नाना विधि, निमग बात कछु–चीन्हीं।**
**यहि विधि होरी खेलत बहुत भांति सुख पायो। धरि अवतार जगत में नाना भगतनि चरित दिखायो।।'**

अनंतर फिर वे लिखते हैं–

**'अंश कला अवतार बहुत विधि रामकृष्ण अवतारी। सदा विहार करत ब्रजमंडल, नंद सदन सुखकारी।।'**

उन्होंने संपूर्ण ग्रंथ में होली खेल का ही दृश्य प्रस्तुत किया है। इसी दृश्य में उन्होंने होली के रूपक में सृष्टि की उत्पत्ति का सुंदर तथा विशद् वर्णन किया है। यह सृष्टि वर्णन श्रीमद्‌भागवत तथा अन्य पुराणों के आधार पर ही किया गया है। सूरसारावली–सार संक्षेप में कुछ इस प्रकार हैं–

'क्रीड़ा करते भगवान् को सृष्टि–रचना का विचार आया। उन्होंने अपने आप ही विनाश पुरुष की अवतारणा की, जिसमें माया ने क्षोभ उत्पन्न किया और प्रकृति के सत्व, रजस् और तमस् तीन गुण प्रादुर्भूत हुए। इन तीनों गुणों से पंच महाभूत, पंच तन्मात्रा, चार अंतःकरण और दस प्राणों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार 28 तत्त्वों का प्रादुर्भाव हुआ। तत्पश्चात् नारायण की नाभि से कमल और कमल से ब्रह्मा का उद्‌भव हुआ। ब्रह्मा ने 200 वर्ष तक तप किया तत्पश्चात् हरि–दर्शन हुए। फिर उन्होंने ब्रह्मा को सृष्टि–सृजन की आज्ञा दी और ब्रह्मा ने 18 लोक बैकुंठ पाताल की रचना होली खेल के रूप में कर डाली। ब्रह्मा के दस पुत्र हुए तब शतरूपा और स्वयंभू का जन्म हुआ। भगवान ने पृथ्वी की रक्षा के लिए वाराह अवतार धारण किया। कपिलरूप में सांख्य शास्त्र का प्रवचन देवहूति को किया। आठ लोकपालों की उत्पत्ति की और सात लोक, नौ खंड़, सात द्वीप, वन, उपवन, नदी, पर्वत आदि का निर्माण किया। इसके पश्चात् 24 अवतारों का वर्णन होता है। बीच–बीच में ध्रुव की कथा और हयग्रीव का वर्णन आता है, हिरण्यकशिपु और प्रहलाद की कथा आती है। छंद 360 से कृष्णावतार की कथा प्रारंभ होती है और कृष्ण से संबंद्ध समस्त लीलाओं का समावेश है। छंद 937 से 966 तक दृष्टिकूट पदों की सूची हैं। इसके पश्चात् रासलीला वर्णन है। इस लीला के आनंद में विभोर कवि गुरू का स्मरण करता है जिसकी कृपा से वह इस अनिर्वणनीय आनंद का अधिकारी बना।

**'गुरु प्रसाद होत यह दर्शन सरसठ बरस प्रवीन। शिव विधान तप करेऊ बहुत दिन तऊ पार नहि लीन्ह।।'**

पद 1013–1017 तक में विविध राग–रागनियों के नाम गिनाए हैं। तत्पश्चात् वसंत और होली के आदात्सवों का [illegible] 1028 वें पद पर समाप्त होता है। इसके पश्चात् कृष्ण–कथा के गायकों, श्रोताओं और वक्ताओं का परिचय है। तत्पश्चात् युगलस्वरूप के उस महान आनंद का उल्लेख है, जिसमें विचरण करके कोटि कल्प भी निमेष सदृश व्यतीत हो जा[illegible] जिस तरह होली की ज्वाला में जलकर सब कुछ भस्मसात् हो जाता हैं उसी प्रकार आनंद की समाप्ति भी सकर्षण [illegible] हुई अग्नि से हो जाती हैं। सूर सारे वेदांत के तत्त्व को संकेतित करते हुए हरिलीला को सर्वोपरि मानते हैं-

**'कर्म–योग पुनि ज्ञान उपासना सब ही भ्रम भरमायो। श्री वल्लभ गुरू तत्व सुनायो, लीला भेद बतायो।**
**ता दिन ते हरि लीला गाई एक लक्ष पद बंद। ता को सार सूर–सारावली, गावत अति आनंद।।**

सूर के अंतिम चार पदों में 'सारावली' के पाठ–माहात्मय का निर्देश किया गया है।

सूरसारावली के संबंध में अध्ययन करने से यह निश्चित हो जाता है कि यह ग्रंथ न सूरसागर की भूमिका है और न ही उसका [illegible]

सूरसारावली एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में हैं। इस संबंध में डॉ० मुंशीराम शर्मा का स्पष्ट कथन द्रष्टव्य हैं–

"'सारावली' एक वृहद होली गीत है, जिसकी टेक है **'खेलत यह विधि हरि होरी, हो हरि होरी हो वेद विदित यह बात'** इसी गीत की 107 कडियां हैं जो 'सारावली' के छंदों के रूप में प्रकट की गई हैं।"

**साहित्य–लहरी**—यह ग्रंथ दृष्टिकूट पदों का संग्रह कहा जाता है। जो रस, अलंकार और नायिका–भेद वाली रचना [illegible] संबद्ध है। यह शास्त्रीय ग्रंथ है। इस ग्रंथ में अपेक्षाकृत पांडित्य अधिक हैं। इसमें 118 पद हैं। हिन्दी के रीतिकाल के बी[illegible] सबध्न इसी ग्रंथ में प्राप्त होते हैं। पद 109 से 118 में ऐतिहासिकता के संकेत मिलते हैं। इस ग्रंथ की कोई प्राचीन–हस्त [illegible] लिखित प्रति नहीं मिलती किंतु नागरी प्रचारिणी सभा की रिपोर्ट में सूर की दृष्टिकूट 'सटीक' तथा 'सूरशतक' रचनाओं का उल्लेख है [illegible] की दो टीकाएं भी प्रकाशित हो चुकी हैं। नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से सरदार कवि की टीका दो भागों में प्रकाशित हो चुकी [illegible] जिसके प्रथम भाग में 118 तथा दूसरे में 63 पद हैं। इस ग्रंथ का नाम 'श्री सूरदास के दृष्टिकूट सटीक' है और इसके [illegible] श्रीसुकविसददारकुता साहित्य–लहरी समाप्ता' लिखा हैं। इस ग्रंथ की दूसरी टीका 'खंड विलास' प्रेस बाकीपुर से प्रकाशित [illegible] जिसके संग्रहकर्त्ता भारतेंदु हरशिचन्द्र तथा प्रकाशक बाबू रामदीन सिंह हैं। विचारणीय यह है कि 'साहित्य–लहरी एक स्वतंत्र [illegible] है अथवा सूरसागर में सम्मिलित हुए दृष्टिकूट पदों का संकलन मात्र। सूरसागर में साहित्य–लहरी के दृष्टिकूट पदों के विषय और शैली से साम्य रखते हुए कुछ पद अवश्य मिलते हैं। कांकरौली विद्या–विभाग में सूर के दृष्टिकूट पदों की अन्य दो टीकाएं हैं [illegible] सब मतों से ऐसा अनुमानित है कि सूर ने दृष्टिकूट पदों की रचना स्वतंत्र रूप से की थी और संभवत: उनका संकलन सूर के [illegible] में ही हो गया था किंतु साहित्य–लहरी का जो रूप इस समय है उसमें कुछ पद प्रक्षिप्त अवश्य हैं। इस ग्रंथ के अधिकांश [illegible] में नायिका–भेद अलंकार आदि का विस्तृत विवेचन हुआ है। प्रारंभ में 104 पदों तक उनके वर्ण्य–विषय तथा आगे के पदों में [illegible] रूप में काव्यांगों का विवेचना हुआ है इससे सूर की भक्तिभावना का चरमोत्कर्ष लक्षित होता है।

साहित्य–लहरी की प्रामाणिकता भी आधुनिक आलोचकों के लिए आलोचना का विषय बनी रही हैं। डॉ० ब्रजेश्वर [illegible] के अतिरिक्त साहित्य–लहरी का पद 109 अवश्य विचारणीय हैं–

**'मुनि पुनि रसन के रस लेख। दसन गौरीनंद का लिखि सुबल संवत् पेख।**
**नंद–नंदन मास छै ते हीन तृतीया वार। नंद–नंदन जनम ते हैं बान सुख आगार।**
**तृतीय ऋक्ष सुकर्म जोग विचारि सूर प्रवीन। नंद–नंदन–दास–हित साहित्य–लहरी कीन।।'**

सूर के पद में साहित्य–लहरी के रचना–काल को संकेतित किया गया हैं। इसमें दो बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय [illegible] काल–निर्देश, (2) नंद–नंदन–दास हित। सूर की इन दोनों बातों के विषय में आलोचकों में पर्याप्त मतभेद है। इस संबंध में [illegible] मुंशीराम शर्मा का कथन द्रष्टव्य है–

'रसन का अर्थ रसना के व्यापारों के आधार पर दो मानकर साहित्य लहरी का रचना काल संख्या 1627 मानता है

किंतु आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'पुनि' के स्थान पर 'सुनि' (शून्य) पाठ मानकर संवत् 1607 निर्धारित किया है।

वार्ता–साहित्य के अनुसार जब नंददास वल्लभ संप्रदाय में प्रविष्ट हुए तब सूर ने उन्हें नंद– नदन–दास कहा था और [illegible] सूर की संगति में छः मास तक चंद्र सरोवर पर रहे थे, और यह घटना संवत् 1607 की है।

नंददास ने स्वयं भी काव्यांगों की रचना की थी। साहित्य–लहरी के आधार पर, नंददास की भक्तिभावना को अनेक विद्वानों ने श्रृंगार के कदम से लांछित और दूषित भी ठहराया है, क्योंकि इसमें सूरसागर से भी उन्मुक्त श्रृंगार के अनेक चित्र प्रस्तुत किए [illegible] किंतु इस आधार पर भक्त–शिरोमणि महाकवि सूर की रचना पर भौतिक वासना का आरोप उनके पवित्र हृदय में छिन्द्रान्वेषण की [illegible] चेष्टा ही कहा जाएगा क्योंकि पवित्र भक्ति भावना के बल पर सांसारिकता के धरातल से बहुत ऊंचे उठे हुए सूर ने आराध्य युगल की अनेक प्रणय–लीलाओं के मधुर गान का स्वर उठाया है। उसमें सरसता है किंतु कर्दम नहीं, विह्वलता है पर वासना नहीं, माधुर्य रसपान की आकुल पिपासा है लेकिन ऐंद्रियिक लोलुपता नहीं, वाष्प की तरलता है किंतु दृढ़ता के साथ, मुस्कान की मादकता [illegible] चेतनता के साथ, अनुभूतियों की चपलता हैं किंतु स्थिरता के साथ, तथा लौकिकता भी है अलौकिकता के साथ।

**सूरसागर**–यह सूर की सर्वमान्य महत्वपूर्ण प्रमाणिक रचना है। ऐसा माना जाता है कि इसका प्रणयन सूरदास के जीवन–काल में किसी न किसी प्रकार संकलन किया गया हो। गोकुलनाथ कृत सूरदास की वार्ता में इस बात का उल्लेख हैं कि सूर ने सहस्राावधि पदों की रचना की सूर सागर नाम से सारे संसार में प्रसिद्ध हुआ। हरिराय जी ने अपने 'भावप्रकाश' में इसकी पुष्टि करते हुए बतलाया है कि इस रचना में ज्ञान–वैराग्य के पृथक्–पृथक् भक्तिभेद, अनेक भगवद्–अवतार और उन सभी की लीलाओं का वर्णन हैं। सूरदास–वार्ता प्रसंग 4 में भी यह उल्लेख है कि अकबर बादशाह ने सूरदास के पदों का संकलन करवाया था। वार्ता–साहित्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सूर के कीर्तन–पदों का संग्रह उनके जीवन काल में हो चुका था, परंतु अत्यंत दुःख की बात है कि उनके समय की कोई प्रति अब उपलब्ध नहीं है। सूर की हस्तलिखित और मुद्रित प्रतियों की दो परंपराएं मिलती हैं। एक में श्रीकृष्ण के केवल ब्रजचरित संबंध पदों का लीला–क्रम के अनुसार संकलन है। सूरसागर की यह परंपरा कदाचित् अत्यंत प्राचीन हैं। नवलकिशोर प्रेस का सूरसागर इसी परंपरा की प्रतियों के आधार पर प्रकाशित किया गया था। सूरसागर की दूसरी परंपरा में पदों तथा खंडकाव्यों के रूप में प्राप्त महाकवि सूर की समस्त रचनाओं को एकत्रित कर तथा श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कंधी क्रम के अनुसार क्रमबद्ध किया गया था। यह परंपरा वेंकटेश्वर प्रेस तथा नागरी प्रचारिणी सभा के संस्करणों से मिलती है। सूरसागर की इस परंपरा में भी श्रीकृष्ण के ब्रजलीला संबंधी पद ही प्रधान हैं। भागवत् के अन्य स्कंधों से संबंधित सामग्री अत्यंत संक्षिप्त हैं तथा काव्य–स्तर की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भी है। 'सूर सागर' में यद्यपि श्रीमद्भागवत् की कथा कही गई हैं परंतु वह भागवत का अनुवाद नहीं हैं। इसमें बारह स्कंध हैं।

(1) **प्रथम स्कंध**–इसमें विनय–पद व मंगलाचरण के पश्चात् शुकदेव के जन्म की कथा है। इसके बाद कौरव–पांडव का वर्णन तथा परीक्षित की कथा हैं। इस स्कंध में व्यास अवतार भी शामिल हैं।

(2) **द्वितीय स्कंध**–इसमें नाम महिमा, सत्संग की महिमा, चौबीस अवतारों की सूची तथा भक्ति एवं वैराग्य का वर्णन है। अध्याय के अंत में ब्रह्मा जी की उत्पत्ति का वर्णन है।

(3) **तृत्तीय स्कंध**–इसमें शुकदेव जी के उपदेश के पश्चात् उद्धव के पश्चाताप, दक्ष–प्रजापति तथा स्वायंभुमनु की उत्पत्ति, सनकादि, बाराह तथा कपिलदेव के अवतार का उल्लेख है। अंत में भक्तों की महिमा का वर्णन है।

(4) **चतुर्थ स्कंध**–इसमें दत्तात्रेय, यज्ञपुरुष, हरि अथवा ध्रुववरदेन तथा पृथु अवतार और भक्त ध्रुव की कथाएं हैं।

(5) **पंचम स्कंध**–इसमें ऋषभदेव के अवतार और जड़ भरत की कथा का वर्णन हैं।

(6) **षष्ठ स्कंध**–इसमें राजा परीक्षित के प्रश्न और शुकदेव जी के उत्तरों का उल्लेख तत्पश्चात् अजामिल उद्धार व अहिल्या कथा हैं।

(7) **सप्तम स्कंध**–इसमें नृसिंह तथा नारद अवतार की कथा है।

(8) **अष्टम स्कंध**–इसमें गजमोचन, कूर्मावतार, वामन, धंवंतरि और मत्स्य अवतारों की कथाएं वर्णित है।

(9) **नवम स्कंध**–इसमें राजा पुरुखा, च्यवन ऋषि तथा राम एवं परशुराम अवतारों की कथाएं वर्णित हैं।

(10) **दशम स्कंध**–इसमें कृष्ण अवतार व उनकी लीलाओं का विस्तृत उल्लेख हैं। दशम स्कंध के पूर्वार्द्ध में ब्रजचरित की घटनाओं जैसे–पूतना वध से लेकर भ्रमरगीत तक की कथा है। दशम स्कंध उत्तरार्द्ध में कृष्ण के द्वारिका चरित, सुदामा–मिलन, कौरव–पांडवों के साथ श्रीकृष्ण के सम्पर्क की कथाओं का वर्णन है।

(11) **एकादश स्कंध**–इस स्कंध में नारायण और हंसावतार की कथा का उल्लेख है।

(12) **द्वादश स्कंध**–इसमें बुद्ध एवं कल्कि अवतारों तथा जनमेजय की कथा का वर्णन है। सूर ने व्यास जी द्वारा वर्णित भागवत के द्वादश स्कंध तक की कथाओं का वर्णन किया है। इस विषय में सूरसागर में उपलब्ध उनका कथन द्रष्टव्य हैं–

**'व्यास कहे शुकदेव सों द्वादश स्कंध बनाई। सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाइ।।**

'सूरसागर' में दशम स्कंध सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। यह सूरसागर का प्राण है।

इस प्रकार सूरसागर की परंपरा के लगभग 5000 पदों में 4000 से अधिक पद श्रीकृष्ण की ब्रजलीलाओं से संबंधित हैं, तथा शेष 1000 पदों में श्रीकृष्ण का द्वारिका चरित, विनय पद, राम अवतार संबंधी पद तथा 22 अवतारों का संक्षिप्त वर्णन है। यहां इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि सूर ने सवा लाख पदों की रचना की थी, इस किंवदंती का कोई भी प्रामाणिक आधार नहीं हैं। कवि की पद रचना पांच–छह हजार पदों के बीच ही रही होगी, जो लगभग प्राप्त हैं।

द्वादश–स्कंधी परंपरा के सूरसागर में दशम–स्कंध के पद–समूह के बाद अधिक संख्या में प्रथम–स्कंध के विनयपद तथा नवम स्कंध के रामावतार संबंधी पद पाए जाते हैं। विनय के पदों में दास्य भक्ति तथा दैन्य भावना प्रधान है। अत्यधिक संभावना है कि इन पद–समूहों में महाकवि की कुछ प्रारंभिक रचनाएं हों जब वे गौ–घाट पर रहते थे, और महाप्रभु वल्लभाचार्य के संपर्क में नहीं आए थे, तब के कुछ पदों की प्रौढ़ शैली को देखकर ऐसा अनुमान लगाया गया है कि यह उनकी वृद्धावस्था की रचनाएं होनी चाहिए। रामावतार का विस्तृत वर्णन होना स्वाभाविक है, क्योंकि कृष्णावतार के अतिरिक्त भगवान के अवतारों में यह मुख्य है। सूर ने द्वारिकावासी श्रीकृष्ण–चरित्र का वर्णन भी अत्यंत संक्षेप में किया है। आकार एवं स्तर दोनों दृष्टिकोणों से यह स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण की ब्रजलीलाओं के गान में कवि की वास्तविक अभिरुचि थी।

इसमें संदेह नहीं कि सूरसागर में वर्णित श्रीकृष्ण–लीलाओं का मूलाधार श्रीमद्भागवत् दशम स्कंध का पूर्वार्द्ध है, किंतु इस आधार पर सूरसागर को श्रीमद्भागवत् का उल्था अथवा स्वतंत्र अनुवाद मानना भारी भूल होगी। महाकवि ने असाधारण प्रतिभा के द्वारा परिचित लीला–वर्णनों में अनेक मौलिक कल्पनाओं का समावेश किया है, इसके अतिरिक्त अन्य नई लीलाओं तथा चरित्र को भी बढ़ाया है जो भागवत में नहीं मिलते। उदाहरणस्वरूप श्रीमद्भागवत में राधा के नाम का उल्लेख तक नहीं है, जबकि सूरसागर में राधा–कृष्ण प्रेम का प्रारंभ, विकास तथा परिणति का अति सजीव, आकर्षक और महत्वपूर्ण चित्रण है। इसी प्रकार भ्रमरगीत अथवा 'गोपी–उद्धव' संवाद वाले अंश में श्रीमद्भागवत में उद्धव–श्रीकृष्ण का संदेश गोपियों को सुनाते हैं और वे उसे शिरोधार्य कर लेती हैं। सूरसागर का भ्रमरगीत सगुण–निर्गुण वादों और कर्म, ज्ञान तथा भक्ति मार्गों के सिद्धांतों के साथ–साथ प्रौढ़ ध्वनि काव्य का एक अत्यंत उत्कृष्ट उदाहरण है।

रस की दृष्टि से सूरसागर में प्रधान रस केवल श्रृंगार रस के संयोग और वियोग पक्ष के चित्रण में हैं, किंतु इस रस की जैसी बारीकी और गहराई में महाकवि की पैठ है वह उसकी असाधारण प्रतिभा का परिचायक है। मुख्य रस के चित्रण के साथ–साथ अनुभावों तथा व्याभिचारी अथवा संचारी भावों के भी सैंकड़ों सजीव उदाहरण सूरसागर में बिखरे पड़े हैं। सब मिलाकर महाकवि की रचना का क्षेत्र समस्त दृष्टि से सीमित कहा जा सकता हैं। श्रीकृष्ण की ब्रजलीला, श्रृंगार रस तथा पद–शैली, किंतु इस सीमित क्षेत्र में महाकवि की समकक्षता क्या निकटवर्ती को भी कोई अन्य कवि नहीं पहुंच सका।

हिंदी में सर्वप्रथम सूर ने ही वात्सल्य रस का विस्तृत निरूपण करके उसे स्वतंत्र रस की सीमा तक पहुंचाया। सूर ने श्रीकृष्ण के बाल–रूप को मानस–पटल पर रखकर अनेक छंदों की रचना की हैं। ये छंद रस–परिपाक की दृष्टि से तथा वैभिन्नत्व एवं व्यापकत्व की दृष्टि से भी अप्रतिम हैं। सभी विद्वानों ने सूर के वात्सल्य–वर्णन की प्रशंसा एकजुट होकर की है। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन द्रष्टव्य हैं।

'वात्सल्य के क्षेत्र में जहां तक सूर दृष्टि पहुंची वहां तक अन्य किसी कवि की नहीं। बालचेष्टा के स्वाभाविक मनोहर चित्र का इतना विशाल भंडार और कहीं नहीं मिलता है।'

सूर के अंतर्गत शुक्ल जी ने उनके व्यक्तित्व के बारे में महत्वपूर्ण बात कही हैं।

'इनमें केवल बाहरी रूपों और चेष्टाओं का ही विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन नहीं है, कवि ने बालकों की अंतः प्रकृति में भी प्रवेश किया है और अनेक बाल्य भावों की सुंदर स्वाभाविक व्यंजना की है।

पुष्टि–संप्रदाय से प्रेरणा तथा श्रीमद्भागवत से आधार लेकर सूर ने कृष्ण के ब्रह्म रूप और बालरूप के साथ समन्वय कर यशोदा एवं नंद के वात्सल्य भाव की सरस एवं मार्मिक अभिव्यक्ति की हैं।

पुष्टि–संप्रदाय में संख्य भाव की भक्ति का अत्यधिक महत्व है। इसमें आत्मीयता, स्नेह की मधुरिमा, बाल–सुलभ वात्सल्य आदि और भी अधिक आस्वाद्य हो उठते हैं। इसमें क्रीड़ाओं की सरलता के साथ कर्त्तव्य की भावना का गौरव भी स्पष्ट रूप से झलक मारने लगता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो वात्सल्य भाव भक्ति–भावना का अधिक सबल एवं स्वाभाविक पोषक प्रतीत होते हुए भी सूर को माता का हृदय मिला था और इसी कारण वह वात्सल्य रस की अनुभूति के द्वारा भक्ति का परिपुष्ट स्वरूप प्रदान कर सकें। इस संबंध में डॉ० हरवंशलाल शर्मा का कथन द्रष्टव्य है–

'कृष्ण की बाल–लीलाओं का यशोदा के साथ साक्ष्य करने वाला यह प्रज्ञाचक्षु संत भक्ति–भाव के अतिरेक से अपने अस्तित्व को इसके व्यक्तित्व में घुला–मिला देता था और फिर यशोदा की आंखों में कृष्ण लीला का आनंद लेता था।'

सूर ने वात्सल्य रस की सर्वाधिक मार्मिक एवं विशद् व्यंजना यशोदा के माध्यम से ही की हैं। यशोदा में ही वात्सल्य की परिपक्वता है, जो भक्ति रस की कोटि तक पहुंचा हैं। वात्सल्य भाव के आलंबन कृष्ण है और इनकी लीलाए उद्दीपन का काम करती हैं। सूर ने वात्सल्य रस के अंग–अंग का प्रत्येक अवयव के सांगोपांग वर्णन पूरे मनोयोग के साथ चित्रित किए हैं।

इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन दर्शनीय है–'वात्सल्य के क्षेत्र का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आंखों से किया है उतना किसी और कवि ने नहीं। सूर इसका कोना–कोना झांक आए हैं।

सूरसागर की भाषा ब्रजभाषा है। यद्यपि एक संग्रह ग्रंथ होने के कारण इसमें इस भाषा के अनेक स्तर मिलते हैं किंतु सूरसागर के मुख्य भाग की भाषा–शैली अत्यंत प्रौढ़ तथा साहित्यिक है। सूरदास के लगभग एक शताब्दी पहले से ब्रजभाषा में साहित्य रचना होने लगी थी, किंतु ब्रजभाषा को साहित्यिक भाषा के उच्च सिंहासन पर पदारुढ़ करने का श्रेय इस महाकवि को ही प्राप्त है।

वल्लभ–संप्रदाय में सूरसागर महत्वपूर्ण धार्मिक ग्रंथ माना जाता है किंतु कवि की रचना में संकुचित साम्प्रदायिकता का पूर्ण अभाव है। वल्लभ संप्रदाय के शुद्ध–द्वैतवाद दर्शन का विस्तार भी 'सूरसागर' में नहीं मिलता। धर्म अथवा दर्शन के कुछ मूल 'सिद्धांत' का महाकवि ने अवश्य उल्लेख किया है जैसे श्रीकृष्ण को साक्षात् परब्रह्म अथवा उनका अवतार मानना, राधा को परब्रह्म की शक्ति के रूप में समझना, गोपियों को आत्मा का प्रतीक मानना, श्रीकृष्ण अथवा परब्रह्म की प्राप्ति के उपायों में प्रेम–भक्ति के मार्ग को सर्वश्रेष्ठ समझना इत्यादि किंतु इन मूल सिद्धांतों की अभिव्यक्ति कवि ने उत्कृष्टतम् काव्य के रूप में की हैं। यही कारण है कि भावुक कृष्णभक्तों तथा सहृदय काव्य–रसिकों, दोनों ही की पूर्ण तुष्टि करने में महाकवि की यह असाधारण कृति समान रूप से पूर्णतया सफल हुई है।

# अध्याय 2

# भाषा

## ब्रजभाषा स्वरूप निर्माण में सूर का योगदान

सूर–काव्य की भाषा ब्रजभाषा है। उनका जन्म स्थान, साधना–क्षेत्र और उपासना क्षेत्र तीनों ब्रज–प्रदेश के अंतर्गत आते हैं। अतः स्वाभाविकतया उन्होंने ब्रजभाषा को अपने काव्य का माध्यम बनाया। सूर ने इसका नाम ब्रजभाषा कहीं नहीं कहा। इन्होंने तुलसी के कथन

**'भाषा भनित मोरि मति थोरी।'**

रामचरितमानस 'बालकांड' का अनुसरण करते हुए इसे 'भाषा' ही कहा है–

**श्री मुख चारि स्लोक दए ब्रह्मा कौ समझाइ। ब्रह्मा नारद सौं कहे, नारद व्यास सुनाई।**
**व्यास कहे सुकदेव सौं द्वादश स्कंध बनाइ। सूरदास सोई कहे पद भाषा करि गाई।।'**

उर्दू के प्राचीन लेखक भी ब्रजभाषा को 'भाखा' नाम से पुकारते थे। डॉ० हरवंश लाल शर्मा के 'सूर और उनका साहित्य' में ब्रजभाषा के संबंध में मिर्जा खां द्वारा लिखित एक प्राचीनतम पुस्तक का उल्लेख किया गया है। जिसमें ब्रज और उसके आस–पास की बोली को 'भाखा' कहा गया है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के कथनानुसार 'साहित्य में इस भाषा का सर्वप्रथम प्रवेश चंदबरदाई रचित पृथ्वीराज रासो में माना जाता है। इस ग्रंथ के पश्चात् दीर्घकाल तक ब्रजभाषा का प्रयोग साहित्य में नहीं मिलता। ब्रजभाषा गद्य के प्रथम लेखक गोरखनाथ की बानियों में अवश्य ही ब्रजभाषा का प्रथम रूप मिलता है–

**'अवधू जाप जपौ जपमाली चीन्हौं, जाप जप्यां फल होई। अगम जाप जपीला गोरष, चीन्हत बिरला कोई।।**

क्रिया–पद ही भाषा के परिचायक होते हैं। उक्त पद में 'जपों', 'चीन्हौ'; 'जप्या', 'जपीला', 'चीन्हत', ब्रज के क्रिया–पदों का ही रूप है। गोरखवासी की भाषा का ही रूपांतर कबीर में मिलता है। कबीर आदि की सधुक्कड़ी भाषा में ब्रज–प्रयोग अत्यधिक मात्रा में मिलता हैं। संतों की बानियों में ब्रजभाषा के कुछ रूप अवश्य मिल जाते हैं किंतु खड़ी बोली, अवधी, राजस्थानी और पंजाबी के मिश्रित रूप से उनका स्थान नगण्य–सा है। इस प्रकार सूर से पूर्व उपलब्ध साहित्य में ब्रजभाषा को सम्यक् स्थान न मिलना इस बात का प्रमाण है कि सूर ने ही सर्वप्रथम ब्रज को साहित्यिक रूप दिया।

**परिस्थितियां**–सूर की प्रचलित बोली को साहित्यिक रूप देना स्वाभाविक था। सूर को ऐसे सुयोग प्राप्त हुए कि अनायास ही उनके द्वारा भाषा का परिष्कार हो गया। सूर बचपन से ब्रज–प्रांत में निवास करते थे। श्री वल्लभाचार्य जी के मिलन से पूर्व वह कबीर आदि की परंपरा में भगवद्भजन करते थे। विचार की दृष्टि से उनके गीतों और कबीर आदि संतों के गीतों में अंतर न था। भाषा की दृष्टि से इसका विकास विक्रम की 12 वीं शताब्दी में ही हो गया था। तब इसका शौरसेनी अपभ्रंश रूप विकसित हुआ। बाद में इसे ब्रजभाषा कहा गया। इस भाषा के स्वाभाविक माधुर्य के कारण सूर के पदों की भाषा शुद्ध ब्रज थी, तत्कालीन संतों एवं संगीतज्ञों ने इसे अपनाया, और तत्पश्चात् उसके प्रयोग की एक क्रमबद्ध धारा ही दिखाई देती है। कबीर आदि संतों की भाषा मिश्रित थी किंतु उसमें साहित्यिकता का पुट विशेष न था। खुसरो, कबीर, नामदेव आदि संतों के काव्यों में हमें ब्रजभाषा के स्पष्ट दर्शन होते हैं। इन कवियों ने ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप प्रदान करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। इसी कारण सूर को ब्रजभाषा का बाल्मीकि कहा जाता है और ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप देने का श्रेय सूर को हैं।

इस संदर्भ में विद्वानों का मत द्रष्टव्य है–'जिस प्रकार महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के कवियों ने खड़ी बोली की सत्ता पहले रहने पर भी, उसे भावनाओं का वाहक बनाया, उसी प्रकार ब्रजभाषा के परिष्कार और अलंकृत करने में सूर का बहुत बड़ा हाथ है।'

सूर की ब्रजभाषा अत्यंत स्वाभाविक एवं प्रवाहमयी हैं। वह सानुप्रास सजीव भावों के अनुरूप, व्यावहारिक, आडंबरहीन एवं अंतस्तल का स्पर्श करने वाली है। सूर की भाषा का अनुपम उदाहरण द्रष्टव्य हैं :–

**'मुरली मधुर बजाई स्याम। मन हरि लियो भवन नहिं भावै, व्याकुल ब्रज की बाम।।**
**भोजन, भूषन की सुधि नाहीं, तनु की नहीं सम्हार। गृह गुरु–लाज सूत सौं तोरयौ, डरीं नहीं व्यवहार।।**
**करत सिंगार बिबस भई सुंदरि, अंगनि गईं भुलाइ। सूर–स्याम बन बेनु बजावत, चित हित–रास रमाइ।।**

सूर वैराग्य, दास्य भक्ति एवं आत्मनिवेदन युक्त पदों की रचना करके ही पद–गायक के नाम से प्रसिद्ध थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य की प्रेरणा से उनकी विचारधारा में भगवान कृष्ण की रसमय लीलाओं का आविर्भाव हुआ। लीला–प्रसंग की रसमय

अवतारणा से सूर की भाषा ने स्वतः ही साहित्यिक रूप धारण कर लिया।

सूर की सहज–भाषा के साहित्यिक बन जाने का दूसरा कारण यह था कि अब वह पहले जैसे गायक–सत नहीं थे जिनका समाज में अशिक्षितों, असाहित्यिकों या अशास्त्रीय गवैयों का बहुमत होता है। स्वामी वल्लभाचार्य जी के स्थायी ब्रज निवास के ब्रजभाषा के विकास पर निश्चय ही गहरा प्रभाव पड़ा। ब्रज प्रांत साहित्य, संगीत, दर्शन और धर्म का केन्द्र बन गया। पुष्टिमार्गीय भक्तों के साथ ही गौड़ीय, राधावल्लभीय, निम्बार्कीय और हरिदासी भक्तों ने ब्रज को अपना कला केन्द्र बनाया तथा भक्ति और संगीत का शास्त्रीय रूप प्रस्तुत किया। भक्ति को पहले केवल भाव माना जाता था। श्री रूप गोस्वामी जी ने 'उज्जवल नीलमणि' और 'भक्ति रसात्मक सिंधु' ग्रंथों में भक्ति की गणना रसों में की और उसकी शास्त्रीय विवेचना प्रस्तुत की। परिणामस्वरूप भक्तों की भाषा शास्त्रीय पक्ष की ओर उन्मुख हो गयी।

भक्ति–क्षेत्र के बाहर भी काव्य–शास्त्रीय अध्ययन होने लगा था और इस अध्ययन का माध्यम ब्रजभाषा बन चुकी थी। इसके प्रमाण सूर के समकालीन कृपाराम जी ने 'हित–तरंगिनी' जैसे ग्रंथ की रचना संवत् 1568 में प्रस्तुत की। 'हित–तरंगिणी' की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है।

साहित्य–लहरी में अलंकार, नायिका–भेद और रसावयवों का शास्त्रीय क्रम में नियोजन भी इसी तथ्य का बोधक है कि उस काल में काव्य–शास्त्रीय अभिरुचि सभी काव्य–जिज्ञासुओं में उत्पन्न हो चुकी थी।

सूर की भाषा का साहित्यिक हो जाने का कारण यह भी है कि वे वल्लभाचार्य के पश्चात् रसिकवर श्री विठ्ठलनाथ जी की उस रसज्ञ गोष्ठी के रत्न बने जिसमें आठ प्रतिष्ठित वीणाओं की शास्त्रानुमोदित रागनियां गूंजा करती थी। अष्टछाप की गोष्ठी के सभापति 'श्रृंगाररस मंडन' के रचयिता शास्त्रज्ञ गोसाईं विठ्ठलनाथ जी थे और उसमें नंददास, परमानंददास जैसे काव्य–कलाविद थे। अतः यह स्वाभाविक है कि इस सभा में प्रस्तुत होने वाले पदों की भाषा में कवि की दृष्टि परिष्कार और कलात्मकता की ओर हो गई होगी।

सूरदास सौभाग्यशाली थे कि उन्हें महाप्रभु वल्लभाचार्य की कृपा एकाएक प्राप्त हुई। गौ–घाट के गायक को गुरू दक्षिणा का आश्रय मिला। वे वहां से एकदम श्रीनाथ जी के मंदिर में नियुक्त किए गए और आज्ञानुसार वे लीला पदों की नई–नई रचनाओं से प्रभु का कीर्तन करने लगे। लोक–गायक प्रतिष्ठित समाज का गायक बन गया। नैत्यिक और नैमित्तिक लीला के क्रम में ब्रजभाषा में पदों का सृजन करने लगे। अभ्यास बढ़ जाने से उनकी भाषा परिष्कृत होती गई। सूरसागर में भाषा परिष्कार का क्रम–विकास नहीं मिलता क्योंकि इसका संपादन बहुत समय पश्चात् हुआ, जिसमें पूर्व–रचित स्फुट पद विषय क्रम में रख दिए गए हैं।

सारांश में कह सकते है कि सूर से पूर्व ब्रजभाषा–काव्य की कोई स्थिर परंपरा नहीं थी। ब्रजभाषा में या तो रचना हुई नहीं थी और यदि हुई भी थी तो नगण्यतावश एकदम काल–कवलित हो गयी। सूर को यह परम सौभाग्य प्राप्त हुआ कि ब्रजभाषा में सर्वप्रथम प्रचुर साहित्य का निर्माण करें। उनकी भाषा में जन साधारण लोकगीत से लेकर चमत्कारप्रधान दृष्टकूट–पद–रचना तक की विविधता मिलती है इसलिए सूर को 'ब्रजभाषा का बाल्मीकि' कहना सर्वथा उचित ही हैं। सूर ने ब्रजभाषा का जो स्वरूप दिया वह स्थाई रूप से परवर्ती साहित्यकारों द्वारा ग्रहण किया गया। आगे चलकर दृढ़ हुई ब्रजभाषा की सामान्य विशेषताओं का श्रेय सूरदास को ही है।

## भाषा–समृद्धि

**(1) शब्द–कोश**–भाव–प्रकाशन का माध्यम शब्द है। जिस कवि का शब्द–भंडार जितना विशाल होगा उसकी भाषा और शैली उतनी ही समृद्ध होगी। कलाकार कला के विभिन्न अंगों का समन्वय करके आधारभूत वस्तु को हृदयग्राही और प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयत्न करता है, परंतु उसकी शैली का सौंदर्य विशेषकर भाषा की समृद्धि पर ही आधारित है। वह शब्दों का प्रयोग इस प्रकार करता है कि वे हमारे भावों और विचारों को व्यवस्थित कर देते हैं। सर्वोत्तम भावाभिव्यक्ति के निमित्त कवि चारों ओर से शब्द–ग्रहण का आवश्यक कांट–छांटोपरांत उनका प्रयोग करता है। ऐसा करने से भाव–प्रकाशन अत्यंत सुंदर हो जाता है। सूर से पूर्व ब्रजभाषा काव्य की कोई प्रतिष्ठित परंपरा न थी। सूर ने ही बोली को साहित्यिक क्षेत्र में उतारा, परिणामस्वरूप उनकी भाषा में विभिन्न प्रकार के शब्द आ गए। भाषा का संस्कार करने के उद्देश्य से उन्होंने संस्कृत से अत्यधिक शब्द लिए हैं। वास्तव में हिंदी में संस्कृत के ही तत्सम और तद्भव शब्द सबसे अधिक है। बोलचाल में संस्कृत शब्दों के विकृत रूप प्रयुक्त होते रहे हैं, सूर ने प्रचलित शब्दों में प्रायः परिवर्तन नहीं किया है इसीलिए संस्कृत के तद्भव शब्द सूर की भाषा में अधिक मात्रा में हैं। तत्सम शब्द अधिकांश वहां है जहां उन्हें अप्रस्तुत योजना करनी पड़ी है या जहां भागवत आदि के आधार पर कुछ तथ्यकथन करना पड़ा है या किसी और प्रकार का वर्णन करना पड़ा है। तत्सम और तद्भव शब्दों से भी भाषा के अन्य शब्द बन जाते हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से उनका मूल मनोरंजक होता है। सूर के द्वारा प्रयुक्त हिंदी–शब्द कुछ समस्त हिंदी प्रदेश में प्रयुक्त होते हैं और कुछ स

हैं जो केवल ब्रज में ही प्रयुक्त होते हैं। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो सूर के समय में प्रचलित थे किंतु कालांतर में उनका प्रयोग ब्रज प्रांत में तथा ब्रजभाषा–काव्य की परंपरा में न चल सका। इतना अवश्य है कि इन शब्दों का प्रयोग अपने स्थल पर अत्यधिक उपयुक्त है। सूर ने पर राष्ट्रीय, अरबी–फारसी शब्दों का भी प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया है। शब्दों का प्रयोग करते हुए सूर ने इन पर ब्रजभाषा की कलई कर रखी है। यही कारण है कि शब्दों का स्वरूप हिंदी के इतने अनुरूप हो गया है कि उनका पर–राष्ट्रीय लक्षण लक्षित नहीं होता। अर्थ की दृष्टि से इन शब्दों का सौंदर्य अनुपम है। सूर ने पात्र और परिस्थिति के अनुरूप जो शब्द पाया उसका उसी प्रकार प्रयोग किया। राष्ट्रीय–परराष्ट्रीय, साहित्यिक–असाहित्यिक, शिष्ट–अशिष्ट जैसा भी उपयुक्त शब्द उन्हें प्राप्त हुआ, उन्होंने उसको सहर्ष स्वीकार किया। इससे भाषा की व्यंजकता और अर्थ–वैभव में वृद्धि हुई है।

इस प्रकार सूर की शब्द–योजना मनोरंजक तथा अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है। उनकी शब्द योजना का एक पक्ष उसका स्वरूप है, दूसरा उसका अर्थ–विस्तार।

**(2) तत्सम शब्द**–सूर ने तत्सम शब्दावली का प्रयोग उन पदों में किया है जिनमें उन्हें सिद्धांत–निरूपण करना था या अप्रस्तुत योजना करनी थी। लीला–पदों में तत्सम शब्दावली का प्रयोग अपेक्षाकृत कम है। सूर ने सिद्धांत–कथन में संस्कृत–ग्रंथों का आधार लिया और साहित्यिक अप्रस्तुत योजना में संस्कृत–काव्य–परंपरा का। लीला–गायन में अपेक्षाकृत आधार कम लिया है स्वानुभूति या मौलिक उद्‌भावना के बल पर ही सूर ने पदों की रचना की है। इन पदों की शब्दावली में सहज बोल–चाल का परिमार्जित रूप मात्र है।

(*i*) **सिद्धांत–निरूपण में**–संस्कृत रचनाओं का आधार लेने से जहां तत्सम शब्दावली का प्रयोग दुर्निवार हो गया है वहां भी सूर ने तत्सम शब्दों का बोल–चाल रूप देने का प्रयत्न किया है। सूर–सारावली सिद्धांत–ग्रंथ है। उसमें संस्कृत की तत्सम शब्दावली का प्रयोग सूर के अन्य ग्रंथों की अपेक्षा कहीं अधिक हैं, किंतु उसके तत्सम शब्दों को भी सरल बनाने का प्रयास किया गया है। जैसा कि उनके छंद की भाषा में द्रष्टव्य है–

**'अवगति आदि अनन्त अनूपम, अलख पुरूष अविनासी।** (सूरसारावली छं० 1, 2)
**पूरण ब्रह्म प्रकट पुरूषोत्तम, नित निज लोक विलासी।।**
**जहं वृन्दावन आदि अजर जहं, कुंज लता विस्तार। तहं विहरत प्रिय प्रियतम दोऊ, निमग भृंग गुंजार।।**
**शोभा अमित अपार अखंडित, आप आतमाराम। पूरण ब्रह्म प्रगट पुरूषोत्तम, सब विधि पूरण काम।।**
**आदि सनातन एक अनूपम, अविगत अल्प अहार। ओम्‌कार आदि वेद असुरहन, निर्गुण सगुर अपार।।**

उपर्युक्त छंद की सभी पंक्तियों में तत्सम शब्द हैं किंतु इनमें से कुछ पर सूर ने बोली का रंग चढ़ाया है। 'अनूपम', 'अलख', 'अविनासी', 'पूरण', 'विहरत', 'आतमाराम', 'असुरहन' ऐसे ही शब्द हैं। अत्यल्प परिवर्तन के द्वारा ये तत्सम शब्द ऐसे प्रतीत होते हैं मानो तद्‌भव हों। यही प्रवृत्ति सूरसागर के पदों में भी परिलक्षित होती है। विनय के पदों में जहां शास्त्र का प्रभाव है तत्सम शब्दावली का प्रयोग अधिक है। कहीं वर्णों के अत्यल्प परिवर्तन से ही शब्दों की रंगत बदल दी गई है। जैसे सूर के प्रथम स्कंध पद में द्रष्टव्य हैं–

**'भृंगीरी भजि स्याम–कमल–पद, जहां न निसि कौ त्रास। जहं विधु–भानु समान एक रस, सो वारिज सुख–रास।।**
**जहं किंजल्क भक्ति नव–लच्छन, काम–ज्ञान रस एक। निगम, सनक, सुक, नारद, सारद, मुनि–जन भृंग अनेक।।**
**सिव, विरंचि खंजन–मन रंजन, छिन–छिन करत प्रवेस। अखिल कोष तहं भरयो सुकृत–जल, प्रगटित स्याम–दिनेस।।**
**सुनिमधुकरि, भ्रम तजि कुमुदिन कौ, राजिव वर की आस। सूरज प्रेम–सिन्धु में प्रफुलित, तहं चलि करै निवास।।**

पद पर वर्ण–मैत्री और वर्ण–संगीत का ऐसा प्रभाव है कि शब्दों की तत्समता का भास पहले नहीं होता यद्यपि अधिकांश शब्द अपने तत्सम रूप में ही प्रयुक्त हैं। अपनी पद्धति से कवि ने 'श्याम' को 'स्याम', 'निशि' को 'निसि', 'राशि' को 'रास', 'लक्षण' को 'लच्छन', 'शिव' को 'सिव', 'क्षण' को 'छिन', 'प्रवेश' को 'प्रवेस', 'आशा' को 'आस' तथा 'प्रफुल्लित' को 'प्रफुलित' कर दिया है। परिवर्तन अत्यल्प है किंतु इतने ही से शब्दों की रंगत सर्वथा बदल गई है।

(*ii*) **स्त्रोत–पद्धति की स्तुतियों में**–सूर ने कुछ स्तुतियां स्त्रोत–पद्धति में लिखी हैं। इन स्त्रोतों में तत्सम शब्दावली अत्यधिक मिलती है। तत्सम शब्दावली के आधिक्य से महाकवि को शब्दों में परिवर्तन लाने का अवसर कम मिला है फिर भी जहां कहीं उन्हें तनिक भी अवसर प्राप्त हुआ वहां उन्होंने संस्कृत शब्दों पर ब्रजभाषा का माधुर्य चढ़ा ही दिया है। 'सूरसागर' का गोवर्धन–लीला के उपरांत इंद्र की स्तुति का पद द्रष्टव्य है–

**'जयति नंदलाल जय जयति गोपाल, जय जयति ब्रजबाल आनंदकारी।**
**कृष्ण कमनीय मुख–कमल राजित–सुरभि, मुरलिका–मधुर–धुनि वन बिहारी।।**

**स्याम घन दिव्य न पीत पट दामिनी, इंद्र धनु मोर कौ मुकुट सोहै।**
**सुभग उर–माल–मनि कंठ चंदन अंग, हास्य ईषद जु त्रैलोक्य मोहे।**
**सुरभि–मंडल–मध्य भुज अंस दियैं; त्रिभंगि सुंदर लाल अति बिराजै।।**
× × × × ×
**सूर की गोपाल सोइ सुख–निधि नाथ आपुनौ जानि कै सरन आयौ।।**

इस स्त्रोत में भी सूर ने 'कृष्ण' को 'कृष्न', 'ध्वनि' को 'धुनि', 'श्याम' को 'स्याम', 'मयूर' को 'मोर', 'मणि' का 'मनि', 'वक्ष' को 'उर', 'अंस', 'शरण' को 'सरन' कर दिया है।

वास्तव में सूर को ब्रजभाषा का सहज मधुर स्वरूप ही प्रिय था। इसीलिए वे प्रायः तत्सम शब्दावली के स्थान पर तद्भव शब्दावली को अधिक प्रयोग किए हैं। सूर को जहां सिद्धांत–प्रतिपादन करना था, स्तुति करनी थी या भागवतीय कथन करना था वहां विषयानुरूप शब्दावली रखने के लिए उन्होंने तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया है पर ब्रजभाषा के मार्दव और उसकी प्रकृति को प्रधानता देने के लिए ब्रज में प्रयुक्त शब्दों का विशेष और अन्य शब्दों को सामान्यतया रूप परिवर्तन कर दिया है। सूर के पदों में तत्सम शब्दावली कट–छंटकर ब्रजभाषा की मधुर ध्वनि में मिल जाती है और भाषा के सुवर्ण–आधार में जड़ित पुखराज की भांति और भी सुदीप्ति प्रसारित करती है।

(*iii*) **अप्रस्तुत योजना में**–तत्सम शब्दावली का दूसरा प्रयोग सूर के उन पदों में मिलता है जिनमें उन्होंने अप्रस्तुत योजना की है। सूर ने प्रभु श्रीकृष्ण के रूप–चित्रण में अनेक उपमान जुटाने में महाकवि–कर्म की पराकाष्ठा कर डाली है। सूर को संस्कृत काव्य की संपन्न–परंपरा का पूर्णरूपेण ज्ञान था। उन्होंने अप्रस्तुत योजना में प्रायः कवि–परंपरा का अनुपालन किया है। इसीलिए उसी प्रकार भी कल्पना के पंख पसारते हुए सूर की शब्द–योजना भी संस्कृतमयी हो गई है। इन पदों में सूर का कवि–पक्ष अत्यधिक प्रबल है। सूर के काव्यत्व ने इन पदों में विशेष चमत्कार उत्पन्न किया है। धार्मिक पदों में तत्समता कटने–छंटने पर भी भरी हुई स्पष्ट दिखाई पड़ती है पर साहित्यिक पदों में तत्सम–शब्दावली का बाहुल्य होते हुए भी, वर्ण–मैत्री, वर्ण–संगीत और अलंकरण के कारण ब्रजभाषा संस्कृत तत्समता पर प्रबल होती है। जैसा कि सूर के पद में द्रष्टव्य है–

**'धन्य नंद जसुदा के नंदन। धनि सीखंड–पीड़ सिर–लटकाने, धनि कुंडल, धनि मृगमद चंदन।।**
**धनि राधिका, धन्य सुंदरता, धनि मोहन की जोरी। ज्यों धन मध्य दामिनी की छवि, यह उपमा कहौं थोरी।।**

उपर्युक्त पद की सभी पंक्तियों के शब्द–'धन्य', 'कुंडल', 'मृगमद', 'चंदन', 'धन', 'मध्य', 'दामिनी', 'छवि' लुप्त सी प्रतीयमान होती है। सूर के निम्न पद में तत्सम शब्दावली और भी अधिक द्रष्टव्य हैं–

**देखौ माई रूप सरोवर साज्यौ। ब्रज–बनिता–बर–बारि बृंद में, श्रीब्रजराज बिराज्यों।।**
**लोचन जलज, मधुप अलकावलि, कुंडल मीन सलोल। कुच चकवाक बिलोकि बदन–बिधु, बिहुरि रहे अनबोल।**
**मुक्ता–माल, बाल–बग पंगति, करत कुलाहल–कूल। पूरइनि कपिस निचोल, विविध अंग, बहुरति रूचि उपजावैं।**
**सूर स्याम आनंद कंद की, सोभा कहत न आवै।।'**

यह पद सांगरूपक में ग्रथित सुंदर कला–गीत का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें तत्सम शब्दावली स्पष्ट प्रकट होती है। रूपक के उपमान संस्कृत–काव्य परंपरा के हैं, इसीलिए शब्दावली तत्सम है। तत्समता के प्रभाव को कम करने के लिए जिस चतुराई का प्रयोग महाकवि ने किया हैं, वह दर्शनीय है। गीत की टेक 'देखौ माई रूप सरोवर' में शुद्ध भाषापन है। क्रिया साज्यौ विशेषतया उसमें भाषा की सहजता और ब्रज माधुर्य का समावेश अत्यंत प्रभावित करता है। 'टेक', गीत में महत्वपूर्ण होती है, गीत में अनेक बार चरणांत में दुहराई जाती है। इसके द्वारा भाषापन का प्रसार अन्य पंक्तियों पर होता है। दूसरी पंक्ति का प्रत्यक शब्द तत्सम है किंतु कवि ने अत्यंत चतुराई से प्रत्येक 'व' को 'ब' कर दिया है। 'ब' ब्रजभाषा की प्रिय–प्रचलित ध्वनि है। इसके पश्चात् की दो पंक्तियां साथ–साथ पढ़ी जाती है। इनमें भी अनेक तत्सम शब्द हैं। तत्पश्चात् अगली पंक्ति में 'कुच–चकवाक बिलोकि बदन–बिधु' में 'ब' का वृत्यानुप्रास तथा अंत में ब्रज के तीन शब्द 'बिहुरि रहे अनबोल' दोनों पंक्तियों की तत्समता का निराकरण कर देते हैं। शेष पंक्तियों में तत्समता प्रबल नहीं हैं। 'बाल–बग–पंगति', 'कुलाहल', 'मोर', 'शुक–श्रेनी' ब्रज–बाना धारण करके पंक्ति में भाषा की स्वाभाविकता उत्पन्न कर देते हैं। अंतिम पंक्ति में तत्समता का प्रभाव न्यून होता जाता है। इससे यह प्रतीत होता है कि सूर की भाषा का प्रभाव अंत तक पहुंचकर तत्समता की प्रबलता को स्वतः ही मंद कर देता है। यही कारण है कि सूर–पद में तत्सम शब्दावली की बहुलता है जिसके कारण ब्रज की बोली सामान्य मृदुता संस्कृत–तत्समता के माधुर्य को अपने ही रंग में मिला लेती है। सूर की इसी कला ने ब्रजभाषा शब्द–योजना को निराला रूप प्रदान किया है। परवर्ती ब्रज–कवियों ने सूर के इसी गुण में विशेष मृदुता भरने का प्रयास

किया है, तदुपरांत ब्रजभाषा–काव्य का माधुर्य संस्कृत की समास–गर्भित सानुप्रासिक ध्वनि–आपूरित माधुर्य से भिन्न हो गया। ब्रजभाषा के माधुर्य में जहां एक ओर सहज मिठास दिखाई देती हैं वहीं दूसरी ओर संस्कृत–तत्सम शब्दावली में कृत्रिम माधुर्य की गंध भी आने लगती हैं। सूर ब्रज–काव्य–परंपरा के प्रथम कलाकार थे जिन्होंने साहित्यिक ब्रजभाषा में ऐसी शब्दावली का प्रचलन किया जिसमें तत्सम शब्दावली का आधिक्यं होने पर भी संस्कृतता के स्थान पर भाषापन की मिठास का प्राधान्य है।

सूर ने तत्सम शब्दावली का अत्यधिक प्रयोग बाल–छवि–वर्णन मुरली–प्रसंग, कृष्ण–छवि वर्णन, रास–लीला में श्याम–श्यामा के रूप–वर्णन में, रास–(नृत्य) वर्णन, वृंदावन–विहार, यमुना–जल–विहार प्रसंग में कृष्ण का रूप–वर्णन, राधा का नशशिख वर्णन तथा युगल समागम आदि में किया है।

**(2) तद्भव**–सूरदास ने तद्भव शब्दों का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में किया है। इसका कारण उनका व्यवहारिक भाषा को अधिक महत्त्व देना था। तद्भव शब्दावली की बहुलता के कारण भाषा का आडंबरहीन सहज सौंदर्य स्वाभावतः ही बढ़ गया है। संस्कृत के शब्दों को ऐसा कर्ण–प्रिय सरल रूप दिया गया हैं कि वे ब्रजभाषा की प्रकृति के सर्वथा अनुकूल हो गये हैं और उनसे भाषा की ग्राम्यता भी जाती रही है। उदाहरण रूप में सूर द्वारा प्रयुक्त तद्भव शब्द प्रस्तुत हैं :–

'अंकवारि (अंकमाल), अंचरा (आंचल), अंधियारो (अंधकार), आंगन (प्रांगण), अनत (अन्यत्र), अनैस (अनिष्ट), अमराई (आम्रराजि), औसर (अवसर), कान्ह (कृष्ण), दही (दधि), लवन (नवनीत), टक (त्राटक), बिसारि (विस्मृत), निठुराई (निष्ठुरता), नेम (नियम), पंखी (पक्षी), सुरति (स्मृति), सौंहे (सम्मुख), हियरौ (हृदय)।

तद्भव शब्दों में अनेक शब्द ऐसे हैं जो संस्कृत धातु और शब्दों के आधार पर बने हैं, किंतु उनका रूप हिंदी में स्वतंत्र रूप से हुआ है। जैसे 'अघाइ' शब्द है जिसका अर्थ तृप्त होता है। शब्द की व्युत्पत्ति सूर–शब्दकोश में संस्कृत आघ्राण–नाक तक–से बतलायी गई है। वास्तव में इस प्रकार के हिंदी–शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत से निकाली जाती है किंतु प्रयोग में ये अपनी स्वतंत्र सत्ता रखते हैं। इनकी बनावट, ध्वनि और अर्थ अपने ढ़ंग का होता है। इन शब्दों के प्रयोग से भाषा में बोली का सहज रूप निखरता है, किंतु इनका आधिक्य भाषा को असाहित्यिक बना देता है। इसका उदाहरण ब्रज की बोलचाल में गिराने के स्थान 'गेरना' शब्द प्रयुक्त होता है। यहां इसका प्रयोग भाषा को स्वाभाविक भले कर दे किंतु उसमें असाहित्यिकता की स्पष्ट झलक दर्शाता है। सूर ने भी 'गेरना' क्रिया का प्रयोग किया है जो द्रष्टव्य है–

**'सोवत मैं जागत मनमोहन, बात सुनत सबकी, अवसेरत। बारम्बार जगावति माता लोचन खोलि पलक पुनि गेरत।'**

सूर ने इस प्रकार के प्रयोग अल्प मात्रा में किए हैं। यहां पर भी तुक के लिए इसका प्रयोग किया गया है। प्रायः हिंदी शब्दों का अपना अर्थ है जो कि किसी तत्सम, तद्भव या पर–राष्ट्रीय शब्दों द्वारा उतनी सुंदरता से प्रकट नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए 'अंजोरि' शब्द का अर्थ छीनकर है। 'अंजोरि' की व्युत्पत्ति संस्कृत 'अंजलि' शब्द से है। हथेलियों के मिलाने पर अंजलि बनती है, उससे बना हुआ शब्द 'अंजोरि' 'हथियाने' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है किंतु जहां हथियाने में छीना–झपटी, बर्बरता और अन्याय की ध्वनि है वहां अंजोरि में हृदय हरने की मिठास भरी भावना का चित्रण सूर ने किया है। प्रयोग द्रष्टव्य है :–

**'सूरदास ठग रही ग्वालिनी, मन हरि लियो अंजोरि।'**

उपर्युक्त पंक्ति के शब्द प्रयोग से स्पष्ट हो जाता है कि 'अंजोरि' के समान अर्थ–सौरस्य और स्वर–माधुर्य का चमत्कार उत्पन्न करने वाला अन्य कोई भी समानार्थक शब्द नहीं हो सकता है। ऐसे ही शब्दों का बाहुल्य सूर के पदों में मिलता है। और इन्हीं शब्दों के कारण सूर की भाषा– शैली हिंदी–साहित्य जगत में अनोखी है। परवर्ती ब्रजभाषा कवियों ने साहित्यिकता के मोह में पड़कर लोक–भाषा के प्रचलित रत्नों की मृदु कांति नहीं पहचानी है। चमक–दमक के निर्माण हेतु उन्होंने कृत्रिम अलंकरण से शब्दों के सहज गुण को विलीन कर दिया। उनके औज्जवल्य में कांच या मुक्ताओं की चकाचौंध तो आ गयी किंतु 'सीजज' का सहज मार्दव उसमें नहीं आ सका। सूर के द्वारा चुने गए तद्भव शब्द रत्नों का संसार द्रष्टव्य है :–

अंटक्यो, अकबकात, अघाइ, अनमने, अवढेरि, असवारि, इंगुर, उजड़नों, उनहारि, उबरनो, ऐंड़ानी, ओढर, औघाई, कचपची, काछोटी, कनौड़े, कमोरी, कलमलात, कलेऊ, कसमसात, कीक, खतियानो, खनावै, गारी, घटत घबरानो, घिरावत, चपरि, चंड़ाई, चितई, चीन्ही, छहरि, छांड़ि, छाक, छाकी, जनाए, ठकुराइत, ठग, ठानी, ठौर, डगमगाति, डगर, ढरन, ढेरि, तरसायौ, तलफति, नेवज, पटतर, पुचि, पयान, पांवरि, बाछैं, बियाहन, भाड़ौ, मसान, महतारी, मीड़े, रीझे, ल्यावहु, विथकी, विसूरति, सकुचात, सठिया, सविताई, साध, सिंगार, सिखवै, सौंज, हिय, हेरी।

**(3) अनुकरणात्मक शब्द**–अनुकरणात्मक शब्द भाषा की व्यंजकता बढ़ाने के लिए अत्यंत उपयुक्त होते हैं। इनकी ध्वनि अर्थध्वनन युक्त होती है। सूर के शब्द–कोश में अनुकरणात्मक शब्दों का अधिक्य है। संदेह नहीं कि इनमें से अनेक साहित्यिक शब्दावली में प्रवेश न पा सके किंतु इन शब्दों के प्रयोग से सूर के भाव–सौन्दर्य और कला में अत्यंत अनूठापन आ गया है। सूर द्वारा प्रयुक्त इन शब्दों की सूची द्रष्टव्य है।

'अरबराइ, अररात, कलमलात, किलकिलात, कीकैं, खरभरयो, खलबली, खुनखुना, गहगहात, धुरकि, चटचटात, चमचमात, चुचकारे, झंकोरा, झझकि, झपटिझपटत, झुनक–झुनक, टकटोरत, टनटनात, डगमगाइ, ताकि, दररात, फुंकार्यौ, भहरात, सकरात, हररात हहरे आदि।

**(4) देशी शब्द**—सूर ने अनेक राष्ट्रीय शब्दों का प्रयोग किया है। ब्रज–प्रांत में जीवन–पर्यन्त रहने के कारण ब्रज के ये राष्ट्रीय शब्द उनकी वाणी में रम गए थे। इनकी अर्थ–व्यंजना किसी समानार्थक साहित्यिक शब्द से संभव न थी। इसीलिए सूर ने इन शब्दों का प्रयोग किया हैं । यही कारण है कि सूर के पदों में राष्ट्रीय शब्दों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। सूर के कुछ राष्ट्रीय शब्द द्रष्टव्य हैं–

'अकूहल, अमात, अहीठ, आरोगत, औचट, उल्हरत, उपरफट, करवर, कैंती, करोवति, खरिक, खुनुस, खाही, खागी, गिड़री, गुंसा, गोहन, गोसों, घैया, चाढ़ी, चभोरी, छाक, जोहर, झंगुआ, झारी, झूसी, डहकायौ, डोंगरी, ढूकी, ढौरी, दुर, दौचि, धारी, नरजा, पंसा, फचोर, फेफरी, फोकट, बगदाइ, बाइ, बाखरि, बुड़की, लड़बौरी, लठबांसी आदि।

**(5) परराष्ट्रीय शब्द**—सूर काल में अनेक फारसी, अरबी और तुर्की शब्द भाषा की संपत्ति बन चुके थ। फारसी और अरबी शब्दों का प्रयोग प्रायः सभ्य और प्रतिष्ठित समाज में हुआ करता था क्योंकि तत्कालीन शासन की राज्यभाषा फारसी थी। फारसी और अरबी के ज्ञात सहृदय मुसलमानों ने ब्रज–भाषा के माधुर्य की प्रशंसा की और उसे अपनाया भी। उधर ब्रजभाषी कवियों ने भी रहीम और रसखान जैसे कवियों का समुचित सम्मान किया। इस आदान–प्रदान के कारण फारसी और अरबी के शब्द हंस में समाहित हो गए। इन शब्दों के कारण ब्रज बोली में नागरिकता की छाप लगी इसीलिए सूर ने ब्रज–बोली की व्यजकता बढ़ाने तथा उसे प्रतिष्ठित और साहित्यिक स्वरूप देने के लिए फारसी और अरबी शब्दों का स्वतंत्र प्रयोग किया। सूर द्वारा प्रयुक्त परराष्ट्रीय शब्दों में उन की निजी रुचि द्रष्टव्य है। निश्चय ही फारसी–अरबी के तत्सम रूप ही शिष्ट समुदाय मे प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते रहे होंगे क्योंकि नागरिकों की दृष्टि में शब्दों का शुद्ध रूप वही होता है जो तत्सम होता है। सूर ने फारसी और अरबी के तत्सम रूप की प्रतिष्ठा की परवाह न की। उन्हें शब्द का वह रूप प्रिय था जो उनकी ब्रज–माधुरी में समाहित हो सकता हो। उन्होंने अरबी और फारसी के शब्दों को काट–छांटकर ऐसा सरल और मृदु बना दिया कि ब्रज भाषा शब्दों के बीच प्रयुक्त अरबी और फारसी शब्दों की पहचान भी कठिन हो जाती है। उदाहरण के लिए फारसी शब्द 'अंदेशा' है, सूर ने इसे 'अंदेस' करके लिखा है

**'सूर निर्गुन ब्रह्म उर धरि तजहु सकल अंदेस।'**

यह शब्द ब्रज–माधुरी के इतना अनुरूप है कि ऐसा प्रतीत होता है मानों शुद्ध ब्रजभाषा का ही कोई शब्द है। इसी प्रकार फारसी का 'कुलाह' शब्द 'कुलही' बनकर ब्रज का देशी शब्द प्रतीत होता है। इस प्रकार सूर ने बिना किसी परिवर्तन के पर राष्ट्रीय शब्दों को नहीं स्वीकार किया है। किसी में स्वर परिवर्तन है तो किसी में ध्वनि परिवर्तन, किसी में स्वरागम है तो किसी में स्वर लोप। कभी हिंदी प्रत्यय आदि लगते हैं तो कभी वर्णों का मसृण कर दिया जाता है। फारसी और अरबी के कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं–

**फारसी**—अंदेस, अवाज, अजाद, अबेस, आब, कंगूरा, कमान, कुरख, कुलही, खराद, खाक, खुमारी, गहर, गिलकरनी, गुलिम, गुनहगार, गुलामी, गुंजाइश, चंग, चुगली, चीज, जरद, जहाज, जोर, तलफ, तगीरी, तुरसी, दस्तक, दर, दरजी दरद, दरबार, दमामा, दाग, दिवानी, दुश्मन, नकली, निवाज, निसान, नी, परवाह, परदा, परवाना, बकसाना, बजाज, बरामदा, बुन्यादि, बेसरम मुलारा, मरुख, रेसम लश्कर, सरदार, सरमात, साऊ, साफ, सहर, सिकार, सिरपाव, सेहरो, सोर, हरज्यौ, हरामी।

**अरबी**—अकस, अदाई, अमल, अमीन, असल, आखिर, आदमी, उजीर, उमर, उमराव, कलक, कलकानि, कसम कसाइ, कसूर, कहर, कागद, कागर, कातिल, कुरबानी, कुल्ल, कैद, खता, खबरि, खबास, खसम, गरज, गरीब, गाफिल, गुलाम, जमा, जिम्मा, तकसीर, तनकीर, तमासौ, दगा, दगाबाज, नजीर, नफा, निहाल, फरद, फौज, बाकी, मसखरा, मसाहत, मिलकियत, मिलिक, मुजामेल, मुलाकात, मोहरिल, मौज, राजी, रुक्का, लायक, वासिल, सदकी, स्याहा, साविक, साहिवी, सुलतान, हकीम, हजूर आदि।

**(6) समानार्थक शब्द**—समर्थ कवि एक ही अर्थ के अनेक समानार्थक शब्द प्रयुक्त करता है। वह समानार्थक शब्दों का प्रयोग पर्याय–ध्वनि के उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए न करके पुनरुक्ति मात्र को बचाने के लिए और अर्थगत नवीनता प्रस्तुत करने के लिए करता है। इससे उक्ति में प्रतिवस्तुपमा अलंकार की शोभा आ जाती है। सूर के क्रियापदों में यह कौशल विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता हैं। इसको दर्शाने के लिए सूर के क्रियापदों के तीन उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

(*i*) **देखना**—कृष्ण–राधा की छवि–वर्णन करने के सूर को अनेक अवसर मिले हैं। सर्वत्र 'देखना' क्रिया आनेवाली आयी है। आंख, नैन को लेकर ही कवि ने संयोग और वियोग दोनों स्थितियों में पदों की रचना कर डाली है। देखने के अर्थ में जिन शब्दों का प्रयोग हुआ वह द्रष्टव्य हैं–

**'तब तैं नैन रहे इकटकहीं। जब तैं दृष्टि परे नंदनंदन, नैंकु न अंत मटकहीं।।**
**मुरली धरे अरुन अधरनि पर, कुंडल झलक कपोल। निरखत इकटक पलक भुलाने, मनौ बिकाने मोल।।**
**हमकौ वै काहें न बिसारैं, अपनी सुधि उन नाहिं। 'सूर' स्याम–छबि–सिंधु समाने, वृथा तरुनि पछिताहिं।।'**

(*ii*) **भाना (अच्छा लगना)**

**'बने बिसाल अति लोचन लोल। चितै–चितै हरि चारु विलोकनि, मानौ, मांगत हैं मन ओल।।**
**अधर अनूप, नासिका सुंदर, कुंडल ललित सुदेस कपोल। मुख मुसुक्यात महा छवि लागति, स्रवन सुनत सुठि मीटे बोल।।**

(*iii*) **शोभा पाना**–सूर ने 'शोभा पाने' का प्रयोग कई पदों में किया है। दशम स्कंध की पद संख्या 645 इस संबंध में द्रष्टव्य हैं– विराजति, अति राजति, मदन छवि लाजति, यह उपमा कछु लागत, अनुरागत, सोहत, मोहत आदि।

**7. मुहावरे और लोकोक्तियां**–मुहावरे एवं लोकोक्तियां बोलचाल की सबल भाषा के अनिवार्य उपकरण है। यह मानव–जाति की परंपरागत संपत्ति है। समाज के सम्मिलित अनुभव अपने लक्ष्यार्थ में रूढ़ होकर अभिव्यक्ति के प्रमुख साधन बन जाते हैं। परिस्थिति विशेष में लोग इन लाक्षणिक उक्तियों का अवलंबन लेकर अत्यंत सरलता से भाव व्यक्त करते हैं। जब किसी को अपने प्रियजन के प्रति कोई कटु या अप्रिय–सत्य कहने की इच्छा होती हैं तो वह विषम स्थिति में पड़ जाता है। अपने प्रिय या सम्मान्य–जन के प्रति ऐसा कथन कैसे कहे, न केवल कहे जाने वाले व्यक्ति की अप्रसन्नता का प्रश्न है वरन् ऐसा कथन अशिष्ट भी होता है। बात दिल से उठकर होठों पर आकर रुक जाती हैं। ऐसी अवस्था में लोकोक्तियां और मुहावरे साहाय्य उपस्थित होते हें। वह अपनी बात न कहकर परंपरागत वाक्यांश या वाक्य के प्रयोग से वह भाव भी स्पष्ट कर देता है, शिष्टता की पूरी रक्षा होती है, कटु–सत्य प्रिय बन जाता है। मीठी–मार दूसरे व्यक्ति के मन पर अमिट छाप छोड़ती है, बेचारा मुस्कराकर आहत होकर असहाय सा रह जाता है और प्रहारकर्त्ता अपने कथन का भरपूर प्रभाव देखकर मुग्ध हो जाता है। सूर की गोपियों और उद्धव की परिस्थिति ऐसी ही थी इसीलिए सूर के मुहावरों और लोकोक्तियों का चमत्कार देखते ही बनता है।

**मुहावरे और लोकोक्तियों में भेद**–मुहावरे और लोकोक्तियों में पर्याप्त अंतर हैं। मुहावरे शब्दों और क्रिया–प्रयोगों के योग से बनते हैं। इसका विशिष्ट रूप बन जाता है जो वाक्यांश बनकर वाक्यों में प्रयुक्त होते हैं। मुहावरे में पूरी बात नहीं कही जा सकती किंतु लोकोक्ति विचार की पूर्ण अभिव्यक्ति होती हैं। लोकोक्तियों के पीछे अंतर्कथा होती है इसीलिए इसका नाम कहावत है। इन अंतर्कथाओं के पीछे समाज में जटिल घटनाएं रही होगी जो इस समय काल कवलित हो चुकी हैं किंतु उनका सारभूत अंश कहावतों है। इन अंतर्कथाओं के पीछे समाज में घटित घटनाएं रही होगी जो इस समय काल कवलित हो चुकी हैं किंतु उनका सारभूत अंश कहावतों के रूप में आज भी प्रयुक्त होता है। सूर–तुलसी जैसे श्रेष्ठ लोक–कवियों की सूक्तियां भी कहावतों का रूप धारण कर चुकी हैं। जैसे 'कोउ नृप होउ हमें का हानी', 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे', 'लौंडी की डौंडी जग बाजी', 'सुर सुकत हठि नाव चलावत ये सरिता है सूखी' आदि।

मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग में भी पर्याप्त अंतर है। मुहावरे स्वतः अभिव्यक्ति बन जाते हैं। किंतु कहावतें उक्ति की पुष्टि में कही जाती हैं। जैसे–

**'तारे गनत गगन के सजली बीते चारों जाम।'**

**यहां गगन के तारे गिनने का प्रयोग स्वतः उक्ति है किंतु–**

**'इनके कहे कौन डरकावै, ऐसी कौन अनारी। अपनो दूध छांडि को पीवै, खारे कूप को बारी।।'**

में लोकोक्ति प्रथम पंक्ति की पुष्टि में कही गई है।

**सूर के मुहावरों और लोकोक्तियों के विशिष्ट प्रयोग**–सूर–साहित्य में प्रयुक्त मुहावरों और लोकोक्तियों की दीर्घ परंपरा विराजमान है किंतु मुहावरों की बहुलता सूर–भाषा में सर्वत्र समान रूप से व्याप्त नहीं हैं। मुहावरों और लोकोक्तियों के स्थल निश्चित हैं। इनका अत्यधिक प्रयोग भ्रमरगीत में उद्धव और कुब्जा के प्रति कहे गए गोपियों के वचनों में मिलती हैं। सूर ने सर्वाधिक मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग भ्रमरगीत–प्रसंग में ही किया है। गोपियों के विरह–वर्णन, संदेश या उद्धव–कृष्ण–वार्ता आदि प्रसंग में इनका प्रयोग नहीं मिलता। सूर ने शेष मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग मुरली के प्रति गोपियों के वचन, नैन समय के पद, मान–लीला तथा ऐसे स्थल जहां किसी प्रकार मानसिक आकुलता या विवशता की स्थिति में किया है। वास्तव में सूर ने मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा के सामान्य प्रवाह में निष्प्रयोजन नहीं किया है।

**मुहावरे**–सूर ने मुहावरों का प्रयोग दो रूपों में किया है, (1) परिस्थिति विशेष में पीड़ित हृदय के सहजोद्‌गार के रूप में, (2) उक्ति वैचित्य के प्रसाधन रूप में।

**सहजोद्‌गार रूप में**—सूर ने गोपियों की विरहव्यथित वेदना का चित्रण किया है। उनकी गोपियां उद्धव के वचन सुनकर अत्यंत दुखी थीं। विरह–वेदना में दुखित गोपियां उद्धव पर व्यंग्य–बाण का प्रहार करती हैं। उनकी गोपियों ने मुहावरों को तीर बनाकर संधान किया है। कुब्जा को लेकर लिखे गए पदों में यह भाव विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है–

**'सिर पर सौति हमारैं कुबिजा, चाम के दाम चलावै। कछु इक मंत्र कयौ चंदन मैं, तातैं स्यामहि भावैं।**
**अपने ही रंग रचे सांवरे सुक ज्यों बैठि पढ़ावै।। तब जो कहत असुर की दासी, अब कुल बधू कहावै।**
**नटिनी लौ कर लिए लकुटिया, कपि ज्यौं नाच नचावै।। टूटयौ नातौ या गोकुल कौ, लिखि लिखि जोग पठावै।**
**'सूरदास' प्रभु हमहिं निदरि, दाढ़े पर लोन लगावै।।**

उपर्युक्त पद में 'चाम के दाम चलाना', दाढ़े पर लोन लगाना' मुहावरे में गोपियों की खीझ के सहजोद्‌गार की अनुपम अभिव्यक्ति सूर ने की है। उपर्युक्त मुहावरे इसी तथ्य को द्योतित करते है कि कुब्जा की अनाधिकार चेष्टा और दुस्साहस उन्हें सह्य नहीं है वे अत्यंत दुःखी है।

गोपियां के उद्धव के प्रति उपालंभ में भी मुहावरों का प्रयोग कर गोपियों को सहजोद्‌गार का प्रकाशन किया गया है–

**'सूर इतै पर समुझत नाहीं, निपट दई को खोयो।'**

इससे यह स्पष्ट है कि उद्धव के प्रति कहे हुए वचनों में वैसा ही रोष है जैसा कि कुब्जा के प्रति कहे हुए वाक्यों में। भेद केवल इतना है कि इसमें हीन भावना नहीं है। भ्रमरगीत में इस प्रकार के अन्य मुहावरे दशम स्कंध से द्रष्टव्य हैं–

'हियरौ सुलगावत (3545), बार खसौ मत न्हातै (3547), ताकी जननी छार (3816), सहद लाइ कै चाटौ (3926), गुर चींटी ज्यों पागी (3958), फिरतिं धतूरा खाए (4040), हंस काग को संग (3418) दई प्रेम को फांसी (3707) आदि। इनके अलावा सूर ने अन्य प्रसंगों में मुहावरों का सहजोद्‌गार रूप प्रस्तुत किया है उनमें पीड़ा, विवशता, आकुलता तथा दैन्य भाव है।

**उक्ति–वैचित्य रूप में**—उद्धव के प्रति गोपियां जब अपनी मनोदशा का व्यक्तीकरण करने के लिए विनोद, उपहास या कटूक्ति प्रस्तुत करती हैं तब प्रायः मुहावरों का प्रयोग उक्ति–वैचित्य रूप में करती हैं। मुरली–प्रसंग तथा नैन–समय के पद में मुहावरों के रूप इसी तरह द्रष्टव्य हैं–

**'तिनको क्यों मन विस्मय कीजै, औगुन लौ सुख सांति। तैसेइ 'सूर' सुने जदुनंदन, बजी एक ही तांति।।'**

विनोद में 'बजी एक ही तांति' अत्यंत सहायक है। शिष्टता के साथ यदुनंदन के प्रति उपालंभ भी है और कम से कम शब्दों में हृदय की कटूक्ति का प्रकाशन भी। इस प्रकार के अन्य कुछ मुहावरे द्रष्टव्य हैं।

'फिरि न चढौ रंग (3547), खारै कूप कौ बारी (3665), गगन कूप खनि बोरै (3600), धुर ही ते खोटो खायो है (3605), दूध एक परिपाटी (3565), रतन छंडाई गहावत माटी (3565), अपने ही सिर मानि लियो (1828), इतनो कहा गांठि को लागत (2811), गूंगे गुर की दसा (2526), काहे को द्वै नाव चढ़ावत (1287) आदि।

**लोकोक्तियां**—लोकोक्तियों का प्रयोग सूर ने सर्वत्र कथन की पुष्टि में किया है। उक्ति की वक्रता इनका अनिवार्य गुण है। सूर ने प्रायः लोकोक्तियों का परिष्कार भी किया है। सूर की अनेक वक्रोक्तियां भी लोकोक्तियों का रूप ले चुकी हैं। इस प्रकार सूर की अनेक लोकोक्तियों के तीन रूप हैं–

(*i*) प्रचलित कहावतें, (*ii*) परिष्कृत लोकोक्तियां तथा (*iii*) सूर कृत उक्तियां जो आगे चलकर लोकोक्तियां बन गई हैं।

(*i*) **प्रचलित कहावतें**—वही जाति मंगल उतराई (3599), एक पंथ द्वै काज, करवत लेहों कासी (3558), इतकी भई न उतकी (2935), दूध दूध पानी कौ पानी, एक आंधरों दौरत पहिरि खराऊ (4126), कैसे समहिंगे एक म्यान दो खांड़े (3604), जूठे खय मोट कारन, दाई आगे पेट दुरावति, काकी भूख गई मन लाहू (3569) आदि।

(*ii*) **परिष्कृत लोकोक्तियां**—स्वान पूंछ कोऊ कोटिक लागै सूधी कहुं न करी, सूर मिले मन जाहि जाहि सौं, अपना दूध छाड़ि को पीवे खारे कूप को वारी, ताको कहा परेख्यौ कीजै जाने छाछ न दूधो, लेवा देइ बराबरि में है कौन रंग को भूप आदि।

(*iii*) **सूरकृत लोकोक्तियां**—सूर सुकत हठि नाव चलावत ये सरिता हैं सूखी (3557), प्रेम कथा सोई पै जानै आपु बीती होई (4160), कहौ कौन पै कढ़त कनूका जिन हठि भुसि पछौरी (4171), जाहि लगै सोई पै जानै। तब सुनि सूर मीन कौ जल बिनु नाहिन और उपाउ (4226), सुमेरु तृण ओट दुरावत। सूरदास जे मन के खोटे अवसर परैं जाहिं पहिचाने (4366), मनी श्याम छाड़ि के घुघुचे गांठ को बांधै। सूर परेखो काकौ कीजै बाप कियो जिन दूजो (4268) आदि।

इनके अलावा सूर ने लोक–प्रचलित उपमाओं, मुहावरों और लोकोक्तियों का आश्रय लेकर भाषा को अभीष्ट भावों की

अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त बना लिया है। उनके इस पद से स्पष्ट हो जाएगा कि प्रेम–विह्लता ब्रजबालाएं असदृश उपदेश देने वाले उद्धव पर सीधी–सादी भाषा में ऐसा चुटीला व्यंग्य करती हैं कि वे अवाक् रह जाते हैं–

**'आए जोग सिखावन पांड़े। परमारथी पुराननि लादे ज्यौ बनजारे टांड़े।।**
**हमरे गति–पति कमल–नयन की, जोग सिखै तैं रोड़े। कहौ मधुप कैसे समाहिंगे, एक म्यान दो खांड़े।।**
**कहु षटपद कैसे खैयतु हैं, हाथिन के संग गांड़े। काकी भूग गई बयारि भाषि, बिना दूध घृत मांड़े।।**
**काहै कौं झाला लै मिलवत, कौन चोर तुम डांडे। सूर तीनौ नहि उपजत, धनिया, धान, कुम्हांड़े।।'**

वास्तव में सूर के मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग भी विशेष दृष्टिकोण युक्त हैं। भाषा रूढ़ता के सहज माध्यम मात्र न होकर सशक्त अभिव्यंजना के प्रसाधन हैं। सूर ने जिस प्रकार अलंकार–योजना और उक्ति–वैचित्य का प्रयोग विशिष्ट स्थलों पर किया है उसी प्रकार लोकोक्ति और मुहावरे भी विषयानुसार विशिष्ट स्थलों में प्रयुक्त हुए हैं। इनके द्वारा जहां सूर की भाषा समृद्धि का परिचय मिलता है वहां उनके सामाजिक अनुभव और सूक्ष्म पर्यवेक्षण का परिज्ञान भी होता है, इसीलिए सूर की लोकोक्तियां और मुहावरे साहित्य में प्राप्त मुहावरों और लोकोक्तियों के सामान्य प्रयोग से सर्वथा भिन्न है।

**(8) रूप–रचना**–भाषा की प्रकृति का परीक्षण उसके शब्द–भंडार से उतना नहीं होता जितना कि व्याकरण से शब्दों में तो परिवर्तन होता ही रहता है क्योंकि भाषा की व्यंजकता बढ़ाने के लिए दूसरी भाषाओं के शब्दों को लेना और अपनी भाषा के शब्दों में परिमार्जन करना वांछनीय है। व्याकरण में इसके विपरीत अधिक स्थिर होती है। दूसरी भाषा के शब्द–ग्रहण में भी व्याकरण के रूप अपनी भाषा के ही रखे जाते हैं। भाषा रूपों में परिवर्तन और परिवर्द्धन अत्यंत धीरे–धीरे होता है। फिर भी जब बोली साहित्य में प्रविष्ट होती है तो उसके सामान्य रूप में कुछ परिष्कार अवश्य होता है। बोली गद्य में होती है, पद्य में ढलते ही उसमें अद्‌भुत अभिव्यंजना क्षमता आ जाती है। ब्रजभाषा को साहित्यिक रूप देने वालों में सूर अग्रणी हैं इसीलिए इन्होंने बोली में जो परिष्कार किए वे तत्कालीन साहित्यिक ब्रजभाषा के सामान्य गुण बन गए। अतः सूर साहित्य में प्राप्त संज्ञा, सर्वनाम आदि की रूप रचना सर्वथा नवीन है।

(*i*) **संज्ञा**–ब्रजभाषा की संज्ञाएं स्वरांत होती हैं। सूर–साहित्य में संज्ञा शब्द इस प्रकार मिलते हैं–

| | | |
|---|---|---|
| अकारांत | – | नंद, स्याम, करम, पंथ। |
| आकारांत | – | राधा, नैना, बछरा। |
| इकारांत | – | मोतिसरि, सौति, खनि, ससि। |
| ईकारांत | – | बांसुरी, सजनी, ठगौरी, इंद्री। |
| उकारांत | – | बेनु, तनु, मनु, वपु। |
| एकारांत | – | पैड़े, राधे। |
| ओकारांत | – | माधौ, ऊधौ, ज्यौं। |

उपर्युक्त रूपों में से केवल दो रूपों में सूर की निजी छाप मिलती हैं। उकारांत तथा ओकारांत। अन्य रूप सामान्य बोली के रूप हैं, इनमें सूर ने कोई परिवर्तन नही किया। उकारांत रूप का उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

**'वपु जु दहत मिलि तीन।'**

सूर–साहित्य में उकारांत शब्दों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। जैसा कि ब्रज–काव्य में मिलता है। सूर ने इनका प्रयोग वर्ण–मैत्री के लिए आरंभ किया था किंतु आगे चलकर साहित्यिक ब्रजभाषा की विशेषता बन गई। सूर ने ओकारांत शब्दों के स्थान पर औकारांत शब्द प्रायः प्रयुक्त किए हैं। ब्रजभाषा में ओकारांत शब्दों की संख्या बहुत है किंतु सूर की प्रकृति ओकारांत को औकारांत की रही है। जैसे–

**'निहोरो से निहोरौ' सूरसागर दशम स्कंध** पद (७३१)

(*ii*) **सर्वनाम**–सर्वनामों के प्रायः प्रचलित रूप ही मिलते हैं। उत्तम पुरुष सर्वनाम के मूल रूप में, हौं और हम ही मिलते हैं। जैसे–

**'हौं अपने अभिमान रूप जोवन कै गर्व भरी।' 'हम अहीर अबला ब्रजवासी वे जदुपति जदुराई।'**

'हौं' के असाहित्यिक रूप 'हो' या 'हूँ' का भी प्रयोग कहीं प्राप्त नहीं होता। तत्कालीन ब्रजभाषा गद्य में 'मैं' और 'हूँ' दोनों का प्रयोग मिलता है।

(*iii*) **अन्य पुरूष**–दूरवर्ती निश्चयवाचक में केवल साहित्यिक रूप ही प्राप्त होते हैं अर्थात् मूल रूप में वह, वे और वै तथा विक्रत रूप में वा, उन। जैसे–

**'वह तौ मेरी गाइ न होइ।' 'वे कह जानैं पीर पराई।' 'वा पट पति की फहरानि।'**

निकटवर्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के भी साहित्यिक रूप मूल में 'यह' 'ये' और विकृत रूप में 'या' 'इन' मिलते हैं। इसी संबंधवाचक सर्वनाम के मूल रूप 'जो' और 'जे' तथा विकृति रूप 'जा' और 'जिन' के प्रयोग मिलते हैं।

प्रश्नवाचक सर्वनाम के मूल रूप में 'को', 'कौन', 'कहा' और विकृत रूप में 'का', 'काहि', 'कहे' मिलते हैं। अनिश्चयवाचक सर्वनाम में मूल रूप 'कोऊ' और विकृत रूप में 'काहू' का प्रयोग मिलता है। 'कोई' का प्रयोग सूर–साहित्य में प्राप्त नहीं होता। अज्ञात पदार्थों के लिए–'कछू', 'कछु' या 'कछुक' का प्रयोग मिलता है। जैसे–

**कछुक अंग में उड़त पीत पट उन्नत बाहु विसाल।**

**ब्रजभाषा की रूप–रचना में सूर का योगदान**—सूर की भाषा के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूर ब्रज साहित्य के प्रथम प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं जिन्होंने प्रचुर मात्रा में स्थिर रूप से साहित्य–रचना की। सूर ने ब्रजभाषा को सर्वथा समृद्ध किया। उसका शब्द–कोश व्यापक हो गया। उनके ब्रजभाषा भंडार में संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्द, अनुकरणात्मक शब्द, देशज शब्द, ब्रज तथा अवधी, बुंदेल, कन्नौजी आदि के प्रचलित शब्द, परराष्ट्रीय–अरबी और फारसी शब्द–सभी का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग हुआ है परिणामस्वरूप सूर के हाथों ब्रजभाषा लचीली हो गयी। मुहावरों और लोकोक्तियों का सम्यक् प्रयोग सूर ने किया है जिसके कारण उनकी भाषा की व्यंजकता बढ़ गई और उसके प्रवाह में, अपूर्व वृद्धि हुई। व्याकरण के रूपों में सूर ने साहित्यिक दृष्टिकोण अपनाया है। बोली में प्राप्त विकल्पों में से अपेक्षाकृत काव्योचित रूपों को ही लिया फिर भी उसे किसी प्रकार दृढ़ बंधन में नहीं जकड़ा, बुंदेली और अवधी तक को अवसर दिया। इसके कारण सूर की ब्रजभाषा में स्थिरता के साथ–साथ व्यापकता आ गई जिससे भिन्न मातृभाषा वाले कवियों ने भी सूर की भाषा को स्वीकार करने में आपत्ति नहीं की। भाषा में माधुर्य की ओर सूर का विशेष ध्यान था ब्रजभाषा का माधुर्य उसका सहज गुण रहा है। इस प्रकार सूर–कृत भाषा–संस्कार अमिट हो गया। सूर की भाषा ही आरंभ में ब्रजभाषा का आदर्श रूप बन गयी।

**(9) सौष्ठव–**

(*i*) **अनुप्रास**—अलंकरण सौष्ठव का आधार है। प्रत्येक कलाकार इसीलिए सजावट और अलंकृति पर विशेष ध्यान रखता है। भाषा की सजावट का एक साधन सानुप्रासिक पदावली है। सूर ने अनुप्रास के प्रयोग द्वारा भाषा को अलंकृत किया है। इस संबंध में विनय–पद द्रष्टव्य है–

'कामी कृपन कुचील कुदरसन कौन कृपा करि तारयो।'

एक व्यंजन विशेष से आरंभ होने वाले शब्दों की आवृत्ति से पंक्ति सज उठी है सूर में यह सौंदर्य यत्र–तत्र ही मिलता है। सूर ने कहीं भी एक ही व्यंजन से बनने वाले शब्दों का वैसा तांता नहीं बांधा जैसाकि परवर्ती ब्रजभाषा कवियों ने सप्रयास अनुप्रास का प्रयोग किया।

(*ii*) **अंत्यानुप्रास**—आद्यानुप्रास के साथ सूर ने अंत्यानुप्रास का प्रयोग भी पदबंधों के अलकरण में किया है। अंत्यानुप्रास के कारण पद में एक प्रकार की लय स्वतः ही आ जाती है और पंक्ति आकर्षक लगती है। सूर गायक होने के कारण अंत्यानुप्रास की ओर विशेष रुचि रखते थे। अंत्यानुप्रास के उदाहरण सूरसागर के प्रत्येक पद है, एक द्रष्टव्य हैं–

**'विहरत गोपाल राई, मनिमय रचे अंगनाइ, लरकत परिरंगनाई घुटुरुनि डोलै।'**

(*iii*) **तुक**—तुक अंत्यानुप्रास का विशिष्ट रूप है। अत्यानुप्रास का क्षेत्र विस्तृत है किंतु तुक का क्षेत्र अत्यत संकीर्ण है। तुक चरणों के अंतिम शब्दों में ही होता है। तुक हिंदी की विशेषता है। संस्कृत–काव्य में तुक का नितांत अभाव–सा है। बंगला, मराठी आदि भाषाओं में भी तुक का अधिक प्रयोग नहीं मिलता। प्राकृत तथा पर–राष्ट्रीय भाषाओं फारसी–अरबी में भी तुक का स्थान प्राप्त नहीं हुआ। सूरदास ने तुक को न केवल परंपरा के निर्वाह रूप में ग्रहण किया है वरन् इसे अलंकरण का मुख्य प्रसाधन बना लिया है। सूर के तुकांत प्रयोग पंक्ति के माधुर्य में वृद्धि कर लय की रक्षा करते हैं। संगीतज्ञ को पद की अन्य पंक्तियों को टेक के साथ मिलाकर गाया जाता है अतएव तुक–प्रधान पद–रचना गायन के अत्यधिक अनुरूप बन जाती हैं। सूर के तुक के लिए शब्दों को तोड़ने मरोड़ने और विकृत करने में किसी भी प्रकार सोच–विचार नहीं किया। इसी प्रकार 'सांची' से तुक जोड़ने के लिए 'मांची' 'रांची' 'कांची', और 'खांची' शब्दों का प्रयोग कर सूर ने भाषा के सौन्दर्य में अभिवृद्धि की हैं–

**'कहि राधिका बात अब सांची। तुम अब प्रगट कहीं मो आगे, स्याम–प्रेम–रस मांची।**
**तुम को कहां मिले नंदनंदन, जब उनके रंग रांची। खरिक मिले, की गोरस बेचत, की जब विषहर बांची।**
**कहे बनै छांड़ो चतुराई, बात नहीं यह कांची। सूरदास राधिका सयानी रूप–रासि–रस खांची।।**

अर्थ और रूप–रचना की दृष्टि से इन शब्दों की दुर्दशा हो गई है। ऐसा होने पर ये शब्द नादात्मक सौंदर्य बढ़ाने वाले हैं।

तुक के तीन रूप माने जाते हैं–उत्तम, मध्यम और अधम तुक।

**उत्तम तुक** में छंद के चरणांत के कई (स्वरों या व्यंजनों) की एक ही क्रम में आवृत्ति होती है। द्रष्टव्य हैं–

**'बनावत, मनावत, बुलावत, आवत, गावत।'**

इनमें 'आवत' की आवृत्ति प्रत्येक शब्द में हैं।

**मध्यम तुक** में छंदों के चरणांत के दो या एक ही वर्ण की आवृत्ति होती है। जैसे–

**'प्यारी, गिरिधारी, हारी, दुलारी, मारी, हितकारी।'**

यहां 'आरी' की आवृत्ति शब्दों में हुई हैं।

**अधम तुक** में वर्णावृत्ति का कोई नियम नहीं रहता और इसके उदाहरण सूर साहित्य में नहीं मिलते।

सूर के अत्यधिक पदों में तुक आदि से अंत के चरणों में मिलती है। अनेक पद ऐसे भी है जिनमें दो–दो पंक्तियों की तुक मिलती है, विशेषकर लंबे पदों के सभी चरणों में तुक का निर्वाह करना संभव नहीं है। सामान्य रूप से सूर ने दस पंक्तियों तक के छोटे पदों में तुक का निर्वाह सफलता से किया है।

**वीप्सा** में शब्द की आवृत्ति से भाषा में गति उत्पन्न की जाती है। सूर के पदों में वीप्सा का उपयोग भाव के उच्छलन के सहज रूप में हुआ है, अलंकरण के लिए वीप्सा का सचेष्ट प्रयोग कहीं नहीं है। फिर भी वीप्सा के कारण भाषा का सौष्ठव बढ़ गया है, पद द्रष्टव्य है–

**'मुरि–मुरि चितवति नंद गली। बार–बार मोहन मुख कारन, आवति फिरि–फिरि संग अली।**
**चली पीठि दे दृष्टि फिरावति, अंग–अंग आनंद रली।। कीर–कपोत–मीन पिक सारंग, केहरि–कदली छवि बिदली।**
**सूरदास–प्रभु पास दुहावति, धनि–धनि श्री वृषभानु लली।।**

पद में 'मुरि–मुरि', 'फिरि–फिरि', 'अंग–अंग' तथा 'धनि–धनि' की आवृत्तियां विशेष गति उत्पन्न करती हैं। सूरसागर में वीप्सा के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

(*iv*) **पुररुक्ति–प्रकाश**–वीप्सा में पुनरुक्ति होती है किंतु शब्द केवल दो बार ही प्रयुक्त होता है, पुनरुक्ति–प्रकाश में पुनरुक्ति अनेक बार होती है। पुनरुक्ति काव्य–दोष है पर जब पुनरुक्ति ही रुचिरता का कारण बनती है तो अलंकार बन जाती हैं।

**'एक शब्द बहु बार जहं, परें रुचिरता अर्थ। पुनरुक्ति परकाश गुन, बरनै बुद्धि समर्थ।।** काव्य निर्णय (भिखारीदास) पृ० १६८

यहां पुनरुक्ति न केवल भाषा को रुचिरता प्रदान करती है वरन् अर्थ का भी उत्कर्ष करती है। इसके मनोरम उदाहरण सूरसागर में यत्र–तत्र बिखरे मिलते हैं। जैसे–

**'धन्य राधा धन्य बुद्धि तेरी।**
**धन्य माता, धन्य पिता, धनि भगति तुव, धिक हमहिं, नहीं सम, दासि तेरी।।**
**धन्य तुव ज्ञान, धनि ध्यान, धनि परमान, नहिं जानति आन ब्रह्म–रूपी।**
**धन्य अनुराग, धनि मान, धनि सौभाग्य, धन्य जोवन रूप अति अनूपी।।**

उपर्युक्त पद में 'धन्य' शब्दों की पुनरुक्ति का सौंदर्य प्रस्तुत किया गया है। पुनरुक्ति प्रकाश को सभी आलंकारिकों ने अलंकार नहीं माना है। किंतु सूर के पदों में इसने भाषा–सौष्ठव और भावोत्कर्ष निश्चय ही उपस्थित किया है।

**अर्थ–ध्वनन**–भाषा के अनेक शब्द ऐसे हैं जिनका निर्माण उनकी ध्वनि विशेष के आधार पर हुआ है। ये शब्द अपनी ध्वनि से अर्थ व्यक्त करते हैं। कुशल कवि शब्दों के इस गुण के प्रयोग से भाषा में सौंदर्य उत्पन्न करता है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र में ऐसे ओनोमेटोपाइआ नाम से स्वतंत्र अलंकार माना है। भारतीय काव्यशास्त्र में इसे अनुप्रास में ही अंतर्भूत किया है। आधुनिक युग में अंग्रेजी प्रभाव के कारण आधुनिक कवियों का झुकाव अर्थ–ध्वनन की ओर है। कविवर 'पंत' और 'निराला' में इसके उदाहरण मिलते हैं। सूर संगीतज्ञ थे अतः शब्दों के नादात्मक सौंदर्य से वे सुपरिचित थे। इसीलिए उन्होंने ऐसे शब्दों का विशिष्ट प्रयोग किया है जो अर्थ–ध्वनन के वैभव से युक्त थे। सूर ने बाल–क्रीड़ा विषयक पदों में अनेक स्थलों पर ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिनमें ध्वनि अर्थ को देने वाली होती हैं। उनका पद इस संदर्भ में दर्शनीय हैं–

**'ललित आंगन खेलै, ठुमुकि–ठुमुकि डोलै, झुनुक–झुनुक बोलै, पैजनी मृदु मुखर।।'**

'ठुमुकि–ठुमुकि' तथा 'झुनुक–झुनुक' शब्दों का प्रयोग कर सूर ने भाषा अर्थ–ध्वनन युक्त नादात्मक सौंदर्य की अभिव्यक्ति की है।

अर्थ–ध्वनन का सर्वश्रेष्ठ प्रयोग सूर के ओज–प्रधान प्रसंगों दावानल–पान और गोवर्धन– धारण में मिलता है। शब्दावली और पंक्तियों की ध्वनि मात्र से ही अर्थ की स्पष्ट अभिव्यक्ति हो जाती है।

**'भहरात झहरान दवा (नल) आयौ।**

× × ×

**झपटि झपटत लपट, फूल फल चट चटकि, फटत लट लटकि, द्रुम–द्रुम नवायौ।।**

**बरत बन पात, महरात, झहरात, अररात, तरु महा धरनी गिरायौ।।**

भहरात, झहरात, अररात आदि शब्दों की ध्वनि प्रचंड अग्नि की भीषणता की बोधक है। इसी प्रकार झपटि, झपटत लपट आदि की ध्वनि, आधी की लपेट और वृक्ष आदि के टूटने का चित्र प्रस्तुत करती है।

**कांति–गुण**–कुशल कवि शब्द चयन के पश्चात् उस पर पालिश चढ़ाकर औज्ज्वल्य एवं मसृणता का समावेश कर देता है। ऐसा करने से भाषा का खुदरापन जाता रहता है और उसमें आशा आ जाती है। इसी का नाम कांति गुण है। ब्रजभाषा के रीतिकालीन कवियों–बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर और घनानंद ने इस गुण पर विशेष दृष्टि रखी है इसीलिए उनकी भाषा की कमनीयता अत्यधिक बढ़ गई है। सूर ब्रजभाषा के प्रथम श्रेष्ठ कवि हैं। उनकी दृष्टि भाषा की कलात्मकता की ओर उतनी नहीं थी जितनी परवर्ती कवियों की थी, फिर भी कांति–गुण उनके श्रेष्ठ पदों में अनायास ही मिल जाता है।

(*i*) **औज्ज्वल्य**–कांति–गुण नागर पदावली पर अवलंबित होता है। अनुनासिक ध्वनियों की बहुलता से माधुर्य का संचार होता है, जैसे–

**'मानो माई घन–घन अंतर दामिनी।**

**घन–दामिनी, दामिनी–घन–अंतर, सोभित हरि ब्रज भामिनि।।**

**जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर, सरद सुहाई जामिनि।**

**सुंदर ससि गुन रूप रागनिधि अंग–अंग अभिरामिनि।।**

× × × ×

**खंजन, मीन, मयूर, हंस, पिक, भाइ भेद गज गामिनि।**

**को गति गनै सूर मोहन संग, काम विमोह्यो कामिनि।।'**

उपर्युक्त पद में आदि से अंत तक अनुनासिक ध्वनियों की गूंज विद्यमान है। इससे पद पंक्तियां दमकती दृष्टिगोचर होती है।

(*ii*) **मसृणता**–शिल्पकार कलाकृति की रचना करने के उपरांत उसमें घिसाई करके उसे समतल करता है, ऐसा करने से ही उसमें चमक उत्पन्न हो जाती है। कुशल कवि भी इसी प्रकार अपने शब्दों के खुरदरेपन को निकालकर उसमें एकरूपता उत्पन्न करता है। ऐसा करने से पंक्ति में स्वाभाविक मिठास उत्पन्न हो जाती है। सूर–काव्य में मसृणता सर्वत्र व्याप्त है। कांति गुण के लिए यदि कवि को बोली वाला रूप रूचता है तो वह उसे ले लेता है और यदि तत्सम शब्दावली अनुपम प्रतीत होती है तो उसे ग्रहण कर लेता है। वर्णों को थोड़ा–बहुत विकृत कर देने से भी वह हिचकता नहीं। उसे पंक्ति में एकरूपता और उज्जवलता चाहिए, जैसे–

**'नैननि उहै रूप जो देखौ। तौ ऊधौ यह जीवन–जग को, सांच सुफल करि लेखौ।।**

**लोचन चपल चारु खंजन, मन–रंजन ह्रदय हमारे। सुरंग कमल, मृग, मीन मनोहर, सेत, अरुन अरु कारे।।**

उपर्युक्त पद में 'उहै' शब्द बोली का है फिर भी 'वहै' की अपेक्षा पंक्ति की ध्वनि के लिए अनुकूल है। इसलिए कवि ने अंगीकार कर लिया है। इसी प्रकार 'सांच' 'सत्य' की अपेक्षा अधिक मधुर है। 'स्वेत' शब्द को 'सेत' बनाकर उसे अत्यंत कोमल बना दिया गया है। शिल्पकार पहले वस्तु की मसृण बनाता है और फिर उस पर कांति का आरोप करता है। उपर्युक्त पद की प्रथम दो पंक्तियों में सूर ने मसृणता भरी और फिर अंतिम दो पंक्तियों में कांति–गुण की अवतारणा कर दी है।

सूर में सहज गुण की प्रधानता है, अपनी रचनाओं में बहुत अधिक संशोधन और परिवर्द्धन नहीं किया। गान के माध्यम से प्रस्तुत करने के कारण उनके शब्द–वर्ण प्रायः ध्वनि के अनुरूप स्वतः घिस–घिसकर निकले तथा संगीत के स्वर विधान ने पंक्तियों में औज्ज्वल्य का आविर्भाव भी अपने आप कर लिया। इसीलिए सूर ही ब्रजभाषा के कांति–गुण के भी प्रवर्तक माने गये हैं।

**दोष**–निर्दोष रचना काव्य का महान् गुण है किंतु निर्दोष–रचना दुर्लभ है। रस काव्य की आत्मा है। रससिद्ध कवि रसलीनता में मग्न होने के कारण भाषा के बाह्य रूप पर उतना ध्यान नहीं देख पाता, जिसके कारण उसमें भाषागत दोष रह जाते हैं। सूर की भाषा का सदोष होने का कारण यही था। उनकी रचना में भाषागत दोष पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। सूर की भाषा में कतिपय दोष हैं जो द्रष्टव्य हैं :–

(*i*) **च्युत संस्कृति**—व्याकरण की सृष्टि से सूर की भाषा अनेक स्थलों पर सदोष मिलती है। सूर ने भाषा के मोह में पड़कर तुक और वर्ण–मैत्री, लिंग, कारक–चिह्नों और क्रियारूपों में नियमोल्लंघन किया हैं –

**लिंग संबंधी दोष**–**'विस्मय मिटी ससि पेखि समीपहिं, कहि अब सूर उभय हरि गार्ज्या।।'**

'विस्मय' शब्द पुल्लिंग है किंतु सूर ने स्त्रीलिंग रूप में प्रयोग किया है।

तुक के लिए अनेक स्थलों पर लिंग–दोष मिलता है। जैसे–

**'जसुमति कहति कहा मैं कीनों, रोवत मोहन अति दुख पाकर। सूर स्याम कौं जसुमति बांधति, गगन चिरैयां उड़त दिखावत।।'**

विशेषण के कारण भी कहीं उनके लिंग अशुद्ध हो गए हैं। जैसे–

**'नख शिख लौं यह मेरी देही, है पाप की जहाज।'**

इसमें गीत की लय के लिए 'देही' में 'ई' का प्रयोग आवश्यक था और 'देही' के कारण सूर को 'जहाज' को भी स्त्रीलिंग प्रयोग करना पड़ा।

सूर के कृदंती रूप प्रयोग के कारण भी अशुद्धि व्याप्त हो गई है। जैसे–

**'रसिक राधे, बोली नंद कुमार।'**

यहां 'बोली' का अर्थ 'बुलाई गई' है, अर्थात् हे राधे, तू हरि या नंदकुमार के द्वारा बुलाई गयी है, किंतु पंक्ति में 'बोली' शब्द भूतकालिक कृदंत स्थान पर क्रिया के भूतकाल में प्रयुक्त प्रतीत होता है, इसीलिए इसमें लिंग–दोष लगता है।

(*ii*) **विभक्तियों का अनियम**—विभक्तियों के प्रयोग में सूर ने अत्यंत स्वच्छंदता दिखाई है। इसीलिए अनेक स्थलों पर उनकी भाषा विकृत हो गई है। जैसे–

**'अधर अमृत की पीर मुई हम। बाल दसा तैं जोरि।।**

'अधर–अमृत की पीर' करण कारक में है अतः इसकी विभक्ति 'से' या 'तें' होनी चाहिए थी जिसका प्रयोग नहीं हुआ है।

(*iii*) **ग्राम्यत्व**—यद्यपि सूर की दृष्टि काव्योचित प्रयोगों पर अधिक रही फिर भी परिस्थिति दोष से अधिक ग्राम्य–प्रयोग उनकी भाषा में स्वतः आ गए हैं। जो पद लोक गीतों के रूप में हैं उनमें ग्राम्यत्व है ही, कला गीतों में भी अनेक ग्रामीण शब्दों का प्रयोग लिया गया है। उनमें ग्राम्यत्व है ही, कला गीतों में भी अनेक ग्रामीण शब्दों का प्रयोग किया गया है उनमें से कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं –

'हीलर (166), मूंड (331), बांभन (675), गौड़ (839), गेरत (1023), चंड़ाइ (1062), मौंडा (1099), डहरि (2039), लड़बौरी (2563), भरुहाने (2871), बूतैं (4534)।

ग्रामीण मुहावरे और लोकोक्तियां भी स्वभावतः आ गई हैं। इनमें से कुछ का उल्लेख किया गया है। अत्यधिक ग्राम्य–प्रयोगों से भाषा अपने सौष्ठव को खो देती है। जहां तक गोपियों की स्वभावोक्ति है वहां तक ये प्रयोग युक्तियुक्त हैं किन्तु इस प्रकार के प्रयोगों की अति भाषा में ग्राम्यत्व उत्पन्न करती है।

(*iv*) **अप्रतीतत्त्व**—शास्त्र विशेष में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली जब काव्य भाषा में प्रयुक्त होती है तो सामान्य जनों के लिए दुर्बोध होने से उसमें अप्रतीतत्व दोष माना जाता है। यदि ग्राम्यत्व भाषा को अति साधारण करता है तो अप्रतीतत्त्व उसे असाधारण बनाता है। सूर में यह दोष कम विराजमान है। विनय–पदों में से कुछ इस प्रकार के पद हैं। जिनमें से एक पद द्रष्टव्य है–

**'सांचौ सो लिखहार कहावै। काया ग्राम मसाहत करि कै, जमा बांधि ठहरावै। महमहतो करि कैद अपने में, ज्ञान जहतिया लावै।।'**

उपर्युक्त पद में मसाहत, जमा, महतो, जहतिया आदि पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। ये सब अप्रतीतत्त्व दोष के अंतर्गत आते हैं।

(*v*) **क्लिष्टत्व**—सूर ने दृष्टकूट पदों की रचना की है। इनमें से अधिकांश क्लिष्टत्व दोषयुक्त हैं।

(*vi*) **पुनरुक्ति**—यह सूर का प्रधान दोष है। सूरसागर में न केवल प्रसंगों की अनेक आवृत्तियां हैं वरन् उक्तियां, उपमाओं और पंक्तियों की भी पुनरुक्तियां होती गई है। कारण यह है कि सूरदास अंधे गायक थे, वे कीर्तन के लिए प्रतिदिन पदों की रचना करते थे। सूर को अपने पदों का संशोधन करने का अवसर नहीं मिलता था। विषय उपमानों के साथ–साथ कथन की भी अनेक पुनरुक्तियां हैं। जैसे

**'जब तें आंगन खेलत देख्यौ, मैं जसुदा को पूत री। तब तें गृह सो नातौ टूटौ, जैसे कांचो सूत री।।'**

(*vii*) **अधिकपदत्व**—परिमार्जन का विशेष अवसर सुलभ न होने के कारण पुनरुक्ति की भांति अधिकपदत्व और न्यूनपदत्व दोष भी प्रचुर मात्रा में है। जैसे–

**'हृदय हरषित प्रेम गद–गद, मुख न आवत बैन।'**

यहां 'गद्‌गद्' और 'मुख न आवत बैन' एक ही अर्थ के द्योतक हैं। अतः 'मुख न आवत बैन' का अधिक पदत्व है।

(*viii*) **न्यूनपदत्व**—जहां अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए पर्याप्त शब्दों का अभाव होता है और अर्थ की प्रतीति में कठिनाई होती है वहां न्यूनपदत्व दोष माना जाता है। जैसे—

**'मुख छवि कहौं कहां लगि माई। भानु उदै ज्यौं कमल प्रकासित, रवि ससि दोऊ जात छपाई।।'**

यहां मुख—छवि के वर्णन में दो कथन हैं—(1) मुख इस प्रकार प्रफुल्लित है जैसे सूर्योदय पर कमल तथा, (2) मुख—छवि के सम्मुख रवि और शशि की ज्योति छिप गई हैं। किंतु उपर्युक्त पंक्ति में इन दो भिन्न कथनों के पार्थक्य दिखाने के लिए कोई शब्द नहीं हैं। इससे भानु के उदय में ही रवि—शशि का छिपना अर्थ निकलता है और भ्रम उत्पन्न करता है।

(*ix*) **श्रुति—कटुत्व**—श्रृंगार, वात्सल्य आदि कोमल रसों में मधुर सा प्रसाद गुण वाले वर्ण शोभित होते हैं। उनके बीच में जब पुरूष वर्ण आ जाते हैं, तो कानों को अप्रिय लगते हैं। मधुर वर्णों के मध्य कर्कश वर्षों का योग श्रुति—कटुत्व कहा जाता है, सूर नागर के मनोरम प्रसंग के कर्कश वर्णों का प्रयोग कर इस दोष के भागीदार हुए हैं—

**'चटकीलौ पट लपटानौ कटि पर, वंसीवट जमुना के तट राजत नागर नट।**
**मुकुट की लटक, मटक भृकुटी की लोल, कुंडल चटक आछी, सुबरन की लुकट।।**
**उर सोहें बन माल, कर टेके द्रुम डाल, टेढ़े ठाढ़े नंदलाल सोभाभई घट घट।**
**सूरदास—प्रभु की बानक देखें गोपी ग्वाल निपट निकट, पर आवे सौंधे कीपट।।'**

वर्ण—योजना में सूर ने मधुर वर्णों के साथ पुरूष वर्णों का प्रयोग कर श्रुति—कटुत्व दोषमयी अभिव्यक्ति की है।

(*x*) **अश्लीलत्व**—क्रीड़ा विषयक अश्लीलत्व सूर के सुरति वर्णनों में कहीं—कहीं मिल जाता है। साहित्य में सुरति वर्णन त्याज्य नहीं हैं किंतु कवि को उसे लक्षणा और व्यंजना से ही करना चाहिए जहां वह अभिद्या से वर्णन करता है, उसमें अश्लीलता आ ही जाती है। सूर ने अभिद्या से ऐसा ही वर्णन किया—

**'हरषि पिय प्रेम तिय अंक लीन्हीं। प्रिया बिनु वसन करि, उलटि धरि, भुजन भरि, सुरति रति पूरि अति निबल कीन्हीं।**

वास्तव में सूरदास का ब्रजभाषा पर आधिपत्य निर्विवाद है। सूर की भाषा—समृद्धि, साधु— प्रयोग, वर्ण—योजना शब्द शक्ति, अलंकरण आदि इसके प्रमाण हैं। सूर ने असाहित्यिक भाषा को साहित्यिक बनाया। अतः प्रयोगात्मक रूप होने के कारण उसका बहुत सा अंश आगे न चल सका। अंधे होने के कारण उसका बहुत सा अंश आगे न चल सका। अंधे होने के कारण सूर को भाषा को मार्जन का विशेष अवसर प्राप्त नहीं हुआ। कीर्तन के क्रम में नित्य नए पदों की रचना करना उनका कार्य था इसलिए सभी पदों की भाषा सुगठित और सुव्यवस्थित भी नहीं हो सकती थी। भाषा—संबंधी दोषों का उसमें आ जाना इसीलिए स्वाभाविक हो गया। इतना होते हुए भी उनका भाषा पर व्यापक अधिकार सिद्ध हैं। तुक—प्रियता ने सूर की भाषा को विशृंखल किया है किंतु तुक उनके भाषाधिकार का प्रमाण भी है। सूर के पदों में बारह, पंद्रह और बीस पंक्तियों तक सुंदर तुक निर्वाह मिलता है। साधारण विकृति चाहे हो जाए पर शब्द न तो निरर्थक होते हैं और न रसहीन। विकृत होते हुए भी संगीत के अनुरूप होने के कारण सूर के तुक सरसता की अभिवृद्धि करने वाले हैं।

सूर की भाषा का सबसे बड़ा गुण भावानुकूलता है। यही कारण है कि सूर की भाषा के अनेक रूप मिलते हैं। वर्णनात्मक प्रसंगों में जहां सूर ने भागवत के भावानुवाद रूप में कथा—कथन किया है वहां भाषा लचर और गद्यात्मक है। उसमें न तो ओज है और न सौष्ठव। द्रष्टव्य है—

**'दच्छ के उपजी पुत्री सात। तिनमें सती नाम विख्यात। महादेव कौ सो तिन दई। पुनि सो दच्छ—यज्ञ में मुई।**
**तहं कियौ जज्ञ पुरूष अवतार। सूर कहयौ भागवत अनुसार।।'** — सूरसागर, चतुर्थ स्कंध, पद—४

इस प्रकार के पदों में भाषा पंडिताऊ और निरलंकार है। गद्य की सी भाषा है। इसके विपरीत कला—गीता में भाषा परिमार्जित है और थोड़े शब्दों में अधिक भाव प्रकाशन की क्षमता विद्यमान हैं। शब्दावली सरल होते हुए भी अर्थ—गांभीर्य से युक्त है। अर्थ की दृष्टि से शब्द जितने मार्मिक हैं और विविध व्यापारों से समन्वित चित्र प्रस्तुत करने वाले हैं, उतने ही स्वाभाविक हैं एवं माधुर्य और कांति—गुण से समुज्जवल हैं—

**'नैना नाहि न कछु विचारत। सनमुख समर करत मोहन सौं, जद्यपि हैं हठि हारत।।**
**अवलोकत, अलसात, नवल—छवि, अमित तोष अति आरत। तमकि—तमकि तरकत मृगपति ज्यों, घूंघट पटहिं विदारत।।**
**बुधिबल, कुल—अभिमान, रोष—रस, जोवत भंवहिं निवारत। निदरे व्यूह समूह स्याम अंग, पेखि पलक नहिं मारत।।**

वस्तुतः कह सकते हैं कि सूर की भाषा में ब्रजभाषा का प्रौढ़ और शिष्ट रूप है। प्रसंगानुकूल उसमें भाषा के विविध रूप के दर्शन होते हैं। साधारण बोल—चाल की भाषा से लेकर अलंकृत और नाद—वैभव से संपन्न भाषा सूरसागर में मिलती है। रास में जहां नृत्य की रूनझुन सुन पड़ती है वहां दावानल में भीषणता भी साकार हो आती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि भाषा सूर के हाथ की पुत्तलिका रही है जैसा उन्होंने चाहा वैसा रंग उन्होंने उसमें भर दिया है।

# अध्याय 3
# भक्ति–भावना

## सूर की भक्ति भावना

सूरदास हिंदी साहित्य की सगुणधारा की कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वप्रमुख कवि हैं। वल्लभ संप्रदाय के गोसाई विठ्ठलनाथ जी द्वारा संगठित अष्टछाप के कवियों में सूरदास का स्थान सर्वोपरि है। सूर जहां एक ओर महान कवि थे वहां दूसरी ओर एक उच्चकोटि के भक्त। उनके पद आज भी भक्तों के कंठहार बने हुए हैं। उनमें भक्ति भाव की स्त्रोतस्विनी विभिन्न धाराओं में प्रवाहित हुई है।

सूरदास वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्गी सिद्धांत में दीक्षित हुए थे। इस सिद्धांतानुसार श्रीकृष्ण परमब्रह्म परमेश्वर, निर्गुण–निराकार ईश्वर है और भक्तों हेतु अवतरित होते हैं। इस प्रकार एक ओर वे ही परब्रह्म है; दूसरी ओर भक्तवत्सल मानुषरूप–धारी एवं लीला–बिहारी श्रीकृष्ण हैं। श्री वल्लभाचार्य के अनुसार 'कृष्णानुग्रहस्माद्धि पुष्टि'; अर्थात् कृष्ण का अनुग्रह ही पुष्टि है। उनके अनुग्रह से ही भक्ति प्राप्त हो सकती है। वल्लभाचार्य ने पुष्टि के चार रूप बताए हैं–प्रवाह पुष्टि, मर्यादा पुष्टि, पुष्ठ पुष्टि और शुद्ध पुष्टि। शुद्ध पुष्टि ही भक्ति का अंतिम लक्ष्य माना गया है, जहां भक्त परम विरहासक्ति को प्राप्त होता है और परमपद प्राप्त करके अंत में गोलोक में निवास करता है। महात्मा सूर ने उसी अनन्य भाव से कृष्ण की उपासना की है। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से पूर्व के पदों में भी सूर का भक्त हृदय स्पष्ट झलकता है जहां उनकी दैन्य भावना के दर्शन होते हैं–

**'प्रभु हौं सब पतितन को टीकौं। और पतित सब दिवस चारि के, हौं तो जनमत ही कौ।।'**

## भक्ति का सामान्य विवेचन

भागवत् में भक्ति को सर्वोपरि माना गया है, परंतु ज्ञान और कर्म को भी अपनाया है। पराभक्ति या प्रेमरूपा भक्ति को महत्व देते हुए वैद्यी–भक्ति के उसकी प्राप्ति का साधन माना है। सूरदास जी ने भागवत्कार की भांति भक्ति को तो महत्व दिया है परंतु ज्ञान और कर्म की प्रतिष्ठा नहीं की। सूर के मत से इस प्रपंचात्मक संसार से बचने का एकमात्र उपाय हरि भक्ति हैं, जिसके बिना समस्त जीवन भारस्वरूप है। भक्ति ही जीवन की मुक्ति का आधार है। कलियुग के संतापकारी तापत्रय का शमन भक्त के कोमल हृदय से बहते हुए भगवद्भक्ति इस के शीतल स्त्रोत से ही संभव है।

भौतिक विषयों के दुष्परिणामों का उद्घाटन और प्रभु–प्रेम का प्रतिपादन उन्होंने इस खूबी के साथ किया कि लोग हरि–लीलागान में अनायास ही रत हो गये और भक्ति के बिना समग्र साधनों को बंधन समझने लगे। ज्ञान और वैराग्य का साधन बनकर उन्होंने भक्ति के पद की प्रतिष्ठा की और ज्ञान एवं योग द्वारा अगम्य तत्व को भी भक्ति के सरल मार्ग द्वारा गम्य बनाया। भक्ति स्वतः पूर्ण है, वह साधन नहीं साध्य है। उसकी प्राप्ति सब कामनाओं की इतिश्री है। हरि भक्त स्वयं हरिस्वरूप हो जाता है, वह ब्रह्मा और महादेव से भी महान हैं :–

**'हरि के जन सब ते अधिकारी। ब्रह्मा, महादेव तें को बढ़, तिनकी सेवा कछु न सुधारी।।'**

जिस पर हरि की कृपा हो जाती है, उसे फिर किस बात की कमी ? भक्ति का विशाल क्षेत्र जाति–पांति के क्षुद्र बंधन से बांधा नहीं जा सकता। बड़े–बड़े महाराज, ऋषिराज और मुनिराज भी हरि–भक्ति के समक्ष सिर झुकाकर वंदना करते हैं और उसके तेज को देखकर आश्चर्यचकित होते हैं–

**'हरि के जन की अति ठकुराई। महाराज रिषिराज महामुनि देखत रहे लजाई।'**

कलियुग में केवल हरिनाम का ही आधार है और सब व्यवहार झूठे हैं। हरि–भक्ति के बिना सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं और न ही मुक्ति संभव है। विषयों के बंधन हरि भजन से ही कट सकते हैं।

भगवान के भजन से नीच व्यक्ति भी उच्च पद प्राप्त कर लेता है–

**'हे हरि भजन को परमान, नीच पावैं ऊंच पदवी बाजते नीसान।' प्रभु के यहां ऊंच–नीच की गिनती नहीं की जाती।**

भक्ति के बिना ज्ञान और कर्म व्यर्थ हैं; इस तथ्य को प्रदर्शित करने के लिए सूरदास ने एक सुंदर दृष्टांत उपस्थित किया है। उनका कथन है जिस प्रकार पतंगा दीपक से प्रेम करता है और उसकी लौ से भी न डरता हुआ उस पर आसक्त होता है। उसी प्रकार ज्ञानी पुरूष भी अपने ज्ञानरूपी दीपक से सांसारिक दुःखरूपी कूप का ज्ञान होते हुए भी उसमें मिलने को तत्पर होते हैं।

सूरदास ने जहां एक ओर हरि भजन की आवश्यकता पर बल दिया है वहां दूसरी ओर भक्त के विचारों में वैराग्य भी अनिवार्य बताया है क्योंकि वैराग्यपूर्ण भक्ति से ही सांसारिक बंधनों से मुक्ति संभव है और भक्त के हृदय में पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना जाग्रत होती है।

**'जौ लौं मन कामना न छूटै। तौ कहा जोग जज्ञ ब्रत कीन्है, बिनु कन तुस को कूटै।**
**कहा स्नान किये तीरथ के, अंग भस्म जटजूटै। कहा पुरान जु पढै अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूटैं।।**
**जग शोभा की सकल बड़ाई, इनतै कछु न खूटै। करनी और कछु औरे, मन दश हूं दिश टूटै।**
**काम, क्रोध, मद, लोभ सत्रु हैं, जो इतननि सौं छूटै।। सूरदास तबही तम नासै ज्ञान अग्नि झर कूटै।**

सूरदास ने भक्ति के लिए वैराग्य की आवश्यकता बताई है वैराग्य आत्मज्ञान से ही हो सकता है। जब तक मनुष्य के मन स्वरूप का ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक वह मृग की भांति सांसारिक वन में घूमता रहता है। आत्मज्ञान के अभाव में [illegible] कुछ भूला रहता है और उसके हृदय में अंधकार छाया रहता है और इसलिए उसमें वैराग्य उत्पन्न नहीं हो सकता। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि आत्मज्ञान और तज्जन्य वैराग्य ही भक्ति का एकमात्र साधन है।

सूरदास के भक्ति विवेचन की दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने उस समय प्रचलित योग मार्ग की निंदा की है [illegible] से पदों में भक्ति के सामने योग मार्ग की निरर्थकता का प्रतिपादन किया गया है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है-

**"भक्ति बिना जौ कृपा न करते तौ हौं आस न कर तौ। × × × × × ×**
**साधु–सील सद्रूप पुरूष कौ अपजस बहु उच्चरतौ। औघड़ असत कुचीलनि सों मिलि, मायाजाल में तरतौ।"**

इसी प्रकार भक्ति–पंथ का निरूपण करते हुए वे कहते हैं–

**"भक्तिपंथ कौं जो अनुसरै, सो साष्टांग जोग कौं करै। यम, नियमासन, प्रानायाम। करि अभ्यास होइ निष्काम। प्रत्याहार, धारना, ध्यान। करै जु छांड़ि वासना आन। क्रम क्रम सौं पुनि करै समाधि। 'सूर' स्याम भजि मिटै उपाधि।"**

सूरदास यह भाव प्रकट करते हुए कहते हैं कि भगवान के भजन के बिना योग आदि क्रियाएं व्यर्थ हैं। उनकी धारणा [illegible] होता है कि सूरदास योगमार्ग के विरुद्ध नहीं हैं परंतु उन दूषित भावनाओं और क्रियाओं के विरुद्ध हैं जिन्हें योगमार्गी साधु [illegible] अपना लिया था।

सूरदास के भक्ति विवेचन में यह उल्लेखनीय है कि उन्होंने संत–मत के तत्वों को भी अपनाया। संत–मत के मुख्य [illegible] जाति–पांति का विरोध है। यही सिद्धांत सूर के इस पद में प्रतिबिंबित होता है–

**'जाति–पांति कोउ पूछत नाहीं श्रीपति के दरबार।'**

हिंदु धर्म के बहुत से संप्रदायों में स्त्री को भक्ति का अधिकार नहीं दिया गया, संतों ने इस सिद्धांत का विरोध किया [illegible] ने उनका समर्थन किया–

**'हरि हरि हरि सुमिरौ सब कोइ, नारि पुरूष हरि गनत न होई।'**

पुष्टि संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व सूरदास संत मत को पूर्ण आदर से देखते थे। कबीर की भांति उन्होंने भी [illegible] मिथ्या–तत्व का प्रतिपादन किया हैं और भगवान के परमधाम की ओर संकेत किया है। सूर आरंभ से ही निर्गुण पथ के प्रति [illegible] थे। परंतु संप्रदाय में दीक्षित होने के बाद उनकी भक्ति का आदर्श बदल गया। इसके बाद उन्होंने इस सहज भक्ति–धर्म का निरूपण किया जिसका आधार कृष्ण की रूप–माधुरी लीलाएं हैं। इसलिए वहां निर्गुण पंथ के प्रति उनकी उदासीनता ही नहीं, स्पष्ट विरोध भी [illegible]

सूर के भक्ति विवेचन से यह पता चलता है कि वल्लभाचार्य के मिलने से पहले उनका मन स्थिर नहीं था। यही कारण है कि उनके भक्ति विवेचन में उत्तरोत्तर निश्चित रूप से अंतर आता गया है। निर्गुण पंथ के प्रति प्रारंभ में उनकी सहिष्णुता उदासीनता के रूप में परिणत होती हुई भ्रमरगीत में पूरे विरोध का रूप धारण कर लेती है।

सूरसागर के देवहुति–कपिल संवाद में सूर ने भक्ति की विस्तृत व्याख्या की है। त्रिगुण भक्ति को सुधासार भक्ति कहा [illegible] प्रेमाभक्ति है। भक्तों की उन्होंने दो कोटियां मानी हैं–सकाम भक्त, अन्नय भक्त। कर्म, ज्ञान एवं योग के सबधानुसार [illegible] के भक्त माने गए हैं–कर्मयोगी भक्त, ज्ञानयोगी भक्त एवं भक्तियोगी भक्त। कर्मयोगी भक्त अधर्म आचरण से दूर रहता हुआ [illegible] नियमों का पालन करता है, उसे मर्यादायुक्त भक्त कहा जा सकता है। ज्ञानयोगी भक्त सबका ब्रह्म समझकर सबसे [illegible] भक्तियोगी भक्त प्रभु से प्रीति रखता हुआ उसके स्मरण और अर्चन में अपना पूर्ण समय लगाकर मुक्ति प्राप्त करता है [illegible] में इस प्रकार की भक्ति का सुंदर वर्णन द्रष्टव्य है–

**'चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।'**

सूरदास यद्यपि भक्ति के साध्य रूप को ही महत्व देते थे और प्रेम ही उनकी साध्यरूपा भक्ति का आधार है तथापि स्थान [illegible] पर हमें सूरसागर में वैधी भक्ति के उदाहरण भी मिल जाते हैं। गोपियों को प्रेमाभक्ति का आश्रय मानकर उनके माध्यम [illegible] ने अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

**नवधा भक्ति**—शास्त्रों में भक्ति के नौ प्रकार बताए गए हैं जो नवधा भक्ति के नाम से प्रसिद्ध हैं—श्रवण, स्मरण, कीर्तन, पादसेवा, वंदन, अर्चन, दास्य सख्य और आत्म—निवेदन। भागवत में नवद्या भक्ति का विवेचन हुआ है किंतु सूरदास ने प्रेमस्वरुपा भक्ति का भी उल्लेख किया है—

**'श्रवण कीर्तन पादरत, अरचन वन्दन दास। सख्य और आत्म—निवेदन प्रेमलक्षणा जास।'**

वल्लभाचार्य ने नवद्या भक्ति को प्रेमस्वरूपा भक्ति का साधन माना हैं। सूर ने साधन रूप में ही नवद्या भक्ति द्वारा प्रेमाभक्ति को संकेतित किया हैं। पहले तीन प्रकार की भक्ति भगवान् के नाम और लीला से संबंध रखती है, दूसरे तीन प्रकार की रूप से और अंतिम तीन प्रकार की मन से संबद्ध हैं। मन से संबद्ध भक्ति ही रस की कोटि तक पहुंचती है। सूर ने इसी का विशेष निरुपण किया है।

## 1. श्रवण, स्मरण, कीर्तन

इन तीनों में भगवन्नाम का ही महत्त्व है। नाम—महिमा का प्रतिपादन करने वाले सूर ने अनेक पद लिखे हैं। हरि—नाम का प्रभाव ही ऐसा है कि बड़े से बड़ा पापी भी इसका सहारा लेकर भवसागर तर जाते हैं—

**"को को न तरयौ हरि नाम लियें। सुआ पढ़ावति गनिका तारी, व्याध तरो सर घात कियें।**
**प्रभु ते जन—जन ते प्रभु बरतत, जाकी जैसी प्रीति हियें।।**

प्रभु का यशोगान करने से भक्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है। राम नाम का बड़ा सहारा है इसलिए वहीं धन्य है जो राम का गान करता है। हरि—स्मरण के बिना मुक्ति संभव नहीं, उसी से सारे सुखों की प्राप्ति होती है। भगवान् के साक्षात्कार का यही साधन है। सूर कहते हैं कि सौ बातों की एक बात यह है कि दिन—रात भगवान् का स्मरण करना चाहिए—

**'सौ बातनि की एकै बात, सर सुमरि हरि हरि दिन राति।'**

सूर ने इसी प्रकार कीर्तन के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। भगवान् के नाम, गुण, लीला, धाम आदि का प्रेम और श्रद्धा के साथ कथा—पाठ और गान कीर्तन कहलाता है। संगीत—कला विशारद सूर ने कीर्तन में संगीत का घुट देकर नवीनता उत्पन्न कर दी। कीर्तन में गान, वाद्य और नृत्य तीनों ही सम्मिलित हैं। सूर पदों को 'रचते' या 'कहते' नहीं अपितु गाते हैं। "ताते सूर सगुन लीला पद गावै" कहकर वे अपनी संगीतज्ञता का परिचय देते हैं।

सूर को भगवान के लीलागान में ही सच्चे सुख की प्राप्ति होती है। उसी रसना को रसना कहते हैं; जो भगवान के गुणों का कीर्तन करती है और उन्हीं कानों को कान कहते हैं जो हरि कथा का श्रवण कर अमृतरस का पान करते हैं।

भगवान् के गुण, यश, लीला आदि का सुनना सुनाना ही श्रवण—भक्ति है। सूर भगवान् की लीला का वर्णन करके प्रायः अंत में कह दिया करते हैं—

**'जो यह लीला सुनै सुनावै। सो हरिभक्ति पाइ सुख पावै।'** अथवा **'जसे पदस्तुति सुनै सुनावै। सूर सो ज्ञान—भक्ति को पावै।**

सूरसागर में स्थान—स्थान पर इसी प्रकार लीला—श्रवण का माहात्म्य बताया गया है। एक स्थान पर सूर कहते हैं, "मैं रसमयी रासलीला को गाकर सुनाता हूँ। जो रासलीला के रस का गान और श्रवण करते हैं, उनके चरणों में मैं अपना मस्तक नवाता हूँ। मैं एक रसना से लीला के कथन एवं श्रवण के फल का वर्णन करने में असमर्थ हूँ! उसके सामने अष्टसिद्धि और नवनिधि की सुख संपत्ति भी कुछ नहीं हैं। भगवान् की कथा के श्रोता और वक्ता धन्य हैं, क्योंकि भगवान् कृष्ण सदा ही उनके निकट रहते हैं।

## 2. पाद—सेवन, वंदन और अर्चन

यह तीनों प्रकार की भक्ति—साधन भगवान् के रूप में संबंध रखते हैं और पुष्टि संप्रदाय की सेवा—विधि में इनका बहुत महत्त्व है। पाद—सेवन में मूर्ति— पूजा, गुरू—पूजा और भगवद्भक्त पूजा भी सम्मिलित हैं। इन पूजाओं के अनन्तर भक्त में दास्य प्रेम का आविर्भाव होता है, फिर भक्त मानसिक पाद—सेवन की कोटि तक पहुंचता है और भगवान् के अभौतिक चरणों की सेवा करता है। सूर गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी के मंदिर में भगवान् की पूजा करते थे, जिसमें तीनों प्रकार के भक्ति—साधन थे। इनके अनेक पदों में नंद—नंदन—चरणों की वंदना की बात कही गई हैं। सूरसागर के प्रथम पद में ही भगवान् के चरण कमलों की वंदना से प्रारंभ है :—

**"चरन—कमल बन्दौं हरिराइ। जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कुछ दरसाइ।**
**बहिरौ सुनै मूक पुनि बौले, रंक चलै सिर छत्र धराइ। सूरदास स्वामी करुनामय, बार—बार बन्दौं तिहिं पाइ।।"**

भगवान के चरणों का वंदन करके न जाने कितनों जनों का उद्धार हो गया ? सूर कहते हैं—भगवन् मैं आपके कमलरूपी चरणों की वंदना करता हूँ। वे चरण शिव, यमुना आदि के सर्वस्व हैं। जिन चरणों की भक्ति से प्रहलाद भक्त प्रहलाद बनकर मुक्ति को प्राप्त हुआ, अहिल्या, बलि, नृग आदि का उद्धार हुआ, जिनके ऊपर गोपियों ने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया, जिनके प्रसाद से पांडवों के समस्त कार्य सिद्ध हुए और जो तीनों प्रकार के तापों को हरने वाले हैं। सूर अपने मन को संबोधित करके कहते हैं— हे मन! नंद—नंदन के चरणों की सेवा कर जो बड़े सुंदर और पवित्र हैं तथा जिनके प्रसाद से बहुत से पापी मानव तर गए।"

अर्चन के विषय में कहा जा सकता है कि श्रद्धा–सहित भगवान के स्वरूप की उपासना 'अर्चन–भक्ति कहलाती है। 'हरि भक्ति रसामृत सिन्धु' में अर्चन का लक्षण इस प्रकार दिया गया है–

**'अर्चनं तूपचाराणां स्यान्मन्त्रोपपादनम्। परिचर्या तु सेवोपकरणादिपिरिष्क्रिया।।**

वल्लभ–संप्रदाय में अर्चन–भक्ति का बहुत महत्व है और इस संप्रदाय के मंदिरों में आठों पहर की सेवा में अर्चन के पृथक–पृथक रूप विधान हैं। सूर ने भगवान् के विराट् स्वरूप और आरती का मनोहर चित्रण किया है। वंदन और अर्चन दोनों भक्तियों में व्यापार साथ–साथ चलते हैं क्योंकि वंदन में भी भक्त के दास्यरूप की अभिव्यंजना है सूर के दैन्यभाव के पद वंदन के ही पद कहे जा सकते हैं। वह भावुक और भक्त कवि थे, यही कारण है कि उनकी भावुकता वंदना के पदों में शतमुखी होकर प्रवाहित हुई है। आराध्य देव से संपर्क रखने वाली चेतन अथवा अचेतन प्रत्येक वस्तु सूर के लिए वंदनीय है। संबध–निर्वाह की यह भावना श्रीमद्भागवत में स्थान–स्थान पर द्रष्टव्य है।

## 3. दास्य, सख्य और आत्म–निवेदन

ये तीनों मानसिक भाव हैं और भक्ति रस के मूल हैं। प्रेम भक्ति की दो दशाएं होती है–प्रेमावस्था, भावास्था। जब कृष्ण के प्रति भक्त का चिद्विषयक रतिभाव सांद्र हो जाता है। 'रूप गोस्वामी' ने मुख्य रूप से पांच भक्तिरस मानकर इन तीनों भावों को उन्हीं के अन्तर्गत मान लिया है। भक्ति के अनेक मानसिक भाव हैं और वे सभी भगवान् के संबंध से अलौकिक हो जाते हैं परन्तु यह पांच भाव ही प्रधान है।

## 4. शांता भक्ति

'भक्ति रसामृत सिंधु' में भक्ति–विषयक पांचों रसों का सांगोपांग विशद विवेचन हुआ है। सूर ने शास्त्रीय ढंग से कहीं इनका विवेचन नहीं किया। उसमें उनके भक्त–हृदय से उत्पन्न स्वाभाविक उक्तियों में इनके अनेक चिह्न मिलते हैं। शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद हैं, यह तत्वज्ञान से उत्पन्न होता है। वैराग्य, दैन्य, विनय आदि भाव से प्रेरित होकर सूर ने जो पद लिखे हैं उन्हें शांत भक्ति–विषयक पद कहा जा सकता है। संसार के नाना रूपों और व्यवहारों का तिरस्कार और भगवान् की अनुकंपा एवं भक्तवत्सलता का वर्णन करता है तथा अपनी हीनता का परिचय देता है। भक्त के शांत और दास्य दोनों ही भाव समन्वित होकर चलते हैं। उसे संसार में विरक्ति ही नहीं; आत्मग्लानि भी हैं, जिसके कारण वह दुःखी होकर प्रभु को पुकारता है– 'हे नाथ मेरी रक्षा करो' साथ ही साथ वह अपनी उद्योग–हीनता और भगवान की भक्त–वत्सलता का तुलनात्मक विवेचन भी करता है।

सूर ने भक्तों के चरित्र का वर्णन जहां भी किया है वहां भगवान् की भक्त–वत्सलता का भी विवेचन किया है। प्रह्लाद–चरित्र, कालिय–दमन, चीर–हरण, गोवर्द्धन–लीला आदि प्रसंगों में, भगवान की भक्त वत्सलता और भक्त के दैन्य भावों का साथ–साथ अनुपम वर्णन हुआ है।

## 5. सख्य भक्ति

पुष्टि संप्रदाय में सख्य–भाव की भक्ति का बड़ा महत्व है। अष्टछाप के आठों कवियों ने भी सख्य–भाव को ही अपनाया था। सूर के सख्य भाव में यह विशेषता है कि उसमें मनोवैज्ञानिक रूप से मानवीय संबंधों का निर्वाह किया गया है। साथ ही भक्ति–भाव की पूर्ण तल्लीनता और भावात्मकता की अनुभूति भी की गई है। कृष्ण की ओर से सखाओं के प्रति प्रकटित आत्मीयता और घनिष्ठता स्वाभाविक है, जिससे स्नेह की मधुरिमा बाल–सुलभ चापल्य से प्रेरित वाद–विवाद के बाद भी अधिक आस्वाद्य हो उठती है तथा जिसमें क्रीड़ाओं की तरलता के साथ कर्त्तव्य की भावना का गौरव भी स्पष्ट रूप से प्रकाशित होता हैं। सूर का सख्य वर्णन विश्व–साहित्य में बेजोड़ हैं। भगवान कृष्ण स्वयं सखाओं को अपने गौरव से आक्रांत करना नहीं चाहते।

सूरसागर में बाल–लीलाएं, गोचारण–लीलाएं और सुदामा के दरिद्र का विदारण ये तीनों स्थल सख्यभक्ति के हैं। इनमें कृष्ण के कुछ सखा उनसे छोटे हैं; जो उनके स्नेह के पात्र हैं। ये दोनों ही प्रकार के सखा कृष्ण की गोपी–केलियों के सहयोगी नहीं है उनके समव्यस्क सखा ही उनके पूर्ण विश्वास–पात्र हैं, जो उनके साथ सब प्रकार की केलियों में रहते हैं और उनके सभी रहस्यों को जानते हैं। ये समव्यस्क सखा ही भगवान के सच्चे भक्त हैं। इनकी संयोग और वियोग दोनों ही अवस्थाओं का वर्णन कवि ने किया है। इन ग्वाल–बालों के सख्य भाव और उनके प्रति कृष्ण के प्रेम को देखकर ब्रह्मा का गर्व भी नष्ट हो जाता है और वे कृष्ण की स्तुति करते हुए ब्रजवासियों के भाग्य की सराहना करते हैं और स्वयं भी यही कामना करते है कि वे ब्रज में उत्पन्न हों और ग्वालों के जूठे अन्न से उन्हें पेट भरना पड़ें।

उसमें स्वाभाविकता का समावेश है जिसके दर्शन हमें कृष्ण की प्रत्येक अलौकिक लीला से पहले होते हैं। कालिय–दमन, गोवर्द्धन–धारण, वृषभासुर वध आदि लीलाओं के स्थलों पर कृष्ण के सखा उनके अलौकिकत्व को भूले हुए है।

राधा और कृष्ण की गोपनीय लीलाओं से भी ये सखा अनभिज्ञ नहीं थे। स्वयं राधा ने कृष्ण से इस बात की शिकायत की

है कि 'तुम मुझे सखाओं में लज्जा से क्यों मारे डालते हो ?' गोपसखा मोहन की मुरली से भी अत्यंत प्रभावित हैं। मुरली की ध्वनि सुनने के लिए वे लालयित हो उठते हैं और कहते हैं :– **"छबीले मुरली नैंकु बजाउ।"**

संयोग में ही नहीं, वियोग में कृष्ण के मथुरा चले जाने पर और वहां राजा हो जाने पर भी सूर ने सख्य भाव को बनाए रखा है।

## 6. वात्सल्य

सख्य भाव की भक्ति के समान ही सूर की वात्सल्य–भक्ति भी महत्त्वपूर्ण है। वात्सल्य–भक्ति अन्य सभी प्रकार की भक्तियों में उच्च स्थान रखती है, क्योंकि वात्सल्य–भाव में किसी भी प्रकार के स्वार्थ की गंध तक नहीं होती। इसे निष्काम भक्ति का पोषक कहा जा सकता है। सूर का वात्सल्य–भाव विश्व–साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है। सूर ने पुरूष होते हुए भी माता का हृदय पाया था, तो यह कहना असंगत न होगा।

सूर के वात्सल्य वर्णन को संकेतिक करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–

"यशोदा के वात्सल्य में वह सब कुछ है, जो 'माता' शब्द को इतना महिमाशाली बनाए हुए है। यशोदा के बहाने सूर ने मातृ–हृदय का ऐसा स्वाभाविक, सरल और हृदयग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है। माता संसार का ऐसा पवित्र रहस्य है, जिसे कवि के अतिरिक्त और किसी को व्याख्या करने का अधिकार नहीं। सूर जहां पुत्रवती जननी के प्रेमपेलव हृदय को छूने में समर्थ हुए है; वहीं दूसरी ओर वियोगिनी माता के करुणा–विगलित हृदय को भी छूने में समर्थ हुए हैं।"

सूर कहते हैं कि यशोदा में ही वात्सल्य की परिपक्वता है जो भक्ति–रस की कोटि तक पहुंचा है। केवल वात्सल्य ही भक्ति का सर्वशुद्ध भाव है जिसमें न तो विरक्ति की भावना है और न इंद्रिय सुख की कामना ही, लोकधर्म का उल्लंघन इसमें नहीं होता है।

वात्सल्य भाव के आलंबन बालकृष्ण है और उनकी लीलाएं उद्दीपन का कार्य करती हैं और स्वाभाविक होने के कारण आश्रय में भाव की दृढ़ता स्वतः करती जाती है। सूर ने वात्सल्य के दोनों ही संयोग तथा वियोग पक्षों में रखकर यशोदा को देखा है। कृष्ण के मथुरा जाने तक यशोदा में संयोगात्मक भाव की दृढ़ता हो जाती है और मथुरा गमन की सूचना से ही वियोग की अनुभूति प्रारंभ हो जाती है। वह पागल–सी होकर कहती है, 'यह सुफलक सुत हमारा बैरी है, यह हमारी संपत्ति को लूटे ले जा रहा है, अरे ! ब्रज में हमारा कोई हितू है, जो मेरे जाते हुए गोपाल को रोक ले। जब नंद कृष्ण को मथुरा पहुंचाकर वापस लौटे तो यशोदा ही उन्हें लिवाने के लिए सर्वप्रथम पहुंची, क्योंकि उनका अनुमान था कि उनका गोपाल भी नंद के साथ आया होगा। जब उन्होंने नंद को अकेला देखा तो वह उन पर क्रोधित होकर अपनी सुध–बुध खो बैठी। सुत–वियोग–विक्षिप्तता यशोदा की पूज्य पति के प्रति भी वक्तव्यावक्तव्य विचार–मूढ़ता उनके वात्सल्य के उमड़ते ज्वार की सूचक है। उन्हें विश्वास ही नहीं है कि उनके लाल की देखभाल कोई अन्य व्यक्ति कर सकता है ? यह एक शाश्वत, सार्वभौम, मनोवैज्ञानिक तथ्य है जिसकी अभिव्यंजना सूर ने इस पद में बखूबी कर दिखाई है–

**'संदेसो देवकी सौं कहियौ। हौं तो धाइ तिहारे सुत की, दया करत ही रहयौ।**

**× × × × × प्रात होत मेरे लाल लडैंतें, माखन रोटी भावै।**

**तेल उबटनो अरु तातौ जल, ताहि देखि भजि जाते। जोइ–जोइ मांगत सोइ–सोइ देती, क्रम–क्रम करि कै न्हाते।**

**सूर पथिक सुनि, मोहिं रैनि दिन, बढ़यौ रहत उर सोच। मेरौ अलक लड़ैतों मोहन है करत संकोच।'**

इस प्रकार यशोदा के वात्सल्य में सूर ने इतनी तन्मयता और मनौवैज्ञानिकता भर दी है कि कृष्ण के अतिप्राकृत कार्यों को प्रत्यक्ष देखते हुए भी उस भाव में परिवर्तन अथवा विकार नहीं आने पाया। यशोदा के वात्सल्य भाव में हृदय का पूरा संयोग है।

## 7. मधुर–भक्ति

सूर के समकालीन रूप–गोस्वामी ने मधुर–भक्ति–रस का विशद विवेचन किया है। इस भक्ति को वल्लभ–संप्रदाय में स्थान मिला है परंतु इसका शास्त्रीय विवेचन उस समय नहीं हुआ। विठ्ठलनाथ के समय में इस भक्ति को बहुत महत्व दिया गया। युगल–उपासना का महत्व भी संप्रदाय में उन्हीं के समय में बढ़ा। माधुर्य भाव की भक्ति श्रृंगार–प्रेम की भक्ति कही जा सकती है। लौकिक प्रेम के जितने स्वरूप हो सकते हैं, वे सभी मधुर भक्ति में आ जाते है; अंतर केवल इतना है कि लोक से हटाकर उन्हें ईश्वर से जोड़ दिया जाता है। भक्त के मन को ऐंद्रिय विषयों से हटाने के लिये वह एक उत्तम साधन बताया है। इसीलिए मधुर भक्ति के संबंधों में अच्छे–बुरे का ध्यान नहीं रहता। सभी संबंध परमात्मा के साथ हो सकते हैं। लोकपक्ष में जिसे हम श्रृंगार रस कहते हैं; भक्ति–पक्ष में उसे मधुर रस कहते है। आलंकारिकों के मत से अनौचित्यपूर्ण रति में श्रृंगाराभास होता है, जबकि भक्ति रस में औचित्य अनौचित्य का विचार नहीं होता। उसमें स्वकीया भाव के साथ परकीया भाव की रति भी है, एवं संयोग और वियोग दोनों पक्ष भी श्रृंगार रस की भांति हो सकते हैं। भक्ति रस में कांतारूपा प्रीति कामरूपा भी हो सकती है और संबंधरुपा भी। सूर की भक्ति भी ऐसी ही है यही कारण है कि हम भक्त सूरदास की अंतरात्मा का अंतर्भाव राधा में देखते हैं। कृष्ण के प्रति गोपियों का

आकर्षण ऐंद्रिय है, इसलिए उनकी प्रीति को सूर ने कामरूपा माना है। सूर की भक्ति का उद्देश्य भक्त को संसार के ऐंद्रिय आलम्बन से बचाना है, यही कारण है कि उनकी भक्ति–भावना स्त्री- भाव से आपूरित हैं, जिसका प्रतिनिधित्व गोपियां करती हैं। वे कृष्ण में इतनी तल्लीन हैं कि उनकी कामरूपा प्रीति भी निष्काम है। इसीलिए संयोग–वियोग दोनों ही अवस्थाओं में गोपियां का प्रेम एक रूप है। आत्मसमर्पण और अनन्यभाव मधुर–भक्ति के लिए आवश्यक है, जो सूरसागर की दानलीला, चीरहरण और रासलीला में पूर्णता को प्राप्त हुए है।

सूर की विरह संयोग से भी अधिक उज्जवल और प्रबल है। मधुर भक्ति की आश्रयस्वरूपा गोपियां कृष्ण में इतनी तल्लीन हो जाती हैं कि उद्धव द्वारा प्रतिपादित ज्ञान–योग–साधन उन्हें निरर्थक प्रतीत होते हैं और वे उनका परिहास करती हैं। सूर ने ज्ञान, योग, यज्ञ, पूजा आदि की अपेक्षा माधुर्य–भक्ति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।

माधुर्य–भाव की भक्ति का पूर्णतया निरूपण कर सूर ने कृष्ण के संयोग–विप्रयोगात्मक शृंगार–रसरूप इष्टदेव की उपासना को ही प्राधान्य दिया। सूर की भक्ति–भावना उनकी वैराग्य–समन्वित भक्ति–भावना से नितांत भिन्न है। इससे प्रमाणित होता है कि वल्लभ–संप्रदाय में दीक्षित होने के पश्चात् उन्होंने अपना भक्ति–विषयक दृष्टिकोण ही परिवर्तित कर दिया।

सूर पर तत्कालीन वृंदावन के संप्रदायों का भी प्रभाव पड़ा था। चैतन्य संप्रदाय के अतिरिक्त राधावल्लभीय और निंबार्क संप्रदाय में भी युगल उपासना को महत्त्व दिया गया है।

## 8. आत्म–निवेदन

आत्म–निवेदन माधुर्य भाव की अंतिम सीढ़ी है। इसी का एक पक्ष शरणगति है। सूर की भक्ति साधना में शरणगति का बहुत महत्व है। विनय के पदों में सूर की भक्ति–भावना द्रष्टव्य है :–

**'शरण आए की प्रभु लाज धरिए।' 'शरण गये कौ को न उबारयौ।'**

**'सरन अब राखि लै नन्ददाता।' 'सरन परि मन वच कर्म विचारी।'**

सूर ने श्याम के चरणों में आत्म–विनेवदन किया है। आत्म–निवेदन उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति ही किया है।

उन्होंने विद्या, जाति आदि सभी का अभिमान त्याग कर भगवान् को अनन्य भाव से निवेदन है। यही आत्म–निवेदन का शुद्ध परिमार्जित स्वरूप है।

## 9. प्रेमरूपा–भक्ति

यह माधुर्य भाव की भक्ति है और गोपियां उसका प्रतिनिधित्व करती हैं। सूर ने प्रेम–भक्ति की अधिगति नवद्या भक्ति द्वारा ही मानी है। वल्लभ–संप्रदाय में प्रेम–भक्ति का साधन हरिकृपा अथवा प्रभु–अनुग्रह बताया गया है। सूरसागर में सूर प्रेम–भक्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं:–

**'प्रेमभक्ति बिनु मुक्ति न होइ, नाथ कृपा करि दीजै सोइ। और सकल हम देख्यौ जोइ, तुम्हारी कृपा होइ सो होइ।।**

वास्तव में प्रेम की बड़ी महत्ता है। प्रेम से ही ऐहिक और पारलौकिक कार्य सिद्ध होते हैं। इस प्रेम का मूल ही प्रेम ही है। प्रेम से ही प्रेम की उत्पत्ति होती है–

**"प्रेम प्रेम ते होए प्रेम ते पारहिं पइये। प्रेम बंध्यौ संसार प्रेम परमारथ लहिये।**

**एकै निश्चय प्रेम को जीवनमुक्ति रसाल। सांचौ निश्चय प्रेम को जेहि तें मिलें गोपाल।।"**

सूर ब्रजधाम के वास को ही प्रेमभक्ति का फल मानते हैं, जिसके प्राप्त होने पर भक्त को कुछ प्राप्य नहीं रहता और न तो उसकी कोई अन्य कामना रहती है। इस भक्ति के प्राप्त होने पर सूर को भी समस्त संसार कृष्णमय दीख पड़ता था।

सूर की गोपियां उद्धव से कहती हैं–"हमारे मन में कोई स्थान अवशिष्ट नहीं हैं। हमारे हृदय में, नंद–नंदन के होते हुए कैसे स्थान मिल सकता है ? हमारा हृदय कृष्ण के प्रेम से लबालब भरा है। मन दस–बीस तो होते नहीं, एक था सो वह श्याम के साथ चला गया। अब ईश की आराधना–योग की साधना–कौन से मन से की जाय ? प्रेम की गति विचित्र होती है, वह किया नहीं जाता हो जाता है। प्रिय के असाधारण गुणों पर रीझकर प्रेम होता हो ऐसी बात भी नहीं हैं। उससे भी अधिक गुणवान् वस्तु हो सकती है पर वह प्रेमी के हृदय को नहीं लुभा सकती। संसार में कितनी ही सुंदर और मधुर वस्तुएं हो सकती हैं, पर जिस व्यक्ति को जो वस्तु अच्छी लगती है वही उसके लिए सुंदर होती है।

**'दधि मधुरं मधु मधुरं द्राक्षा मधुरा सिताऽपि मधुरैव। तस्य तु तदेव मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्।।'**

यही प्रेम की अनन्यता है जो सूर की गोपियों में देखी जाती है तभी तो वे उद्धव से कहती हैं–

**"ऊधौ मन माने की बात। दाख हुहारा छांड़ि अमृत फल विषकारा विष खात।**

**× × × × × सूरदास जाको मन जासों ताको सोइ सुहात।।"**

सूर का प्रेम किसी भी वाद की झंझा में हिमालय की भांति अटल रह सकता है। उद्धव के लाख बार समझाने पर भी प्रेममयी गोपियों का मानस स्नहेरस से परिपूर्ण लहराता रहा।

प्रेमभक्ति की प्राप्ति का मुख्य साधन हरिकृपा और सत्संग ही है। सूर ने कहा कि भगवान् के सभी अवतार उनकी भक्तवात्सलता और कृपा के प्रमाण है; उनकी कृपा के आगे सब तुच्छ है। जिस पर हरि कृपा करते हैं उसी की जीत होती है, किसी को व्यर्थ अभिमान नहीं करना चाहिए। भक्ति–पथ में साधन--स्वरूप सत्संगति की प्रशंसा और बाधक–रूप कुसंगति की निंदा सूर ने अनेक स्थान पर की है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद का त्याग करने, सांसारिक विषयों से विरक्त रहने, हरिविमुखों का संग छोड़ने, सत्संग और हरिभजन करने आदि का उपदेश सूर के पदों में मिलता है। उनकी प्रेमभक्ति साधना में अष्टांग योग व्यर्थ हैं, मन : कामना बाधक है। सत्संगति के समान ही सदाचार को भी महत्त्व दिया है। सूरसागर में सदाचार की विशेषताओं का महत्त्वपूर्ण स्थान प्रतिपादित किया गया है। गोपियों के संबंध में जो लोक–लाज और कुल–मर्यादा का उल्लंघन है, वह कृष्ण के प्रति अनन्यता स्थापित करने के लिए है, अन्यथा कवि ने अनेक स्थानों पर लोक–व्यवहार और सदाचार की आवश्यकता बताई है।

गोपियां सांसारिकता से बहुत ऊंची उठ चुकी हैं। वे प्रेम–भक्ति की चरमावस्था को पहुंच चुकी हैं। कवि का लक्ष्य उन्हें आत्म–समर्पण की अंतिम कोटि तक ले जाना है, जो प्रेम भक्ति का सर्वोच्च रूप है। सूर की प्रेमरूपा भक्ति अपने आप में पूर्ण है। गोपियों का विरह–प्रेम की उसी पूर्णावस्था का प्रतीक है। वे उद्धव से कहती हैं :–

**'ऊधौ विरहौ प्रेम करै। ज्यौं बिनु पुट पट गहत न रंग कौ, रंग न रसहिं परै।**

**ज्यौं धर दहै बीज अंकुर गिरि तौ सत फरनि फरै।। ज्यौं घट अनल दहत तन अपनौ, पुनि मय अमी भरै।।**

**ज्यौं रन सूर सहै सर सन्मुख, तो रवि रथहु अरै। सूर गुपाल प्रेम पथ चलि करि क्यों दुख सुखनि डरैं।।'**

सूर की भक्ति में सामयिक प्रभाव और मौलिकता का पुट है। सूर की प्रेम–भक्ति साधन नहीं, साध्य है, जिसकी प्राप्ति के पश्चात् कुछ प्राप्य ही नहीं रह जाता। सूर ने अनेक स्थान पर भक्ति प्राप्ति की प्रार्थना की है। सूर की भक्ति में भक्ति के शताब्दियों से चले आते हुए उस रूप का भी दर्शन होता है जो समाज में प्रचलित लोकगीतों और परंपराओं में विद्यमान था।

एक युगजीवी की भांति सूर ने धार्मिक पक्ष में अपने युग का प्रतिनिधित्व किया। उनकी भक्ति में जहां एक ओर विभिन्न वैष्णव–संप्रदायों के सिद्धांतों का समन्वय हुआ है वहीं दूसरी ओर अन्य प्रचलित मत–मतांतरों का प्रभाव दीख पड़ता हैं।

सूर एक विशिष्ट संप्रदाय में दीक्षित भक्त कवि थे। उनके पदों में भक्तिभाव का प्राधान्य है। इनके भक्ति निरूपण में सामयिक प्रभाव एवं मौलिकता का पुट है। रहस्यवादी कवियों की भांति उनकी कल्पना कभी–कभी इस लोक का अतिक्रमण करके आदर्श लोक की ओर संकेत करती हुई दिखाई देती है। सूर की भक्ति अन्तःकरण की प्रेरणा और हृदय की अनुभूति थी। भक्त होने के साथ–साथ वे कवि भी थे; इसलिए उनकी भक्ति में कविसुलभ कल्पना का योग स्वाभाविक ही था। विनोदी प्रकृति के होने के कारण हास्य और व्यंग्य का पुट उनके भक्ति संबंधी पदों में आ गया है और संगीत के प्रकांड पांड़ित्य ने लय, स्वर, तान आदि का उचित ध्यान रख उनके पदों को गेय बना दिया। वे आशुकवि थे और संकीर्त्तनाचार्य भी।

भक्ति और साहित्य के उन्मुक्त वातावरण में सूर की कल्पना ने व्यावहारिक ज्ञान और अनुभव के पंख खोलकर इतनी ऊंची और लंबी उड़ान भरी है कि दर्शकों को कभी–कभी यह आभास हो जाता है कि वह किसी अन्य लोक की यात्रा कर रही है, परंतु सत्य यह हैं कि इतने ऊंचे पर उड़ते हुए भी उसकी दृष्टि सदैव धरा पर ही लगी रही हैं।

# अध्याय 4
# शृंगार वर्णन

शृंगार का क्षेत्र उतना ही व्यापक है जितना कि जीवन का, क्योंकि जिस प्रकार जीवन में अनेक बार उत्थान–पतन, सुख–दुःख, हानि–लाभ के अवसर आते हैं। उसी प्रकार शृंगार के अनेक अवयव मानव में सुख–दुःख के भावों को संयोग तथा वियोग पक्ष में बांधे रखते हैं। जीवन के अधिकांश भाग को यही रस बांधे रखता है। जीवन की व्यापकता एवं उपयोगिता की दृष्टि से शृंगार रस का महत्वपूर्ण स्थान है। सूर शृंगार–वात्सल्य रसों के वर्णन में प्रायः अद्वितीय रहे हैं। इन्होंने अन्य रसों से संबद्ध रचनाएं भी लिखी हैं।

सूर ने दाम्पत्य–रति के अतिरिक्त भगवद्विषयक रति और वात्सल्य रति को भी रस की कोटि तक पहुचाया है और आचार्यों द्वारा प्रतिपादित शृंगार रस–संबद्ध संचारियों के अतिरिक्त अन्य कितनी मनोदशाओं की अभिव्यक्ति कर के शृंगार को रस–राजत्व प्रदान किया है। सूर हिंदी साहित्य के भक्तिकाल के कवि हैं। अपनी परिस्थितियों के कारण उनका विस्तृत और गहन शास्त्रीय अध्ययन न हो सका था, परंतु अपनी प्रतिभा के बल पर, जिस क्षेत्र को भी उन्होंने अपनाया उसका कोना–कोना झाकने में वे समर्थ हो सके। उनकी इस ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा में उनके अभ्यास एवं सहज शक्ति ने बहुत सहयोग प्रदान किया है। लोक के सामान्य अनुभव भी उनके सहायक बनकर आए हैं। पदों की ग्रहणीयता भी उनके क्षेत्र–चयन में सहयोगिनी सिद्ध हुई। ब्रजभाषा का माध्यम भी शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में उन्हें सम्राट की पदवी दिलाने में प्रयत्नशील रहा है। यही सूर का सूरत्व है। वैसे कृष्ण–कथा का प्रचार पांच सहस्त्र से अधिक वर्षों से अनेक वक्ताओं की वाणी से अभिव्यक्ति पाता आ रहा है इस कारण ये पिष्टपेषण सा प्रतीत होता है। सूर ने इसमें भावरस का सम्मिश्रण कर कल्पना के अलौकिक सौंदर्यमयी सफल प्रतिकृति का जनमानस में चित्रांकन किया है। सूर ने मानव हृदय की व्यथा का चित्रण करते हुए कहा है कि हृदय में प्रेम की अनंत उत्ताल तरंगें उठती हैं पर कोलाहल नहीं होता; आंखों में वियोग के काले बादल उमड़ते हैं पर गर्जन नहीं होता, भावों का जमघट होता है परंतु होंठों में स्पंदन नहीं होता। जहां आग्रह के साथ संकोच, औत्सुक्य के साथ संतोष, किशोर चपलता के साथ यौवन की गंभीरता और साधना के साथ साध्य का असीम सामंजस्य द्रष्टव्य होता है।

भगवान् की शील–शक्ति और सौंदर्य–विभूतियों में सूर ने केवल सौंदर्य का ही चित्रण किया है। सूर का वर्ण्य विषय गोपियां हैं क्योंकि इन्हीं दोनों अवस्थाओं से संबंद्ध वात्सल्य और शृंगार रसों की अभिव्यक्ति–बाल्य और यौवन अवस्थाओं के भाव और व्यापारों के चित्रण से ही उन्होंने सरोकार रखा है। उन्हें न समाज से कुछ मतलब था, न लोक मर्यादा का ध्यान। सूर ऐतिहासिक साधक थे। उनकी मथुरा तीनों लोकों से न्यारी थी, जिसमें कृष्ण, गोपियां, उनकी क्रीड़ाएं, बाल–सुलभ चापल्य, नंद और यशोदा का वात्सल्य, मुरली, रास, यमुना, वृंदावन, कालिंदी–तट के निकुंज आदि ही सम्मिलित थे। प्रेम की सांकरी गली में सूर और उनके ब्रज नारी–वल्लभ श्याम के अतिरिक्त कोई अन्य कैसे समा सकता था।

शृंगार रस के दो पक्ष हैं–(1) संयोग शृंगार तथा (2) विप्रलंभ शृंगार दोनों का ही स्थायी भाव प्रिय विषयक रति है। प्रिय से संबंधित वस्तुएं एवं स्मृतियां उद्दीपन विभावों के अंतर्गत आती है एवं रस की स्थिति जिस हृदय में होती है वह आलंबन विभाव होता है।

**(1) संयोग शृंगार**–सूर का संयोग–वर्णन अन्य कवियों के संयोग वर्णन से विशिष्ट है। अन्य कवि अपने नायक नायिकाओं में प्रेम–भावना का विकास समझदारी की अवस्था में दिखाते हैं तथा हृदय की स्वच्छता एवं सरलता का अभाव रहता है परंतु सूर की गोपियों का प्रेम–वर्णन इस प्रकार का नहीं हैं।

इसी संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा हैं :–

'सूर का संयोग–वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं है, प्रेम संगीतमय जीवन की एक गहरी बहती धारा है, जिसमें अवगाहन करने वाले को दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं दिखाई पड़ता।' सूर के संयोग–वर्णन वातावरण पूर्णतया विशिष्टता लिए हुए है–बाल्य जीवन से ही प्राकृतिक उपादानों का सायुज्य प्राप्त करते हुए प्रकृति के विस्तृत प्रांगण में कृष्ण के साथ खेलते–खेलते ही गोपियों की अनुराग–भावना प्रेम में परिवर्तित हो गई थी और बाल्यपन के सखा–सखी युवावस्था में प्रेमी–प्रेमिका के रूप में परिणत हो गए थे। स्वाभाविक रूप से विकसित होने के कारण इसमें किसी प्रकार का छलछिद्र तथा बनावट की गंध नहीं आती। इस संदर्भ में शुक्ल जी की विवेचना उल्लेखनीय हैं–

'इस प्रेम को हम जीवनोत्सव के रूप में पाते हैं, सहसा उठ खड़े हुए तूफान या मानसिक विप्लव के रूप मे नहीं जिसमें कि अनेक प्रकार के प्रतिबंधों और विघ्न–बाधाओं को पार करने की लंबी–चौड़ी कथा खड़ी होती है। ..... सूर के प्रेम की उत्पत्ति में रूपालिप्सा और साहचर्य दोनों का योग हैं।'

संयोग–काल में प्रेमी अपने प्रिय पर पूर्ण अधिकार चाहता है और उसकी क्रियाओं एवं रूप माधुर्य में अपने आपको पूर्णरूपेण निमाज्जित कर देना चाहता है। रूप लिप्सा भी संयोग काल की एक विशेष प्रवृत्ति है सूर रूप चित्रण के धनी हैं। सूरसागर में संयोगवर्णन के अवसर कृष्ण के प्रवास के पूर्व ही आते हैं, जबकि कृष्ण गोपियों के साथ रासलीला, दानलीला, वंशीवादन एवं अन्य प्रकार की क्रीड़ाएं करते थे। वैसे गोपियों के साथ भी कृष्ण के संयोग शृंगार के उदाहरण मिल जाते हैं परंतु विशेष रूप से राध ा के साथ ही उनका प्रेम पुष्ट हो सका है।

संयोगकाल में वियोग के दर्शन नहीं होते हैं परंतु मान वर्णन के समय विरह की किंचित झलक मिलती है। सूर यद्यपि बाह्य चक्षुओं से हीन थे परंतु उनके अंतस् की दिव्य दृष्टि सजग थी उसी दृष्टि के बल से वे अनमोल चित्रण कर हिंदी–साहित्य अनेक चित्र प्रदान कर गए। उनके रूप माधुर्य के चित्र द्रष्टव्य हैं–

**'देखो भाई सुंदरता को सागर। बुधि विवेक बल पार न पावत, मगन होत मन नागर।।'**

बाल्यावस्था से ही पल्लवित होता हुआ प्रेम अचानक नहीं तोड़ा जा सकता, इसलिए सूर की गोपियां कहती हैं :– 'लरिकाई को प्रेम कहो अलि कैसे छूटै।' साहचर्य तो पशु–पक्षी, वन–उपवन, वृक्ष–लता, यहां तक कि ईंट–पत्थर के साथ ही हमारे हृदय में अनुराग उत्पन्न कर देता है।

कृष्ण का सौंदर्य वैसे ही ब्रज में सार्वजनीन चर्चा का विषय था, फिर उनकी कैशौर्यजन्य चपलता और वेणु–वादन–निपुणता ने मिलकर गोपियों पर टोना ही कर दिया। कृष्ण के सौंदर्य का प्रभाव अति व्यापक है। उनके शरीर के प्रत्येक अंग से छवि फूटती है। गोपियां उनके सौंदर्य पर सर्वस्व न्यौछावर करने को प्रस्तुत हैं :–

**'तरुनी निरखि हरि–प्रतिअंग। कोउ निरखि नख–इंदु भूली, कोउ चरण–जुग रंग।**
**कोउ निरखि नूपुर रहि थकि कोउ निरखि जुग जानु। कोउ निरखि जुगजंघ–सोभा करति मन–अनमानु।**
**कोउ निरखि कटि पीत कछनी मेखला रुचिकारि। कोउ निरखि हृदनाभि की छवि उर्‌यौ तन–मन वारि।।**

श्याम के सौंदर्य का वर्णन सूर ने किया उसमें कृष्ण के विशाल लोचन, चारु कपोलों पर डोलते हुए चंचल कुंडल, अरुण अध रों पर थिरकती हुई माधुर्यवाहिनी मुरलिका, नीले मेघ और धूमपटल–सी रोमराजि, कमल–कोमल–चरणः आदि इतने मादक हैं कि इनकी सौंदर्य–सुरा के खुमार में ब्रज–नारियां मत हैं :–

**'तरुनी स्याम रस मत वारि। प्रथम जोबन–रस चढ़ायौ, अतिहि भई खुमारि।**
**दूध नहिं, दधि नहीं, माखन नहीं रीतौ माट। महारस अंग–अंग पूरन, कहां घर कहं बाट।**
**मातु–पितु गुरूजन कहां के, कोन पति, को नारि। सूर प्रभु कै प्रेम–पूरन छकि रही ब्रजनारि।।'**

माखन–चोर कृष्ण को राधा के अलौकिक सौंदर्य की छटा को निहारने का अवसर यमुना के किनारे प्राप्त हुआ, कृष्ण को वहीं राधा का प्रथम दर्शन हुआ :–

**'खेलन हरि निकसे ब्रजखोरी। गये स्याम रवि तनया के तट, अंग लसति चंदन की खोरी,**
**औचक ही देखी तहं राधा, नैन बिसाल भाल दिये रोरी। नील बसन–फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति झकझोरी,**
**संग लरिकिनी चलि इत आवति, दिन थोरी अति छवि तनगोरी। सूर स्याम देखत ही रीझै, नैन–नैन मिलि परी ठगोरी।।'**

राधा भी कुछ कम सुंदरी नहीं थी। उसके अपूर्व सौंदर्य ने कृष्ण को आकृष्ट कर लिया। तब कृष्ण राधा के साथ प्रथम परिचय पाते हैं। इस प्रसंग का वर्णन अत्यंत स्वाभाविक है :–

**'बूझत स्याम कौन तू गोरी। कहां रहति, काकी तू बेटी, देखी नाहिं कबहूं ब्रज खोरी।**
**काहे कौ हम ब्रजतन आवति, खेलति रहति आपनी पौरी। सुनत रहति स्रवननि नंद–ढोटा करत रहत माखन दधि चोरी।**
**तुम्हरो कहा चोरि हम लहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी। सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि बातनि भुरइ राधिका भोरी।।'**

प्रथम परिचय के पश्चात् ही साथ–साथ खेलना, एक–दूसरे के घर आना–जाना और परस्पर कार्य में हाथ बंटाना आदि बातें उस परिचय को प्रेम के रूप में परिणत करने लगीं। हास–परिहास, मनोविनोद और नोंक–झोंक में मंद–तेज, शीत–उष्ण वातावरण में प्रेमरस के मधुर रीति–नीतियों में राधा की प्रेम के पल्लवित पुष्पित होने लगी। यहां तक कि कृष्ण को राधा की गाय भी दुहनी पड़ गई, यह तो मिलन का मार्ग है, इसलिए यहां सब कुछ सह्य है–

**'हाथ धेनु–थन, बदन तिया–तन छीर छांटि छल छोरे।'**

राधा को मजाक सूझी। वह बिगड़ गई, कृत्रिम मान धारण किया और बोली–

**'तुम पै कौन दुहावै गैया। इत चितवत उत धार चलावत, यहै सिखायौ मैया।।'**

इस प्रकार प्रतिदिन पनघट–प्रस्ताव, यमुना–विहार, भरे घर में संकेतों द्वारा वार्तालाप, हिंडोला, रास आदि लीलाएं होती रहीं जिसके द्वारा विकसित होता हुआ वह स्वच्छंद प्रेम रमण के साम्राज्य में जा उतरा। इस प्रकार सूर ने राधाकृष्ण बालक्रीडाओं के वर्णन में न जाने कितने भावों की कल्पना की है। उनका संयोग–वर्णन रीति–कालीन कवियों की भांति गुलगुली गिलमों और गलीचों तक ही नहीं रह गया है, उसमें प्रकृति का अनंत प्रसार है; सीमित संचारियों की कृत्रिम धारा के स्थान पर सरस हृदय का उन्मुक्त भाव–वर्णन है

इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन कितना सत्य है–

'उनकी उमड़ती हुई बाग्धारा उदाहरण रचने वाले कवियों के समान गिनाये हुए संचारियों से बधकर चलने वाली न थी

सूरदास पहले भक्त थे, बाद में कुछ और। उन्होंने जो कुछ कहा है, माधुर्य–भक्ति के आवेश में। उनकी रचनाएं शृंगार–रस से संबद्ध उदाहरणों के उद्देश्य से नहीं लिखी गई। सूर को तो बस इतना ध्यान था कि वे अपने प्रभु के सौंदर्य का गान कर रहे हैं। उन्होंने यह कभी न सोचा होगा कि आगे चलकर उनके साहित्य का क्या प्रभाव पड़ेगा। अथवा उनकी रचनाओं में काव्य शास्त्र के लक्षणों के उदाहरण भी आए है ? इतना जरूर मानना पड़ेगा कि वे जयदेव, विद्यापति आदि भक्त–शृंगारी कवियों से प्रभावित अवश्य थे, अतः अनायास ही उनके मुंह से जो शृंगारमयी उक्तियां निकलीं, उनमें काव्यशास्त्र के अनेक लक्षणों का समन्वय हुआ है

प्रेममार्गी कवियों ने प्रक्रिया के प्रेम की बाधाओं के वर्णन द्वारा प्रेममार्ग की कठिनाइयों का वर्णन किया है। किंतु पुष्टि–सम्प्रदाय में स्वकीया प्रेम को ही प्रश्रय दिया गया है। वल्लभ–संप्रदाय के अनुसार राधा स्वकीया और चंद्रावली परकीया है। सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार सूरदास ने भी स्वीकीया का ही अधिक वर्णन किया है, परंतु परकीया भक्ति के भी अनेक उदाहरण उनकी रचनाओं में मिल जाते हैं। नायिका–भेद के उदाहरण बहुत ही कम द्रष्टव्य हैं। नायिका–भेद में प्रमुख नायिकाएं निम्न हैं :–

**(1) अज्ञात यौवना नायिका**—गोपियों के यौवन–विकसित अंगों की ओर कृष्ण उपमानों द्वारा संकेत करते है, पर उन्हें अभी अपने अंदर इस परिवर्तन की मानसिक अनुभूति नहीं हुई। वे कृष्ण की टेढ़ी बात को समझ नहीं पाती हैं। अज्ञात यौवना नायिका की वय कैशोर्यावस्था होती है जहां किशोरावस्था का अंत एवं युवावस्था का संधि स्थल होता है। नायिका यौवन के आगमन से अवगत नहीं होती है। उनकी उक्ति 'अज्ञात यौवना' की उक्ति प्रतीत होती है :–

**'यह सुनि चकित भई ब्रजबाला। तरुनी सब अपुस में बूझति, कहा कहत गोपाला।**
**कहां तुरग, कहां गज, केहरि, हंस सरोवर सुनियै। कंचन–कलस गढ़ाये कब हम, देखौ धौ यह गुनियै।।'**

**(2) वचन–विदग्धा**—भावों की अभिव्यक्ति में शारीरिक अंगों के तोड़ मरोड़कर अभिनय करने के अतिरिक्त वाणी का प्रमुख महत्व है वचन में व्यंग्य, हास्य एवं पर–पीड़न की अभिव्यक्ति करने वाली नायिका वचन–विदग्धा नायिका कहलाती है। उदाहरण द्रष्टव्य है

**'तब राधा इक भाव बतावत। मुख मुसकाइ सकुचि पुनि सहजहिं, चली अलक सुर झावति।**
**एक सखी आवति जल लीहें, तासौं कहति सुनावति। टेरि कह्यौ मेरैं घर जैहौं, मैं जमुना तैं आवति।**
**तब सुख पाइ चले हरि घर कौं हरि प्रियतमहिं मनावति। सूरज–प्रभु बितपन्न–कोक–गुन, तातैं हरि–हरि ध्यावति।।**

**(3) क्रिया–विदग्धा**—नायक–नायिका को पीड़ित करने हेतु व्यंग्य की अभिव्यक्ति विभिन्न क्रियाकलापों द्वारा करती है। जैसे रोना, हंसना, सिसकना आदि क्रिया–विदग्धा नायिका की विशेषताएं हैं :–

**'स्याम कौ भाव दै गई राधा। नारि नागरिनि काहूं लाख्यौ, कोउ नहीं; कान्ह कछु करत हैं बहुनु राधा।**
**चितै हरि–बदन याकौं हंसत मैं लखी, वै उतहिं गए कछु हरषि कीन्हें। भावते भाव के संग नाहीं सुने, ये महा चतुर चतुराई लीन्हें।**
**आजुहीं रैनि दोउ संग ये मिलैंगे, हरैं कहि परस्पर मनहिं जानी। सूर ब्रजनागरी नारि नागरिनि संग, फिरी ब्रज तुरत लै जगुन पानी।'**

**(4) वासकसज्जा**—वह नायिका है जो स्वयं को सजा–संवारकर अपने घर, बिस्तर, बैठक आदि को भली–भांति सुसज्जित करके प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा में दत्तचित्त होकर बैठ जाती है। इसका अति सुंदर उदाहरण अंकित है :–

**'राधा रुचि–रुचि सेज संवारति। तापर सुमन सुगंध बिछावति, बारम्बार निहारति।**
**भवन गवन करिहैं हरि मेरैं, हरषि दुखहिं निरुवारति। आवैं कबहुं अचानक ही कहि, सुभग पांवड़े डारति।**
**इहिं अभिलाखहिं मैं हरि प्रगटे, निरखि भवन सकुचानी। वह सुख श्री राधा माधौ को, सू उनहिं जिय जानी।।'**

**(5) खण्डिता**—खण्डिता नायिका वह युवती है जिसका पूर्व प्रेम प्रसंग टूट गया हो तथा सतीत्व का विनाश हो चुका हो ऐसी नायिका को खण्डिता नायिका कहा जाता है। कृष्ण के सतीत्व का खंडन करके आए हैं –

**'प्यारी चितै रही मुख पिय कौ। अंजन अधर, कपोलनि चंदन, लाग्यौ काहू तिय को।**
**तुरत उठी दर्पन कर लीन्हें, देखौ बदन सुधारौ। अपनौ मुख उठि प्रात देखिकै, तब तुम कहूं सिधारौं।**
**काजर चंदन, अधर कपोलनि, सकुचे देखि कन्हाई। सूर स्याम नागरि–मुख जीवत, बचन कहयौ नहिं जाई।।**

**(6) मतिनी (सखी की शिक्षा)**—प्रेमी या प्रियतम के किसी कार्य से रुष्ट हुई नायिका खाना– पीना, वार्तालाप आदि का त्यागकर यह अपेक्षा करती है कि उसका प्रेमी उसे मनाए, उसके गुण गाए, उसकी प्रशंसा करे, उससे विनती एवं आत्मनिवेदन कर क्षमायाचना करें। यह मान वास्तविक रूप धारण कर लेता है। ऐसी मानिनी नायिका को मनाने के लिए नायिका की सखी को ही नायक दूतिका के रूप में भेजता है।

**'मन–मन पछितायौ रहि जैहैं। सुनि सुंदरि यह समौ गए तैं; पुनि न सूल सहि जैहैं।**
**मानहु मैन–मजीक प्रेम–रंग, तैसे ही गहि जैहैं। काम हरष, हरेरे हरि अंबर, देखत ही बहि जैहैं।**
**इते भेद की बात सखी री, कत कोऊ कहि जैहै। बरत भवन खनि कूप सूर त्यौं, मदन–अगिनि दहि जैहै।।'**

**(7) उत्कण्डिता**—प्रेम मुख्य रूप से प्रथमतः मानसिक होता है यह मानसिकता शारीरिकता के अभाव में नायिका में स्रवण, दर्शन, स्पर्शन, आलिंगन आदि की प्रबल उत्कण्डा उत्पन्न करता है। ऐसी नायिका को जो अपने प्रेमी या प्रियतम से मानसिकता से जुड़ी हुई भी शारीरिक रूप से कभी मिली नहीं है मिलने की प्रबल आकांक्षा है उत्कण्डिता नायिका कहलाती है।

**'ललिता कौ सुख दै गए स्याम। आजु बसेंगे रैनि तिहारैं, प्रान–पियारी हौ तुम बाम।**
**यह कहिकै अनतहिं पगु धारे, बहु नायक के भेद अपार। सांझ समय आवन कहि आए, सौहं बहुत करि नंदकुमार।**
**वह बैठी हरि–मारग जीबति, इकइक पल बीतत इक जाम। सूर स्याम आवन की आसा, सेज संवारति व्याकुल काम।।'**

**(8) प्रोषित पतिका**—सामाजिक जीवन में जीविकोपार्जन का कार्य मध्यकाल तक पुरूष ही करता था स्त्री जीविकोपार्जन के साधनों से सर्वथा भिन्न रहती थी। कमाई के लिए पुरूष पत्नी या प्रेमिका को छोड़कर दूसरे स्थान पर या विदेश चला जाता है। ऐसी अवस्था में विरह–व्यथित नायिका प्रोषित पतिका कहलाती है, क्योंकि जीविका उपार्जन हेतु उसी ने पति को अन्य स्थान पर जाने के लिए प्रेरित किया है अर्थात् उसी ने पति या प्रेमी को अन्यत्र प्रेषित किया है। इसीलिए प्रोषितपतिका कहलाती है :–

**'बिछुरे री मेरे बाल–संघाती। निकसि न जात प्रान ये पापी, फाटति नाहिन छाती।**
**हौं अपराधिनि दही मथति ही, भरि जोबन मदमाती। जो हौं जानति हरि कौ चलिबौ, लाज छांड़ि संग जाती।**
**ढरकत नीर नैन भरि सुन्दर, कछु न सोह दिन–राती।।**

**(9) विप्रलब्ध**—विप्रलब्धा वह नायिका है जिसे धोखा देकर वचन भंग कर धूर्त और धोखेबाज नायक या प्रेमी ने छला हैं। जिससे वादाखिलाफी की गई हो, जो निराश एवं वंचित रही हो, जिसका प्रिय से समागम न हुआ हो। ऐसी वियुक्त नायिका को विप्रलब्ध या विप्रलब्धता नायिका कहते हैं। मुख्य रूप से वह नायिका जिसका प्रिय उसे वचन देकर भी संकेत स्थल पर न आया हो संकेत स्थल पर न मिलने के कारण दुःखी नायिका को विप्रलब्धा की संज्ञा दी गई है–

**'राधा की चकृत भई मनमाहीं। अबही स्याम द्वार ह्वै झांके, ह्यां आये क्यों नाही।**
**आपु न आइ तहां जो देखै, मिले न नंद–कुमार। आवत ही फिरि गए स्याम–घन अति भयौ विचार।**
**सूनै भवन अकेली मैं ही, नीकैं उझकि निहारयौ। मोते चूकि परि मैं जानी, तातैं मोहिं बिसारयौ।**
**इक अभिमान हृदय करि बैठी, एते पर झहरानी। सूरदास प्रभु गए द्वार ह्वै, तब व्याकुल पछितानी।।'**

**(10) कलहान्तरिता**—स्त्री स्वाभाविक रूप से वाचाल, चतुर एवं कलहप्रिय होती है जो अपने स्वभावानुसार अपने प्रेमी या प्रियतम से भी लड़ाई करने में मौका पाने पर नहीं चूकती/कलह उसका स्वाभाविक गुण बन जाता है। ऐसी नायिका को कलहान्तरिता नायिका कहते हैं–

**'सखि मिलि करौ कहुक उपाउ। मार मारन चढ्यौ बिरहिनि, निदरि पायौ दाउ।**
**हुतासन–धुज जात उन्नत, चल्यौ हरिदिसि बाउ। कुमुम–सर–रिपु–नंद–वाहन, हरषि हरषित गाउ।**
**बार अबकी प्रानप्रीतम, विजय सखा मिलाउ। रति विचारि जु मान कीन्हौ, सोउ बहि किन जाउ।**
**सूर सखि सुभाउ रहिहौं, संग सिरोमनि–राउ।'**

सापत्न्य डाह का प्रसंग भी इसी संयोग वर्णन में आता है। प्रेमी अपने प्रिय पर पूर्ण अधिकार चाहता है। गोपियों के भाव मुरली, प्रवास होने पर कुब्जा के प्रति प्रकट हुए हैं। सूर के संयोग वर्णन के अंतर्गत सौंदर्य तथा विस्तृत प्रेम क्रीड़ाएं दर्शनीय हैं –

**'सूरदास कछु कहत न आवे गिरा भई गति पंग।'**

इससे यह सुनिश्चित हो जाता है कि सूर द्वारा वर्णित संयोग क्षणिक घटना न होकर संगीतमय जीवन की प्रवहमान धारा है।

ब्रज में श्याम और गोपियों का संपूर्ण वांड्मय क्रीड़ामय है–वह जीवंत संयोग शृंगार है। संयोगी की विशेषताओं का वर्णन करते हुए डॉ० मुंशीराम शर्मा ने लिखा है–

"शृंगार के अंतर्गत भाव तथा विभाव दोनों पक्षों के अत्यंत अनूठे और विस्तृत वर्णन सूरसागर में मिल जाते हैं। सूरदास के संयोग शृंगार वर्णन में भाव पक्ष और विभाव पक्ष की विशेषताओं का उद्‌घाटन आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अधिक सूक्ष्मता के साथ किया है।

'भ्रमरगीतसार' की भूमिका में उन्होंने लिखा है कि, 'संयोग पक्ष के अंतर्गत विभावों की परिपूर्णता, कृष्ण और राधा के अंग प्रत्यंग की शोभा के अत्यंत प्रचुर और चमत्कारपूर्ण वर्णन में तथा वृंदावन के करील कुंजों की लोनी लता, हरे–हरे कदारों, खिली हुई यमुनी कोकिल कूजन में देखी जाती है, अनुभावों और संचारियों का अति व्यापक चित्रण सूर के काव्य के अलावा और कहां मिलेगा ?" निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सूर ने संयोग–सुख के जितने प्रकार के क्रीड़ा–विधान हो सकते हैं वे सब उन्होंने सूरसागर में लाकर एकत्रित कर दिए हैं।

सूर का संयोग शृंगार वर्णन रस की दृष्टि से सर्वथा सांगोपांग एवं परिपूर्ण है शास्त्रीय कसौटी पर वह पूरी तरह खरा उतरता है। वह इतना पूर्ण एवं श्रेष्ठ है कि परवर्ती कवियों के कहने के लिए उसमें कुछ शेष नहीं रह गया। इतना अवश्य है कि उनमें समय के प्रभाव के कारण कहीं–कहीं वासना की गंध आ गई है।

**(2) विप्रलंभ शृंगार**–संयोग की अपेक्षा वियोग–शृंगार को कवियों ने अधिक उच्च स्थान दिया है क्योंकि जहां सयोग में प्रिय सान्निध्य से प्राप्त सुख हृदय की अनेक सात्विक वृत्तियों को तिरोहित किए रहता है; वहां वियोग उन्हें उद्‌बुद्ध कर भावों के प्रसार के लिए समस्त विश्व का क्षेत्र खोल देता है। संयोग में प्रेमी–युगल एकांत चाहते हैं उन्हें अन्य की सहानुभूति की आवश्यकता नहीं रहती, पर वियोग में उनकी आत्मा का प्रसार हो जाता है और वे प्राणिमात्र के साथ ही नहीं जड़ पदार्थों के साथ भी तादात्मय स्थापित कर लेते हैं।

**'विरह प्रेम की जाग्रत गति है और सुषुप्ति मिलन है।'**

प्रसाद के ये शब्द वियोग के भाव को प्रकट करने में समर्थ हैं। प्रथम प्रेम करना ही कांटों के पथ पर चलना है क्योंकि इस पर चलकर सांसारिक लोक–लाज एवं मर्यादा का परित्याग करना पड़ता है उस पर जब वियोग काल होता है तब वह तलवार की धार पर ही चलने के समान है। वियोग को प्रेम का सजग प्रहरी कह सकते हैं क्योंकि इसी समय प्रेम की वस्तुस्थिति का यथार्थ ज्ञान हो पाता है। वियोगी व्यक्ति अपनी स्थिति को भूलकर उस सामान्य भावभूमि पर आ जाता है, जहा से उसकी दृष्टि में रंक छोटी छोटी वस्तुओं की सत्ता पर पड़ती है। उसके हृदय की अनुभूति रेचन का साधन न मिलने के कारण घनीभूत और तीव्र होती चली जाती है। समस्त संसार में उसे उसका प्रिय ही दिखायी पड़ता है। इसी भाव के कारण सहृदय कवियों ने सयोग की अपेक्षा वियोग को ही अधिक महत्व दिया है। इस काल में भावों का पूर्ण परिष्कार हो जाता है, कपटी प्रेम कलई की भांति अलग हो जाता है इसीलिए वियोग काल को प्रेम–परीक्षा–काल कहते है।

विप्रलंभ शृंगार के चार भेद हैं–पूर्वराग, मान, प्रवास एवं करुण।

पूर्वराग वियोग शृंगार मिलने से पूर्व का वियोग माना जाता है। मिलन की अवस्था में जब नायक–नायिका रुष्ट हो जाते हैं तो मान वियोग होता है। नायक जब विदेश चला जाता है, तब प्रवास विप्रलंभ–शृंगार होता है। मिलन के पूर्व, मिलन के मध्य तथा मिलन के पश्चात् प्रत्येक स्थिति में विप्रलंभ शृंगार की संभावना एवं स्थिति रहती है। विप्रलंभ शृंगार की स्थिति के लिए दृढ़ स्थायी भाव का होना आवश्यक है अथवा नायक–नायिका परस्पर अनुरक्त होने चाहिए। पूर्वराग, मानप्रवास एव विरोह अलग स्थिति मे नायक–नायिका को पृथकत्व की वेदना का अनुभव होना चाहिए।

वियोग सात्विक अवस्था है, जिसमें मानव हृदय से दुराव का आवरण हट जाता है और वह अपने स्वाभाविक निर्मल रूप में उक्तियों के साथ लिपटा चला जाता है। पशु–पक्षियों और लता–पादपों के साथ संबंध जोड़ने की प्रेरणा देने वाला यह भाव अन्य है। इसी दशा में कालिदास के यक्ष ने अपनी प्रियतमा को संदेश भेजने के लिए आषाढ़ के प्रथम मेघ को रोक लिया। नायक की रूपगर्विता नागमती ने भौरों और काग के हाथों प्रिय को 'संदेशड़ा' भेजने का विचार किया और तुलसी ने राम 'खग मृग और मधुकर श्रेणी' से सीता का पता पूछते फिरते हैं। शृंगार को रसराजत्व प्रदान करने वाला तत्व वियोग ही है क्योंकि सयोगजन्य सुख के सदृश उथलापन नहीं रहता, अपितु अनुभूति की गहनता रहती है।

संयोग–शृंगार के समान वियोग का भी सूर ने व्यापक वर्णन किया है। कृष्ण के चलने के समय ब्रज–युवतियों को वेधक तन्मय जड़ता घेर लेती है। उसके पश्चात् उनके वियोग में गोपियों की दशा दयनीय हो जाती हैं। उनका समय कृष्ण की क्रीड़ाओं के वर्णन में व्यतीत होता है। ब्रज में सब कुछ पहले की भांति है लेकिन कृष्ण के न होने से वह ब्रज भी सूना लगता है।

गोपियों के वियोग की तीव्र अनुभूति अक्रूर के ब्रज आगमन से प्रारंभ होती है। यही विरह तीव्र से तीव्रतर होता गया है। कृष्ण मथुरा चले गये और वहीं रह गए। गोपियां उनके आगमन की प्रतीक्षा करती रहीं। जैसे ही कृष्ण की आकृति–प्रकृति के स्थान पर निराकार–ब्रह्म की आराधना का संदेश लेकर ब्रज में पधारे तो अवसर पाते ही उनका विरह ज्वालामुखी के रूप में फूट पड़ा। वियोग का यही अजस्र–प्रवाह भ्रमरगीत के नाम से प्रख्यात है।

भ्रमरगीतसार सूर की विप्रलंभ रस प्रधान रचना है। इसमें श्रीकृष्ण और गोपियों के वियोग का वर्णन है। इसमें गोपियां कृष्ण वियोग में रोती रहती हैं। श्रीकृष्ण उद्धव को गोकुल–वासियों को सांत्वना देने के लिए भेजते हैं। गोपियों को उद्धव ज्ञान–योग का उपदेश देते हैं और कहते हैं कि वे व्यर्थ ही माया–मोह के वशीभूत होकर श्रीकृष्ण के वियोग में दुःखी हैं। गोपियां उनकी एक भी बात नहीं मानती हैं। भ्रमर को लक्ष्य करके वे उद्धव और श्रीकृष्ण को जी भरकर उपालंभ देती हैं और अपने हृदय की समस्त वियोग व्यथा उड़ेल देती हैं। उद्धव गोपियों के प्रेम द्वारा पराभूत हो जाते हैं और अश्रुपूरित नेत्रों से मथुरा वापिस आ जाते हैं। इसी विषय का सूरदास ने भ्रमरगीत काव्य में प्रणयन किया है। इसमें एक ओर गोपियों के विरह का सांगोपांग वर्णन है और दूसरी ओर निर्गुण के ऊपर सगुण की तथा ज्ञान के ऊपर भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है।

कृष्ण जानते है कि गोपियां उनके वियोग में विरह–सरिता में डूब रही हैं। इधर वह उद्धव का भी हित साधन करना चाहते हैं और उद्धव को ब्रज–गमन के लिए प्रेरित करते हैं–

**'यह मत दे गोपिन कह आबहु बिरह नदी में भासति। सूर तुरत यह जाय कहौ तुम ब्रह्म बिना नहिं आसित।।'**

'भ्रमरगीत' में सूर ने विरह की समस्त दशाओं का सजीव उद्‌घाटन किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यहां तक लिख दिया है कि 'न जाने कितने प्रकार की मानसिक दशाएं ऐसी मिलेंगी जिनके नामकरण तक नहीं हुए।

सूर ने वियोग वर्णन में अत्यंत ही मार्मिक भावों से अभिव्यक्ति कर ब्रजबालाओं की दशा का वर्णन करते हुए लिखा हैं :–

**'विचारत ही लागे दिन जान। तुम बिनु नंद–सुवन इहिं गोकुल, निसि भइ कल्प समान।**
**मुरलि सब्द, धुनि की गुंजनि, सुनियत नाहीं कान। चलत न रथ गहि रही स्याम कौ अब लागी पछितान।**
**है कोउ जाय कहै माधौ सौं, धीरज धरहि न प्रान। सूरदास प्रभु तुम्हरे दरसन विनु फुरत नहीं औसान।।'**

गोपियां अपना सर्वस्व कृष्ण पर न्यौछावर कर बैठी थी। उनके वियोग में उनका तन, मन, यौवन सब विषधर की फुंकार के समान है। कालिदास के 'प्रियेषु सौभाग्य फला हि चारुता' के अनुसार रमणी का सौंदर्य और शृंगार प्रिय को लुभाने के लिए ही होता है। जब प्रिय ही नहीं तो शृंगार ही कैसा ?

**प्रकृति का उद्‌दीपन विभावान्तर्गत वर्णन**–मानव हृदय के भावों का प्रकृति के साथ सभी भारतीय कवियों ने सामंजस्य स्थापित किया है। वह मनुष्य के सुख–दुख में हंसती रोती है। पाश्चात्य आलोचक चाहे इसे 'पैथेटिक फैलैन्सी' कहकर अनुपयुक्त ही मानें, परंतु जड़ और चेतन जगत् की एक ही ब्रह्म से उत्पत्ति मानने वाले भारतीय मनीषी उनमें अभेद देखते हैं। कृष्ण की उपस्थिति में जो वस्तुएं प्रिय एवं सुखदायक लगती हैं; वे ही अब उनके वियोग में दुःखदायी लगने लगती हैं। जो वस्तुऐं उन्हें शीतलता प्रदान करती थी; वे ही अब काट खाने को दौड़ती हैं। विप्रलंभ शृंगार का यह उद्दीपन विभाव सूर के वियोग–शृंगार की अनुपम देन है। यही कारण है कि वियोगिनी गोपियों को यमुना नदी भी कृष्ण के वियोग–ज्वर से काली पड़ी हुई दिखाई पड़ती है। विरह–तृप्ता यमुना का मानवीकरण रूप देखते ही बनता है।

**'देखियत कालिंदी अति कारी। अहौ पथिक कहियौ उन हरि सौं, भयी बिरह जुर जारी।**
**गिरि–प्रजंक तैं गिरति धरनि धंसि, तरंग तरफ तन भारी। तट बारु उपचार चूर, जल–पूर प्रस्वेद प्रनारी।**
**बिगलित कच कुस कांस कुल पर पंक जू काजल सारी। भौंर भ्रमत अति फिरति भ्रमित गति, निसि दिन दीन दुखारी।**
**निसि दिन चकई पिय जु रटति है, भई मनौ अनुहारी। सूरदास–प्रभु जो जमुना गति, सो गति, भई हमारी।।'**

कृष्ण के वियोग में गोपियों की दशा चिंतनीय हो जाती है। कृष्ण की उपस्थिति में जो वस्तुएं उन्हें सुख का अनुभव कराती हैं, वियोग में वही सब दुःख अनुभूति कराने लगती हैं। विप्रलंभ शृंगार का यह उद्दीपन विभाव विधान विशेष दर्शनीय है जो सूर की देन हैं –

**'बिनु गुपाल बैरिन भईं कुंजैं। तब वै लता लगति अति सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं।**
**बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल–फूलनि अलि गुंजैं। पवन, पान, घनसार, सजीवन, दधि–सुत किरनि भानु भईं भुंजैं।**
**ऊधौ! कहियौ माधौ सौं, मदन मारि कीन्हीं हम लुंजैं। सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, मग–जीवत अंखियां भईं भुंजैं।।'**

गोपियां कहती हैं कि मधुबन अब भी हरा–भरा खड़ा है। वही मधुबन, जिसने गोपी–वल्लभ की अगणितं क्रीड़ाओं का साक्षात्कार किया था, जिसके निकुंज कृष्ण की वंशी के मधुर स्वर के साथ कामिनी–कलकंठों से निर्गत कोमल ध्वनियों से गूंजते रहते थे, जिस के हृदय में रासकर्त्ता मोहन के पदचिह्न आज भी बने हुए हैं, कृष्ण के वियोग में गोपियों का साथी न बना। साथी वही है, जो दुःख में साथ दें। सुख में तो कोई भी साथ दे सकता है। मधुबन की यही विषमता गोपियों के विरह को और बढ़ाती हैं और वह उसे कोसने लगती हैं –

**'मधुबन तुम क्यों रहत हरे। बिरह बियोग स्याम सुंदर के, ठाढ़े क्यों न जरे।**
**मोहन बेनु बजावत द्रुम तर, साखा टेकि खरे। मोहे थावर अरु जड़ जंगम, मुनि जन ध्यान टरे।**
**वह चितवनि तू मन न धरत है फिरि फिरि पुहुप धरे। सूरदास प्रभु बिरह दावानल, नख सिख लौं न जरे।।'**

विरह की अवस्था में चित्त स्थिर नहीं रहता। अतः एक ही वस्तु कभी अनुकूल और कभी प्रतिकूल दिखाई पड़ने लगती है। अभी-अभी जो यमुना गोपियों को अपने ही समान विरह जुर जारी लग रही थी, अब यम के समान लगने लगी क्योंकि वह गोपियों और कृष्ण के बीच में बाधा बनकर बह रही है। विरह–जन्य–चित्त–विनम्र के अभिव्यंजन में कवियों ने प्रायः ऐसी ही उक्तियों का सहारा लिया है–

**'मो कौं माई जमुना जम ह्वै रही। कैसैं मिलौं स्याम सुंदर कौं बैरिनि बीच बही।'**

जाग्रतावस्था की तो बात ही क्या है–हमेशा रोते ही बीतता है। स्वप्न में भी कृष्ण का विरह उनके कलेजे में कसकता रहता है। न जागते चैन है, न सोते। वस्तुतः उन्हें नींद आती ही नहीं हैं। दुःख के दिन को तो वे किसी भांति व्यतीत कर लेती हैं परंतु विरहागम रात्रि तो रो–रोकर ही कटती है–उनकी व्यथा को कौन जाने ! वे रात को सोती हैं अथवा बैठी हुई रोती रहती हैं।

**'हमकौं सपनेऊ में सोच। जा दिन तैं बिछुरे नंद–नंदन ता दिन ते यह पोच।**
**मनु गुपाल आए मेरे गृह हंसि करि भुजा गही। कहा करौं बैरिनि भई निंदिया निमिष न और रही।।'**

विरह की उद्दीपकता में गोपियों को संपूर्ण प्रकृति विरह में जलती प्रतीत होती हैं। इसी प्रकार चातक भी कभी उन्हें जीवनदाता और कभी विरहिणी नारी के रूप में दिखाई पड़ता है, कभी जली हुई को और जलाता हुआ ज्ञात होता है। पी–पी रटने वाला बेचारा चातक स्वयं विरह में काला पड़ गया। पपीहा भी प्रिय का नाम ले रहा है, कभी वे उसकी तरफ स्नेह या सहानुभूति प्रदर्शित करती हुई कहती हैं–

**'बहुत दिन जीवौ पपिहा फारौ। बासर रैनि नाम लै बोलत, भयौ विरह जुर कारौ।**
**आपु दुःखित जानि जिय, चातक नाम तुम्हारौ। सूरदास प्रभु स्वाति बूंद लगि, तज्यौ सिंधु करि खारौ।।'**

और कभी–कभी उसकी उद्दीपक 'पी–पी' की वाणी सुनकर वे तिलमिला उठती हैं और उसकी अदूरदर्शिता पर उसे उलाहना देती हैं–

**'विरह जरी रे तू कत जारत। रे पापी तू पंखि पपीहा पिय–पिय करि अधराति पुकारत।'**

**आत्यंतिक विरह–वर्णन**–कृष्ण जब से मथुरा गए हैं, तब से गोपिकाओं के नेत्रों में पावस ने स्थायी निवास बना लिया है। उनकी आंखें रात–दिन श्रावण–भादों के रूप में बरसती रहती हैं नयनों की नदी बढ़ी है जो पलक कणों को डुबाए जाती है। एक क्षण को भी आंसू बंद नहीं होते हैं। पद में इस प्रकार की लाक्षणिक व्यंजना द्वारा अत्यधिक विरह की व्यंजना अनायास ही हो जाती है–

**'निसि दिन बरषत नैन हमारे। सदा रहति बरषा रितु हम पर, जब तैं स्याम सिधारे।**
**दृग अंजन न रहत निसि बासर, कर कपोल भए कारे। कंचुकि–पट सूखत नहिं कबहूं, उर बिच बहत पनारे।**
**आंसू सलिल सबै भइ काया, पल न जात रिस टारे। सूरदास प्रभु यहै परेखौ, गोकुल काहैं बिसारे।।'** तथा–
**'तुम्हरे बिरह ब्रजनाथ, अहो प्रिय! नयनन नदी बढ़ी। लीने जात निमेष–कूल दोउ, एते मान चढ़ी।।'**

सूरदास ने इस प्रकार के मर्मस्पर्शी विरह–वर्णनों की एक माला–सी पिरोकर दी है। इस माला का प्रत्येक पुष्प समान रूप से मोहक है।

गोपियों की विरह–व्यथा कहीं–कहीं सहन शक्ति की सीमा को पार कर जाती हैं।

गोपियों की विरह–व्यथा इतनी गहन गंभीर है कि उसके द्वारा उद्धव सदृश ज्ञानी भी पराभूत हो जाते हैं। वे गोकुल से लौटकर श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते हैं–

**दिन दस घोष चलहु गोपाल। गैयन की अवसेर मिटावहु भेंटहु भुज भरि ग्वाल। नाचत नहीं मोर ता दिन तें आए बरसा काल।'**

सूर का विरह–वर्णन हिंदी–साहित्य में बेजोड़ है। भ्रमरगीत में गोपियों के तर्क के सामने उद्धव भले ही कुछ उत्तर न दे सके पर उनके प्रेम विह्वल अटपटे वचनों से उन्हें ही हार माननी पड़ी। उनकी प्रेम–रस धारा में उद्धव के ज्ञान की गुरू–गंभीरता न जाने कहां बह गई ? इस प्रसंग में गोपियों की अन्तर्दशा का जैसा वर्णन सूर ने किया है, अन्यत्र दुर्लभ हैं।

कृष्ण के वियोग में ब्रजवासियों की दशा दयनीय हो गई। कृष्ण ने अद्वैत का राग अलापने वाले ज्ञानी उद्धव को गोपियों को समझाने के लिए भेजा और उन्हें योग–साधना का संदेश दिया। उद्धव को योग–साधना के संदेश–वाहक के रूप में भेजने का विशेष कारण था उनके ज्ञानरूपी अहंकार को समाप्त करना क्योंकि वे भगवान कृष्ण के प्रिय थे। भला भगवान अपने प्रिय का अहंकार जैसे घातक शत्रु से आक्रांत कैसे देख सकते थे। उन्होंने उस अहंकार को दूर करने के प्रयोजन से गोपियों के समीप भेजा। उद्धव ने कृष्ण का संदेश और पाती गोपियों को दी–

**'कह्यौ तुमकौं ब्रह्म ध्यावन, छांड़ि विषय–विकार। सूर पाति दई लिखि मोहि, पढ़ौ गोपकुमारि।'**

प्रिय–प्रेषित वस्तु के दर्शन से हृदय में प्रेम का अंतःस्त्रोत फूट पड़ता है और वियोगावस्था में घनीभूत अनुभूति सात्विक भावों के रूप में विकास पाती है। कृष्ण की पत्रिका प्राप्त कर गोपियां निहाल हो जाती हैं और प्रेम के अतिशय संचार के कारण उद्धव की पहली बात को भूल जाती हैं। कृष्ण की पाती उनके लिए अपूर्व संपत्ति है, जिसे प्राप्त कर वह फूली नहीं समाती है। अहोभाग्य

का मंथन करने वाले सूर ने गोपियों की इस मानसिक दशा की अभिव्यक्ति के लिए प्रभावपूर्ण अनुभव कल्पना की है–

**'निरखति अंक स्याम सुंदर के बार बार लावति छाती। लोचन–जल कागद–मसि मिलि कै ह्वै गई स्याम स्याम की पाती।।'**

कृष्ण से संबंध विच्छेद कराने की चेष्टा कराने वाले उद्धव के प्रति झल्लाहट उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है चाहे वह प्रिय का कितना ही प्रिय क्यों न हो। उद्धव के कृष्ण को त्याग देने का उपदेश निर्गुण उपासना को सुनकर गोपियां झुंझला उठी। इस झुझलाहट को व्यक्त करने के लिए सूर ने भ्रमर की कल्पना की, जो उड़ता हुआ गोपियों और उद्धव के निकट जा निकला। फिर तो गोपियों ने भ्रमर के बहाने उद्धव के ऊपर व्यंग्य बाणों की खूब वर्षा की। भला उन्हें निर्गुण से क्या लेना ?

**'रहु रे मधुकर मधु मतवारे। कौन काज या निरगुन सौ चिर जीवहु कान्ह हमारे।'**

अंतिम शब्दों में मानो गोपियों का चिरसंचित प्रेम मुखरित हो उठता है। प्रेम की उच्च अनुभूति में स्वार्थ, वासना आदि की गंध तक नहीं रहती, केवल प्रिय के हित की कामना होती है, वह चाहे जितना निष्ठुर हो, चाहे जितना अन्याय करे, चाहे सुधि तक न ले, परंतु प्रेमी यही चाहता है–

**'जहां रहौ तहं कोटि बरष लगि जियौ स्याम सुख सौं ही।'**

अभी–अभी जो गोपियां कृष्ण और उद्धव को खरी–खोटी सुना रही थीं संयोग–घटनाओं की स्मृति में उद्दीप्त वियोग–संताप में उनकी दशा कितनी शोचनीय हो गई है। वे दीनतापूर्वक कृष्ण के दर्शन की याचना करती हैं। उन्हें और कुछ अभीष्ट नहीं –

**'ऊधौ हमरौ दोष नहिं कछु, वै प्रभु निपट कठोर। हम हरिनाम जपति हैं निसदिन, जैसे चंद–चकोर।**
**हम दासी बिन मोल की ऊधौ, ज्यौं गुड़िया बिनु डोर। सूरदास प्रभु दरसन दीजै, नाहीं मनसा और।।'**

अतीत की मधुर स्मृति से विह्वल गोपिकाओं के मानस से विप्रलंभ रस की जो निर्मल धारा बही, उसमें उद्धव के ज्ञान का अहंकार–मैल धुल गया। गोपियों को कुछ नहीं सुहाता। जिसे प्रेम–बाण की कठिन चोट लगी ही नहीं, वह उनका दुःख–दर्द क्या जाने ? अंधे के आगे रोने से क्या लाभ ? वे अनेक प्रकार से अपनी दीनदशा का वर्णन करती हैं और अंत में उद्धव के दास कृष्ण को अपनी पत्रिका और संदेश भेजती हैं–

**'ऊधौ इक पतिया हमारी लीजै। चरनि लागि गोबिंद सौं कहियौ, लिखौ हमारौ दीजै।**
**हम तौ कौन रूप गुन आगरि, जिहिं गुपाल जू रीझै। निरखत नैन नीर भरि आए, अरु कंचुकि पट भीजै।**
**तलफत रहति मीन चातक ज्यौं, जल बिनु तृषा न छीजै। अति व्याकुल अकुलाति विरहिनी, सुरति हमारी कीजैं।**
**अंखिया खरी निहारति मधुबन, हरि बिनु ब्रज विष पीजैं। सूरदास प्रभु कबहि मिलेंगे, देखि देखि मुख जीजैं।।'**

गोपियों की अभिलाषा यही है कि कृष्ण उन्हें याद करते रहें। नैराश्यपूर्ण प्रेमी हृदय के संतोष का यह कितना सूक्ष्म और दृढ़ आधार है। यद्यपि प्रेमी के लिए प्रिय का वियोग असह्य होता है और वह सर्वदा उसे अपने साथ देखना चाहता नहीं चाहता। यदि कहीं दुःखमय स्थान पर उसे रहना पड़े तो वह अकेला रहकर वियोग जनित असह्य पीड़ा को सहने के लिए तैयार हो जाता है किंतु अपने प्रिय को उस स्थान के दुःखों में डालना नहीं चाहता। गोपियां कृष्ण के दर्शन के लिए तड़पती हैं फिर भी यह नहीं चाहती कि वे वियोगी ब्रज की विषम परिस्थिति से उद्भूत दुःख में पड़ें।

सूर के वियोग–वर्णन की पूर्णता देखे ही बनती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल की सम्मति है– 'वियोग की जितनी अंतर्दशाएं हो सकती हैं, जितने ढंगों से उन दशाओं का साहित्य में वर्णन हुआ है और वे सामान्यतः हो सकता है, वे सब उसके भीतर मौजूद हैं।' रीति आचार्यों ने विरह की एकादश अवस्थाओं का उल्लेख किया है–(1) अभिलाषा, (2) चिंता, (3) स्मरण, (4) गुण कथन, (5) उद्वेग, (6) प्रलाप, (7) उन्माद, (8) व्याधि, (9) जड़ता, (10) मूर्च्छा और (11) मरण।

**(1) अभिलाषा**–विरहावस्था में प्रिय से मिलने की इच्छा को ही अभिलाषा कहते हैं। अभिलाषा में उत्तरोतर वृद्धि होती रहती है। जिसकी समाप्ति पर विरह की दूसरी अवस्था आ जाती है।

**'ऐसे समय जो हरि जू आवहिं। निरखि निरखि वह रूप मनोहर, नैन बहुत सुख पावहिं।**
**कबहुंक संग जु हिलि मिलि खेलहिं, कबहुंक कुंज बुलावहिं। बिछुरे प्रान रहत नहिं घट मैं, सो पुनि आनि जियावहिं।**
**अबकैं चलत जानि सूरज–प्रभु, सब पहिलैं उठि धावहिं।।'**

**(2) चिंता**–प्रिय मिलन में विलंब होने से मन अनेक प्रकार के विकल्पों में उलझ जाता है। आशा का स्थान आशंका ले लेती है। उसे यह विश्वास नहीं रह जाता है कि आगामी भविष्य में मिलन सुख की प्राप्ति संभव हो सकेगी। विभिन्न प्रकार के अवसादक

चिंतन का नाम ही चिंता है। देव लोकवासी मनु जलप्लावन के परिणामस्वरूप, इसी चिंता के शिकार हो जाते है कामायनी का प्रथम सर्ग का नामकरण विरह की द्वितीयावस्था के आधार पर किया गया है–

**'ऊधौ अंखियां अति अनुरागी। इक टक मग जीवतिं अरु रोवतिं, भूलेहूं पलक न लागी।**
**बिनु पावस पावस करि राखी, देखत हौ बिदमान। अब धौं कहा कियौ चाहत हौ, छांड़ौ निरगुन ज्ञान।।**

**(3) स्मरण**–संयोगावस्था में हुए विभिन्न क्रियाकलापों तथा उनकी वस्तुस्थिति स्मृतियों संचारी भाव के रूप में वेराहगी को उद्वेलित करती रहती हैं। उसे सुषुप्तावस्था से जाग्रतावस्था में अवस्थित कर देती हैं। इसी दृष्टि से उसकी यादाश्त बलवान रूप धारण करती चली जाती है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए विरह को जाग्रत एवं संयोग का सुषुप्तावस्था कहा गया है सुषुप्तावस्था की घटनाएँ जागृतावस्था में दुःखदायी रूप धारण कर लेती हैं। यह स्मरण वियोगी को दुःख देता है-

**'मेरे मन इतनी सूल रही। वे बतियां छतियां लिखि राखीं, जे नंदलाल कहीं।।'**

**(4) गुण कथन**–प्रेमिका को प्रेमी के दोष भी गुण स्वरूप प्रतीत होते हैं अर्थात् प्रिय में गुण के ही दर्शन होते हैं। वियोग अवस्था में वियोगिनी उन गुणों का कथन करते करते कभी नहीं अघाती है। गुण–कथन में ही उसकी संतृप्ति झलकती है इसी का गुण–कथन अवस्था की संज्ञा दी गई है।

**'संदेसो देवकी सौं कहियौ। हौ तौ धाइ तिहारे सुत की, मया करत ही रहियौ।**
**जदपि टेव तुम जानतिं उनकी, तऊ मोहिं कहि आवै। प्रात होत मेरे लाल लड़ैतैं, माखन रोटी भावै।**
**तेल उबटनो अरु तातौ जल, ताहि देखि भजि जाते। जोइ जोइ मांगत सोइ सोइ देती, क्रम करि कैन्हाते।**
**सूर पथिक सुनि मोहिं रैनि दिन, बढ़्यौ रहत उर सोच। मेरौ अलक लड़ैतौ मोहन, ह्वै हैं करत संकोच।।'**

**(5) उद्वेग**–चिंता, मरण, गुण–कथन करते–करते प्रवृत्तियां सामान्य नहीं रह जाती हैं। उनमें उद्वेगावस्था की अधिकता आ जाती है। जिसे उद्वेगावस्था से अभिहित किया जाता है।

**'तुम्हारी प्रीति किधौ तखारि। दृष्टि–धार धरि हती जु पहिलैं, घायल सब ब्रजनारि।**
**गिरी सुमार खेत वृन्दावन, रन मानी नहिं हारि। विह्वल विकल संभारति छिनु–छिनु, बदन–सुधा–निधि वारि।।**

**(6) प्रलाप**–उद्वेगावस्था में सामान्य स्थिति के विकृत हो जाने पर मानसिकता में घोर परिवर्तन आ जाता है। मनुष्य उल्टे–सीधे कथन वाणी से स्वतः स्वाभाविक रूप से निःसृत होने लग जाते हैं। जिन्हें प्रलाप कहा जाता है। अत्यधिक ज्वर से ग्रसित व्यक्ति की जो स्थिति संन्निपातावस्था में होती है, वही वियोग की प्रलापावस्था में होती हैं।

**'सखि मिलि करौ कछुक उपाउ। मार मारन चढ़्यौ विरहिनि, निदरि पायौ दाउ। हुतासन–धुज जात उन्नत, वल्यौ हरि–दिस बाउ।**

**(7) उन्माद**–प्रलाप क्रमशः बढ़ते–बढ़ते उन्मादावस्था को पहुंच जाता है जिसे पागलपन की संज्ञा दी गई है। केवल भाव विज्ञान या कार्य के कारण या परिणाम का चिंतन किए बिना कुछ भी बोलना या करना जो समाज के लिए हानिकारक होता है उसे उन्मादावस्था कहा गया है।

**'ऊधौ इतनी कहियौ जाइ। अति कृसगात भई ये तुम बिनु, परम दुखारी गाइ।**
**जल समूह बरषतिं दोउ अंखियां, हुंकति लीन्हैं नाउं। जहां जहां गो दोहन कीन्हौ, सूंघतिं सोई ठांउ।।**

**(8) व्याधि**–मानसिकता में आधि घेर लेती है जिससे शारीरिक विकृति आने लग जाती है जिसे व्याधि अवस्था के नाम से जाना जाता है। बीमारी मानसिक एवं शारीरिक दो प्रकार की होती है। व्याधि शारीरिक रूप से अंग–प्रत्यगों की क्षीणता को लेकर है। इसे रूग्णावस्था भी कहते हैं।

**'बिनु गुपाल बैरिन भईं कुंजैं। तब वै लता लगति तन सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं।**
**वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल–फूलनि अलि गुंजैं। पवन, पान, घनसार, सजीवन, दधि–सुत किरनि भानु भइ भूजैं।**
**यह ऊधौ कहियौ माधौ सौं, मदन मारि कीन्हीं हम लुंजैं। सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, मग–जोवत अंखियां भईं धूजैं।**

**(9) जड़ता**–शारीरिक क्षीणता एवं मानसिक विकृति के परिणामस्वरूप खाने–पीने तथा अभिव्यक्ति आदि की क्रियाएं समाप्त प्रायः हो जाती हैं। वियोगी की चेतना शक्ति समाप्त हो जाती है। वह जड़वत् हो जाता है। यहां तक कि आंखें खुले रहने पर भी देखना–सुनना बंद हो जाता है, जिसे जड़तावस्था के रूप में जाना जाता है।

**'देखी मैं लोचन चुबत अचेत। मनहुं कमल ससि त्रास ईस कौ, मुक्ता गनि गनि देत।**
**कहुं कंकन कहुं गिरी मुद्रिका, कहुं टाड़ कहुं नेत। चेतति नहीं चित्र की पुतरी, समुझाई सॉचेत।।'**

**(10) मूर्च्छा**—शारीरिक एवं मानसिक क्रियाकलापों की समाप्ति श्वास–प्रश्वास को भी बाधित कर देती है। ऐसी अवस्था को मूर्च्छावस्था का नाम दिया गया है। भंयकर बीमारी, अवसाद, संत्रास या भय के समक्ष आते ही सामान्य मानव मूर्च्छित हो जाता है।

**'जबहिं कह्यौ ये स्याम नहीं। परीं मुरछि धरनी ब्रजबाला, जो जहं रही सु तहीं।**
**सपने की रजधानी ह्वै गइ, जो जागीं कछु नाहीं। बार–बार रथ ओर निहारहिं, स्याम बिना अकुलाहीं।**
**कहा आइ करिहैं ब्रज मोहन, मिली कूबरी नारी। सूर कहत सब ऊधौ आए, गईं काम–सर मारी।।'**

**(11) मरण**—कभी–कभी क्रियाकलापों के समाप्त हो जाने पर शारीरिक शून्यता आ जाती है। यहां तक कि धमनियों में रक्तसंचार भी सामान्य ने रहकर बाधित हो जाता है, जिसे हृदयगति का रूक जाना या प्राणपखेरू का उड़ जाना कहा गया है। यह विरह की अंतिम अथवा एकादश अवस्था है।

**'अति मलीन वृषभानु–कुमारी। हरि स्रम–जल भींज्यौ उर–अंचल, तिहिं लालच न धुवावति सारी।**
**अध मुख रहति अनत नहिं चितवति, ज्यौ गथ हारे थकित जुवारी। छूटे चिकुट बदन कुम्हिलाने, ज्यौ नलिनी हिमकर की मारी।**
**हरि संदेस सुनि सहज मृतक भई, इक बिरहिनि, दूजे अलि जारी। सूरदास कैसैं करि जीवैं, ब्रज बनिता बिन स्याम दुखारी।।'**

हिन्दी साहित्य में गोपियों के विरह–वर्णन में सूर का प्रमुख स्थान है। इसका लौकिक महत्व ही नहीं हैं अपितु आध्यात्मिक महत्व भी है। इसमें एक ओर विप्रलंभ श्रृंगार की उद्दाम सरिता का अबाध प्रवाह ब्रजनारियों के नयनांबु से पूरित होकर उमड़ता हुआ पाठक की मनोभूमि को आप्लावित करता है और दूसरी ओर सगुणकार–भक्ति का निर्झर ऊंची–नीची और समतल भाव–भूमि में योग–मार्ग की कठोर प्रस्तर शिलाओं को तोड़ता और निर्गुण उपासना के घास–फूंस को आत्मसात् करता हुआ प्रवाहित होता है।

सूर के भ्रमरगीत में विप्रलंब श्रृंगार का अत्यंत पुष्ट एवं उत्कृष्ट चित्रण हुआ है। विरह–भावना की अभिव्यक्ति जितने विस्तृत रूप में मिलती है, उतने विस्तार के साथ अन्य किसी हिंदी कवि की रचना में नहीं। डॉ० रामकुमार वर्मा के शब्दों में, 'भ्रमरगीत में तो जैसे वियोग–श्रृंगार की प्रत्येक भावना गोपिकाओं के आंसुओं में साकार हो गई। विरह की एकादश अवस्थाओं का चित्रण सूर की कुशल लेखनी से अत्यंत स्वाभाविकता के साथ हुआ हैं।'

सूरदास की गोपियों के विरह–वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता है– 'रुदन का हंसना ही तो गान।' विरह–वर्णन को व्यंग्य–विनोदपूर्ण बना देना सूर की ही सामर्थ्य हैं। अन्य कवियों के विरही तो केवल रोते, कलपते हैं। सूर ने केवल नारी–पक्ष के विरह का वर्णन, परंपरा का अनुकरण मात्र नहीं किया है। केवल नारी को ही पुरूष के विरह में अधीर नहीं दिखाया हैं; अपितु पुरुष (कृष्ण) को भी नारी (गोपियों) के विरह में व्यथित दिखाया है। सूर के श्रृंगार वर्णन में नारी हृदय के जिस पवित्र, निश्चल एवं सरल प्रेम का दर्शन करते हैं, वह हिंदी काव्य को सूर की मौलिक देन है।

# अध्याय 5
# वात्सल्य

भक्त प्रवर सूरदास ने वात्सल्य को रस में अति उच्च स्थान प्रदान किया है। वात्सल्य–स्नेह मनुष्य मात्र की एक सहज प्रवृत्ति है मानव को संसार में लिप्त कराने वाला संतान–मोह ऐसा प्रबल आकर्षण है जिसका अतिक्रमण करना अत्यत कठिन है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार भक्त सूरदास को श्री वल्लभाचार्य ने दीक्षित करके श्रीकृष्ण की बाल–लीला पर ही उनका ध्यान आकृष्ट कराया। श्रीमद्भागवत की श्रीकृष्ण बाल–लीला को सूर ने सूरसागर का आधार बनाया। वल्लभाचार्य से प्रेरित तथा भागवत को आधार स्वरूप ग्रहण करके सूर ने कृष्ण की बाल–लीला संबंधी पदों की रचना की हैं। वल्लभाचार्य ने बाल–लीलाओं पर जितना बल दिया उतना अन्य किसी संप्रदाय ने नहीं। लीला–गान ही उनकी भक्ति विशेषता थी। सूर ने वात्सल्य भाव के पदों की रचना करके उन्हें सुनाए। सूर ने यशोदा एवं नंद के वात्सल्य भाव की सरसता तथा मधुरिमा की विशद् सांगोपांग और मनोरम अभिव्यक्ति की है।

इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन दर्शनीय हैं–

'वात्सल्य और शृंगार का जितना अधिक उद्घाटन सूर ने अपनी बंद आंखों से किया है उतना किसी अन्य कवि ने नहीं' न क्षेत्रों का वे कोना–कोना झांक आए हैं। उक्त दोनों रसों के प्रवर्त्तक रति–भाव विश्व का कोई अन्य कवि नहीं कर सके

**वात्सल्य रस–भेद**–वात्सल्य रस से संबंधित संयोग वात्सल्य और वियोग वात्सल्य दो प्रकार के होते हैं। संयोग वात्सल्य से तात्पर्य है उस कथा से है जब कृष्ण यशोदा के साथ ब्रज में थे। वियोग–वात्सल्य कथा का संबंध कृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात् का है। सूर–काव्य में दोनों प्रकार के वात्सल्य रस परिपाक की अवस्था तक पहुंचे हैं।

**अवयव**–रस की निष्पत्ति में स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव व संचारी भावों की आवश्यकता होती हे। इन सभी के सहयोग से रस निष्पत्ति होती हैं। वात्सल्य रस में बाल्य–प्रेम स्थायी भाव होता हैं। आलंबन श्रीकृष्ण और आश्रय यशोदा हैं। श्रीकृष्ण का शारीरिक सौंदर्य, उनका बुद्धि–कौशल तथा बाल–केलि चेष्टाएं उद्दीपन हैं। अनुभाव, प्रसन्नता, हास्य, गोद लेना, चूमना आदि संचारी भाव पुलक, स्मृति हर्ष आदि हैं। सूर ने वात्सल्य रस के सभी अंगों का पूर्ण सहयोग प्राप्त कर वात्सल्य रस का अत्यत स्वाभाविक एवं मनमोहक चित्रण कर समस्त संसार में अनुपम सृष्टि का सृजन किया है।

**रूप–सौंदर्य वर्णन**–महाकवि सूर ने श्रीकृष्ण के बाल–लीला विषयक वर्णन के अंतर्गत उनका रूप वर्णन किया है। कृष्ण के रूप–सौंदर्य पर कवि मुग्ध हैं। रूप सौंदर्य के वर्णन में सूर ने नवीन उपमाएं तथा उत्प्रेक्षाएं एकत्रित की हैं उन्हें देखकर ही दंग रह जाना है। सूर ने अंग–प्रत्यंग का इतना सुंदर चित्रण किया जिससे सहृदय नेत्रों के समक्ष श्रीकृष्ण के रूप–सौंदर्य का चित्र साकार हो उठता है। अनेक उपमाओं से अलंकृत कृष्ण के श्यामल शरीर का वर्णन, अपार ज्योति संपन्न कृष्ण के नखों का आकर्षक वर्णन अवस्था और परिस्थिति के अनुसार वस्त्राभूषणों का वर्णन किस पाठक को अपनी ओर आकर्षित न कर लेगा ? श्रीकृष्ण ने सुंदर वस्त्राभूषण धारण किए हुए हैं। उन्हें देखकर यशोदा के हृदय में सुख का सागर हिलोरें भरने लगता है–

**'आंगन श्याम नचावहिं, जसुमति नंद रानी। तारी दै–दे गावहिं, मधुरी मीठी बानी।।**
**पायन नुपुर बाजहिं कटि किंकिनि कूजैं। नन्हीं एड़ियन असिलता फल बिंब न पूजै।।'**

## (क) संयोगजन्य–वात्सल्य

सूरदास ने माता यशोदा और पिता नंद के मातृ–पितृ हृदय की भावनाओं को पदों में सुंदर मणिकाचन की भांति विराजित किया। बालक की प्रारंभिक विकास–अवस्था, शरीर–विकास, क्रीड़ा कौतुक, बाल–सखाओं का लीला–वर्णन, खेलना, गोचारण आदि विषयों का मनोविज्ञान तथा जीवन की सहजता पर आधारित वर्णन किया है। सूर संसार से संबंध त्यागकर ही प्रभु के विश्वासपात्र बन सके थे। उनके आराध्य का जीवन भी उतना सामाजिक नहीं था, जितना तुलसी के राम का। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन दर्शनीय है–

'पारिवारिक और सामाजिक जीवन के बीच सूर के बाल–लीला स्वरूप को थोड़ा बहुत देखते हैं। कृष्ण के बाल चरित्र का प्रभाव नंद यशोदा आदि परिवार के लोगों और पड़ोसियों पर दिखाई पड़ता है। इसी बाल–लीला वर्णन के अंतर्गत कृष्ण को ब्रह्म रूप में अत्यधिक विराजमान है; जैसे कंस के भेजे हुए असुरों के उत्पात से गोपों को बचाना, काली नाग को बांधकर उसके भय से लोगों को मुक्त कराना। कृष्ण के चरित्र में यह जो थोड़ा बहुत लोकसंग्रह दिखाई पड़ता है, उसके स्वरूप मे सूर की वृत्ति लीन नहीं हुई हैं। जिस शक्ति से बाल्यावस्था में ऐसे प्रबल शत्रुओं का उन्होंने दमन किया, उसके उत्कर्ष का अनुरंजनकारी और विस्तृत वर्णन

उन्होंने नहीं किया, जिस ओज और उत्साह से तुलसीदास ने मारीच, ताड़का, खरदूषण आदि के निपात का वर्णन किया है, उस ओज और उत्साह से सूर ने बकासुर, अधासुर और कंस आदि के वध और इंद्र के गर्व–मोचन का वर्णन नहीं किया। कंस और उसके साथी असुर भी कृष्ण के शत्रु रूप में ही सामने आते हैं, लोक–शत्रु या लोक–पीड़क के रूप में नहीं।'

सूर व्यक्तिगत साधना के कायल थे। उन्हें शहर के अंदेशे से दुबला होना इष्ट नहीं था। सूर–काव्य मुक्तक एवं प्रगति है, जिसमें प्रबंध काव्य के महान कांतार में उन्मुक्त रूप से विकसित होती हुई घटना वल्लरियों और व्यापार–पादपों की शाखाओं के प्रसार का आतंकमय स्वरूप नहीं मिलता, पर नियमित भावसुमन–वाटिका के मनोहारी दृश्य की रमणीयता अवश्य मिलती है। अपने सीमित क्षेत्र में ही सूर की कला ने ऐसी कमनीय 'कला' का प्रदर्शन किया है। जिससे अन्य कलाकार ईर्ष्या करते हैं। उनकी कल्पना को उड़ने के लिए लंबा क्षेत्र नहीं मिला, पर वह पाठक को अपने साथ ऊंचा उड़ा ले जाती है, जहां पहुंचकर अन्य कवि की कल्पना निम्नतर दिखाई पड़ती हैं। सूर ने वात्सल्य और शृंगार रस की जो धारा बहाई, उसका प्रसार जितना कम है, गंभीरता उतनी ही अधिक है।

**(1) जन्मोत्सव**–यशोदा और नंद ही नहीं, सारे ब्रज के गोप–गोपी पुत्र के जन्म की सूचना पाकर वात्सल्य के आश्रय बन जाते हैं, सारा ब्रज आनंद से उन्मत्त हो उठता है। यशोदा पुत्र–जन्म के हर्ष को संभाल नही पा रही हैं, वह नंद को भी बुला लेती हैं–

**'जागी महरि पुत्र–मुख देख्यौ, पुलकि अंग उर में न समाइ। गदगद कंठ बोल नहिं आवै हरषवंत ह्वै नंद बुलाइ।।'**

जन्मोत्सव का आनंद ब्रज में सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। संपूर्ण ब्रज में मंगलाचार होने लगे, बधावे, बजने लगे, दान देना आरंभ हो गया ब्रजनारियां सारा काम–काज छोड़कर बालक–कृष्ण के मुख को देखने की लालसा से नंद जी के घर पहुंच गयीं। पुरूष अपनी दिनचर्या छोड़कर उत्सव मना रहे है। सभी कह रहे हैं–

**'आजु बन कोऊ वै जानि जाइ। ढोटा है रे भयो महरि कै, कहत सुनाइ–सुनाइ। सबहिं घोष मैं भयो कोलाहल, आनंद उर न समाइ।।'**

ब्रज में अलौकिक प्रसन्नता का अवसर छाया है। सभी नर–नारियां प्रफुल्लित हैं। आनंद और उल्लास में मग्न सभी नाच उठते हैं। मानो सारा ब्रज उत्सव मना रहा हो। तभी असली सुंदरता अपूर्ण हो गई समस्त संसार की अनुपम छटा उसे प्राप्त हो गई है–

**'शोभा–सिंधु न अंत लही री। नंद–भवन भरि पूरी उमंगि चलि, ब्रज की बीथिन फिरति बही री।।'**

समस्त ब्रजवासी आनंदमग्न है कृष्ण के दर्शन की लालसा से उत्कंठित हैं; ब्रजवासी जन नंद के घर पहुंचकर कृष्ण के सुंदर रूप–दर्शन से अपने नेत्र सफल कर रहे हैं। सभी शिशु कृष्ण को गोद में लेने को लालायित हैं। उनकी उत्कंठा दर्शनीय हैं–

**'नैकुं गोपालहिं मौकौं दै री। देखौ कमल–बदन नीकें करि, ता पाछै तू कनियां लै री।।'**

पुत्र–जन्म की सूचना सुनकर दूर–दूर से भिक्षुक एवं याचक नंद के द्वार पर आकर दान लेकर संतुष्ट होते हैं, वे याचक ऐसे जा रहे हैं मानो कहीं के राजा हों–

**'ते पहिरे कंचन मनिभूषन, नाना बसन अनूप। ..... मानो जात कहूं के भूप।।'**

जब कृष्ण धीरे–धीरे शारीरिक दृष्टि से विकसित होते हैं। उस समय सूर ने बाल–विकास की सभी अवस्थाओं को सुंदर ढ़ंग से चित्रित किया है। नंद के घर में बालक के जन्म लेते ही कवि आनंदोत्सव में शामिल होकर कहता है–

**'ब्रज भयो महर के पूत, जब ये बात सुनी। सुनि आनंदे सब लोग, गोकुल गनक गुनी।।'**

**(2) बाल–छवि**–कृष्ण की बाल–छवि के सूर ने विविध चित्र अंकित किए हैं। कृष्ण के सौंदर्य का प्रभाव गोपियों पर भी पड़ा और यशोदा पर भी किंतु गोपियों में इसके फलस्वरूप प्रेम की वृद्धि हुई, जबकि यशोदा में वात्सल्य की। कृष्ण के बाल सौंदर्य का एक चित्र द्रष्टव्य है--

**'ललन हौं या छवि ऊपर वारी। बाल गोपाल लगौ इन नैननि रोग–बलाइ तुम्हारी।।'**

**(3) बाल–विकास**–रूप सौंदर्य के अतिरिक्त सूर ने बाल–लीला के अत्यंत हृदयस्पर्शी चित्रण करके 'सूरसागर' में अनुपम छटा बिखेर दी है। संयोग जन्य वात्सल्य के वर्णन में कृष्ण की तुतलाती भाषा घुटुरूवन चलना, धीरे–धीरे खड़ा होना और फिर गिर पड़ना, नंद को बाबा कहना, शरीर पर धूल लपेटना, मुख पर दही का लेप कर लेना आदि बाल–सुलभ चेष्टाओं के बाल--मनोवैज्ञानिक पंडित महाकवि सूर ने अत्यंत मर्मस्पर्शी स्वाभाविक एवं आकर्षक वर्णन किया है। बालकों की रुचि का सूर को पूर्ण ज्ञान था। बालक कृष्ण के पालने पर आने के पश्चात् ही सूर के वात्सल्य की विविध धाराएं प्रवाहित होने लगती हैं। लोकोपकारक देव के रूप में कृष्ण दानवीय शक्तियों का विनाश करते हैं तथा दूसरी ओर मानवीय धरातल पर माता यशोदा की वात्सल्य भावना का आलंबन होकर बाल--लीलाएं करते हैं। सूर की अंधी आंखें अपने इष्टदेव को पालने में झूलते देखती है। सूर की यह अनुपम विशेषता है कि वह स्वाभाविक बाल–दशाओं के चित्रण द्वारा पाठकों के मन में सहल ही रसोद्रेक कर देते हैं। यशोदा को कन्हैया को पालने में झुलाने का अनुपम चित्र प्रस्तुत कर सूर ने वात्सल्य की छटा बढ़ाई हैं–

**'जसोदा हरि पालनै झुलावै। हलरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ–सोइ कछु गावै।**
**मेरे लाल कौं आउ निंदरिया, काहैं न आनि सुवावै। तू काहैं नहिं बेगहिं आवै, तोकों कान्ह बुलावै।**
**कबहुंक पलक हरि मूंदि लेत है, कबहुं अधर फरकावै। सोवत जानि मौन ह्वै रहि, करि करि सैन बतावै।**
**इहिं अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावैं। जो सूख सूर अमर मुनि दुरलभ, सो नंद भामिनी भावै।।'**

यशोदा लोरी गा–गाकर कृष्ण को सुला रही हैं। कृष्ण के आंख बंद कर लेने पर मां समझती है कि पुत्र अब सो गया है वह लोरी गाना बंद कर देती है और वहां से उठना चाहती है कि कृष्ण फिर अकुला उठते हैं और यशोदा लोरी गाने लगती है। उसे पुत्र के पास ही बैठा रहना पड़ता है।

छोटे से शिशु की छोटी–छोटी गतिविधि पर सूर की दृष्टि लगी हुई है। बालक की ये अत्यंत स्वाभाविक हलचल मां से कैसे छिपी नहीं है। यशोदा अपने पुत्र को सोया हुआ जानकर अन्य लोगों को इशारे से ही चुप रहने के लिए कहती है। कृष्ण बड़े और बड़े हुए तो उनकी शारीरिक प्रवृत्तियां भी बढ़ने लगीं–

**'चरन गहे अंगूठा मुख मेलत। नंद धनी गावति हलरावति पलना पर किलकित हरि खेलत।।'**

कैसी स्वाभाविक झांकी है! संसार भर के बच्चे इस अवस्था को पार करते हैं। थोड़ा और बड़ा होने पर घुटना के बल चलना अंगुली पकड़कर खड़ा होना, गिर पड़ना आदि अनेक बाल–सुलभ चेष्टाएं आनंदित कर देती है –

**'किलकत कान्ह घुटुरूवनि आवत। मनिमय कनक नंद कैं आंगन, बिंब पकरिबै, धावत।**
**कबहुं निरखि हरि आपु छांह कौं, कर सौं पकरन चाहत। किलकि हंसत रजित द्वै दंतियां, पुनि–पुनि तिहि अवगाहत।**
**कनक भूमि पर कर–पग–छाया, यह उपमा इक राजत।।'**

यशोदा सुत की क्रीड़ाओं को देखकर फूली नहीं समाती। वह बार–बार नंद को इस सुख में शामिल होने के लिए बुलाती है नारी की मातृत्व–भावना स्वयं अकेले ही वात्सल्य का अनुभव कर संतुष्ट नहीं होती, उसकी पूर्ण संतुष्टि वात्सल्य का पूर्ण आस्वादन–यहां भी पति का योग चाहती हैं। मातृत्व के साथ दांपत्य की यह संयोग–कामना नारी हृदय का गूढ़ रहस्य है। इसके उद्‌घाटन सूक्ष्म निरीक्षण करने वाले सुकवि ही कर सकते हैं।

बाल–विकास के प्रति मां के हृदय में अदम्य उत्सुकता रहती है। उसकी समस्त क्रियाएं और भावनाए उसी में केंद्रित होती हैं। वह उस दिन को देखने के लिए लालायित रहती है जब उसका लाल घुटनों पर चलकर उसके पास आने लगेगा। किलकारी और तोतली वाणी से निकले हुए 'मां' शबद के माधुर्य पर वह संसार की समस्त विभूति को न्यौछावर कर सकती है। त्याग की यह भावना मातृत्व की देन है, स्वार्थ की नहीं। वह अपने पुत्र को इसलिए प्यार करती है कि वह उसका पुत्र हैं, इन्हीं भावनाओं की जो अभिव्यक्ति सूर ने की है द्रष्टव्य है–

**'लालन, वारी या मुख ऊपर। माई मोरिहि दीठि न लागै तातै; मसि–बिंदा दियो भूपर।**
**सरबस मैं पिछले ही वारयौ, नान्हीं नान्हीं दुंतली दू पर। अब कहा करौ निछावरि सूरज, सोचति अपने लालन दू पर।।**

बाल–कृष्ण पैरों के बल चल रहे हैं। यशोदा उन्हें देखकर स्वयं आनंदित होती है, नंद को भी यह दृश्य देखने के लिए बार–बार बुलाती है कि देखो उनका पुत्र किलकारी मारता है, हंसता है, तब उसके दूध के दो दांत दिखाई देते हैं। अब बाल–कृष्ण थोड़े और विकास होने पर वह धरती पर दो–दो कदम चलने का प्रयास करता है गिरता हैं और पुनः उठता है। बालक–कृष्ण की इन सहज गतिविधियों का सूर ने सजीव चित्रण किया है–

**'कान्ह चलत पग द्वै–द्वै धरनी। जो मन में अभिलाष करत ही सो देखत नंदरानी।।**
**रूनुक छुनुक नुपुर बाजत पग यह है अति मन हरनी। बैठि जात मुनि उठत तुरत हैं अति छवि जाति न बरनी।।**

सूर ने शिशु को सूक्ष्मतम प्रवृत्ति का भी उल्लासपूर्ण चित्रण किया है। माता–पिता इन अभिव्यक्तियों को देखकर मन ही मन आंगन में कृष्ण को खेलते देखने की कल्पना से आनंदित होते हैं।

**(4) बाल–क्रीड़ा**–श्रीकृष्ण बड़े होकर कुछ बोलने लगे हैं और आसपास की वस्तुओं तथा प्रकृति के साथ सबध स्थापित करने का प्रयास करते हैं। माता यशोदा उन्हें चंद्रमा दिखाती हैं। माता चुप कराने के लिए चंद्रमा को बुला–बुलाकर कृष्ण को बहलाती है, किंतु वे हठ कर बैठे है कि उन्हें 'चंद्र खिलौना' ही चाहिए। कृष्ण चंद्रमा को हाथ में ले करके उसे खाना चाहते हैं

**'लागी भूख चंद मैं खैहौ देहु लेहु रिस करि बिरुझावत। जसुमति कहत कहा मैं कीनो रोवत मोहन दुख पावत।।**

यशोदा आकाश में उड़ती चिड़िया दिखाकर बालक का ध्यान बंटाना चाहती हैं, किंतु कृष्ण भी अड़ियल और जिद्दी बालक की तरह चंद्रमा लेने के लिए ही अड़े रहे हैं। यशोदा बर्तन में पानी भरकर चंद्रमा का बिंब कृष्ण को दिखाती हैं-

**'जल–पुट आनि धरनि पर राख्यो गहि आन्यो चंदा दिखरावै। सूरदास प्रभु हंसि मुसकाने, बार–बार दोऊ कर नावै।।'**

माता का हृदय बहुत ही शंकालु होता है। घर से निकलते ही उसके बच्चे पर न जाने क्या आपत्ति आ जाए ? छोटा–सा बालक खेलने के लिए दूर चला जाए, तो न जाने कहां बहक जाए? पर बच्चे तो बच्चे होते हैं। उनकी जिद का क्या कहना ? मजबूर होकर माँ को साम छोड़कर दाम नीति का आश्रय लेना पड़ता है। माता की कल्पित भावना 'हाऊ' का कृष्ण को कैसा भय दिखाया जाता हैं। इस कथन को दर्शाने के लिए सूर का पद द्रष्टव्य हैं–

**'खेलन दूर जात कत कान्हा। आजु सुन्यौं मैं हाऊ आयौ, तुम नहिं जानत नान्हा।**
**इक लरिका अबहीं भजि आयौ, रोवत देख्यौ ताहि। कान तोरि वह लेत सबनि के, लरिका जानत जाहि।।'**

घर में मंगल करने वाले बच्चों को खेलते देखकर माता–पिता का वात्सल्य उमड़ता है वे तन्मय हो जाते हैं, उनका बचपन लौट आता है और वे अपने आप भी बच्चे के साथ में बच्चे की भांति खेलने लगते हैं, वहीं हार–जीत की संभावना से प्रेरित स्पर्धा का भाव माधुर्य का आवरण धारण करके उनके हृदय में आ बैठता है। नंद और यशोदा की प्रतियोगिता के कारण बेचारे कृष्ण की स्थिति 'नट के बेटा' की सी हो रही है, उन्हें खिलौना ही बना लिया गया है –

**'कबहुंक दौरि घुटुरूवनि लपकत, गिरत उठत पुनि धावै री। इततें नंद बुलाइ लेत हैं, उततैं जननि बुलावै री।**
**दंपत्ति होड़ करत आपुस में, श्याम खिलौना कीन्हौ री।।'**

कृष्ण बड़े होकर गली में अपने साथियों के साथ खेलते समय सखाओं से बेइमानी करते हैं, कभी उनके साथ खेलने का आग्रह कर उनकी सभी शर्तें स्वीकार लेते हैं। आपस में सभी सखा लड़ते–झगड़ते हैं। माता दूर खेलने जाने से रोकती है, किंतु अपनी आयु के लड़कों की तरह कृष्ण अपने बाल सखाओं के साथ गांव में सर्वत्र क्रीड़ा करते फिरते हैं। बच्चे आपस में रूठते हैं अन्ततः मान जाते हैं। एक दिन बलराम अपने छोटे भाई को खूब खिझाते हैं। कृष्ण संध्या–काल में घर में घुसते ही बलराम की शिकायत मां से करते हैं। उनके इस भोलेपन पर सूरदास और भक्तजन अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं–

**'मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो। मोसों कहत मोल के लीनौ तोहि जसुमति कब जायो।।**
**कहा कहौं एहि रिस के मारे खेलन हौ नहि जात। पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तात।।'**

माता को सौगंध खाकर ही कहना पड़ता है कि बलराम सदा से ही धूर्त है, झूठ बोलता है। मैं सत्य कहती हूँ कि तू मेरा ही पुत्र है। कृष्ण उस बात से इतने दुःखी हो जाते हैं कि वे खेलने के लिए नहीं जाना चाहते–

**'खेलन अब मेरी जात बलैया। जबहिं मोहि देखत लरिकन संग तबहीं खिझत बल भैया।।'**

कृष्ण माता से कहते है कि मां बलराम भैया यहां तक कहते हैं कि वसुदेव और देवकी ही तेरे माता–पिता हैं। यह सुनकर बालक कृष्ण को असह्य पीड़ा होती हैं। श्रीकृष्ण खेल में हारकर बेईमानी शुरू कर देते हैं, तब उनके सखा उन्हें दुबारा खेल में शामिल ही नहीं करते हैं। बलराम यहां तक कह देते हैं कि इसके माता–पिता नहीं हैं, इसे हम अपने साथ खेल में शामिल नहीं कर सकते, तब कृष्ण वहां से लौटकर माता की गोद में जाकर रोने लगते हैं।

**(5) माखन–लीला**–'माखन चोरी' प्रसंग में कृष्ण का बुद्धि–चातुर्य देखते ही बनता है। वह मक्खन के लिए अत्यंत लालायित रहते हैं। ब्रज के घरों में घुस–घुसकर सखाओं के साथ मक्खन चुरा–चुराकर खाना उनकी आदत बन गई है। नित्य घरों में कमोरी साफ होने लगती है। कृष्ण का माखन चोरी कर पकड़ा जाना और चातुर्य का प्रयोग करना, इसका वर्णन अत्यंत ही विनोदपूर्ण है। कृष्ण मक्खन खाते कम थे, पर जमीन पर बिखेरते ज्यादा थे। नित्य मक्खन की हानि होने पर ब्रजनारियां परेशान हो गई। एक दिन कृष्ण मक्खन खाते पकड़े जाने पर कहते हैं–

**'मैया मैं नहीं माखन खायो। ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो।।'**

कृष्ण अपनी निर्दोषिता के अनेक साक्ष्य देते हैं कि माता मैं छोटे–छोटे हाथों वाला छोटा–सा बालक और इतने ऊंचे मक्खन का पात्र छीकें पर टंगा था, भला मैं उसे कैसे पा सकता था। घर आया ही नहीं, मैं दिन भर गायों के साथ मधुबन में घूम रहा था मैं भला इनका माखन कैसे चुरा सकता था। बालक की ऐसी भोली–भाली मुद्राओं पर यशोदा का मातृ–हृदय के विरूद्ध इस दोषारोपण को नहीं मानता और अपने कृष्ण को सांटें फेंककर छाती से लगा लेती हैं। माता यशोदा कृष्ण के बुद्धि–चातुर्य को देखकर गद्‌गद् हो गई।

कृष्ण का उत्साह अधिक बढ़ जाता है, वे पक्के माखन–चोर बन गए। माखन के साथ उन्हें रस की भी प्राप्ति होती थी। कृष्ण माखन चोरी के साथ उत्पात भी करने लगे जिसमें ग्वालिनों की चूड़ियां और चोलियां तहस–नहस होने लगीं। वे यशोदा के पास आकर अपनी खाली मटकी दिखाती हैं, यशोदा उन्हें पुनः मक्खन से भर देती थीं। इस डर से कहीं कोई उसके लाल को कोसे नहीं। यशोदा का मातृ–हृदय अपने पुत्र के अनिष्ट की आशंका मात्र से ही पर्याप्त चिंतित हैं–

**'करि मनुहर कोसबे के डर भरि–भरि देति जसोदा मात।'**

अन्ततः एक दिन यशोदा को अपने पुत्र पर क्रोध आ ही गया। एक ग्वालिन शिकायत कर ही रही थी कि दूसरा मक्खन चोरी करते कृष्ण का हाथ पकड़ कर ही ले आई। यशोदा अपने पुत्र की इस लीला पर खीझ उठी, उसने कृष्ण को अखल से बांध दिया और सांटी लेकर सजा देना प्रारंभ कर दिया तब कृष्ण हिचकियां भर–भरकर रोने लगे, गोपियां परेशान होकर यशोदा को निष्ठुर कहने लगीं। वे यशोदा को भला–बुरा कहने लगीं। यह भी खूब रही, हम इसकी शिकायत करके तुम्हें मुर्ख बना रही हैं। यशोदा खीझ उठी, पर यशोदा की इस खीझ में सूर ने गोपियों के प्रति अमर्ष का मूल कारण कृष्ण–विषयक वात्सल्य ही बताया है और साथ ही यशोदा के मातृ–हृदय में पश्चाताप और व्याकुलता के सहज भाव की सुंदर अभिव्यक्ति की हैं–

**'कहनि लगीं अब, बढ़ि बढ़ि बात। ढोटा मेरौ तुमहि बंधायौ, तनकइ माखन खात।**
**मेरे लाल को परम खिलौना ऐसे को ले जैहे री। नेंक सुनन जो पेहों ताको, सौ कैसे ब्रज रहिहै री।।'**

सूर के पद का एक–एक शब्द यशोदा के मातृ–हृदय का पूरा चित्र खींचने के लिए पर्याप्त है। गोपियों की झूठी सहानुभूति और यशोदा का उनके प्रति अमर्ष व्यंजित है। 'ढोटा' शब्द से कृष्ण की अबोधता और उसके प्रति यशोदा की वात्सल्य भावना का चरमोत्कर्ष दिखाई पड़ता है।

सूर ने माखन–चोरी प्रसंग के संबंध में एक से बढ़कर एक सुंदर दृश्य प्रस्तुत कर अपनी लेखनी को सशक्त बनाया है

**'सखा सहित गए माखन चोरी। देख्यों स्याम ग्वाच्छ पंथ है गोपी एक मथति दधि भेरी।।'**

सूर ने कृष्ण की बाल्यावस्था का बहुत ही सुंदर और स्वाभाविक वर्णन किया है। उन्होंने बच्चों की मनोवृत्तियों, याचना और चेष्टाओं का सजीव चित्रण सूरसागर में किया है। सूर की अंतर्दृष्टि मानव–मानस की तह में गोता लगाकर भावरत्न लाने में बेजोड़ है। बालकों की दिनचर्या के सूक्ष्म भेद को छोटे से छोटे व्यापार को गूढ़ से गूढ़ अनुभूति को चित्रित करना कवि भूला नहीं। माखन खाते कृष्ण का धूलिधूसर चित्र प्रस्तुत कर सूर ने चित्रपटी का सौंदर्य दर्शाया है–

**'सोभित कर नवनीत लिए। घुटुरूनि चलत रेनु–तन–मंडित, मुख दधि लेप किए।।'**

**(6) भाव विकास**–ज्यों–ज्यों बालक कृष्ण का शरीर बढ़ता है त्यों–त्यो उसके भाव भी विकसित होने लगते हैं। बच्चों में स्पर्धा का भाव बहुत तीव्र होता है। वे किसी भी स्पर्धा में अपने हमजोलियों से पीछे नहीं रहना चाहते। बच्चों की यही भावना उन्हें उन्नत बनाने में योगदान करती है। कृष्ण जैसे–जैसे बड़े होते है, वैसे–वैसे उनमें ईर्ष्या, क्रोध, स्नेह, आक्षेप आदि भाव भी बढ़ने लगते हैं। कृष्ण की चोटी से बलराम की चोटी बड़ी है, वे अपनी चोटी को स्पर्धा भाव के कारण बढ़ाना चाहते हैं। यशोदा उनकी इस प्रवृत्ति का लाभ उठाकर उन्हें चोटी बढ़ाने का प्रलोभन देकर दूध पिलाती हैं, क्योंकि वे वैसे दूध नहीं पीते, यशोदा के प्रलोभन के पश्चात् भी उनकी चोटी नहीं बढ़ती, वे माता से शिकायत करते हैं–

**'मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी। किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूं है छोटी।**
**तू जो कहति बल की बेनी, ज्यों ह्वै है लांबी–मोटी। काढ़त–गुहत–न्हावत जै है, नागिन सी भुईं लोटी।**
**काचौ दूध पियावति पचि–पचि, देति न माखन रोटी।।'**

अब यशोदा निरूतर हो गई और उन्हें श्रीकृष्ण की प्रिय माखन रोटी देनी ही पड़ी। सूर ने इस पद में बाल–सुलभ स्वभाविकता के वर्णन किया है। बाल–हठ और बालकों की ईर्ष्या–भावना के साथ माता का स्नेहस्निग्ध हृदय की अत्यंत सुंदर अभिव्यक्ति की है।

**(7) गोचारण**–बालक कृष्ण कुछ और बड़े हुए तो अन्य ग्वालों की देखा–देखी गाय चराने की जिद माता यशोदा से करने लगे माता ने इस प्रस्ताव का विरोध किया किंतु उन्होंने माता की समस्त आशंकाओं का खंडन करते हुए कहा–

**'आजु मैं गाइ चरावन जैहौं। वृंदावन के भांति भांति फल अपने कर में खेहौं।।'**

माता यशोदा बालक कृष्ण को डराती हैं कि गाय चराने वाले संध्या काल को घर लौटते हैं। उन्हें भूख सताती रहती है किंतु कृष्ण यही चाहते हैं कि मुझे भूख–प्यास नहीं लगती है। मै तो गाय चराने जाऊंगा ही।

वे नंद बाबा से अनुमति प्राप्त करने के लिए माता यशोदा को सिफारिश करने के लिए कहते हैं–

**'मैया हौं गाइ चरावन जैहौं। तू कहि महर नंद बाबा सौ बड़ौ भयो न डरै हौ।।'**

पुत्र–हठ के सामने मां को झुकना पड़ा। फलतः उसने कृष्ण को गाय चराने के लिए जाने तो दिया किंतु हृदय को शांत न रख सकी। अत्यंत कठिनाई से उमड़ते हुए हृदय को रोककर पुत्र को गाय चराने के लिए ग्वालों के साथ वृंदावन जाने की अनुमति दे देती हैं।

प्रकृति की सुरम्य पृष्ठभूमि पर कृष्ण के गोचारण के अत्यंत सुंदर दृश्य सूरदास जी ने चित्रित किए हैं। ग्वाल–बालों की स्वाभाविक सरल चित्त–वृत्तियों के साथ उनके क्रियाकलापों के भी क्रमबद्ध अनेक चित्र सूरसागर में मिलते हैं। बलराम कृष्ण की गैया खुद घेरते हैं और उन्हें वन के फल तोड़–तोड़ कर देते हैं–

**'मैया री मोहिं दाऊ टेरत। मोकौं बन–फल तोरि देत हैं, आपुन गैयन घेरत।।'**

खिझाने वालों के साथ न जाकर वनफल तोड़कर देने वाले दाऊ के साथ जाने का आग्रह कृष्ण की बाल–प्रकृति का द्योतक है, जिसके अनुसार बालक स्नेह का व्यवहार ही पसंद करता हैं। बालकों को अपने से बड़ों के कार्य करने में आत्मा के प्रसार से उद्‌भूत आनंद का आस्वादन होता है; अतएव उस कार्य के लिए उनके हृदय में बहुत ही अधिक उत्साह और चाव रहता है। कृष्ण के हृदय में गोचारण की इतनी उत्सुकता है कि वे कलेऊ करते–करते भाग खड़े होते हैं; किंतु जब भूख सहन नहीं होती तो घर जाने वाले ग्वालों से यशोदा के पास खबर भेजते हैं।

यशोदा को जब पता चलता है कि मेरे पुत्र कृष्ण से ग्वाल बाल अपनी गायें उन्हीं से घिरवाते हैं। तब वह कहती हैं कि मैं कृष्ण को गोचारण के लिए भेजती थी कि उसका मन बहल जाय लेकिन ग्वाल–बाल उन्हें भगा–भगाकर थका देते हैं, कृष्ण यशोदा से बताते हैं तो मां की ममता जाग्रत हो जाती है, वह ग्वालों को गाली तक दे देती है। वास्तव में उसका हृदय इतना कठोर नहीं कि वह किसी का अनिष्ट चाहे। पुत्र की ममता के उसके प्रति असीम वात्सल्य के उफान का स्वाभाविक विकास हैं–

**'मैं पठवति अपने लरिका कौं, आवै मन बहराइ। सूर स्याम मेरो अति बालक, मारत ताहि रिंगाइ।।'**

सूर ने गोचारण प्रसंग में उत्पन्न आनंद का सरल तथा स्वाभाविक चित्रण कर कृष्ण तथा ग्वाल बालों के साथ तादात्मय स्थापित किया है कि कैसे गाय चराने का अपना अलग आनंद है सब मिलकर भोजन करते हैं। कृष्ण अन्य सखाओं से भोजन छीन–छीन कर खाते है और जुठन भी खा लेते हैं।

**(8) मातृ–हृदय**–सूर ने संयोग जन्य वात्सल्य के अंतर्गत बाल–लीला–विलास के वर्णन में आश्रय एवं आलंबन के विधि चित्र अंकित किए हैं। वे मातृ–हृदय के सबसे बड़े पारखी हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस संबंध को रेखांकित करते हुए लिखते हैं–

'सूर बाल–लीला वर्णन करने में अद्वितीय हैं, मैं कहूंगा सूरदास मातृ–हृदय का चित्र खींचने में अपना सानी नहीं रखते।' सूर ने यशोदा हृदय के साथ पूर्ण तादात्मय स्थापित कर लिया है। यशोदा के अत्यंत कोमल तथा क्षणिक कठोर हृदय का सूर ने पूर्ण स्वाभाविक वर्णन किया है। उनका हृदय अनगिनत अभिलाषाओं से परिपूर्ण है। यशोदा का हृदय जब लोक–विश्वासों और टोने–टोटकों की शरण लेता है तो स्वाभाविकता और भी अधिक हो जाती हैं। कृष्ण को किसी बात पर राजी करने के लिए मां विविध झूठे–सच्चे तर्कों का आश्रय लेती हैं।

## (ख) वियोगजन्य–वात्सल्य

सूर का संयोगजन्य वात्सल्य जितना विस्तृत एवं स्वाभाविक है, वियोगजन्य वात्सल्य उतना ही प्रभावशाली तथा मार्मिक हैं। संयोग की उत्कृष्टता वियोग के लिए समुचित पृष्ठभूमि तैयार करती है। वियोग की सहज, सरल अभिव्यक्ति मातृ–पितृ हृदय की विकलता, विह्वलता एवं अधीरता पूर्णतः मनोवैज्ञानिक आधार पर हृदय का स्पर्श करती हैं। 'सूरसागर' में संयोग के बीच भी कहीं–कहीं वियोग के छिट–पुट प्रसंग आ ही जाते हैं। कालियदमन के लिए जब कृष्ण यमुना में कूद पड़ते हैं, तब यशोदा की भाव विह्वलता दर्शनीय हैं–

**'खन भीतर, खन बाहिर आवति, खन आंगन इहिं भांति। सूर स्याम कौ टेरत जनती, नैंकु नहीं मन सांति।।'**

वियोग वात्सल्य का प्रमुख अवसर कृष्ण के मथुरा–प्रवास प्रसंग में आता है। जो यशोदा कृष्ण को खेलने के लिए भी दूर जाने से रोकती थी, वहीं परिस्थिति के वात्याचक्र में पड़कर अपने पुत्र कृष्ण को अक्रूर द्वारा मथुरा ले जाना यशोदा के लिए असह्य है। तभी यशोदा नंद को भी साथ में मथुरा भेजा ताकि कृष्ण को कुछ ही दिनों में अपने साथ लेकर वह वापस आ जाएं, किंतु एक दिन पश्चात् नंद अकेले ही ब्रज में लौट आए। यशोदा पुत्र–वियोग की आशंका से सिहर उठी, पुत्र की सुकुमारता और कंस की दुष्टता को देखकर उसका वियोग और भी तीव्र हो उठा। वियोगजन्य वात्सल्य संबंधी इस वर्णन को चार भागों में बांटा जा सकता है–

(*i*) कृष्ण का मथुरा प्रस्थान; (*ii*) नंद आदि का कृष्ण के बिना लौटना,

(*iii*) कुछ समय पश्चात् नंद यशोदा का वार्तालाप, (*iv*) उद्धव का ब्रज आगमन आदि।

(*i*) **कृष्ण का मथुरा प्रस्थान**–माता यशोदा, नंद, गोप, गोपियां सब प्रसन्न थे पर अचानक रंग में भंग हुआ। अक्रूर कंस का निमंत्रण लेकर आए और कृष्ण एवं बलराम को ले जाने का प्रस्ताव रखा। यशोदा पुत्र वियोग की कल्पना से व्याकुल हो उठीं। पुत्र की सुकुमारता और कंस की दुष्टता को देखकर उनका वियोग अत्यधिक तीव्र हो उठा–

**'देखि अक्रूर नर–नारि बिलखे। धनुर्भजन जस हेत बोले इन्हें, और डर नहीं सब कहि संतोपे।**
**महरि व्याकुल दौरि पांइ गहि लै परी, नंद उपनंद संग जाहु लैकै। कहत ब्रज–नारि नैननि नीर ढारि कै, इन्हनि कौ काज मथुरा कहा है?**
**सूर नृप क्रूर अक्रूर क्रूरै भए, धनुष देखन कह्यौ कपटी महा हे।।'**

माता यशोदा के हृदय की सर्वाधिक मार्मिक तथा प्रभावशाली अभिव्यंजना कृष्ण के मथुरा–प्रस्थान के समय होती है। अक्रूर कंस के आदेश से कृष्ण और बलराम को लेने आए हैं। यशोदा पुत्रों के मथुरा–गमन की बात सुनते ही चिंतित हो जाती है। कृष्ण के भावी वियोग जन्य पीड़ा का अनुभव करके फूट पड़ती हैं। वह अपनी आंखों के तारे कृष्ण को अलग नहीं करना चाहती चाहे प्राण ही क्यों न देना पड़े–

**'मेरे माई निधनी कौ धन माधौ। बारंबार निरखि सुख मानति, तजति नहीं पल आधौ।।'**

सूर ने 'निधनी कौ धन' में निरीहता और विवशता का चित्रण कर वियोग की अवस्था को दर्शाया है। संतोष के शांत सागर में पुत्र विक्षोभ–जनित तरंगों का संचार होने लगा है। जिन्हें गिना नहीं जा सकता। कृष्ण के लिए यशोदा का यह स्नेह नहीं है अपितु पुत्र के प्रति माता की ममता है। जिसकी गंभीर धारा में संसार के सारे संबंध और स्वार्थ डूब जाते हैं, माँ के हृदय से निकला हुआ निःश्वास है जो समस्त विश्व को प्राणवान् बनाता है, मातृत्व का अदम्य त्याग है जिसमें स्वयं मिटकर भी पुत्र की कल्याण–कामना की पावन भावना अंतनिहित हैं।

लाड़–प्यार में पले हुए कृष्ण जो ब्राहमणों एवं गुरूजनों को प्रणाम करने का शिष्टाचार तक नहीं जानते, वे मथुरा की असभ्य का आचार–व्यवहार कैसे समझेंगे? मथुरा के असिधारी असुर क्या इन बातों को सह सकेंगे? यशोदा का मातृ–हृदय यह सोचकर व्याकुल हो उठता है–

**'जसोदा बार–बार यौं भाषैं। है कोऊ ब्रज में हितू हमारौ, चलत गोपालहिं राखै।।'**

वे श्रीकृष्ण को सदैव अपने सामने देखते रहने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को प्रस्तुत हैं–

**'बरु यह गोधन हरौं कंस सब, मोहि बंदि लै मेलौ। इतनोई सुख कमलनयन मेरौ अंखियनि आगैं खेलो।।'**

कृष्ण को मथुरा–प्रस्थान करता जानकर यशोदा मूर्छित हो जाती हैं और जब कृष्ण मथुरा जाने का उद्यत रथारूढ़ के प्रति यशोदा का कथन अत्यंत मार्मिक हैं–

**''सूरदास' अवलोकि जसोदा, धरनी परी मुरझाई।।'**

जब बालक कृष्ण अपनी माता यशोदा को संसार की निःसारता चार दिन फूलने वाली सायन बेल की संज्ञा देकर समझाते हैं तो माता यशोदा का मातृ–हृदय ही टूट जाता है–

**'यह सुनि गिरी धरनि झुकि माता। कहा अक्रूर ठगौरी लाई, लिये जात दोउ भ्राता।।'**

यशोदा यही कामना करती हैं कि उसका पुत्र कृष्ण उससे जननी का नाता रखे। लेकिन वह सब संबंध छोड़कर मथुरा प्रस्थान कर गए

सुख–दुख की अनुभूति में एक दशा वह भी आती है, जब हृदय इतना भर आता है कि वाणी भावाभिव्यक्ति में असमर्थ होकर मूक हो जाती है, कंठ गद्‌गद् हो जाता है और टूटे–फूटे शब्द ही मुख से निकलते हैं। इस दशा में वाणी का कार्य आंखे करती हैं सूर द्वारा विरह की चरम अनुभूति का चित्रण प्रस्तुत हैं–

**'जब ही रथ अक्रूर चढ़े। तब रसना हरि नाम भाषिकै, लोचन नीर बढ़े।**
**महरि पुत्र कहि सोर लगायौ, तरु ज्यौं धरनि लुटाइ। देखति नारि चित्रसी ठाड़ी, चितये कुंवर कन्हाइ।।'**

(*ii*) **नंद आदि का कृष्ण के बिना लौटना**–नंद ने कृष्ण को मथुरा पहुंचाकर कुछ दिन वहां रूककर, कृष्ण को लौटा लाने का बहुत प्रयास किया। उनके चरणों में पड़े किंतु निष्फल रहे–

**'धाइ चरन परि हरिके, चलहु ब्रज को स्याम।'**

नंद ने अंत में यहां तक कह डाला कि मैं तुम्हारे बिना गोकुल नहीं जाऊंगा, तुम्हारी माता यशोदा के प्रश्नों के उत्तर में केसे दे पाऊंगा–

**'(मेरे) मोहन तुमहिं बिना नहिं जैहौं। महरि दौरि आगे जब ऐहै, कहा ताहि मैं कैहौं।।'**

कृष्ण पर नंद बाबा की बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह निष्ठुर होकर ज्ञान का उपदेश सुनाकर उठ खड़े हुए कृष्ण की उदासीन प्रतिक्रिया देखकर नंद बाबा अत्यंत दुखित हो गए–

**'ठाढ़ौ थक्यौ उतर नहिं आवै, लोचन जल न समात।।'**

नंद असह्य व्यथा को हृदय में लिए हुए अकेले चले आ रहे हैं, तो यशोदा पुत्र–वियोग की तीव्रता के कारण आपे में नहीं रहती।

वेदना के आधिक्य के कारण यशोदा मूर्छित होकर गिर पड़ी जिस प्रकार तुषारापात से कमलिनी मुरझा जाती है। यशोदा सुध आने के पश्चात् नंद पर बरस पड़ी। दशरथ का उदाहरण सुनाकर उन्हें कोसने लगीं–

**'कहं नवनीतचोर छांड़े बिनु देखत नार नई। तेहिं खन घोष सरोवर मानौ पुरइनि हेम हई।।'**

वियोग वेदन के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण यशोदा इस बात को भूल जाती हैं कि नंद भी विवश हैं, उनकी दशा भी यशोदा जैसी है वह उन्हें जी–भरकर बुरा–भला कहकर फटकारने लगीं–जैसे तुम यहां से कृष्ण को ले गए थे, वैसे लौटाकर ले भी क्यों नहीं आए–

**'नंद कहौ हो कहं छांड़े हरि। लै जु गए जैसे तुम ह्यांतै, ल्याए किन वैसाहिं आगैं धरि।।**
**पालि पोषि मै किए सयाने, जिन मारे गल मज्ज कंस अरि। अब भए तात देवकी बसुधौ, बाहं पकरि ल्याये न न्याव करि।।'**

यशोदा के कटुवचन पति के प्रति पत्नी की धृष्टता नहीं, अपितु पुत्र वियोगिनी माता के हृदय की उस गहरी व्यथा को सूचित करते हैं, जिसमें प्रिय वस्तुएं भी अप्रिय लगती हैं। ये उसकी विक्षिप्त–मनोदशा का सुंदर चित्रण हैं, जिनका विश्लेषण करना किसी के बस की बात नहीं।

कृष्ण–विछोह का दुःख नंद हृदय ही जानता है। कृष्ण के न लौटने के विषय में ब्रजवासियों के पूछने पर उनकी दशा अत्यंत कारुणिक हो जाती है–

**'कहौ नंद कहां छांडे कुमार। कैसैं प्रान रहे सुत विछुरत, पूछत है गोपी अरु ग्वार।।**
**करुना करै जसोदा माता, नैननि नीर बहै असरार। चितवत नंद ठगे से ठाढ़े, मानौ हारयौ हेम जुआर।।'**

(*iii*) **कुछ समय पश्चात् नंद यशोदा का वार्तालाप**–पुत्र–वियोग में नंद यशोदा को अधीर कर दिया। यशोदा कहती हैं कि दशरथ ने पुत्र वियोग में तड़प–तड़प कर अपना जीवन समाप्त कर दिया और एक तुम हो जो पुत्र को छोड़कर मुझे संदेशा देने यहां आए हों। वे अपने पुत्र को याद करती हैं। पुत्र की याद में वे अपना शरीर घुला देती हैं। कृष्ण की प्रिय वस्तुएं अब उन्हें शूल के समान चुभती हैं। दूध, नवनीत आदि कृष्ण की प्रिय वस्तुएं यशोदा के वात्सल्य–वियोग को अत्यधिक उद्दीप्त करती हैं। वह कृष्ण की प्रिय वस्तुओं का स्मरण करती हुई कहती हैं–

**'मेरे कुंवर कान्ह बिनु सब वैसे ही धरयौ रहै। को उठि प्रात होत लै माखन, को कर नेत गहै।।**
**सूने भवन जसोदा सुत के, गुनि–गुनि सूल सहै।'**

यशोदा को पुत्र–वियोग इतना असह्यनीय हो रहा है कि वह ब्रज छोड़कर मथुरा में वसुदेव और देवकी की दासी बनकर रहने को तैयार है। प्रेम में आत्म–विस्मृति की भावना गहरी हो जाती है और मिलन की उत्सुकता का उद्रेक समस्त भावों को तिरोभूत कर देता है–

**'हौं तौ माई मथुरा ही पै जैहौं। दासी ह्वै वसुदेव राइ की, दरसन देखत रैहौं।।'**

मातृ–हृदय का समूचा वात्सल्य उमड़ पड़ा, पुत्र कहीं भी हो, सकुशल रहे, यही माता की कामना होती है।

पुत्र के प्रिय खाद्य पदार्थों को देखते ही उसकी याद आ जाना स्वाभाविक ही है। माता को विश्वास नहीं होता कि उसके बिना अन्य कोई उसके पुत्र के खाने–पीने आदि की समुचित व्यवस्था कर सकता है। यह अविश्वास वात्सल्य–जनित ही है। कृष्ण राजा हो गए हैं, फिर भी यशोदा को चिंता है कि उन्हें प्रातःकाल ही कौन बिना मांगे माखन रोटी देता होगा–

**'जद्यपि मन समुझावत लोग, सूल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख जोग।**
**प्रातःकाल उठि माखन रोटी को बिनु मांगे देहै। को मेरे वा कान्ह कुंवर कौं छिनु–छिनु अंकम लैहैं।।'**

(*iv*) **उद्धव का ब्रज आगमन**–उद्धव के आगमन की घटना ने यशोदा और सभी ब्रजवासियों की कृष्ण के आगमन की बची–खुची आशा–लता पर तुषारापात कर दिया। उद्धव आरंभिक औपचारिकताओं के बाद ब्रजवासियों को निर्गुण ब्रह्म, ज्ञान और योग साधना का उपदेश देने लगे। उद्धव के इस बज्र–प्रहार को झेलकर भी आशान्वित यशोदा पुनः कृष्ण के लिए संदेश भेजती हैं–

**'कहियौ जसुमति की आसीस। जहां रहौ वहां नंद लाड़िलौ, जीवौ कोटि बरीस।।'**

यशोदा के कृष्ण–वियोग में उसकी निरीहता और पुत्र विषयक गाढ़ी रति उदासीनता के माध्यम से व्यक्त हुई है–

**'संदेसो देवकी सों कहियो। हौं तो धाय तिहारे सुत की, मया करत ही रहियो।**
**तुम तो टेव जानती ही हो तऊ मो पै कहि आवै। प्रात उठत मेरे लाल लड़ैतेहि माखन रोटी भावैं।।'**

उद्धव–आगमन प्रसंगों में वियोग–वात्सल्य वर्णन संक्षिप्त होने पर भी मर्मस्पर्शी हैं।

सूर का वात्सल्य वर्णन अत्यंत विस्तृत तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षणपूर्ण हैं। उसमें सूर की मौलिकता की अमिट छाप है। यह चित्रण इतना क्रमबद्ध, सुशृंखलित तथा पूर्ण है कि कोई भी पक्ष अछूता नहीं रह सका है। अनेक पदों में भावों की पुनरावृत्ति अवश्य है किंतु वह भी नवीनता एवं प्रभावात्मकता लिए हुए हैं। सारांश में कहा जा सकता है कि सूर का वात्सल्य–वर्णन अभूतपूर्व तथा अद्वितीय है। कृष्ण की बाल–लीलाओं का वर्णन सूर ने बहुत ही मधुर तथा हृदयकारी पदों में किया है सूर बाल–मनोविज्ञान के प्रकांड पंड़ित थे। बाल–मानस की सूक्ष्मातिसूक्ष्म वृत्ति से भिज्ञ थे। बालक के मन में कब कौन सी भावना उठती है, उसके संवेदनशील मन पर अनुकूल घटनाओं की कैसी प्रतिक्रिया होती हैं– इन सबका सूर को सूक्ष्म तथा तलस्पर्शी ज्ञान था। कवि ने अपने वात्सल्य चित्रण में बाल एवं मातृ मनोवृत्ति का सूक्ष्म, स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक तथा सांगोपांग चित्रण प्रस्तुत किया है कि यदि वात्सल्य–वर्णन संबंधित पद 'सूर–साहित्य' से पृथक कर दिए जाएं तो महाकवि का व्यक्तित्व खंडित हो जाएगा।

# अध्याय 6

# सहृदयता और भावुकता

सूरदास का 'भ्रमरगीत' सरस भावुकता और सहृदयता एवं वाग्विदग्धता की दृष्टि से हिंदी–काव्य की अमूल्य निधि है। उनके काव्य में विनय के पद, बाल–लीला वर्णन, गोपियों के प्रेम प्रसंग और श्रीकृष्ण के मथुरा–प्रवासकाल में उनके वियोग की व्यथा को सहती हुई आंसू बहाने वाली गोपियों के कोमल हृदय की सरस अभिव्यक्ति मिलती है। विनय के पदों में भगवान का महत्व और अपनी दीनता का उल्लेख कर अपने भावुक हृदय से अनेक भाव, धाराओं का सृजन किया है। वे कृष्ण की 'पद नौका की आस लगाए हुए कभी अपने को 'सब पतितन को राजा कहते हैं' और कभी कहते हैं 'सब पतितों का नायक' कभी 'एक–एक करि टरिहौ तथा 'विरह बिनु' करने की धमकी देने लगते हैं और कभी 'जो हम भले बुरे तो तेरे' कहकर उद्धार की प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार विनय के पदों में भक्ति का सागर उमड़ पड़ा है। सूर ने पुरुष हृदय को भी गोपियों की तुलना में कठोर सिद्ध नहीं किया है। सूर काव्य में श्रीकृष्ण एवं उद्धव दो प्रधान पुरुष पात्रों का दर्शन होता है। दोनों पात्रों का आरंभ में कठोरता का भाव मिलता है। श्रीकृष्ण कठोर प्रतीत होते है, क्योंकि वे गोपियों को विरह–सिंधु में डुबोकर स्वयं मथुरा रह रहे हैं और उद्धव इसलिए कठोर जान पड़ते हैं कि वे गोपियों की करुण दशा को आंखों से देखने के पश्चात् भी नीरस ज्ञानोपदेश देने के लिए उद्यत हैं किंतु यह सूर की अद्भुत प्रतिभा का ही चमत्कार है कि उन्होंने कठोर प्रतीत होने वाले इन दोनों पुरूषों के हृदय की समस्त कोमलता की अदभुत कौशल के साथ अभिव्यक्ति की है। श्रीकृष्ण गोकुल लौटकर नहीं आते पर गोकुलवासियों की याद में छटपटाते हैं और 'ऊधो मोहि ब्रज बिसरत नाहीं' कहकर अपने हृदय की वेदना को प्रकट कर देते हैं।

उद्धव अपने ज्ञान पर गर्व करते हुए मुस्कराकर गोकुल जाने को तैयार होते हैं। वे गोपियों के सम्मुख पहुच अनेक नीरस उपदेश देते हैं, किंतु जब लौटकर श्रीकृष्ण से 'दिन दस घोष चलहु गोपाल' की प्रार्थना करते हैं, तब मानो कवि उनके हृदय की समस्त मानवोचित कोमलता से ओत– प्रोत कर देता है। इस कोमलता, सहृदयता एवं भावुकता का 'भ्रमरगीत' के किसी भी पात्र में अभाव नहीं मिलता। पुरुष–हृदय दूसरों की करुण दशा को देखकर द्रवित हो जाता है। नारी– हृदय स्वतः द्रवणशील तथा कोमल होता है। सूर इन दोनों वर्गों के पात्रों की भावनाओं के माध्यम से अपनी समस्त सहृदयता एवं भावुकता लेकर 'भ्रमरगीत' में अवतीर्ण हुए हैं।

पुरुष हृदय जो कठोरता के आवरण में नवनीत–सी कोमलता छिपाये रहता है को सहृदय एवं भावुक बनाने के लिए नारी हृदय की कोमलता मात्र पर्याप्त नहीं है, अपितु वाक्–चातुरी एवं वाग्वदग्ध्य के सरल आघात भी उसके लिए अपेक्षित है, तभी उसकी कठोरता का आवरण टूटकर विच्छिल हो सकता है। सूर की गोपियों में इन दोनों बातों का पर्याप्त विकसित रूप मिलता है। वे बहुत चतुरता एवं वाग्विदग्धता से उद्धव के कठोर उपदेशों का सरल व सरस तर्कों सहित उत्तर देती हैं और श्रीकृष्ण के लिए अनेक उपालंभ सुनाकर अद्भुत वक्रोक्तियों से उन्हें इतना छका देती हैं कि वे अपने निर्गुण ज्ञान का भारी आवरण उतार फेकने की तैयारी करने लगते हैं। वस्तुतः सूर ने अपने समस्त 'भ्रमरगीत' को सहृदयता, भावुकता, चतुरता एवं वाग्विदग्धता की अनेक उक्तियों से युक्त कर अत्यंत सरस बना दिया है।

भाव–प्रवीण कलाकार अपनी अभिव्यक्ति अनूठे ढ़ंग से करता है, उसके कथन में चमत्कार और वैचित्र्य स्वभावतः आ ही जाता है। सूर के 'भ्रमरगीत' में जो चातुर्य, सहृदयता एवं भावुकता तथा वाग्वैदग्ध्यता पाई जाती है, वह उक्ति चमत्कार ही अतिशयता से प्रसूत नहीं हैं, अपितु उसमें भावातिरेक का स्पष्ट दर्शन है। जिस प्रकार किसी बाह्य कारण से सरोवर का जल हिल उठता है और उसमें उठने वाली वक्र तरंगें विभिन्न रूपों में स्पंदित होती हुई तट पर अपना रूप–सौंदर्य बिखेर देती है, उसी प्रकार सूर के हृदय में भी गोपियों की विरह–व्यथा को छेड़ने वाले उद्धव के कारण उठती हुई भाव–लहरियों की सरस वक्रोक्तियों के रूप में अभिव्यक्ति होती है। उन्होंने अपनी वाणी को जब गोपियों की विरह–व्यथा का रूप देकर भक्ति एवं प्रेम की रक्षा के लिए उद्धव के ज्ञान तथा योग को ललकारा है। बाल–लीलाओं तथा प्रेम–प्रसंग एवं क्रीड़ाओं के लिए सूर के पास आश्रय रूप में पर्याप्त घटनाएं थी, उनकी समस्त सहृदयता एवं भावुकता, चतुरता एवं वाग्विदग्धता का सहारा लेकर स्वतः अभिव्यक्त हो उठी हैं। विप्रलंभ में इन घटनाओं का प्रायः अभाव है। इसलिए अनेक विदग्धतापूर्ण अभिव्यक्ति प्रकारों का सहारा सूर को लेना पड़ा है। सूर का भ्रमरगीत वाग्वैदग्धता का भडार है

## सहृदयता और भावुकता

भ्रमरगीत प्रसंग में सूर ने विप्रलंभ शृंगार की सूक्ष्मता और गहराई को अनेक स्तरों पर काव्यमय बनाकर प्रकट किया है। भ्रमरगीत में प्राप्त भावुकता और सहृदयता गोपियों के विरह का प्राण है। सहृदयता के लिए सूर ने भावुकता और सृजनात्मक कल्पना का सहारा लिया हैं। सूर ने स्वरूप निरूपण में सौंदर्य और साहचर्य को भी स्थान दिया है। प्रेम विषयक अनेक भावुक प्रसगों और

आह्नाद लीलाओं का चित्र सूर ने किया है। सूरसागर में चित्रित संयोग शृंगार में भी, भावुकता की प्रचुरता है। भ्रमरगीत वियोग प्रधान होने के कारण भावुकता से संपन्न है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, 'सूर का संयोग–वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं हैं, प्रेम–संगीतमय जीवन की एक गहरी चलती धारा है, जिसमें अवगाहन करने पर दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं दिखाई देता है।'

**(1) सूर की सहृदयता**—वल्लभ–संप्रदाय में वात्सल्यासक्ति और दांपत्यशक्ति को अत्यंत महत्त्व दिया गया है। नंद, यशोदा और राधा के साथ अपने हृदय का तादात्मय स्थापित कर सूर प्रेमभक्त रहते भला उनके हृदय के भावों को वे कैसे न निकाल लाते ? सूर ने वात्सल्य और दांपत्य–दोनों प्रकार की रतियों का अति मर्मस्पर्शी चित्रण किया है, जिसमें संयोग और वियोग–दोनों पक्षों के अनेक हृदयगाही चित्र हैं। नंद के गृह में खेलते, नाचते, डोलते कृष्ण का रूप द्रष्टव्य है–

**'बलि गह बाल–रूप मुरारि। पाइ पैंजनि रटति रुन–झुन, नचावति नंद–नारि।**
**कबहुं हरि कौं लाइ आंगूरी, चलन सिखवति ग्वारि। कबहुं हृदय लगाइ हित करि, लेत अंचल उारि।**
**कबहुं हरि कौं चितै चूमति, कबहुं गावति गारि। कबहुं ले पाछे दुरावति, ह्यां नहीं बनवारि।**
**कबहुं अंग भूषन बनावति, राइ–लोन उतारि। सूर सुर–नर सबै मोहे, निरखि यह आनुहारि।।'**

वात्सल्य रस के समस्त तत्वों के दर्शन इस पद में हो जाते हैं। कृष्ण आलंबन हैं; यशोदा, आश्रय, कृष्ण की अनुपम छवि, रुनक–झुनक पैजानियां बजाते हुए चलना, नाचना आदि उद्दीपन हैं। यशोदा का हरि को देखना, चूमना, आंचल में छुपाना, पीछे की ओर दुराना आदि अनुभाव है, और हर्ष संचारी भाव। सूर ने वात्सल्य रस की मार्मिक अभिव्यक्ति कर हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है।

*बालक कृष्ण मणिमय आंगन में अपने प्रतिबिंब को पकड़ने की कोशिश में हैं। कभी वह अपनी छाया को पकड़ना चाहते हैं* और कभी–कभी किलक–किलक कर अपनी दंतुलियों का सौंदर्य दिखाते हैं। यशोदा पुत्र की क्रीड़ाओं को देखकर फूली नहीं समाती। वह बार–बार नंद को इस सुख में शामिल होने के लिए बुलाती हैं। नारी को मातृत्व–भावना अकेले ही वात्सल्य का अनुभव कर संतुष्ट नहीं होती, उसकी पूर्ण संतुष्टि–वात्सल्य का पूर्ण आस्वादन–यहां भी पति का योग चाहती है। मातृत्व के साथ दांपत्य की संयोग–कामना नारी हृदय का गूढ़ रहस्य है, जिसका उद्घाटन सूक्ष्म निरीक्षण करने वाले सुकवि ही कर सकते हैं। क्षणिक हवाइयां छोड़ने वाले कविम्मन्यों के बस की बात कहां–

**'किलकत कान्ह, घुटुरुवनि आवत। मनिमय कनक नंद कैं आंगन बिंब पकरिषैं धावत।**
**कबहुं निरखि हरि आपु छांह कौं कर सौं पकरन चाहत। किलकि हंसत राजत द्वै दंतियां, पुनि–पुनि तिहिं अवगाहत।**
**× × × × × अंचरा तर लैं ढांकि सूर के प्रभु कौं दूध पियावति।।'**

सांसारिक अनुभवों से दूर रहते हुए भी सूर ने सांसारिक संबंधों का अप्रतिम वर्णन किया है। पुरूष होकर भी वे माता के हृदय से विभूषित थे और अंधे होते हुए भी सूक्ष्मदर्शी और दूरद्रष्टा थे। सूर ने मां के हृदय की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति कर पदों में सुंदर स्फुरण किया है।

बाल विकास के प्रति मां के हृदय में अदम्य उत्सुकता रहती हैं। उसकी समस्त क्रियाएं और भावनाएं उसी में केन्द्रित हो जाती हैं। वह उस दिन को देखने को लालायित रहती हैं, जब उसका लाल घुटनों पर चलकर उसके पास आयेगा, प्रथम बार तोतली वाणी से निकले हुए 'मॉं' शब्द के माधुर्य पर वह संसार की समस्त विभूतियों को न्यौछावर कर सकती है। त्याग की यह भावना मातृत्व की देन है, इन्हीं भावनाओं की सुंदर अभिव्यक्ति सूर ने की है। मां का भीरु हृदय पुत्र की अनिष्ट की आशंका से विचलित हो उठता है, तभी वह अपने पुत्र की भौंह पर दिठौना लगा देती है। इस भाव को दर्शाने के लिए सूर का पद द्रष्टव्य हैं–

**'लालन, वारी या मुख ऊपर। माई मोरिहि दीठि न लागै तातैं मसि–बिंदास दियो भूपर।**
**सरबस मैं पहिले की वारयौ, नान्हीं नान्हीं दंतुली दूर पर। अब कहा करौं निछावरि सूरज, सोचति अपने लालन जू पर।।'**

बच्चे के नामकरण और अन्नप्रशान आदि संस्कारों के अवसर पर माता का हृदय फूला नहीं समाता। कर्मछेदन में उसके हृदय में मोद के साथ धुक–पुक भी होती रहती है कि उनके लाल को कान छिदाने में कष्ट होगा। कान छेदे गए। सूर ने उस समय की दशा का सहृदयता के साथ चित्रण किया है–

**'लोचन दोऊ भरि–भरि माता कनछेदन देखत जिय मुरकी।'**

सूर ने शंकालु मां के हृदय को अति रम्य चित्रण किया है वह कहते हैं कि घर से निकलते ही उसके लाल पर न जाने क्या विपत्ति आ जाए इस शंका से ग्रस्त मां का हृदय व्याकुल रहता है। छोटा सा बालक खेलने के लिए दूर चला जाय, तो न जाने कहां बहक जाय ? पर बच्चे तो बच्चे ही हैं। उनकी जिद का क्या कहना ? मजबूर होकर माता को साम छोड़कर दाम नीति का आश्रय लेना ही पड़ता है–

**'खेलन दूर जात कत कान्हा। आजु सुन्यौ मैं हाऊ आयौ, तुम नहिं जानत नान्हा।**
**इक लरिका अबहीं भजिआयौ, रोवत देख्यौ ताहि। कान तोरि वह लेत सबनि के लरिका जानत जाहि।।'**

यशोदा नंदन कृष्ण को बाल्यावस्था में माखन–चोरी की आदत पड़ जाती है, नित्य घर–घर कमोरी साफ करने लगते हैं, अकेले ही नहीं साथ में मित्रों का गिरोह भी बना लिया खाते कम थे, पर बिखेरते अधिक थे। अंततः गोपियों को यशोदा से शिकायत करनी पड़ी पर क्या यशोदा का मातृ–हृदय कृष्ण के विरुद्ध उस अभियोग को सहज स्वीकारता। सूर ने माता की सहृदयता का परिचय करवाया है–

**'मेरौ गोपाल तनक सौ, कहा करि जानै दधि की चोरी। हाथ नचावति आवति ग्वारिनि, जीभ करै किन थोरी।**
**कब सींकै चढ़ि माखन खायौ, कब दधि–मटुकी फोरी। अंगुरी करि कबहुं नहिं चाखत, घर ही भरी कमोरी।**

कृष्ण का उत्साह और भी बढ़ जाता है, वे पक्के चोर बन गए। माखन चुराने के साथ उन्हें रस की प्राप्ति होती है। अपने लाल के अनिष्ट–विषय में किसी के द्वारा कुछ शब्दों के प्रयोग की आशंका मात्र माता के हृदय को कंपा देने के लिए पर्याप्त है। सूर ने आशंकाग्रस्त मातृ–हृदय की अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है–

**'करि मनुहर कोसबे के डर भरि–भरि देति जसोदा मात।'**

कृष्ण बड़े भाई द्वारा चिढ़ाये जाने पर बच्चों के हृदय में जो आत्म–गौरव की भावना जाग्रत होती है, वह उन्हें शिकायत करने के लिए उत्तेजित करती है। बच्चे अपने सुख–दुःख की बात सबसे अधिक अपनी माता से ही कहना चाहते हैं, क्योंकि उनके लिए वही सबसे अधिक निश्छल स्नेह रखती है। यही कारण है कि खेल ही खेल में बलराम ने कृष्ण को मोल लिया हुआ बताया तो कृष्ण ने घर आकर मैया से शिकायत की–

**'मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ। मोसौं कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ।**
**गोरे नंद जसोदा गोरी, तू कत स्यामल गात। चुटकी दै दै ग्वाल नचावत, हंसत सबै मुसकात।।'**

ऐसे बच्चों के साथ न खेलना, और उनसे दूर रहने की चेष्टा करना, बाल–हृदय का स्वभाव है। बालक–हृदय स्नेह का भूखा होता है, वह उनके साथ क्यों खेले, जिनसे उसे खीझ और झुंझलाहट के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता है।

भ्रमरगीत प्रसंग सहृदयता का व्यापक रूप से चित्रण हुआ है। उद्धव की योगचर्या सुनकर गोपिया उनकी बातों का तर्क से उत्तर नही देती, वे अपना हृदय ही खोल कर रख देती हैं–

**'प्रान हमारे परम मनोहर कमल नयन सुखरासी। का अपराध जोग लिखि पठवत प्रेम–भजन तजि करत उदासी।।'**

उनकी आंखें प्रतिक्षण हरि दर्शन की भूखी रहती हैं। दिन–रात उनके नेत्रों से उनके बिना अश्रु–वर्षा होती रहती है। कृष्ण उनके लिए 'हारिल की लकरी' के समान हैं। उद्धव के वचन यद्यपि उन्हें अत्यंत कटु प्रतीत होते हैं, किंतु तब भी वे नम्रता का ही व्यवहार करती हैं। वे कहती है कि हे ऊधौ! हम तो आपका जोग भी मान लेती हैं, पर विवशता तो यह है कि जोग मन से किया जायेगा और मन हमारे पास रहा नहीं, वह चला गया कृष्ण के साथ। फिर दस–बीस मन होने पर एक मन से जोग की साधना भी कर लेतीं। लेकिन मन एक ही है–

**'ऊधौ मन नाहिं दस बीस। एक हुतौ सो गयौ स्याम संग को अवराधै ईस।'**

सूर की सहृदयता का परिचय भ्रमरगीत प्रसंग में विरहावस्था और तरलता के प्रस्तुतीकरण मिल जाता है। 'प्रेय को पाती' पढ़ करके गोपियों की जो दशा हुई, वह सूर जैसे सहृदय कवि की लेखनी से ही चित्रित हो सकती है–

**'निरखति अंक स्याम सुंदर के, बार–बार लावतिं लै छाती। लोचन जल कागद मसि मिलि कै, ह्वै गई स्याम स्याम जू की पाती।।**

संयोग कालीन कोई वस्तु वियोग में अच्छी नहीं लगती। यह चंद्रमा विरहिनियों को अधिक जलाता है। इसी भांति मधुबन भी नहीं सुहाता–

**'मधुबन तुम क्यों रहत हरे। बिरह बियोग स्याम सुंदर के, ठाढ़े क्यों न जरे।**

गोपियों की शिकायत में उनका हृदय बोलता है कि जड़ बादल तक अपनी अवधि जानकर बरसने आ गए, किंतु प्रिय तुम नहीं आए।

उद्धव गोपी संवाद के प्रायः सभी पद सहृदयता से ओत–प्रोत हैं कोयल के वन में कूहू–कूहू करने से प्रिय की याद और बढ़ जाती है। वे उद्धव से कहती हैं–

**'ऊधौ कोकिल कूजत कानन। तुम हमकौं उपदेश करत हौ, भस्म लगावन आनन।।'**

सहृदयता की इतनी सहज अभिव्यक्ति सूर की विचित्र प्रतिभा के फलस्वरूप है। उनकी गोपिया एक ओर उद्धव के प्रति व्यंग एवं वाग्विदग्धतापूर्ण उपालंभ सुनाती हैं और दूसरी ओर अपनी भावुकता की बाढ़ को भी नहीं रोक पातीं। उनकी वेदना हृदय के

सीमाओं की बाढ़ को भी नहीं रोक पातीं। उनकी वेदना हृदय की सीमाओं को तोड़कर अत्यंत सहज भाव से रात्रि की तड़पन उद्धव को सुनाए बिना नहीं रहती–

**'मधुकर! प्रीति किए पछितानी। हम जानी ऐसैहि निबहैगी, उन कछु औरे ठानी।**
**वा मोहन कौं कौन पतीजै, बोलत मधुरी बानी। हमकौं लिखि लिखि जोग पठावत, आपु करत रजधानी।**
**सूनी सेज सुहाइ न हरि बिनु, जागत रैनि बिहानी। × × × × ×**
**'सूरदास' प्रभु मिलि के बिछुरे, तातैं भईं दिवानी।।'**

सूर की गोपियों की सहृदयता मिश्रित चतुरता तथा वाग्विदग्धता अपने अंदर वह शक्ति रखती है, जिसके कारण अंत में कृष्ण को भी कहना पड़ता है कि–

**'ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं। हंस सुता की सुंदर कगरी, अरु कुंजन की छाहीं।**
**वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं। ग्वाल–बाल मिलि करत कुलाहल, नाचत गहि–गहि बाहीं।**
**यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुक्ताहल जाहीं। जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तन नाहीं।।'**

इस उद्धव से स्पष्ट हो जाता है कि भ्रमरगीत में विप्रलंभ शृंगार की प्रवाहित सरिता उत्स सहृदयता और भावुकता ही है। गोपियों के मुख से निसृत एक–एक क्षण इसके प्रमाण हैं।

**सूर की भावुकता**–सूर की भावुकता वियोग के क्षेत्र में अधिक मुखर हुई है। वियोग की वेदना ही काव्य की आत्मा है। वियोग की स्थिति में कवि के हृदय से निकलने वाले उद्‌गारों में सच्चाई होती है। भ्रमरगीत की सृष्टि गोपियों एवं राधा के विरह–चित्रण के लिए ही हुई है, साथ ही निर्गुण की खंडता और सगुण की मंडना हुई है।

कंस के आमंत्रण पर ब्रज से मथुरा जाने पर कृष्ण उसे मार कर वहीं रहने को विवश हो जाते हैं और ब्रज वापस नहीं आए। वे राज–काज में ऐसे उलझे कि गोपियों की विरह–व्यथा और प्रेम की अनुभूति को समझते हुए भी ब्रज न आ सके। सूर ने कृष्ण की भावुकता का अत्यंत मार्मिकता के साथ वर्णन किया है, कृष्ण गोकुलवासियों का स्मरण करते हैं

**'सुनहुं उपंग–सुत मोहि न बिसरत ब्रजवासी सुखदाई × × × × × यह चित होत जाउं में अब ही, यहां नहीं मन लागत।।'**

किंतु उनकी इस भावुकता में सहृदयता एवं वाक्–चातुरी का सुंदर समन्वय हुआ है–

**'कहियो नंद कठोर भए। हम दोउ बीरै परधर मानौ सौंपि गए।**
**तनक–तनक तै पालि बड़े किए बहुतैं सुख दिखराए। गोचारण को चलत हमारे पीछे कोसक धाए।।'**

श्रीकृष्ण अत्यंत भावविभोर हो ब्रजवासियों के साथ अपने माता–पिता का भी स्मरण कर रहे हैं, किंतु साथ ही वे अपनी ब्रज न आने की भूल भी छिपाना चाहते हैं। बड़ी चतुरता एवं वाग्वैदग्ध्यपूर्ण युक्तियों से वे नंद को ही दोषी ठहराते हुए कहते हैं कि नंद ने हम दोनों भाइयों को शैशवास्था से पालकर बड़ा ही नहीं किया अपितु गाय चराने के लिए हमें अकेला नहीं जाने देते थे–कोसों तक हमारे पीछे दौड़े चले आते थे, वहीं इतने कठोर हो गए है कि हमें मथुरा छोड़कर हमारी याद भुला बैठे हैं। कृष्ण ने भावुकता के साथ अद्‌भुत वाक्–चातुरी का परिचय दिया है। गोपियों में सर्वाधिक भावुकता है।

सूर ने बाल भाव का अत्यंत सुंदर और स्वाभाविक वर्णन किया है। बच्चों की मनोवृत्तियों, व्यापारों और चेष्टाओं का साकार और सजीव चित्रण सूरसागर में मिलता है। सूर की अंतर्दृष्टि मानव–मान की तह में गोता लगाकर भावरत्न लाने में बेजोड़ हैं। बालकों की दैनिक चर्या के सूक्ष्म भेद, छोटे से छोटे व्यापार, और गूढ़ से गूढ़ अनुभूति को चित्रित करना कवि नहीं भूलता। एक के बाद दूसरा चित्र इतनी सफाई से सूर ने आंका है कि उसकी चित्रपाटी को सौंदर्य देखते ही बनता है। माखन खाते समय कृष्ण का धूलधूसरित स्वरूप द्रष्टव्य है।

**'सोभित कर नवनीत लिए। घुटुरुनि चलत रेनु–तन–मंडित, मुख दधि लेप किए।'**

यह कृष्ण का स्वाभाविक रूप है, जो उन्होंने स्वयं अपनी हरकतों से बनाया है।

कभी–कभी बच्चों में खेल–खेल में ही एक दूसरे को डराने के भाव आ जाते हैं परिणामतः ऐसी घटनाएं घट जाती है जिनके कारण कृष्ण को शिकायत भी करनी पड़ जाती है–

**'मैया बहुत बुरौ बलदाऊ। कहन लग्यौ बन बड़ौ तमासौ, सब मौड़ा मिलि आऊ।**
**मोहूं कौ चुचकारि गयो लै, जहां सघन बन झाऊ। भागि चलौ कहि गयो उआं तै, काटि खाइ रे हाऊ।।'**

कृष्ण अपने ज्ञानी–योगी सखा उद्धव को गोपियों को समझाने भेजते हैं। उद्धव ने स्वयं गोपियों की दयनीय विरह–दशा को

देखा। कृष्ण की निष्ठुरता के लिए उपालंभों में विरह का सुंदर और विशद् चित्र प्राप्त होता हैं। डॉ० मुंशीराम शर्मा का कथन द्रष्टव्य है-

'सूर के हृदय की धड़कन और तड़पन विप्रलंभ के वर्णन में ऐसी प्रकट हुई हैं, मानो समस्त हृदय योग दे रहा है।

भ्रमरगीत में उत्कृष्ट रसात्मकता है, जिसमें विरह व्यथित हृदय के गहन–से–गहन कोने तक का चित्रण है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में– 'उस विरह का कोई कूल किनारा नहीं, कोई हदो हिसाब नहीं।' ग्वाल–बाल भी कृष्ण के बिना ऐसे ही मूक उदास, जड़, बेहाल हो रहे है। माता यशोदा अत्यंत दीन–हीन बनकर भावुकतापूर्ण संदेशा भेजती हैं–

**'संदेसौ देवकी सौं कहियौ। हौं तौ धाइ तिहारे सुत की, मया करत ही रहियौ।**
**जदपि टेव तुम जानतिं उनकी, तऊ मोहिं कहि आवै। प्रात होत मेरे लाल लड़ैतैं, माखन रोटी भावै।**
**तेल उबटनौ अरु तातौ जल, ताहि देखि भजि जाते। जोइ जोइ मांगत सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि कै न्हाते।**
**सूर पथिक सुनि मोहिं रैनि दिन, बढ़यौ रहत उर सोच। मेरौ अलक लड़ैतो मोहन, ह्वै है करत संकोच।।**

गोपियों का विरह वर्णन सूर ने विशदता और सहृदयता के साथ किया है। मदन गोपाल के बिना संध्या प्रभात यमुना वनस्पतियां आदि प्रकृति के सुंदर दृश्य भी मनहूस और उदास दिखाई देते हैं। संध्या होते ही उन्हें प्रिय की याद आती है

**'एहि बिरियां बनतें आवते। दूरहि ते वह बेनु अधर धरि बारंबार बजावते।।'**

गोपियां इतनी भावुक हो जाती हैं कि संयोग काल में सुख और आनंद देने वाली वस्तुओं को देख–देखकर प्रिय की स्मृतियों में खो जाती हैं। उनका वियोग अत्यधिक करुण हो आता है उन्हें अब वे आनंद देने वाली वस्तुएं, प्राकृतिक उपकरण असहय हो जाते हैं जिनसे उनकी भावुकता बढ़ जाती है–

**'बिनु गुपाल बैरनि भईं कुंजैं। तब वै लता लागति तन सीतल, अब भईं बिषम ज्वाल की पुंजैं।।**
**वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलनि अलि गुंजैं। पवन, पान, घनसार, सजीवन, दधिसुत किरनि भानु भई भुंजैं।।**
**यह ऊधौ कहियौ माधौं सौं, मदन मारि कीन्हीं हम लुंजैं। 'सूरदास' प्रभु तुम्हरे दरस कौं, मग जोवत अंखियां भई छुंजैं।।**

प्रिय ही नहीं, प्रिय का वर्ण साम्य तथा प्रिय से संबंधित वस्तुएं भी उन्हें प्रिय से मिलने का आनंद देती हैं। वे भाव विभोर हो जाती हैं। तभी स्याम अंकों में लिखी स्याम की पाती को वे बार–बार छाती से लगाती हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने गोपियों की भावुकता के संबंध में लिखा हैं–

'यहां भावधिपति सूर ने भाव को और आधिक्य व्यंजित करने के लिए शब्द–साम्य की सहायता ऐसे कौशल से ली है कि एक बार शब्दों का साधारण अर्थ लेने से जिस भाव की अधिकता सूचित हुई, आगे उनका श्लिष्ट अर्थ लेने से उसी भाव की और अधिकता व्यंजित हुई है। इससे जो लाघव हुआ है, मजमून में जो चुस्ती आयी है–यह तो है ही, साथ ही प्रेम की अतमूर्त एकनिष्ठ मानसिक दशा में चित्र का रंग चटकीला हो गया है।'

गोपियां बड़े ही कौशल के साथ कुब्जा को माध्यम बनाकर वाग्विदग्धता एवं चतुरता का परिचय देती हुई कहती हैं

**'बरु वै कुब्जा भलो कियो। सुनि–सुनि समाचार ऊधौ मो कछुक सिरात हियो।।**
**जाको गुन, गति, नाम, रूप हरि हरियो, फिरि न दियो। तिन अपनो मन रहत न जान्यो हंसि–हंसि लोग जियो।।**
**सूर तनिक चंदन चढ़ाय तन ब्रजपति बस्य कियो। और सकल नागरि नारिन कौ दासी दांव लियो।।'**

यह सुनकर गोपियों को अच्छा लगा कि कृष्ण को कुब्जा ने वश में कर लिया है, उन्हें संतोष हो रहा है। कृष्ण अत्यंत चतुर बनते थे वे हमें धोखा दे गए, किंतु वे धोखा देने का अच्छा फल भी पा गए। कुब्जा ने उनके मन को चुरा लिया है। सूर की गोपियों में इतनी समझ है कि उन्होंने चतुरतापूर्ण ढंग से अपनी भावुकता का परिचय दे दिया है।

भ्रमरगीत में गोपियों का कृष्ण–विरह अत्यंत विशद् और गंभीर है। विरह का प्रसार जड़–चेतन सभी तक है। शुक्ल जी लिखते हैं, 'सूर के निवरह में व्यापकता है। विरह–स्थल जिस प्रकार घर की चारदीवारी के भीतर तक ही न रहकर यमुन के तीर मैदान कछारों, करील के कुंजों और वनस्पतियों तक फैला है, उसी प्रकार गोपियों का विरह–वर्णन भी सर्वत्र व्याप्त है यथा

**'देखियति कालिंदी अति कारी। अहौ पथिक कहियौ उन हरि सौं, भई बिरह जुर जारी।।**
**गिरिप्रजंक तैं गिरति धरनि धंसि, तरंग तरफ तन भारी। तट बारू उपचार चूर, जलपूर प्रस्वेद पनारी।।**
**× × × × × 'सूरदास' प्रभु जो जमुना गति, सो गति भई हमारी।।'**

गोपियां अपनी प्रिय को वन–वन ढूंढती हैं, कहीं न पाकर निराश हो जाती हैं।' ऋतुओं का आना जाना लगा रहता है प्रकृति पर उनका रंग वैसा चढ़ता–उतरता दिखाई देता है। भिन्न ऋतुओं की वस्तुएं देखकर गोपियों के हृदय में मिलन के भाव उत्पन्न

होते हैं, वैसे ही भाव कृष्ण के हृदय में क्यों नहीं उत्पन्न होते ? जान पड़ता है, ये गोपियां उस तरफ जाती ही नहीं, जिधर कृष्ण की निवास स्थली है। सारी की सारी गोपियां वृंदावन में ही आ आकर अपना अड्डा जमाती हैं।' कृष्ण के वियोग में एक ओर बादल बरसते हैं, एक ओर गोपियों के नयन–अश्रु बरसते हैं, सूर ने दोनों की समानता का वर्णन विरह की चरमावस्था की अनुभूति कराने के लिए किया है–

**'निसि दिन बरषत नैन हमारे। सदा रहति बरषा रितु हम पर, जब तैं स्याम सिधारे।।**
**दृग अंजन न रहत निसि बासर, कर कपोल भाए कारे। कंचुकिपट सूखत नहिं कबहूं, उस बिच बहत पनारे।।**
**आंसू सलिल सबै भइ काया, पल न जात रिस टारे। 'सूरदास' प्रभु यहै परेखौ, गोकुल काहैं बिसारे।।'**

सूरदास कहते हैं कि गोपियों के नयनों की अश्रु–जलधारा ने बादलों को भी परास्त कर दिया है, उनके सामने की घन भी अपमानित महसूस कर रहे हैं। इसी भाव को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है–

**'सखि इन नैननि तैं घन हारे। बिनहीं रितु बरषत निसि बासर, सदा मलिन दोउ तारे।।'**

व्यंग्योक्ति करते हुए गोपियां कृष्ण और उद्धव पर एक साथ आक्रमण करते हुए कुब्जा प्रसंग छेड़ देती हैं। वह उद्धव से कहती हैं कि तुम सीधी बात क्यों नहीं कहते कि कृष्ण कुब्जा के मोह–पाश में उलझकर गोकुल आने में असमर्थ हो गए हैं। निर्गुण ब्रह्म की आराधना का पाठ पढ़ाकर हमें क्यों भुलावे में रखना चाहते हों ? तुम हमें यहां योग की शिक्षा देने के लिए आए हो और वहां श्रीकृष्ण को कुब्जा के दर्शन–स्पर्श के लिए छोड़ आए हो। गोपियों ने भावपक्ष में अपूर्व वाक्चातुरी के साथ भावुकता का परिचय दिया है–

**'आयो घोष बड़ौ ब्यौपारी। खेप लादि गुरु ज्ञान जोग की, ब्रज मैं आनि उतारी।।**
**फाटक दै के हाटक मांगत, भोरौ निपट सुधारी। धुरही तैं खोटौ खायौ है, लिए फिरत सिर भारी।।**
**इनकै कहे कौन डहकावै, ऐसी कौन अनारी। अपनौ दूध छांड़ि को पीवै, खार कूप कौ बारी।।'**

गोपियों की कृष्ण–विषयक रति की दृढ़ता उनके चतुरता भरे ज्ञान और योग के विरोध में स्पष्ट झलक रही है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है भ्रमरगीत में विरह का अथाह समुद्र लहराता है। गोपियां अपने प्रेम के कोमल पक्ष का ही उद्घाटन करती हैं। गंभीरता तथा प्रेमजन्य वेदना का वर्चस्व है। महाकवि सूर की विशेषता यही रही है कि इस अगाध विरह की अनुभूति, उन्होंने व्यंग्य–विनोद और उपालंभ के मधुर वातावरण में कराई हैं। आंसू और मुस्कान का संयोग सूर जैसे भावुक और सहृदय कवि ही करा सकते हैं। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन द्रष्टव्य हैं–

'यहां गोपियों के विरह–वचनों में यह सौंदर्य आ गया है मानो कोई शिशु रोता–रोता मुस्करा दें, किंतु फिर उसे अपनी वेदना का ध्यान आ जाए और फिर वह पुनः रोने लगे। वचन की भाव–प्रेरित वक्रता द्वारा प्रेम–प्रसूत न जाने कितनी अंतर्वृत्तियों का मनोहर उद्घाटन है।'

उद्धव ज्ञानोपदेश देते हैं, गोपियां खीझ उठती हैं और उद्धव को अपनी व्यंग्यों से आहत करने लगती हैं। इस व्यंग्य में जहां एक ओर वक्रता है दूसरी ओर सहृदयता तथा भावुकता से पुष्ट विरह–भाव भी दिखाई देता है। प्रिय को न पा सकने की स्थिति में वे चरम निराशा के क्षणों में भी प्रिय के लिए मंगल कामना करती हैं। वे कृष्ण को निष्ठुर तथा छलिया मानती हैं, फिर भी इतनी सहृदय है कि बार–बार कामना करती हैं–

**'जहं जहं रहौ, राज करौ, तहं तहं कोटि सिर भार। यह असीम हम देति सूर सुनु, न्हाति खसै जनि बार।।'**

सूर मन के सूक्ष्म भावों की वक्रता और विदग्धता की पूर्ण अभिव्यंजना में अपनी समता नहीं रखते। भाव–जगत के मर्मज्ञ सूर की कला कुशलता जितनी ही सहृदय है, भावुकता उतनी अनूठी है।

# अध्याय 7

# गीति–तत्व

'गीत' का अर्थ गाने से होता है, जिसके आधार पर गीत प्रमुख रूप से लोकगीत एवं साहित्यिक गीत दो प्रकार के होते हैं। गेयता गीत का प्रमुख तत्व है जिसे संगीतात्मकता की संज्ञा दी गयी है। संगीतात्मकता के आधार पर भावप्रधान प्रभावोत्पादक कोमलकांत पदावली युक्त वह संक्षिप्त रचना गीत कहलाती है, जो स्वर, लय तथा ताल युक्त होकर वाद्य यंत्रों के सयोग से सुगमता से गाया जा सकता है।

गीत में भावों का सहज एवं प्रवाहमान स्वरूप उपस्थित होता है। सफल गीतिकाव्य की दृष्टि से निम्न चार तत्त्व परमावश्यक हैं– (1) आत्मप्रकाशन, (2) भावों की गहनता, (3) संक्षिप्ति तथा (4) संगीतात्मकता। सूर ने वस्तुतः गीतिकाव्य की जिस पद्धति का अनुसरण किया है वह जयदेव और विद्यापति की गीति–पद्धति के सर्वाधिक निकट दिखाई देती है अथवा उसके साथ मेल खाती है।

सूर की रचनाओं में 'सूरसागर' गीति तत्त्व का प्रतिनिधि ग्रंथ है। इसमें भक्ति, वात्सल्य और शृंगार की त्रिवेणी मनमोहक ढंग से खुलकर कल्लौल कर रही है।

सगुण भक्ति धारा के कवियों ने गीति–काव्य की परंपरा को अपनाया है। सूर ने गीत परंपरा को अत्यधिक गौरवान्वित किया है इसमें उनका विशिष्ट स्थान है।

सूर में माधुर्य, प्रसाद ओज तीनों गुणों का समावेश मिलता है। इस संबंध में डॉ० मुंशीराम शर्मा का कथन द्रष्टव्य है

"सूर की रचना यद्यपि प्रधान रूप से प्रसाद गुण संपन्न एवं माधुर्य भाव मंडित है तथा उसमें ओज की पर्याप्त मात्रा विद्यमान है। सूर ने अनेक स्थानों पर शृंगार के अंतर्गत वीर रस का वर्णन किया है।"

उनका गीति–साहित्य सभी दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। उनके काव्य में गीति–तत्त्व की सभी विशेषताए पाई जाती है। अष्टछाप के अन्य कवियों ने भी पद–साहित्य की रचना की है, किंतु उनमें से कोई भी सूर के समान तेजस्वी नहीं निकला। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन द्रष्टव्य हैं–

"उन आठ वीणाओं में सबसे ऊंचा स्वर सूर की वीणा का ही था।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि हिंदी में गीतिकाव्य–परंपरा के क्षेत्र में सूर का अद्वितीय स्थान है। सूर के पदों में जिस स्वानुभूति, संगीत, कला और सहृदयता के दर्शन होते हैं वह अन्य कवियों के गीति–काव्य में दुर्लभ हैं।

**(1) आत्मप्रकाशन**–सूर की आत्मग्लानि का भाव उनके पदों में व्यक्त हुआ है। उनको इसी बात का क्लेष है कि वे अपने आप को सांसारिक प्रलोभनों से मुक्त नहीं कर सके। उन्हें यह ज्ञात है कि जब तक उनका मन संसार के विषय–भोगों में लिप्त रहता है, तब तक प्रभु की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस दृष्टि से सूर के पद द्रष्टव्य हैं–

**'ऐसै करत अनेक जन्म गए, मन संतोष न पायौ। दिन–दिन अधिक दुरासा लाग्यो, सकल लोक भ्रमि आयौ।**
**सुनि सुनि स्वर्ग, रसातल, भूतल तहां–तहां उठि धायौ। काम क्रोध मद लोभ अगिनि तै कहूं न जरत बुझायौ।**
**सुत तनया बनिता विनोद रस इहिं जुर जरनि जरायौ। मैं अग्यान अकुलाई, अधिक लै जरत मांझ घृतनायौ।**
**भ्रमि भ्रमि अब हारयौ हित अपन, देखि अनल जग छायौ। सूरदास प्रभु तुम्हारी कृपा बिनु, कैसे जात नझायौ।।'**

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सूर के पदों में प्रेम–तत्त्व की बहुलता है। सूर के पदों में वल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग का स्वरूप प्राप्त होता है। इसी कारण सूर के पदों में जो सख्य–भाव और गोपी–भाव मिलता है वह अन्य किसी में नहीं मिलती। सूर अपने उपास्य भगवान श्रीकृष्ण के शील और मर्यादा की कहीं–कहीं उपेक्षा भी किए हैं। इस संबंध में सूर की गोपियों का कथन दर्शनीय है। उनकी गोपियां श्रीकृष्ण के प्रति कहती हैं–

**'काहे को गोपीनाथ कहावत ? जों पै मधुकर कहत हमारे गोकुल काहे न आवत ?**
**सपने की पहिचानि जानि कै हमहिं कलंक लगावत। जो पै श्याम कूबरी रीझै सो किन नाम धरावत।**
**ज्यों गजराज काज के औसर औरै दसन दिखावत ?**

सूर को संसार से उपेक्षा, परिवार से तिरस्कार और अपने आप से खिन्नता के कारण ईश्वर की भक्ति ही एकमात्र शरण के रूप में दिखाई दी, जो किसी अपंग, असहाय, निर्धन, निष्कासित, उपेक्षित, दीनहीन के लिए सुलभ है। अपनी अंतरात्मा से सूर ने

अपने प्रभु को भाव सुमन अर्पित किए हैं। कंठों से निकलने वाला करुण संगीत, हाथ में इकतारा और करताल नेत्रों में असहायता के आंसू और अनन्य शरण पर अगाध विश्वास ने सूर को प्रतिदिन लोक में भक्तिमार्ग के यात्रियों में विशिष्ट स्थान प्रदान किया है। वे अंतरतम की गहराई से प्रभु के समक्ष आत्मनिवेदन करते हैं।

सूर भगवान् की भक्ति करते हुए अपने आप आत्म–निरीक्षण करना उनकी भक्ति की अपनी विशेषता है। इनका विश्वास है कि अपने पतित जीवन को उघाड़कर प्रभु के सामने रख देने से प्रभु की उन पर अवश्य कृपा होगी। वे अपने दोष देखते हैं और अपनी बुराइयों व पापों के लिए भी लज्जित होते हैं–

**"मो सम कौन कुटिल खल कामी भरि भरि उदर विषय रस चाख्यौ जैसे सूकर ग्रामी।"**

यह दैन्य की मार्मिक अभिव्यक्ति है। सूर ऐसा अनुभव करते हैं कि वे स्वयं भ्रम में हैं। उन्हें अपनी आत्मा का सच्चा ज्ञान नहीं हैं। इसी कारण संसार में उन्हें दुःख उठाने पड़ रहे हैं–

**"अनुनपौ अपुन ही बिसर्‌यो जैसे स्वान कांच–मंदिर में भ्रमि–भ्रमि भूंक मर्‌यो।"**

**(2) भावों की गहनता**–सूर ब्रह्म के साकार रूप के उपासक हैं। सूर ने श्रीकृष्ण की उपासना की है। सूर के ऐसे अनेक पद हैं जिनमें श्रीकृष्ण और श्रीराम का अभेदत्व प्रतिष्ठित किया है। सूर ने मूलतः श्रीकृष्ण भक्त होते हुए भी श्रीराम की भक्तवत्सलता विषयक अनेक प्रसंगों का वर्णन किया है। इस दृष्टि से सूर का पद द्रष्टव्य है–

**'गोविन्द प्रीति सबन की मानत। जिह–जिह भाइ करत जन सेवा अंत की गति जानत।**
**सबरी कटुकबेर तजि मीठे चाखि गोर भरि ल्याइ। जूठन की कछु संक न मानी, भच्छ किये सतभाई।**
**संतत भक्त–मीत हितकारी स्याम विदुर कै आये। प्रेम विकल अति आनंद उर धरि कदली छिकुल खाये।**
**कौरव काज चले रिषि सापन साक पत्र सु अधाए। सूरदास करुनानिधान प्रभु, जुग जुग भक्त बढ़ाए।'**

इससे यह स्पष्ट होता है कि सूर ने श्रीराम और श्रीकृष्ण के मध्य अभिन्नता स्थापित की है।

इस प्रसंग में यह भी उल्लेख है कि सूर ने संसार में कल्मष अर्थात् पापमयता स्वीकार की है। मनुष्य जब कभी अपने अंतर्मन में झांकता है और अपने कर्मों का विश्लेषण करता है तो उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका मन और उसके कर्म दोनों ही पाप वृत्ति में ग्रस्त हैं ऐसी स्थिति में वह संसार के इस कल्मष से मुक्ति पाने के लिए छटपटाता है और इसी क्रम में वह किसी महान् शक्ति की शोध कर लेता है। जिस देवी देवता में उसे सर्वाधिक पाप–शामक शक्ति का परिचय मिलता है, उसी के प्रति वह सर्वात्मसमर्पण निवेदित करता है। वहां पहुंचकर वह अपने पापों की, अपने कर्मों की उन्मुख स्वीकृति करता है। पापों की स्वीकृति पापों से मुक्ति की पहली और अनिवार्य शर्त होती है। सूर के इस पद में यह भाव द्रष्टव्य है–

**'प्रभु, हौं सब पतितनि कौ टीकौ। और पतित सब दिवस चारि के, हौं तौ जनमत ही कौ।**
**बधिक अजामिल, गानिका, तारी और पूतना ही कौ। मोहिं छांड़ि तुम ओर उधारे, मिटै सूल क्यौं जी कौ।**
**कोउ न समरथ अघ करिबे कौं, खैंचि कहत हौं लीकौ। मरियत लाज सूर पतितनि में, मोहूं तैं को नीकौ।।'**

विद्वान आलोचक ने सूर के इस भाव–साम्य को व्यक्त करते हुए कहते हैं, 'महाकवि ने अपने आत्मनिरीक्षण द्वारा प्राप्त पातक निर्बलताओं को मुक्त कंठ से स्वीकार करते हुए अपने प्रभु से उनसे त्राण की कामना की है। निश्चय ही इस कल्मष–स्वीकृति में कवि की भावना का स्तर भक्त के उस रूप को प्रकट करता है, जिसमें उसकी ग्लानि के परिणामस्वरूप मन के परिमार्जन और उदात्तता का परिचय मिलता है।'

सूर ने अपने आराध्य को उपालंभ दिये हैं। यद्यपि सूर ने अपने दैन्य और लघुता का ही वर्णन किया है फिर भी कहीं–कहीं इन का आक्रोश और नैराश्य भी व्यक्त हुआ है। निश्चय ही भक्त का यह आक्रोश सात्विक भाव से युक्त होता है और इसमें ईर्ष्यादि भावों का कल्मष नहीं होता। जब भक्त किसी प्रकार अपने आराध्य को रिझाने में असमर्थ रह जाता है तो वह स्वभावतः रुष्ट होकर अपने भीतर के सात्विक आक्रोश को व्यक्त करता है। इस दृष्टि से सूर का पद द्रष्टव्य हैं–

**'प्रभू हौं बड़ी बेर की ठाढ़ौ। और पतित तुम जैसे तारे तिनहीं मैं लाखि राखौ।**
**युग–युग यही विरद चलि आयो टेरि कहत हौं यातैं। मरियत लाज यां पतितन मैं, हौं अब कहौ घटि का तैं।**
**कै प्रभु हारि मानि के बैठो, कै करौ बिरद सही। सूर पति जौ झूठ कहत है, देखो खोजि बही।'**

**(3) संक्षिप्ति**—गीतिकाव्य में पद का संक्षिप्त होना गेयता की दृष्टि से अनिवार्य तत्त्व हैं। लंबे पदों को गाने मे गायक एवं श्रोतक को थकावट की अनुभूति होती है। इसके अतिरिक्त पद का आयाम विस्तृत होने से स्वर, लय, ताल अर्थात् आरोह -अवरोह मे स्वाभाविक रूप से परिवर्तन हो जाता है। संक्षिप्तता में संपूर्ण पद में स्वर, लय, ताल की दृष्टि से ऐक्य बना रहता है। भाव- परिवर्तन भी नहीं हो पाता। संक्षिप्तता भाव ऐक्य में भी सहायक होती है यही कारण है कि सगुण एवं निर्गुण भक्ति के सूर, तुलसी मीरा एवं कबीर आदि के पद भजन स्वरूप समाज में लोकगीत के रूप में तथा दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से साहित्यिक गीत के रूप म प्रायः प्रतिदिन देखे एवं सुने जाते हैं क्योंकि मीडिया के इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में समय की प्रतिबद्धता होती हैं इसलिए लंबे पदों की तुलना में संक्षिप्त पद अधिक उपयुक्त होते हैं।

सूरसागर के अधिकांश पद अत्यधिक संक्षिप्त हैं।

सूर ने संक्षिप्ति को ध्यान में रखकर कृष्ण की भक्ति और आराधना अत्यंत अनन्य भाव से की है, वात्सल्य वर्णन मे सूर ने कृष्ण की बाल–सुलभ चेष्टाओं–रूठने, चलने, शैतानी करने, झूठी शिकायत करने आदि का सूक्ष्म एवं हृदयस्पर्शी चित्रांकन किया है। शृंगार की स्थिति में सूर ने शृंगार के दोनों पक्षों का वर्णन किया है। यद्यपि संयोग की अपेक्षा वियोग में सूरदास का कौशल अधिक निखरा है। किंतु संयोग शृंगार भी अत्यंत सरस व मार्मिक वर्णन वाला बन गया है। गोपियों की आंखें कृष्ण वियोग में निरंतर इतनी बरसती हैं कि इनसे होड़ में घन में हार जाते हैं। इस संबंध में सूर का संक्षिप्त पद द्रष्टव्य हैं–

**'सखी, इन नैननि तैं घन हारे। बिनु ही रितु बरसत निसि–बासर, सदा सजल दोऊ तारे।**
**ऊरध स्वास, समीर तेज अति, सुख अनेक द्रुम डारे। बदन–सदन में बसे बचन–खग, रितु पावस के मारे।।'**

संक्षिप्तता एवं भाव ऐक्य की दृष्टि से प्रस्तुत पद में मात्र तीन पंक्तियां एवं एक टेक है जिसमें प्रभु–चरण महत्ता बांदे गए। श्रीकृष्ण के चरण–कमलों की वंदना करते हुए सूरदास कहते हैं कि कृष्ण के चरणों की इतनी महत्ता है कि उसकी वंदना मात्र से कृपा प्राप्ति के परिणामस्वरूप पंगु पर्वत पार कर जाता है, अंधे को सब कुछ दिखाई देता है, बधिर सुनता है, गूंगा बोलता एवं रंक सिर छत्र धारण करता है। इस संबंध में सूर का पद द्रष्टव्य है। इस पद में सभी असंभव क्रियाएँ श्रीकृष्ण के चरण कमलों की कृपा के परिणामस्वरूप संभव हो जाती हैं–

**'चरण–कमल बंदौ हरि–राइ। जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधै कों सब कुछ दरसाइ।**
**बहिरौ सुनै, गूंग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ। सूरदास स्वामी करुनामय, बार–बार बंदौ तिहिं पाई।।'**

तीन पंक्ति एवं टेक में परिसीमित पद में गोपियों के मध्य उद्धव–उपदेश के समय अचानक भ्रमर का प्रवेश हो जाता है। स्वाभाविक रूप से कृष्ण की श्यामता का आभास उन्हें अत्यधिक दुःखी कर देता है। भक्ति–भावना से प्रेरित होकर भ्रमर का चुंबन करने लगती हैं चेतना जागृत होते ही भ्रमर को कुब्जा द्वारा प्रेषित स्वीकारते हुए व्यंग्योक्ति करने लगती हैं। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है मानो हमें संदेश देने के लिए भेजा है। पद में सभी भाव भ्रमर पर केन्द्रित एवं संक्षिप्त हैं–

**'इहिं अंतर मधुकर इक आयौ। निज स्वभाव अनुसार निकट ह्वै, सुंदर शब्द सुनायौ।**
**पूछन लागीं ताहिं गोपिका, कुबिजा तोहिं पहायौ। कीधौं सूर स्याम सुंदर कौं, हमैं संदेसौ लायौ।।'**

**(4) संगीतात्मकता**—सूर महान रससिद्ध कवि थे। वह भक्त थे, कवि थे और भगवान कृष्ण के समक्ष कीर्तन करने वाले थे। कीर्तन करने में राग, सुर और ताल संगीत के सभी तत्वों की आवश्यकता होती है। इसीजिए सूर ने ही नहीं बल्कि सभी कृष्ण और राम भक्तों ने संगीत का समाश्रय ग्रहण किया, क्योंकि वे अपने उपास्य देव के समक्ष कीर्तन करने में अपनी सफलता मानते थे और ऐसा करके वह अपने को धन्य समझते थे। यही कारण है कि भक्ति काल में संगीत और भक्ति अभिन्न हो गए थे। स्वामी विट्ठलनाथ ने सूर को प्रातः सांय श्रीनाथ मंदिर में कीर्तन करने के लिए नियोजित कर दिया था। वे अपने आराध्य देव श्रीकृष्ण का गुण गान और उनकी लीलाओं को पदों मे रचकर उनका नित्य कीर्तन किया करते थे। सूर के काव्य में शास्त्रीय संगीत भी पाया जाता है। सूर संगीत के पंडित थे। सूर के गेय पद विभिन्न राग–रागनियों में बंधे हैं। आत्माभिव्यंजन की उत्कृष्ट शैली, अनुभूति की आकर्षक एवं मार्मिक अभिव्यक्ति, भाव की एक–एक शृंखला को गुलदस्ते की भांति सजाकर प्रकट करना गीत–काव्य की विशषताए सूर के पदों में यत्र–तत्र बिखरी हुई दिखाई देती हैं।

सूर के गीति–काव्य की विशेषताएं उनके पदों की अत्यंत सरल भाषा है जो कि प्रसाद गुण से ओत–प्रोत है। इनके पद पढ़–सुनकर सरलतापूर्वक समझने योग्य तथा सस्वर गायन–वादन की क्षमतायुक्त है।

सूरदास के गीति–तत्व के संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन अत्यंत महत्वपूर्ण है–

'इन पदों के संबंध में ध्यानाकर्षित करने वाली बात यह है कि उस समय प्रयोग में आने वाली समकालीन ब्रजभाषा म पहले

साहित्यिक रचनां होने पर भी वह इतनी सुडौल और परिमार्जित है यह रचना प्रगल्भ और काव्यांगपूर्ण है कि आगे आने वाले कवियों की श्रृंगार और वात्सल्य की उक्तियां सूर की जूठी सी जान पड़ती हैं। अतः सूरसागर किसी चली आती हुई गीत–काव्य परंपरा का पूर्ण विकास–प्रतीत होता है।'

जिस प्रकार निर्मल आत्मा और स्वस्थ शरीर का समन्वय सुखद होता है, उसी प्रकार भाव और शैली जिसके अंतर्गत छंद भी हैं–का उचित समन्वय भी होता है। सूर की रचना में यह सामंजस्य पूर्णतः संतुलित रूप में मिलता है।

स्वरों के आरोह–अवरोह से काव्य में श्रुति–सुखदाता का संचार होता है और स्वरों के उतार–चढ़ाव का चरमोत्कर्ष राग–रागिनियों में मिलता हैं। इसी कारण हृदय की कोमलतम भावनाओं की अभिव्यंजना के लिए कवियों ने प्रायः गीति–शैली का ही आश्रय लिया है। हृदय की रागात्मिका–वृत्ति के योग से जब सुख और दुःख की अनुभूति तीव्रतम होकर अनेक भावों की उमड़ती हुई धारा में समस्त परुषता और कलुषता का प्रक्षालन करती हुई अकस्मात् कल–कल ध्वनि से कवि के कंठ से फूट पड़ती है तो उसे 'गीत' की संज्ञा प्राप्त होती है। तभी तो कविवर सुमित्रानंदन पंत ने लिखाता है–

**'वियोगी होगा पहला कवि, आह से निकला होगा गान। उमड़ कर आंखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।।'**

बाबू गुलाबराय ने 'सिद्धान्त और अध्ययन' में प्रगति का लक्षण देते हुए लिखा हैं–

'प्रगति–काव्य के तत्व इस प्रकार हैं–संगीतात्मकता और उसके अनुकूल सरस प्रवाहमयी कोमलकांत पदावली निजी रागात्मकता 'जो प्रायः आत्म–निवेदन के रूप में प्रकट होती है, संक्षिप्तता और भाव की एकता, यह काव्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक अंतःप्रेरित होता हैं और इसी कारण इसमें कलात्मकता होते हुए भी कृत्रिमता का अभाव रहता है।'

सूर की रचना में गीति–तत्त्व के सभी लक्षण पाए जाते हैं। वास्तव में यह कोई नई शैली नहीं थी, अपितु भारतीय साहित्य में युग–युगांतर से चली आती हुई एक परंपरा थी, जिसमें विशेष विभूतियों द्वारा समय–समय पर परिवर्तन, परिवर्द्धन और संशोधन होते रहे हैं। गीति–शैली का उद्‌भव कब हुआ, यह निर्णय करना अति दुष्कर हैं; किंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इसका इतिहास इतना ही प्राचीन है जितना कि स्वयं भाषा का। भाषा के मूल तत्वों में गीत के भी मूल तत्व निहित मिल सकते हैं। मनुष्य भाषा का आधार लिए बिना ही स्वान्तः सुखाय प्रायः कुछ न कुछ गुनगुनाता देखा जाता है। अपने भावों को प्रकट करने के लिए स्वर और लहजे में परिवर्तन कर लेते हैं–विशेषकर जब भाषा को अपनी मानसिक दशा की सूचना देने में असमर्थ पाते हैं। प्रारंभ में गीत वैयक्तिक रूप से मनोरंजन के साधन रूप में प्रचलित रहे फिर धीरे–धीरे वे सामाजिक रूप से जनता का मनोरंजन करने में प्रयुक्त होने लगे। विशेष अवसरों और उत्सवों पर लोकगीतों का आयोजन प्राचीन काल से चला आ रहा है। वैदिक कालीन यज्ञों में 'रथन्तरादि' अनेक प्रकार के गीत गाने की प्रथा थी। सामाजिक कार्यों और पर्वों पर भी इसी प्रकार के गीत गाए जाते रहे। जैसे–जैसे सामाजिकता का विकास होता गया, वैसे–वैसे ही गीत भी उत्तरोत्तर सामाजिकता की विस्तृततर परिधि में स्थान पाते रहे। समाज की प्रवृत्तियों का प्रतिबिंब कला और साहित्य में झलकना स्वाभाविक है, अतः प्राचीन शांतिप्रिय, आध्यात्मिकतापरक और सरल–प्रवृत्ति समाज के व्यक्ति भी शांति और विरक्ति के गीत गाते हुए चले। समय–चक्र के साथ–साथ समाज में भी परिवर्तन हुआ, जीवित रहने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को संघर्ष में पड़ना आवश्यक हो गया और शक्तिशाली ही जीने का अधिकारी माना जाने लगा, तो संघर्ष और उग्रता का समावेश भी गीतों में हो गया।

गीत–शैली हृदय की कोमल भावनाओं का व्यक्त करने के लिए नितांत उपयुक्त है, क्योंकि गीत लय की मधुर लहरियों को स्वरों के रेशमी सूत्र में बांधकर चलते हैं। प्राचीन गीतों में अधिकतर श्रृंगार, करुण और शांत रसों की ही अभिव्यक्ति हुई है और वीर–रस के गीत बहुत कम मिलते हैं।

साहित्य में परंपरा से चली आती श्रृंगार और प्रेम की भावना के साथ अनेक कवियों ने भगवत्प्रेम का समन्वय किया। अपने उपास्य का श्रृंगार और प्रणय–वर्णन करने में कविगण भाव–विभोर होने लगे। इन्होंने अपनी वर्णन पद्धति के लिए गीत–शैली का ही चुनाव किया। श्रृंगार, भक्ति और वात्सल्य की त्रिवेणी का अपने पदों में समावेश कर कवि ने पग–पग पर प्रयाग का सृजन किया, जिसकी यात्रा करके साधारण जनता भी मन का मैल धोने लगी।

सूर को अपनी भक्ति–भावना व्यक्त करने के लिए परंपरागत विकसित गीत–शैली प्राप्त थी, परंतु उन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवियों का अंधानुसरण नहीं किया है। उनके गेय पदों पर न तो वीरगाथाकालीन चारण और भाटों का ही प्रभाव लक्षित होता है और न नाथ और सिद्ध–संप्रदायों के प्रचारकों का ही; हां 'निर्गुनिये' संत कवियों का प्रभाव अवश्य दिखाई पड़ता है। उनके विनय के पदों के भाव, भाषा, पद–विन्यास सभी संत काव्य से प्रभावित उन्होंने ये पद आचार्य बल्लभ द्वारा पुष्टि संप्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व ही लिखे थे। तब उनकी भक्ति–भावना में स्थिरता नहीं आ पायी थी। कभी तो वे संतों की भांति साकार और निराकार के बीच में खड़े हुए, कभी उनका झुकाव साकार तथा कभी निराकार के प्रति रहा और कभी तुलसी की भांति 'प्रभु हौं सब पतितन कौ टीकौं'

कहकर प्रभु–चरणों में सिर टेक देते थे सूर कभी परमात्मा को भीतर और कभी बाहर खोजते थे। परंतु पुष्टि संप्रदाय में दीक्षित होने के उपरांत जब वे स्थितिप्रज्ञ होकर 'सब विधि अगम विचारहि ताते सूर सगुन–लीला पद गावै' कहकर भगवान श्रीकृष्ण का चरित्र–गान करने बैठे, तो उनके पदों का चोला भी बदल गया और उनकी गीत–शैली जयदेव और विद्यापति की शृंगार–भावना और कोमलकांत पदावली को आत्मसात् करती हुई विकसित हुई। सूर ने केवल भाव–पक्ष में ही नहीं, गीत–शैली के कलेवर में भी नवीनता का संचार किया।

आचार्य मुंशीराम शर्मा भी इस विषय को संकेतित करते हुए लिखते हैं–

'इस गायन में ऐसी कौन सी रागिनी है, जो सूरसागर में न आई हो? कहा जाता है कि सूर के गान ऐसे राग रागनियों में हैं जिनमें से कुछ के तो लक्षण भी अब तक प्राप्त नहीं हैं। ऐसी राग–रागनियां या तो सूर की अपनी सृष्टि हैं या अब उनका प्रचार नहीं।

सूर ने 'सूरसागर' में पदों के साथ संबंधित रागों का संयोजन जिस प्रौढ़ता और प्रचुरता से किया है, उसे देखकर तो अच्छे–अच्छे संगीतकार स्वयं को परास्त अनुभव करने लगते हैं। सूर की संगीतात्मकता, भावात्मक चरमोत्कर्षता और सहज प्रवाहशीलता उनके गीतों की विशेषता हैं–

**'बिनु गुपाल बैरिन भईं कुंजैं। तब वै लता लगति अति सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं।**
**बृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलनि अलि गुंजैं। पवन, पानि, घनसार, संजीवनि, दधि–सुत किरनि भानु भईं भुजैं।**
**यह ऊधौ कहियौ माधौ सौं, मदन मारि कीन्हीं हम लुंजैं। सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं, मग–जोवत अंखियां भईं भुजैं।।**

गीतिकाव्यों के रचयिताओं की श्रेणी में सूर का स्थान निर्धारित करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती क्योंकि सूर के गीत अपनी विलक्षणता के कारण सर्वोपरि ठहरते हैं। मार्मिकता और मिठास मात्र उन पदों में ही नहीं है जिनमें गोपियों के संयोग या वियोग का वर्णन है अपितु उन पदों में भी है जिनमें श्रीकृष्ण उद्धव के समक्ष ब्रज से संबंधित अपनी स्मृतियों के अविस्मरणीय होने की बात कहते हैं :–

**'ऊधौ ! मोहि ब्रज बिसरत नाहीं। हंससुता की सुंदर कगरी, अरु कुंजनि की छाहीं।**
**वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं। ग्वाल–बाल मिलि करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाही।**
**यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुक्ताहल जाहीं। जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तन नाहीं।**
**अनगन भांति करी बहु लीला, जसुदा नंद निबाहीं। सूरदास प्रभु रहै मौन ह्वै, यह कहि–कहि–पछिताहीं।।'**

सूरदास का काव्य, प्रबंध–काव्य नहीं है, उसमें कथा के प्रवाह का निर्वाह नहीं मिलता; भावात्मक स्थलों का ही अनुपम वर्णन मिलता है और कथा का तारतम्य जारी रखने के उद्देश्य से उन्हें जोड़ने के लिए यत्र–तत्र एकाध पद में घटनाओं का वर्णन भी कर दिया गया है। घटना–वर्णन में कवि की प्रवृत्ति रमी ही नहीं। वास्तव में सूर का उद्देश्य घटना–वर्णन अथवा कथा कहना नहीं था। उनका उद्देश्य अपने प्रभु के प्रेम में मत्त होकर उनके सौंदर्य का वर्णन करते हुए मानस–भाव–रसामृत को पदों के प्रवाह में बहा देना था, जिससे सिक्त होकर जन–मनोभूमि में भगवद्–भक्ति का अंकुर फूट निकले। वे 'स्वामिनः सुखाय' नहीं, 'स्वांतः सुखाय' रचना करते थे।

आत्माभिव्यंजन के लिए मुक्तक–काव्य ही अधिक उपयुक्त है, क्योंकि कथा के बंधन में बंधे कवि के भाव बहुत दिनों से पिंजर में बंद रहने वाले तोते के समान होते हैं, जो मुक्त हो जाने पर अधिक दूर या ऊंचाई तक नहीं उड़ सकता, शीघ्र ही पुनः पिंजर में आ जाता है। इसलिए सूर ने मुक्तक–काव्य ही लिखा है। आत्माभिव्यंजना और मुक्तक–काव्य दोनों की दृष्टि से गीत–शैली ही अधिक उपयुक्त हैं। दूसरे वे पुष्टिमार्ग में दीक्षित थे, जिसमें कीर्तन–गान का विशेष महत्व था, इसमें कीर्तन के पद गान की परिपाटी थी। इस प्रकार पुष्टि–मार्गीय भक्ति–पद्धति में आरती और कीर्तन की परंपरा के साथ संगीत का भी सामंजस्य हो गया था। इस दृष्टि से सूर की रचना गेय थी। काव्य और संगीत का जैसा सामंजस्य सूर के पदों में मिलता है। वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इस संबंध में श्री शिखर चन्द जैन 'सूरः एक अध्ययन' का कथन द्रष्टव्य हैं–

'संगीत–विषयक इस ज्ञान की कसौटी पर जब सूर कसे जाते हैं, तब वह बहुत ऊंचे उठ जाते हैं। वास्तव में यदि काव्य और संगीत का सच्चा समन्वय कोई प्रकृत रूप से कर सका है तो वह सूर ही हैं।'

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गीत–शैली सूर के हाथों में पड़कर मंज–सी गई है। जितनी सफलता के साथ सूर ने वार्णिक गेय छंदों का प्रयोग किया है, उतनी सफलता के साथ अन्य कोई कवि नहीं कर सका है। उनके पदों की संगीतात्मकता सर्वतोभावेन स्तुत्य है। उनके समस्त पद संगीतमय हैं। प्रत्येक पद के साथ उसमें प्रयुक्त राग के नाम का उल्लेख है।

सूर की भक्ति साधना में भावों की प्रवणता, अनुभूति की तीव्रता और विश्वास की असंदिग्धता का चरमोत्कर्ष है जिसके कारण उनके पदों में गीत की स्वस्थ आत्मा की प्रतिष्ठा हो सकी है। सूर के विशाल मानस में भाव–रस का इतना उद्रेक था कि वह हलात वाणी के बंधनों को तोड़ता हुआ फूट पड़ा। कृष्ण के सौंदर्य, हाव–भाव और व्यापारों के चित्रण में, ब्रजवासी नर–नारियों के मन का

के प्रकाशन में; गोप–बालकों के बालसखा–सुलभ केलि–कौतुक के अंकन में, किशोरी, युवती और वृद्धाओं के चापल्य, औत्सुक्य, वात्सल्य आदि के अभिव्यंजन में अपनी बंद आंखों और उन्मुक्त कल्पना से भावजगत् के द्रष्टा और सृष्टा सूर ने वह प्रसिद्धि प्राप्त की है। हिंदी के ही नहीं विश्व भाषाओं के गीतकारों के आगे भी वह अपनी प्रसिद्धि का लोहा मनवाते हैं। उनके पदों में उनकी 'सूरता' छिपाए नहीं छिपती।

वैयक्तिकता और आत्मभिव्यंजन, जो गीति–काव्य का सर्वप्रथम और सर्वप्रमुख लक्षण है, सूर के गीतों में अथ से लेकर इति तक व्याप्त है। भाव की एकात्मकता, अनुभूति की स्वतः पूर्णता और अव्याप्त व्याप्ति, जो मुक्तक–काव्य की प्राणवायु है। सूर के गीतों में संचार करती हुई पाठक एवं श्रोता के हृदय पर अमिट छाप छोड़ती है। उनका एक–एक राग, एक–एक गीत अपने आप में पूर्ण और रस–सृष्टि में समर्थ है।

सूर के पदों में जो बात खटकती है वह दोष पौराणिक प्रसंगों के संकेतों की भरमार तथा वर्ण्य विषय, भाषा आदि की पुनरावृत्ति है। कहीं–कहीं आवश्यकता से अधिक अलंकारों के भार से दबी उनकी भारती अपनी वीणा के तारों को झंकृत करने में भी अपने आपको असमर्थ पाती है। इन दोषों को धूमिल कालिमा 'सूरसागर' के जगमगाते रत्नों के प्रकाश को अधिकाधिक देदीप्यमान बनाने में सहायक सिद्ध होता है। भाव, कल्पना और सौंदर्य का जैसा समन्वय सूर के पदों में है ऐसा अन्यत्र दुष्प्राप्य है भावूपर्ण गीत–तत्व के शास्त्रीय परिष्कार में सूर ने सचमुच अत्यधिक योगदान किया है।

सूर–संगीत की विशेषता है कि उन्होंने राग–रागनियों का निर्वाचन विषयानुसार किया है। हर्ष और उल्लास के प्रसंग जहां आए हैं वहां उनका वर्णन एक प्रकार से राग–रागनियों में हुआ है। जैसे–राग धनाश्री, राग–कान्हारौ, राग टोड़ी आदि, जहां विप्रलंभ और गंभीरता को दिखाया गया है वहां राग–जैतश्री, राग–सारंग, राग मलार में बांधकर उस प्रसंग को प्रस्तुत किया गया है। यही नहीं, दर्प और वीरता से संबंधित प्रसंग को विशिष्ट रागों में बांधा गया है।

सूर स्वीकारते हैं कि जीव उसी को कहते हैं जो हरि गुणगान करता है–

**'सोई रसना जो हरि गुण गावे।'**

सूर ने हरि–गुणगान ही किया है, मध्यकालीन संगीत शास्त्रीय संगीत का पर्याय है। इसलिए सूर ने अपने पदों में गान के लिए जिस संगीत का सहयोग लिया वह शास्त्रीय संगीत पर ही पूरी तरह से आधारित है। सूर को संगीत का अद्‌भुत ज्ञान था। इसका प्रमाण समकालीन किसी कवि की उक्ति से मिल जाता है–

**'हाथ सितारौ सूर करयौ, मुख मधुरा बोल। कान्हूरे के रंग में, सूरदास को चोल।।'**

सूर वल्लभ संप्रदाय के भक्त थे, इसलिए अपनी रचनाओं में राग–रागनियों के प्रयोग श्रीनाथ मंदिर में आठों प्रहर की सेवा के रूप में किया है। इन राग–रागनियों के प्रयोग समयानुकूल हैं। सूरसागर के 'दशम–स्कंध' में 'राम–रामकली' और 'राग–ललित' को उद्‌धृत किया गया है–

**राग–रामकली : 'लालहिं जगाइ बलि गई माता। निरखि मुख–चंद छबि, मुदित भई मनहिं मन, कहत आधैं बचन भयौ प्राता। नैन अलसात अति, बार–बार जम्हात, कंठ लागि जात, हरषात गाता। बदन पौंछियौ जल जमुन सौं धोइ कै, कह्यौ मुसुकाइ कछु खाहु ताता। दूध औट्यौ आनि, अधिक भिसिरी सानि, लेहु माखन पानि प्रान–दाता। सूर प्रभु कियौ भोंजन विविध भांति सौं, पियौ पय मोद करि घूंट साता।।'**

**राग–ललित : 'उठे नंद–लाल सुनत जननी मुख बानी। आलस भरे नैन, सकल सोभा की खानी।**
**गोपी जन बिथकित ह्वै चितवतिं सब ठाढ़ी। नैन करि चकोर, चंद–बदन प्रीति बाढ़ी।**
**× × × × सखा सहित जेंवहु, मैं भोजन कछु कीन्हौं।**
**सूर स्याम हलधर संग सखा बोलि लीन्हौ।।'**

इन पदों में दोनों राग संगीत की दृष्टि से संधि प्रकाश राग हैं। जिन्हें प्रातःकाल गाया जाता है। इस तरह से इन रागों का प्रयोग समुचित रूप में हुआ है।

प्रातःकाल के पश्चात् दिन के प्रथम पहर में राग विलावल भी गाया जाता है। सूर्योदय हो जाने के पश्चात् जब श्रीकृष्ण गोचारण के लिए जाते हैं तो उस प्रसंग से संबंधित वस्तुओं को सूर ने राग 'विलावल' में ही लिखा है–

**राग–विलावल : 'बन पहुंचत सुरभी लई जाइ। जैहौ कहां सखनि कौं टेरत, हलधर संग कन्हाइ।**
**जेंवत परखि लियौ नहिं हमकौं, तुम अति करी चंड़ाइ। × × × ×**
**आजु चलौ वृंदाबन जैऐ, गैयां चरैं अघाइ। सूरदास प्रभु हरषित भए, घर तैं छांक मंगाइ।।'**

दोपहर के भोजन में कृष्ण के लिए दूध, दही, छाक आदि दिया जाता था। समयानुसार मध्यान्ह का राग 'सारंग' है। सारंग रागों में सर्वाधिक प्रचलित 'बिंद्रावनी सारंग' राग है। इसके अनुसार सूर ने कृष्ण के मध्यान्ह भोग के समय के समस्त वर्णनों को राग सारंग में बांधा है–

राग–सारंग : **'घर की इक ग्वारि बुलाई। छाक समग्री सबै जोरि कै, वाकैं कर दै तुरत पठाई।**
**कह्यौ ताहि वृंदावन जैऐ, तू जानति सब प्रकृति कन्हाई। प्रेम सहित लै चली छाक वह, कहं ह्वैहैं भूखे दोउ भाई।**
**तुरत जाइ वृंदावन पहुंची, ग्वाल–बाल कहुं कोउ न बताई। सूर स्याम कौं टेरत डोलति, कित हौ लाल छाक मैं लाई।।'**

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि सूर ने रागों का प्रयोग समय को देखते हुए ही किया है।

'संगीत रत्नाकर' के अनुसार संगीत के तीन पक्ष होते हैं–गीत, वाद्य तथा नृत्य।

सूर ने अपने संगीत में इन तीनों पक्षों का सम्यक समावेश किया है तथा निम्नलिखित पद में तो नृत्य के बोल तथा राग के स्वर का एक साथ समन्वय किया है। इस संबंध को दर्शाने के लिए सूर का पद दृष्टव्य है–

**'घोष नागरी मण्डल नाचते गिरधारी लाल। लेत गति अनेक भांति चरण पटकनी।**
**गिड़गिड़ता गिड़गिड़ता ताता तत ता तत थई–थई। बीच–बीच मधुर–मधुर मुरलिका मढकनी।**
**भुज सौं भुज जोरि–जोरि लेत तान नव किसोर, गावत श्रीराम मिलि ग्रीव लटकनी।**
**सूरदास प्रभु सुजान नंद नंदन कुंअर कान्ह, मदन मोहन छबि निरखि काम सटकनी।।'**

इससे स्पष्ट हो जाता है कि निश्चय ही सूर महान् संगीतज्ञ थे। उनका संगीत का शास्त्रीय ज्ञान उच्चकोटि का था। उन्होंने छह रागों, छत्तीस रागिनियों का वर्णन किया है और कहा है–

**'मुरली हरि को भावे री। छैहौ राग छत्तीसों रागिनी हूक इक नीके गावेरी।।'**

'सूरसागर' प्रत्येक पद किसी न किसी राग–रागिनी में निबद्ध है। सूरसागर को अगर गीतों का सागर कहा जाए तो अनुपयुक्त नहीं होगा। सूर के गीत–काव्य में काव्य और संगीत का मणि–कंचन संयोग हुआ है। इन पदों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें स्वानुभूति–मूलक भावाभिव्यक्तियों के साथ–साथ कृष्ण–लीला में अनेक प्रसंगों को क्रमबद्ध कथारूप में रचा गया है। भारतीय गीत परंपरा में भावपूर्ण भजनों की जो शास्त्रानुमोदित लोकप्रिय गीत संगीत शैली विकसित हो गई, उसका सर्वाधिक श्रेय सूरदास को है। सूर ने संपूर्ण रागों को काल क्रमानुसार ही प्रस्तुत किया है। उनके पदों का अध्ययन करने से पता चलता है कि मंगला के अंतर्गत विभास, भैरव, देव–गंधार, सोहनी, ललित, टोड़ी, सूहा आदि रागों का प्रयोग किया गया है। शृंगार के प्रसंग में इसी प्रकार रामकली, आसावरी, बिलावल; ग्वाल में बसंत, नट, कामोद, सारंग, मालश्री, गुजरी राग; राजभोग में पीलू, धानी, जोगिया, मारु, गौड़ सिंदूरा मुलतानी, जैतश्री, गौरी, ललित, गौड़–मल्हार, बसंत राग, जै–जैवंती, मल्हार, कान्हड़ा, भूपाली राग; शयन में राग बिहागरी का प्रयोग किया गया है। सूर को बिलावल राग बहुत प्रिय था। उन्होंने सूरसागर में बिलावल, सारंग और धनाश्री रागों के अत्यधिक प्रयोग किए हैं।

भाषा और संगीत के कारण सूरदास ने जिस गीत–परंपरा को वृद्धिगत करने में सहयोग दिया है वह अत्यंत उच्चकोटि की है। वस्तुतः सूर पद साहित्य में अपना सानी नहीं रखते हैं। सूर काव्य और उसमें मिश्रित संगीत का अवलोकन करने पर यह कहने में कोई हिचक नहीं कि उनके काव्य में संगीत की जो मधुर धारा बही है वह काव्यास्वाद को मार्मिक और मीठा बना देती है। समस्त भक्त कालीन कवियों में सूर का स्थान संगीत विषयक ज्ञान की दृष्टि से भी सर्वश्रेष्ठ है। सूर के संगीत ज्ञान के विषय में पद द्रष्टव्य है–

**'किधौ सूर को सर लग्यौ, किधौ सूर की पीर। किधौ सूर को पद लग्यौ, बेध्यौ सकल शरीर।।**

# अध्याय 8

# भ्रमरगीत परंपरा

हिंदी साहित्य में भ्रमरगीत की एक दीर्घ–परंपरा विद्यमान है। भ्रमरगीत का मूलाधार श्रीमद्भागवत है, परंतु इसका पूर्ण विकास सूर के भ्रमरगीत से हुआ। भ्रमरगीत–परंपरा में सूरदास का नाम और स्थान सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित है। हिंदी में सूर भ्रमरगीत परंपरा के प्रवर्तक कहे जा सकते हैं, जिन्होंने भागवत् के आधार पर भ्रमरगीत–प्रसंग को अत्यंत भावुकता और नवीनता के साथ प्रस्तुत कर भविष्य में इस प्रसंग पर काव्य सृजन की प्रेरणा के द्वार खोल दिए। सूर ने भागवत से आधार तत्व ग्रहण किए और उन्हें अपनी उर्वर कल्पना के आधार पर इस प्रकार प्रस्तुत किया कि सूर का भ्रमरगीत 'मौलिक' हो उठा, भागवत् के इस प्रसंग में भक्ति को प्रोत्साहन मिला है, जबकि सूर के भ्रमरगीत में सहज और सरल काव्यात्मकता अनुभूतियां उभरी हैं। सूर से लेकर आधुनिक काल के हिंदी कवियों तक 'भ्रमरगीत' की एक पुष्ट और विकसित परंपरा चली आ रही है। सूर के पश्चात् लिखे गये भ्रमरगीतों में दृष्टिकोण का थोड़ा बहुत अंतर भले ही रहा हो परंतु विषय और उद्देश्य सूर के भ्रमरगीत से पूर्ण रूप से प्रभावित है।

**भ्रमरगीत का मूलाधार**–भ्रमरगीत का मूल उद्भव स्रोत श्रीमद्भागवत् है। भागवत् दशम् स्कंध के पूर्वार्द्ध अध्याय 46–47 में भ्रमरगीत–प्रसंग का वर्णन है। श्रीमद्भागवत् में भ्रमरगीत कथा इस प्रकार है–श्रीकृष्ण उद्धव से निवेदन करते हैं कि वह उनके विरह में दुःखी माता–पिता तथा गोपियों को ब्रज जाकर सांत्वना प्रदान करें। उद्धव ब्रज जाकर नंद और यशोदा को उपदेश देते हैं। इसके पश्चात् 47 वें अध्याय में उद्धव तथा गोपियों के संवाद का वर्णन है। गोपियां कृष्ण के गुणों का स्मरण करके विलाप करने लगती हैं। इतने में ही एक भ्रमर कहीं से उड़ता हुआ वहां आ जाता हैं। बस उस भ्रमर में कृष्ण और उनके संदेशवाहक उद्धव के अभिन्न स्वरूप की कल्पना करके प्रेम–विह्वल गोपियां उपरोधिक भाषण करने लगती हैं। इसके पश्चात् उद्धव गोपियों से कृष्ण का संदेश कहकर उन्हें शांत कर देते हैं और अंत में ब्रज भूमि नंद तथा ब्रज बंधुओं की वंदना करते हुए लौट जाते हैं।

इस प्रसंग के अंतर्गत कृष्ण के चरित्र की अलौकिक झांकी दिखाने के लिए भक्त कवियों को काव्य की एक नई दिशा दिखाई दी। भागवत् की यही कथा समस्त भ्रमरगीतों का आधार रही है, किंतु प्रत्येक कवि ने अपनी कल्पना के अनुसार इसमें परिवर्तन किया है। हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम भ्रमरगीत के प्रसंग का महत्व और विस्तार सूरदास ने किया। इसलिए हिंदी साहित्य में भ्रमरगीत परंपरा का उद्भव सूर के भ्रमरगीत से ही माना जाता है।

सूर के भ्रमरगीत में भागवत् की अपेक्षा अनेक विशेषताएं और मौलिकताएं हैं।

## हिन्दी काव्य में सूरदास द्वारा भ्रमरगीत का प्रणयन

जनमानस में भगवान के सगुण स्वरूप के प्रति आस्था उत्पन्न करने का सर्वाधिक श्रेय गोस्वामी तुलसीदास को है। उन्होंने ज्ञान की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता और सरलता का सशक्त प्रतिपा दन किया–

**'कहत कठिन समुझत कठिन, साधन कठिन विवेक। होई घुनाच्छर ज्ञान ज्यों, प्रति प्रत्यूह अनेक।।**
**ग्यान पंथ कृपान कै धारा, परत खगेस होइ नहिं बारा।।'**

गोस्वामी जी द्वारा किया हुआ ज्ञान–भक्ति का यह विवेचन कुछ गंभीर था और वह मनन अध्ययन के क्षेत्र की वस्तु था। वह बुद्धि पक्ष की वस्तु था और प्रायः पंडित वर्ग तक सीमित था; सामान्य अशिक्षित जनता का चित्त उसमें न रम सका। इस अभाव की पूर्ति महात्मा सूरदास ने की। उन्होंने ज्ञान के समक्ष भक्ति की श्रेष्ठ और सरलता का प्रतिपादन करने के लिए श्रीमद्भागवत् में वर्णित 'भ्रमरगीत' प्रसंग को लिया और अत्यंत नाटकीय शैली के द्वारा ज्ञान के ऊपर भक्ति का जय घोष कर दिया। उन्होंने ब्रज की गोपियों, गोकुल के गंवार ग्वालिनों को भक्ति का प्रतिनिधि बनाया और उद्धव को प्रस्तुत किया ज्ञान मार्ग के प्रतिपादक रूप में। अपने पारस्परिक सरस एवं सरल कथोपकथनों के क्रमिक विकास के द्वारा उन्होंने ज्ञान के ऊपर भक्ति की घोषणा कर दी। गोपियों की स्वाभाविक एवं व्यंग्य गर्भित उक्तियों के द्वारा उद्धव मंत्रमुग्ध तथा पराजित दिखाए गए। ज्ञान–मार्तण्ड से झुलसे हुए उद्धव भक्ति की सुधा वृष्टि द्वारा सरस सुहाए मथुरा लौटते हुए दिखाए गए। सूरदरस के काव्य का यह प्रसंग भ्रमरगीत कहलाया। सूर का भ्रमरगीत काव्य–रचना के लिए एक बहुत ही उपयुक्त एवं हृदयग्राही प्रसंग सिद्ध हुआ और अनेक परवर्ती कवियों ने इस प्रसंग को लक्ष्य करके काव्य–रचना की। इस प्रकार सूर ने भ्रमरगीत परंपरा का प्रणयन किया।

**सूरदास का भ्रमरगीत**–सूर ने तीन भ्रमरगीतों की रचना की।

प्रथम भ्रमरगीत भागवत के भ्रमरगीत का अनुवाद मात्र है। इसमें न तो नवीन मान्यताएं है और न ज्ञान–वैराग्य की चर्चा ही है। इसमें कृष्ण द्वारा गोकुल को भेजा गया संदेश है।

दूसरा भ्रमरगीत केवल एक ही पद में लिखा गया है। उसमें उद्धव का गोपियों के प्रति उपदेश, गोपियों के उपालंभ कुब्जा–संदेश, उद्धव–मथुरा गमन एवं श्रीकृष्ण के समक्ष गोपियों का विरह–वर्णन तथा उसे सुनकर श्रीकृष्ण का मूर्च्छित हो जाना आदि सब वर्णित हैं। इसमें न तो भ्रमर का समावेश ही होता है और न गोपियां विशेष उपालंभ ही देती हैं।

तीसरा भ्रमरगीत सूरसागर के पद संख्या 4078 से पद संख्या 4710 तक चलता है। इसी में सूरदास ने भागवतकार की कथा को कल्पना द्वारा पूर्ण काव्य रूप प्रदान किया है। इसमें कथा एवं भाव–विकास का क्रमबद्ध संयोजन है। इसी में उद्धव गोपी संवाद है और यही सर्वाधिक प्रचलित है।

सूर ने भ्रमरगीत में भ्रमर के माध्यम से श्रीकृष्ण और उद्धव के प्रति मन भर उपालंभ दिलाए हैं और अत मे उद्धव का निरूत्तर एवं गोपियों के प्रेम द्वारा अभिभूत दिखाकर ज्ञान के ऊपर भक्ति की विजय एवं श्रेष्ठता दिखला दी है।

प्रारंभ में श्रीकृष्ण ब्रज की लीलाओं का स्मरण करते हैं। इनकी हृदयद्रावक पीड़ा का वर्णन द्रष्टव्य है–

**'ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं। हंस सुता की सुंदर कगरी अरु कुंजन की छांही।।'**

सूर का भ्रमर प्रारंभ से ही उपस्थित रहता है और गोपियां प्रारंभ से ही अपनी व्यंग्योक्तियां करती हैं। वे गांव की भोली भाली नारियां हैं। वे गांव की रहने वाली हैं, परंतु गांव की गंवार नहीं हैं। वे अपनी सरल स्वाभाविक उक्तियों द्वारा हृदय के कोमल पक्ष का स्पर्श करती हैं और उद्धव के साथ–साथ पाठक एवं श्रोता को भी मंत्रमुग्ध कर देती हैं। उनकी ऋजु सरल उक्तियां मनोमुग्धकारी हैं। उनकी इस प्रवृत्ति का चित्रांकन कुछ इस प्रकार है–

**'अंखियां हरि दरसन की भूखी। कैसे रहें रूप रस राची ये बतियां सुनि रूखी।।'**

× × × × **'उर में माखन चोर गड़े। अब कैसेहु निकसत नहिं ऊधौ, तिरछै ह्वै जु अड़े।।'**

मथुरा निवासी गोपियों के प्रति सदैव निष्ठुर रहे हैं। पहले अक्रूर आए और कृष्ण को ले गए। वहां कुब्जा का अपने प्रेम पाश में बांधकर रोक लिया और अब उद्धव कृष्ण को मन से निकालने की बात कहने के लिए पधारे हैं। इस पर गोपियां मथुरा निवासियों के प्रति व्यंग्योक्तियां कहती हैं। ये व्यंग्योक्तियां प्रेम–प्रसूत हैं। द्वेष गर्भित नहीं। इन भावों को सूर ने अपनी विचित्र कला के माध्यम से कटूक्तियों द्वारा सरलता तथा वाग्वैदग्ध्य रूप में दिखाकर अपनी भाषा की विशेषता दिखाई है–

**'बिलग जनि मानहु, ऊधौ प्यारे। वह मथुरा बाजार की कोठरि, जे आवहिं ते कारे।।'**

वाग्वैदग्ध्यता की सफलता के लिए उसके मूल में भावाकुलता आवश्यक होती है। 'विदग्धा– नायिका' की 'वेदग्धता' में काव्यात्मक सौंदर्य इसलिए होता है कि उससे रतिभाव घुला–मिला रहता है। इष्ट देवता के मधुर क्रीड़ाशील रूप के वर्णन का सुअवसर प्राप्त कर सकने के कारण 'सूर' ने जो वाग्वैदग्ध्य विकसित किया था, उसका भरपूर प्रयोग उन्होंने भ्रमरगीत में भी किया है। उद्धव का उपदेश सुनकर गोपियां सर्वप्रथम उपदेश के प्रति अपनी अज्ञानता और आश्चर्य प्रकट करती हैं बरबस उनके मुख से निकल पड़ता है, "यह आप क्या कह रहें हैं ऐसा कहने में प्रयत्न नहीं करना पड़ता, भ्रमरगीत में 'प्रयत्नहीन विदग्धता' के सुंदर चित्र सूर ने प्रस्तुत किया है–

**'हमसों कहत कौन की बातें ? सुनि ऊधो हम समुझति नाहीं, फिरि–फिरि पूंछति हैं तातें।।**

**× × × तू अलि कासों कहत बनाय ?**

सगुण–पंथ सीधा रास्ता है, तथा निर्गुण का मार्ग कंटकाकीर्ण है। मालूम होता है कि तुमको कुब्जा ने सिखाकर भेजा है। इसीलिए जानबूझकर ये उल्टी बातें कर रहे हो। सूर की वाग्वैदग्धता पूर्ण तर्क शैली कुब्जा–प्रसंग में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुई है। कहां कृष्ण को लोकोत्तर और कहां कुबड़ी दासी ? अतः सूर ने इस प्रसंग को लेकर कई कथन–पद्धतियों का अविष्कार किया है। इस कथन में सूर ने गोपियों की वाग्वैदग्धयुक्त तर्क शैली द्रष्टव्य है–

**'काहे को रोकत मारग सूधौ। सुनहु मधुप! निर्गुन कंटक ते राजपंथ क्यों खूधौ।**
**कै तुम सिखै पठाए कुब्जा, कै स्यामधन जूघौ। वेद पुरान स्मृति सब ढूंढ़ों, जुवति न जोग कहूंधौ।**
**ताको कहा परेखौ कीजै, जानत छाछ न दूधौ। सूर क्रूर अक्रूर ले गये, ब्याज निबेरत ऊधौ।।'**

इस प्रकार सूरदास ने गोपियों के मन की अवस्थाओं का बहुत ही सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

सूर की गोपियां भ्रमरगीत में अपनी वाक्पटुता का पूरा परिचय देती हैं। ये बड़ी चतुराई से उद्धव जैसे तार्किक ज्ञानी योगी को भी पराजित कर देती हैं। वे अपने मन की कामना को दूसरे रूप में व्यक्त करती हैं :–

**'कोई सखि नई चाह सुनि आई। यह ब्रजभूमि सकल सुरपति पै, मदन मिलिक कर पाई।**
**धन दावन, बग पांति पटो सिर, बैरख तड़ित सुहाई। बोलन पिक चातक ऊंचे सुर, मनो मिली देत दुहाई।।'**

वाग्वैदग्धता की सफलता के लिए सूर ने उसमें भावाकुलता का होना आवश्यक बताया है। कुब्जा के आकर्षण में श्रीकृष्ण का उलझना और मथुरा में रम जाना। गोपियां उसके प्रति मीठी–मीठी चुटकियां लेती हैं :–

**'बरु वै कुबजा भलो कियो। सुनि–सुनि समाचार ऊधो, मो कछुक सिरात हियो।।**
**जाको गुन, गति, नाम, रूप हरि हारयो फिरि न दियो। तिन अपनो मन हरत न जान्यो, हंसि हंसि लोक जियो।।'**

इस पद में भाव–प्रेरित वचन–विदग्धता के दर्शन होते हैं। कैसा मीठा परिहास है। गोपियां अपनी बात उलटी–सीधी, आड़ी–तिरछी लकीरों, मौन कथनों और विधि–निषेधमय शब्दावली से प्रकट करने में न चूकती हैं, न देर करती हैं। उन्हें तो बात–बात में अपने प्रेम पक्ष का पोषण करना उद्धव के ज्ञान पर हंसना, कृष्ण के कुब्जा–प्रेम पर प्रहार करना, संयोग की स्मृतियां कुरेदनादि न जाने कितने ढ़ंगों से आता है। लक्षणा–व्यंजना की सीमा भी, गोपियों की विदग्धता के सामने संकुचित दिखाई देती है। शुक्ल जी ने उनकी विदग्धता के संबंध में सही निष्कर्ष निकाला है कि हवा से लड़ने वाली स्त्रियां तो शायद नहीं देखी गईं, किंतु हवा से बात करने वाली गोपियां को भ्रमरगीत में देखा जा सकता है। गोपियों की यही वचन–चातुरी विकसित होकर उपालंभ, परिहास और कटु–मधुर व्यंग्यों का रूप धारण कर लेती हैं। वे 'चित्त' भी अपनी 'पटट' भी अपनी ही रखती हैं। उनकी बातों के सामने ज्ञानी उद्धव की बेचारगी देखने योग्य है।

सूरदास ने गोपियों के मन की अवस्थाओं का बहुत ही सूक्ष्म विश्लेशण प्रस्तुत किया है। गोपियों के विप्रलंभ एवं उपालंभ के मध्य करुण वात्सल्य के पुट द्वारा यह वर्णन अत्यंत मार्मिक एवं रसासिक्त बन गया है। कृष्ण द्वारा यशोदा के लिए भेजे गए संदेश का वर्णन द्रष्टव्य हैं–

**'नीके रहियो जसुमति मैया। आवेंगे दिन चार–पांच में हम हलधर दोऊ भैया।।**
**× × × × × कहियो जाय नंद बाबा सों निपट कठिन हिय कीन्हों।**
**सूरस्याम पहुंचाय मधुपुरी बहुरि संदेश न लीन्हों।।'**

माता यशोदा उद्धव के द्वारा जो संदेश भेजती हैं उसकी करुणा का क्या कहना ? वह सर्वथा अप्रतिम हैं।

**'संदेसौ देवकी सों कहियो हौं तो धाय तिहारे सुत की मया करत ही रहियो।**
**× × × × × तुम तो टेव जानतहि ह्वैं हो तउ कहे मोहि आवै।**
**प्रात उठत मेरे लाल लड़ेते माखन रोटी भावै।।'**

भंवर को देखकर, उसके रंग, वर्ण तथा कार्य का विश्लेषण करके, गोपियां इसी निष्कर्ष पर पहुंची कि वह प्रिय भी इसी भंवर के समान कुटिल, स्वार्थी और तन–मन का काला है–

**'वह मथुरा काजर की कोठरी, जो आवहिं ते कारे।। तुम कारे, सुफलक सुत कारे, कारे मधुप भंवारे।।**
**तिन के संग अधिक छवि उपजत, कमल नैन मनियारे।। मानहुं नील माट ते काढ़े लै जमुना में पखारे।।'**

यहां गोपियों के द्वारा स्पष्ट रूप से कृष्ण की हृदयगत कालिमा को कोसा गया है। गोपियां केवल काले शरीर को ही नहीं कोसती, उसमें समाविष्ट मन की कालिमा से उनकी शिकायत अधिक है। ऐसे काले लोगों के गुण निराले हैं। इसमें व्यंग्य का पुट ही उपालंभ को तीखा बनाता है।

गोपियों ने जब देखा कि कृष्ण जैसा सौंदर्य प्रेमी, अब कुब्जा जैसी कंस की विद्रुप दासी के प्रेमपाश में बंध गए हैं। उन्हें कृष्ण की सुरुचि पर व्यंग्य, उपहास भरा उपालंभ सूझ आया। कुब्जा के प्रेमपाश में बंधकर वे गोपियों को भूल गए, फिर अपना नाम और संबोधन 'गोपीनाथ' क्यों धारण किए हुए हैं ? यदि वे गोपीनाथ हैं, तो हमारे ही बनकर रहें, अन्यथा वे अपना नाम 'कुबरीनाथ' ही क्यों नहीं रख लेते हैं ? गोपियों की शिकायत कितनी वाजिब है। सुंदरी गोपियों के स्वामी कुबड़ी दासी के साथ रमण करें और अपना नाम गोपियों से जोड़े–

**'काहे को गोपीनाथ कहावत ? जो पै मधुकर ! कहत हमारे, गोकुल काहे न आवत ?**
**सपने को पहिचानि जानि कै, हमहि कलंक लगावत ! जो पै स्याम कूबरी रीझै, सो किन नाम धरावत।।'**

कृष्ण का यह काम 'आंखों का अंधा, नाम नैनसुख' की कहावत को चरितार्थ करता है। यहां स्पष्ट ही कृष्ण की निष्ठुरता एवं कपट–प्रेम पर व्यंग्य किया गया है। गोपियों को दुःख केवल इसी बात का है कि उनसे स्नेह का नाता तोड़ने पर भी कृष्ण 'गोपीनाथ' कहलाते हैं। यह असंगति लज्जास्पद है और उपालंभ के सर्वथा योग्य भी है।

राधा और गोपियों का उपालंभ केवल कृष्ण और उद्धव के प्रति ही नहीं होता, अपितु प्रकृति के जड चेतन उपकरणों के प्रति भी है। वे मधुबन से भी शिकायत करती हैं कि तुम्हारा उपयोग करने वाला ही वह मेरा प्रिय यहां नहीं है तो तुम फिर तुम्हारा हरा–भरा होना ही व्यर्थ है। गोपियों और राधा की विरह–दशा का वर्णन सूर कुछ इस प्रकार से करते हैं–

**'मधुबन, तुम कत रहत हरे। विरह–वियोग स्याम सुंदर के ठाढ़े क्यों न जरे।।'**

ब्रज के ग्वाल–बाल, गोप–गोपीजन की दशा देखकर उद्धव–उद्धव न रहे। वह प्रेम द्वारा अभिभूत और भक्ति द्वारा पराभूत हो गये। मानो भक्ति की भागीरथी में ज्ञान के झाड़ झंखाड़ बह गये अथवा प्रेमाश्रु की उष्णता में पाषाण भी द्रवीभूत हो उठे। भक्ति की भागीरथी में ज्ञान की इस कालिंदी का अन्तर्भाव सचमुच स्पृहणीय है–

**'जो कोउ पावै सीस दै ताको कीजै नेम। मधुप हमारी सौं कहौ, हो जोग भलौ किधौ प्रेम।।**
**× × × × सुनि गोपिन को प्रेम नेम ऊधौ को भूल्यौ।।**
**गावत गुन गोपाल फिरत कुंजन में फूल्यौ।। छन गोपिन के पग धरै धन्य तिहारो नेम।**
**धाय धाय द्रुम भेंटहीं हो ऊधो छाके प्रेम।। × × × × ×**
**उपदेसन आयो हूतो मोहिं भयौ उपदेस। ऊधौ जदुपति पै गए, हो किए गोप का बेस।।**
**× × × × × गोकुल को सुख छाड़ि कै कहां बसे हौ आय्।**
**कृपावंत हरि जानि कै, हो, ऊधौ पकरे पाय।। देखत ब्रज को प्रेम नेम, कछु नाहिंन भावै।**
**उमड़यो नयननि नीर बात कछु कहत न आवै।। सूर स्याम भूतल गिरे रहे नयन जय छाय।**
**पोंछि पीत पट सों कह्यो, आए जो सिखाय।।'**

सूरदास ने सीधे–सादे एवं अत्यंत स्वाभाविक शैली में विरह–संतृप्त हृदयों की विभिन्न मनोदशाओं के सूक्ष्म एव मार्मिक चित्रण करते हुए ज्ञान के समक्ष प्रेम–भक्ति की सरलता एवं श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है, जो कांतासम्यक उपदेश सदृश सीधा हृदय को प्रभावित करता है। सूर के भ्रमरगीत के साथ हिंदी काव्य में भ्रमरगीत की एक क्रमबद्ध परंपरा ही आरंभ हो गई और आधुनिक काल तक के परवर्ती कवि उसमें अवगाहन करके अपनी वाणी को पवित्र करते रहे हैं।

**भ्रमरगीत प्रसंग की लोकप्रियता**–हिंदी काव्य से भ्रमरगीत–काव्य परंपरा के प्रवर्तक महाकवि सूरदास के भ्रमरगीत के पश्चात् हिंदी काव्य में भ्रमरगीत की एक परंपरा ही चल पड़ी। अनेक कवियों ने भक्ति की इस भागीरथी में अवगाहन करके अपने आपको पवित्र किया। भ्रमरगीत परंपरा के प्रमुख कवि पुंगवों के कार्य और नाम निम्नलिखित हैं–

**(क) भक्तिकाल**–भक्तिकाल में राम भक्त गोस्वामी तुलसीदास ने इस प्रसंग की चर्चा करने के लिए 'श्रीकृष्ण गीतावली' का सृजन कर श्रीकृष्ण के चरित्र का गुणगान किया। इसी परंपरा के अंतर्गत नंददास का 'भ्रमरगीत' ही क्रमबद्ध रचना है। इन कवियों ने कुब्जा–कांड पर विशेष बल दिया जिससे असूया संचारी वर्णन का अवसर मिला। भक्तिकाल के ही परमानंददास ने भी भ्रमरगीत परंपरा में योगदान किया।

**(ख) रीतिकाल**–रीतिकाल के शृंगारी कवियों ने भी अवसर पाते ही इस प्रसंग की चर्चा कर डाली। भले ही उन्होंने कुब्जा–प्रसंग को अपनाकर असूया संचारी भाव पर बल दिया, परंतु वे इस प्रसंग की सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सके। रीतिकालीन कवियों में रहीम, देव, पद्माकर, मतिराम, चाचा वृन्दावनदास, घनानंद, भिखारीदास, ब्रजनिधि, रसनायक, अक्षर, अनन्य तथा बरकतउल्ला आदि प्रमुख हैं। रीतिकाल में फुटकर छंद लिखकर ही इस परंपरा को बढ़ावा दिया गया। कुब्जा–प्रसंग के अंतर्गत असूया संचारी भाव वर्णन के बहाने कवियों को अशिष्ट हास्य का क्षेत्र प्राप्त हो गया। फलतः विरह–वर्णन में गोपी–हृदय की वास्तविक अनुभूतियों के स्थान पर मिथ्या कल्पनाओं और आडंबरपूर्ण अतिश्योक्तियों का आडंबर दिखाई देता है।

**(ग) आधुनिक काल**–'भ्रमरगीत' काव्य परंपरा का आरंभ ब्रजभाषा में हुआ और वह प्रायः ब्रजभाषा का ही विषय रहा। परंतु 'हरिऔध' जैसे खड़ी बोली के समर्थक कवि भी उसके मोह का संवरण नहीं कर सके, और अपनी खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रियप्रवास' में उन्होंने इस प्रसंग का समावेश कर दिया। आधुनिक काल में 'भ्रमरगीत' पर नवीन दृष्टि से विचार किया गया। इस काल के कवियों ने इस परंपरा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया जो कि निम्न हैं–भारतेन्दु हरिश्चंद्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', जगन्नाथदास 'रत्नाकर', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, डॉ० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', पं० अमृतलाल चतुर्वेदी, डॉ० सत्यनारायण, द्वारिकाप्रसाद मिश्र तथा श्यामसुंदर दास दीक्षित। इनके अतिरिक्त और भी अनेक कवियों ने इस प्रसंग को लेकर फुटकल रचनाएं कीं। इस काल के कवि जन–जीवन के अधिक निकट आ गए। राधा और कृष्ण सामान्य नायिका–नायक न रहकर समाजसेवी नेता के रूप में प्रस्तुत किए गए। भ्रमरगीत के गठन में आवश्यक परिवर्तन कर दिए गए–यहां

तक कि 'भ्रमर' का नाम भी समाप्त कर दिया गया, परंतु मूल कथानक वही रहा। इसी कारण इस कोटि के काव्यों को 'भ्रमरगीत' की परंपरा के अंतर्गत ही माना जाता है।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' द्वारा सृजित ग्रंथ उद्धव–शतक है। इसके नामकरण में 'भ्रमरगीत' शब्द का अभाव है, पूरे ग्रंथ में केवल एक बार 'मधुप' शब्द का प्रयोग हुआ है–

**'मिलि सो तिहारौ मधु मधुप हमारैं नेह, देह में अछेह विष विषम बगारै हैं।'**(छंद संख्या–75)

परंतु इसको भ्रमरगीत परंपरा का ग्रंथ माना जाता है, क्योंकि 'उद्धव–शतक' का विषय वही परंपरागत विषय–उद्धव–गोपी–संवाद एवं ज्ञान के ऊपर भक्ति की विजय है।

## भक्तिकाल में भ्रमरगीत कवि–

(*i*) **भ्रमरगीत लिखने वाले अष्टछाप कवि**–'अष्टछाप' के कवियों में परमानंददास ने भ्रमरगीत की रचना की। उनके 'भ्रमरगीत' में सूर तथा नंददास के 'भ्रमरगीत' के समान विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया है–उनके कुछ ही पद भ्रमरगीत की काव्य–परंपरा में लिए जा सकते हैं। परमानंददास के भ्रमरगीत के पदों में सूर के पदों का विशेष प्रभाव है। इन्होंने साखी और चौपाई छंदों में रचना की है। परमानंददास ने 'मधुकर' शब्द का प्रयोग किया है, परंतु कहीं भी मधुप प्रवेश नहीं करता। इन्होंने सूर और नंददास की तरह सगुण भक्ति की स्थापना की है। गोपियों की विरह–कातरता का चित्रण इनके भ्रमरगीत की प्रमुख विशेषता है। भाव–व्यंजना की दृष्टि से परमानंददास के भ्रमरगीत के पद उच्चकोटि के हैं। इनकी श्रेष्ठता का उदाहरण द्रष्टव्य है–

**"मोहन वह क्यों प्रीति बिसारी। कहत सुनत समुझत उर अंतर दुःख लागत है भारी।।**
**एक दिवस खेलत वन भीतर बेनी सुमन संवारी। बीनत फूल गयो चुभि कंटक ऐसी विथा बिचारी।।**
***हम पर कठिन हृदय अब कीनों लाल गोवर्धन धारी। परमानंद बलबीर बिना हम मरत विरह की जारी।।***

अष्टछाप के अन्य कवियों में कृष्णदास ने भ्रमरगीत–संबंधी कुछ पद लिखे, परंतु उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। चतुर्भुजदास के भ्रमरगीत संबंधी दो–तीन पद मिलते हैं।

'अष्टछाप' के सूर आदि कवियों ने भ्रमरगीत की जिस काव्य–परंपरा को जन्म दिया वह आज तक अबाध गति से चली आ रही है। भक्ति काल के इन कवियों ने 'भ्रमरगीत–काव्यधारा' में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया।

(*ii*) **नंददास का भ्रमरगीत**–सूर के पश्चात् नंददास का भ्रमरगीत महत्वपूर्ण है। इनका भ्रमरगीत नाटकीय प्रश्नोत्तर शैली में है। उद्धव गोपियों को ज्ञान का उपदेश देते हैं। गोपियां उनका खंडन करती हैं। इस प्रकार उद्धव अपने पक्ष के समर्थन में जो तर्क देते हैं गोपियां उनसे भी प्रबल तर्क देती हैं। इस प्रकार तर्क–वितर्क, उत्तर–प्रत्युत्तर, खंडन–मंडन के आधार पर कथानक का विकास होता है। गोपियों के तर्क से पराजित होकर उद्धव अपनी हार स्वीकार कर लेते हैं। नंददास की गोपियां ज्ञान–मंडिता विदुषी महिलाएं हैं। उद्धव अपना पक्ष प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि कृष्ण सर्वत्र व्याप्त हैं, वे निराकार हैं। वे अजन्मा, अनादि, हाथ पैर और मुख से रहित हैं, केवल ज्ञान के द्वारा ही उनको प्राप्त किया जा सकता है। गोपियां अपने प्रबल तर्क के साथ, सर्व अकाट्य युक्तियों के द्वारा उनके कथन का खंडन करती हैं–

**'जो मुख नाहिन हुतो, कहौ किन माखन खायो ? पांयन बिन गो–संग कहौ बन–बन को धायो ?**
**आंखिन में अंजन दियो गोवर्धन लियो हाथ। नंद–यशोदा पूज हैं कुंवर कान्ह ब्रजनाथ।।**
**सखा सुन स्याम के ।।'**

सूर की अपेक्षा नंददास के भ्रमरगीत में यह विशेषता है कि उसमें दार्शनिकता की प्रधानता है। सगुण रूप में पक्ष में इतने प्रत्यक्ष प्रमाणों के रहते हुए ब्रह्म के निर्गुण रूप को कैसे स्वीकार किया जा सकता है।

उद्धव निरुत्तर न हो जाते, तो करते ही क्या ? सूर के भ्रमरगीत में कुब्जा और राधा दोनों का नाम आया है परंतु नंददास के भ्रमरगीत में राधा का नाम ही नहीं है। नंददास की गोपियां जो व्यंग्य करती हैं उसमें भी सूर की गोपियां के व्यंग्य की अपेक्षा अधिक तीखापन है–

***'कोई कहें री सुनौ और इनके गुन आली। बलि राजा पै गये भूमि मांगन बनमाली।।***
**मांगत बावन रूप धरि नापत करी कुठांव। सत्य धर्म सब छांड़ि कै धरयो पीठ पैं पांव।। लोभ की नाव पै।।'**

उद्धव अपनी ज्ञान गरिमा का प्रसार करते हैं और कहते हैं कि श्रीकृष्ण को योग के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। उद्धव की बात का उत्तर गोपियां बहुत ही स्वाभाविक ढंग से देती हैं। वे सूर की गोपियों के एकदम निकट आ जाती हैं–

**'ताहि बताबहू जोग जोग ऊधौ जेहि भावै। प्रेम सहित हम पास नंद नंदन गुन पावै।**

**नैन बैन मन प्रान में मोहन गुन भरपूरि। प्रेम पियूषै छांड़ि कै कौन समेटे धूरि। सखा सुनु स्याम के।'**

नंददास की गोपियां जब कृष्ण का नाम सुनती हैं वे प्रेम–विह्वल एवं उसी में मग्न हो जाती हैं। इनकी गोपिया भावुकता में कम नहीं हैं। कृष्ण की स्मृति में वे कातर हो उठती हैं–

**'ऐसे में नंदलाल रूप नैनन के आगे। आय गए छवि छाय बने पियरे उर बागे।**

**ऊद्धव सों मुख फेरि कै बैठि सकुचि कह बात। प्रेम अमृत मुख तें स्रवत अंबुज नैन चुआत।। तरक रस रीति की।**

गोपियों के प्रेम–नेम तथा उनकी वाक्पटुता का उद्धव के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ता है :–

**'देखत इनको प्रेम–नेम उद्धव को भाज्यौ। तिमिर भाव आवेश बहुत अपने मन लाज्यौ।।'**

भक्ति की मूर्तिमती गोपियों के सम्मुख उद्धव नतमस्तक हो जाते हैं–

**'मन में कह रज पाय कै लै माथे निज धारि। हौं तो कृत–कृत ह्वै रह्यौ त्रिभुवन आनंद बारि।। वंदना जोग य।।'**

नंददास का 'भ्रमरगीत' अपनी मौलिकता में महत्वपूर्ण है। उसमें तर्क–निपुणता और दार्शनिकता के साथ–साथ सरसता और भाव–व्यंजना भी है। नंददास ने दार्शनिक वाद–विवाद कराकर अंत में सगुण भक्ति की प्रतिष्ठा की है। 'भ्रमरगीत' छंद का अधिकांश सर्वप्रथम नंददास के ही 'भ्रमरगीत' में मिलता है।

(*iii*) **तुलसी का भ्रमरगीत**—गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीकृष्ण गीतावली तथा कवितावली में 'भ्रमरगीत' प्रसंग का समावेश किया है। 'कवितावली' में इससे संबंधित केवल दो छंद–एक सवैया (छंद संख्या–134) और एक कवित्त (छंद संख्या–135) उत्तरकांड में मिलते हैं। कवितावली में गोपियों की मार्मिक व्यथा की अभिव्यक्ति हुई हैं। इन छंदों में गोपियों का सारा आक्रोश कुब्जा के प्रति है। वे कहती हैं कि उनके लिए कुब्जा ने ही योग की कथा भेजी है और स्वयं कृष्ण को वरण करके वह आनंद मना रही है।

**'जोग कथा पठई ब्रज को सब सो, सठ चेरी की चाल चालाकी।**

**ऊधौ जू ? क्यों न कहै कुबरी, जो बरी नटनागर हेरि हलाकी।**

**जाहि लगै पर जानै सोई, तुलसी सो सुहागिनि नंदलला की।**

**जानी है जानपनी हरि की अब, बांधियैंगी कछु कोटि कला की।'**(छंद 134, उत्तरकांड, कवितावली)

'श्रीकृष्ण गीतावली' में तुलसी ने इस प्रसंग का पर्याप्त विस्तार किया है। इसमें कुछ पद तो ऐसे मिलते हैं जिनमें सूर एवं तुलसी के नाम की छाप छोड़कर पूर्णरूप से शब्द साम्य है–अर्थात् यदि तुलसी, सूर नाम हटा दिए जाएं तो यह बताना कठिन है कि यह पद किसके द्वारा रचित है। तुलसी ने उद्धव के लिए 'मधुप', 'मधुकर' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। तुलसी के भ्रमरगीत में नर्म का प्रवेश नहीं होता, परंतु गोपी–उद्धव संवाद में भ्रमरगीत की समस्त विशेषताएं पाई जाती हैं। मर्यादा–स्थापन की प्रकृति तुलसी के भ्रमरगीत की मौलिक उद्भावना है। इनकी गोपियां सूरदास और नंददास की भांति निर्लज्ज और चचल नहीं है। वे उद्धव के साथ बहुत ही विनम्र भाव से वार्तालाप करती हैं। वे न सूर की गोपियों की तरह वाक्पटु हैं और न नंददास की गोपियों की तरह तर्क ही करती हैं। गोपियां अपनी भक्ति संबंधी विनयशीलता की मर्यादा दिखाकर ही ज्ञान–गर्वित उद्धव का हृदय जीतती हैं।

भक्तिकाल में तुलसी के अतिरिक्त हरिराय, मलूकदास, मुकुन्ददास, घासीराम एवं रसखान आदि ने भी भ्रमरगीत प्रसंग पर फुटकर छंद लिखे। इस क्षेत्र में हरिराय की 'स्नेह लीला', मलूकदास की 'ऊधौ पचीसी' तथा रसखान के कुछ कवित्त सवैया उल्लेखनीय है।

तुलसी के पश्चात् भ्रमरगीत की परंपरा का विकास रहीम के काव्य में मिलता है। इन्होंने बरवै छंद में भ्रमरगीत की रचना की। इसमें गोपियों की मार्मिक मनोव्यथा का सुंदर चित्रण हुआ। रहीम के भ्रमरगीत के समान गोपियो की तन्मयता अन्यत्र नहीं मिलती। निम्न उदाहरण में 'हास्य' शब्द हृदय की मार्मिक व्यथा का सागर उड़ेल देता है–

**'घेर रह्यौ दिन रतियां बिरह बलाय। मोहन की यह बतियां ऊधौ हाय।।'**

## रीतिकाल के भ्रमरगीत–कवि

रीतिकाल के कई कवियों ने भ्रमरगीत प्रसंग पर फुटकर रचनाएं लिखीं। उनकी रचनाओं में 'मधुकर', मधुप भ्रमर आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन रचनाओं में भावनुभूति है। परंतु शृंगार की बातों को ही किसी न किसी रूप में अभिव्यक्ति है। इस काल में इस प्रसंग पर जो भी रचनाएं लिखी गईं उन पर सूर के भ्रमरगीत का स्पष्ट प्रभाव है। रीतिकाल में किसी भी कवि ने 'भ्रमरगीत' के प्रसंग को लेकर स्वतंत्र अथवा क्रमबद्ध रचना नहीं की है। इन छंदों में भावानुभूति है और उनक द्वारा शृंगारिक रचनाओं को ही व्यक्त किया गया है। 'भ्रमरगीत' प्रसंग पर लिखने वाले कवियों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं –

**(1) मतिराम**—मतिराम के भ्रमरगीत संबंधी फुटकर छंदों में सूर आदि की परंपरा का ही पालन है। इन्होंने गोपियों के विरह का मार्मिक चित्रण किया है। मतिराम की गोपियां कृष्ण के प्रति झुंझलाहट प्रकट करती हैं। उनमें स्पष्टवादिता है। वे उद्धव के प्रति आदर भाव व्यक्त करती हैं। उनमें चपलता और बौद्धिकता है।

**(2) देव**—देव ने चमत्कारपूर्ण उक्तियों में गोपियों की मनोदशा का चित्रण किया है।

**'सांवरे लाल को सांवरो रूप मैं नैनन कौ कजरा कहि राखो।'** × × × × ×

**'या तन तें बिछुरे तो कहा, मन ते अनतें जु बसौ तब जानों।।'**

वे उद्धव के प्रति भी व्यंग्य करती हैं–

**'को हमको तुमसे तपसा बिन जोग सिखावन आइ है ऊधौ।।'**

देव की गोपियां कुब्जा के प्रति अद्‌भुत व्यंग्य करती हैं, उनके कथनों में सौतियाडाह की भावना अधिक है। वह 'असूया' संचारी भाव की सुंदर अभिव्यंजना करती है।

देव के इस प्रसंग के अंतर्गत सगुण और निर्गुण का द्वंद्व न होकर राग और विराग का द्वंद्व है। भ्रमरगीत काव्य के विकास में देव की मौलिक देन कही जाती है।

**(3) आचार्य भिखारीदास**—आचार्य भिखारीदास ने भी भ्रमरगीत प्रसंग पर कुछ फुटकर सवैया लिखे हैं। इनमें गोपियों की विरह–व्यथा का मार्मिक चित्रण हुआ है। इस छंद में गोपियां उद्धव को संबोधन करती हैं। उनके कथन में कुब्जा के प्रति असूया संचारी भाव की अभिव्यक्ति अधिक है–

**'ऊधौ ! तंहाई ले चलौ हमैं, जहं कूबरी कान्ह बसे एक ठौरी। देखिय दास अघाय–अघाय, तिहारे प्रसाद मनोहर जोरी। कूबरी सों कछु पाइए मंत्र, लगाइए कान्ह सों प्रीति की डोरी। कूबरी भक्ति बढ़ाइए 'बन्दि' चढ़ाइए चंदन–बंदन रोरी।।'**

**(4) घनानंद**—घनानंद ने भ्रमरगीत–प्रसंग को लेकर स्फुट छंदों की रचना की है। इन्होंने गोपियों के समक्ष सगुण और निर्गुण के द्वंद्व को उपस्थित किया है। इस द्वंद्व में उन्होंने सगुण पक्ष की विजय दिखाई है। घनानंद के छंदों में रीतिकालीन भाव, भाषा, अलंकार की विशेषताएं स्पष्ट दिखाई देती है।

घनानंद की गोपियां भ्रमर को स्वार्थ में अंधा कहती हैं और अपनी निराशामय वेदना व्यक्त करती हुई कृष्ण के प्रति अपने अनन्य प्रेम की अभिव्यक्ति करती हैं।

**(5) पद्‌माकर**–रीतिकाल में 'भ्रमरगीत–प्रसंग' को लेकर रचना करने वाले कवियों में पद्‌माकर का स्थान महत्वपूर्ण है। इन्होंने इस परंपरा में महत्वपूर्ण योगदान किया है। पद्‌माकर की गोपियां कृष्ण के प्रति तन्मयता भी व्यक्त करती हैं। और कुब्जा को उपालंभ भी देती हैं–

**'जैसे को तैसो मिलै, तब ही जुरत सनेह। ज्यों त्रिभंग तन स्याम को, कुटिल कूबरी देह।'**

इतना ही नहीं, पद्‌माकर की गोपियां प्रेम के उज्ज्वल पक्ष को सामने भी प्रस्तुत करती हैं :–

**'ऊधौ वे गोविंद कोऊ औरै मथुरा में, यहां तो गोविंद मोहि मांहि रहत हैं।'**

**(6) सेनापति**—सेनापति ने भ्रमरगीत–प्रसंग को लेकर कुछ छंदों का सृजन किया है। उनकी गोपियों में नंददास की गोपियों की तरह बौद्धिकता है। इनकी गोपियां तर्क करती हुई प्रेम को ही प्रधानता देती हैं। सेनापति ने इस प्रसंग में कुब्जा को ही महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

इनके अतिरिक्त भ्रमरगीत प्रसंग पर क्रमबद्ध रचना करने वालों में रसनायक, ग्वाल कवि और ब्रजनिधि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। 'रसनायक' ने 'विरह–विलास' की रचना की है। इसमें दोहे और कवित्त का क्रम रखा गया है। इनके काव्य में गोपियों के हृदय का अत्यंत स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

'ग्वाल कवि' ने 'प्रेम–पच्चीसी' लिखी, जिसमें गोपियां उद्धव को जली–कटी सुनाती हैं। इसमें गोपियों की विरह–व्यथा की पीड़ा का मार्मिक वर्णन हुआ है।

'ब्रजनिधि' ने अपनी रचना 'प्रीति–पच्चीसी' में उद्धव–गोपी–संवाद में उद्धव की योग साधना का जोरदार परिहास करवाया है।

रीतिकाल के अन्य कवियों ने भी भ्रमरगीत–प्रसंग को लेकर कुछ स्फुट छंद लिखे हैं। इनके इन छंदों में भ्रमरगीत काव्य परंपरा के विकास में पर्याप्त योगदान किया।

## आधुनिक काल के भ्रमरगीत–कवि

भक्तिकाल के कृष्ण भक्त कवियों ने भ्रमरगीत काव्य की जो धारा प्रवाहित की थी, वह रीतिकाल में क्षीण हो गई, परंतु आधुनिक युग में आकर भ्रमरगीत प्रसंग को पुनः नवीन शक्ति प्राप्त हुई। कुछ कवियों ने अपनी प्रतिभा से इस प्रसग को नवीन आलोक प्रदान कर उसमें नवजीवन का संचार कर दिया है। आधुनिक युग के कवियों ने भ्रमरगीत–प्रसंग पर छंद लिखे और स्वतंत्र रूप में भी भ्रमरगीत–काव्य की रचना की। इनमें भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र, बदरीनारायण चौधरी, 'प्रेमधन', अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध मैथिलीशरणगुप्त, सत्यनारायण 'कविरत्न', जगन्नाथदास 'रत्नाकर' और रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

उपर्युक्त कवियों में भारतेंदु और प्रेमघन ने भ्रमरगीत प्रसंग पर स्फुट पद लिखे हैं जो सूर से बहुत अशों में प्रभावित हैं। इनमें भारतेंदु में प्रेमघन की अपेक्षा अधिक भावुकता एवं गांभीर्य है।

**(1) भारतेंदु हरिश्चंद्र**—भारतेंदु ने 'भ्रमरगीत–प्रसंग' को लेकर कुछ स्फुट छंद लिखे हैं। इनके भाव पक्ष पर सूर तथा कला पक्ष पर रीतिकाल का व्यापक प्रभाव है। भारतेंदु की गोपियां प्रारंभ में सूर की गोपियों की तरह उद्धव के प्रति आदर व्यक्त करती हैं परंतु उनके योग का उपदेश सुनकर वे क्रोधित हो भड़क उठती हैं। उनमें नियतिवाद अधिक है। इन गोपियों के कथन में आभारत और क्षोभ का वातावरण द्रष्टव्य है–

**'तुम ऊधो यही कहियो उनसों, हम और कछु नहिं जानति हैं। पिय प्यारे तिहारे बिना, अंखिया दुखिया नहिं मानति हैं।।**

**(2) बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'**—प्रेमघन जी ने सूर और भारतेंदु की शैली पर 'भ्रमरगीत' विषयक स्फुट छंद लिखे हैं इनमें कुब्जा के प्रति भी मार्मिक व्यंग्य मिलता है। गोपियों के सरल स्वाभाविक तर्कों के सम्मुख उद्धव हतप्रभ हो जाते हैं।

**(3) सत्यनारायण कविरत्न**—कविरत्न सत्यनारायण ने आधुनिक युग में ब्रजभाषा में स्वतंत्र रूप से भ्रमरगीत की रचना की परंपरागत विषय को सत्यनारायण ने मौलिकता पूर्ण तरीके से मोड़ दे दिया। उन्होंने यशोदा के माध्यम से मातृ–भूमि की व्यथा का चित्रण किया है। इस भ्रमरगीत में न तो कुब्जा पर व्यंग्य है और न निर्गुण–सगुण का खंडन–मंडन ही उपस्थित किया गया है इसमें लोकहित को प्रमुखता दी गई है। यशोदा की व्यथा अपनी व्यथा मात्र न होकर समस्त ब्रज–भूमि की व्यथा है–

**'या बिनु ग्वालिनि कों, को हित की बात सुझावै।। अरु स्वतंत्रता समता, सह भ्रातृता सिखावै।।**
**यदपि सकल विधि से सहत दारुण अत्याचार। पै न कछु मुख सो कहत, कोरे बने गंवार।। कोऊ अगुआ नहीं।।**

**(4) अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध**—हरिऔध ने भ्रमरगीत–प्रसंग का वर्णन 'प्रियप्रवास' में बहुत विस्तार से किया है। उन्होंने वर्णन में मौलिकता का समावेश किया है। इन्होंने इस प्रसंग को आधुनिकता के रंग में रंग दिया है।

'प्रियप्रवास' के भ्रमरगीत की कथा क्रमबद्ध है तथा श्रीमद्भागवत के ही समान है। जैसे इसमें द्वारिका से लेकर ब्रज तक के पथ का विस्तृत वर्णन व्याप्त है तथा यशोदा के द्वारा कृष्ण का मार्मिक गुणानुवाद है।

प्रियप्रवास की गोपियां गंभीर हैं। उनकी उक्तियों में न व्यंग्य है और न कोई उपालंभ। राधा के रूप मे हरिऔध ने आधुनिक भारतीय नारी का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। उक्तियों में गांधीवाद का प्रभाव है। उद्धव के उपदेश के फलस्वरूप राधा का कृष्ण–प्रेम विश्व–प्रेम में परिणित हो जाता है। राधा लोक–सेविका के रूप में सामने आती है। वह उद्धव से कहती है–

**'मैं जैसी हूं निज दुख से कष्टिता शोक–मग्ना। हूं वैसी ही व्यथित ब्रज के वासियों के दुख से।।'**

राधा उद्धव के माध्यम से कृष्ण के लिए लोक–सेवा का संदेश भेजती है और कामना करती हैं कि, "प्यारे जीवें जगहित कर गेह चाहे न आवें।"

'प्रियप्रवास' की राधा की यह कामना वस्तुतः सूर की गोपियों की कामना का ही नवीन संस्करण है। सूर की गोपियां भी तो यह कहती हैं–

**'जहं जहं रहौ राज करो सुख सों लेहु कोटि सिर भार। सूर स्याम हम देत असीस हैं न्हात रवसै जनि बार।।'**

उद्धव राधा के समक्ष निरुत्तर हो जाते हैं और उनकी चरण रज लेकर मथुरा को विदा होते हैं।

**(5) मैथिलीशरण गुप्त**—मैथिलीशरण गुप्त ने 'द्वापर' में भ्रमरगीत का प्रसंग उठाया है। इसमें उन्होंने परंपरा से चली आती हुई भ्रमरगीत की समस्त परंपराओं का सन्निवेश किया है। इसमें गोपियों की मार्मिक वेदना एवं अनन्य प्रेम की तन्मयता जो दिखाई गई है वह मौलिक और अनूठी है। गुप्त की गोपियां यदि एक ओर शील, विनय की मूर्ति हैं, तो दूसरी ओर वाक्चतुर और स्पष्टवादिनी भी हैं। वे कहती हैं–

**'अरे विहंग, लौट आ, तेरा नीड़ रहा इस वन में। छोड़ उच्च पद की उड़ान वह, क्या है शून्य गगन में ?**
**× × × × × ज्ञान योग से हमें हमारा यही वियोग भला है।**
**जिसमें आकृति; प्रकट, रूप गुण, नाट्य कवित्त कला है।'**

'द्वापर' में यह प्रसंग केवल प्रासंगिक रूप में ही उठाया गया है।

**(6) जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'**—रत्नाकर का 'उद्धव–शतक' भ्रमरगीत काव्य–परंपरा की अंतिम महत्वपूर्ण कड़ी है। इसमें आध्यात्मिकता, लौकिकता, भावुकता, वाक्पटुता, विनम्रता आदि सभी कुछ एक साथ देखने को मिल जाती है। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि कृष्ण और राधा एवं गोपियों को समान रूप से वियोग विह्वल दिखाया गया है। उभय पक्षीय प्रेम का परिपाक पाठक को आत्म–विभोर कर देता है।

इसमें यद्यपि भ्रमर का समावेश नहीं है, तथापि इसमें हमें सूर की गोपियों की उक्तियों से मिलने वाली भाव–भंगिमा के दर्शन होते हैं–

**'केती मिली मुकुति वधू वर के कूबर में, ऊबर भई जो मधुपुर में समानी ना।'**

इस ग्रंथ में हमको ब्रज का वही पुरातन प्रेमासिक्त वातावरण देखने को मिलता है। कृष्ण कहते हैं–

**'ऊधौ सुख–सम्पत्ति–समाज ब्रज–मंडल के, भूले हूं न भुलैं हमको भूले हू भुलाइवो।'**

ब्रज–प्रेम के साथ–साथ ब्रज का प्रेमासिक्त वातावरण–

**'गोकुल के गांव की गली में पग पारत ही, भूमि के प्रभाव भाव औरै भरिवै लगे।'**

गोपियां उद्धव को बहुत ही स्पष्ट और करारा उत्तर देती है–

**'चुप रहो ऊधो, सूधौ पथ मथुरा को गहो, कहौ न कहानी जो विविध कहि आये हो।'**

अंत में उद्धव के ज्ञान की पराजय दिखाकर भक्ति तथा प्रेम की विजय दिखाई गई है।

भ्रमरगीत–परंपरा श्रीमद्भागवत काल से लेकर अब तक चली आ रही है। सूर ने श्रीमद्भागवत को आधार अवश्य बनाया किंतु स्थान–स्थान पर उसमें अपनी छाप भी लगाई। भावगवतकार ने कृष्ण की व्यथा का चित्रण बिल्कुल नहीं किया है। उनका उद्देश्य गोपियों द्वारा उद्धव को शिक्षा दिलाना भी नहीं है। वे तो उद्धव को अपने माता–पिता यशोदा तथा नंद एवं गोपियों की विरह–व्यथा को दूर करने के लिए भेजते हैं। वहां कुब्जा अपना कोई संदेश नहीं भेजती है। श्रीमद्भागवत में उद्धव गोपियों के अनन्य प्रेम से प्रभावित होते हैं किंतु उन्हें उपदेश निर्गुण ब्रह्म का ही देते हैं। वे अंत तक ज्ञानी और योगी ही बने रहते हैं। इस प्रकार सूर ने 'उद्धव गोपी संवाद' में सुरूच्यानुसार यथास्थान पर्याप्त परिवर्तन किये। उनके परवर्ती भ्रमरगीतकारों पर उनका अत्यधिक प्रभाव पाया जाता है। किसी कवि ने उनकी भावुकता को अपनाया तो किसी ने उनकी वाक् चातुरी को प्रमुखता दी और किसी ने उनकी तार्किकता को ही सर्वोपरि स्थान दिया। निर्गुणोपासना पर सगुणोपासना की प्रतिष्ठा की। सूर ने कृष्ण के संदेश रूप में उपदेश कहलाकर विषय को बहुत ही स्वाभाविक बना दिया है। सूरदास के 'भ्रमरगीत' में भ्रमरगीत के समस्त लक्षणों का निर्वाह एवं समस्त अनिवार्य अवयवों का समावेश दिखाई देता है। इसलिए भ्रमरगीत परंपरा में सूर के भ्रमरगीत का अप्रतिम स्थान है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भ्रमरगीत परंपरा में जो स्थान सूर को प्राप्त है, उस तक कोई अन्य कवि नहीं पहुंच पाया है। काव्य–क्षेत्र में सूर सूर्य बनकर चमकते हैं, उसी प्रकार भ्रमरगीत परंपरा में भी वे विशेष प्रकाशदीप्त हैं। सूर का भ्रमरगीत एक उपालंभ काव्य है, जिसमें नारी–मन की व्यथा, ऊहापोह तथा एकनिष्ठ प्रेम की तन्मयता फूट–फूटकर भरी है। आचार्य शुक्ल ने सूर की महानता को स्वीकार करते हुए लिखा है–

"सूर का सबसे मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्धतापूर्ण अंश भ्रमरगीत हैं, जिसमें गोपियों की वचन–वक्रता अत्यंत मनोहारिणी है। ऐसा सुंदर उपालंभ काव्य कहीं नहीं मिलता।"

इस प्रकार यदि सूर के भ्रमरगीत प्रसंग को इस परंपरा का आदर्श और सर्वाधिक प्रेरणास्पद आलोक–स्तंभ मान लिया जाए, तो तनिक भी अतिश्योक्ति नहीं होगी। सूर के अनुकरण पर ही आज तक भ्रमरगीत की परंपरा अनवरत रूप में चल रही है, यह सूर के भ्रमरगीत की महानता है।

# अध्याय 9

# भ्रमरगीत प्रतिपाद्य

## भूमिका

'भ्रमरगीत' सूरसागर का अति महत्वपूर्ण अंश है जिससे काव्य और दर्शन दोनों पक्षों की पुष्टि होती है। काव्य–रस की दृष्टि से सूरसागर का यह अंश व्यंजना, माधुर्य एवं वियोग शृंगार की सर्वश्रेष्ठ रचना है। सूर भक्त थे। भगवत्–प्रेमाभक्ति–महिमा अनुभूति को व्यक्त किया करते थे। पुष्टि–संप्रदाय में दीक्षित सूर का उद्देश्य उसके सिद्धांतों का प्रतिपादन करना नहीं था, स्वभावत सामयिक वातावरण और अभिव्यक्ति की सहज लपेट में सामान्य दार्शनिक बातें भी आ गई हैं, जिनका संबंध पुष्टि–संप्रदाय से अधिक है

सूर के समय में ज्ञान योग, कर्मयोग और भक्ति योग का त्रिकोणीय संघर्ष चल रहा था। वेदांती आतरिक शुद्धि जप तप आदि को प्रमुखता देते थे और नाथपंथी हठयोग को। संत निराकार निर्गुण की उपासना का प्रचार कर रहे थे और भक्ति आंदोलन जोर पकड़ चुका था। भ्रमरगीत में निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों मार्गों का संघर्ष है।

## सगुण की महत्ता

'भ्रमरगीत' के माध्यम से सूर ने निर्गुण पर सगुण भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया है। इस दृष्टि से कवि ने सीधे सादे कथन द्वारा सिद्धांतों का प्रकटीकरण करके अपितु इसके लिए तर्क–बुद्धि से काम लिया है। उद्धव ज्ञान योग और निर्गुण भक्ति में गोपियों को दीक्षित करने आए थे। सगुण–भक्ति की मजीठा में रंगी हुई गोपियों को 'धोए मौ न छूटिये' वाली कहावत चरितार्थ होती है। सगुण–निर्गुण के संघर्ष में कवि ने सगुण की महत्ता स्वीकार की है। कृष्ण के विरह से मुक्ति पाने का मात्र उपाय उद्धव ने निर्गुण–उपासना और योग साधना को बताया, किंतु सगुण कृष्ण की उपासिकाएं निर्गुण को न समझ सकीं।

## श्रीमद्भागवत की कथावस्तु

भ्रमरगीत–प्रसंग का सर्वप्रथम दर्शन श्रीमद्भागवत् में होता है। इसके अंतर्गत वह प्रसंग इस प्रकार है कि श्रीकृष्ण कंस के निमंत्रण पर अक्रूर जी के साथ गोकुल से मथुरा चले गए। वहां कंस को मारकर उन्होंने अपने पिता वासुदेव का उद्धार किया। उनको मथुरा में आए पर्याप्त दिन हो गए हैं। वे अवधि के बीत जाने पर भी गोकुल नहीं लौटे। इसी बीच कंस की कुब्जा नाम की दासी को कृष्ण ने उसकी सेवा से प्रसन्न हो अपनी भक्ति की अधिकारिणी बना लिया। गोकुल में नंद, यशोदा कृष्ण के बिना अत्यंत व्याकुल थे। गोपियों का तो कहना ही क्या ? जिनके साथ कृष्ण ने अनेक प्रेम–लीलाएं की थीं। बहुत समय बाद कृष्ण ने गोपियों को ज्ञानोपदेश द्वारा समझाने के लिए अपने सखा उद्धव को ब्रज प्रस्थान करने के लिए कहा। श्रीकृष्ण ने उद्धव को ही क्यों भेजा। इसका कारण यह था कि उद्धव को अपने ज्ञान का अत्यंत गर्व था। कृष्ण द्वारा उनको गोपियों के पास भेजने का मूल अभिप्राय निर्गुण पर सगुण की विजय करवाना तथा उद्धव को प्रेमदीक्षित कर उनके गर्व को चकनाचूर करना था

## ज्ञान

उद्धव गोपियों की विरह–व्यथा का कारण अज्ञान मानते हैं। वे गोपियों से कहते हैं :–

**'ज्ञान बिना कहुंवै सुख नाहीं। घट घट ब्यापक दारु अगिनि ज्यौं, सदा बसै उर माहीं।**
**निरगुन छांड़ि सगुन कौं दौरतिं, सुधौं कहौ किहिं पाही। तत्त्व भजौ जो निकट न छूटै, ज्यौं तनु तैं परछाहीं।**
**तिहि तैं कहौ कौंन सुख पायौ, जिहिं अब लौं अवगाहीं। सूरदास ऐसैं करि लागत, ज्यौं कृषि कीन्हें पाहीं।।'**

वे परब्रह्म का ध्यान करने का उपदेश देते हैं, जिसे जीव अज्ञानवश नहीं देख पाता। तत्त्व–ज्ञान प्राप्त करके ही गोपियां सोना बन सकती हैं :–

**'तत्त्व भजैं वैसी ह्वै जैहौं, पारस परसें लोहु। मेरो बचन सत्य करि मानौ, छांड़ौ सबको मोहु।।'**

क्योंकि–

**'जब लगि ज्ञान हृदै नहिं आवै। तब लगि कोटि जतन कर कोऊ, बिन विवेक नहिं पावै।।'**

प्रेम–रस से मत्त भक्ति की प्रतीक गोपियां ज्ञान के पारस को अपने लिए व्यर्थ समझती हैं क्योंकि वे स्वयं कृष्ण के प्रेम से सुवर्णमयी हो गई हैं। पारस का महत्त्व लोहे के निकट कुछ भी हो, सोने की उसको क्या जरूरत ?

**'सोहत लौह परसि पारसि कौ, ज्यौं सुवरन बरवानि। पुनि वह कहा चारु चुम्बक सौं लटपटाइ लपटानि।।'**

भगवान्–वियोग में तड़पने वाले भक्त के नयनों के लिए उनके दर्शन ही पथ्य हैं, ज्ञान की बात शलाका का काम करती है जिनके कर्ण कृष्ण की वेणु का रसास्वादन किए हों, उन्हें ज्ञान की कथा की क्या जरूरत।

## भक्ति

सूर ने निर्गुण की अपेक्षा सगुण का एवं ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का महत्व प्रतिपादित करने के लिए ही भ्रमरगीत की रचना की है।

उद्धव नंद–यशोदा से कृष्ण का संदेश देने के अनन्तर गोपियों की ओर उन्मुख होकर कृष्ण के संदेश के रूप में ज्ञान की चर्चा छेड़ते हैं। इसी बीच एक भौंरा उड़ता–उड़ता गोपियों के पास आकर गुनगुनाने लगता है, तो गोपियां उसी भ्रमर को संबोधित करके मन में जो आता है उद्धव को कहने लगती हैं–

**'पूछन लगीं ताहि गोपिका कुब्जा तोहि पठायौ। कैधौं सूर स्याम सुंदर कौ हमें संदेसौ लायौ।।'**

इसीलिए इस प्रसंग का नाम भ्रमरगीत पड़ा। उद्धव उनके प्रेम भरे उलाहने सुनते हैं। इससे उनका ज्ञान गर्व चकनाचूर हो जाता है और वे अपनी विराग की तूमड़ी में प्रेम–रस भर लेते हैं।

सूर के भ्रमरगीत से यह स्पष्ट होता है कि वह निर्गुण की अपेक्षा सगुण का एवं ज्ञान की अपेक्षा भक्ति का महत्त्व प्रतिपादित करना चाहते थे इसका अर्थ यह नहीं कि सूर ज्ञान–मार्ग से अनभिज्ञ थे। उन्होंने निराकार ब्रह्म की महत्ता 'अविगत गति कछु कहत न आवै' कहकर स्वीकारी है, परंतु अपने युग की नवीन परिस्थितियों के कारण 'भ्रमरगीत' में सूर ने ज्ञान को निस्सार बताने की चेष्टा की है और उसके लिए गोपियों को आधार बनाया है।

उद्धव द्वारा प्रदत्त निर्गुण के ज्ञानोपदेश से गोपियों की विरह–वेदना और बढ़ जाती है। वे तो अपना सब कुछ कृष्ण के सगुण रूप पर अर्पित कर चुकी हैं, अब उनके पास और कुछ भी नहीं, जिससे निर्गुण की उपासना कर सकें। सुर की सगुणोपासिका गोपियों ने अपने पक्ष का मंडन करने के लिए उद्धव के सामने जो तर्क दिए हैं उनसे उद्धव निरुत्तर हो जाते हैं। गोपियां उद्धव से कहती हैं कि संसार में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है, वह सब सगुण ब्रह्म की सत्ता है, इतने भारी पहाड़ को तुम तिनके की ओट में छिपाने का प्रयास क्यों कर रहे हो ?

**'सुनि है कथा निर्गुण की, रचि पचि बात बनावत। सगुन–सुमेरू प्रगट देखियत तू तृन की ओट दुरावत।।'**

## साधना

उद्धव समझे कि ज्ञान की बात घनी बारीक है और गोपियों की बुद्धि मोटी। इसलिए पहले ज्ञान के स्थूल पक्ष 'साधना' को ही इनके गले उतारा जाए। इसीलिए वे योग के साधना–पक्ष की मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार की क्रियाएं अपनाने के लिए कहते हैं और फुनगी छोड़कर जड़ पकड़ लेते हैं–

**'कर समाधि अन्तरगति ध्यावहु यह उनकौ उपदेश। यह संदेश कह्यौ है माधौ, करि विचार जिय साधन साधौ।**
**इड़ा पिंगला सुषवन नारी, सुन्य सहज में बसत मुरारी।।'**

अब तो गोपियों को हरि प्रेम का आस्वादन करने वाली गोपियों को संदेह हो गया। वे समझने लगीं कि उद्धव को कृष्ण ने नहीं भेजा क्योंकि जिस कृष्ण ने–

**'अंग–अंग आभूषन अपने, कर करि हमहिं बनाए। सूरदास प्रभु कैसे तुम कर, कंधा जोरि पठाए।।'**

जरूर दाल में कुछ काला है। कहीं उद्धव परिहास ही तो नही कर रहे।

## प्रेम

सूरदास योग की अपेक्षा भक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं, किंतु वे योग को सर्वथा हीन–दृष्टि से नहीं देखते। योग का मजाक उड़ाने में उनका तात्पर्य यही है कि भक्ति योग की अपेक्षा सहज साध्य है। योग की साधना कठिन है; अतः सुकुमार नारियों को योग साधन की सलाह देना एक विषमता मात्र है। उनके भावुक हृदय के लिए प्रेम मार्ग का अनुकरण ही श्रेयस्कर है :–

**'आए हैं ब्रज के हित ऊधौ, जुवतिनि कौ लै जोग। आसन, ध्यान, नैन मूंदै सखि, कैसे कढ़ै वियोग।।'**

प्रिय से संबंधित बातें प्रिय लगती हैं। उद्धव के हाथ से श्याम की पाती राधा अपने हाथ में लेकर देखती है, सीने से लगाती है तथा रोने लगती है–

**'निरखत अंक श्याम सुंदर के, बार–बार लावतिं छाती। लोचन जल कागद मसि मिलिकै, ह्वै गइ स्याम स्याम जू की पाती।।**

आंसुओं के गिरने से पाती की स्याही फैल गई और वह श्याम की तरह काली हो गई मानो श्याम–कृष्ण रूप हो गई। सूरदास के पदों में मनोहर भाव द्रष्टव्य होते हैं–

**'संदेसनि मधुबन कूप भरे। अपने तौ पठवत नहिं मोहन, हमरे फिरि न फिरे।**
**जिते पथिक पठए मधुबन कौं, बहुरि न सोध करे। कै वै स्याम सिखाइ प्रमोधे, कै कहुं बीच मरे।**
**कागद गरे मेघ, मसि खूटी, सर दव लागि जरे ?'**

कुब्जा के प्रति गोपियों की व्यंग्योक्ति व कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम दर्शनीय है। उद्धव अपनी बात कहे जाते हैं, पर गोपियां विश्वास ही नहीं करतीं कि यह श्याम का संदेश है। वे उनसे कहती हैं–

**'ऊधौ ! जाय बहुरि सुनि आवहु कहा कह्यौ है नंदकुमार। यह न होय उपदेश स्याम को कहत लगावन छार।।'**

गोपियां उद्धव को भोला व्यक्ति समझकर अनुमान लगाती हैं कि कहीं कृष्ण ने उनके हाथ संदेशा भेजकर हसी तो नहीं की है अतः वह उनसे पूछती हैं –

**'ऊधौ ! जाहु तुम्हें हम जाने। × × × ×**
**सांच कहो तुमको अपनी सौं बूझति बात निदाने। सूर स्याम जब तुम्हें पठायौ तब नेकहु मुस्काने।।'**

गोपियां कभी अपने दुःख का वर्णन करती हैं–

**'बिनु गुपाल बैरिन भईं कुंजैं। तब ये लता लगति तन सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं।।'**

इतना दुःख सहन करने के पश्चात् भी गोपियां कृष्ण का स्मरण करती ही हैं, कृष्ण के प्रेम को सर्वस्व समझती हैं। उद्धव उन्हें ज्ञान देते हैं, परंतु गोपियां उन्हें कहती हैं–

**'मन मधुकर ! कौन मनायौ माने ? सिखहु तिनहिं समाधि की बातें जे हैं लोग सयाने।**
**हम अपने ब्रज ऐसेहि बसिहैं बिरहि बाय बौराने।'**

सूर की गोपियां निर्गुण–ब्रह्म एवं ज्ञान–योग की चर्चा को बैठे–ठाले की माथा पच्ची मानती हैं। ज्ञान–योग की चर्चा व्यर्थ सिरपच्ची की बात है। वह कहती हैं कि हमारे पास हे उद्धव ! तुमसे सिर खपाने का समय नहीं है। तुम्हारी निर्गुण नीति हमारे लिए व्यर्थ है।

गोपियां सगुण–कृष्ण की तुलना में उद्धव के निर्गुण–निराकार को तुच्छ मानती हैं। जिस निर्गुण ईश्वर का न कोई रूप है न कोई वर्ण, जिसे देखा ही नहीं जा सकता, वह भला कृष्ण की सुमधुर छवि के समक्ष कहां टिक सकता है ? बेमेल अगम्य निर्गुण ईश्वर भला अमृतरूप आनंदमय सगुण कृष्ण के समान अमूल्य कैसे हो सकता है ?

**'मधुकर ! चल आगे तें दूर। जोग सिखावन को हमैं आयो बड़ो निपट तू क्रूर।।**
**जो घट रहत स्याम घन सुंदर सदा निरंतर पूर। ताहि छांदि क्यों–सून्य अराधैं, खोवैं अपनो मूर।।'**

सूर की गोपियां ज्ञान की कितनी कद्र करती हैं यह बात उद्धव के प्रति उनके व्यवहार से स्पष्ट हो जाती है। उद्धव ज्ञान की गठरी लिए हुए ब्रज में घूमते हैं, गोपियों को वह मूर्ख एवं धूर्त जान पड़ते हैं। वह कहती हैं कि यह योग–साधना निस्सार, तथ्यहीन तथा निर्मूल तक कह डाला है। वह उद्धव को भारवाही चालाक व्यापारी के रूप में स्वीकार करती हैं :–

**'आयौ घोष बड़ौ ब्यौपारी। खेप लादि गुरू ज्ञान जोग की, ब्रज मैं आनि उतारी।**
**फाटक दै कै हाटक मांगत, भोरौ निपट सुधारी।।'**

## योग–साधना

उद्धव गोपियों को जब निर्गुण ब्रह्म की योग–साधना का उपदेश बार–बार देते हैं तब वे अति चतुरता से उत्तर देती हैं कि हृदय की वास्तविक शांति के लिए निराकार की उपासना सर्वश्रेष्ठ नहीं है। तुम अपने हृदय में परब्रह्म की अनुभूति करो–

**'ऊधौ मन न भए दस बीस। एक हुतौ सो गयौ स्याम संग, को अवराधै ईस।।'**

मन एक ही है उद्धव और वह भी कृष्ण ले गए, अब ईश्वर की आराधना कैसे करें। दुःख इस बात का है कि कृष्ण मन को भी अपने साथ लेकर चले गए–

**'ऊधौ मन नहिं हाथ हमारे। रथ चढ़ाइ हरि संग गए लैं, मथुरा जबहिं सिधारे।।'**

अन्यथा हम गोपियां तुम्हारे योग को क्यों छोड़ती ? तुम उसे प्रेम से लाये हो। गोपियां उद्धव की योग–साधना में असमर्थता प्रकट करती हैं। वास्तविकता यह है कि वेदों और उपनिषदों के इस तत्त्व (योग) को बेचारी अबला कैसे साध सकती हैं ? समाधि लगाना साधारण मानव के बस की बात नहीं !

**'यह तो वेद उपनिषद मत हैं, महापुरूष व्रतधारी। हम अबला अहीर ब्रज–वासिन नाहीं परत संभारी।।**

गोपियां उद्धव को मूर्ख बनाती हुई पूछती हैं कि तुम भी अजीब बुद्धिमान हो कि तुम्हें हम युवतियों का योगियों के समान वेश धारण कराना कैसे न्यायसंगत प्रतीत होता है–

**'जो सिर फूल फुलेल मेलिकै, हरि–हरि ग्रंथै छोरी। ता सिर भसम मसन पै सोवत, काहे करत अघौरी।**
**रतन जटित ताटक विराजत अरु कमलनि की जोति। तिन श्रवनन पहिरावत मुद्रा तोइ दया नहिं होति।।'**

## निर्गुण–ब्रह्म

सूर की गोपियां उद्धव से कहती हैं कि भला निर्गुण ब्रह्म से कैसे प्रेम किया जाए–

**'अति अगाध सुति वचन अगोचर, मनसा तहां न जाई। जाकैं रूप न रेख वरन बपु, संग न सखा सहाई।**
**ता निरगुन सौ नेह निरंतर, क्यों निबहैं री माई।।'**

जब उद्धव बराबर निर्गुण निराकार ब्रह्म का उपदेश देते हैं; तब गोपिकाओं को विनोद सूझता है और वे उनसे पूछने लगती हैं–

**'निरगुन कौन देस कौ बासी ? मधुकर कहि समुझाए सौंह दै, बूझतिं सांचि न हांसी।**
**को है जनक कौन हैं जननी, कौन नारि, को दासी ? कैसो बरन भेष है कैसो, किहिं रस में अभिलाषी ?**
**पावैगौ पुनि कियौ आपनौ, जो रे कहौगौ हांसी। सुनत मौन ह्वै रहयो बावरो, सूर सबे मति नासी।।'**

निर्गुण निराकार ब्रह्म की योग साधना को अपने लिए निस्सार बताते हुए गोपियां उसे सामान्य जनता के लिए भी अनुपयुक्त बताते हुए कहती हैं :–

**'ऊधौ जोग जोग हम नाहीं। अबला सार–ज्ञान कह जानै; कैसे ध्यान धराहीं।।'**

गोपियां उद्धव का उपहास करती हुई कहती हैं कि हे उद्धव ! यह योग बहुत ही अमूल्य वस्तु है, इसे गांठ बांध लीजिए, कहीं यह खो न जाए। कहीं बाद में पछतावा न हो यह हमारे काम की वस्तु नहीं हैं यह तुम्हारे जैसे लोगों के लिए अमूल्य है। इसे संभालकर रखिए–

**'ऊधौ जोग बिसरि जनि जाहु। बांधौ गांठि छूटि परिहै कहुं, फिरि पाछै पछिताहु।**
**ऐसौ बहुत अनुपम मधुकर, मरम न जानै और। ब्रज बनितनि के नहीं काम की, है तुम्हरेई ठौर।।'**

## कृष्ण–कथा

गोपियों के लिए कृष्ण–कथा के अतिरिक्त कुछ और सुनना भी पाप है। गोपियां उद्धव से कहती हैं कि हमारी दृष्टि में श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य की उपासना करने वाले व्यक्ति की माता को धिक्कार है कि उसने ऐसी संतान को जन्म दिया–

**'जोग कथा पालागौं ऊधौ ना कहु बारम्बार। सूर स्याम तजि और भजो ताकी जननी छार।।'**

इसीलिए सूर की गोपियां निर्गुण–निराकार ब्रह्म् की अपेक्षा सगुण–साकार कृष्ण की ही उपासना करती हैं। वही उनके लिए साध्य हैं–

**'ऊधौ निरगुनहिं कहत, तुमही सो लेहु। सगुन मूरति नन्दनन्दन, हमहिं आनि देहु।**
**अगम पंथ परम कठिन, गौन तहां नाहिं। सनकादिक भूलि फिरे, अबला कहं जाहिं।।'**

उस निर्गुण के सगुण रूप को प्राप्त कर गोपियों का विचलित हृदय स्थिर हो गया। अब उन्हें अन्य निर्गुण की उपासना की आवश्यकता नहीं। चित्त की यह स्थिरता क्या किसी योग से कम है? उन्होंने सगुण के प्रकाश को पा लिया है, जिसके अभाव में उद्धव का जीवन स्वयं ज्ञान के अंधकार में डूबा हुआ हैं –

**'इहिं ब्रज सरगुन दीप प्रकास्यौ। सुनि ऊधौ त्रिकुटी त्रिवेद पर, निसिदिन प्रकट अभास्यौ।**
**सब के उर सरवास नेह भरि, सुमन तिली को बास्यौ। गुन अनेक ते गुनि कपूर सम, परिमल बारह मास्यौ।**

**साधन भोग निरंजन तेरे, अंधकार तम नास्यौ। वा दिन भयो तिहारौ आवन, बोलत हो उपहास्यौ।**
**रहि न सके तुम सींक रूप ह्वै, निरगुन काज उकास्यौ। बाढ़ी जोति सुकेस देस लौं; टूट्यो ज्ञान मवास्यौ।**
**दुर्वासना सलभ सब जारे जे--छै रह्यौ अकास्यौ।।'**

सूर का 'भ्रमरगीत' एक ओर गोपियों की वियोग–सरिता में सहृदयों को स्नान कराता है, दूसरी ओर सगुण उपासना की निर्झरिणी के रूप में निर्गुण उपासना के घास–फूंस को आत्मसात् करता हुआ प्रवाहित होता है।

उद्धव के ज्ञानयोग को पूरा सुनकर और उसे अपने सीधे–सादे प्रेममार्ग की अपेक्षा दुर्गम और दुर्बोध जानकर गोपिया कहती हैं-

**'काहे को रोकत मारग सूधो ? सुनहु मधुप निर्गुन–कंटक तें राजपंथ क्यों रूधो ?**
**ताको कहा परेखो कीजैं जानत छांछ न दूधौ। सूर मूर अक्रूर गए लै व्याज निवेरत ऊधो।।'**

हम अपने प्रेम या भक्ति के सीधे और चौड़े राजमार्ग पर जा रही हैं। उस मार्ग में तुम ये निर्गुण–रूपी कांटे क्यों बिछाते हो हमारा रास्ता क्यों रोकते हो ? जैसे तुम्हारे लिए रास्ता है वैसे हमारे लिए भी है। तुम अपने रास्ते चलो, मैं अपने रास्ते। एक दूसरे का रासता रोकने क्यों जाय ?

निर्गुण की नीरसता और सगुण की सरलता किस प्रकार अपने हृदय के सच्चे अनुभव के रूप में गोपियां उद्धव के सामने क्या जगत के सामने रखती हैं–

**'ऊनो कर्म कियो मातुल बधि मदिरा–मत्त प्रमाद। सूर स्याम एते अवगुन में निर्गुन तें अति स्वाद।।'**

ज्ञानमार्ग का गोपियों ने तिरस्कार किया, परंतु यह सोचकर कि कहीं उद्धव का मन दुःखी न हो; वे उनका समाधान भी करती हैं। वे समझाती हैं कि आपके ज्ञानमार्ग को हम बुरा नहीं कहती हैं, वह अत्यंत श्रेष्ठ मार्ग है, पर अपनी रुचि को हम क्या करें ? वह हमारे अनुकूल नहीं पड़ता। रुचि–भिन्नता दो समान वस्तुओं में भेद करके एक ओर आकर्षित करती है और दूसरी से दूर रखती है

अंत में ज्ञानी उद्धव को सगुण के समक्ष पराजित होना पड़ता है। उनका हृदय गोपियों की विरहाग्नि में पसीज जाता है

गोपियों के इस कथन से सूरदास के मत का स्पष्टीकरण हो जाता है–

'उन्होंने ज्ञान और योग की अपेक्षा भक्ति को प्रधानता दी है, और भक्ति के क्षेत्र में भी निर्गुण के स्थान में सगुण की उपासना का प्रतिपादन किया है। किंतु सूर के भ्रमरगीत का यह पक्ष सर्वथा गौण है। अपने दार्शनिक विचारों को व्यक्त करने के लिए सूर ने भ्रमरगीत की रचना नहीं की। सूर का प्रमुख लक्ष्य है–प्रेम की पीर को अभिव्यक्त करना; जिसके साथ–साथ तत्कालीन समाज में प्रचलित अन्य धार्मिक विचारधाओं का उद्घाटन स्वतः ही हो गया है।

सूर के भ्रमरगीत में उद्धव को पराजय में भी विजय की प्रसन्नता प्राप्त हुई जो ब्रह्मानंद सादृश्य थी। मथुरा जाकर कृष्ण के समक्ष उन्होंने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें गोपियों के पक्ष का ही पोषण किया। उद्धव का प्रतिवेदन ज्ञान–मार्ग की पराजय तथा सगुण–भक्ति की विजय का स्पष्ट जयघोष है।

सूर के भ्रमरगीत रचने का एक और महत्वपूर्ण प्रयोजन यह था कि इसके माध्यम से तत्संबंधी साहित्य में प्रचलित विविध मान्यताओं का खंडन–मंडन अत्यंत सरस एवं प्रभावोत्पादक शैली में किया है। सूर ने 'भ्रमरगीत' के मूल उद्देश्य को अपने युग की ऐतिहासिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में पूर्णरूपेण परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया हैं। उस समय में सिद्धों योगियों और संतों की अटपटी बानी निर्गुण ब्रह्म की जो व्याख्या प्रस्तुत कर रही थी, वह सामान्य जनता के लिए एक अनबूझ पहेली थी।

इस संदर्भ में डॉ० ताराचंद शर्मा का कथन द्रष्टव्य है–'सूर के भ्रमरगीत का उद्धव ज्ञानमार्गियों का मानस पुत्र हो है, जिसका भाव जगत् कोरे ज्ञान से सूख सा गया था और जिसे गोपियों द्वारा प्रदत्त प्रेम सलिल की अत्यंत आवश्यकता थी।'

सूर के समन्वयवादी दृष्टि में हृदयपक्ष और बुद्धिपक्ष और दोनों की पूर्णता रहती है। सूर के उपास्य प्रेम–मूर्ति कृष्ण हैं और उनकी भक्ति प्रेम की चरमानंद की दशा है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सूर का दर्शन भक्ति–दर्शन ही है।

# अध्याय 10

# राधा

सूरसागर महाकाव्य की प्रधान नायिका राधा है। सूर ने अपने काव्यों में राधाकृष्ण की लीलाओं को अलौकिकता के आवरण से आच्छादित किया है। सूर के राधा विषयक अधिकांश वर्णन ब्रह्मवैवर्त्त पुराण से प्रभावित प्रतीत होते हैं। सूर के भक्ति–मुग्ध अन्त : चक्षुओं ने राधा माधव की लीला का कोना–कोना झांका है। गद्‌गद कंठ से उन्होंने अपनी रागात्मक भावनाओं का आरोप आराध्यदेव पर करते हुए उत्तर–कालिन भक्तों के सम्मुख प्रतीकात्मक भक्ति प्रस्तुत की।

सूर–काव्यों में ब्रजभूमि ब्रह्म–लीला निकेतन है। जहां ब्रह्म (श्री कृष्ण) मुक्त जीवात्माओं (गोपियों) के साथ लीला करतें हैं। राधा ब्रह्म (कृष्ण) की आह्लादिनी शक्ति के रूप में अवतरित हुई है। शेष गोपियों आनंद–प्रसारिणी शक्तियां हैं किंतु मूल शक्ति राधा ही है। उसका कृष्ण से संबंध शक्ति और शक्तिमान का है। मूर्त रूप में राधा कृष्ण में कोई अंन्तर नहीं है किंतु लीला हेतु वह दूसरा रूप धारण करती है।

राधा की सृष्टि सूर ने अति उच्च परिकल्पना के आधार पर की है। जनसाधारण के धर्म– नयन भले ही उसे कोरे सांसारिक वर्णों से रंजित समझने का भ्रम करें किंतु सूर की राधा ब्रह्म से होली खेलती रही। यही है उसकी अलौकिकता का सबसे बड़ा प्रमाण। उसका स्वरूप वह उत्तरीय है जिसका एक छोर अलौकिक सत्ता ने थामा हुआ है दूसरा किनारा लौकिक धरातल का सतत् स्पर्श कर रहा है। यह दर्शक के दृष्टि विस्तार का प्रश्न है कि वह उत्तरीय का परिसीमित एक छोर देखकर ही संतोष कर ले अथवा दृष्टि के व्यापक प्रसार को ऊंची उड़ान का अवसर प्रदान करे।

राधा की लौकिक लीला में अद्‌भुत–अलौकिक का सफल मिश्रण दृष्टिगत होता है। दोनों तत्वों का संगुंफन इस पटुता से कवि ने किया है कि मध्यवर्ती रेखा खींचना कठिन ही नही वरन् असंभव है।

राधा–कृष्ण अतिमानव होते हुए भी पूर्ण मानव हैं। कवि ने उन्हें 'शून्य' अथवा 'गगन' से खींच सामान्य धरातल पर खड़ा किया है जहां वे भक्तों के साथ आंसू ढुलकाते हैं और स्मित की लहरों में खो भी जाते हैं। ऐसी आंख–मिचौनी खेलने वाला ब्रह्म का युगल रूप (राधा–कृष्ण) ही सूर का आराध्य है। लौकिक दृष्टि से राधा का जितना सुंदर वर्णन सूर की लेखनी से हुआ उतना शायद ही कोई अन्य कवि कर पाया है।

सूर ने राधा को कई रूपों में चित्रित किया हैं। बालिका, किशोरी, रतिप्रिया, चातुरी, वियोगिनी आदि नाना रूपों में राधा नारी हदय की सुंदर छटा लेकर सूर के काव्य में अवतरित हुई है। सूर ने राधा को अपूर्व सुंदरी के रूप में चित्रित किया है–

**चंद्रमुखी भौहें कलंक बिच चंदन तिलक लिलार। मनु बेनी भुवंगिनी परसत स्रवत सुधा की धार।**
**नैन मीन सरवर आनन में चंचल करत बिहार। मानो कर्नफूल चारा कौं रबकत बारंबार।**
**बेसरि बनी सुभग नासा पर मुक्ता परम सुढार। मनु तिल–फूल अधर बिंबाधर दुहुं बिच बूंद तुषार।**

सूर की राधा बचपन का भोलापन लिए ब्रज के रंगमंच पर आती है और उसके चरित्र का अंत वहां होता है जहां वह कृष्ण से एकात्मय प्राप्त कर लेती है। सूर ने सर्वप्रथम राधा–कृष्ण को बाल–सखा के रूप में प्रंस्तुत किया है। उनके बालपन के अमूल्य क्षणों के जितने सुरम्य शब्द चित्र सूर के काव्य में मिलते हैं–शायद ही किसी और कवि की समर्थ लेखनी उसका वर्णन कर पाये।

ब्रज की गलियों में खेलते हुए जब कृष्ण पहली बार राधा को देखते हैं तब उनके हदय में सहंज आकर्षण का भाव जागृत हो जाता है–

**'खेलने हरि निकसे ब्रज खोरी। गये स्याम रवितनया के तट अंग लसति चंदन की खोरी।**
**औचक ही देखी तह राधा नयन विसाल भाल दिये रोरी। नील बसन फरिया कटि पहिरे बेनी पीठ रूलति झकझोरी।**
**संग लरिकनी चलि इत आवति दिन थोरी अति छबि तन गोरी। सूर स्याम देखत ही रीझै नैन नैन मिली परी ठगोरी।'**

कृष्ण–राधा को अपने साथ खेलने के लिए आमांत्रित करते हैं–

**'तुम्हारे कहा चोरि हम लेहे' खेलने चलो संग मिलि जोरि। × × × × ×**
**खेलने कबहुं हमारे आबहु नंद सदन ब्रज गाउं। द्वारे आइ टेरि मोहि लीजौ कान्ह है मेरी नांऊ ।।**
**जो कहिरौ घर दूरि तुम्हारौ बोलत सुनिये टेर। तुमहिं सौंह वृषभानु बबा की प्रात सांझ एक फेर ।।**
**सूधी निपट देखियत तुमकौं तातें करियत साथ। सूर श्याम नागर उत नागरि राधा दोउ मिलि गाथ।।**

राधा–कृष्ण प्रतिदिन साथ–साथ खेलने लगे ओर दोनों के हदय में प्रेम–ज्वाला प्रज्ज्वलित हो उठी–

**'प्रथम सनेह दुहुन मन जान्यौ। सैन सैन कीनी सब बातें गुप्त प्रिति सिसुता प्रगटान्यौ।'**

यह बाल्यकाल का स्वर्गिक प्रेम है जिसमें न झिझक है और न संकोच है। सूर के सेयोग वर्णन की यह उल्लेखनीय विशेषता है कि उसमें 'राधा–कृष्ण की केलि–क्रीड़ाओं का विलासिता पूर्ण वर्णन नहीं किया गया है। इस प्रकार के प्रसंगों को ध्यान में रखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है–

"सूर का संयोग–वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं है, प्रेम संगीतमय जीवन की एक गहरी चलती धारा है, जिसमे अवगाहन करने वाले को दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कही कुछ नहीं दिखाई पड़ता।"

राधा–कृष्ण का प्रेम वन–सरिता की अतुल जलराशि की भांति गहन एंव विस्तृत रूप धारण करता गया। इसी बीच नंदनंदन ने मां यशोदा से अपनी प्रेयसी राधा का परिचय करा दिया था। माता यशोदा अपने लाडले की प्रत्येक बाल–लीला में आनंद लेती थी। उसी सहज भाव से उन्होंने राधा को भी ग्रहण किया–अपनी भावी बहू के रूप में। यशोदा ने उसकी मांग गूंथी और नयी फरिया भेंट की। मन ही–मन वे इस सुंदर श्याम नवल जोड़ी को सराहती रहीं। नंद बाबा से साथ–साथ खेलने की अनुमति मिलने पर राधा हर्षातिरेक में कह उठी :–

**'नंद बबा की बात सुनो हरि। मोहिं छांड़ि के कबहुं जाहुगे ल्याउंगी तुमको धरि।।**
**भली भई तुम्हें सौंप गये मोहिं जान न देहौं तुमको। बांह तुम्हारी नेक न छड़िहौं महरि खीझि हैं हमको।।**
**मेरी बांह छांड़ दे राधा कर न उपरफट बातें। सूर स्याम नागर नागरि सो करत प्रेम की बातें।।**

इस प्रकार भोले बचपन ने किशोरावस्था में अंतिम सांसे लीं। अल्हड़ राधा वाग्रविदग्धा गोपी बन गई। वह श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल रहने लगी और कृष्ण से मिलने के लिए अनेक बहाने बनाने लगी। कृष्ण के दर्शन हेतु वह सखियों के साथ पानी भरने के बहाने पनघट पर पहुंच जाती हैं–

**'राधा सखियन लई बोलाइ। चलहु यमुना जलहिं जैयै चलीं सब सुख पाइ।**
**सबनि इक–इक कलश लीन्हों तुरत पहुंची जाइ। तहां देख्यो श्यामसुंदर कुंवरि मन हरषाइ।**
**नंदनंदन देखि रीझै चितै रहे चितलाइ। सूर प्रभु की प्रिया राधा भरत जल मुसुकाइ।।'**

इस तरह से राधा अपनी चातुरी भावना से अपने गुप्त भावों को छिपाने में सफल होती है। उसके हृदय के भाव सखियों पर प्रकट नहीं हो पाते।

कृष्ण सान्निध्य की हृदय में उत्कट अभिलाषा होने पर भी किशोरी कृष्णा (राधा) सखियों के मध्य कन्हैया के निमंत्रण को स्वीकार नहीं करती :–

**'को जैहै इनके दर !'**

बड़े आये हैं अपने घर बुलाने वाले–कौन जाता है भला–पर प्रीति को छिपाना इतना सहज नहीं। उसके चपल–चंचल नयनों ने बार–बार कालिंदी के कछार से आते वेणु–वादन का अनुसरण किया तो गोपियां भी उसकी प्रीति का परिचय पा गई और वह 'ठगोरी' सी अपनी उलझन में स्वयं ही उलझ कर रह गई। ब्रजांगनाएं कब चूकने वाली थी उन्होंने छेड़छाड़ का अच्छा अवसर पाया कभी कहती हैं कि–'के बैठी रहि भवन आपने काहे के बनि आवें ?' किंतु राधा इन उलाहनों में भी आनंदाभास पाती हैं।

सूरदास ने राधा–कृष्ण–मिलन एवं राधा से गोपियों की चुटकियों का अनेक प्रकार से वर्णन किया है। परकीया–भाव में जितनी भी शृंगारिक चेष्टाएं हो सकती हैं, जितने भी गुप्त भावों और संकेतों की संभावना है, उन सबका पूरा चित्र राधा–कृष्ण–मिलन में मिल जाता है। सुरत–केलियों के वर्णन भी यथेष्ट मात्रा में उच्च–कोटि के हैं। मिलन के लिए अनेक बहाने होते हैं, ये बहाने राधा ही नहीं, कृष्ण भी करते हैं। राधा श्याम के रंग में रंग गई और श्याम राधा के रंग में "राधा–श्याम, श्याम राधा रंग "

सूर ने रतिप्रिया राधा मार्मिक वर्णन किया है–

**'नवल गुपाल नवेली राधा नवे प्रेम रस पागे। नव तरुवर विहार दोउ क्रीड़त आपु आपु अनुरागे।।**

यहां सूर विद्यापति और चंड़ीदास के धरातल पर उतर आये है। बचपन के नटखटपन के चित्रण में सूर का स्थान अद्वितीय है, पर यौवन–विलासिनी राधा तक पहुंचते–पहुंचते उनके काव्य में चंडीदास के पदों की स्पष्ट झलक दिखाई पड़ती है समग्र सूर–साहित्य में किसी स्थान पर भी शायद राधिका का उच्छवसित रूप नहीं मिलेगा। प्रेम की आकंठपूर्ण कलशी में कभी भी छलक नहीं आई। सूर की राधिका न विलासिनी है, न ग्वालिनी। इन दोनों रूपों का विचित्र सामंजस्य ही मानो सूरदास का अभीष्ट प्रतिपाद्य हैं। इसमें कामुकता का आभास ही नहीं। यदि अनुराग के आरंभ में तीव्र आकर्षण, ऐकांतिक मिलनेच्छा और सामाजिक मर्यादोल्लघन

की प्रेरणाएं काम करती हैं किंतु प्रथम मिलन के पश्चात् तत्काल ही राधा में प्रेमगोपन, चातुरी, वाग्विलास आदि की सामाजिक भावनाएं जाग्रत हो जाती है, जो प्रेम के स्वस्थ विकास की परिचायक हैं–

**'सोचति चली कुंवर घर ही तें खरिकहिं गइ समुहाइ। कब देखौ वह मोहन मूरति, जिन मन लियौ चुराइ।।**
**देखौ जाइ तहां हरि नाहीं, चकृत भई सुकुमारि। कबहूं इत, कबहूं उत डोलत, लागी प्रीति तुम्हारि।।'**

सूर की राधा मनिनी और गौरवशालिनी के रूप में चित्रित की गई है, परंतु कृष्ण बहुनायक के रूप में ही दिखाए गए हैं। राधा के स्वकीया भाव के विषय में कृष्ण को प्रियतमा का रूप दिया है और दंपत्ति विहार का वर्णन कर कवि ने राधा के मान का विशद वर्णन किया है। 'खण्डिता' प्रकरण में राधा के मान का वर्णन चार बार किया गया हैं। पहला मान वर्णन साधारण–साथ है; क्योंकि राधा सखियों द्वारा श्याम को वश में करने की प्रशंसा से प्रभावित होकर मान करती है। परंतु जब कृष्ण आकर लौट जाते हैं, तब उसका मान कपूर की भांति उड़ जाता है और वह अपने अहंकारजन्य अपराध का अनुभव कर परम विह्वल हो उठती है। ललिता दूती बनकर कृष्ण को मनाने जाती है और राधा की विरह–दशा के साथ उसके रूप की प्रशंसा करती है कृष्ण आकर उसे हृदय से लगाकर उसका विरह ताप शांत कर देते हैं।

दूसरी बार मात्र भ्रमवश ही राधिका मान कर बैठती है, क्योंकि वह अपने प्रियतम के हृदय में अपना ही प्रतिबिंब देखकर दूसरी नारी का अनुमान कर लेती है–

'कियौ अति मान वृषभानुबारी। देखि प्रतिबिंब पिय हृदय नारी।।'

कृष्ण की मनुहारें भी उसे मनाने में सफल न हो सकीं। अत्यंत व्याकुल होकर कृष्ण दूती को भेजते हैं। जब उसके भी सब प्रयत्न व्यर्थ होते हैं, तब वह राधा से कहती है–

'तुम चाहे कितना ही मान करो, पर अंत में तुम और मोहन एक हो। 'मोहन' का नाम सुनते ही राधा का मान चला गया और वह प्रसन्न हो गई।'

**'मान करौ तुम और सवाई। कोटि करौ एकै पुनि ह्वै हौ, तुम अरु मोहन माई।।**
**मोहन को सुनि नाम स्रवनहीं, मगन भई सुकुमारी। मान गयौ, रिस गई तुरतहीं, लज्जित भई मन भारी।।**
**धाइ मिली दूतिका कंठ सौं, धन्य धन्य कहि बानी। 'सूर' स्याम बन धाम जानिकै, दरसन कौं अतुरानी।।'**

राधा का तृतीय मान वास्तविक कारणों से है। राधा की धारणा थी कि कृष्ण रात्रि में मेरे अथवा नंद के घर के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं जाते, किंतु एक दिन प्रातःकाल ही जब रति–रस चिह्नों से लांछित नटनागर का साक्षात्कार हुआ तो उनके विचित्र रूप को निहार कर राधा को हंसी आ गई, जो शीघ्र ही परिहास, कटाक्ष और तिरस्कार के क्षेत्र से निकलती हुई रोष के साम्राज्य में पहुंच गई। कृष्ण ने अपने आप को निरपराध सिद्ध करने में कोई कोशिश नहीं छोड़ी, पर राधा को रोष आ गया। राधा की कुछ सखियों के आ जाने पर उसने सारा विवाद उनके समक्ष रखा और कहा :–

**'स्याम गए तिय मान कियौ। देखौ नाहिं दोष तुम देती उन मन चोरि लियौ।।**
**जाहु सदन तुमहूं सब अपनैं, मैं बैठी हौं धाम। जान देहु अब ह्यां जनि आवैं, ऐसेनि कौ कह काम।।**
**अनतहिं बसत, अनतहीं डोलत, आवत किरनि प्रकास। सुनहु 'सूर' पुनि तौ कहि आवै, तनगि गए ता पास।।'**

तुम भी मुझे ही दोष देती हो, इन्हें देखो, ये रहते कहीं है और घूमते कहीं हैं; सवेरा होने पर यहां आते हैं।

राधा के इस मान से राधा और कृष्ण दोनों ही व्याकुल हैं, सखियां यत्न करती हैं पर राधा नहीं मानती। रसिकेश्वर स्वयं अनुनय–विनय करते हैं, पर राधा पर कोई प्रभाव नहीं होता, परंतु जब गुप्त–चरित्र का संकेत कृष्ण राधा के प्रति करते हैं तो उसका हृदय पसीज जाता है और वह कृष्ण के साथ 'निकुंज–सुख' के लिए चल देती है।

राधा की बड़ी मान--लीला अति विकट है; इस बार उसे कृष्ण के पर–गृह गमन का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया इस घटना का वर्णन सूर ने कुछ इस प्रकार से व्यंजित किया हैं–

राधा सखियों के साथ यमुना–स्नान के लिए निकली और अकस्मात् उसी सखी को बुलाने के लिए जा पहुंची, जिसके हृदय में मोहन अपनी रसमयी कलियों से आनंद की हिलोरें उठा रहे थे। जैसे ही वह घर से निकले, राधा से भेंट हो गई।

राधा को इससे बड़ा क्या प्रमाण चाहिए ? राधा को मनाने के सभी उपाय व्यर्थ गए; न वह अपनी प्रशंसा सुनकर रीझती है और न कृष्ण की दीन दशा से पसीजती हैं; वर्षा–ऋतु, मंद–वायु तथा प्रकृति–सौंदर्य कोई उसकी मनोदशा को दूर नहीं कर पाता।

कृष्ण के स्वयं दूती का वेश धारण कर राधा मान भंग करने के लिए जाते हैं। सूर ने मान–लीला का विशद् वर्णन किया है–

**'तब हरि रच्यौ दूती रूप। गए जहां मानिनी राधा, त्रिया स्वांग अनूप।।**
**जाइ बैठे कहत मुख यह, तू इहां बन स्याम ? मैं सकुचि तहं गई नाहीं, फिरी कही पति बाम।।**
**सहल बातैं कहति मानौ, अब भई कछु और। तू इहां वै उहां बैठे, रहत एकहिं ठोर।।**
**कहौं मोसौं कहा उपजी, वै रटत तुम नाम। सुनति है कछु बचन राधा, 'सूर' प्रभु बनधाम।।'**

मानिनी राधिका का मान बहुत दृढ़ है; चाहे स्वर्ग डोल जाए, सुर और सुरपति समेत सुमेरु डिग जाय, रात्रि में रवि और दिन में निशाकर उदित हो जाए, नक्षत्र हिल उठें, सिंधु मर्यादा त्याग दे, धरा अधीर होकर उलट जाए, बंध्या पुत्रवती हो जाए, शुष्क–काष्ठ लहलहा उठे, विफल तरु फलने–फूलने लगें, बादलों के बिना ही वर्षा होने लगे और अचल चलायमान हो जाएं, पर राधा का मान भंग नहीं होने वाला है। अंत में कृष्ण ने एक युक्ति सोचकर मणि–दर्पण राधा के सामने लाकर रख दिया और स्वयं पीछे खड़े हो गए, प्रतिबिंब में दोनों के नेत्र मिल गए, राधा का चेहरा खिल उठा और उसे निश्चय हो गया कि कृष्ण का बहुनायकत्व तो बस दिखाने का है। मान– झंझावत के पश्चात् मिलन का शीतल मंदिर, गंभीर समीर बह निकला, जिसके स्पर्श ने युगल प्रेमियों के क्षुब्ध मानस में स्थैर्य और धैर्य को विचलित कर माधुर्य की लहरें उत्पन्न कर दी, प्रेम का बंधन और भी दृढ़ हो गया। इन मान–लीलाओं में गौरवशालिनी राधा की गंभीरता देखते ही बनती हैं; मान–भंग होने पर वह दूती के द्वारा आने का संदेश भेजती है और फिर वस्त्राभूषण धारण करके अति गौरव और गंभीरता के साथ केलि–कुंज में पदार्पण करती है।

चंडीदास की राधा मानिनी है पर उसका मान शीघ्र ही विलुप्त हो जाता है, सूर की राधा की भांति वह निकुंजों में कृष्ण के पैर नहीं दबवाती। दूसरी ओर विद्यापति की राधा है उसका जन्म मानो रति–क्रीड़ा के लिए ही हुआ है। उसके लिए कृष्ण का क्षणिक वियोग कितना दुर्लध्य है, फिर भला मान करने की बात ही और है। सूर ने शृंगार का अतिशय वर्णन किया, किंतु उसमें वासना का स्पर्श नहीं। कुछ प्रसंग ब्रह्म के प्रति निवेदन होने के कारण भक्ति की चुनरिया में समा जाते हैं।

राधा का एक रूप सूर ने बसंत और झूले के प्रसंगों पर चित्रित किया है। दोनों ही अवसरों पर राधा–कृष्ण दंपत्ति के रूप में हमारे सामने आते हैं –

**'झूलत स्याम स्यामा संग। निरखि दंपत्ति अंग सोभा, लजत कोटि अनंग।**
**मंद त्रिविध समीर सीतल, अंग अंग सुगंध। मचत उड़त सुबास संग, मन रहे मधुकर बंध।**
**तैसिये जमुना सुभग जहं, रच्यौ रंग हिंडोल। तैसियै बृज–बधु बनि, हरि चितै लोचन कोर।**
**तैसोई बृंदा–बिपिन–घन–कुंज–द्वार बिहार। बिपुल गोपी, बिपुल बनगृह, खन नंदकुमार।**
**नित्य लीला, नित्य आनंद, नित्य मंगल गान्ह। सुर सुर–मुनि मुखनि अस्तुति, धन्य गोपी कान्ह।।'**

वसंतकालीन फाग–क्रीड़ा का सूर ने बहुत ही सुंदर चित्रण किया है और वहां भी राधा–कृष्ण को नव–दंपत्ति माना है। वसंतलीला ब्रज के सुख का चरतोत्कर्ष हैं जहां सूर ने विधि–मर्यादा का अतिक्रमण कर राधा की विनोदी प्रकृति का स्वच्छंद और निर्बाध प्रतिपादन किया है।

सूर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने संयोग के साथ विप्रलंभ शृंगार के भी सुंदर चित्र प्रस्तुत किए हैं। वस्तुतः संयोग शृंगार और विप्रलंभ के जिस पक्ष को भी उन्होंने अपने स्पर्श का सौभाग्य प्रदान किया, उसे सुंदरतम रूप प्रदान किया है। मिलन की हंसी–खुशी के फलक पर विरह के अश्रुरंजित चित्र अत्यधिक मुखर हो उठे हैं। दो विरोधी तत्वों का मिश्रण कवि की सुरम्य कलात्मकता का द्योतक हैं। कहां क्षणभर का विरह भी राधा के सुकोमल हृदय को अधीर कर डालता था और कहां विरह की अंतिम सीमा का निर्धारण करना भी असंभव हो गया। कौन जाने, कृष्ण कब आएंगे। वे अपरिमित समय के लिए मथुरा चले गए। राधा का विरह उसकी सबसे बड़ी पराजय है।

विप्रलंभ शृंगार के अंतर्गत राधा का चित्रण द्रष्टव्य है। अक्रूर–श्याम को मथुरा ले जाते हैं। राधा कृष्ण से सदैव के लिए बिछुड़ जाती हैं। वियोग की इस दशा में राधा का चरित्र और अधिक खिल उठता है। अक्रूर कृष्ण को ले जाने के लिए आए हैं, उनके मथुरा प्रवास की तैयारियां हो रही हैं। उस रात को राधा बेचैन है, उसे नींद नहीं आती हैं, तारे गिनते–गिनते ही रात बीत जाती है–

**'आजु रैनि नहिं नींद परी। जागत गिनत गगन के तारे, रसना रटत गोबिंद हरी।**
**वह चितवनि, वह रथ की बैठनि, जब अक्रूर की बांह गही। चितवति रही ठगी सी ठाढ़ी, कहि न सकति कछु काम दही।**
**इते मान ब्याकुल भइ सजनी, आरज पंथहुं तैं बिडरि। सूरदास–प्रभु जहां सिधारे, कितिक दूर मथुरा नगरी।।'**

वियोग में राधा की दशा का सूर ने अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। वह पथिक को मार्ग में देखकर उसे बुलाकर कहती है–

**'कहियौ पथिक जाइ हरि सौं मेरौ मन अटकों नैन के लेखे। इहै दोष दै दै झगरति हैं तब निरखत मुख लगी क्यों निमेखे। कै तो मोहि बताय दबकियो लगी पलक जड़ जाके देखे। ते अब सब इन पै भरि चाहत विधि जो लिखे दरसन सुख रेखे।।'**

कृष्ण विरह में पीड़ित राधा--प्रेम की अत्यंत दयनीय मूर्ति के रूप में दिखाई पड़ती है। वह कृष्ण के पास अपना संदेश भेजती है, जिसमें गोपी, ग्वालों और गायों का दुख निवेदन करती है। यह प्रियतम कृष्ण को दोष नहीं देती। गोपियां उनको छली, कपटी और विश्वासघाती कहती हैं परंतु वृषभानुजा कृष्ण को दोष नहीं देती। उसे लगता है कि उसके प्रेम में ही कहीं छिद्र रहा है--

**'सखी री, हरिहिं दोष जनि देहु। तातें मन इतनौ दुःख पावत, मेरौ कपट सनेहु।'**

उसे आश्चर्य है कि प्रिय के इतने कठोर विरह में भी प्रकृति ज्यों--की--त्यों कैसे बनी रही:--

**'मधुबन तुम क्यों रहत हरे। बिरह बियोग स्याम सुंदर के, ठाढ़े क्यों न जरे।**
**मोहन बेनु बजावत द्रुम तर, साखा टेकि खरे। मोहे थावर अरु जड़ जंगम, मुनि जन ध्यान टरे।**
**वह चितवनि तू मन न धरत है फिरि फिरि पुहुप धरे। सूरदास प्रभु बिरह दावानल, नख सिख लौं न जरे।'**

पावस के मिस जैसे प्रकृति रो उठती है--वह मधु--ऋतु, जिसके सुरभित समीर और पुष्पित निकुंजों में राधा के अतीत जीवन की मधुरतम स्मृतियां लिपटी हुई हैं--आज उसके मानस पर जाने कैसे विषाद की छाया अंकित कर देती है। निर्मम रात को कुछ कहना ही नहीं; वह नागिन की तरह लगती है--

**'पिय बिनु नागिनि कारी रात। जौ कहुं जामिनि उबति जुन्हैया, डसि उलटि ह्वै जात।**
**जंत्र न फुरत मंत्र नहिं लागत, प्रीति सिरानी जात। सूर स्याम बिनु बिकल बिरहिनी, मुरि मुरि लहरैं खात।।'**

सूर के भ्रमरगीत--प्रसंग में वृषभानुजा की दयनीय मूर्ति देखते ही बनती है। कवि ने इस प्रसंग का अत्यंत मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। जो किसी भी सहृदय को अनायास ही आकर्षित कर लेता हैं। उद्धव कृष्ण का संदेश लेकर ब्रज में आते हैं। गोपियां उनके सम्मुख अपनी विरह--दशा की असहयनीय पीड़ा प्रकट करती हैं। कुछ गोपियां उनसे तर्क करने लगती हैं और कुछ उनके निर्गुण ब्रह्म का खंडन कर उसके सगुण रूप की स्थापना करती हैं, पर इस वार्तालाप के मध्य वृषभानुजा की वाणी की पीड़ा कहीं सुनाई नहीं पड़ती। वह उद्धव गोपी वाद--विवाद के बीच में नहीं आती। स्वयं गोपियां उसका विरह--निवेदन करती हैं कि वृषभानुजा रात--दिन विरह की भीषण अग्नि में जल रही है--

**'अति मलीन वृषभानु कुमारी। हरि श्रम--जल भी ज्यौं उर अंचल, तिहिं लालच न धुवावति सारी।**
**अध्र मुख रहति अनत नहिं चितवति, ज्यों गथ हारे थकित जुआरी। छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।**
**हरि संदेस सुनि सहज मृतक भइ, इक बिरहिनि, दूजे अलि जारी। सूरदास कैसें करि जीवैं, ब्रज बनिता बिन स्याम दुखारी।।'**

गोपियों के प्रति संदेश देते हुए उद्धव ने राधिका की विरहावस्था का सबसे अधिक हृदय-- विदारक चित्र प्रस्तुत किया है--

**'चित दै सुनौ स्याम प्रवीन। हरि तुम्हरैं बिरह राधा, मैं जु देखी छीन।।**
**तज्यौ तेल तमोल भूषन, अंग बसन मलीन। कंकना कर रहत नाहीं, टाड़ भुज गहि लीन।।**
**जब संदेसौ कहन सुंदरि, गवन मो तन कीन। छुटी छुद्रावलि चरन अरुझी गिरी बल हीन।।**

उद्धव को विश्वास हो गया कि राधा कृष्ण भगवान के बिना जीवित नहीं रह सकेगी। वे कृष्ण से कहते हैं कि आपके संदेश को सुनकर राधा मूर्छित हो गई है और उसे मृतक समझकर उसके शारीरिक अंगों के प्रसिद्ध उपमान सर्प, मृग, कोकिल, सिंह और गजराज अति गर्व प्रकट कर रहे हैं। यदि आप वहां राधा की सहायतार्थ नहीं पहुंचे तो इन सभी का वहां राज्य होगा। अतः आपको राधा की प्राण रक्षा के लिए वहां अवश्य पहुंचना चाहिए।

उद्धव की बात सुनकर जब कृष्ण--रुक्मिणी के साथ ब्रज पहुंचे तो रुक्मिणी ने पूछा :--

**'पिय, इनमें को वृषभानु--किसोरी ?'**

और उससे परिचय प्राप्त करके :

**'रुक्मिणी राधा ऐसे भेंटीं। जैसे बहुत दिनन की बिछुरी एक बाप की बेटी।'**

अंत में महाकवि ने वृषाभानुजा--कृष्ण के विरह की चरम सीमा का अंतिम 'महामिलन' कराया है :--

**'राधा माधव भेंट भई। राधा माधव, माधव राधा, क्रीट भृंग गति ह्वै जु गई।।**
**माधव राधा के रंग रांचे, राधा माधव रंग रई। माधव राधा प्रीति निरंतर, रसना करि सो कहि न गई।।**
**बिहसि कह्यौ हम तम नहिं अंतर, यह कहिकै उन ब्रज पठई। 'सूरदास' प्रभु राधा माधव, ब्रज बिहार नित नई--नई।।'**

इस महामिलन में कृष्ण ने हंसकर कहा कि 'हम–तुम में कोई अंतर नहीं' उन्होंने राधा को फिर विरहानल में दग्ध होने के लिए ब्रज भेज दिया किंतु प्रेम की एकांत साधिका के मुख से एक भी शब्द नहीं निकला। इस महामिलन के विषय में राधा अपनी सखी से कह रही है–

**'कहत कछु नाहीं आजु बनी। हरि आए हौं रही ठगी–सी जैसे चित्त धनी।।'**

सूर के राधा वर्णन में हमें सच्ची प्रेमिका का चित्रण मिल जाता है। जो विरह की असह्य पीड़ा सहन करती है, पर उफ तक नहीं करती जिसका त्याग हिमाद्रि से भी उच्च है, परंतु नम्रता के कारण झुका हुआ सिर, जिसकी कर्त्तव्य–भावना प्रस्तर से भी अधिक कठोर है और हृदय नवनीतवत् कोमल, जिसे माखन–प्रिय नवनीत–चोर कृष्ण ने हंसते खेलते हुए ही चुरा लिया।

प्राचीनकाल से ही राधा के चरित्र का क्रमिक विकास होता रहा और सूर ने अपनी प्रतिभा के बल से उसे पूर्णता की ओर अग्रसर किया। जयदेव तथा विद्यापति की राधा में शारीरिकता अधिक है और हृदय पक्ष कम। वे अधिकतर उसके शरीर के सौंदर्य वर्णन में बह गए हैं उसके हृदय की कोमल भावनाओं की ओर उनका ध्यान अधिक नहीं गया, परंतु सूर की राधा जितनी सुंदर है उतनी ही सौम्य भी।

बालिका, किशोरी, रतिप्रिया, चतुर, वियोगिनी–राधा नाना रूपों में नारी हृदय की सुंदर छटा लेकर सूर के काव्य में अवतरित हुई है।

भारतीय संस्कृति से रंजित होने के कारण सूर की राधा स्वकीया है, परकीया नहीं। भारतीय परंपरा के अनुसार प्रेम की साधकता तभी है, जब वह परिणय का रूप धारण कर ले। एकपक्षीय असफल प्रेम को पुरातन काल से उत्कृष्ट नहीं माना जाता रहा

राधा के द्वारा 'वास्तव में सूर ने विरहिणी के एक नवीन वर्ग की सृष्टि की है। इनमें हमें काव्यों की संस्कारमयी नायिका और लोकगीतों की निश्छल ग्राम वधूटियों का मध्यवर्ती रूप मिलता है। वह काल्पनिक विरह नहीं अपितु नैसर्गिक जीवन का सहज अंग है। इनमें न राजसी जीवन की गरिमा और न आभिजात्य है, और न नागरिक जीवन की विलास भावना। इसलिए उसके विरह में न नागमति और सीता का–सा गंभीर संयम मिलता है, और न रीति–काव्य की नायिकाओं जैसा प्रदर्शन ही। सीधी– सादी ग्वालिनी है जो न किसी प्रकार कृत्रिम मर्यादा का बंधन मानती है, और न विरह–निवेदन का ऊहात्मक शैली का ही प्रयोग करना जानती है। किसी प्रकार का छल न होने के कारण विरह उपालंभ से मुखर है।

राधा का इतना सर्वांगीण वर्णन हिंदी–साहित्य के किसी अन्य कवि ने नहीं किया। राधा– चरित्र के विकास में सूर का अद्वितीय स्थान है। राधा के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है–उनका सर्वस्व समर्पण। राधा के चित्रण में सूर ने एक उत्कृष्ट एवं मौलिक उद्भावना का परिचय कराया है। इन्हीं की परंपरा एवं उद्भावनाओं को उत्तरकालीन राधा–कृष्ण भक्तों ने भी ग्रहण किया है।

# व्याख्या

## व्याख्या

**।। 21 ।।**

**गोकुल सबै गोपाल उपासी। जोग अंग साधत जो ऊधो ते सब बत ईसपुर कासी।।**
**यद्यपि हरि हम तजि अनाथ करि तदपि रहति चरनन रस रासी। अपनी सीतलताहि न छाँडत यद्यपि हैं ससि राहु–गरासी।।**
**का अपराध जोया लिखि पठवत प्रेम भजन तजि करत उदासी। सूरदास ऐसी को बिरहिनि माँगति मुक्ति तजे गुनरासी।।२१।।**

**शब्दार्थः** सबै = सभी। उपासी = उपासना करने वाले। जोग अंग = योग के आठ अंग। ईसपुर = शिवपुरी, महादेव की नगरी। तजि = छोड़कर। रस–रासी=रस में छंकी। ससि=चाँद। गरासी = ग्रसित। उदासी = उदास, विरागी। गुनरासी = गुण समूह।

**प्रसंगः** गोपियाँ उद्धव के ज्ञानोपदेश और योग–साधना का विरोधकर अपनी प्रेम–साधना की प्रतिष्ठा कर रही हैं। उद्धव के ज्ञान–योग के उपदेश को सुनकर गोपियाँ बहुविधि प्रतिक्रिया करती हैं। उद्धव की योग–स्थापना के विरुद्ध गोपियाँ अपने प्रेम–मार्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती हैं। उनके मत में श्रीकृष्ण की रूप–राशि और वंशी की धुन के आगे आठों महासिद्धियों से प्राप्त सुख भी बेकार है त्याज्य है। इस पद में वह उद्धव से पूछ रही हैं कि उनके किस अपराध के कारण कृष्ण ने उनके लिए योग का संदेश लिखकर भेजा है – गोपियाँ अपने प्रेम पर अटल हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती हैं, हे उद्धव! गोकुल में सब नर–नारी गोपालक श्रीकृष्ण के उपासक है। उसी की रूप–राशि में रसलीन है जो जन अष्टांग योग की साधना करते हैं वे शिव नगरी, काशी में निवास करते हैं, यहाँ उनका कोई कार्य नहीं। यद्यपि श्रीकृष्ण नें हमें त्याग दिया है और इस प्रकार हम अनाथ हो गई हैं तो भी हमें उनके चरणों में रति है, उनके चरणों की रूप–राशि में हम ठगी हुई हैं, उनमें ही हमारा गहरा अनुराग है। यह उसी प्रकार सम्भव है जिस प्रकार चन्द्रमा राहु द्वारा ग्रसित हो जाने पर भी अपना स्वाभाविक गुण–संसार को शीतलता प्रदान करना नहीं छोड़ता है। उसी प्रकार कृष्ण को यह अधिकार है कि वह हमें त्याग दें, किन्तु हम अपना स्वभाव धर्म नहीं छोडेंगी, उनके चरणों में ध्यानस्थ ही रहेंगी। हमारी समझ में नहीं आता कि हमारे किस अपराध के कारण दण्ड के रूप में कृष्ण ने हमारे लिए योग का संदेश लिख भेजा है? इस प्रकार हमें हरि–भक्ति छोड़ने को कहकर संसार से विरक्त करना चाहते हैं। सूरदास कहते हैं कि यहाँ ब्रज में ऐसी कौन–सी विरहणी है जो गुणों की खान श्री कृष्ण को छोड़कर मुक्ति की कामना करती हो। अर्थात् गोपियाँ कृष्ण–प्रेम के सम्मुख निर्गुणोपासना से प्राप्त मुक्ति का कोई महत्त्व नहीं, समझती। हम सबके लिए कृष्ण–प्रेम प्राण के समान है।

**विशेषः–**

1. अन्तिम पंक्ति मे निवृत्ति मार्ग से प्रवृत्ति मार्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। इससे प्रेम की ऋजुता की रक्षा हुई है। प्रवृत्ति को ही महत्त्व देने के कारण गोपियाँ 'सायुज्य' नहीं अपितु 'सामीप्य' चाहती हैं। इस प्रकार भक्त मुक्ति की आकांक्षा न करके भगवत्–प्रेम में लीन रहना चाहता है। मुक्ति की कामना तो योग–मार्गी साधक ही करते हैं।
2. 'ईसपुर कासी' का अत्यन्त सुन्दर साभिप्राय प्रयोग हुआ है। काशी आरम्भ से ही योगियों की साधना स्थली बढ़ रही है। फिर शिव से इसका सम्बन्ध जोड़ने से इस पंक्ति की व्यंजना शक्ति बढ़ जाती है। क्योंकि योगियों के सभी सम्प्रदायों विशेषतया नाथों का शिव एवं शैव सम्प्रदाय से पर्याप्त सम्बन्ध रहा है।
3. रत्नाकर की गोपियों ने भी स्पष्ट कहा है कि जब वह 'मोहनलला' पर 'मन–मानिक' वर चुकी हैं तो उनके सम्मुख 'मुक्ति–मुक्ता' का 'मोल' ही क्या है। इसी कारण–

   **'वाही मुख मंजुल की चहति मरीयै सदा, हमको तिहारी बह्म ज्योति करिबो कहा।'**

4. वस्तुतः गोपियाँ ज्ञान–योग से प्राप्त निर्गुण ब्रह्म का विरोध न करके स्वयं को उसका अधिकारी नहीं समझती। इससे यह सिद्ध होता है कि सूर योग आदि से प्राप्त निर्गुण ब्रह्म के विरुद्ध न होकर उसके लिए अधिकारी भेद–स्वीकार करते थे।
5. 'जोग–अंग योग के अष्टांग–साधनों के लिए प्रयुक्त हुआ है जो इस प्रकार है – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

6. पौराणिक कथा का आकर्षक उल्लेख।
7. प्रभावी संगीतात्मकता।
8. राग–केदार का मनभावन रूप।
9. भक्ति–रस का प्रभावी परिपाक।
10. ब्रजभाषा का प्रयोग।
11. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम शब्दों का सुन्दर प्रयोग।

**।। 22 ।।**

**जीवन मुँहचाही को नीको। दरस परस दिनरात करति हैं कान्ह पियारे पी को।।**
**नयननि मूँदि मूँदि किन देखौ बँध्यो ज्ञान पोथी को। आछे सुन्दर स्याम मनोहर और जगत सब फीको।।**
**सूनौ जोग को का लै कीजै जहाँ ज्यान है जी को। खाटी मही नहीं रुचि मानै सूर खवैया घी को।।२२।।**

**शब्दार्थः** मुँहचाही=प्रियतम को प्रिय लगनेवाली प्रिया। नीको=अच्छा। दरस–दर्शन। परस=स्पर्श। ज्ञान पोथी को=पुस्तकीय ज्ञान। आछे=अच्छे। मनोहर=मनमोहक। जगत=संसार। ज्यान=जियान, हानि। मही=मट्ठा, छाछ। खवैया=खानेवाला।

**प्रसंगः** उद्धव के निर्गुण के उपदेश सुनने के उपरान्त गोपियाँ चुप नहीं रहतीं बल्कि अनेक युक्तियों द्वारा अपने प्रेम मार्ग की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती हैं। उनका मत है कि कृष्ण ने यह योग का संदेश उनके किसी अपराध के दण्डस्वरूप उन्हें लिखकर भेजा है, किन्तु वे मोक्ष की कामना न करते हुए भगवत्–रति में लीन रहना चाहती हैं। वे कृष्ण के प्रेम में सब कुछ छोड़ सकती हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि प्रियतम को अच्छी लगनेवाली प्रेमिका का जीवन अच्छा है, सफल है – अर्थात् प्रियतम के मन में समाने के कारण उसने संसार के जीवन का फल भोग लिया है। इस प्रकार के यहाँ कुब्जा से ईर्ष्या का भाव प्रकट करते हुए कहती है कि जीवन तो उसका अच्छा है, सफल है क्योंकि वह कृष्ण की चहेती प्रेमिका है। वह अपने प्रियतम कन्हैया का प्रतिदिन दर्शन प्राप्त करती है और उनके स्पर्श से उसे शारीरिक सुख आनन्द भी प्राप्त होता है, किन्तु उसे भी इतना सुख आनन्द प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह प्रेम करने की उचित रीति से परिचित नहीं। हे उद्धव! आँखे मूँद–मूँदकर किसन पुस्तक में निहित ज्ञान को प्राप्त किया है, उसे तो आँखे खोलकर अध्ययन से ही प्राप्त किया जा सकता है। उसी प्रकार प्रियतम के पास बने रहने से, दर्शन–स्पर्श से जीवन सफल नहीं होता। यह तो तभी सम्भव है। जब वह प्रेम की रीति से सुपरिचित हो और प्रियतम को रिझाने में समर्थ हो।

हमारे लिए तो श्यामसुन्दर कृष्ण ही एक मात्र सुन्दर एवं मनोहर है। उसके सम्मुख हमें समस्त संसार और उससे प्राप्त सुख बेकार प्रतीत होता है। अर्थात् हमारे लिए सुन्दर और परम मनोहर कृष्ण की तुलना में सारा सांसारिक सुख नीरस है। हे उद्धव! तुम हमारी बात सुनो। हम तुम्हारे योग–ध्यान को लेकर क्या करें। यह हमारे किसी काम का नहीं, क्योंकि इससे हमें प्राणहानि का भय है। कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि योग–साधना पर अमल करने से हमें अपने प्राणप्रिय श्री कृष्ण से बिछुड़ना पड़ेगा। उनके बिना हमारा जीवित रहना सम्भव नहीं है। जिस प्रकार शुद्ध घी का प्रयोग करनेवाला व्यक्ति खट्टी छाछ पीकर प्रसन्न नहीं रह सकता, उसी प्रकार कृष्ण के प्रेमामृत का पान करनेवाला हमारा यह हृदय तुम्हारी योग की नीरस बातें सुनकर आनन्दित नहीं होता। हम कृष्ण को नहीं भुला सकती हैं।

**विशेषः–**

1. 'जीवन मुँहचाही को नीकों' में गोपियाँ असमंजस ग्रसित हो कुब्जा के प्रति ईर्ष्या प्रकट कर रही हैं। कुब्जा के प्रति सूर–काव्य में ऐसे पदों ने ही रीतिकालीन सपत्नी कलह वर्णन को प्रोत्साहन प्रदान किया है। प्रेम भाव में उभरता विशेष भाव है।
2. 'ज्यान' शब्द प्रदेश विशेष से सम्बन्धित है और ज्यों–का–त्यों यहाँ आया है। इसका अर्थ है हानि, नुकसान।
3. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
4. 'पियारे पी' तथा 'स्यामसुन्दर में' छेकानुप्रास अलंकार।
5. सूक्ष्म भाव का स्पष्ट अभिव्यक्ति।
6. प्रसाद–माधुर्य गुण शैली।
7. सुन्दर भाव – अभिव्यंजना।

।। 23 ।।

**आयो घोष बड़ो व्यापारी। लादि खेप गुन ग्यान जोग की ब्रज में आय उतारी।।**
**फाटक देकर हाटक माँगत भौरे निपट सुधारी। धुर ही ते खोटो खायो है लये फिरत सिर भारी।।**
**इनके कहे कौन डहकावै ऐसी कौन अजानी। अपने दूध छाँड़ि को पीवै खार कूप को पानी।।**
**ऊधो जाहु सबार इहाँ ते वेगि गहरू जनि लावौ। मुँहमाग्यौ पैहो सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावौ।।२३।।**

**शब्दार्थः** घोष=अहीरों की बस्ती। खेप=माल का बोझ। फाटक=तत्त्वहीन पदार्थ, अनाज फटकने से निकला हुआ भूसा, फटकन। हाटक=स्वर्ण। धारी=समझकर। धुर=मूल। डहकावे=धोखा खाए। अजानी=मूर्ख अज्ञानी। खार=खारा, कड़ूआ। कूप=कुआँ। सवार=सवेरे। साहुहि=साहूकार, महाजन। आनि=आकर।

**प्रसंगः** निर्गुण ब्रह्मोपासना की शिक्षा देने के लिए आए ऊद्धव को गोपियाँ अपना व्यंग्य वाक्य सुनाती है। वे फिर आपस में चर्चा करती हैं और कहती हैं कि हमारे लिए तो कृष्ण–प्रेम ही सब कुछ है। हम निर्गुण ब्रह्म को तो जानती तक नहीं। इसी प्रकार जो कुछ वे आपस में उद्धव को लक्ष्य करके कहती है, उसी का वर्णन प्रस्तुत पद में किया गया है।

**व्याख्याः** आज हमारी इस अहीरों की बस्ती में एक अत्यन्त विचित्र व्यापारी आया हुआ है। उसने ज्ञान और योग के गुणों से युक्त सामान की गठरी यहाँ ब्रज में बेचने के लिए आकर उतार दी है। इसने यहाँ के निवासियों को अत्यन्त भोला और अज्ञानी समझ लिया है। जिससे फटकन के समान निस्सार वस्तु अर्थात् ज्ञान–योग समर्थित ब्रह्म को देकर उसके प्रतिकार स्वरूप अर्थात् स्वर्ण के समान बहुमूल्य एवं प्रिय कृष्ण माँगा है। इस व्यापारी का असबाब बिल्कुल व्यर्थ है जिसके कारण यह बिक नहीं रहा और इसे आरम्भ से ही हानि उठानी पड़ रही है। अर्थात् इसका सामान कोई भी नहीं खरीद रहा, अतः इसका भारी बोझ सिर पर लादकर यह इधर–उधर भटकता फिर रहा है। यहाँ ब्रज में हम ही कौन–सी नासमझ और अज्ञानी हैं जो इसका माल खरीदकर धोखा खा जाएँ। हमने तो आज तक ऐसा कोई मूर्ख नहीं देखा जो अपने घर का मधुर दूध त्यागकर खारे जल के कुएँ का पानी पीने जाए।

हे उद्धव! तुम यहाँ से अत्यन्त शीघ्र मथुरा चले जाओ और अपने महाजन अर्थात् ज्ञान–योग की गहरी भेजनेवाले साहूकार रूपी कृष्ण को यहाँ लाकर हमें उनके दर्शन करा दो तो तुम्हें मुँहमांगा पुरस्कार प्राप्त होगा अर्थात् तुम जो माँगोगे हम देंगी, तुम एक बार कृष्ण के हमें दर्शन करा दो।

**विशेषः–**

1. 'आयो घोष बड़े व्यापारी' के उद्धव के पति गोपियों का गंभीर व्यंग्य है।
2. सम्पूर्ण पद में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य–ध्वनि है। उद्धव के ज्ञानयोगरूपी माल को निस्सार वस्तु घोषित करते हुए उसका तिरस्कार किया गया है।
3. कृष्ण–प्रेम अथवा कृष्ण को स्वर्ण के समान अमूल्य और स्पृहर्ण तथा ज्ञान–योग से प्राप्त ब्रह्म को निस्सार वस्तु के समान उपेक्षणीय कहा गया है।
4. इसमें अभिव्यक्ति व्यंग्य निर्गुण–उपासना पर मार्मिक चोट करता है।
5. 'फाटक' एवं 'हाटक' मे अत्यन्त सुन्दर शब्द–शैली है।
6. धुर ही ते खोटो खायो है, सुन्दर मुहावरे का प्रयोग है।
7. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
8. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली है।
9. अलंकार–
   (क) सम्पूर्ण पद में रूपक और अन्योक्ति का संकर रूप है।
   (ख) 'फाटक'.....सुधारी' – में लोकोक्ति।
   (ग) 'खार कूप को पानी' – में दृष्टान्त अलंकार है।

।। 24 ।।

**जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहैं। यह व्योपार तिहारो ऊधो। ऐसोई फिर जैहे।।**
**जापै लैं आए, हौ मधुकर ताके उर न समैहै। दाख छाँड़ि कै कटुक निवौरी को अपने मुख खैहै?**
**मूरी के पातन के केना की मुक्ताहक दैहै। सूरदास प्रभु गुनहिं छाँड़िकै को निर्गुण निखैहै? ।।२४।।**

**शब्दार्थः** ठगौरी=जादू, ठगाई से भरा सौदा। फिरि जैहै=लौटा दिया जाएगा। जापै=जिसके पास। कटुक=कड़वी। निवारो=नीम का फल। खैहै=खाएगा। केना=सौदा, बदले में। मुक्ताहक=मोती। निखैहै=निवाएगा, साधन करेगा।

**प्रसंगः** गोपियाँ उद्धव के योग–ज्ञान को निस्सार बताकर उन पर गम्भीर व्यंग्य करती हैं! उद्धव का ज्ञान खारे जल के कुएं के समान है, इसी कारण मधुर दूधरूपी कृष्ण को छोड़कर उसका पान कौन करना चाहेगा? वे कृष्ण में ही अनुराग रखना चाहती हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ उद्धव के ज्ञान–योग पर व्यंग्य करती हुई कह रही हैं कि हे उद्धव! तुम्हारा यह ज्ञान–योगरूपी ठगी और धूर्तता का माल ब्रज में नहीं बिक पाएगा। तुम्हारा यह सौदा यहाँ से इसी प्रकार लौटा दिया जाएगा। इसे यहाँ कोई नहीं खरीदेगा। तुम जिनके लिए यह सामान इतनी दूर तक लाए हो, उन्हें यह पसंद नहीं आएगा और न ही उनके हृदय में समा सकेगा। ऐसा कौन मूर्ख है जो अपने मुख के अंगूर के दानों को त्यागकर नीम के कड़वे फल को खाएगा। और मूली के तीखे पत्ता के बदले में मोतियों के दाने देगा कहने का तात्पर्य यह है कि तुम्हारा यह ब्रह्म नीम के फल के समान कड़वा और मूली के पत्ता के समान–समान तीखा अर्थात् तुच्छ, व्यर्थ और त्याज्य है और हमारे कृष्ण अंगूर के समान मधुर और मोतियों के समान बहुमूल्य हैं इसलिए हम ऐसी मूर्ख नहीं कि कृष्ण को त्यागकर निर्गुण ब्रह्म की साधना करें। सूरदास जी कहते हैं कि ऐसा कौन है जो सम्पूर्ण गुणों के भण्डार–सगुण रूप कृष्ण को छोड़कर तुम्हारे गुणहीन – निर्गुण ब्रह्म के साथ निर्वाह करें अर्थात् उसकी साधना करे।

**विशेषः–**

1. इस पद में व्यंग्य की छटा दर्शनीय है। 2. अलंकार
   (क) 'दाख ..... निबौरी' में अन्योक्ति अलंकार (ख) 'मूरी ..... मुक्ताफल' मे तुल्योगिता अलंकार
   (ग) 'गुन निर्गुन' – श्लेष अलंकार (घ) 'जोग ... बिकैहै' – रूपक अलंकार
3. वियोग शृंगार रस का सुन्दर परिपाक। 4. ब्रजभाषा का प्रयोग।
5. आकर्षक योग्यता। 6. स्पष्ट प्रभावी अभिव्यक्ति।

**।। 25 ।।**

**आए जोग सिखावन पांडे। परमारथी पुराननि लादे ज्यों बनजारे टाँडे।।**
**हमारी गति पति कमलनयन की जोग सिखैं ते राँडे। कहौ मधुप, कैसे समायेंगे एक म्यान द्वै खाँडे।।**
**कहु षटपद कैसे खैयतु है हाथिन के संग गाँडे। काफी भूख गई वयारि भखि। बिना दूध घृत माँडे।।**
**काहे को झाला लै मिलक्त, कौन चोर तुम डाँडे। सूरदार तीनों नहिं उपजत धनिया, धान, कुम्हाडे।।२५।।**

**शब्दार्थः** जोग=ज्ञान योग। परमारथी=परमार्थ की शिक्षा देनेवाले। बनजारे=खानाबदोश। टाँडे=उधर घूमने वाला। पुराननि=पुराणों की, पुरानी, बासी। टाँडे=सौदा, व्यापार की वस्तु। राँडे=विधवा। खाँडे=तलवार। षटपद=भौंरा। गाँडे=गन्ना। बयारी=हवा। भखि=खाकर। माँडे=खाने, तैयार किए। झाल=बकवास, झल्ल। डाँडे=दंड। कुम्हाडे=कुम्हड़ा, काशीफल, कद्दू, पेठा।

**प्रसंगः** उद्धव के ज्ञान–योग की शिक्षा से गोपियाँ अत्यन्त उदास और नाराज हैं। उनकी धारणा है कि ज्ञान–योगरूपी व्यापार का सौदा अत्यन्त निस्सार की वस्तु है। इस ज्ञान के बदले श्री कृष्ण के बहुमूल्य प्रेम को छोड़ना ठीक नहीं है। वे योग की साधना की अपेक्षा श्री कृष्णरूपी प्रेमी भगवान से मिलकर अपना जीवन सफल करना चाहती हैं। इसीलिए वे उद्धव पर व्यंग्य-बाण की वर्षा करते हुए कहती हैं कि योग की शिक्षा देने के लिए पंडा बनकर आए हैं। वे कृष्ण के प्रति अटल प्रेम रखकर कहती हैं

**व्याख्याः** हे उद्धव! तुम पंडा के समान परमार्थ की शिक्षा देनेवाले पुराणों में निहित ज्ञान के बोझ को उसी प्रकार अपने सिर पर लादे फिर रहे हो जिस प्रकार खानाबदोश लोग अपने सिर पर माल लादे बेचने के लिए घूमते–फिरते हैं। अथवा तुम योग को सिखानेवाले पंडे के समान, परमार्थरूपी पुरानी, बासी, व्यर्थ की वस्तु को लिए फिरते हो और हमारे ऊपर मढ़ना चाहते हो। हमारी गति अपने पति के साथ है और हमारे पति कमलनयन श्री कृष्ण हैं जो हमें शरण और प्रतिष्ठा देनेवाले है योग उनके लिए उचित है जो विधवा और अनाथ है। हमारे पति कमलनयन श्री कृष्ण जीवित हैं और हमें शरण एवं प्रतिष्ठा देनेवाले हैं अतः योग हमारे लिए व्यर्थ की वस्तु है।

हमारे लिए योग सीखना उसी प्रकार है जिस प्रकार एक म्यान में दो तलवारों का समा जाना। जैसे एक म्यान में दो तलवारों का समा जाना असम्भव है उसी प्रकार हमारे लिए योग--ज्ञान की साधना करना असम्भव है क्योंकि कृष्ण हमारे हृदय में समाए हुए हैं। वहाँ निर्गुण ब्रह्म की समाई नहीं हो सकती। यह सम्भव नहीं। हे भ्रमर! हमें बताओ कि किस प्रकार हाथी के साथ गन्ने को खाया जा सकता है? क्योंकि हाथी तो एक बार में अनेक गन्ने को खा जाता है। जिस प्रकार हाथी के साथ गन्ना खाने

में मनुष्य स्पर्धा नहीं कर सकता उसी प्रकार हम अबला–नारियों के लिए योग मार्ग की कठिन और दुरूह साधना करना कठिन है। हे उद्धव! हमें यह बताओ कि बिना दूध, घी, रोटी खाए केवल वायु के भक्षण अर्थात् प्राणायाम करने से किसकी भूख मिट सकती है। जिस प्रकार यह असम्भव है, उसी प्रकार हमारे लिए योग की साधना करना भी असम्भव है। तुम किस कारण बातें बना–बनाकर व्यर्थ की पोथी बकवाद कर रहे हो? हम लोगों ने ऐसी आखिर कौन–सी चोरी की है जिसका तुम दंड देने आए हो। अथवा तुम ऐसे महाजन हो जो हमें चोर समझकर दंड देने आए हो। वस्तुतः तुम स्वयं चोर हो क्योंकि हमारे प्रिय, मूल्यवान, सर्वस्व कृष्ण को, जो हमारे हृदय में विराजमान है, चुराने, हमसे छीनकर ले जाने के लिए आए हो। तुम भली–भाँति जानते हो कि जिस प्रकार धनिया, धान और काशीफल की खेती एक स्थल पर होनी असम्भव है, उसी प्रकार हमारे लिए कृष्ण को छोड़कर तुम्हारे ब्रह्म को स्वीकार करना असम्भव है।

**विशेषः–**

1. व्यंजना एवं लक्षण शब्द–शक्तियों से भाषा की वाग्धैदग्धता में वृद्धि हुई है।
2. गोपियों के लिए कृष्ण को त्यागकर उद्धव के निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार करना भी असंभव है।
3. धनिए की खेती शीत ऋतु में, धान की खेती पावस ऋतु में और काशीफल की खेती ग्रीष्म ऋतु में होती है, अतः तीनों की खेती एक स्थल पर एक समय होनी असम्भव है।....'तीनों नहीं उपजात' से कपितय विद्वान भक्ति, योग और ज्ञान का अर्थ लेते हैं किन्तु यह भ्रामक है क्योंकि इन तीनों का समन्वय कबीर जैसे ज्ञानमार्गी कवियों में उपलब्ध होता है।
4. 'एक म्यान दो खांडे' – लोकोक्ति का प्रयोग।
5. 'परमारथी ..... टाँडे' में उपमा अलंकार – योजना।
6. सुन्दर लयात्मकता।
7. आकर्षक गेयता।
8. ब्रजभाषा का आकर्षक रूप।
9. मुक्तक शैली का अनुप्रयोग।
10. प्रभावी अभिव्यक्ति।

**।।। 26 ।।**

**ए अलि। कहा जोग में नीको? तजि रसरीति नंदनदन की सिखावत निर्गुन फीको।।**
**देखत सुनत नाहिं कछु स्रवननि, ज्योति–ज्योति करि ध्यावत। सुंदरस्याम दयालु कृपानिधि कैसे हौ बिसरावत?**
**सुनि रसाल मुरली सूर की धुन सोई कौतुक रस भूलै। अपनी भुजा ग्रीव पर मेलै गोपिन के सुख फूलै।।**
**लोककानि कुल को भ्रम प्रभु मिलि कै धर बन खेली। अब तुम सूर खवावन आए जोग जहर की वैली।।२६।।**

**शब्दार्थः** अलि=भौंरा। नीको=अच्छा, गुणवान। तजि=छोड़कर। फीको=बेकार। स्रवननि=कानों से। ध्यावत=ध्यान करते हैं। बिसरावत=भूलना। रसाल=मधुर, मीठे। ग्रीव=गर्दना। मैले=डालते थे। लोककानि=लोक की मर्यादा। खेली=खेल डाला, कुछ भी न समझा। वैली=बेल, लता, बूटी।

**प्रसंगः** उद्धव के योग के उपदेश से गोपियाँ खिन्न होकर गहन प्रतिक्रिया करती हैं। वे भ्रमर के माध्यम से उद्धव को खरी–खोटी सुना रही हैं। उनके मत में कृष्ण का प्रेम बहुमूल्य धरोहर है, उसके बदले में वे फटकने के समान व्यर्थ निर्गुण ब्रह्म की उपासना नहीं कर सकती है। उन्होंने निर्गुण उपदेशक को चोर का दर्जा भी दे डाला है। वह उनके हृदय मे विराजमान कृष्ण को उनसे छीनकर ले जाना चाहते हैं। उनमें कृष्ण के प्रति अटूट प्रेम है।

**व्याख्याः** हे उद्धव! तुम्हारे इस ज्ञान–योग में ऐसी कौन–सी अच्छाई है जिससे तुम हमें नंद–नंदन श्रीकृष्ण के सुन्दर प्रेम को त्यागकर इस फीके, गुणहीन, रसरहित, निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने की बात कह रहे हो। योगमार्गी भक्त न तो नेत्रों से कुछ देख ही पाते है और न ही कानों से कुछ सुन पाते हैं, केवल 'ज्योति–ज्योति' कहकर व्यर्थ उसका ध्यान करने का प्रयत्न करते रहते हैं। निर्गुण–ब्रह्म ज्योति–स्वरूप तो आवश्यक हो सकता है किन्तु वह न तो कृष्ण के समान सुन्दर दर्शनीय ही है और न ही मधुर सरस वचनों से कानों को सुख पहुँचा सकता है हम अपने ऐसे सुन्दर, दयालु, कृपा के भण्डार कृष्ण को तुम्हारे इस ब्रह्म के लिए किस प्रकार भुला दे। उस नीरस ब्रह्म के लिए सुन्दर रसयुक्त कृष्ण को भुलाना असम्भव है।

हे भ्रमर गुणी उद्धव! हम उनकी मधुर मुरली की ध्वनि को सुनकर उसके आनन्द में रसलीन हो, उनके प्रेम में हम स्वयं को भूल जाती थी, पूर्ण विस्तृत हो जाती थी। हमारी ऐसी अवस्था को देखकर वे हमारे गले में अपनी भुजाएँ डाल देते थे, हमें अपने

आलिंगन में बद्ध कर लेते थे, ऐसे सुख में हम फूली न समाती थीं। हमने कृष्ण के साथ प्रेमलीलाएँ करते हुए, उनके साथ क्रीड़ा–बिहार करते हुए लोक, समाज और परिवार के समस्त गौरव, मान–मर्यादा के भ्रम को विनष्ट कर दिया था इस सबकी कुछ परवाह नहीं की। हमने कृष्ण के साथ प्रेम–क्रीड़ा करने में लोक और कुल की भ्रान्ति पूर्ण मर्यादाओं की तनिक चिंता नहीं की थी। अब तुम हमें उस अमृत के समान मधुर–मादक कृष्ण–प्रेम को छोड़ने का उपदेश देकर अपने विष–फल उत्पन्न करनेवाली योगरूपी इस बूटी के फल को खिलाने यहाँ आए हो–अर्थात् तुम्हारा यह योग का उपदेश हमारे लिए विष के समान प्राणघातक होगा और कृष्ण का प्रेम हमारे लिए मधुर और जीवनदायक होगा।

**विशेषः–**

1. *पुष्टिमार्गी भक्ति–सिद्धांत के अनुसार लोक–मर्यादा एवं कुल बंधन की सीमाओं को तोड़ गया है।*
2. ज्ञान–योग का खण्डन है।
3. 'जोग जहर' की बोली में रूपक अलंकार है।
4. सुन्दर गेयता है।
5. ब्रजभाषा का सुन्दर रूप सूक्ष्म भाव की स्पष्ट अभिव्यक्ति।
6. प्रेम का प्रतिपादन।
7. व्यंग्य की प्रधानता।

**।। 27 ।।**

**हमरे कौन जोग व्रत साधै? मृगत्वच, भस्म, अधारि, जटा को को इतना अवराधै?**
**जाकी कहूँ थाह नहिं पैए, अगम, अपार, अगाधै। गिरिधर लाल छबीले मुख पर इते बाँध को बाँधै?**
**आसन पवन मूति मृगछाला ध्याननि को अवराधै? सुरदास मानिक परिहरि कै राख गाँठि को बाँधै?।।२७।।**

**शब्दार्थः** हमरे=हमारे। साधै=साधन करे। मृगत्वच=हिरण की छाल। अवराधै=लकड़ी। अगाधै=अथाह। बाँध=बधन। पवन=वायु यहाँ प्राणायाम। विभूति=राख। मानिक=मोति। परिहरि=त्यागकर।

**प्रसंगः** उद्धव के ज्ञान के उपदेश की प्रतिक्रियास्वरूप गोपियाँ अत्यन्त खिन्न है। उनका कहना है कि परम प्रिय सुन्दर कृष्ण को छोड़कर निर्गुण–ब्रह्म की साधना करना नितान्त असम्भव है। कृष्ण के साथ क्रीड़ा–विहार करते हुए उन्होंने लोक–मर्यादा और कुल की सीमा को तोड़ दिया था। ऐसे अमृत को त्यागकर विष की बूटी के फल के रूप में निर्गुण ब्रह्म की आराधना करना हमारे लिए सम्भव नहीं।

**व्याख्याः** गोपियाँ योग – साधना की कठिनाइयों, बाहरी बंधनों और प्रयत्नों की आलोचना करती हुई उद्धव से कह रही हैं कि हे उद्धव! हमारे यहाँ तुम्हारे योग व्रत की साधना कौन करें? कौन मृगछाला, भस्म, अधारी आदि वस्तुओं को इकट्ठा करता फिरे और फिर सिर पर जटा बाँधे? इतनी मुसीबतें मोल लेकर कौन तुम्हारे ब्रह्म की इतनी साधना करता फिरे? तुम्हारा ब्रह्म तो ऐसा है जिसकी कहीं भी थाह नहीं पाई जा सकती, जो अगम्य, अपार और अथाह है। फिर ऐसे ब्रह्म को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए ये सब प्रयत्न करना व्यर्थ है।

हमारे सुन्दर–सलोने कृष्ण के छबीले मुख के दर्शन करने के लिए आसान, प्राणायाम, भस्म, मृगछाला आदि का एकत्र करना और फिर उनका ध्यान करना आदि बातों की तनिक भी जरूरत नहीं पड़ती, अर्थात् जब तुम्हारे ब्रह्म का ध्यान करने के लिए इन सारी वस्तुओं का जुटाना आवश्यक है तो फिर ऐसा कौन मूर्ख है जो इन सारे प्रपंचो में पड़ उसकी आराधना करता फिरे। यह बताओ कि ऐसा कौन मूर्ख है जो अपने माणिक्य को त्यागकर उसके स्थान पर राख को अपनी गाँठ में बाँधे? अर्थात् हमारे कृष्ण मणि के समान अमूल्य है, और तुम्हारा ब्रह्म राख के समान तुच्छ है।

**विशेषः–**

1. सूरदास जी ने यह स्पष्ट किया है कि सगुणमार्गीय भक्ति सहज और सरस है जबकि योग–मार्गी भक्ति, क्लिष्ट कठिन और असहज है।
2. इस पद में अष्टांग योग के साधनो का उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार है–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधि।
3. 'बाँध–बाँधना' आदि मुहावरों के प्रयोग से भाषा की व्यंजना शक्ति विस्तार हुआ है।
4. ज्ञान योग का खण्डन।
5. सुन्दर गेयता, लयात्मकता।
6. मुक्तक काव्य रूप।
7. ब्रजभाषा का प्रयोग।
8. "अगम, अपार, अगाधै" में वृत्यानुसार अंलकार।
9. सम्पूर्ण पद में अन्योक्ति अलंकार है।

**।। 28 ।।**

**"हम तो दुहुँ भाँति। फल पायो। जो ब्रजनाथ मिलै तो नीको नातरू जग जस गायो।**
**कहँ वै गोकुल की गोपी सब बरनहीन लघु जाती। कहँ वै कमला के स्वामी संग मिलि बैठी एक पाँती।**
**निगमध्यान मुनि ग्यान अगोचर, ते भए घोष निवासी। ता ऊपर अब साँच कहौ धौं, मुक्ति कौन की दासी।**
**जोग–कथा पा लागों, ऊधो, ना कहु बारम्बार। सूर स्याम तजि और भजै जौ ताकी जाननी छार।।२८।।"**

**शब्दार्थः** हम तो=हमने तो। दुहुँ भाँति=दोनों तरह से। नीको=अच्छा आम। वरन हीन=नीच कुल की। लघु जाती=नीच जाति की। कमला के स्वामी=लक्ष्मी के पति। पाँति=पंक्ति। निगम=वेद। अगोचर=अप्राप्त। घोष निवासी=अहीरों की बस्ती में रहनेवाले। छार=राख।

**प्रसंगः** उद्धव के योग–उपदेश की प्रतिक्रिया स्वरूप गोपियाँ उन्हें खरी–खोटी सुना रही हैं। उनके मन में कृष्ण का स्थायी वास है और कुछ ध्यान नहीं देना चाहती। इसलिए गोपियों के मत में निर्गुण ब्रह्म की साधना करना अत्यन्त दुष्कर व्यापार है। इसके लिए आसन, मृगछाला, भस्म, आधारी आदि साधनों को एकत्रित करना पड़ता है। फिर भी यह कहना कठिन है कि ब्रह्म के साथ साक्षात्कार भी हो सकेगा। किन्तु कृष्ण को प्राप्त करने के लिए इस सब आडम्बर की आवश्यकता नहीं, यहाँ तो केवल सच्चा प्रेम चाहिए।

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती है हे उद्धव! कृष्ण–प्रेम का फल तो हमें दोनों प्रकार से प्राप्त हो सकेगा। यदि हमें अपने इस विरह के अंत में ब्रजनाथ श्री कृष्ण मिले तो यह अति उत्तम रहेगा क्योंकि हम ब्रह्म में लीन हो जाएँगी और यदि हमारी उनसे भेंट न हो सकी तो हमारे मरणोपरांत सारा संसार हमारा यशगान करेगा कि गोपियाँ कृष्ण के प्रति अपने प्रेम में सदा एकनिष्ठा रहीं वस्तुतः हमारी और कृष्ण की कोई समानता ही नहीं, कहाँ हम नीच जाति की कर्म–वर्णहीन, गोकुल की गोपियाँ और कहाँ वे लक्ष्मीपति ब्रह्मस्वरूप कृष्ण। वह तो हमारा परम सौभाग्य ही था, कि हमें उनसे प्रेम करने का अवसर मिला और उन्होंने भी हमें अपने प्यार के योग्य समझा और इस प्रकार हम उनके साथ एक पंक्ति में बैठी अर्थात् उन्होंने हमें अपने साथ समानता का दर्जा प्रदान किया। वेद भी जिन भगवान का सदा ध्यान करते हैं, जिन्हें पूर्ण ज्ञानी मुनिगण भी प्रयत्न करने पर प्राप्त नहीं कर पाते, वही भगवान इस अहीरों की बस्ती में आकर रहे थे। इससे ऊपर तुम हमें यह बताओ कि मुक्ति किसकी दासी है? मुक्ति ब्रह्म की दासी है और वह ब्रह्म निश्चय ही कृष्ण है। हम तुम्हारे पाँव पड़ती हैं कि हे उद्धव! योग की कथा बार–बार हमें मत सुनाओ। सूरदास जी कहते है। कि गोपियों का यह निश्चय मत है कि जो कृष्ण को त्यागकर किसी अन्य की उपासना करता है, उसकी जन्म–दामिनी माता भी धिक्कार के योग्य है।

**विशेषः–**

1. प्रस्तुत पद में कृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य प्रेम और निर्गुण की चर्चा में उनके दैन्य भाव का अत्यन्त सुन्दर चित्र प्रस्तुत हुआ है।
2. दैन्य भाव के कारण परिवर्तित मनोदशाओं का मर्मस्पर्शी रूपायन हुआ है।
3. ज्ञान पर भक्ति की विजय स्पष्ट ही दिखाई पड़ रही है।
4. मुक्तक शैली में प्रस्तुति।
5. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
6. 'बैठी एक पाँती" भाषा के मुहावरे का प्रयोग।
7. सूक्ष्म भावों की सहज और प्रभावी अभिव्यक्ति है।
8. भावसाम्यः पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई।

**।। 29 ।।**

**पूरनता इन नयन न पूरी। तुम तो कहत स्रवननि सुनि समुझति ये याही दुख मरति विसूरि।।**
**हरि अन्तर्यामी सब जानत बुद्धि विचारत वचन समूरी। वै रस रूप रतन सागर निधि क्यों मनि पाय खवायत धूरी।।**
**रहु रे कुटिल चपल मधु लम्पट, कितब संदेस कहत कटु कूरी। कहँ मुनिध्यान कहाँ ब्रज युवती। कैसे जात कुलिस करि चूरी।।**
**देखु प्रगट सरिता, सागर रस सीतल सुभग स्वाद रुचि रूरी। सूर स्वाँति–जल बसै जिय चातक चित लागत सब झूरी।।२६।।**

**शब्दार्थः** पूरनता=पूर्णता। नयन=आँख। न पूरी=नहीं जँचती। स्रवननि=कानों से। यही=यह ही। बिसूरी=बिलख–बिलखकर। समूरी=पूर्णरूप से। धूरी=धूल–मिट्टी। कुटिल=छली। चपल=चंचल। मधुलंपट=रस के लोभी। कितब=धूर्त्त। कूरी=क्रूर, निष्ठुर। कुलिस=बज्र। सर=तालाब। सीतल=ठण्डा। सुभग=मधुर। रूरी=अच्छी। चित=मन। झूरी=नीरस।

**प्रसंगः** उद्धव के ज्ञानोपदेश की प्रतिक्रियास्वरूप गोपियाँ नाराज और खीझी हुई हैं और उद्धव को खरी–खोटी सुनाकर अपने प्रेमपथ की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करना चाहती हैं। अब उनकी खीझ दीनता में परिवर्तित होती जा रही है और उपालम्भ का तिरोधान हो रहा है उन्हें यदि श्री कृष्ण मिलते हैं तो श्रेष्ठ हैं, नहीं तो उनकी एकनिष्ठता का सारा संसार यशगान करगा। व नीच कुल और नीच जाति की हैं, किन्तु कमलापति विष्णु के अवतार श्री कृष्ण ने उनसे समानता का व्यवहार किया और अपने निकट उन्हें एक पंक्ति में बिठाया। यह भी उनके लिए परम सौभाग्य की बात है। प्रस्तुतः पद में गोपियाँ उद्धव पर व्यंग्य कर रही है क्योंकि उन्होंने कृष्ण को पूर्ण ब्रह्म कहा था।

**व्याख्याः** हे उद्धव! तुमने पूर्ण ब्रह्म का जो वर्णन किया है, उसकी वह पूर्णता हमारे इन नेत्रों में पूरी तरह समा नहीं पाती अर्थात हमारे इन नेत्रों को वह पूर्णता जँचती ही नहीं। तुमने हमसे ब्रह्म की पूर्णता के विषय में जो–जो बातें कही हैं, उसे हम अपने कानों से सुनकर समझने का प्रयत्न कर रही हैं, परन्तु इस पर हमारी आँखें दुखती हैं और बिलख–बिलखकर मरी जा रही है। इस बिलखने के दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि इन्हें तुम्हारे द्वारा वर्णित ब्रह्म की पूर्णता कहीं भी दृष्टिगत नहीं होती अथवा इन्हें यह भय है कि कहीं हम तुम्हारी बातों में आकर कृष्ण को न त्याग दें और तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार न कर लें। ऐसा होने पर कृष्ण के सौन्दर्य में छकी हुई इन आँखों को ऐसी स्थिति में फिर कृष्ण के मधुररूप में दर्शन न हो सकेंगे। गोपियों का कथन है कि सब जन को यह जानकारी है कि भगवान अन्तर्यामी हैं। बुद्धि द्वारा इस बात पर पूर्णरूप से विचार करने पर हमें भी तुम्हारा यह कथन सत्य प्रतीत होता है और इस पर विश्वास होने लगता है किन्तु हमारे कृष्ण तो प्रेम रूप और रत्नों के सागर है, वे अति मूल्यवान हैं। ऐसे कृष्णरूपी माणिक को प्राप्त कर लेने पर तुम क्यों हमें धूल के समान तुच्छ अपने निर्गुण ब्रह्म को अपना लेने का उपदेश दे रहे हो। तुम्हारा यह उपदेश व्यर्थ हो जाएगा। हम अपने धर्म बदलनेवाली नहीं। क्योंकि यह तो गाँठ की मणि को त्यागकर धूल फाँकने के समान मूर्खता ही होगी।

भ्रमर को सम्बोधित करते हुए वे उद्धव को खरी–खोटी सुनाती हुई कहती हैं कि रे छली, चंचल, रस के लोभी, धूर्त भंवरे उहर जा। तू हमें ऐसा योग का कटु संदेश क्यो सुना रहा है? तू हमें यह तो बता कि कहाँ मुनियों की ब्रह्मविषयक कठोर साधना और कहाँ हम कोमलांगी ब्रज की युवतियाँ, कहीं भी तुम्हें समानता दिखाई देती है। हम ब्रज की कोमलांगनाएँ किस प्रकार योगविषयक क्लिष्ट साधना करने में समर्थ हो सकती है? जिस प्रकार कठोर बज्र को तोड़कर चकनाचूर करना असम्भव है, उसी प्रकार हमारे लिए भी इस योग का करना असम्भव है। इस प्रकार संसार में सरिता, सागर तालाब का जल मीठा, निर्मल और शीतल होता है, यह देखकर भी स्वाति–जल के प्रेमी चातक के हृदय में तो केवल स्वाति–नक्षत्र के समय उपलब्ध जल के प्रति ही प्रेम होता है। वह उसी का पान करके अपनी तृष्णा को शांत करता है, उसके लिए अन्य स्रोतों से प्राप्त जल शीतल और मधुर होने पर भी नीरस और व्यर्थ है। इसी प्रकार तुम्हारा ब्रह्म निश्चय ही मुक्ति देनेवाला हो किन्तु हमें तो कृष्ण ही एकमात्र प्रिय लगते हैं हम उन्हीं से प्रसन्न हैं, हमें मोक्ष की आकांक्षा नहीं, अतः हम तुम्हारे ब्रह्म को स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

**विशेषः–**

1. गोपियों ने चातक का आधार बनाकर अपने प्रेम की अनन्यता की घोषणा की है। उनका कृष्ण–प्रेम चातक के समान अटल है। निर्गुण ब्रह्म की अवहेलना न करें, उसे श्रेष्ठ स्वीकारते हुए भी वे कृष्ण के सम्मुख उसे महत्त्व नहीं देती।
2. चातक के प्रेम की अनन्यता का आदर्श प्रतीक स्वीकार किया गया है। तुलसी ने भी चातक की अनन्यता पर अनेक दोहे की रचना की है। उदाहरणः–
   (क) **चरण चंगु गत चातकहि नेम प्रेम की पीर। तुलसी परबस हाड़ पर परिहुँ पुहुमी नीर।।**
   (ख) **"बध्यो बधिक पर्‌यो पुन्यजल उलटि उठाई चोंच। तुलसी चातक प्रेम पर भरतहुँ लगी न खोंच।।'**
3. **अलंकार**
   (क) सम्पूर्ण पद में छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास अलंकार अनेक स्थलो पर आए हैं।
   (ख) 'कहँ मुनि.....चुरी' में निर्दशना अलंकार है।
4. ब्रजभाषा का प्रयोग।
5. आकर्षक लयात्मकता।
6. माधुर्य और प्रसाद गुणसम्पन्न।
7. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।

।। 30 ।।

**हमतें हरि कबहूँ न उदास। राति खवाय पिवास अधररस सो क्यों विसरत ब्रज को वास।।**
**तुमसों प्रेमकथा को कहिवों मनहुँ, काटिबों, घास। बहिरों तान–स्वाद कह जानै, गूँगों बात मिठास।।**
**सुनु री सखी, बहुरि फिरि' ऐहैं वे सुख विविध विलास। सूरदास ऊधो अब हमको भयों तेरहों मास।।३०।।**

**शब्दार्थः** कबहूँ=कभी भी। राति=प्रेमपूर्वक। पिवास=पिलाकर। विसरत=भूलना। अधर=होंठ। काटिबो घास = घास काटना, बेकार मगज मारना। तान–स्वाद=संगीत का आनन्द। बात मिठास =बातों का मीठापन। बहुरि=फिर। तेरहों मास = अवधि बीत जाना।

**प्रसंगः** उद्धव के ज्ञानोपदेश की गोपियों के हृदय पर गहरी प्रतिक्रिया हुई है। वे अन्यंत खिन्न क्रेधित हैं। उद्धव को उन्होंने पर्याप्त खरी–खोटी सुनाई है। अब वे अपने एवं कृष्ण के प्रेम को न्यायोचित ठहराने का प्रयत्न कर रही हैं। उनका कहना है कि उनका कृष्ण के प्रति प्रेम चातक के समान अटल है। उन्हें यह भी विश्वास है कि कृष्ण भी उनसे उदासीन नहीं। उन्हें विश्वास है कि कृष्ण के मन में प्रेम भाव है। उन्हीं की उपासना करना चाहती हैं।

**व्याख्याः** हे उद्धव! हमारे प्रभु कृष्ण हमसे कभी भी उदासीन एवं विषम विचार में नहीं हो सकते क्योंकि उन्हें ब्रजभूमि का अपना निवास कभी भी विस्मृत नहीं हो सकता। यहाँ जब वे हमारे सानिध्य में थे तो हमने उन्हें अत्यन्त प्रेमपूर्वक मक्खन खिलाया था। और प्रेमावस्था में अपने अधरों में अमृतरस का पान कराया था। परंतु तुम्हारे सम्मुख इस प्रेम–कथा का बखान करना तो घास काटने के समान व्यर्थ माथा–पच्ची करना है क्योंकि न तो तुम इसके महत्त्व को ही समझ सकते हो और न ही इससे आनन्दित हो सकते हो। तुम्हारी गति तो उस बहरे मनुष्य के समान है जो संगीत के उतार–चढाव से विस्मृत मधुर तानों का स्वाद नहीं जानता अथवा उस गूँगे व्यक्ति के समान है जो प्रेमालाप से उपलब्ध रस को ग्रहण नहीं कर सकता।

तदुपरांत एक गोपी ने अपनी एक अन्य सखी से कहा कि हे सखी। सुन क्या हमारे जीवन में पुनः वही सुख अनेक प्रकार की प्रेम–कलियाँ फिर कभी आएगी? अर्थात् क्या कभी कृष्ण पुनः ब्रज वापिस आएँगे और हमारे साथ वहीं प्रेम–क्रीड़ाएँ करेंगे जिससे हमे पूर्ण सुख प्राप्त होगा। अब तो उनके आने का समय भी आ गया है क्योंकि जितनी अवधि के लिए वह मथुरा गए थे वह समाप्त हो रही है, अतः आशा है कि अब वह शीघ्र वापिस लौटेंगे।

**विशेषः–**

1. इस पद में सूरदास ने 'मनहुँ काटिबो घास', 'भयो तेरहों मास' आदि ग्रामीण मुहावरों का प्रयोगकर लोक–गीतों की छँटा उत्पन्न कर दी है।
2. *'बहिरो.....बात मिठास'* में *विदर्शना अंलकार, 'मनहुँ काटिबों घास'* में *उत्प्रेक्षा अलंकार* है।
3. एक वर्ष में बारह मास होते हैं। तेरहवें मास के लगने से यह अभिप्राय है कि अब अवधि समाप्त हो गई है। मिलन की आशा जगमगा गई है।
4. ब्रजभाषा का प्रयोग है।
5. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम् का उपयोगी प्रयोग।
6. कृष्ण के प्रति अटूट विश्वास।
7. तीव्र व्यंग्य का स्वरूप।
8. माधुर्य का आकर्षण भाव।

।। 31 ।।

**तेरो बुरो न कोऊ मानै। रस की बात मधुप निरस, सुनु, रसिक होत सो जानै।।**
**दादुर बसै निकट कमलन के जन्म न रस पहिचानै। अलि अनुराग उड़न मन बाँध्यो कहे सुनत नहिं कानै।।**
**सरिता चलै मिलन–सागर को कूल मूल प्रभु भानै। कायर बकै, लोह ते भाजै, लरै जो सूर बखानै।।३१।।**

**शब्दार्थः** मधुप=भौंरा। निरस=नीरस। रसिक=प्रेमी। दादुर=मेढक। अलि=भौंरा। अनुराग=प्रेम। मूल=जड़ सहित। भानै=नष्ट करना, तोड़ डालना। लोह=लोहा, हथियार। लरै=युद्ध करे। सूर=वीर। बखानै=वर्णन किया जाता है।

**प्रसंगः** उद्धव के योग की चर्चा के प्रभाव से मुक्त होकर गोपियाँ अब कुछ सम्भल गई हैं। अब वे अपनी पूरी शक्ति अपने प्रेम के महत्त्व का वर्णन करने में लगा रही हैं। उनका कहना है कि कृष्ण के प्रति उनका प्रेम चातक–प्रेम के समान अटल है। उन्हें विश्वास है कि कृष्ण भी उनके प्रति उदास नहीं है। अब उनके मथुरा–प्रवास की अवधि भी समाप्त हो रही है, आशा है कि वह लौटेंगे और हम पुनः उनके साथ आनन्द–विहार कर सकेंगी। प्रस्तुत पद मे वे पुनः उद्धव के ज्ञानोपदेश पर व्यंग्य कर रहीं हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ उद्धव को लक्ष्यकर भ्रमर को आधार बनाकर कहती हैं। हे नीरस स्वभाव वाले भ्रमर! सुन! तेरी बात का बुरा यहाँ कोई नहीं मानता क्योंकि प्रेम की रसभरी बातें वहीं सोच–समझ सकता है जो स्वयं प्रेमी और रसिक हो। तू तो मधु के लाभ में प्रत्येक पुष्प पर मँडराता फिरता रहता है। किसी एक पुष्प के साथ तुझे कोई लगाव नहीं। इसलिए तू प्रेम की बातें नहीं समझ सकता और न ही प्रेम की बातों में रस ले सकता है। मेढक अपने पूरे जीवन में कमल पुष्पों के निकट निवास करता है किन्तु फिर भी कमल के पराग से प्राप्त रस को पहचान पाने मे सर्वथा असमर्थ रहता है। किन्तु भ्रमर कमल के पराग की सुगंध को पहचानता है, वह उसका सच्चा पारखी है, तभी तो वह उससे अनुराग रखता है। वस्तुतः उसका मन कमल में बँध कर रह जाता है, तभी तो वह कहीं भी हो कमल के पास तत्काल उड़कर जाता है और मार्ग में किसी भी बाधा की तनिक भी परवाह नहीं करता। और न ही किसी के कहने की ओर कान देता है। कवि के कहने का तात्पर्य यह है कि उद्धव का जीवन दादुर के समान व्यर्थ है। क्योंकि वह कृष्णरूपी कमल के पास निवास करता हुआ भी उसकी रसिक प्रवृत्ति से परिचय प्राप्त न कर सका और जीवन भर प्यासा ही रहा जबकि हम गोपिकाओं का मन भ्रमर के संदेश उनके प्रेम मर्म को जानती हैं, उनमे निहित भ्रमरस से परिचित है तभी तो सदा उड़कर उनके पास जाना चाहता है और ऐसा करने में वह किसी लोक–मर्यादा, कुल जाति के गौरव की किसी बाधा की तनिक भी परवाह नहीं करता।

सरिता की गति भी अलि जैसी ही है। जब वह अपने प्रियतम सागर के प्रेमवश उससे मिलने के लिए चल पड़ती है तो पथ की बाधाएँ–किनारे पर उत्पन्न लता–द्रुमो को उखाड़कर नष्ट कर देती है। तुम्हारे जैसा व्यक्ति ही प्रेम पथ पर चलता हुआ ऊँच–नीच पर विचार–विमर्श करता है परन्तु हम जैसी प्रेमी–जन सब लोक–मर्यादाओं को त्यागकर अपने प्रिय से एकाकार हो जाते हैं कायर व्यक्ति केवल बातों के धनी होते हैं। हथियार देखकर भाग खड़े होते हैं, वास्तविक वीर वही हैं जो युद्ध में सम्मुख होकर संघर्ष करता है और वस्तुतः विजयश्री का वर्णन करता है। कवि का कहने का अर्थ यह है कि उद्धव वस्तुतः कायर हैं क्योंकि वह योग–ज्ञान से प्राप्त ब्रह्म सम्बन्धी कोरी बातों में विश्वास करते हैं, अपने निकट बसनेवाले कृष्ण के मर्म को पहचानने का प्रयत्न नहीं करते, उन से प्रेम की लौ लगाकर अपना जीवन सफल करना नहीं चाहते। प्रेम करना रणक्षेत्र के युद्ध के समान साहस का कार्य है तभी तो कोरी बातों का सहारा लेनेवाले उद्धव प्रेम के क्षेत्र में गोपियों की समानता नहीं कर सकते।

**विशेषः–**

1. भ्रमर कमल का प्रेमी स्वीकार किया गया है। दादुर और अलि की इस प्रकृति के अन्तर को कवि जायसी ने भी स्पष्ट किया है
   **"भंवर आइ बन खंड संग, लेहि कंवल कै वास। दादुर बास न पावई, भलई जो आछै पास।।"**
2. दादुर और अलि की प्रतीकात्मक योजना अत्यन्त प्रभावशाली बन पड़ी है।
3. इस पद में उत्तम रीति से अलि और सरिता का उदाहरण देकर प्रेममार्ग की दृढ़ता और एकनिष्ठता का प्रतिपादन किया गया है।
4. ब्रजभाषा का प्रयोग है।
5. सुन्दर लयात्मकता।
6. सरल और बोधगम्य भाषा
7. शब्द–मोतियों का चयन।
8. मनभावन शैली।
9. अलंकार
   (क) 'तेरी.....मानै' – वक्रोक्ति। (ख) 'दादुर.....बखानै' – उल्लेख।
   (ग) 'सरिता.....मानै' – अप्रस्तुतप्रशंसा। (घ) 'कायर.....बखानै' – अर्थान्तरन्यास।
   (ड) 'अलि अनुराग' में छेकानुप्रास अलंकार।

**।। 32 ।।**

**घर ही के बाढ़े रावरे। नाहिं न मीत वियोगवस परे अनवउगे अलि वावरे!**
**मुख मरि जाय चरे नहिं तिनका सिंह को यहै स्वभाव रे! स्रवन सुधा मुरली के पोषे जोग जहर न खवाब रे!**
**ऊधो हमहि सीख का दैहो? हरि बिनु अनत न ठाँव रे! सूरदास कहा लै कीजै थाही नदिया, नाव रे।।३२।।**

**शब्दार्थः** बाढ़े=बढ़–चढ़ कर बातें करनेवाले। रावरे=तुम/मीत–मित्र, प्रिय। अनवउगे=अंगवोग, सहोगे। अलि=भौंरा। बावरे=पगला। तिनका=घास। स्रवन=कान। सुधा–मुरली=मुरली की धुनि रूपी अमृत। पोषे = पोषण किए गए। खवाब=खिलाओ। ठाँव=स्थान थाही=उथली। नदिया=नदी।

**प्रसंगः** मथुरा से आए उद्धव के ज्ञानोपदेश की प्रतिक्रियास्वरूप गोपियाँ अत्यन्त खिन्न हैं वे अपने प्रेम–मार्ग की श्रेष्ठता सिद्ध कर रही हैं। उनके मंत में उद्धव का जीवन उस मेंढक के समान है जो कृष्णरूपी कमल के निकट बसकर भी प्रेमरस को नहीं पहचानता, इसलिए तो हमें ज्ञान योग की शिक्षा दे रहा है।

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव! तुम तो घर के ही शेर हो। तुम्हारे जैसे ज्ञान–योग का गुणगान करने वाले घर पर बैठे–बैठे ही बड़ी–बड़ी बाते बनाते हैं, उनसे कोई क्रियात्मक कार्य करते नहीं बनता। सुन बावले भ्रमर। तुमने अभी तक अपने प्रिय का वियोग नहीं सहा। जब तुम्हारे लिए अपने प्रिय का वियोग सहने का अवसर आएगा, तभी तुम जान सकोगे कि यह कितना दुखदायी और प्राणान्तक होता है। सिंह का तो यह स्वभाव होता है कि स्वयं शिकार करके ही अपने शिकार के गोश्त से अपने पेट की क्षुधा को शांत करता है। वह भूखा मर सकता है, किन्तु घास अथवा किसी अन्य के किए गए शिकार या गोश्त नहीं खाता। सिंह की इस दृढ़ता के समान हम भी अपने कृष्ण प्रेम में दृढ़ हैं प्रेम की वियोग–व्यथा से चाहे हमारे प्राण निकल जाएँ, परंतु हम कृष्ण के प्रेम को नहीं छोड़ेगी और न ही तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार करेंगी। हमारे लिए कृष्ण ही सब कुछ है। सदा से ही हमारे इन कानों का पोषण कृष्ण की मुरली की अमृत के समान मधुर तान से हुआ है। ये उन तत्त्वों को सुनने के ही अभ्यस्त हो चुके हैं। अतः इन्हें तुम विष के सदृश कटु योग की बातें सुनाकर व्यथित न करो। हे उद्धव! तुम भला हमें क्या शिक्षा एवं उपदेश दोगे, हमारे लिए तो भगवान श्री कृष्ण ही एक मात्र आश्रय हैं, उनके अतिरिक्त हमें जाने को अथवा शरण पाने को अन्य कोई स्थान नहीं है। हम कृष्ण प्रेम में निमग्न हैं। हमारे लिए यह संसार उस उथली नदी के समान है जिसे पार करने के लिए किसी नावरूपी सहारे की आवश्यकता नहीं होती, अतः हम तुम्हारे योगरूपी सम्बल को लेकर क्या करेंगी? वस्तुतः इसकी हमें कोई आवश्यकता नहीं। वह हमारे लिए निरर्थक है।

सूरदास जी के कहने का भाव है कि संसार उद्धव जैसे ज्ञानियों के लिए अथाह और अगम्य हो सकता है तथा उसे पार करने के लिए तुम्हें निर्गुण ब्रह्मरूपी सहारे की भी आवश्यकता होती है, परन्तु कृष्ण प्रेम मे लीन गोपियों के लिए यह संसार उथली नदी के समान सहज है, जिसे भक्ति और विश्वास पर ही तैरा जा सकता है इसमें उनकी दृढ़ भक्ति प्रकट होती है।

**विशेषः–**

1. योग–मार्गियों द्वारा भव–सागर को पार करना कठिन बताए जानेवाले सिद्धान्त पर व्यंग्य है प्रेम–मार्गी इस संसार को सरल, ग्राह्य एवं मधुर स्वीकार करते हैं। सहज प्रेम–भक्ति है।
2. मुक्तक शैली।
3. ब्रजभाषा का प्रयोग
4. गंभीर भावाभिव्यक्ति।
5. रस का परिपाक।
6. सरल और सहज भाषा का प्रयोग
7. प्रभावी लयात्मकता – गेयता।
8. आकर्षक बिम्ब–विधान।
9. अलंकार
   - (क) 'सुधा–मुरली', 'जोग–जहर' में रूपक अलंकार।
   - (ख) 'मुख–स्वभाव' में उदाहरण अलंकार।
   - (ग) 'स्रवन – ख्वाब', मे विषम अलंकार।
   - (घ) 'कहा–नाव', में तुल्योगिता एवं लोकोक्ति का प्रयोग
   - (ड) 'अनवउगे अलि', में छेकानुप्रास अलंकार।

**।। 33 ।।**

**स्याममुख देखे ही परतीति। जो तुम कोटि जतन करि सिखवत जोग ध्यान की रीति।।**
**नाहिन कहू सयान ज्ञान में यह हम कैसे मानैं। कहौ कहा कहिए या नभ को कैसे उर मे आनै।**
**यह मन एक, एक वह मूरति, भृंगकीट सम माने। सूर सपथ दै बूझत ऊधौ यह ब्रज लोग सयाने।।३३।।**

**शब्दार्थः** परतीति=विश्वास। कोटि=करोड़। जतन=यत्न। सयान=चालाकी। उर मे आनै=विश्वास करें। नम=शून्य। आनै=लाए। भृंगकीट=बिलनी नामक एक कीड़ा, जिसके सम्बन्ध में प्रचलित है कि वह अन्य कीड़ों को पकड़कर उन्हें अपने रूप में परिवर्तित कर लेता है। सम=समान। बूझत=समझते हैं।

**प्रसंगः** गोपियों के मत में उद्धव जैसे तथाकथित ज्ञानी पुरुष ही योग–ध्यान की बातें करते हैं क्योंकि ये लोग सार्थक समयानुकूल कार्य करने में असमर्थ होते हैं, इन्हीं के लिए यह भवसागर, अगम्य एवं अथाह है, और इससे पार उतरने के लिए ब्रह्मरूपी संबल की आवश्यकता है। गोपियाँ कृष्ण के प्रेमरस मे लीन हैं, उनके लिए यह संसार उथली नदी के समान सहज है।

**व्याख्याः** गोपियाँ उद्धव की सारी बातें सुनकर बड़े धैर्य से कहती हैं कि हे उद्धव! अब तो कृष्ण के दर्शन करने पर ही हमें विश्वास

हो सकेगा कि वास्तविकता क्या है? तुम्हारे ज्ञान–योग के उपदेश की प्रामाणिकता भी तभी सिद्ध होगी। तुम अनेक प्रयत्नों के द्वारा हमें योग और ज्ञान की पद्धतियों की शिक्षा देना चाहते हो किन्तु इन पर हमारा मन स्थिर नहीं हो पाता। हम किस प्रकार यह स्वीकार कर लें कि तुम्हारे इस ज्ञानोपदेश में कहीं कोई खोट, चालाकी अथवा दुरभिसंधि का समावेश नहीं। हमें स्पष्ट यह लग रहा है कि तुम हम लोगों को कृष्ण–प्रेम से उदासीन करके अपनी कोई स्वार्थ–सिद्धि करना चाहते हो। इसमें तुम्हारा छल ही प्रकट होता है।

गोपियाँ फिर पूछती हैं कि यह बताओ कि इस आकाश जैसे विस्तृत ब्रह्म को हम किस प्रकार अपने हृदय में समेट लें, आत्मसात कर लें? हमारा यह हृदय एक है और इसमें पहले से ही एक मूर्ति विराजमान है। हमारा हृदय और कृष्ण मूर्ति पहले से ही मिलकर भृंग और कीट के समान एक हो चुके हैं। हमारे हृदय पूर्णरूप से कृष्णमय बन गए हैं। अतः अब यह ज्ञानवान ब्रजवासी तुम्हें शपथ देकर यह जानना चाहते हैं कि क्या इनके कृष्णमय हृदयों में निर्गुण–ब्रह्म के लिए कोई स्थान उपलब्ध हो सकता है? क्या इनके लिए निर्गुण ब्रह्म की साधना करना सम्भव है? जब इनका हृदय कृष्ण–मूर्ति के साथ एकरूप हो चुका तो हम ब्रह्म की साधना असम्भव ही जान पड़ती है। इसे तुम्हें समझ लेना चाहिए।

**विशेषः–**

1. गोपियों द्वारा योग–साधना का तिरस्कार है।
2. इद पद में गोपियों के अनन्य प्रेम की व्यजंना हुई है।
3. प्रेम की अनन्यता में प्रेमी और प्रेमिका अथवा उपासक और उपास्य एकरूप हो जाते हैं। उनमें कोई अन्तर नहीं रहता है। 'भृंगकीट सम' से यही अभिप्राय है।
4. रूपकातिशयोक्ति।
5. 'भृंगकीट सम' में उपमा अलंकार।
6. गीतात्मकता का आकर्षक रूप।
7. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
8. डर में आना मुहावरे का सुन्दर प्रयोग।
9. माधुर्य भाव की मनोरम अभिव्यक्ति
10. शब्द–मोतियों का चयन।
11. सुन्दर अभिव्यंजना।

**।। 34 ।।**

**लरिकाई को प्रेम, कहौ अलि, कैसे करिकै छूटत? कहा कहौं ब्रजनाथ–चरित अब अन्तरगति यो लूटत।।**
**चंचल चाल मनोरम चितवनि, वह मुसुकनि मंद धुनि गावत। नटवर भेस नन्द–नन्दन को वह विनोद गृह वन तें आवत।।**
**चरन कमल की सपथ करति हौ यह संदेश मोहि विष–सम लागत। सूरदास मोहि निमिष न बिसरत मोहन मूरति सोवत जागत।।३४।।**

**शब्दार्थः** लरिकाई=बचपन। अलि=भौंरा। ब्रजनाथ=कृष्ण। अन्तरगति=चित की वृत्ति। चितवनि=चितवन, दृष्टि। भेस=वेष सपथ=शपथ। मोहि=मुझे। निमिष=पल, क्षण। बिसरत= भूलता है। मूरति=रूप।

**प्रसंगः** उद्धव से संवाद करती हुई गोपियाँ अनेक दृष्टातों द्वारा अपने पथ की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करना चाहती हैं। उनका कहना है कि कृष्ण की मोहिनी सूरत उनके मन में समाकर उनके मन के साथ एकरूप हो चुकी हैं, अब वहाँ निर्गुण–ब्रह्म की साधना के लिए कोई स्थान नहीं कृष्ण और गोपियों का सम्पर्क और प्रेम बालपन से ही रहा है, इसलिए इसे भुला पाना सम्भव नहीं इसी बात को स्पष्ट करती हुई गोपियाँ अपने भाव पर दृढ़ हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ अपनी बात पर जोर देती हुई कहती हैं। हे उद्धव! यह बताओ कि बालपन से साथ–साथ रहते हुए उत्पन्न प्रेम किस प्रकार छूट सकता है। यह तो असम्भव है। हम ब्रजनाथ श्री–कृष्ण के चरित्रों अर्थात् क्रीड़ाओं का कहाँ तक वर्णन करूँ उनके इन चरित्रों का ध्यान अब भी हमारे मन को सहजरूप में उनकी ओर आकर्षित करता रहता है। उनका स्मरण आते ही हम स्वयं को विस्मृत कर बैठती हैं। उनकी वह चंचल गति, वह मनोहर चितवन, वह मोहक मुस्कान तथा मंद एवं मधुर स्वर में गान हम कभी भी भुला नहीं सकती । नंदनंदन श्रीकृष्ण का नटवर वेष धारण किए हुए विनोद करते हुए वन से घर की ओर लौटना–हमारे मन में सदैव छाया रहता है। हम चरण–कमल की शपथ खाकर यह कहती हैं कि निर्गुण–ब्रह्म की साधना करने को उनके द्वारा भेजा हुआ यह संदेश हमें विष के समान अत्यन्त कड़वा एवं घातक प्रतीत होता है। हमें तो सोते–जागते शरीर की समस्त अवस्थाओं में श्री कृष्ण की मनोहर मूर्ति क्षण भर के लिए भी नहीं भूलती। वे ही मेरे आराध्य हैं और उन्हे भुला पाना असम्भव है

**विशेषः–**

1. यह मनोवैज्ञानिक कि बालपन के साहचर्य सम्पर्क से जन्य प्रेम का छूटना सम्भव नहीं होता है, का प्रभावी रूप।
2. इस पद में गोपियों का हृदय उड़ेला हुआ है, वे कृष्ण की मनोहर छवि के प्रति आकर्षित हैं, सोते–जागते इसी का ध्यान उन्हें रहता है।

3. 'लरिकाई को प्रेम' में अत्यन्त सहजता, मार्मिकता और आत्मीयता की व्यंजना हुई है।
4. भक्ति रस का परिपाक।
5. ब्रजभाषा का प्रयोग।
6. सुन्दर गेयता।
7. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम् का योग।
8. माधुर्य भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति।
9. 'चरण–कमल' में रूपक अलंकार।
10. 'संदेश–विष–सम' में उपमा अलंकार।

**।। 35 ।।**

**अटपटि बात तिहारी ऊधो सुनै सो ऐसी को है? हम अहीरि अबला सठ, मधुकर! तिन्हैं जोग कैसे सोहै?**
**बूचिहि खुभी आँधरी काजर, नकटी पहिरै बेसरि। मुंडली पाटी पारन चाहै, कोढ़ी अंगहि केसरि।।**
**बहिरो सो पति मतो करै सो उतर कौन पै आवै? ऐसी न्याव है ताकों ऊधो जो हमैं जोग सिखावै।।**
**जो तुम हमको लाए कृपा करि सिर चढ़ाय हम लीन्हें। सूरदास नरियर जो विष को करहिं वंदना की ।।३५।।**

**शब्दार्थः** अटपटि=बेकार, व्यर्थ। बूचिहि=कनकटी, जिसका कान काट हुआ हो। खुभी=लौंग, कान का एक गहना। आँधरी=अन्धी। बेसरि=नथ। मुँडली=जिसका सिर मुँड़ा हो। पाटी पारन=बालों में माँग निकालना। मतो करै=सलाह करे। उतर=उत्तर। नरियर=नारियल।

**प्रसंगः** उद्धव से संवाद करती हुई गोपियों का गर्वभरा कथन है कि गोपियों का कृष्ण–प्रेम कोई आजकल की बात नहीं, अपितु यह बालपन से उत्पन्न हुआ है। वे प्रत्येक क्षण कृष्ण की मोहिनी मूर्ति के ध्यान में खोई रहती हैं। उनके पास इतना समय ही कहाँ है कि वे उद्धव की योग ज्ञान सम्बन्धी अटपटी बातें सुनें और उन पर विचार करें। प्रस्तुत पद में वे अपने और कृष्ण के प्रेम पर गर्व करती हैं।

**व्याख्याः** हे उद्धव! हम जैसी कौन खाली बैठी है जो तुम्हारे योग की अटपटी एवं व्यर्थ की बातों को सुने और उन पर ध्यान दे। हे दुष्ट भ्रमर! हम अहीर जाति की अबला नारियाँ हैं, हमें तुम्हारा यह योग किस प्रकार शोभा दे सकता है? यह बात उसी प्रकार अनहोनी और असम्भव है जिस प्रकार कनकटी हुई स्त्री कानों में लौंगरूपी गहन पहनने का प्रयत्न करे, अथवा अंधी स्त्री अपने नेत्रों में काजल डालने का, नाक कटी हुई नाक में नथ पहनने का, गंजी का अपने सिर पर बालों की पटियाँ काढ़ने का अथवा माँग काढ़ने का और कोढ़ी अपने कोढ़ से गलती अंगो का केसर से शृंगार करने का प्रयत्न करे। यदि एक पति अपनी बहरी पत्नी से किसी प्रकार का कोई विचार–विमर्श करने का प्रयत्न करे तो वह क्या उत्तर प्राप्त कर सकेगा। बहरी पत्नी कुछ भी न सुन पाने के कारण उत्तर क्या दे सकेगी? जिस प्रकार यह सब असम्भव है, उसी प्रकार हे उद्धव! योग साधना हमारे लिए भी असम्भव है और जो हमें योग सिखाने का प्रयत्न करेगा, उसकी स्थिति भी बहरी के पति के समान शोचनीय होगी। इस प्रकार तुम्हारा प्रयास व्यर्थ है। गोपियाँ वाक्पटु हैं। अपने प्रेम पर अटल हैं और आगे कहती हैं– हे उद्धव! तुम हमारे लिए श्री कृष्ण से जो कुछ लाए हो वह हमने सादर सिर पर चढ़ाकर अंगीकार किया है। परंतु तुम्हारा यह योग का उपदेश हमारे लिए उस विष भरे नारियल के समान है जिसे दूर से ही नमस्कार किया जाता है। जिसे यदि स्वीकार कर लिया जाए तो प्राण संकट में पड़ने अवश्यम्भावी है। अर्थात् तुम्हारा यह योग–संदेश हमारे प्रियतम कृष्ण द्वारा भेजा गया होने पर हमारे लिए वंदनीय तो है परन्तु यह स्वीकार करने के योग्य नहीं, क्योंकि यह हमें प्रियतम कृष्ण को त्याग निर्गुण ब्रह्म की साधना करने को कहता है, इसलिए यह घातक है। इसलिए हम विष भरे नारियल के समान इसे दूर से ही प्रणाम करती हैं, इसे स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

**विशेषः–**

1. योग–सन्देश श्री कृष्ण के साथ सम्बन्धित है इसलिए गोपियों ने उसे ससम्मान सुना है। यदि यह कृष्ण का संदेश न होता तो बिना सुनें ही यहाँ से लौटा देती।
2. ब्रजभाषा का प्रयोग
3. कृष्ण भक्ति का प्रबल रूप।
4. भक्ति रस का परिपाक।
5. सुन्दर लयात्मकता।
6. स्पष्ट अभिव्यक्ति।
7. राग सोरठा का स्वरूप।
8. माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति।
9. अनुप्रास के साथ नरिहर विष में – रूपक अलंकार है।
10. विष का नारियल का मुहावरा है, जिसका ब्रज में पर्याप्त प्रयोग मिलता है।

**।। 36 ।।**

**वरू वै कुब्जा भलो कियो। सुनि सुनि समाचार ऊधो मो कछुक सिरात हियो।।**
**जाको गुन, गति, नाम, रूप, हरि हार्‌यो, फिरि न दायो। तिन आपनो मन हरत न जान्यों हँसि हँसि लोग जियो।।**
**सूर तनक चंदन चढ़ाय तन ब्रजपति वस्य कियो। और सकल नागरि नारिन को दासी दाँव लियो।।३६।।**

**शब्दार्थः** बरू=बल्कि। भलो=अच्छा। मो=मुझे, मेरे लिए। सिरात=शीतल होता है। हियो=हृदय। हार्‌यौ=हर लिया। तिन=उन्होंने वस्य किया=वश में कर लिया। सकल=सारी, सभी। नागरि=नगर में रहनेवाली नारियों। दासी=कुब्जा। दाँउ=दावँ, घात

**प्रसंगः** यहाँ कुब्जा द्वारा कृष्ण को वश में किए जाने पर गोपियों को प्रसन्नता व्यक्त हुई है।

**व्याख्याः** गोपियाँ कृष्ण के कुब्जा–प्रेम पर व्यंग्य करती हुई उद्धव से कह रही हैं कि उस कुब्जा ने बल्कि अच्छा काम किया। यह समाचार सुनकर हृदय शीतल हो जाता है। कृष्ण का तो यह स्वभाव रहा है कि उन्होंने एक बार जिसका तन, मन, प्राण, रूप, गुण का हरण कर लिया, उसे फिर लौटा कर नहीं दिया। वहीं कृष्ण (कुब्जा के द्वारा) अपने मन का हरण होता हुआ न जान सके। कृष्ण की इस पराजय को सुनकर सब लोग हँस–हँसकर जीवित रहते हैं। सूरदास कहते हैं। गोपी कह रही है कि उस कुब्जा ने तो कृष्ण के शरीर पर तनिक–सा चंदन का लेप करके ही अपने वश में कर लिया और इस प्रकार सम्पूर्ण नगर की स्त्रियों को पराजित कर उनके ऊपर विजय प्राप्त की। भाव यह हैं कि दासी कुब्जा सम्पूर्ण नगर की चतुर स्त्रियों को पराजित कर दाँव मार ले गई। एक दासी अन्य नागरिकाओं से जीत गई। इस प्रकार कुब्जा के प्रभाव के साथ गोपियों की मूर्खता का भाव प्रकट किया गया है।

**विशेषः–**

1. इस पद में दुर्जन–दोष न्याय पद्धति द्वारा गोपियाँ कुब्जा की कृष्ण पर विजय पर व्यंग्य कर रही हैं? दुर्जन–दोष न्याय से तात्पर्य है प्रति पक्षी को हराने के लिए उसके तर्क की पुष्टि करना, उसी के दाँव पर उसे हरा देना। गोपियों के मन में कृष्ण अपने को बहुत कुछ समझते थे, अंत में उन्हें एक दासी के हाथों हार खानी पड़ी।
2. 'तनक चन्दन चढ़ाय' में भी गहन व्यंग्य निहित है। गोपियाँ तो कृष्ण पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर चुकी थीं किन्तु वह उन्हें छोड़कर मथुरा चले गए और अपने उद्देश्य की सिद्धि हो जाने पर भी उनकी सुधि नहीं ली, किन्तु अब कुब्जा द्वारा उनके शरीर पर तनिक–सा चन्दन लेप चढ़ाने पर वह इतने अधिक उसके वश में हो गए हैं कि यहाँ आकर हमसे मिलने को छोटा–सा स्वतंत्र कार्य कर पाने में भी अपने आपको असमर्थ पा रहे हैं।
3. 'और सकल.....दाँव लियो' का यह अर्थ भी हो सकता है कि मथुरा नगर की समस्त चतुर नारियो को दाव जीतने अधिकार केवल कुब्जा को ही प्राप्त हो गया है और अब वह उनकी एकमात्र प्रेमिका है।
4. कृष्ण की निष्ठुरता पर करारा व्यंग्य।
5. ब्रजभाषा का प्रयोग।
6. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति।
7. वियोग श्रृगांर का प्रबलस्वरूप।
8. 'सुनि सुनि समाचार' मे वृत्यानुप्रास अलंकार।

**।। 37 ।।**

**हरि काहे के अंतर्जामी? जौ हरि मिलत नहिं यहि औसर, अवधि बतावत लामी।।**
**अपनी चोप जाय उठि बैठे और निरस बेकामी? सो कह पीर पराई जानै जो हरि गरूड़गामी।।**
**आई उधरि प्रीति कलई सी जैसे खाटी आमी। सूर इते पर अनख मरति है ऊधों, पीवत मामी।।३७।।**

**शब्दार्थः** अन्तर्जामी=सर्वज्ञ। यहि=इस। औसर=अवसर। अवधि=समय। बतावत=बताते है। लामी=लम्बी। चोप=चाह, साध निरस=नीरस। बेकामी=निष्काम। पीर=दर्द। पराई=दूसरे की। उधरि=खुली, स्पष्ट। खाटी=खट्टी। आमी=अमिया, आम अनख=अनखनाकर, कुढ़कर। पीवत मामी=बात को पी जाना, चुप्पी साध जाना।

**प्रसंगः** गोपियों के कटु व्यंग्य को सुनकर उन्हें समझने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे में उन्होंने कहा कि भगवान अन्तर्यामी हैं। सबके हृदय की बात जानते हैं। इसका उत्तर देते हुए गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि यह बात गलत है। यदि ऐसा होता तो वह हमारे हृदय की भी बात जान लेते और हम जो उनके प्रेम में इतनी व्याकुल हो रही हैं, तो वह अवश्य आकर हमसे मिलते और हमारे हृदय की विरह–ज्वाला को शांत करते।

**व्याख्याः** गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि हरि कैसे अन्तर्यामी हैं कैसे सबके हृदय की बात जानने वाले हैं? यदि वह हमारे हृदय की बात जानते होते तो क्या वे इस अवसर पर आकर हमे मिलते नहीं? इसके विपरीत, वह तो अपने आने की और भी लम्बी अवधि बता रहे हैं। अर्थात् बहुत दिनों के बाद आने का संदेश भेज रहे हैं। वह तो यहाँ से अपनी ही इच्छानुसार उठकर वहाँ जा बैठे हैं और वहाँ जाकर पूर्णतः नीरस स्वभाव के और निष्काम बन गए हैं; अर्थात् उनके हृदय में हमसे मिलने की कामना ही नहीं रही। वास्तविकता तो ये है कि जो गरुड़ पर सवारी करनेवाले हैं, कभी पैदल नहीं चलते, वह पैदल चलनेवालों के पैरों में फटी बिवाइयों के कष्ट को क्या जानें? भाव यह है कि कृष्ण को तो वहाँ कुब्जा का प्रेम प्राप्त हो गया और वह हमें भूल गए। इसलिए उन्हें हम लोगों की वेदना नहीं सताती। फिर वह विरह–वेदना के कष्ट को कैसे अनुभव कर सकते हैं?

जैसे खट्टे आम द्वारा बर्तन पर चढ़ाई कलई उतर जाती है और बर्तन का असली रूप सामने आ जाता है, उसी प्रकार अब उनके प्रेम की असलियत हमारे सामने खुल गई है अर्थात् असलियत यह थी कि वे हमसे प्रेम ही नहीं करते थे। प्रेम की बनावटी बातें कर हमें बहलाए रखते थे। यह सब जान लेने पर हम इस बात पर कुढ़–कुढ़कर मरी जा रही हैं कि वह हमारे प्रेम के सम्बन्ध में मौन साध कर बैठ गए हैं। न तो यह कहते कि हमसे प्रेम नहीं करते, और न यही कहते हैं कि हमसे प्रेम करते हैं।

**विशेषः–**

1. 'सो कह पीर पराई जानैं' आकर्षक लोकोक्ति–प्रयोग।
2. 'आई उधरि प्रीति कलई' के रूप में सुन्दर लोकोक्ति।
3. मुक्तक शैली
4. गीतात्मकता
5. ब्रजभाषा का प्रयोग
6. कृष्ण की विषम स्थिति का चित्रण।
7. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति।
8. भाव–प्रवणता।
9. विम्ब–विधान का आकर्षक रूप।

**।। 38 ।।**

**विलगि जनि मानहु, ऊधो प्यारे। यह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे।**
**तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भँवारे। तिनके सँग अधिक छवि उपजत कमलनैन मनि आरे।।**
**मानहु नील माट ते काढ़े लै जमुना ज्यौं पखारे। ता गुन श्याम भई कालिंदी सूर श्याम गुन न्यारे।।३८।।**

**शब्दार्थः** बिलगि=बुरा। जनि=मत। काजर=काजल। कोठरि=कोठरी, छोटा, कमरा। आवहिं=आते हैं। कारे=काले। सुफलकसुत=अक्रूर। मधुय=भौरां। उपजत=उत्पन्न होता है। मनिआरे=मणिधारी, काला सर्प। काढ़े=निकाले। पखारे=धोये। कालिन्दी=यमुना।

**प्रसंगः** गोपियाँ उद्धव के योग–सन्देश पर अत्यधिक क्षुब्ध हैं और प्रतिक्रियास्वरूप उन्हें अत्यन्त खरी–खोटी सुना रहीं है। प्रस्तुत पद में वे उन पर व्यंग्य करती हुई कहती हैं कि वह उनकी बात का बुरा न मानें। वस्तुतः उनका कोई दोष नहीं, यह मथुरा ही ऐसी काजल की कोठरी है, जहाँ से आनेवाले सभी काले तनवाले और खोटे मनवाले हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ उद्धव की बातों से तंग होकर व्यंग्य से कहती हैं कि हे प्यारे उद्धव! तुम हमारी बातों का बुरा न मानो। तुम हमें ज्ञानयोग की शिक्षा देने आये हो, उसमें तुम्हारा दोष नहीं है। यह तो उस काजल की कोठरी (मथुरा) का दोष है? कि उसमें से आनेवाले हर व्यक्ति का तन काला होता है। अब देखों न तुम भी काले, अक्रूर भी काले हैं और यहाँ तक कि उधर से उड़कर आने वाले भ्रमर भी काले होते हैं। इन सभी काले लोगों के साथ कमल नेत्रोंवाले कृष्ण मणिधारी काले सर्प के समान हैं क्योंकि उन्होंने हमें डस कर अपने विरहरूपी विष से व्याकुल कर दिया है ऐसा लगता है कि तुम काले लोग अब तक किसी नीले मटके में पड़े थे और उसमें से निकालकर किसी ने तुम्हें यमुना जल से धोकर साफ करने का प्रयत्न किया है। तुम लोग साफ तो नहीं हुए, लेकिन यमुना का जल तुम लोगों के सम्पर्क से अवश्य काला पड़ गया। सूरदास जी कहते हैं कि गोपी कह रही है कि इन काले लोगों के गुण ही निराले होते हैं। स्वयं तो काले होते ही हैं दूसरों को भी काला कर देते हैं।

**विशेषः–**

1. सुर के समान अन्य कृष्ण – कवियों ने भी काले रंग को लेकर व्यंग्य किया है। रत्नाकर ने तो मथुरा की टकसाल के समस्त सिक्कों को खुहल घोषित किया है–

**'मधुपुर वारे एके ठार ठारे हो।'**

किन्तु सूर की विशेषता यह है कि अन्य कवियों ने जहाँ केवल वर्णमात्र पर व्यंग्य किया है, वहाँ सूर ने काले के अंतर में भी काला गुण बताया है–

**'सूर स्याम गुन न्यारे।'**

2. शुक्ल जी को 'मनिआरे' शब्द का अर्थ 'सुहावना' अर्थात् रौनकदार किया है, परन्तु यह अर्थ संग्रह प्रतीत नहीं होता। वस्तुत इस पद में कवि मथुरा के काले लोगों में काले कृष्ण की श्रेष्ठता प्रतिपादित करना चाहता है। प्रसिद्ध है कि मणिधारी सर्प भयंकररूप से काला और तेजस्वी होता है। इसी कारण यहाँ कृष्ण की श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए 'मणिधारी सर्प' अर्थ ही उपयुक्त लगता है। प्रभाव की दृष्टि से भी यही अधिक संगत है। सौन्दर्य के लिए उसी पंक्ति में 'छाँदे' शब्द पहले ही प्रयुक्त हो चुका है।
3. अलंकार–
(क) 'मानहु ..... काढ़ै' में उत्प्रेक्षा अलंकार। (ख) 'तागून ..... कालिंदी' में तद्गुण का स्वरूप। (ग) 'स्याम' में श्लेष अलंकार।
4. मुक्तक शैली। 5.ब्रज भाषा का प्रयोग।
6. आकर्षक गेयता। 7. सुन्दर अप्रस्तुत विधान।
8. वाक्पटुता का सुन्दररूप। 9. सरल, बोधगम्य भाषा।
10. संवादात्मक शैली। 11. आकर्षक अभिव्यंजना।

**।। 39 ।।**

**अपने स्वारथ को सब कोऊ। चुप करि रहौ, मधुप रस लंपट! तुम देखे अरू वोऊ।।**
**औरों कछू संदेश कहन को कहि पठ्यो किन सोऊ। लीन्हों फिरत जोग जुबतिन को बड़े सयाने दोऊ।।**
**तब कत मोहन रास खिलाई जो पै ज्ञान हुतोऊ? अब हमरे जिय बैठो यह पद 'होनी होउ सो होऊ'।।**
**मिटि गयो मान परेखो ऊधो हिरदय हतो सो होऊ। सूरदास प्रभु गोकुलनायक चित चिंता अब खोऊ।।३६।।**

**शब्दार्थः** स्वारथ=स्वार्थ। कोऊ=कोई। मधुप=भौंरा। लंपट=लालची, लोभी। अरू=और। वोऊ=वह भी। किन=क्यों नहीं। सोऊ=वह भी। जुबतिन=युवतियाँ। सयाने=चतुर। जिय=प्राण। हुतोऊ=था। परेखो=पश्चाताप, दुःख।

**प्रसंगः** उद्धव जिद करते रहे कि योग करो। ऐसे में गोपियों ने अनेक प्रकार से उद्धव को समझाया कि उनका प्रेम–पथ उद्धव के निर्गुण ब्रह्म से श्रेष्ठ है किन्तु उद्धव ने इस बात को न मानकर अपने योगज्ञान के उपदेश को जारी रखा। इस पर गोपियाँ अत्यन्त खिन्न होती है। और उद्धव को जली–कटी सुनाती हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव! इस संसार में सब अपने ही स्वार्थ को देखने वाले है। दूसरों की कोई भी चिंता नहीं करता। हे रस–लोभी मधुप! तुम अब चुप रहो, ज्यादा बातें न बनाओ। हमने तुम्हें भी देख लिया है और उन्हें (कृष्ण) भी। तुम दोनों ही एक समान स्वार्थी हो। कृष्ण ने यदि तुम्हें हमारे पास और भी कुछ संदेश कहने के लिए भेजा हो तो उसे भी क्यों नहीं कह डालते? तुम दोनों बड़े चतुर मालूम पड़ते हो कि युवतियों के लिए योग लिए फिरते हो; अर्थात् तुम भी हमें योग का संदेश दे रहे हो और उन्होंने भी तुम्हे यही संदेश देने के लिए हमारे पास भेजा है।

यदि कृष्ण सचमुच ज्ञान को इतना महत्त्व देते थे तो उन्होंने हमारे साथ रास क्यों रचाया था? अब तो हमने यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि जो होगा सो देखा जाएगा, परन्तु हम कृष्ण के प्रेम को नहीं त्यागेंगी। हे उद्धव! कृष्ण की उपेक्षा और मौन के प्रति हमारे हृदय में अब तक जो कुछ भी मान और पश्चाताप की भावनाएँ थीं, वह अब जाती रहीं; अर्थात् अब कृष्ण के द्वारा अपने प्रेम की उपेक्षा किए जाने के कारण हमें कोई शिकायत नहीं है। हमारे कृष्ण तो गोकुल के स्वामी हैं, इसलिए तुम अपने मन की सारी चिंताएँ दूर कर दो। भाव यह है कि हमें यह पक्का विश्वास है कि कृष्ण गोकुल के स्वामी हैं, इसलिए हमारी सारी चिंताएँ स्वयं ही दूर कर देंगे। अतः तुम अपनी इस चिंता को दूर कर दो कि तुम हमें योग–मार्ग स्वीकार कराने में असफल रहे।

**विशेषः–**

1. इसमें कृष्ण की स्वार्थपरता और गोपियों के अनन्य प्रेम का एक साथ चित्रण हुआ है। साथ ही गोपियो का यह दृढ विश्वास भी व्यंजित हो रहा है कि कृष्ण हमारे ही हैं।
2. अमर्ष संचारी भाव की व्यंजना है। 3. मुक्तक शैली।
4. ब्रज भाषा का प्रयोग। 5. मुक्त शैली।
6. सुन्दर भावभि व्यंजना। 7. भक्ति रस का परिपाक।
8. "होनी होई से होई" लोकोक्ति प्रयोग। 9. बड़ा सयाना मुहावरे का प्रयोग।
10. माधुर्य भाव – प्रस्तुति।

**।। 40 ।।**

**तुम जो कहते संदेसो आनि। कहा करो वा नंदनन्दन सो होत नहीं हितहानि।।**
**जोग–जुगुति किहि काज हमारे जदपि महा सुखखानि। सने सनेह श्यामसुन्दर के हिलि मिलि कै मन मानि।।**
**सोहत लोह परसि पारस ज्यों सुवरन बारह वानि। पुनि वह चोपकहां चुम्बक ज्यों लटपटाय लपटानि।।**
**रूपरहित नीरस निरगुन हित निगमहु परत न जानि। सूरदास कौन विधि तासों अब कीजै पहिचानि।।४०।।**

**शब्दार्थः** संदेश=समाचार। आनि=अन्य। हितहानि=प्रेम की हानि। जदपि=फिर भी। किहि=किस। सने=भीगे हुए। सोहत=शोभा। परसि=स्पर्श। सुबरन=सोना। पारस=एक तरह का पत्थर जिसके स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है। बारह बानि=बारह कलाओं के साथ चमकनेवाले सूर्य के समान उज्ज्वल, खरा सोना। पुनि=फिर। चोप=चाह, इच्छा, आकर्षण। नीरस=निराशा। तासों =उसे।

**प्रसंगः** उद्धव के बार–बार के ज्ञानोपदेश के कारण गोपियाँ अत्यन्त क्षुब्ध हैं वे अपने प्रेम–पथ की श्रेष्ठता अनेक बार घोषित कर चुकी हैं। वे चाहती हैं कि उद्धव उनके साथ केवल कृष्ण की बात करें; उनके विषय में ही वार्तालाप करें किन्तु उद्धव बीच में निर्गुण ब्रह्म को ले आते हैं इसी कारण वे उद्धव से कह रही हैं कि तुम हमारे मनवांछित, संदेश को न कहकर दूसरी बात कहते हो जो हमें अप्रिय है।

**व्याख्याः** हे उद्धव! तुम हमें कृष्ण–प्रेम का संदेश न कहकर कोई अन्य योग ज्ञान से सम्बन्धित संदेश कह रहे हो जिसमें हमारी तनिक भी रुचि नहीं है। इस संदेश को सुनना हमारे लिए उचित नहीं क्योंकि इससे नंदनन्दन कृष्ण के साथ हमारे प्रेम की हानि होती है किन्तु हम उनसे प्रेम करना नहीं छोड़ सकती। तुम्हारें कथानुसार यद्यपि योग–साधना महान् सुखों की खान है – अर्थात् महान् सुखों को प्रदान करनेवाली है किन्तु वह हमारे किस काम की है। योग–साधना को अपनाने पर हमें कृष्ण–प्रेम को त्यागना पड़ेगा, जो हमारे लिए सम्भव नहीं, अतः तुम्हारा यह योग हमारे लिए व्यर्थ है हमारा समस्त सुख तो कृष्ण–प्रेम में ही निहित है। हमारा मन श्याम–सुन्दर के साथ हिलमिल कर उनके स्नेह में पूर्णरूप में डूब गया है, छक गया है। लोहा पारस नाम के स्पर्श से बारहबानि उज्ज्वल एवं खरा सोना बन जाता है, किन्तु ऐसे सोने में वह उत्साह अथवा आकर्षण शेष नहीं रह जाता जो उसे चुम्बक के प्रति आकर्षित कर उससे चिपका देता है। ऐसे ही योग साधना के कारण भले ही हमारा मन निर्मल, खरे सोने के समान क्यों न हो जाए परन्तु उसकी सर्वस्व प्रेम–भावना, नष्ट हो जाएगी।

तुम कहते हो कि तुम्हारा ब्रह्म, निष्काम, अगम्य है। आज तक वेदों ने भी उसका पार नहीं पाया तो फिर तुम्हारे इस ब्रह्म के साथ हम किस प्रकार परिचय प्राप्त कर सकती हैं? अर्थात् जब वेदों के लिए भी तुम्हारा यह निर्गुण और निष्काम ब्रह्म गम्य नहीं तो हम अबला, मूढ नारियाँ उसका ज्ञान किस प्रकार प्राप्त कर सकती हैं? और जब हमारा उससे परिचय ही नहीं हो सकेगा, तो हम उससे प्रेम किस प्रकार करेंगी?

**विशेषः–**

1. प्रेम मे आकर्षण प्रदान होता है, इसी कारण गोपियाँ योग–साधना नहीं करना चाहती क्योंकि उन्हें इस प्रकार कृष्ण–प्रेम से हाथ धोना पड़ेगा।
2. मुक्तक शैली।
3. ब्रजभाषा का प्रयोग।
4. संगीतात्मकता।
5. 'सने सनेह श्याम सुंदर' में वृत्यानुप्रास अलंकार।
6. 'सोहत ..... ज्यों ..... बनि।' में उपमा अलंकार।
7. निर्गुण पर सगुण का प्रभाव।
8. भावानुसार भाषा–प्रयोग।
9. सुन्दर अभिव्यंजना।
10. संवादात्मक शैली।

**।। 41 ।।**

**हम तौ कान्ह केलि की भूखी। कैसे निरगुन सुनहि तिहारी विरहिति विरह विदुखी?**
**कहिए कहा यहौ नहिं जानत काहि जोग है जोग। पा लागों तुमहीं सो वा पुर बसत बावरे लोग।।**
**अंजन, अमरन, चीर, चारू, बरू नेक आप तन कीजै। दंड, कमंडल, भरम, अधारी जो जुबतिन को दीजै।।**
**सूर देखि दृढ़ता गोपिन की ऊधो यह ब्रत पायो। कहैं 'कृपानिधि हो कृपाल हो' प्रेमै पढ़न पठायों।।४१।।**

**शब्दार्थः** केलि=क्रीडाएँ। बिदूखी=दुःखी। काहि=किस। जोग=योग्य। वा=उस। बाँवरे=पगले। अमरन=आभरण, आभूषण। चीर=वस्त्र। चारू=सुन्दर। जुबतिन=युवतियाँ। प्रेमै=प्रेम को ही। पुर=मथुरा।

**प्रसंगः** उद्धव के ज्ञानोपदेश को सुनकर गोपियाँ अत्यन्त खिन्न हैं। उन्हें तो उद्धव से श्रीकृष्ण के ब्रज–आगमन के संदेश की आशा

थी किन्तु उन्होंने अन्य अर्थात् निर्गुण–ब्रह्म की साधना करने का संदेश सुनाया। गोपियाँ निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने में असमर्थ हैं। वे कृष्ण को नहीं त्याग सकतीं। इस पद में गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि

**व्याख्याः** हम तो श्रीकृष्ण के साथ पहले जैसी क्रीडाएँ करने के लिए लालायित हैं, भूखी हैं। हम कृष्ण के विरह में व्यथित विरहिणी नारियाँ है, हम किस प्रकार तुम्हारे निर्गुण–ब्रह्म के उपदेश को सुन सकती हैं। तुम्हें इस बात का ज्ञान नहीं कि हम जैसी कृष्ण–प्रेम–विरह में संतप्त अबलाओं के साथ किस प्रकार की बातें करनी चाहिए। तुम्हारा कर्त्तव्य था कि तुम हमें सान्त्वना देते कृष्ण–आगमन की घड़ी का निर्देश करते, उल्टा तुम हमें योग की शिक्षा देने लगे। तुम्हें इस बात का भी ज्ञान नहीं कि तुम्हारे योग के योग्य पात्र कौन है? अर्थात् तुम विरहिणियों को निर्गुण ब्रह्म की साधना करने का उपदेश दे रहे हो, जो अनुचित है क्योंकि योग–साधना तो योगियों के लिए ही उचित है, वे ही इसके योग्य हैं, हम अबला नारियाँ तो नंदनन्दन के प्रेम के लिए ही हैं। तुम इन सब बातों पर ध्यान न देकर, योग का उपदेश देकर हम पर अन्याय कर रहे हो। हम तुम्हारे पाँव पड़ती हैं हमसे इस प्रकार की बातें न करों, इसमें हमें दुःख होता है। तुम्हें देखकर हमे लगता है कि उस मथुरा नगरी में सभी बावले अनाड़ी लोग ही निवास करते हैं कृष्ण भी इस बात के प्रमाण हैं क्योंकि उन्होंने तुम्हारे हाथों हम अबला नारियों के लिए ऐसा अनुचित संदेश भेजा है।

यदि तुम्हारे मत में हम युवतियों को दंड कमण्डल, भस्म, अधारी आदि योग–साधना के उपकरण धारण करने उचित हैं तो तुम अपने शरीर पर तनिक हमारा अंजन, आभूषण, सुन्दर वस्त्र धारण करके तो देखो, क्या ये तुम्हें शोभा देते हैं और तुम्हारे लिए उचित है? जिस प्रकार हमारे ये शृंगार–प्रसाधन तुम्हारे लिए अनुपयुक्त हैं, उसी प्रकार योग से सम्बद्ध सभी उपकरण हमारे लिए अनुपयुक्त हैं।

सूरदास जी कहते हैं कि गोपियों की इस प्रकार की प्रेम की दृढ़ता और अनन्यता को देखकर उद्धव को यह विश्वास हो गया कि कृपालु और दयानिधि श्री कृष्ण ने उन्हें यहाँ ब्रज में गोपियों को योग का उपदेश देने के लिए न भेजकर, उनसे प्रेम का पाठ ग्रहण करने के लिए भेजा है।

**विशेषः–**

1. पुष्टिमार्गीय भक्ति के अनुकूल गोपियों की 'लीलारुचि' का वर्णन है।
2. योग और ज्ञान पर होनेवाली प्रेम और भक्ति की विजय का पूर्वाभास अन्तिम पंक्ति में ध्वनित हो रहा है।
3. मुक्तक शैली–प्रयोग।
4. ब्रजभाषा का प्रयोग।
5. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति।
6. विप्रलम्भ शृगांर का वर्णन।
7. 'काहि जोग है जोग' में यमक अलंकार है।

**।। 42 ।।**

**अँखिया हरि दरसन की भूखी। कैसे रहैं रूप राँची ये बतियाँ सुनि रूखी।**
**अवधि गनत इक टक मग जोवत तब एती नहिं झूखी। अब इत जोग–संदेशन ऊधौ अति अकुलानी दूखी।।**
**बारक वह मुख फेरि दिखाओ, दुहि पय पिवत पतूखी। सूर सिकत हठि नाव चलाओ ये सरिता है सूखी।।४२।।**

**शब्दार्थः** दरसन=दर्शन। रूप रस राँची=रूप के रस में पानी हुई। बतियाँ=बातें। रूखी=शुष्क। गनत=गिनते हुए। इक टक=बिना पलक झपकते। मग जोवत=राह देख रही हैं। झूखी=दुःखी हुई। बारक=एक बार। फेरि=पुनः। पय=दूध। पतूखी=पत्ते का दोना। सिकत=रेत। हठ=जिद।

**प्रसंगः** उद्धव के लगातार ज्ञानोपदेश देने के कारण गोपियाँ अत्यन्त खिन्न हैं। उन्हें उद्धव से तो श्री कृष्ण के प्रेमरसपूर्ण संदेश की आशा थी किन्तु वहाँ से अन्य संदेश ही मिला। गोपियाँ तो कृष्ण के क्रीड़ा–विहार के लिए लालायित हैं। कृष्ण के प्रेम के विरह में संतप्त गोपियों के लिए योग–ज्ञान किसी काम का नहीं, व्यर्थ है। उनकी अखियाँ कृष्ण के दर्शन की प्यासी हैं। वे उद्धव से कहती हैं कि–

**व्याख्याः** हमारी आँखे तो कृष्ण के दर्शनों की प्यासी हैं। हमारी ये आँखे कृष्ण के रूप और रस मे पगी हुई हैं। उनमें पूर्णयता अनुरक्त हैं। अतः ये किस प्रकार तुम्हारी इन नीरस योग की बातें सुनकर धैर्य धारण कर सकती हैं? जब ये आँखे कृष्ण के लौटकर आने की अवधि के एक–एक दिन की गणना करती हुई मार्ग की ओर बिना पलक झपकाए निहारती थीं, तब भी वे इतनी संतप्त

और दुःखी नहीं हुई, अब तुम्हारे योग के नीरस और व्यर्थ संदेशो को सुनकर अत्यधिक संतप्त और अकुलाई हुई हैं। अब हमारी तुमसे केवल यही प्रार्थना है कि हमें कृष्ण के उस मुख के दर्शन एक बार फिर करवा दो जिससे वह पत्ते के दोनों में दूध दुहकर पान किया करता थे। तुम्हारा हमें योग का उपदेश देना वैसा असम्भव कार्य करने का प्रयत्न करता है जैसा सूखी हुई नदी की बालू में हठपूर्वक नाव चलाने का प्रयत्न करना। कृष्ण–प्रेम में अनुरक्त हमारे हृदयों पर तुम्हारे योग का कोई प्रभाव पड़नेवाला नहीं।

**विशेषः–**

1. इस पद में वल्लभ–सम्प्रदाय की पुष्टिमार्गीय विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव है। रागानुगा भक्ति में उपास्य के रूप और रस का विशेष महत्त्व होता है। यहाँ कृष्ण का रूप और उससे जन्य प्रेमरस ही गोपियों को प्रिय है, अतः योग–उपदेश और निर्गुण–ब्रह्म की साधना उनके लिए व्यर्थ है।
2. सूखी नदी की बालू में नाव चलाने का उदाहरण देकर निर्गुण ब्रह्म की असम्भाव्यता प्रदर्शित करते हुए उसका निराकरण किया गया है।
3. कृष्ण की विभिन्न चेष्टाओं, छवियों की व्यंजना के साथ–साथ विकल्प चिंता, उन्माद आदि संचारी भावों का भी मार्मिक चित्रण प्रस्तुत हुआ है।
4. विप्रलम्भ शृगांर अपने पूर्ण परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत है– मूलभाव रति, आलम्बन कृष्ण आश्रय गोपियाँ, उद्दीपन उद्धव का ज्ञानोपदेश।
5. ब्रज भाषा का प्रयोग।
6. मुक्तक शैली।
7. सुन्दर भाव–अभिव्यंजना।
8. सरल शब्दों का अनुपम प्रयोग।
9. गोपियों की वाक्पटुता–चित्रण।
10. 'बारक... पतूखी' में संस्मरण अलंकार।
11. 'सूर.....सूखी' में निदर्शना अलंकार।
12. 'ये सरिता है सूखी' में रूपकातिशयोक्ति अलंकार।

**।। 43 ।।**

**जाय कहौ बूझी कुसलात। जाके ज्ञान न होय सो मानै कही तिहारी बात।।**
**कारे नाम, रूप पुनि कारो, कारे अंग सखा सब गात। जौ पै भले होत कहुँ कारे तौ कत वदलि सुता लै जात।।**
**हमको जोग, भोग कुबजा को काके हिये समात? सूरदास सेए सो पति के पाले जिन्ह तेही, पछितात।।४३।।**

**शब्दार्थः** बूझी=पूछी। कुसलात=कुशल–क्षेम। जाके=जिसके। तिहारी=तुम्हारी। कारो=काला। गात=शरीर। कत=क्यों। सुता=लड़की। काके=किसके। हिये=हृदय। समात=विश्वास होना। सेए=सेवा की। पाले=पालन किया। पछितात=पश्चाताप।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश सूरदास कृत 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। उद्धव के ज्ञानोपदेश पर गोपियाँ अत्यन्त खिन्न हैं। वे तो कृष्ण की रूपमाधुरी में इतनी पगी हुई हैं कि उन्हें त्यागना बिल्कुल असम्भव है और फिर वे अबला नारियाँ हैं। योगियों से सम्बद्ध क्रियाएँ भी अत्यन्त दुष्कर हैं, वे किस प्रकार उन्हें कार्यान्वित कर सकती हैं। उन्हें ज्ञान का उपदेश देना तो सूखी नदी की बालू पर नाव चलाने के समान समय नष्ट करना है। अतः वे मथुरा लौट जाएं और कृष्ण से कहें कि वह गोपियों का कुशल–क्षेम पूछ आए हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ क्षुब्ध होकर कहती हैं, हे उद्धव! तुम मथुरा वापिस चले जाओ और कृष्ण से कहो कि हमने उनकी कुशल–क्षेम पुछवा भेजी है। हमारा समाचार देने के उपरान्त उनसे यह कहना कि तुम्हारे योग–मार्ग को अपना लेने का संदेश वही मान सकता है जो सर्वथा अज्ञानी होगा। कृष्ण का नाम काला अर्थात् श्याम है फिर रंग एवं स्वरूप भी काला है। उनके सारे सखाओं–अक्रूर, उद्धव आदि के शरीर का समस्त अंग भी श्याम है। इस प्रकार कृष्ण स्वयं और उनके सब मित्र तन–मन से काले अर्थात् कपटी हैं। यदि ये काले वर्ण कपटी और धोखेबाज न होकर अच्छे होते तो वसुदेव अपने पुत्र श्यामवर्ण कृष्ण को यहाँ छोड़ उसके बदले में नन्दबाबा की लड़की को न ले जाते। काले वर्णवाले बुरे होते हैं, तभी तो वसुदेव ने काले कृष्ण को यहाँ छोडकर उससे पीछा छुड़ा लिया था। तुम सब काले लोग इतने दुष्ट हो कि नारी–नारी में भी अन्तर करते हो। हम गोपियों के लिए तो योग–साधना उचित बताते हो और कुब्जा के लिए भोग। तुम्हारी यह विलक्षण गति किसके हृदय में समानेवाली है? यह तुम्हारा सरासर अन्याय है। किसी की समझ में भी नहीं आनेवाला। कृष्ण के इस प्रकार छल–कपट भरे व्यवहार, पर पति के तुल्य उन्हें स्वीकार करनेवाली हम गोपियाँ नहीं पछताती अपितु पुत्र तुल्य मानते हुए उनका भरण पोषण करनेवाले नन्द–यशोदा भी पछताते हैं।

**विशेषः–**

1. गोपियाँ काले वर्णवाले सभी लोगों पर व्यंग्य करती हुई उन्हें छली और कपटी बता रही हैं। श्याम वर्णी, उद्धव, अक्रूर आदि पर इससे पूर्व भी वे व्यंग्य कर चुकी हैं।

**बिलग जनि मानहु ऊधौ प्यारे। वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहि ते कारे।**
**तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे मधुप मँवारे। तिनके संग अधिक छवि उपजत कमलनैन मनिआरे।**
**मानहु नील माट तें काढ़े लै जमुना ज्यों पखारे। तागुन स्याम भई कालिंदी सूर स्याम गुन–न्यारे।**

2. नंददास की गोपियों ने भी इसी प्रकार काले वर्णवाले श्याम और उनके मित्रों पर गहन व्यंग्य किया है।
**'कोउ कहै री विस्व माँझ जेते है कारे,कपट कुटिल कौ कीट परम मानुष मसि हारे।**
**एक स्याम तन परम कै जरत आज लौं अंग, ता पाछै यह मधुप ह् लायों जोग भुजंग।**
3. कृष्ण के जन्म होते ही वसुदेव आधी रात को चुपचाप कृष्ण को गोकुल छोड़ गए थे और वहाँ से नंद की अन्य पत्नी रोहिणी की नवजात कन्या को लेकर मथुरा चले गए थे। यह कन्या कंस द्वारा वध कर दी गई थी। कंस द्वारा कृष्ण के मार दिए जाने का भय था। इसी कारण वस्तुतः नवजात शिशुओं की अदला–बदली हुई थी क्योंकि भविष्यवाणी के अनुसार कृष्ण द्वारा ही कंस की हत्या होनी थी।
4. ब्रजभाषा का प्रयोग
5. गोपियों की वाक्पटुता का चित्रण।
6. सूक्ष्म भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति।
7. तद्भव शब्दों का आकर्षक चयन।
8. अनुप्रास अलंकार की छटा।
9. सुन्दर गेयता–लयात्मकता।
10. जोग और भोग में शब्द मैत्री है।

**।। 44 ।।**

**कहाँ लौ कीजै बहुत बढ़ाई। अतिहि अगाध अपार अगोचर मनसा तहाँ न जाई।**
**जल बिनु तरंग, भीति बिनु चित्रन, बिन चित ही चतुराई। अब ब्रज में अनरीति कछु यह उधौ आनि चलाई।**
**रूप न रेख, बदन बपु जाके संग न सखा सहाई। ता निर्गुन सो प्रीति निरंतर क्यों निबहै, री माई।।**
**मन चुभि रही माधुरी मूरति रोम–रोम अरुआई। हौं बलि गई सूर प्रभु ताके जाके स्याम सदा सुखदाई।।४४।।**

**शब्दार्थः** लौ=तक। अतिहि=बहुत ज्यादा। अगोचर=न दिखाई देनेवाला। मनसा=मन। तरंग=लहर। भीति=दीवार, आधार। अनरीति=अनोखी। बपु=शरीर। बदन=मुख। निबहै=निर्वाह हो। माधुरी=सुन्दर। ताके=जिनके।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पंक्तियाँ सूरदास कृत 'भ्रमरगीत' से उद्धृत है। इस पद्यांश में गोपियाँ, उद्धव के ज्ञानोपदेश से अत्यन्त खिन्न हैं। उद्धव के निर्गुण ब्रह्म की अपेक्षा उन्हें कृष्ण का मनोहर रूप अधिक प्रिय है। उन्हें अपने प्रेममार्ग पर भी गर्व है। निर्गुण ब्रह्म पर उनका व्यंग्य जारी है।

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती है, हे उद्धव! तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म की प्रशंसा कहाँ तक करें? उसके सम्बन्ध में तुम्हारी उक्तियाँ अत्यन्त विचित्र है। तुम्हारे मन में तुम्हारा निर्गुण–ब्रह्म अत्यधिक अगाध, अपार और न दिखाई देनेवाला है। वह इतना अगम्य है कि मानव-मन भी उस तक नहीं पहुँच सकता। वह मन की पहुँच कल्पना से परे है। तुम्हारा यह निर्गुण–सम्प्रदाय अति विचित्र है। क्योंकि इसमें अपेक्षित उपादानों के बिना ही वस्तुएँ निर्मित हो जाती हैं। इसमें बिना जल के तरंगें उत्पन्न होती है, बिना भीति (दीवार अथवा कोई अन्य आधार) के चित्रों का अंकन होता है। यहाँ चित्र के बिना ही चतुराई प्रदर्शित की जाती है। तुमने यहाँ ब्रज में आकर इस प्रकार की अनोखी रीति लगाई है। तुम असम्भव और अनहोनी बातें कहकर हमें बहला रहे हो और अपने जाल में फँसाना चाहते हो। तुम्हारे ब्रह्म की न तो कोई रूपरेखा है अर्थात् आकार है। न उसका कोई मुख और न ही कोई शरीर है। उसके साथ न तो कोई मित्र है और न कोई सहायक ही है। ऐसी स्थिति में तुम ही हमें बताओ कि उक्त विशषताओं से सम्पन्न तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म के साथ हमारा निरन्तर प्रेम–निर्वाह किस प्रकार हो सकता है। हमारे कृष्ण रूप–गुण सम्पन्न है, इसलिए उनके साथ हमारा निरन्तर प्रेम–व्यापार चलता रहा है। हमारे मन मे तो कृष्ण की मधुर एवं रूपहली मूर्ति घर कर गई है, वह मोहिनी मूर्ति हमार रोम–रोम में समाई रहती है। हम तो सदा कृष्ण की माधुर्यपूर्ण मोहिनी मूर्ति के ध्यान में मस्त रहती हैं। हम उन जनों पर बलिहारी जाती हैं। जिनके लिए हमारे प्रभु कृष्ण सदा सुखदाई हैं। हम कृष्ण–प्रेमियों पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को उद्यत है।

**विशेषः–**

1. 'री माई' शब्द यहाँ विशेष अर्थ की व्यंजना न करके केवल गोपियों की आश्चर्य–भावना को व्यक्त किया गया है
2. इस पद में सूरदास ने शंकराचार्य के 'वेदांत–अद्वैतवाद का निरूपण कर उसका खंडन करते हुए वल्लभाचार्य के 'उपादानवाद' और अपने परिणामवाद की स्थापना की है।
3. 'जल बिनु तंरग, भीति बिनु चित्रन, बिनु चित ही चतुराई', में अभिव्यक्त शुद्धाद्वैत का प्रतिपादन तुलसी की निम्न पंक्तियों में भी मिलता है–

**'केशव कहि न जाय का कहिए? शून्य भिति पर चित्र रंग नहि तन बिन लिखा चितेरे।**

4. सूर ने 'सूरसागर' के आरम्भ में ब्रह्म के निर्गुण रूप को ही प्रधानता दी है। किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से सगुण रूप को ग्राह्य स्वीकार करते हुए कहा है–

**'रूप रेख गुन जाति जुगुति बिन निरालम्ब मन चक्र धावै। सब विधि अगम विचारहि ताते सूर सगुन लीला पद गावै।**

5. 'जल बिनु तरंग..... चतुराई...आदि पंक्तियों में प्रयुक्त निर्गुण ब्रह्म की विशेषताएँ ज्ञानवादियों के प्रमुख अस्त्र हैं।
6. मुक्त शैली।
7. सुन्दर लयात्मकता गेयता।
8. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
9. आकर्षक भाव–अभिव्यंजना।
10. 'अतिहि अगाध अपार अगोचर' में वृत्यानुप्रास अलंकार।
11. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम शब्दों का सुन्दर योग।

**।। 45 ।।**

**काहे को गोपीनाथ कहावत? जो पै मधुकर कहत हमारे गोकुल काहे न आवत?**
**सपने की पहिचानि जानि कै हमहिं कलंक लगावत। जो पै स्याम कूबरी रीझे सो बिन नाम धरावत?**
**ज्यों गजराज काज के औसर औरे दसन दिखावत। कहन सुनन को हम हैं ऊधो सूर अनत बिरमावत।।४५।।**

**शब्दार्थः** काहे को = किसलिए। काहे न = क्यों नहीं। आवत = आते। कूबरी = कुबड़ी, कुब्जा। किन = क्यों नहीं। धरावत = रखते। औसत = अवसर। औरे = और। दसन = दाँत। अनत = अन्यत्र, और नहीं। बिरमावत = विश्राम करते हैं।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पंक्तियाँ सूरदास कृत 'भ्रमरगीत' से ली गई हैं। कृष्ण मथुरा जाकर गोपियों को भुला बैठे हैं, उन्हें गोपियों के साथ किया केलि–विहार विस्मृत है। वहाँ जाकर वह कुब्जा के प्रेम में फँस गए हैं। अब वह कुब्जा से विवाह करके वहीं आनन्द विहार कर रहे हैं फिर भी उन्हें गोपीनाथ कहा जाता है। गोपियाँ असूयाभाव से भरकर इस बात पर व्यंग्य करती हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ क्षुब्ध होकर कृष्ण के प्रेम में कहती हैं कि कृष्ण अब भी स्वयं को 'गोपीनाथ' क्यों कहलवाते हैं? जबकि अब इस नाम में कोई तथ्य नहीं रहा क्योंकि वह मथुरा जाकर हमें भुला बैठे हैं। हे मधुकर! यदि वह अभी भी हमारे स्वामी कहलाते हैं तो मथुरा से लौटकर गोकुल क्यों नहीं चले आते? एक ओर तो हमारे साथ स्वप्न के समान, अत्यन्त थोड़ा परिचय बताते हैं, और फिर स्वयं को 'गोपीनाथ' भी कहलवाते हैं। इस प्रकार वह परोक्षरूप से हम पर कलंक लगा रहे हैं। यदि श्यामसुन्दर उस कुबड़ी दासी कुब्जा पर ही रीझ गए हैं तो उसी के नाम पर अपना नाथ 'कुब्जानाथ' अथवा 'कुब्जापति' ही क्यों नहीं रख लेते? उनके 'गोपनीय' नाम पर सारा संसार हमें कलंकिनी समझ रहा है जबकि उनका–हमारा अब कोई साथ नहीं रहा। अब तो वह कुब्जा पर ही मोहित हैं और उनके साथ मथुरा में रहते हैं। इस प्रकार का उनका कार्य उसी प्रकार है जिस प्रकार कि हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और होते हैं। अर्थात् कृष्ण की कथनी और करनी में पर्याप्त अन्तर है। कहने–सुनने के लिए हम उनकी प्रेमिकाएँ हैं और वे हमारे स्वामी होने के कारण 'गोपनीय' भी कहलाते हैं। किन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि वह हमारे प्रियतम न होकर कुब्जा के प्रेम में फँसे हुए हैं और आजकल उसी के साथ मथुरा में विश्राम कर रहे हैं।

**विशेषः–**

1. यहाँ 'गोपीनाथ' शब्द का प्रयोग करके गोपियाँ कृष्ण के कपट, छल एवं निष्ठुरता पर मार्मिक व्यंग्य कर रही हैं। इससे कुब्जा के प्रति उनका असूयाभाव प्रकट होता है अतः यहाँ असूया संचारी भाव प्रधान है। कृष्ण को 'गोपीनाथ' कहाने के संदेश को व्यंजना अन्य कवियों ने भी की है। इस दृष्टि से बंगला के प्रसिद्ध कवि चंडीदास की पंक्तियाँ दर्शनीय हैं–

   **'यतेक तो मारे पिरीत करूकते मन पिरीत हबेना। राधानाथ बिने कुब्जार केहत लोमारेकबेना।।**

2. 'सपने की पहियानि' तथा 'गजराज काज के औसर' और 'दसन दिखावत' – मुहावरों के प्रयोग से भाषा की व्यंजना–शक्ति में वृद्धि हुई है।
3. प्रभावी व्यंग्य योजना।
4. कृष्ण के प्रति अनूठा प्रेम–भाव।
5. मुक्तक शैली।
6. सुन्दर गेयता – लयात्मकता।
7. ब्रजभाषा प्रयोग।
8. सूक्ष्म भावों की सहज अभिव्यक्ति।
9. प्रसाद–माधुर्य गुणसम्पन्न शैली।
10. 'औसर औरे दसन दिखावत' में अनुप्रास अलंकार।
11. 'ज्यो गजराज ..... दिखावत' में दृष्टान्त अलंकार।

**।। 46 ।।**

**अब कत सुरति होति है, राजन? दिन दस प्रीति करी स्वारथ हित राहत आपने काजन।।**
**सबै अयानि भई सुनि मुरली ठगी कपट की छाजन। अब मन भयो सिंधु के खग ज्यों फिरि फिरि सरत जहाजन।।**
**वह नातो टूटो ता दिन ते सुफलकसुत संग भाजन। गोपीनाथ कहाय सूर प्रभु कत मारत हौ लालन।।४६।।**

**शब्दार्थः** कत = किस प्रकार। सुरति = स्मृति। प्रीति = प्रेम। काजन = कार्य के लिए। अयानि = अज्ञानि। छाजन = कपटपूर्ण व्यवहार। सिंधु = समुद्र। खग = पक्षी। सरत = बढ़ता है। सुफलकसुत = अक्रूर जी। भाजन = भाग गए, चले गए, प्रस्थान कर गए। कत = क्यों।

**प्रसंगः** प्रस्तुत भावपूर्ण पंक्तियाँ सूरदास के 'भ्रमरगीत' से ली गई हैं। उद्धव के माध्यम से कृष्ण द्वारा भेजे गए योग संदेश से गोपियाँ अत्यन्त खिन्न हैं कुब्जा के प्रति उनका असूया भाव अब भी जारी है। वे कृष्ण पर व्यंग्य करती हुई उद्धव से कह रही हैं कि अब उन्हें हमारी सुधि किस प्रकार आती होगी। वस्तुतः वह कृष्ण के विश्वासघात पर अत्यन्त दुखी हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव! अब कृष्ण को हमारी सुधि किस प्रकार आती होगी? अब वह मथुरा के राजा बन गए हैं, और कुब्जा उनकी रानी है। उनके सानिध्य में अब उन्हें हमारा अभाव क्या खटकता होगा। उन्होंने अपने स्वार्थवश हमें दिन अर्थात् थोड़े समय के लिए हमसे प्रेम बढ़ाया गया था। किन्तु अब राजा बन जाने के कारण राज–काज में ही समय निकल जाता होगा। अब उन्हें हमारी स्मृति किस प्रकार आती होगी। कृष्ण की बंसी की मादक स्वर–लहरी को सुनकर हम सब उस समय अज्ञानी हो गई थीं और उसके प्रभाव में तन–मन खो बैठी। उन्होंने तो वस्तुतः प्रेम का ढोंग रचा था किन्तु हम इस सत्य को समझकर अपनी सुध–बुध खो बैठी और इस प्रकार उनके चुंगल में फँस गई। अब तो हमारा मन जहाज के उस पंछी के समान हो गया है जो अन्यत्र कोई ठौर प्राप्त नहीं कर पाने के कारण पुनः जहाज पर लौट आता है। हमारे मन को अब कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान पर आश्रय, सुख–संतोष नहीं मिलता, इसी कारण हमारा ध्यान उन्हीं की ओर जाता है। कृष्ण से हमारा प्रेम का नाता तो उसी दिन टूट गया था जिस दिन वह हमें अकेला, निराधार छोड़कर अक्रूर जी के साथ स्वयं मथुरा चले गए थे। अब तो हमें इस बात का दुःख है कि हमसे स्नेह का रिश्ता तोड़ जाने पर भी अभी तक वह 'गोपीनाथ' बने हुए हैं जिससे सारा संसार हमें लांछित कर रहा है और हम लाज से मरी जा रही हैं।

**विशेषः–**

1. 'गोपीनाथ' शब्द का प्रयोग पूर्व प्रसंग में भी हुआ है। इस शब्द के माध्यम से गोपियाँ कृष्ण के कपट–पूर्ण और निष्ठुरता पर गहरा व्यंग्य कर रही हैं।
2. कृष्ण–प्रेम का अनूठा रूप।
3. गम्भीर व्यंग्य।
4. मुक्तक शैली।
5. सूक्ष्म भावों की प्रभावी अभिव्यंजना।
6. ब्रजभाषा–प्रयोग।
7. माधुर्य प्रसाद गुणसम्पन्न शैली।
8. सुन्दर गेयता।
9. सुन्दर शब्द योजना।
10. 'फिर फिर' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार।
11. 'कपट की छाजन' अत्यन्त सुन्दर मुहावरा है इसके प्रयोग से भाषा की व्यंजना–शक्ति बढ़ी है।

10. 'अब मन..... सरत जहाजन' – जैसा भाव सूर के एक अन्य विनय पद में उपलब्ध होता है।

**'मेरो मन अनत कहाँ सचु पावै? जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरी जहाज पर आवै।''**

**।। 47 ।।**

**लिखि आई ब्रजनाथ की छाप। बाँधे फिरत सीस पर ऊधो देखत आवै ताप।।**
**नूतन रीति नंद नंदन की धरधर दीजत थाप। हरि आगे कुब्जा अधिकारी ताते है यह दाप।।**
**आए कहन जोग अवराधो अविगत कथा को जाप। सूर संदेशो सुनि नहिं लागै कहौ कौन को पाप।।४७।।**

**शब्दार्थः** छाप = चिन्ह, मनोहर, चिट्ठी पत्र। ताप = ज्वर। नूतन = नवीन। थाप = स्थापित करना, थोपना। आगे = बढ़कर अधिक। ताते = इसी कारण। दाप = दर्प, घमंड। अवराधो = आराधना, साधना करो। अविगत = निराकार ब्रह्म।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पंक्तियाँ 'भ्रमरगीत' से ली गई हैं। इनके रचयिता सूरदास हैं। इनमें सूरदास ने गोपियों के द्वारा कृष्ण और कुब्जा पर व्यंग्य भाव को निरूपित किया है। गोपियों का कृष्ण एवं कुब्जा दोनों पर व्यंग्य करना जारी है। पहले उन्हें संदेह था कि निर्गुण–ब्रह्म की आराधना करने का संदेश कृष्ण ने नहीं भेजा, बल्कि उद्धव से प्राप्त पत्र पर कृष्ण की मुद्रा की छाप देखकर उन्हें विश्वास करना पड़ा। इसी संदर्भ को लेकर व्यंग्य भाव को दर्शाते हुए कवि ने कहा है–

**व्याख्याः** सूरदास ने गोपियों के माध्यम से कहा है कि अरे देखो ब्रजनाथ के हाथों का लिख हुआ पत्र आया है जिस पर उनकी मुद्रा का चिह्न भी अंकित है। इस प्रकार इस उद्धव बिचारे का दोष नहीं, योग का संदेश वस्तुतः कृष्ण ने हमारे लिए भेजा है। उद्धव अपनी ओर से कुछ नहीं कह रहे। उद्धव इस पत्र की सुरक्षा के कारण इसे अपनी पगड़ी में खोंसे फिरते हैं जिसे देखकर इन्हें क्रोध और क्षोभ के कारण ज्वर आने लगता है। यह कृष्ण की संदेश देने की नवीन नीति है। उनकी आज्ञानुसार ही तो उद्धव घर–घर में इस पत्र में निहित सन्देश की स्थापना कर रहे हैं। अर्थात् सभी को कृष्ण को भुलाकर निर्गुण–ब्रह्म की आराधना करने की भी दिशा दे रहे हैं।

इस प्रकार प्रतीत होता है कि मथुरा में सभी कार्यों में कृष्ण की कुछ नहीं चलती, सर्वत्र कुब्जा का आदेश चलता है और उसके अधिकार कृष्ण से भी अधिक हैं। इसी कारण तो उसे इतना घमण्ड हो गया है कि उसने कृष्ण से चोरी करके इस पत्र पर उनकी मोहर छापकर इसे प्रामाणिक बना दिया है। वस्तुतः वह कृष्ण को अपने में ही सीमित करना चाहती है। कहने का भाव यह है कि इस पत्र पर मोहर कृष्ण द्वारा न लगाई जाकर कुब्जा द्वारा लगाई गई है। इस प्रकार यह कुब्जा द्वारा हमें भेजा गया संदेश है। कुब्जा हमें अन्य राह पर डालकर कृष्ण का स्वयं अकेले ही भोग करना चाहती है, तभी तो उद्धव उसके संकेत पर यहाँ आए हैं और हमें निर्गुण अगम्य ब्रह्म की कथा सुनाकर योग–साधना के बल पर उसे प्राप्त करने की शिक्षा दे रहे हैं। इस अनुचित, अनर्गल संदेश को सुनने में बताओ, किसको पाप नहीं लगेगा हम गोपियाँ एकमात्र कृष्ण की ही अनुरागिनी हैं। कृष्ण को त्यागकर निर्गुण–ब्रह्म की उपासना करने में हमें पाप लगता है। यह भारतीय नारी के पतिव्रत्य धर्म के अनुकूल है। हम कृष्ण की सच्ची प्रेमिकाओं के लिए अपने प्रियतम कृष्ण को त्याग किसी अन्य से प्रेम करना अथवा उसका ध्यान करना निश्चय ही पापाचार है।

**विशेषः–**

1. कुब्जा के प्रति गोपियों के असूया भाव की व्यंजना की गई है।
2. सूरदास ने गोपियों के प्रेम में स्वकीया और परकीया दोनों प्रेम–पद्धतियों का सम्मिश्रण कर उसे अधिक गहन एवं एकनिष्ठ बना दिया है।
3. प्रभावी व्यंग्य योजना देखने में आई है।
4. मुक्तक शैली का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
5. कृष्ण के प्रति–अनूठा प्रेम–भाव उमड़ पड़ा है।
6. पंक्तियों में सुन्दर गेयता–लयात्मकता है।
7. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
8. सूक्ष्म भावों की सहज अभिव्यक्ति हुई है।
9. प्रसाद–माधुर्य गुणसम्पन्न शैली का प्रयोग हुआ है।

**।। 48 ।।**

**फिरि फिरि कहा सिखावत बात? प्रातकाल उठि देखत, ऊधो घर घर माखन खात।**
**जाकी बात कहत हौ हमसों सो है हमसों दूरि। ह्याँ है निकट जसोदानन्दन प्रान–सजीवन मूरि।**
**बालक संग लये दधि चोरत खात खवावत डोलत। सूर सीस सुनि चौंकत नावहिं अब काहे न मुख बोलत।।४८।।**

**शब्दार्थः** ह्याँ = यहाँ। प्रान–संजीवनमूरि = संजीवनी बूटी के समान प्राण एवं जीवन का संचार करनेवाली। लए = लिए हुए। दधि = दही। खवावत = खिलाता हुआ। डोलत = घूमता–फिरता है। सीस नवावहिं = सिर को झुका लेते हों।

**प्रसंगः** सूरदास कहते हैं कि उद्धव के ज्ञानोपदेश पर गोपियाँ अत्यन्त क्षुब्ध हैं। उन्होंने क्रमशः निर्गुण–ब्रह्म का विरोध करते हुए अपने प्रेम–मार्ग की श्रेष्ठता की घोषणा की है। फिर भी उद्धव हार नहीं मानते और ज्ञानोपदेश दिए जा रहे हैं। इस पर गोपियाँ उन्हें खरी–खोटी सुनाने पर उतारू हो जाती हैं?

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव! तुम हमें बार–बार निर्गुण–ब्रह्म की साधना का उपदेश क्यों दे रहे हो? यह वस्तुतः तुम्हारा व्यर्थ का प्रयास है क्योंकि हमारे जीवन में कृष्ण इतने अधिक गहरे बैठ गए हैं कि हमारे लिए उन्हें भुला पाना अत्यन्त कठिन है। हम यहाँ ब्रज में नित्य प्रातः उठकर उन्हें घर–घर मक्खन खाते हुए देखती हैं। तुम जिस निर्गुण ब्रह्म की आराधना करने के लिए हमसे कह रहे हो वह हमसे बहुत दूर है। हमारी पहुँच से परे है जबकि संजीवनी बूटी के समान जीवन–संचार के लिए यशोदा–नन्दन श्रीकृष्ण यहाँ ब्रज में हमारे निकट निवास करते हैं। हमें वह आज भी ग्वाल बालों को साथ लिए दही चुराते हुए, कुछ स्वयं खाते और कुछ दूसरों को खिलाते हुए घूमते–फिरते दिखाई देते हैं। जब हम उन्हें चोरी करते हुए रंगे हाथों पकड

लेती हैं, तो वह चौंककर लज्जित होकर सिर झुकाकर चुपचाप खड़े हो जाते हैं और हमारी डाँट–फटकार का कुछ भी उत्तर नहीं देत

**विशेषः–**

1. गोपियों का उद्धव से विचित्र वार्तालाप कि हे उद्धव ! तुम हमारी इन बातों को सुनकर सिर नीचा किए क्या बैठ गए हो। स्तब्ध क्यों हो गए हो? कुछ बोलो, हमें निर्गुण–ब्रह्म का उपदेश।
2. कृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य प्रेम की व्यंजना हुई है। गोपियों को कृष्ण की उपस्थिति का भास होता रहता है और वे उनकी प्रचलित लीलाओं को स्मरण करके आत्मविस्मृत होती रहती हैं। स्मृति द्वारा प्रत्यक्ष का अनुभव करना एकान्त प्रेम–निष्ठा का प्रतीक है।
3. उद्धव ने भी ब्रज में गोपियों के समान कृष्ण की उपस्थिति को अनुभव किया था। ब्रज से लौटकर उन्होंने कृष्ण के सम्मुख स्पष्ट शब्दों में इस बात का उल्लेख किया है।
4. ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है।
5. सूक्ष्म भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।
6. मुक्तक शैली की छटा देखी जा सकती है।
7. गोपियों की वाक्पटुता का चित्रण है।
8. सुन्दर भाव अभिव्यंजना है।
9. संगीतात्मकता का प्रभाव।
10. भावानुसार भाषा का प्रयोग हुआ है।

**।। 49 ।।**

**अपने सगुन गौपालै, माई ! यहि विधि काहे देत? ऊधो की ये निरगुन बातैं मीठी कैसे लेत?**
**धर्म, अधर्म कामना सुनावत सुख औ मुक्ति समेत। काकी भूख गई मन लाडू सो देखहु चित चेत।**
**सूर स्याम तजि को भुस फटकै मधुप तिहारे हेत?।।४६।।**

**शब्दार्थः** मीठी कैसे लेत = स्वीकार कर ग्रहण करें। तजि = छोड़कर। भुस फटकै = व्यर्थ परिश्रम करे। तिहारे हेत = तुम्हारे लिए।

**प्रसंगः** सूरदास ने प्रस्तुत पंक्तियों को उद्धव और गोपियों के मध्य व्यंग्य भाव को स्पष्ट करते हुए कहा है कि गोपियां अनेक बार अपने मार्ग को उद्धव के ज्ञान–मार्ग से श्रेष्ठ घोषित कर चुकी हैं। प्रस्तुत पद में वे पुनः निर्गुण–ब्रह्म से सगुण ब्रह्म की श्रेष्ठता प्रमाणित कर रही हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ आपस में बातचीत कर रही हैं। एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है कि हे सखी! हम अपने सगुणरूप गोपाल कृष्ण को किस प्रकार और क्यों उद्धव को दे दें? और उद्धव की निर्गुण–विषयक विष सदृश प्राण–घातक वचनावली को मधुर, प्रिय और ग्रहण करने योग्य मानकर किस प्रकार स्वीकार कर लें। उद्धव ने हमारे सम्मुख अनेक बार धर्म, अधर्म की व्याख्या की है और हमें यह प्रलोभन दिया है कि यदि हम निर्गुण–ब्रह्म की उपासना करें तो हमें सुख और मोक्ष दोनों की प्राप्ति हो सकती है किन्तु उद्धव की ये सब बातें असंगत और असम्भव हैं, इसलिए हम इन्हें समझ नहीं पा रहीं। अपने मन में यह विचार कर देखो कि आज तक मन में लड्डू खाने से किसकी भूख शान्त हुई है। उद्धव लड्डू के समान प्रत्यक्ष ग्रहणीय कृष्ण–प्रेम का त्याग, अलक्ष्य, अगम्य निर्गुण–ब्रह्म की उपासना करने का उपदेश दे रहे हैं।

उनके इन शब्दों में इस उपासना से मुक्ति प्राप्त होती है परन्तु हमें तो यह लगता है कि जैसे किसी सामने की प्रत्यक्ष हाथ में आई हुई वस्तु को त्यागकर नितान्त काल्पनिक एवं अप्राप्य वस्तु के पीछे भागना और प्रत्यक्ष है तो हम उन्हें त्यागकर क्यों निर्गुण–ब्रह्म के पीछे भागती फिरें? हे मधुप ! यहाँ हम कौन खाली बैठी हैं जो कृष्ण को त्यागकर निर्गुण की उपासना जैसे भुस फटकने का व्यर्थ कार्य करें। ब्रह्म की आराधना करना व्यर्थ के किसी कार्य में मगज–पच्ची करना है। ऐसे कार्यों का कोई उचित परिणाम नहीं निकलता है।

**विशेषः–**

1. पंक्तियों में मुक्तक शैली का प्रयोग हुआ है।
2. गंभीर भावाभिव्यक्ति है।
3. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग है।
4. प्रभावी लयात्मकता–गेयता है।
5. 'भुस फटकै' मुहावरे का और 'मनलाडू' लोकोक्ति का अत्यन्त सुन्दर एवं सार्थक प्रयोग हुआ है।
6. सूक्ष्म भावों की सहज अभिव्यक्ति है।

7. प्रसाद–माधुर्य गुण सम्पन्न शैली का प्रयोग हुआ है।
8. गोपियों का कृष्ण से अनूठा प्रेम–भाव उमड़ता है।
9. 'भुस फटकै' अलंकार का मनमोहक वर्णन है।
10. 'मनलाडू' – लोकोक्ति है।

**।। 50 ।।**

**हमको हरि की कथा सुनाव। अपनी ज्ञानकथा हो, ऊधो ! मथुरा ही लै गाव।**
**नागरि नारि भले बुझैंगी अपने बचन सुझाव। पा लागों, इन बातनि, रे अलि! उनहीं जाय रिझाव।**
**सुनि, प्रियसखा स्यामसुन्दर के जो पै जिय सति भाव। हरिमुख अति आरत इन नयननि बारक बहुरि दिखाव।**
**जो कोउ कोटि जतन करै, मधुकर, बिरहिनि और सुहाव। सूरदास मीन को जल बिनु नाहिंन और उपाव।।५०।।**

**शब्दार्थः** नागरि नारि = मथुरा नगर की चतुर स्त्रियाँ। बूझैंगी = पूछेंगी। रिझाव = प्रसन्न करो। जिय = हृदय। सतिभाव = एक बार। बहुरि = पुनः फिर। कोटि = करोड़। जतन = यत्न, प्रयत्न। मीन = मछली। उपाव = उपाय।

**प्रसंगः** सूरदास कहते हैं कि गोपियों को उद्धव की ज्ञानोपदेश एवं निर्गुण–ब्रह्म की चर्चा अच्छी नहीं लगती, वे बार–बार उनसे विनय करती हैं कि उनके सम्मुख इसकी चर्चा कदापि न की जाए। वे तो केवल सगुणरूप कृष्ण की कथा में रुचि रखती हैं, अतः उनके सम्मुख उन्हीं की कथा कही जानी चाहिए।

**व्याख्याः** सूरदास ने इस मनमोहक प्रसंग में कहा है कि गोपियाँ उद्धव की ज्ञानोपदेश एवं निर्गुण–ब्रह्म की निरन्तर चर्चा से ऊब उठी हैं, अब यह उन्हें नितान्त अरुचिकर लगती है, इसलिए वे उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव ! तुम हमें केवल कृष्ण की कथा सुनाओ, हमारे सम्मुख उन्हीं की चर्चा करो, तुम्हारे निर्गुण–ब्रह्म के प्रति हमारी कोई रुचि नहीं है, हम उसकी कथा तुम्हारे मुख से सुनकर ऊब चुकी हैं। तुम अपनी इस ज्ञानोपदेश और निर्गुण–ब्रह्म की कथा को मथुरा लौटाकर ले जाओ और वहाँ के लोगों के सम्मुख गा–गाकर सुनाते रहो। नगर की नारियाँ चतुर होती हैं, अतः वे अपने स्वभावानुसार तुम्हारे इस निर्गुण ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा करेंगी। पूछेंगी, तुम्हें वार्तालाप में घसीटेंगी और समझने का प्रयत्न भी करेंगी। वस्तुतः वे इस प्रकार की बातें सुनने और करने की अभ्यस्त होती हैं, अतः तुम्हारी बात शीघ्र ही उनकी पकड़ में जा जाएगी। हे भ्रमर ! हम तुम्हारे पाँव पड़ती हैं, अपनी योग–ज्ञान और निर्गुण–ब्रह्म सम्बन्धी चर्चा को तुम कृपा करके वहीं मथुरा नगर लौटाकर ले जाओ और इससे वहाँ की चतुर स्वभाववाली स्त्रियों को रिझाने का प्रयत्न करो।

गोपियाँ कहती हैं, हे उद्धव! अपनी इस ज्ञान–योग की चर्चा को तनिक छोड़कर तुम हमारी बात सुनो। यदि तुम श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण के प्रिय और वास्तविक सखा हो, यदि तुम्हारे हृदय में हम विरहिणियों के प्रति सच्ची सहानुभूति का भाव है तो कृष्ण के मुख के दर्शन के लिए तड़प रहे, इन हमारे व्याकुल नेत्रों को पुनः एक बार उस मोहिनी मूर्ति के दर्शन करा दो, इसके लिए हम तुम्हारा अत्यन्त आभार मानेंगी। हे मधुकर ! तुम हमें यह बताओ कि क्या करोड़ों यत्न करने पर भी विरहिणी नारियों को अपने प्रियतम की चर्चा के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की चर्चा सुहा सकती है। जिस प्रकार तड़पती हुई मछली के लिए जल के अतिरिक्त जीवन प्राप्त करने का अन्य कोई उपाय नहीं, उसी प्रकार विरह संतप्त हम गोपियों के लिए कृष्ण–चर्चा ही एक ऐसा उपाय है जिससे हम जीवन–धारण किए रह सकती हैं, अन्यथा नहीं। अतः यदि तुम बार–बार ज्ञान–योग और निर्गुण–ब्रह्म की चर्चा करते रहोगे तो हमारा जीवन धारण किए रहना कठिन हो जाएगा।

**विशेषः–**

1. गोपियों के अनन्य कृष्ण–प्रेम का सरल, मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है।
2. मथुरा–नगर की नागरि नारियों के माध्यम से कुब्जा पर करारा व्यंग्य है।
3. मुक्तक शैली का प्रयोग हुआ है।
4. सूक्ष्म भावों की प्रभावी अभिव्यंजना है।
5. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
6. सुन्दर शब्द–योजना का समन्वय हुआ है।
7. प्रसाद–माधुर्य गुणसम्पन्न शैली स्पष्ट है।
8. समस्त पद में अनुप्रास अलंकार है।

**।। 51 ।।**

**अलि हो ! कैसे कहौं हरि के रूप–रसहि? मेरे तन में भेद बहुत विधि रसना न जानै नयन की दसहि।।**
**जिन देखे ते आहिं बचन बिनु, जिन्हैं बचन दरसन न तिसहि। बिन बानी मरि उमगि प्रेमजल सुमिरि वा सगुन–जसहि।।**
**बार–बार पछितात यहै मन कहा करै जो बिधि न बसहि। सूरदास अंगन की यह गति को समुझावै षड्पद पसुहि।।५१।।**

**शब्दार्थः** तन = शरीर। रसना = जिह्वा, जीभ। रसहि = दशा को। आहिं = हैं। तिसहि = उसे। सुमिरि = स्मरण, ध्यान करती है। जसहि = यश को। न बसहि = वश में नहीं। विधि = विधाता। छड्पद = षटपदु, भ्रमर। पसुहि = पशु को।

**प्रसंग:** प्रस्तुत पद्यांश में गोपियाँ श्रीकृष्ण के स्मरण–ध्यान में खोई हुई हैं किन्तु वे कृष्ण के रूप का बखान करने में असमर्थ हैं क्योंकि आँख देखती है किन्तु जिह्वा के अभाव में वर्णन नहीं कर सकतीं। जबकि जिह्वा वर्णन करने में समर्थ होने पर भी नेत्रों के अभाव में कृष्ण की रूप–माधुरी का जायजा नहीं ले सकती।

**व्याख्या:** एक गोपी भ्रमर के माध्यम से उद्धव से कहती है कि हे मधुप ! मैं कृष्ण के रूप–रस–शृंगार का किस प्रकार वर्णन करूँ? मेरे इस शरीर के विभिन्न अवयवों में परस्पर अत्यधिक विभेद हैं। एक अंग एक ही कार्य कर सकता है। मेरी जिह्वा मेरे नयनों की दशा को नहीं जानती और न ही वह उस दशा का अनुभव कर सकती हैं। नयनों ने कृष्ण की रूप–माधुरी के दर्शन किए हैं किन्तु वे वचनों के अभाव में उसका वर्णन करने में असमर्थ हैं और जिह्वा जो बोलने में, वर्णन करने में समर्थ है, नेत्रों के बिना उस रूप–माधुरी को देखने–अनुभव करने में असमर्थ है। नेत्र बोल न सकने के कारण कृष्ण के उस सगुणरूप और उसके यश का स्मरणकर उमंगित हो प्रेम के आवेग के कारण उमड़ते हुए आँसुओं से भर उठते हैं। अपनी इस विवशता के कारण हमारा मन बारम्बार पश्चाताप से भर उठता है। जब विधाता ही वश में नहीं है तो यह मन कर भी क्या सकता है– अर्थात भाग्य की विवशता के कारण हम कुछ भी करने के लिए सर्वथा असमर्थ हैं। हमारे भाग्य में अपने प्रियतम कृष्ण से वियोग होना बदा था, अब हम उसे भुगत रही हैं। सूरदास जी कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि अपने शरीर के विभिन्न अंगों की विवशता से इस मूढ़ छः पैरवाले भौरे को कौन समझाए? यह प्रेम के महत्त्व एवं प्रभाव को नहीं समझ पाता, यह मूर्ख है, अतः इसको समझाना व्यर्थ है।

**विशेष:–**

1. गोपियों के अनन्य प्रेम की व्यंजना हुई है।
2. गोपियों के मत में कृष्ण का रूप–सौन्दर्य अनिर्वचनीय है जिसे कवि ने अंगों की विषमता का रूप बाँधकर अत्यन्त मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।
3. ब्रह्म की अनिर्वचनीयता का उपनिषदों ने भी वर्णन किया है -- 'न शक्यतेवर्ण चितुँगिरा सदा स्वयं तदन्त: करवन गृह्यते।
4. निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म दोनों का कवि ने सुन्दर ढंग से चित्रण किया है।
5. गोपियों के वाग्वैदग्ध्य का चमत्कार पद में देखा जा सकता है।
6. अमर्श संचारी भाव की व्यंजना की गई है।
7. मुक्तक शैली का मर्मस्पर्शी ढंग से वर्णन मिलता है।
8. सूक्ष्म भावों की प्रभावी अभिव्यंजना हुई है।
9. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
10. शब्द योजना का सरल एवं सरस चित्रण है।
11. संगीतात्मकता का प्रस्तुतीकरण हुआ है।
12. भक्ति रस का परिपाक चित्रण हुआ है।

**।। 52 ।।**

**हमारे हरि हारिल की लकरी। मन बच क्रम नंदनंदन सों उर यह दृढ़ करि पकरी।।**
**जागत, सोवत, सपने सौंतुख कान्ह–कान्ह जकरी। सुनतहि जोग लगत ऐसो अलि ! ज्यो करुई ककरी।।**
**सोई ब्याधि हमैं ले आए देखी सुनी न करी। यह तौं सूर तिन्हैं लै दीजै जिनके मन चकरी।।५२।।**

**शब्दार्थ:** हारिल की लकरी = हारिल नामक पक्षी सदैव अपने पंजों में कोई–न–कोई लकड़ी का टुकड़ा या तिनका पकड़े रहता है। बच = वचन। क्रम = कर्म। उर = हृदय। सौंतुख = प्रत्यक्ष। कान्ह = कन्हैया, कृष्ण। जकरी = रट, धुन। करुई = कड़वी। सोई = वही। ब्याधि = रोग, बीमारी। तिन्हैं = उनको। चकरी = चंचल, चकई के समान सदैव अस्थिर रहनेवाली।

**प्रसंग:** प्रस्तुत पद्यांश कृष्ण काव्यधारा के प्रमुख कवि सूरदास जी के भ्रमरगीत का एक अंश है। गोपियाँ उद्धव के निर्गुण ब्रह्म सम्बन्धी उपदेश को सुनकर अत्यन्त खिन्न हैं। इस पद में वे कृष्ण के प्रति अपने दृढ़ प्रेम को प्रकाशित करती हुई उद्धव से कह रही हैं कि कृष्ण तो उनके लिए हारिल पक्षी की लकड़ी के समान बन गए हैं।

**व्याख्या:** सूरदास कहते हैं कि जिस प्रकार हारिल पक्षी कहीं भी हो और किसी भी दशा में हो, सहारे के लिए अपने पंजों में कोई–न–कोई लकड़ी अथवा किसी तिनके को पकड़े रहता है, उसी प्रकार हम गोपियाँ भी निरन्तर कृष्ण के ध्यान में निमग्न रहती हैं। हमने अपने मन, वचन और कर्म से कृष्णरूपी लकड़ी को अपने हृदय में दृढ़ करके पकड़ लिया है अर्थात् श्रीकृष्ण की रूप–माधुरी हमारे हृदय में गहरे बैठ गई है और अब यह हमारे जीवन का एक अंग बन गई है। हमारा मन जागते सोते

स्वप्नावस्था में, प्रत्यक्ष रूप में अर्थात् सभी दशाओं में कृष्ण के नाम की रट लगाता रहता है। उन्हीं का स्मरण मात्र एक कार्य हमारा रह गया है जिसे हमारा मन सभी अवस्थाओं में करता रहता है। हे भ्रमर ! तुम्हारे निर्गुण–ब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान उपदेश की बातें सुनकर ऐसा लगता है जैसे हमने कड़वी ककड़ी मुँह में रख ली हो अर्थात् तुम्हारी ये योग ज्ञान की बातें हमारे लिए कड़वी ककड़ी के समान अरुचिकर और अग्रहणीय है। निर्गुण–ब्रह्म के रूप में उद्धव तुम हमारे लिए ऐसा रोग ले आए हो जिसे न तो हमने कभी देखा है, न सुना है और न ही उसका भोग किया है – इस योग–ज्ञानरूपी बीमारी से हम पूर्णरूप से अपरिचित हैं। अतः तुम्हारे लिए यह उचित होगा कि तुम उन लोगों को यह ज्ञान योगरूपी बीमारी प्रदान करो जिनके मन चकई के समान सदा चंचल रहते हैं। वे ही इसका आदर करने में समर्थ हैं।

गोपियों के कहने का तात्पर्य है कि उनके हृदय तो कृष्ण–प्रेम में दृढ़ एवं स्थिर हैं, उनके हृदय में योग–ज्ञान एवं निर्गुण–ब्रह्म सम्बन्धी बातों के लिए कहीं कोई स्थान नहीं। उद्धव के योग की बातें वही जन ही स्वीकार कर सकते हैं जो अपनी आस्था में दृढ़ नहीं होते। वे भावावेश में अपनी आस्था और विश्वास को बदलते रहते हैं। अतः ऐसे अस्थिर चित्तवाले लोगों के लिए ही योग का उपदेश उचित है, गोपियाँ तो पहले ही कृष्ण–प्रेम में दृढ़ हैं, उनके लिए योग का उपदेश व्यर्थ है।

**विशेषः–**

1. गोपियों की विरह की प्रलापावस्था का चित्रण प्रस्तुत किया गया है।
2. गोपियों के द्वारा निर्गुण के उपदेश के लिए 'व्याधि' शब्द का प्रयोग करवाकर सूरदास जी ने परोक्षरूप से स्वयं निर्गुण–ब्रह्मा की अवहेलना की है। इसके साथ यह भी स्पष्ट किया गया है कि योग–साधना चंचल एवं अस्थिर चित्तवालों के लिए ही उचित है। स्थिर प्रेममार्गियों के लिए यह व्यर्थ है।
3. मुक्तक शैली का प्रयोग हुआ है।
4. ब्रजभाषा का सुन्दर वर्ण किया गया है।
5. वाक्पटुता का सुन्दर रूप प्रस्तुत किया गया है।
6. संवादात्मक शैली का समन्वयक रूप देखने में आया है।
7. आकर्षक गेयता है।
8. सरल शब्दों का अनुपम प्रयोग हुआ है।
9. 'सुनतहि ..... ककरी' में उपमा अलंकार है।

**।। 53 ।।**

**फिरि फिरि कहा सिखावत मौन? दुसह बचन अलि यों लागत डर ज्यों जारे पर लौन।।**
**सिंगी, भस्म, त्वचामृग, मुद्रा, अरू अवरोधन पौन। हम अबला अहीर, सठ मधुकर ! घर बन जानै कौन।।**
**यह मत लै तिनहीं उपदेसौ जिन्हैं आजु सब सोहत। सूर आज लौं सुनी न देखी पोत सूतरी पोहत।।५३।।**

**शब्दार्थः** सिखावत = सिखाना। दुसह = असह्य, कठोर। जारे पर लौन = जले पर नमक। त्वचामृग = मृगछाला। अवरोधन पौन = सांस रोकना, प्राणायाम करना। पोत = काँच की बनी छोटी गुरिया अथवा मोती। सूतरी = सुतली।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पंक्तियाँ सूरदास कृत 'भ्रमरगीत' से ली गई हैं। इसमें कवि ने कहा है कि उद्धव के ज्ञानोपदेश पर गोपियाँ अत्यन्त क्षुब्ध हैं। वे श्रीकृष्ण के विरह के कारण वैसे ही असह्य कष्ट पा रही हैं। उद्धव के बार–बार मौन साधने के उपदेश पर झल्ला उठती हैं और कहती हैं कि–

**व्याख्याः** सूरदास जी ने प्रस्तुत पंक्तियों में मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। हे उद्धव ! तुम हमें बार–बार मौन साधने का उपदेश क्यों दे रहे हो? कम–से–कम हमें अपना दुःख तो कह लेने दो। हे भ्रमर! तुम्हारे ये योग–साधनारूपी असह्य, कठोर वचन इस प्रकार कष्ट दे रहे हैं जैसे कि जले पर नमक छिड़क दिया हो। कवि का कहने का भाव यह है कि गोपियाँ कृष्ण वियोग में पहले ही दुःखी और घायल हैं, ऊपर से उद्धव को उन्हें कृष्ण–त्यागकर ब्रह्म प्राप्ति के लिए योग–साधना का उपदेश दे रहे हैं, वह ऐसा है जैसा जले पर नमक छिड़ककर घायल को और कष्ट देना।

हे उद्धव ! तुम हमसे सिंगी, भभूत रमाने, मृगछाला तथा मुद्रा धारण करके प्राणायाम की साधना करने को कहते हो, किन्तु हे मूर्ख भ्रमर ! क्या तुमने यह भी सोचा है कि हम अबला, अहीर नारियाँ हैं? हमारे लिए यह किस प्रकार सम्भव है कि हम तुम्हारे कठिन योग–साधना से प्राप्त निर्गुण ब्रह्म को अपना लें? योग–साधना तो वन में रहकर अपनायी जा सकती है। हम न घर को त्याग सकती हैं और न ही अपने घर को वन के समान निर्जन कर सकती हैं। यह असम्भव है क्योंकि हमारे घरों में कृष्ण–सम्बन्धी सभी

पुरानी स्मृतियाँ समाई हुई हैं, जिन्हें हमें भुलाना पड़ेगा और यही हमारे लिए सम्भव नहीं। इसलिए तुम्हार लिए यही उचित रहेगा कि तुम अपना उपदेश उन्हीं लोगों के पास ले जाओ जिन्हें आजकल सब कुछ करना शोभा देता है। कवि का कहन का भाव यह है कि उद्धव का यह योग–साधना का उपदेश कुब्जा के लिए ही उचित है क्योंकि वह कृष्ण की निकटता पाकर सभी प्रकार से समर्थ और प्रसन्न चित्त है, जो अनुराग में रत है, उसके लिए ही योग–साधना का उपदेश उचित है, हम तो पहले से ही वैराग्य का जीवन व्यतीत कर रही हैं, इस योग–साधना के उपदेश की वस्तुतः उस कुब्जा को अधिक आवश्यकता है जो कृष्ण के साथ विषय भोग में लिप्त है।

गोपियाँ कहती हैं हमने आज तक किसी भी जन को मोती सुतली में धागा पिरोते हुए न तो देखा है और न सुना है। इस प्रकार यह असम्भव कार्य है। हमें भी तुम योग–साधना द्वारा निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करने का उपदेश देकर इसी प्रकार का असम्भव कार्य कर रहे हो। तुमको इस कार्य में सफलता नहीं मिल सकती है।

**विशेषः–**

1. गोपियों के रुष्ट भाव का अत्यन्त सुन्दर चित्रण हुआ है।
2. 'मौन' शब्द में श्लेष है। योगी वाणी का संयम प्राप्त करने के लिए मौन साधना करते हैं। यह योग का एक उपलक्षण है।
3. गोपियाँ कहती हैं कि हमारी बुद्धि तो सुतली के समान मोटी है और तुम्हारा ज्ञानोपदेश गुरियों के सुराख के समान अत्यन्त सूक्ष्म है, अतः तुम्हारी यह ज्ञान की सूक्ष्म बातें हमारी बुद्धि ग्रहण करने के सर्वथा अयोग्य है।
4. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
5. प्रसाद–माधुर्य गुणसम्पन्न शैली है।
6. भक्ति रस का परिपाक चित्रण है।
7. सुन्दर लयात्मकता है।
8. शब्दों में स्पष्ट अभिव्यक्ति है।
9. कृष्ण की निष्ठुरता पर करारा व्यंग्य है।
10. वियोग शृंगार का प्रबल रूप है।
11. गोपियों की वाक्पटुता का चित्रण हुआ है।
12. 'दुसह वचन..... लौन'– उपमा है। तथा 'जारे पर लौन' – लोकोक्ति है।

**।। 54 ।।**

**प्रेमरहित यह जोग कौन काज गायो? दीनन सों निठुर वचन कहे कहा पायो?**
**नयनन निज कमलनयन सुन्दर मुख हेरो? मूँदन ते नयन कहत कौन ज्ञान तेरो?**
**तामें कहु मधुकर ! हम कहा लैन जाहीं। जामें प्रिय प्राननाथ नंदनंदन नाहीं?**
**जिनके तुम सखा साधु बातें कहु तिनकी। जीवैं सुनि स्यामकथा दासी हम जिनकी।।**
**निरगुन अविनासी गुन आनि आनि भाखौ। सूरदास जिय के पिय कहाँ कान्ह राखौ?।।५४।।**

**शब्दार्थः** प्रेम–रहित = अनुराग रहित, नीरस। काज = कार्य। कौन काज = किस कारण, किसलिए। दीनन = दुखिया, विरह–ग्रस्त अबलाओं। निठुर = निष्ठुर, कठोर। निज = अपने। हेरो = निहारो, देखो। लैन = लेने के लिए। तिनकी = उनकी। आनि आनि = अन्य–अन्य। भाखौ = कहते हो। जिय के पिय = प्राणों के प्राण।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पंक्तियाँ सूरदास कृत 'भ्रमरगीत' से उद्धृत हैं। इनमें कवि ने गोपियों और उद्धव के वार्तालाप को व्यक्त करते हुए कहा है कि गोपियाँ उद्धव के निर्गुण–ब्रह्म सम्बन्धी उपदेश को सुनकर अत्यन्त झल्लाई हुई हैं। प्रस्तुत पद में वे अपनी तथा कृष्ण–प्रेम सम्बन्धी विवशता का वर्णन करती हुई कह रही हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव ! तुमने इन नीरस योग के गीतों को हमारे सम्मुख क्यों गाया? इनकी यहाँ क्या आवश्यकता थी? इनमें प्रेम का सर्वथा अभाव है, अतः ये हमारे लिए बिल्कुल व्यर्थ है। हम अबलाओं, विरहिणी नारियों के सम्मुख इस प्रकार की कठोर बातें कहकर तुम्हें क्या मिला? हमारे इन नयनों ने कमल नेत्रोंवाले सुन्दर, मनमोहक कृष्ण के सुन्दर मुख के दर्शन किए हैं। यह तुम्हारी किस प्रकार की बुद्धि है। कैसा विवेक है कि तुम हमें इन्हें बंद करके निर्गुण–ब्रह्म की साधना करने को कहते हो? हम अपने नेत्र बंद करके तुम्हारे निर्गुण–ब्रह्म के पीछे क्यों भटकती फिरें? जबकि हम जानती हैं कि इससे कुछ प्राप्त होने वाला नहीं। इससे हमें क्या उपलब्ध होगा? हे मधुकर ! हमें यह बताओ की हम तुम्हारी इस योग–साधना को किस लालसा के

वशीभूत होकर अपनाएँ, जबकि हम जानती हैं कि इससे हासिल होने वाला कुछ नहीं, और फिर इसमें नन्दनन्दन कृष्ण को भी हानि है क्योंकि उन्हें त्यागकर ही इसे अपनाना होगा। अतः हमारे लिए तुम्हारी यह साधना निरर्थक है।

हमें उन्हीं कृष्ण की बातें सुनाओ, तुम तो उन्हीं के सच्चे मित्र हो न। हम उनकी दासी एवं सेविका हैं। उन्हीं श्याम की कथा और रस भीनी बातें सुनकर हम जी उठेंगी, हमें प्राण मिल जायेंगे और हमारी विरह–वेदना भी जाती रहेगी। किन्तु तुम उनकी बातें न करके किसी निर्गुण, अविनाशी ब्रह्म के विषय में कुछ अन्य प्रकार की बातें कह रहे हो। ऐसी बातें करते हुए न जाने तुम हमारे प्राणों के प्राण कृष्ण को कहाँ छुपाकर रख लेते हो, उनके सम्बन्ध में हमें कुछ भी नहीं बताते।

**विशेषः–**

1. गोपियों के व्यथित हृदय की हीन भावना का चित्रण प्रस्तुत किया गया है।
2. कृष्ण के प्रति गोपियों की अनन्य भावना की मार्मिकता का सुन्दर चित्रण किया गया है।
3. भक्ति रस का परिपाक वर्णन है।
4. ब्रजभाषा का सरल प्रयोग हुआ है।
5. शब्दों में सुन्दर गेयता है।
6. कृष्ण की निष्ठुरता पर करारा व्यंग्य है।
7. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है।
8. वियोग श्रृंगार का सुन्दर चित्रण हुआ है।
9. मुक्तक प्रभावी शैली का चित्रण है।
10. पूरे पद में अनुप्रास अलंकार की छटा है।

**।। 55 ।।**

**जनि चालो, अलि, बात पराई। ना कोउ कहै सुनै या ब्रज में नइ कीरति सब जाति हिराई।।**
**बूझैं समाचार मुख ऊधो कुल की सब आरति बिसराई। भले संग बसि भई भली मति, भले मेल पहिचान कराई।।**
**सुन्दर कथा कटुक सी लागति उपजत उर उपदेस खराई। उलटी नाव सूर के प्रभु को बहे जात माँगत उतराई।।५५।।**

**शब्दार्थः** जनि = मत, न। पराई = दूसरे की। हिराई = नष्ट की। आरति = दुख, कष्ट, विपदा। बिसराई = भुला दी। कटुक = कड़वी। उर = हृदय। खराई = विरक्ति। उतराई = पारिश्रमिक।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश सूरदास कृत 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। गोपियाँ उद्धव के निर्गुण–ब्रह्म सम्बन्धी योग–ज्ञान की बातों को सुनकर अत्यन्त खिन्न और दुखी हैं। वे अपनी वेदना और कृष्ण प्रेम सम्बन्धी अपनी विवशता का वर्णन करती हुई कहती हैं कि –

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती हैं हे अलि! तुम यहाँ कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी की बात न चलाओ। क्योंकि यहाँ ब्रज में कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी की बात न तो कोई करता ही है और न सुनता ही है। तुम्हारे बार–बार इस प्रकार की बात को दोहराने से तुम्हारी वह समस्त नई कीर्ति नष्ट हुई जा रही है जो तुमने यहाँ आकर कृष्ण के सखा के रूप में स्थापित की थी। कवि के कहने का भाव यह है कि कृष्ण को त्याग निर्गुण–ब्रह्म की साधना का उपदेश सुनकर सभी लोग तुम्हारे विरुद्ध होते जा रहे हैं। तुम मथुरा से आए हो और कृष्ण के सखा हो, इसीलिए हम तुमसे यह समाचार पूछती हैं कि क्या उन्होंने अपने कुल की विपदाओं, कष्टों को विस्मृत कर दिया है। अर्थात्, तुम अपने मुख से हमें यह बताओ कि क्या उन्हें अब अपने कुल की कोई चिन्ता नहीं। मथुरा जाने पर कृष्ण को अत्यन्त अच्छे लोगों का सत्संग प्राप्त हुआ है जिसके परिणामस्वरूप उनकी अपनी बुद्धि भी श्रेष्ठ हो गई है। अपनी इसी नई बुद्धि के कारण उन्होंने तुम जैसे भले लोगों को हमारे पास भेजकर हमें तुम्हारा परिचय प्राप्त करने का अवसर दिया है। वस्तुतः गोपियाँ यहाँ व्यंग्य करती हुई यह कह रही हैं कि मथुरा में बुरे लोगों की संगति के कारण ही कृष्ण की ऐसी मति हो गई है कि उन्होंने उद्धव को यहाँ ब्रज में योग का संदेश देने के लिए भेजा है।

तुम्हारी अपनी रुचि और विवेक के अनुसार तुम्हारी यह निर्गुण–ब्रह्म की चर्चा सुन्दर है किन्तु हमें कड़वी और अरुचिकर लगती है। इससे हमें विरक्ति सी अनुभव होती है। हमें तुम्हारी निर्गुण–ब्रह्म सम्बन्धी योग–ज्ञान की ये बातें तनिक भी भली नहीं लगती। तुम्हारे सखा का अद्‌भुत न्याय हमारी समझ में नहीं आ रहा। नाव तो नदी के मध्य में उलट गई है, यात्री जल में बहे चले जा रहे हैं। मल्लाह उन्हें डूबने से न बचाकर उनसे उतराई का पारिश्रमिक माँग रहा है। कवि का कहने का भाव यह है कि कृष्ण गोपियों से प्रेम की लौ लगाकर उन्हें त्यागकर स्वयं मथुरा चले गए हैं, अब वे मँझधार में हैं। इसी कारण वे अत्यधिक व्याकुल और व्यथित हैं, फिर कृष्ण ने उन्हें योग– साधना के माध्यम से निर्गुण–ब्रह्म की आराधना करने का संदेश भेजकर और भी व्यथित किया है। यह उनका सरासर अन्याय है। और यह ऐसा है जैसे बहे जा रहे यात्रियों से नाव का किराया माँगना।

**विशेषः–**

1. कृष्ण के प्रति गोपियों का अनूठा प्रेम–भाव उमड़ा है।
2. प्रभावी व्यंग्य योजना है।
3. सुन्दर गेयता–लयात्मकता है।
4. ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है।
5. प्रसाद माधुर्य गुणसम्पन्न शैली है।
6. सूक्ष्म भावों की सहज अभिव्यक्ति हुई है।
7. गोपियों की वाक्पटुता का चित्रण हुआ है।
8. सरल शब्दों का अनुपम प्रयोग है।
9. सम्पूर्ण पद में लोकोक्ति अलंकार है।

**।। 56 ।।**

**याकी सीख सुनै ब्रज को, रे। जाकी रहनि कहनि अनमिल, अलि, कहत समुझि अति थोरे।।**
**आपुन पद–मकरन्द सुधारस हृदय रहत नित बोरे। हमसों कहत बिरस समझौ, है गगन कूप खनि खोरे।।**
**धान को गाँव पयार तें जानौ, ज्ञान विषयरस भोरे। सूर सो बहुत कहे न रहै रस गूलर का फल फोरे।।५६।।**

**शब्दार्थः** याकी = इसकी। सीख = योग–साधना का उपदेश, शिक्षा। अनमिल = परस्पर विरोधी। आपुन = स्वयं। नित = प्रतिदिन। बोरे = डूबे। बिरस = रसहीन। खानि = खोदकर। खोरे = नहाए। पयार = पयाल, धान का भूसा। विषयरस = प्रेमरस। भोरे = भोले, बावले। फोरे = फोड़ने पर।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पंक्तियाँ सूरदास कृत 'भ्रमरगीत' से संकलित की गई हैं। उद्धव के ज्ञानोपदेश के जारी रहने पर गोपियाँ अत्यन्त क्षुब्ध और दुःखी हैं। वे उद्धव के कथन का खण्डन करके व्यवहार और कथनी में अन्तर स्पष्ट करके प्रस्तुत करती हैं

**व्याख्याः** सूरदास जी कहते हैं गोपियाँ खीझकर भ्रमर के माध्यम से उद्धव पर ही व्यंग्य करती हुई कह रही हैं कि इनके योग–साधना सम्बन्धी निर्गुण–ब्रह्म का उपदेश यहाँ ब्रज में कौन सुनेगा? जिनके रहन–सहन और व्यवहार में अर्थात् करनी और कथनी में इतना विरोध रहता हो, उसकी बातें यहाँ कोई भी सुनना पसंद नहीं करता। हे अलि! हमने यह बात खूब समझ–बूझ ली है और अब अत्यन्त थोड़े शब्दों में अर्थात् संक्षेप में तुमसे कह रही हैं। तुम्हारी तो यह स्थिति है कि तुम स्वयं तो श्रीकृष्ण के चरण–कमलों के मकरन्दरूपी अमृत में सदैव अपने हृदय में डूबोए रहते हो। अर्थात् स्वयं तो कृष्ण के प्रेमरूपी अमृत में रसलीन रहते हो और हमें कहते हो कि उन कृष्ण को रसहीन–नीरस समझ लो। यह तो उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार आकाश में कूआँ खोदकर उसके जल में स्नान करने का प्रयत्न करना। धान के गाँव का परिचय उसके चारों ओर फैले पयाल–धान के भूसे से ही प्राप्त होता है, उसी प्रकार तुम्हें देखकर हमें यही लगता है कि तुम स्वयं तो कृष्ण–भक्त हो क्योंकि तुम स्वयं उनके चरणों में अनुराग रखते हुए बावले बने हुए हो। फिर यह क्या तुम्हारे लिए उचित है कि हम जैसी विरहिणी बालाओं को कृष्ण से विमुख होने का उपदेश दो। इस प्रकार स्पष्टतः तुम्हारी कथनी और करनी में अन्तर है। अतः उचित यही है कि तुम हमसे इस विषय में और अधिक चर्चा न करो। अन्यथा इस सम्बन्ध में अधिक बातें करने से वैसी स्थिति हो जाएगी जैसे गूलर के फल को फोड़ने से होती है। गूलर का फल ऊपर से देखने पर अत्यन्त सुन्दर और मीठा प्रतीत होता है किन्तु उसे फोड़ने पर उसमें भरे कीड़ों को देखकर विरक्ति उत्पन्न हो जाती है। इसी आधार पर ठीक यही रहेगा कि तुम अपनी बात को गुप्त ही रहने दो हम तुम्हारी वास्तविकता पूर्णतया जान गई हैं, यदि इसे न खुलवाओ तो यह तुम्हारे पक्ष में उचित होगा।

**विशेषः–**

1. गोपियों ने उद्धव की कथनी और करनी में अन्तर बताकर उसके ढोंगीपन को व्यक्त किया है।
2. ब्रजभाषा को व्यक्त किया है।
3. गोपियों की वाक्पटुता का सुन्दर चित्रण हुआ है।
4. सूक्ष्म भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति है।
5. मुक्तक शैली का प्रयोग है।
6. सरल शब्दों का अनुपम प्रयोग है।
7. वियोग श्रृंगार का प्रबल रूप उभरा है।
8. माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति हुई है।
9. सुन्दर लयात्मकता है।
10. सरल और सहज भाषा प्रयोग है।
11. 'आपुन ... बोरे – में तद्गुण। 'गगन ... खोरे–निदर्शना। अलंकार प्रयोग हुआ है

**।। 57 ।।**

**निरखत अंक स्यामसुन्दर के बारबार लावति छाती। लोचन–जल कागद–मसि मिलि कै है गई स्याम स्याम की पाती।।**
**गोकुल बसत संग गिरिधर के कबहूँ बयारि लगी नहिं ताती। तब की कथा कहा कहौं, ऊधो, जब हम बेनुनाद सुनि जाती।।**
**हरि के लाड़ गनति नहिं काहू निसिदिन सुदिन रासरसमाती। प्राननाथ तुम कब धौं मिलोगे सूरदास प्रभु बालसंघाती।।५७।।**

**शब्दार्थ:** निरखत = देखते ही। अंक = अक्षर, पत्री। लावति = लगाती है। लोचन = नेत्र। जल = आँसू। कागद–मसि = कागज पर की स्याही। पाती = चिट्ठी, पत्री। बयारि = हवा। ताती = गरम। बेनुनाद = मुरली की मधुर ध्वनि। लाड़ = प्रेम। गनति = गिनती, समझती। काहू = किसी को। निसिदिन = रात–दिन। रासरसमाती = रास–रंग में उन्मत्त। बालसंघाती = बालपन के साथी, बालमित्र।

**प्रसंग:** प्रस्तुत पंक्तियाँ कृत 'भ्रमरगीत' से संकलित की गई हैं। उद्धव और गोपियों के वार्तालाप के संदर्भ में कवि ने लिखा है। कृष्ण ने उद्धव को गोपियों के नाम पर एक पत्र भी दिया था। जिसमें उन्होंने अपना संदेश प्रेषित किया था। कृष्ण की चिट्ठी को पाकर गोपियाँ अत्यन्त भाव–विह्वल हो उठी थीं। सूरदास ने गोपियों की उस समय की स्थिति का अत्यन्त मर्मस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत किया है।

**व्याख्या:** सूरदास जी ने गोपियों के हृदयग्राही भावावेश को निरूपित करते हुए कहा है कि कृष्ण के पत्र में लिखे उनके अक्षरों को देख–रेखकर गोपियाँ प्रेम–विह्वल हो गईं और भावावेश में उस पत्र को बार–बार अपने हृदय से लगाने लगी। प्रेमावेश के कारण उनके नेत्रों में आँसू भर आए, अश्रुधारा से श्याम द्वारा भेजी गई चिट्ठी भीग गई। इस प्रकार नेत्रों के जल से कागज पर की स्याही का मिलन हो जाने पर सारे कागज पर स्याही फैल गई जिससे पूरी की पूरी चिट्टी काली हो गई। इस पत्र को निहारते ही गोपियों की पूर्वकाल की स्मृतियाँ साकार हो उठीं। वे उद्धव को बताने लगीं कि जब हम यहाँ गोकुल में गिरिधर कृष्ण के साथ निवास करती थीं, तो हमें वायु भी कभी गर्म नहीं लगी अर्थात् हमें कभी किसी प्रकार का कष्ट अथवा विपदा नहीं झेलनी पड़ी। हे उद्धव ! हम तुम्हें तब की क्या–क्या बताएँ। जब हम कृष्ण की मुरली की मधुर ध्वनि सुनकर उनके पास वन में भागी चली जाती थीं, तब हमें उनके साथ अनेक प्रकार की रास क्रीड़ाओं को करने का आनन्द प्राप्त होता था। उस समय कृष्ण के प्रेम को पाकर हम इतनी गर्वित अनुभव करती थीं कि अपने सम्मुख किसी को कुछ नहीं समझती थीं। वे दिन हमारे जीवन के अत्यन्त श्रेष्ठ दिन थे। हम रात–दिन रास रंग में उन्मत्त रहती थीं। चारों ओर आनन्द–ही–आनन्द था। इस प्रकार प्राचीन काल की स्मृतियाँ जाग जाने पर गोपियाँ अत्यन्त भाव–विह्वल और कातर हो उठती थीं और कृष्ण को पुकारते हुए कहती हैं कि हे प्राणनाथ! हे बालपन के साथी ! अब तुम हमें कब दर्शन दोगे? हम कब तुमसे मिल भेंट कर सकेंगी?

**विशेष:–**

1. 'है गई स्याम की पाती' में कवि ने थोड़े शब्दों में अधिक कह डाला है। कृष्ण की चिट्ठी ही गोपियों के लिए कृष्ण बन गई है और इससे गोपियों की पूर्व स्मृति जागृत हो उठी है।
2. मुक्तक शैली का प्रयोग हुआ है।
3. वाक्पटुता का सुन्दर रूप है।
4. संवादात्मक शैली का प्रयोग है।
5. सरल, बोधगम्य ब्रज भाषा का प्रयोग किया गया है।
6. श्रीकृष्ण की निष्ठुरता पर करारा व्यंग्य है।
7. सुन्दर सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।
8. वियोग शृंगार का प्रबल रूप है।
9. भक्ति रस का परिपाक वर्णन हुआ है।
10. सुन्दर लयात्मकता है।
11. सार्थक शब्द–योजना का मार्मिक चित्रण हुआ है।
12. 'स्याम–स्याम' यमक। 'लोचन–जल ..... पाती' तद्गुण। 'गिरिधर' को सभिप्राय मानते हुए परिकरांकुर में अलंकार का सुन्दर चित्रण है।

**।। 58 ।।**

**मोहीं अलि दुहूँ भाँति फल होत। तब रस–अधर लेति मुरली, अब भई कुबरी सौत।।**
**तुम जो जोगमत सिखवन आए भस्म चढ़ावन अंग। इन बिरहिन में कहूँ कोउ देखी सुमन गुहाये मंग?**
**कानन मुद्रा पहिरि मेखली धरे जटा आधारी। यहो तरल लोचन कहाँ देखे अरु तनसुख की सारी।।**
**परम बियोगिनि रटति रैन दिन धरि मनमोहन–ध्यान। तुम तो चलो बेगि मधुबन को जहाँ जोग को ज्ञान।।**
**निसिदिन जीजतु हैं या ब्रज में देखि मनोहर रूप। सूर जोग लै घर घर डोलौ, लेहु लेहु धरि सूप।।५६।।**

**शब्दार्थ:** दुहूँ भाँति = दोनों अवस्थाओं में। जोगमत = योग–साधना। सुमन = पुष्प। मंग = माँग। गुहाये = सजाई हो। कानन = कानों में। मेखली का घनी तन सुख = एक प्रकार का झीना कपड़ा। सारी = साड़ी। जोग को ज्ञान = योग के ज्ञाता, पारखी। निसिदिन = रात–दिन। जीजतु = जीती हैं।

**प्रसंग:** प्रस्तुत पंक्तियाँ सूरदास कृत 'भ्रमरगीत' से उद्धृत हैं। कवि ने लिखा है कि गोपियाँ उद्धव पर व्यंग्य करना छोड़कर अपने भाग्य को दोष देती हैं। कृष्ण से पृथक् होना उनके भाग्य में बँधा था, इसमें कृष्ण का अथवा किसी अन्य का कोई दोष नहीं।

उनके मत में जब कृष्ण यहाँ थे तब मुरली उनके ओष्ठों का रस लेती थी, हम इस सुख से वंचित थीं, अब वैसा सुख कुब्जा को मथुरा में प्राप्त है।

**व्याख्या:** गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि हे भ्रमर! हमें तो दोनों अवस्थाओं में – कृष्ण के सामीप्य में और उनके दूर रहकर एक जैसा ही फल मिला है। जब कृष्ण यहाँ ब्रज में हमारे निकट थे, तो मुरली सदा उनके ओठों पर विराजमान रहती थी और उनके अधरों का पान किया करती थी। हम इस अमृत से वंचित थीं, इस प्रकार कृष्ण का सानिध्य प्राप्त होने पर भी हम उनके ओष्ठ–सुधारस को पान करने के लिए तड़पती रहती थीं। अब मथुरा में मुरली के स्थान पर कुब्जा हमारी सौत बन गई है और कृष्ण के सामीप्य का पूर्ण लाभ उठा रही है। हे उद्धव ! तुम जो यहाँ हम विरहिणियों को योग–साधना द्वारा प्राप्त निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने आए हो और हमारे शरीर पर भस्म, भभूत का लेप चढ़वाना चाहते हो, तो क्या तुमने हममें से किसी तरुण सुतप्त गोपी को अपनी माँग में फूल चढ़ाए हुए देखा है? तुम हमें उपदेश दे रहे हो कि हम अपने कानों में मुद्रा पहनकर मूंज की करधनी, जटाजूट और अधारी धारण करें। यह तुम हमें क्यों कह रहे हो, क्या तुमने हममे से किसी को अपने कानों में सदा हिलते–चमकते रहने वाले चंचल कर्णफूल तथा अपने शरीर पर तनसुख कपड़े से बनाई हुई झीनी साड़ी धारण किए हुए देखा है? हम तो कृष्ण–प्रेम के विरह में संतप्त हैं और हमने पहले ही शारीरिक सम्पूर्ण साज–सज्जा तथा शृंगार–प्रसाधना को छोड़ दिया है और पहले ही हम तो योगिनी बनी हुई हैं।

इस प्रकार परमयोगिनी बनी हुई गोपियाँ रात–दिन मन–मोहन श्रीकृष्ण का ध्यान करती हुई उन्हीं का नाम रटने लगी हैं जबकि तुम उन्हें ब्रह्म का ध्यान करने का उपदेश दे रहे हो। यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है। इसलिए उचित यही है कि तुम शीघ्र ही मथुरा नगरी लौट जाओ क्योंकि वहाँ तुम्हारे इस योग के अनेक पारखी मिलेंगे। इसलिए वहीं तुम्हारे इस योग का आदर–सम्मान हो सकेगा। हम गोपियाँ ब्रज में तो रात–दिन कृष्ण के मनोहर रूप को देखकर और स्मरण करके जीवित रह रही हैं। तुम हे उद्धव ! व्यर्थ ही यहाँ अपने योग को लादे हुए घर–घर घूम रहे हो और अपना समय नष्ट कर रहे हो यहाँ तुम्हारे योग का कोई ग्राहक नहीं। तुम उसी प्रकार सबको अपने योग की विशेषताएँ समझाकर इस निस्सार वस्तु का ग्रहण करने का आग्रह कर रहे हो जिस प्रकार कोई व्यापारी अपने ग्राहकों से अपने माल को सूप से भली–भाँति छान–फटक कर खरीदने का आग्रह करे। परन्तु इतना करने पर भी हम तुम्हें विश्वास दिलाती हैं कि यहाँ तुम्हें इस व्यर्थ की चीज का कोई ग्राहक खरीददार प्राप्त नहीं होगा। वस्तुतः यह योग इतना व्यर्थ और बेकाम है कि ब्रज में इसकी कोई उपयोगिता नहीं। हम गोपियाँ तो कृष्ण के नाम–स्मरण से ही प्रसन्न हैं।

**विशेष:–**

1. कुब्जा और मुरली के प्रति गोपियों का असूयाभाव प्रकट होता है।
2. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग हुआ है
3. गोपियों की वाक्पटुता का मार्मिक चित्रण है।
4. सूक्ष्म भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है
5. सरल शब्दों का अनुपम प्रयोग है।
6. मुक्तक शैली का सुन्दर समन्वय देखा जा सकता है
7. आकर्षक भाव–अभिव्यंजना है।
8. सरल बोधगम्य भाषा का प्रयोग हुआ है
9. भक्ति रस का परिपाक चित्रण है।
10. सुन्दर लयात्मकता।
11. अंतिम पंक्ति में निहित व्यंग्य से योग पर गहन प्रहार हुआ है।

**।। 59 ।।**

**बिलग जनि मानौ हमरी बात। डरपति बचन कठोर कहति, मति बिनु पति यों उठि जात।।**
**जो कोउ कहत जरे अपने कछु फिरि पाछे पछितात। जो प्रसाद पावत तुम ऊधो कृस्न नाम ले खात।।**
**मन जुतिहारो हरिचरनन तर अचल रहत दिनरात। 'सूर स्याम ते जोग अधिक, केहि कहि आवत यह बात?।।५६।।**

**शब्दार्थ:** बिलग जनि मानौ = बुरा मत मानो। पति उठि जात = मर्यादा जाती रहती है। जरै अपने = अपना जी जलने पर रहत = रहता है। तर = निचे।

**प्रसंग:** प्रस्तुत पद्यांश सूरदास कृत 'भ्रमरगीत' से संकलित किया गया है। इस पद में गोपियाँ उद्धव की कृतघ्नता और एहसान–फरामोशी पर आक्षेप करती हुई कहती हैं।

**व्याख्या:** हे उद्धव! तुम हमारी बात का बुरा मत मानना। हमें तुमसे कठोर वचन कहते हुए डर लगता है, क्योंकि विवेकहीन बात करने से व्यक्ति की मर्यादा उसी प्रकार नष्ट हो जाती है जिस प्रकार तुम्हारी हो गई है, क्योंकि तुम हमसे कृष्ण को त्यागने और निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने की बातें कर रहे हो। यदि कोई अपने मन के पीड़ित होने पर कुछ ऊट–पटांग बातें कह भी देता

है तो फिर उसके लिए मन–ही–मन पछताना पड़ता है, अर्थात तुमने हमें दुःखदायी बातें सुनाई थीं, इसलिए हमारे मुख से कठोर वचन निकल गए थे, जिनके लिए हमें पश्चाताप हो रहा है।

*हे उद्धव! तुम्हें यहाँ जो इतना प्रसाद मिल रहा है, वह केवल कृष्ण के नाम के कारण ही मिल रहा है और इसी कारण तुम उस* सम्मान का उपभोग कर रहे हो। तुम्हारा मन रात–दिन कृष्ण के चरणों में दृढ़ बना रहता है। इतने पर भी तुमसे ऐसी बात कैसे कही जा सकी कि "योग कृष्ण से श्रेष्ठ है।" भाव यह है कि कृष्ण–भक्त होने पर भी तुम ऐसी बातें कर रहे हो। क्या तुम्हारी कृतघ्नता नहीं है।

**विशेषः–**

1. गोपियों का कृष्ण के प्रति अनूठा प्रेम–भाव है।
2. गंभीर व्यंग्य दृष्टिगोचर होता है।
3. मुक्तक शैली का वर्णन है।
4. सूक्ष्म भावों की प्रभावी अभिव्यंजना है।
5. सुन्दर शब्द योजना हुई है।
6. माधुर्य प्रसाद गुण सम्पन्न शैली है।
7. सुकर गेयता है।
8. शब्द–योजना अति सुकर है।
9. गोपियों की वाक्पटुता का चित्रण हुआ है।
10. ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है।

**।। 60 ।।**

**अपनी–सी कठिन करत मन निसिदिन।**
**कहि कहि कथा, मधुप, समुझावति तदपि न रहत नंदनंदन बिन।।**
**बरजत श्रवन संदेस, नयन, जल, मुख बतियाँ कछु और चलावत।**
**बहुत भाँति पित धरत निठुरता सब तजि और यहै जिय आवत।।**
**कोटि स्वर्ग सम सुख अनुमानत हरि–समीप–समता नहिं पावत।**
**थकित सिंधु–नौका के खग ज्यों फिरि फिरि फेरि वहै गुन गावत।।**
**जे बासना न बिदरत अन्तर तेइ तेइ अधिक अनुअर दाहत।**
**सूरदास परिहरि न सकत तन बारक बहुरि मिल्यो है चाहत।।६०।।**

**शब्दार्थः** अपनी–सी = अपने जैसी, अपने समान, भरसक प्रयत्न करना। निसिदिन = दिवा–रात्रि। तदपि = तो भी।
बरजत = रोकती हैं। जिय = हृदय। खग = पक्षी। फिरि–फिरि = लौटकर। फेरि = पुनः। बासना = इच्छा।
बिदरत=फटना। अन्तर = हृदय। अनूअर = निरन्तर।
दाहत = दग्ध करना। परिहरि = त्यागना, छोड़ना। तन = शरीर। बारक = एक बार। बहुरि = पुनः।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पंक्तियाँ सूरदास कृत 'भ्रमरगीत' से संकलित की गई हैं। कवि ने गोपियों के संदर्भ में कहा है कि उन्हें कृष्ण–प्रेम के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी शान्ति नहीं मिलेगी। भुलाने का प्रयत्न करती हुई गोपियाँ असफल हो अपनी विवशता का वर्णन कर रही हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ उद्धव से अपनी विवशता का वर्णन करते हुए कह रही हैं कि हे उद्धव ! हम रात–दिन अपने मन को अपने समान कठोर बने रहने का भरसक प्रयत्न करती रहती हैं, हम भाँति–भाँति की अन्य कथाएँ कहकर भी अपन मन को श्री कृष्ण से विमुख होना चाहती हैं। किन्तु यह चंचल मन विवश हो सभी प्रयत्नों को निष्फल कर देता है। हम तो इसे समझाकर हार गई हैं। यह नन्दनंदन कृष्ण के बिना रहता ही नहीं। सदैव उनकी स्मृति याद में भावविभोर रहता है हम अपने कानों को कृष्ण का संदेश सुनने से रोकती हैं। उनकी स्मृति से याद कर आँखों में आँसू न आए इसका प्रयत्न करती हैं श्री कृष्ण को छोड़ अन्य विषयों पर बैठकर आपस में वार्त्ता करती हुई कहती है कि हम तरह–तरह से अपने निष्ठुर मन को कठोर एवं दृढ़ बनाने का प्रयत्न करती हैं– किन्तु अन्य वार्ता विषयक प्रसंगों को छोड़कर हमारे हृदय में श्रीकृष्ण के सानिध्य से जो सुख की अनुभूति होती है उसकी तुलना कल्पनायुक्त करोड़ों स्वर्गों में प्राप्त सुखों से भी नहीं की जा सकती अर्थात् कृष्ण के सानिध्य से प्राप्त सुख ही सर्वश्रेष्ठ है।

इस समय हमारी मानो दशा समुद्र (सागर) में चलनेवाली जहाज (नौका) में बैठे थके उस पक्षी के समतुल्य है जो बार–बार उड़कर इधर–उधर विचरण करता है किन्तु अन्यत्र कोई स्थान (आश्रय) न पाकर थककर जहाज पर लौट आता है। हमारा मन भी उसी पक्षी की भाँति (समान) क्षण भर के लिए अन्य प्रसंगों (बातों) में आकर्षण ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है। किन्तु उसे वहाँ कोई सुख नहीं मिलता परन्तु बार–बार लौटकर उन्हीं (कृष्ण) के गुण गाने लगता है। कृष्ण से पुनर्मिलन की आस लगाए हमारा हृदय विदीर्ण (वियोग) नहीं हो पाता वह प्राणों को धारण किए हुए है। इसी इच्छा के कारण हमारा हृदय कृष्ण वियोग से निरन्तर दग्ध (दुखित)

रहता है। हम मृत्यु की चाहत न रखते हुए अपने शरीर को त्यागना नहीं चाहती हैं क्योंकि यह शरीर हृदय से श्रीकृष्ण के मिलन की आश लगाये संयोग–सुख की अनुभूति रखता है।

**विशेषः–**

1. कृष्ण प्रेम में विवश बनी गोपियों का प्रभावशाली चित्रण है। वे प्रयत्न करने पर भी कृष्ण को भुलाने में स्वय को विवश पाती हैं। यह उनके प्रेम की एकान्त निष्ठा का प्रतीक है।
2. मिलन की आशा गोपियों को विरह की मरणान्तक व्यथा को भी सहन करने की शक्ति प्रदान कर रही है
3. संवादात्मक शैली का वर्णन है।
4. संगीतात्मकता।
5. सूक्ष्म भावों की प्रभावी अभिव्यंजना है।
6. गोपियों की अन्तर्मनोदशा का चित्रण।
7. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
8. 'थकित ..... गावत' जैसे भाव में कवि ने अन्यत्र भी व्यक्त किया है –

   **मेरो मन अनत कहाँ सचु पावै। जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पै आवै।**
9. अलंकार – 'थकित खग' में उपमा अलंकार है।

**।। 61 ।।**

**बिलग जनि मानौ हमरी बात। डरपति वचन कठोर कहत, मति बिनु पतियों उठि जात।।**
**जो कोउ कहत जरे अपने कछु फिरि पाछे पछितात। जो प्रसाद पावत तुम ऊधो कृष्ण नाम लै खात।।**
**मनजुतिहारो हरि चरनन तर अचल रहत दिन रात। 'सूर श्याम ते जोग अधिक' केहि कहि आवत यह बात।।६१।।**

**शब्दार्थः** बिलग = बुरा। जनि = मत। मति = बुद्धि, विवेक। पति मर्यादा = लोक लज्जा। उठि जात = नष्ट हो जाती है। जरे अपने = अपना जी जलने पर। प्रसाद = सम्मान। तर = नीचे।

**प्रसंगः** गोपियाँ उद्धव के निर्गुण–ब्रह्म के उपदेश की प्रतिक्रियास्वरूप उन्हें पर्याप्त जली–कटी सुनाती हैं कि वे उनकी बात का बुरा न माने उनका कहना है कि–

**व्याख्याः** हे उद्धव ! तुम हमारी बातों का बुरा मत मानना और न ही इन्हें अन्यथा लेना। वस्तुतः तुम्हें कठोर वचन कहने में हम भय लगता है। क्योंकि विवेकहीन वार्ता करने से तुम्हारी तरह व्यक्ति की मर्यादा ही नष्ट हो जाती है। और न ही उसे लोक–लाज का ध्यान रहता है। तुम अपनी मर्यादा और लोक लज्जा दोनों खो चुके हो। इसी कारण तो हमें कृष्ण को त्यागकर निर्गुण ब्रह्म की ओर प्रवृत्ति करना चाहते हो यदि कोई व्यक्ति अपने मन के जल जाने अर्थात् वियोग से पीड़ित हो जाने पर कोई उल्टी–सीधी बात कह बैठता है तो बाद में उसके लिए पश्चाताप ही शेष रह जाता है। तुमने आते ही हमें अपने उपदेश के कारण दुःखी किया जिससे हम लोग उत्तेजना में आकर तुम्हारे लिए कठोर वचनों का प्रयोग कर बैठी, अब हमें इस बात का खेद है और हम हृदय से पछता रही हैं।

हे उद्धव ! यहाँ आने पर तुम्हें जो सम्मान, आदर, सत्कार मिला है, वह मात्र इसलिए कि तुम कृष्ण के सखा हो। तुम भी कृष्ण का नाम लेकर ही इस सम्मान (आदर) का भोग कर रहे हो, तुम कृष्ण के सखा (मित्र) हो सदा उनके सानिध्य में निवास कर रहे हो– अर्थात् तुम्हारा मन रात–दिन कृष्ण के चरणों में दृढ़ता से ध्यान मग्न रहता है फिर यह कहना किस प्रकार सम्भव हो सका कि योग निर्गुण–ब्रह्म, कृष्ण से श्रेष्ठ है – अर्थात् श्रेष्ठ कृष्ण भक्त होते हुए भी तुम उनके विषय में किस प्रकार अनर्गल (व्यर्थ) की बातें कह रहे हो। यह तो तुम्हारी भक्ति को शोभा नहीं देता और तुम्हें कृतघ्न (दयालु) सिद्ध करता है।

**विशेषः–**

1. गोपियों का उक्त पंक्तियों में अनपढ़, गँवार, वाक्चातुर्य अतुलनीय है।
2. युक्तिपूर्ण शब्दों का प्रयोग वाक्पटुता का सुन्दर रूप है।
3. कृष्ण भक्ति की प्रधानता।
4. कृष्ण के प्रति प्रेमभाव उत्पन्न करते हुए दूसरी ओर उन्हें कृतघ्न कहकर लज्जित भी कर रही है।
5. सरल बोद्धगम्य ब्रज भाषा का प्रयोग है।
6. निर्गुण ब्रह्म की उपासना की ओर प्रवृत्त करना है।
7. श्री कृष्ण की निष्ठुर प्रवृत्ति पर करारा व्यंग्य है।

**।। 62 ।।**

**काहे को रोकत मारग सूधो? सुनहु मधुप ! निर्गुन – कंटक ते राजपथ क्यों रूधो?**
**कै तुम सिखै पठाए कुब्जा, कै कही स्याम जू धौं। वेद पुरान समृति सब ढूढ़ौ जुवतिन जोग कहूँधों?**
**ताको कहा परेखो कीजै जानत छाछ ने दूधो। सूर–सूर अक्रूर गए लै ब्याज निवेरत ऊधो।।६२।।**

**शब्दार्थः** सूधो = सीधा, सरल, अकंटक। राजपथ = राजपथ के समान अकंटक, बाधा रहित। रूंधो = रोकते हो। कै = यातो। सिखै = सिखाकर। पठाए = भेजे गए हो। धौ = संभवतः। समृति = स्मृति। जुवतिन = युवतियाँ, नारियाँ। परेखो = बुरा मानना। सूर = मूलधन, मूलराशि। निवेरत = उगाहने, वसूल करने।

**प्रसंगः** गोपियों की दृष्टि में प्रेम का मार्ग सरल, सीधा और अकंटक होता है। किन्तु उद्धव बार–बार उन्हें योग और निर्गुण–ब्रह्म का उपदेश देकर कंटक युक्त टेढ़े–मेढ़े मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। इसलिए वे खीझ उठती हैं और उद्धव से कहती है कि वे उनके सीधे–सादे प्रेम मार्ग में बाधा उपस्थित न करे अर्थात् उनके प्रेमयुक्त रास्ते को अवरुद्ध न करें।

**व्याख्याः** हे उद्धव! तुम हमारे सीधे–सादे सरल प्रेम मार्ग में क्यों बाधा उत्पन्न कर रहे हो? योग–मार्ग का उपदेश देकर हमें प्रेम–मार्ग से विचलित न करो। हे मधुप ! हमारी बात सुनो राजपथ के समान प्रशस्त बाधा रहित, अकंटक प्रेम–मार्ग को तुम कंटकपूर्ण, अनुचित और कष्टदायक योग–मार्ग से क्यों अवरुद्ध कर रहे हो? तुम्हारा योग–मार्ग अनेक कठिन साधनाओं के कारण असाध्य है, इसलिए हम अपने सीधे–सादे, प्रेम–मार्ग को त्यागकर उसे नहीं अपना सकतीं। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि कुब्जा ने हमारे प्रति अपनी ईर्ष्या के कारण तुम्हें हमारे पास सिखा–पढ़ाकर भेजा है जिससे हम कृष्ण–प्रेम को भूल योग में भटकते रहें। वह कृष्ण के प्रेम का एकांकी भोग करें, उनके साथ रँगरेलियाँ मनाएँ, क्रीड़ा–विहार करें। उसे इस बात का भय है कि कहीं कृष्ण पुनः गोपियों की सुधि न कर बैठें और उसे त्यागकर हमारे पास न लौट आयें। अर्थात् उसे अपने प्रेम पर विश्वास नहीं जबकि हमें है। सम्भवतः कृष्ण ने ही यह सन्देश देकर तुम्हें यहाँ हमारे पास भेजा है। जिससे वह निष्कंटक (स्वतंत्ररूप से) कुब्जा के प्रेम को भोग सकें।

हे उद्धव! वेद पुराण स्मृतियाँ आदि सम्पूर्ण धार्मिक सार–ग्रंथों का अध्ययन करके देख लो। उनसे कहीं भी यह स्पष्ट नहीं होता कि कोमल नारियों को योग की शिक्षा देनी चाहिए। हम युवतियाँ तो प्रेम करने की वस्तु हैं, हमें क्या योग शोभा देगा? अब हम तुम्हारे जैसे दूध और छाछ में अन्तर न जाननेवाले मूर्ख की बात का क्या बुरा मानें? अर्थात् हमारे कृष्ण दूध के साथ सर्वगुण सम्पन्न हैं, तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म छाछ (मट्ठा) के समान सारहीन व्यर्थ हैं, किन्तु तुम उन दोनों में स्थित स्पष्ट अन्तर को समझ नहीं पा रहे हो, अतः तुम मूर्ख हो। हम तुम्हारी बात का बुरा नहीं मानती।

हे उद्धव! मूलधन (कृष्ण) को तो अक्रूर यहाँ से ले गए थे क्या तुम अब यहाँ ब्याज उगाहने आए हो? अर्थात् कृष्णरूपी मूलधन को अक्रूर हमसे छीनकर ले गए, अब यहाँ उनकी स्मृतिमात्र शेष है क्या तुम ब्याज के रूप में उस स्मृति को भी हमसे छीन लेना चाहते हो? इसी कारण हमें निर्गुण–ब्रह्म का उपदेश दे रहे हो।

**विशेषः–**

1. उक्त पद में प्रेम–मार्ग, योग मार्ग की अद्वितीय तुलना की गई है।
2. स्वछन्द कवि घनानन्द भी प्रेम मार्ग को अत्यन्त सीधा और सरल स्वीकारते हैं–
   **'अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकहु सपानप बाँक नहीं है।'**
3. 'सूर ..... उधौ' पँक्ति के भाव को रत्नाकर जी ने भी अपने 'उद्धव शतक' में पल्लवित किया है–
   **'लै गयो अक्रूर कूर तब सुख–मूर कान्ह, आए तुम आज प्रान–ब्याज उगहन कौ।'**
4. समस्त पद में 'उग्रता' नामक संचारी भाव व्याप्त है।
5. गोपियों की वाक्पटुता का मार्मिक चित्रण है।
6. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
7. निर्गुण ब्रह्म का उपदेश, कृष्ण प्रेम का सरल मार्मिक हृदयस्पर्शी चित्रण प्रस्तुत किया गया है।
8. शब्द योजना का सरल मार्मिक चित्रण है।
9. अलंकार– (क) 'निर्गुन कंटक' – रूपक (ख) 'राजपथ' – रूपकातिशयोक्ति।
   (ग) 'मूर उद्यौ' – लोकोक्ति

**।। 63 ।।**

**बातन सब कोऊ समुझावै। जेहि विधि मिलन मिलैं वै माधव सो विधि कोउ न बतावै।।**
**जद्यपि जतन अनेक रचीं पचि और अनत बिरमावै। तदपि हठी हमारे नयना और न देखे भावै।।**
**बासर–निसा प्रान बल्लभ तजि रसना और न गावै। सूरदास प्रभु प्रेमहिं लगि करि कहिए जो कहि आवै।।६३।।**

**शब्दार्थः** बातन = बातों द्वारा। पचि = थक गई। अनत = अन्यत्र। बिरमावै = विश्राम करते हैं। भावे = अच्छा लगता है। बासर–निशा = रात–दिन। तजि = त्याग, छोड़कर। रसना = जिह्वा। लगि = नाते से।

**प्रसंगः** उद्धव के निर्गुण ब्रह्म के उपदेश की प्रतिक्रिया स्वरूप गोपियाँ उसे अत्यन्त बुरा–भला कहती हैं और उन्हें वहां से चल जाने को बाध्य करती हैं किन्तु इस पर भी उद्धव अपना उपदेश जारी रखते हैं इस पर गोपियाँ खीज उठती हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ उद्धव के उपदेश पर खीझ उठती हैं कि सब लोग बातों से ही हमें समझाने का प्रयत्न करते हैं अर्थात सभी लोग बातों–बातों में ही रिझाना जानते हैं किन्तु कोई ऐसा उपाय नहीं बताता जिससे श्रीकृष्ण से हमारा मिलन सम्भव हो सके हम तो श्रीकृष्ण के दर्शन की प्यासी हैं। किन्तु लोग हमें कृष्ण के दर्शन का उपाय न बताकर केवल बातों से ही हमारा परितोष करना चाहते हैं। हमने उनसे मिलने के अनेक प्रयत्न किए किन्तु वह अन्यत्र अर्थात् कुब्जा के सानिध्य (देखरेख) में मथुरा में आनन्दपूर्ण विहार करते रहे, उन्होंने हमारी सुधि (खोज–खबर) नहीं ली। इतने पर भी हमारे हठीले नेत्र श्रीकृष्ण के दर्शनों के प्यासे हैं, इन्हें किसी अन्य को देखना रुचिकर नहीं लगता। हमारी जीभ रात–दिन प्राणप्रिय (प्रियतम) कृष्ण के गुणों का गान करती है उन्हें छोड़कर अन्य किसी के गुणगान में इसका मन नहीं रमता। यह सदैव उन्हीं के नाम की रट लगाए रखती है।

हे उद्धव ! तुम हमारे इस कृष्ण–प्रेम को चाहे जो समझो और चाहे जो कहो, इससे हमारे लिए कोई अन्तर नहीं पड़ने वाला हम तो मन से वचन से और कर्म से एकमात्र कृष्ण की ही अनुरागिनी हैं; अतः तुम्हारे उपदेशों का हम पर कोई प्रभाव पड़ना सम्भव नहीं।

**विशेषः–**

1. सम्पूर्ण पद में अमर्श नामक संचारीभाव व्याप्त है। 2.गोपियों की विवशता और कातरता की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।
3. उक्त पद में गोपियों की एकान्त प्रेम–निष्ठा। 4.कृष्ण के प्रति एकान्त समर्पण का भाव दर्शनीय है।
5. गोपियाँ कृष्ण की अनुरागिनी हैं। 6.गोपियों की मनोदशा का मार्मिक चित्रण है।
7. सुन्दर लयात्मकता। 8.सरल बोधगम्य भाषा का प्रयोग।
9. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग। 10.वियोग श्रृंगार रस का मार्मिक चित्रण।

**।। 64 ।।**

**निर्गुण कौन देस को वासी? मधुकर! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति सांच, न हाँसी।।**
**को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी? कैसो बरन भेस है कैसो केहि रस में अभिलासी।।**
**पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे! कहैगो गाँसी। सुनत मौन है रह्यो ठग्यो सो सूर सबै मति नासी।।६४।।**

**शब्दार्थः** वासी = निवासी। मधुकर = भ्रमर। सौंह दै = सौगंध देकर। बूझति = पूछती हैं। सांच= सत्य बात। हाँसी = हंसी नहीं कर रहीं। जनक = पिता। जननि = माता। नारि = पत्नी। दासी = सेविका। वरन = वर्ण, रंग। भेस = वेश–भूषा। गाँसी = कपट की बात। नासी = नष्ट हो गई। मति = बुद्धि, विवेक।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पंक्तियाँ भक्त शिरोमणि सूरदास के 'भ्रमरगीत' से ली गई हैं। ब्रज की गोपियों को उद्धव के निर्गुण–ब्रह्म पर विश्वास नहीं, अतः वे उनसे निर्गुण–बह्म की विषयक अत्यन्त मनोरंजनपूर्ण प्रश्न पूछकर उद्धव की हँसी उड़ा रही हैं। ऐसे प्रश्नों के समक्ष उद्धव का मौन होना स्वाभाविक है। सूरदास लिखते हैं:–

**व्याव्याः** गोपियाँ भ्रमर के माध्यम से उद्धव से पूछ रही हैं कि हे उद्धव! तुम्हारा यह निर्गुण–ब्रह्म वस्तुतः कौन से देश में निवास करता है? क्या उसका कोई पता ठिकाना भी है? हम तो अपने सगुण कृष्ण के निवास–स्थान से भली–भाँति परिचित हैं। हे मधुपरूपी उद्धव, हमें उसके निवास स्थान के विषय में प्रसन्न होकर भलीभाँति समझा दे। हम कसम खाकर कहती हैं कि हमें यह नहीं मालूम, इसी कारण हम तुमसे सच–सच पूछ रही हैं, हम तुमसे कोई हँसी नहीं कर रहीं, अतः तुम क्रोध न करके हमें निर्गुण–ब्रह्म के निवास के सम्बन्ध में ठीक–ठीक बता दो। तुम हमें यह भी बताओ कि तुम्हारे ब्रह्म का पिता कौन है, और उसकी जननी कही जाने का श्रेय किसे है, कौन उसकी पत्नी है, और कौन उसकी दासी है जो दिवा–रात्रि उसकी सेवा–टहल में व्यस्त

रहती है? उसका रूप–रंग और वेश–भूषा किस प्रकार की है। और किस प्रकार के कार्यों में उसकी रुचि है।

इन पँक्तियों में गोपियाँ उद्धव को सावधान करती हुई कहती हैं कि यदि उसने निर्गुण–ब्रह्मविषयक उक्त बातों के सम्बन्ध में कपटपूर्ण बात कही, झूठ बोला तो फिर उसे स्वयं अपनी इस करनी के अनुसार उचित फल भी भुगतना पड़ेगा। गोपियों के मुख से निकली हुई इस प्रकार की चातुर्यपूर्ण बातों को सुनकर उद्धव ठगे–से मौन खड़े रह गए, उनके मुख से एक भी शब्द न निकला। उनका समस्त ज्ञान, विवेक उनका साथ छोड़ता प्रतीत होता है।

**विशेष**:–

1. 'हँसि समझाय' का तात्पर्य है कि गोपियों को उद्धव के क्रुद्ध हो जाने की आशंका थी, अतः उन्होंने उनसे प्रसन्नचित्त सब कुछ बताने की प्रार्थना की।
2. 'को है ..... अभिलाषी', गोपियाँ जानती थीं कि निर्गुण–ब्रह्म इन सम्पूर्ण सम्बन्धों एवं विशेषताओं से परे है, ये प्रश्न केवल उद्धव को परेशान करने और उनकी हँसी उड़ाने के लिए किए गए हैं।
3. 'सुनत ..... नासी' से अभिप्राय यह है कि उद्धव ब्रह्मविषयक गोपियों के प्रश्नों को सुनकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए, क्योंकि वेद ने ब्रह्म के विषय में कहा है कि – 'न तस्य प्रतिमा अस्ति', तथा उपनिषद ब्रह्म के विषय में 'नेति–नेति' कहकर स्पष्ट करते हैं कि 'न तत्र चक्षुगच्छति न वाग् गच्छति न मनः।' अतः उद्धव ऐसे ब्रह्म का निरूपण करने में किस प्रकार सफल हो सकते थे? गोपियों ने वस्तुतः सब कुछ जानते हुए ही उद्धव को निरुत्तर कर देने के लिए ही ऐसे प्रश्न किए थे।
4. यह पद व्यंग्य--काव्य का सुन्दर उदाहरण है। संपूर्ण पद में गोपियों का उद्धव के प्रति व्यंग्य–भाव अत्यन्त रमणीय है। उनका वाग्वैदग्ध्य दृष्टव्य है वे उद्धव की हँसी भी उड़ाती है किंतु साथ–साथ उन्हें विश्वास भी दिलाती जा रही हैं कि वे ब्रह्म के विषय में जिज्ञासु है। व्यंग्यात्मक शैली द्वारा प्रस्तुत निर्गुण–ब्रह्म का खण्डन अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है। और कवि के काव्य कौशल का परिचायक है।

**।। 65 ।।**

**नाहिन रह्यो मन में ठौर। नंदनंदन अछत कैसे आनिए उर और?**
**चलत, चितवन, दिवस जागत, सपन सोदत राति। हृदय तें वह स्याम मूरति छन न इत उत जाति।।**
**कहत कथा अनेक ऊधो लोक–लाभ दिखाय। कहा करौं तन प्रेम–पूरन घट न सिंधु समाय।।**
**स्याम गात सरोज–आनन ललित अति मृदु हास। सूर ऐसे रूप–कारन मरत लोचन प्यास ।।६५।।**

**शब्दार्थः** नाहिन = नहीं है। ठौर = स्थान। अछत = रहते हुए। आनिए = लाए। उर = हृदय। दिवस = दिन। राति = रात। छन = एक पल भी। इत = इधर। उत = उधर। लोक–लाभ = सांसारिक लाभ। समाय = समाहित होना। गात = शरीर। सरोज–आनन = कमल के समान मुख। ललित = आकर्षक। मृदु = मधुर। हास = हँसी। रूप–कारन = रूप के लिए। लोचन = नेत्र।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश भक्ति काल के भक्त शिरोमणि सूरदास के भ्रमरगीत से लिया गया है। इसमें उद्धव के उपदेश की प्रतिक्रिया में अधिकांशतः गोपियाँ गम्भीर रही हैं। और उन्होंने निर्गुण–ब्रह्म को स्वीकार करने में अपनी विवशता प्रकट की है, कहीं–कहीं उन्होंने उद्धव की हँसी उड़ाई है किंतु ऐसे स्थल न्यून हैं। यहाँ पुनः वे कृष्ण–प्रेम को त्यागकर निर्गुण–ब्रह्म को अपनाने में अपनी असमर्थता दिखा रही हैं।

**व्याख्याः** सूरदास लिखते हैं कि निर्गुण–ब्रह्म को स्वीकार करने में अपनी विवशता प्रकट करती हुई गोपियाँ उद्धव से कह रही हैं कि कृष्ण हमारे मन में पहले से ही विराजमान हैं, अतः उसमें अन्य किसी के लिए स्थान नहीं रहा है। नंदनन्दन श्री कृष्ण के इस हृदय में रहते हुए, तुम ही बताओ उद्धव। हम किसी अन्य की अर्थात् निर्गुण–ब्रह्म को अपने हृदय में कैसे ला सकती हैं। इस प्रकार हम तुम्हारे निर्गुण–ब्रह्म को स्वीकार करने में पूर्णतया असमर्थ हैं क्योंकि उसे स्वीकार करने में हमें कृष्ण को अपने हृदय से विदा करना पड़ेगा जो हमारे लिए एक असम्भव कार्य है। हमें चलते–फिरते, इधर–उधर देखते हुए, दिन में जागृतावस्था में तथा रात्रि को सोते समय स्वप्नावस्था में श्रीकृष्ण की मधुर–मूर्ति लुभाती रहती है और हमारे हृदय से यह मोहनी मूरत क्षण भर के लिए भी ओझल नहीं होती। हम तो अपने जीवन में प्रत्येक अवस्था में श्रीकृष्ण के ध्यान में मग्न रहती हैं।

हे उद्धव ! तुम योग एवं निर्गुण–ब्रह्म सम्बन्धित अनेक कथा–वार्ता सुनाकर हमें सांसारिक लाभ का मार्ग सुझा रहे हो अर्थात् इस मार्ग पर चलकर हमारे लिए मोक्ष प्राप्ति का साधन उपलब्ध करा रहे हो। किंतु बाध्य हैं, हम तुम्हारे इस मार्ग को नहीं अपना

सकतीं, हम कृष्ण–प्रेम के लिए पुनः शरीर धारण करने के लिए भी तत्पर हैं। क्योंकि हमारा यह तन कृष्ण–प्रेम में परिपूर्ण है। और फिर जिस प्रकार सिंधु का जल एक छोटे से घड़े में नहीं समा सकता, उसी प्रकार हमारे नन्हे–से हृदय में भी तुम्हारा अनन्त ब्रह्म नहीं समा सकता।

श्रीकृष्ण का शरीर साँवला–सलोना है, उनका मुख कमल के समान सुन्दर और मनमोहक है, उनकी हँसी अत्यन्त मधुर और बरबस अपनी ओर खींचने वाली है। हमारे नेत्र कृष्ण की इस आकर्षक रूप–माधुरी का पान करके तृप्त होने के लिए व्याकुल बने रहते हैं।

**विशेषः–**

1. इस पद में गोपियों ने अपने हृदय में कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी के लिए स्थान न होने की बात कही है। भक्त कवि कबीर तथा रहीम ने इसी भाव को नेत्रों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है।

   कबीर के नेत्रों में प्रियतम बसे हुए हैं अतः वहाँ काजल की रेखा के लिए भी स्थान नहीं रहा –

   **"कबीरा काजर रेखहू अब तो दर्द न जाय। नैनन प्रीतम रमि रहा दूजा कहाँ समाय"।।**

   रहीम का कथन है कि प्रियतम की छवि नयनों में बसी हुई है। अतः अब वहाँ अन्य किसी के लिए स्थान नहीं रहा।

   **"प्रियतम छवि नयनन बसी, पर छवि कहाँ समाय। भरी सराय रहीम लखी, पथिक आय फिर जाय।।"**

2. प्रस्तुत पद में गोपियों की कृष्ण–प्रेम विषयक विवशता एकान्त दृढ़ प्रेम–निष्ठा की अभिव्यक्ति अत्यन्त मार्मिक है।
3. मनोहर लयात्मक है।
4. सूक्ष्म भावों की प्रबल अभिव्यक्ति है।
5. 'सरोज–आनन' में रूपक अलंकार।
6. 'चलत–चितवन' 'कहत कथा' में अनुप्रास अलंकार है।
7. आकर्षकगेयता।
8. ब्रजभाषा का प्रयोग।
9. माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति।
10. आकर्षण बिम्ब–विधान।

**।। 66 ।।**

**ब्रजजन सकल स्याम–ब्रतधारी। बिन गोपाल और नहिं जानत आन कहें व्याभिचारी।।**
**जोग मोट सिर बोझ आनि कै कत तुम घोष उतारी? इतनी दूरि जाहु चलि कासी जहाँ बिकति है प्यारी।।**
**यह संदेस नहिं सुनै तिहारा, है मंडली अनन्य हमारी। जो रसरीति करी हरि हमसों सो कत जात बिसारी?**
**महामुक्ति कोऊ नहिं बुझै, जदपि पदारथ चारी। सूरदास स्वामी मनमोहन मूरति की बलिहारी।।६६।।**

**शब्दार्थः** ब्रजजन = ब्रजवासी। सकल = सारे। स्याम–ब्रतधारी = कृष्ण–प्रेम का व्रत धारण करने वाले। आन = अन्य। मोट = गठरी। घोष = अहीरों की बस्ती–गोकुल। प्यारी = महँगी। तिहार = तुम्हारा। अनन्य = अनोखी, विचित्र। रसरीति = प्रेम–रस–विहार, प्रेम–क्रीड़ाएँ। बिसारी = भुलाई। कत = कैसे। पदारथ चारी = धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक चार पदार्थ

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश भक्ति काल के भक्त शिरोमणि सूरदास के भ्रमरगीत से लिया गया है इसमें गोपियों ने उद्धव के निर्गुण ब्रह्म विषयक उपदेश की प्रतिक्रिया–स्वरूप उसे स्वीकार करने में अपनी विवशता प्रदर्शित की है। वे कृष्ण–प्रेम के समक्ष मोक्ष को भी तुच्छ समझती हैं। उन्हीं की भाँति अन्य ब्रजवासी भी श्रीकृष्ण–प्रेमव्रतधारी हैं और कृष्ण–प्रेम के लिए मोक्ष को ठुकरा सकते हैं।

**व्याव्याः** हे उद्धव! हमारी तरह सम्पूर्ण ब्रजवासी भी कृष्ण–प्रेम के व्रत को दृढ़ता से धारण किए हुए हैं। वे कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी को प्रेम करना तो दूर रहा, उसके प्रति आकर्षित भी नहीं हो सकते। हम गोपाल कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानतीं। यदि हम किसी अन्य अर्थात् तुम्हारे निर्गुण–ब्रह्म की बातें भी करें तो हम व्यभिचारी कहीं जाएंगी क्योंकि पतिव्रता नारी किसी अन्य को अपने मन में नहीं ला सकती, यदि वह ऐसा करती हैं तो वह व्यभिचारिणी हैं हम कृष्ण की पतिव्रता हैं। हम तुम्हारे ब्रह्म का विचारकर व्यभिचारिणी बनना नहीं चाहतीं, तुमने अपनी योग की गठरी का भारी बोझ यहाँ अहीरो की बस्ती – गोकुल में लाकर क्यों उतारा है? यहाँ इस निरर्थक वस्तु का कोई ग्राहक नहीं। अतः उचित यही है कि तुम इसे यहाँ से दूर स्थित काशी ले जाओ, वहाँ के लोग इसका मर्म समझते हैं, अतः वहाँ यह महँगी बिक सकेगी।

हे उद्धव ! हमारी यह गोपियों की मण्डली अत्यन्त विलक्षण है और कृष्ण प्रेम में निमग्न है, अत' यहाँ तुम्हारा निर्गुण ब्रह्म सम्बन्धी उपदेश कोई सुनने वाला नहीं। हमारे साथ कृष्ण ने यहाँ प्रवास करते समय जो प्रेम–लीलाएँ की थीं क्या वे भुलाई जा सकती

हैं? उन प्रेम–क्रीड़ाओं की स्मृति के सम्मुख धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – चारों पदार्थों से युक्त महामुक्ति का कोई मूल्य नहीं अर्थात् व्यर्थ है, त्याज्य है। हमें तो कृष्ण–प्रेम में ही उक्त चार पदार्थों से युक्त महामुक्ति प्राप्त हो चुकी है। अतः निर्गुण–ब्रह्म के मार्ग पर चलकर प्राप्त होने वाली मुक्ति का हमारे लिए कोई आकर्षण नहीं। हम तो अपने स्वामी मनमोहन कृष्ण की सुन्दर मूर्ति पर अपने प्राण न्यौछावर करती हैं।

**विशेषः–**

1. 'इतनी–प्यारी'। काशी को योगियों का केन्द्र स्वीकार किया गया है। अतः गोपियों के मत में उद्धव का निर्गुण ब्रह्म सम्बन्धी उपदेश वहाँ के निवासियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। यहाँ ब्रज में तो सभी कृष्ण–प्रेम का व्रत धारण किए हुए हैं, यहाँ तो यह व्यर्थ की वस्तु है।
2. 'प्यारी' शब्द प्रादेशिक प्रयोग है। इसका प्रचलन पंजाब में है।
3. 'है मण्डली अनन्य हमारी' से गोपियों के कृष्ण–प्रेम की एकाग्रता सिद्ध होती है। इस प्रेम को कोई आकर्षण अथवा प्रलोभन प्रभावित नहीं कर सकता।
4. 'महामुक्ति ..... चारी' पँक्ति से यह भी अर्थ ग्रहण किया जा सकता है कि गोपियों को कृष्ण–प्रेम से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नामक चारों पदार्थ प्राप्त थे। अतः निर्गुण–ब्रह्म, जिसके अपनाने से उन्हें केवल मोक्ष ही प्राप्त होता, उनके लिए निरर्थक थे।
5. गोपियों ने कृष्ण–प्रेम के समक्ष मोक्ष को अग्रहणीय कहा है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी एक स्थल पर ऐसे ही भाव व्यक्त किए हैं –

**"जो जन तुम्हारे पद–कमल के असल मधु को जानते हैं। वे मुक्ति की भी कर अनिच्छा उसको तुच्छ मानते हैं"।।**

6. मनोहर लयात्मकता है।
7. सूक्ष्म भावों की प्रबल अभिव्यक्ति।
8. आकर्षकगेयता।
9. माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति।
10. आकर्षक बिम्ब–विधान।

**।। 67 ।।**

**कहति कहा ऊधो सों बौरी। जाको सुनत रहे हरि के ढिंग स्यामसखा यह सो री।**
**हमको जोग सिखावन आयो, यह तेरे मन आवत? कहा कहत री ! मैं पत्यात री नहीं सुनी कहावत।।**
**करनी भली भलेई जानैं, कपट कुटिल की खानि। हरि को सखा नहीं री माई ! यह मन निसचय जानि।।**
**कहाँ रास–रस कहाँ जोग–जप? इतनो अंतर भाखत। सूर सबै तुम कत भइँ बौरी याकी पति जो राखत।।६७।।**

**शब्दार्थः** बौरी = बावली, पगली। ढिंग = पास, समीप। सखा = मित्र। पत्यात = विश्वास करती हूँ। कपट = छल। खानि = खजाना। निसचय = निश्चय। भाखत = कहते हैं। कत = क्यों। याकी = इसकी। पति = विश्वास। राखत = करती हो।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश भक्ति काल के भक्त शिरोमणि सूरदास के 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। इसमें गोपियों के मत में योग का संदेश लाने वाले कृष्ण का सखा कभी नहीं हो सकता, वह कोई धूर्त और कपटी है, ऐसा समझकर गोपियाँ अप्रत्यक्ष रूप से उद्धव को जली–कटी सुना रही हैं।

**व्याख्याः** सूरदास लिखते हैं कि उद्धव का उपदेश सुनने के उपरान्त एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है कि हे पगली ! तू उद्धव से क्या बात कर रही है? अरी पगली यह श्याम का सखा है जो सदा उनके पास निवास करता है। और जिसके विषय में हम कबसे सुनती आ रही हैं। क्या तू यह समझती है कि यह यहाँ हमें योग की शिक्षा प्रदान करने आया है? आखिर तू कह क्या रही है, मुझे तो इस बात पर विश्वास ही नहीं आता कि यह यहाँ हमें योग का उपदेश देने आया है। तूने वह कहावत तो सुनी ही होगी कि सज्जन और भले लोग अपनी प्रकृति के अनुसार दूसरों की भलाई में रत रहते हैं और नीच मनुष्य अत्यन्त कपटी होते हैं। और दूसरों का कार्य बिगाड़ने में प्रसन्नता अनुभव करते हैं। अतः हे सखी। यह कृष्ण का सखा नहीं है, यह तू अपने मन में निश्चय जान ले। यह तो कोई धूर्त और कपटी है जो कृष्ण के सखा के रूप में हमसे छल करने आया है। कृष्ण स्वयं

भले हैं, तो उनका मित्र इतना धूर्त किस प्रकार हो सकता है। क्योंकि यह हमारे कृष्ण–प्रेम को तुच्छ बताकर हमें निर्गुण ब्रह्म को अपना लेने के उपदेश दे रहा है। और इस प्रकार हमें श्रेष्ठ प्रेम–मार्ग से हटाकर दुर्गुणपूर्ण निर्गुण–मार्ग पर चलाना चाहता है। हे सखी ! तनिक इस बात पर तो विचार करो, कि कहाँ तो कृष्ण के साथ प्रेम विहार, क्रीड़ाओं का आनंद और कहाँ योग–साधना तथा तपस्या का कठिन कार्य। यह किस प्रकार दो परस्पर–विरोधी बातें कर रहा है। यदि यह कृष्ण का सखा होता तो हम उनके प्रेम से विमुख होकर योग–तपस्या का उपदेश न देता। क्या तुम सब पागल हो गई हो जो इसकी बातों का विश्वास करके इस कृष्ण के सखा के समान आदर दे रही हो। यह तो कोई छलिया है। जिसे अपमानित करके यहाँ से भगा देना ही उचित है।

**विशेषः–**

1. इस पद में अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य–ध्वनि का प्रयोग हुआ है जिसके आधार पर गोपियाँ उद्धव को अत्यन्त खरी–खोटी सुना रही हैं।
2. इस पद का व्यंग्य अत्यन्त मार्मिक और चुभनेवाला है।
3. गोपियों द्वारा परस्पर बातें करने का ढंग, एक दूसरी को बावली, पगली कहना और री जैसे सम्बोधन का अनकश प्रयोग करना उनके उत्कृष्ट वाग्वैदग्ध्य का प्रमाण है और इससे उनकी परस्पर अनौपचारिकता का भी परिचय मिलता है।
4. 'करनी ..... खानि' पंक्ति में एक विख्यात लोकोक्ति के प्रयोग से इस पद के सौन्दर्य में वृद्धि हुई है।
5. मनोहर लयात्मकता।
6. आकर्षक गेयता।
7. सूक्ष्म भावों की प्रबल अभिव्यक्ति है।
8. ब्रजभाषा का प्रयोग।
9. 'कपट कुटिल की खानि' में वृत्यानुप्रास अलंकार।

**।। 68 ।।**

**ऐसेई जन दूत कहावत। मोको एक अचयो आवत या में ये कह पावत?**
**बचन कठोर कहत, काहि दाहत, अपनी महत गँवावत। ऐसी परकृति परति छाँह की जुवतिन ज्ञान बुझावत।।**
**आपुन निलज रहत नखसिख लौं एते पर पुनि गावत। सूर करत परसँसा अपनी, हारेहु जीति कहावत।।६८।।**

**शब्दार्थः** ऐसेई = ऐसे। जन = आदमी। मोको = मुझे। या में = इसमें। महत = महत्ता, गुरुत्व, सम्मान। परकृति = प्रकृति, संसर्ग अथवा छाया का प्रभाव। जुवतिन = युवतियों, अबलाओं, गोपियों को। बुझावत = समझाते हैं। आपुन = स्वयं। निलज = निर्लज्ज। नखसिख = नौ = ऊपर से नीचे तक पूरी तरह। एते पर = इतने पर भी। गावत = चर्चा करते हैं। परसंसा = प्रशंसा। हारेहु = हार।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश भक्ति काल के भक्त शिरोमणि सूरदास के 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। इसमें गोपियाँ योग का संदेश लाने वाले उद्धव को छली–कपटी सिद्ध करते हुए उनके संदेश पर कटाक्ष कर रही हैं। उनके मत में सफल दूत वही है जो वास्तविक संदेश न कहकर इधर–उधर की झूठी बातें गढ़कर सुनाया करता है।

**व्याख्याः** गोपियाँ उद्धव के संदेश की सत्यता पर संदेह करती हुई उनके योग पर व्यंग्य करती हुई परस्पर वार्तालाप करती हुई कहती हैं कि वस्तुतः ऐसे ही लोग सफल दूत कहे जाते हैं जो वास्तविक संदेश न कहकर इधर–उधर की बातें गढ़कर सुनाया करते हैं। सच बात तो यह है कि कृष्ण ने उद्धव के द्वारा हमें योग का संदेश न भेजकर कोई अन्य सदेश भेजा होगा। किंतु उद्धव कृष्ण के द्वारा हमें उस संदेश को हमसे न कहकर अपनी ओर से योग संदेश दे रहे हैं। मुझे इस बात का आश्चर्य है कि ऐसा करने से अर्थात् योग का संदेश सुनाकर हमें संतप्त करने से इन्हें क्या लाभ होता है? ऐसे लोग दूसरों से कठोर वचन कहते हैं जैसे उद्धव हमसे कृष्ण को भुलाकर निर्गुण–ब्रह्म की उपासना करने को कह रहे हैं, इस प्रकार के वचनों से दूसरों को दुःखी करते हैं, संतप्त करते हैं और इस प्रकार अपनी महत्ता, सम्मान भी गँवा बैठते हैं।

वस्तुतः संगति का प्रत्येक व्यक्ति पर प्रभाव प्रड़ता है जिसके कारण वह बौरा जाता है। और ऊटपटांग बातें करने लगता है, उद्धव इसके साक्षात् प्रमाण है कुब्जा की संगति के कारण इनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। जिससे हम अबलाओं को योग और निर्गुण–ब्रह्म की शिक्षा देने यहाँ आ गए हैं। यह समझ नहीं रहे कि इनका यह कार्य कितना अनुचित है। ऐसे लोग पूरी तरह निर्लज्ज होते

हैं, वे अपने उक्त प्रकार के निर्लज्ज कार्यों के लिए लज्जा अनुभव न करके निरन्तर अपनी ही–हाँके चले जाते हैं। ये लोग स्वयं अपनी ही प्रशंसा में रत रहते हैं तथा अपनी पराजय को भी विजय कहते हैं। अर्थात् उद्धव विवेक में हमसे पराजित हो चुके हैं क्योंकि इनसे हमारी एक बात का उत्तर देते नहीं बनता किंतु फिर भी वह स्वयं को विजयी घोषित कर रहे हैं और निरन्तर निर्गुण–ब्रह्म सम्बन्धी अपनी रट लगाए हुए हैं।

**विशेषः–**

1. इस पद में व्यंग्य की अभिव्यक्ति अत्यन्त मार्मिक है। उद्धव के साथ कुब्जा पर भी व्यंग्य किया गया है।
2. गोपियों को उद्धव की सज्जनता पर संदेह नहीं, यह तो कुब्जा की संगति का प्रभाव है कि वह अपना विवेक खो बैठे हैं, और हम अबलाओं को योग की शिक्षा देने आ गए हैं।
3. कुब्जा स्वयं निर्लज्ज हैं। जो हमारे प्रेम को स्वयं भोग रही है। उसके सामीप्य रहकर उद्धव भी पूरी तरह निर्लज्ज हो गए हैं और अपनी हार को भी जीत का दर्जा दे रहे हैं।
4. गोपियों की उद्धव के प्रति प्रयुक्त इन कटुक्तियों से संस्कृत की यह लोकोक्ति स्मरण हो आती है कि लज्जा को छोड़ने से त्रिलोक भी विजय हो सकता है – "लज्जामेकां परित्यज्य त्रैलोक्य विजयी भवेत्।"
5. मनोहर लयात्मकता।
6. आकर्षक बिम्ब–विधान।
7. ब्रजभाषा प्रयोग।
8. आकर्षकगेयता।
9. 'कठोर कहत कहि' में वृत्यानुप्रास अलंकार।

**।। 69 ।।**

**प्रकृति जोई जाके अंग परी। स्वान–पूँछ कोटिक जो लागै सूधि न काहूकरी।।**
**जैसे काग भच्छ नहि छाँड़े जनपत जौन धरी। धोये रंग जात कहु कैसे ज्यौं कारी कमरी?**
**ज्यों अहि डसत उदर नहि पूरत ऐसी धरनि धरि। सूर होउ सो होउ सोच नहिं, तैसे हैं एउ री।।६६।।**

**शब्दार्थः** प्रकृति = स्वाभाव, आदत। स्वान = कुत्ता। कोटिक = करोड़ों। सूधि = सीधी। न काहुकरी = कोई नहीं कर सका। काग = कौआ। भच्छ = खाने न खाने योग्य पदार्थ। कारी कमरी = काला कम्बल। अहि = सर्प। जनमत = जन्म लेते ही। जौन धरी = जिस समय। धरनि धरि = टेक पकड़ रखी है, स्वभाव बन गया है। एउ = यह भी।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश भक्ति काल के भक्त शिरोमणि सूरदास के 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। इसमें गोपियों के खीझने पर भी उद्धव योग और निर्गुण–ब्रह्म सम्बन्धी अपना उपदेश जारी रखते हैं जिस पर गोपियाँ और अधिक झल्ला उठती हैं और उन पर तथा उनके स्वभाव पर फब्तियाँ कसना आरम्भ कर देती हैं।

**व्याख्याः** एक गोपी अन्य गोपियों से कहती है कि जिसका जैसा स्वभाव हो जाता है, उसे फिर बदला नहीं जा सकता। करोड़ों प्रयत्न पर भी कुत्ते की पूँछ को आज तक कोई सीधा नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि पूँछ का स्वभाव सदा टेढ़ा हो गया है, अब उसे सीधा किया ही नहीं जा सकता, कौआ जन्म से भक्ष्याभक्ष्य अर्थात् खाने–न–खाने योग्य पदार्थों को खाना आरम्भ करता है और अपने सम्पूर्ण जीवन में इस स्वभाव को नहीं छोड़ता। अच्छा यह बताओ कि धोने से काले कम्बल का रंग उतर सकता है। यद्यपि सर्प का दूसरों को डसने से पेट नहीं भरता क्योंकि उसके पेट में तो कुछ जाता ही नहीं तथापि डसने का उसका स्वभाव पड़ गया है, इसे वह नहीं छोड़ता। यह उद्धव भी ऐसे हैं, दूसरों को दुःखी करने का इनका स्वभाव बन गया है। अतः इन्हें तो इसी बात में आनन्द मिल रहा है, इन्हें इस बात की कोई चिंता नहीं कि इनके इस व्यवहार का क्या परिणाम निकलने वाला है।

**विशेषः–**

1. 'धोये ..... कमरी' – इस पंक्ति के भाव को कवि ने एक अन्य स्थल पर इस प्रकार व्यक्त किया है।

**'सूरदास प्रभु कारी कामरि, चढ़े न दूजौ रंग।'**

2. गोपियों ने मानव स्वभाव का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए उद्धव पर मार्मिक कटाक्ष किए हैं। उर्दू के प्रसिद्ध कवि अकबर इलाहाबादी ने भी स्वभाव के विषय में लगभग इसी प्रकार की बात कही है।

**'आदत जो पड़ी हो पहले से, वह दूर भला कब होती है। पाकिट में रखी चुनौटी, पतलून के नीचे धोती है।।**
**नसीहत का असर क्या खाक होगा ऐसे पागल पर। चढ़ाते हो गुलाबी रंग तुम भी काले कम्बल पर।।**

3. दूसरी से चौथी पंक्ति में स्वभावोक्ति अलंकार। 4. मनोहर लयात्मकता।
5. आकर्षक गेयता। 6. मधुर भावों की अभिव्यक्ति।
7. ब्रजभाषा का प्रयोग। 8. 'स्वान–पूँछ... करी' में अर्थान्तरन्यास अलंकार।

**।। 70 ।।**

**तौ हम मानै बात तुम्हारी। अपनो ब्रह्म दिखावहु ऊधो मुकुट–पिताम्बरधारी।।**
**भजि हैं तब ताको सब गोपी सहि रहि हैं बरू गारी। भूत समान बतावत हमको जारहु स्याम बिसारी।।**
**जे मुख सदा सुधा अंचवत हैं ते विष क्यों अधिकारी। सूरदास प्रभु एक अंग पर रीझि रहीं ब्रजनारी।।७०।।**

**शब्दार्थः** बरू = भले ही। गारी = गाली, चरित्रहीन होने की गाली। भूत–समान = छायामात्र, आकार रहित। जारहु = दग्ध करते हो। बिसारी = भुलाकर। अंचवत = आचमन करते हैं, पान करते हैं। रीझि = मुग्ध हुई।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश भक्ति काल के भक्त शिरोमणि सूरदास के 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। इसमें उद्धव के निर्गुण–ब्रह्म के उपदेश की प्रतिक्रियास्वरूप गोपियाँ अत्यन्त दुःखी हैं फिर भी उन्हें नीचा दिखाने का कोई भी अवसर हाथ से नहीं जाने देतीं। यहाँ वे अपने वाग्वैदग्ध्य द्वारा उद्धव के सम्मुख एक शर्त प्रस्तुत करके उन्हें छकाने का प्रयत्न कर रही हैं।

**व्याख्याः** हे उद्धव ! एक शर्त पर तुम्हारी बात मानकर हम तुम्हारे ब्रह्म को स्वीकार कर लेंगी। वह शर्त यह है कि तुम अपने ब्रह्म के मोर–मुकुट तथा पीताम्बर धारण किए हुए दर्शन करा दो। अर्थात् यदि तुम्हारा ब्रह्म कृष्ण का वेश धारण कर हमारे सम्मुख आता है तो उसे स्वीकार करने में हमें कोई संकोच नहीं होगा। हम सब गोपियाँ फिर उसी ब्रह्म का ध्यान–भजन करने लगेंगी। भले ही इसके लिए उन्हें संसार चरित्रहीन कुलटा होने की गाली दे, वे इसे भी सहन कर लेंगी। किंतु हमें यह सम्भव प्रतीत नहीं होता क्योंकि तुम अपने ब्रह्म को छायाहीन अर्थात् आकारहीन बताते हो, अतः उसका मोर–मुकुट और पीताम्बर धारण करना असम्भव ही है, इस पर हम कृष्ण को भुलाकर उसे स्वीकार नहीं कर सकतीं। तुम ऐसा कहकर हमें अत्यन्त पीड़ा पहुँचा रहे हो, दग्ध कर रहे हो। इस प्रकार एक तो हम कृष्ण को भुला देंगी और दूसरी ओर तुम्हारे आकारहीन अर्थात् आभास मात्र ब्रह्म को भी प्राप्त नहीं कर सकेंगी। इस प्रकार हमारे लिए तो दोनों ओर दुःख–ही–दुःख है। हम तो सदा अपने मुख से अमृतपान करती आई हैं, उसी मुख से आज विष का पान किस प्रकार कर सकती हैं? अर्थात् हमारा मुख अमृत के समान प्राणदायक एवं मधुर कृष्ण का नाम स्मरण करने का अभ्यस्त हो चुका है, वह आज तुम्हारे विष के समान घातक एवं कटु ब्रह्म का नाम किस प्रकार जप सकता है।

हे उद्धव ! सम्पूर्ण ब्रजनारियाँ तो अपने प्रमुखी के मनोहर शरीर पर मुग्ध हैं, वे उन्हें त्यागकर तुम्हारे शरीर–विहीन निराकर ब्रह्म को स्वीकार नहीं कर सकतीं।

**विशेषः–**

1. यह पद गोपियों के वाकचातुर्य का सुन्दर उदाहरण है। वे उद्धव के सम्मुख ऐसी शर्त प्रस्तुत कर रही हैं जिनकी पूर्ति सम्भव नहीं।

   **यहै सुनत ही नयन पराने**
   **जबहीं सुनत बात तुव मुख की रोवत रमत ढराने।।**

2. विप्रलेभ शृंगार। 3. कृष्ण के प्रति अटूट प्रेम–चित्रण।
4. आकर्षक गेयता। 5. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
6. मधुर भावों की अभिव्यक्ति। 7. मनोहर लयात्मकता।
8. सूक्ष्म भावों की प्रबल अभिव्यक्ति। 9. आकर्षक बिम्ब–विधान।
10. अत्यन्त 'मार्मिक प्रेम अभिव्यक्ति'।

।। 71 ।।

**बारंबार स्यामघन घन तें भाजत फिरत लुकाने। हमको नहिं पतियात तबहिं ते जब ब्रज आपु समाने।।**
**नातरू यहौ काछ हम काछति वै यस जानि छपाने। सूर दोष हमरे सिर धरिहौ तुम हो बड़े सयाने।।७१।।**

**शब्दार्थः** पराने = पलायन करते हैं, भाग खड़े होते हैं। तुव = तुम्हारे। रमत = व्यस्त हो जाते हैं। ढराने = ढुलक गए। भाजत = भागते। लुकाने = छिपाने के लिए। पतियात = विश्वास करते। आपु = अपने। समाने = समाए हैं। नातक = नहीं तो। काछ हम काछति = वेश धारण करतीं। छपाने = छिप गए हैं।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश भक्ति काल के भक्त शिरोमणि सूरदास के 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। इसमें उद्धव के निर्गुण–ब्रह्म के उपदेश पर गोपियाँ अत्यन्त दुखी हैं, उन्हें यह उपदेश अति भयानक लगता है। वे बाध्य हैं। वे निर्गुण–ब्रह्म को स्वीकार नहीं कर सकतीं क्योंकि उनके नेत्र निर्गुण–ब्रह्म का उपदेश सुनते ही डरकर भाग खड़े होते हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ दुःखी होकर अपने नेत्रों की व्याकुल, भयभीत दशा का वर्णन करती हुई उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव ! तुम्हारी निर्गुण–ब्रह्म सम्बन्धी बातें सुनते ही हमारे नेत्र भयभीत होकर भाग खड़े हुए हैं। जैसे ही ये तुम्हारे मुख से इस प्रकार की बातें सुनते हैं, तुरन्त ही इनमें आँसू ढुलक आते हैं और ये बंद हो जाते हैं। वस्तुतः ये नेत्र कृष्ण के रूप–दर्शन के उपासक हैं। तुम्हारी बातें सुनकर उन्हें यह शंका होने लगती है कि हम तुम्हारी बातों में आकर कृष्ण को त्याग कर निर्गुण–ब्रह्म को स्वीकार कर लेंगी और इस प्रकार ये नयन कृष्ण–दर्शन से सदैव के लिए वंचित हो जाएंगे। इसी कारण ये भयभीत हैं और तुम्हारे उपदेश आरम्भ करते ही भाग खड़े होते हैं। अब तो इनकी यह दशा है कि वर्षा ऋतु में श्याम रंग के बादलों को देखकर उनसे छिपने के लिए ये इधर–उधर भागते फिरते हैं। इसका कारण यह है कि एक तो काले बादलों को देखकर इन्हें कृष्ण की स्मृति हो आती है, दूसरे सभी काले रंगवालों ने धोखा दिया है, अतः ये काले मेघों से भी अब डरने लगे हैं। काले कृष्ण इनकी भावनाओं का निरादर करके इन्हें छोड़ गए, काले अक्रूर इनके प्रिय कृष्ण को इनसे दूर ले गए और अब श्याम–वर्णीय उद्धव कृष्ण की स्मृति को ही ले जाने के लिए ब्रज आए हुए हैं।

हे उद्धव ! जबसे आप ब्रज में आकर विराजमान हुए हैं, तबसे हमारे ये नेत्र हमारा भी विश्वास नहीं करते। इन्हें इस बात का संदेह है कि हम तुम्हारी बात मानकर निर्गुण–ब्रह्म को स्वीकार कर लेंगी, इस कारण ये छिप गए हैं। वस्तुतः यदि हमारे नेत्र मुँद न जाते तो हम तुम्हारे उपदेशानुसार वही योगियों का वेश अब तक धारण कर चुकी होतीं और इस प्रकार योग–साधना के मार्ग को अपना लेतीं। अब जबकि ये नेत्र ही हमारे अधिकार में न रहे, ब्रह्म–दर्शन हम किस प्रकार करेंगी? यह हमारे लिए असम्भव है। अतः हम बाध्य हैं, तुम्हारी बात स्वीकार करने में असमर्थ हैं। यद्यपि इसमें हमारा कोई दोष नहीं, पर तुम स्वयं को अधिक विवेकशील समझते हो, अतः सारा दोष हमारे सिर पर थोप दोगे।

**विशेषः–**

1. गोपियों का वाक्चातुर्य यहाँ दर्शनीय है। वह निर्गुण–ब्रह्म को स्वीकार करने की असमर्थता प्रकट करते हुए, इसमें सारा दोष अपने नेत्रों पर थोप रही हैं। नेत्रों के कारण वे बाध्य हैं क्योंकि उनके नेत्र कृष्ण की रूप–माधुरी में पगे हुए हैं, अतः निर्गुण–ब्रह्म की बात चलते ही भाग खड़े होते हैं।
2. 'सूर ..... सयाने' पंक्ति अत्यन्त मार्मिक है। इसमें उद्धव की विवेकशीलता पर करारी चोट की गई है।
3. आकर्षकगेयता है।
4. मधुर लयात्मकता है।
5. मधुर भावों की अभिव्यक्ति।
6. सूक्ष्म भावों की प्रबल अभिव्यक्ति है।
7. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
8. आकर्षक बिम्ब–विधान।

।। 72 ।।

**नयननि वहै रूप जो देख्यो। तो ऊधो यह जीवन जग को साँचु सफल करि लेख्यो।।**
**लोचन चारू चपल खंजन, मनरंजन हृदय हमारे। रुचिर कमल मृग मीन मनोहर स्वेत अरुन अरू कारे।**
**रतन जटिल कुंडल श्रवननि वर, गंड कपोलनि झाँई। मनु दिनकर – प्रतिबिंब मुकर महँ ढूँढ़त यह छबि पाई।।**
***मुरली अधर विकट भौहैं करि ठाढ़े होत त्रिभंग। मुकुतमाल उर नीलसिखर तें धंसि धरनी ज्यों गंग।।***
**और भेस को कहै बरनि सब अंग अंग केसरि खौर। देखत बनै, कहत रसना सो सूर बिलोकत और।।७२।।**

**शब्दार्थः** लेख्यो = समझें। लोचन = नेत्र। चारू = सुन्दर, रमणीक। चपल = चंचल। रुचिर = मनोहारी। श्रवनानि = कान। गड = गर्दन। झाँई = परछाई। दिनकर–प्रतिबिम्ब = सूर्य का प्रतिबिम्ब। मुकुर = दर्पण। त्रिभंग = तीन जगह से टेढा शरीर त्रिभंगी मुद्रा। मुकुतमाल = मोतियों की माला। नील सिखर = पर्वत का नील शिखर। धंसि = घुसकर। धरनी = पृथ्वी। बरनि = वर्णन। खौर = तिरक। और = अन्य।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश भक्ति काल के भक्त शिरोमणि सूरदास के 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। इसमें गोपियाँ अपने नेत्रों द्वारा देखे हुए कृष्ण के अनुपम मनोहर रूप का वर्णन करती हुई कहती हैं कि हे उद्धव ! यदि हम अपने नेत्रों से कृष्ण के उसी मनोहर रूप के पुनः दर्शन कर लें, इस संसार में प्राप्त अपने जीवन को सार्थक स्वीकार कर लें, सचमुच सफल हुआ समझ लें। कृष्ण के खंजन पक्षी के समान सुन्दर और चंचल नेत्र हमारे हृदय को प्रसन्न करने वाले हैं। उनके वे नेत्र कमल, मृग और मछली के नेत्रों के समान सुन्दर एवं मनोहरी हैं। वे खेत, लाल और काले रंगों का अद्‌भुत मिश्रण हैं – अर्थात् उनके नेत्रों की पुतली काली है, आस–पास का भाग श्वेत है तथा लाल डोरे हैं; इस प्रकार उनमें इन तीनों रंगों की अद्‌भुत छटा दिखाई देती है। कृष्ण के कानों में रत्नजड़ित कुण्डल लटके रहते हैं जिनकी सुन्दर झलक उनकी गर्दन तथा कपोलों पर पड़ती है। इस झलक से ऐसा प्रतीत होता है मानो दर्पण में अपना प्रतिबिंब ढूँढ़ रहा हो, और उसकी इस खोज में ऐसी शोभा उत्पन्न हो रही है।

कृष्ण अधरों पर मुरली धारण किए हुए उसे बजाने के प्रयत्न में जब अपनी भौंहे टेढ़ी करके त्रिभंगी मुद्रा में खड़े होते हैं। तो उनकी छवि हमारे मन को मोह लेती है। कृष्ण के वक्षस्थल पर खड़ी मोतियों की माला इस प्रकार सुशोभित हो रही है मानो पर्वत के नीचे शिखर से उतरकर गंगा धरती पर आ गई हो। हम कृष्ण के अन्य वेश का वर्णन कहाँ तक करें। कसर के तिलकों से शोभायमान उनके संपूर्ण अंग–प्रत्यंग अत्यन्त मनोहारी दृश्य प्रस्तुत करते हैं। उनके इस सौन्दर्य का वर्णन करना मानव–रसना के लिए असंभव है। क्योंकि नेत्र देखते हैं, अनुभव करते हैं किंतु वर्णन करने में असमर्थ हैं जबकि जिह्वा देख न पाने के कारण सौन्दर्य का वर्णन नहीं कर पाती। इस प्रकार इन दोनों इन्द्रियों की अपूर्णता के कारण कृष्ण के स्वर्णिम सौन्दर्य का वर्णन असम्भव है क्योंकि एक की अनुभूति को दूसरा अभिव्यक्त नहीं कर पाता।

**विशेषः–**

1. सम्पूर्ण पद में कृष्ण के अनिर्वचनीय एवं अनिन्द्य सौन्दर्य का अत्यन्त मार्मिक वर्णन हुआ है।
2. 'रुधिर ..... कारे' पंक्ति के भाव से मिलता–जुलता भाव रसलीन कवि बिहारी ने भी एक दोहे में प्रस्तुत किया है। **'अमिय हलाहल मद भरे, स्वेत स्याम रतनार। जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत इकबार।।'**
3. 'रतन ..... छवि पाई' ..... यहाँ कुण्डल सूर्य तथा कपोल दर्पण के समान है जिस प्रकार सूर्य का प्रतिबिंब दर्पण में पड़कर सतरंग हो जाता है। वैसे ही विभिन्न प्रकार के रंगों वाले रत्नोजड़ित कुण्डलों को प्रतिबिम्ब गण्डस्थल और कपोलों पर पड़कर सतरंगा बन जाता है। और अद्‌भुत छवि उत्पन्न करता है। गण्डस्थल और कपोलों दर्पण के समान स्वच्छ और चिकने हैं; इसी कारण उन पर कुण्डलों की परछाई प्रतिबिम्बित हो रही है।
4. 'मुरली ..... त्रिभंग' – मुरली बजाते समय गर्दन, कमर और पैर तिरछी मुद्रा में रहते हैं, इसी कारण उसे त्रिभंगी मुद्रा अथवा तीन स्थलों से टेढ़ी छवि कहा जाता है।
5. 'मुकुतमाल ..... गंग' यहाँ नील ग्रीवा नील शिखर, मोतियों की माला श्वेत गंगा तथा विस्तृत वक्षस्थल धरती के समान है।
6. अन्तिम पंक्ति का वास्तविक भाव यह है कि कृष्ण का सौंदर्य अनिर्वचनीय है। महाकवि तुलसी ने इस पंक्ति के भाव को दो स्थलों पर विभिन्न रूप से अभिव्यक्त किया है–
   (क) 'अबस देखिये देखन जोगू।'
   (ख) 'गिरा अनयन नयत बिनु बानी।'
7. 'लोचन ..... हमारे में लुप्तोपमा अलंकार है।
8. 'मनु ..... पाई में वस्तुप्रेक्षा अलंकार है।
9. 'रुधिर ..... कारे' में क्रम अलंकार है।
10. 'धरनी ..... गंग' में पूर्णोपमा अलंकार है।
11. सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति।
12. ब्रजभाषा का अच्छा प्रयोग।

**।। 73 ।।**

**नयनन नंदनंदन ध्यान। तहाँ लै उपदेस दीजै जहाँ निरगुन ज्ञान।।**
**पानिपल्लव–रेख गनि गुन–अवधि बिधि–बंधान। इते पर कहि कटुक बचनन हनत जैसे प्रान।।**
**चंद्र कोटि प्रकास मुख; अवतंस कोटिक भान। कोटि मन्मथ वारि छवि पर, निरखि दीजित दान।।**
**भृकुटि कोटि कुदंड रुचि अवलोक़नी संधान। कोटि बारिज बंक नयन कटाच्छु कोटिक बान।।**
**कंबु ग्रीवा रतनहार उदार डर मनि जान। अजानुबाहु उदार अति कर पद्म सुधानिधान।।**
**स्याम तन पटपीत की छवि करै कौन बखान? मनहु निर्तत नील धन में तड़ित अति दुतिमान।।**
**रामरसिक गोपाल मिलि मधु अधर करती पान। सूर ऐसे रूप बिनु कोउ कहा रच्छक आन।।७३।।**

**शब्दार्थः** गनि = गिनकर, समझकर। गुन–अवधि = सर्वगुण–सम्पन्न। विधि–बंधान = ब्रह्मा की रचना। इते पर = इतने पर। हनन = मारते हो। अवतंस = मुकुट, कुण्डल। भानु = सूर्य। मन्मय = कामदेव। वारि = न्यौंछावर। दीजित = दिया है। कुदण्ड = कोदण्ड, धनुष। अवलोकननी = चितवन। संधान = धनुष की प्रत्यंचा खींचना। बारिज = कमल। बंक = तिरछे, टेढ़े। कंबु = शंख। ग्रीवा = गर्दन। उदार उर = विस्तृत वक्षस्थल। मनि = मणियों की माला। अजानुबाहु = घुटनों तक लम्बी एवं विशाल भुजाएँ। पद्म = कमल। सुधानिधान = अमृतसागर। बखान = वर्णन। निर्तन = नृत्य करती हुई। तड़ित = बिजली। दुतिमान = प्रकाशवान। आन = अन्य। रच्छक = रक्षक।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश भक्ति काल के भक्त शिरोमणि सूरदास के 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। इसमें गोपियाँ उद्धव के नीरस निर्गुण–ब्रह्म से चिढ़ चुकी हैं। वह उसकी तुलना में अपने अद्भुत, अनुपम, सुन्दर प्रियतम का वर्णन करते हुए उन्हें निर्गुण–ब्रह्म से श्रेष्ठ सिद्ध करके यह स्पष्ट करती है कि ऐसी रूप राशि के सम्मुख उद्धव के अनुरूप, नीरस ब्रह्म को ब्रज में स्वीकार करने वाला कोई नहीं।

**व्याख्याः** गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव! हमारे नेत्र सदा नंदनंदन श्रीकृष्ण के ध्यान में निमग्न रहते हैं। उन्हें अन्य न तो कुछ भाता है और न ही सुहाता है। अतः तुम अपने निर्गुण–ब्रह्म ज्ञान को वहाँ ले जाओ, जहाँ लोग इसकी परख करने में समर्थ हों और इसका मर्म समझ सकते हों। तुम्हारा ब्रह्म गुणहीन अर्थात् निर्गुण है जबकि हम पत्तों के समान अपनी कोमल हथेलियों पर अंकित रेखाओं को गिन–गिनकर ब्रह्म द्वारा लिखित अपने इस भाग्य पर गर्व अनुभव करती हैं कि इसी के कारण हमें गुणों की सीमा अर्थात् सर्वगुण सम्पन्न कृष्ण जैसे प्रियतम उपलब्ध हुए हैं। हम तो उनके वियोग से, पहले से ही पीड़ित हैं; और तुम ऊपर से कृष्ण को भूल जाने के लिए कठोर, कटु वचन कहकर हमारे प्राणों को और अधिक व्यथित कर रहे हो। हमें मारे डाले दे रहे हो। तुम्हें चाहिए यह था कि हम विरह–विदग्ध कामिनियों पर तरस खाते और हमें कृष्ण के लौटने का समाचार देकर आश्वस्त करते किंतु तुम्हारी गति विपरीत है, तुम हमें और अधिक पीड़ा पहुँचा रहे हो।

हमारे कृष्ण अत्यधिक सुन्दर हैं। उनके मुख की शोभा करोड़ों चन्द्रमाओं से सम्मिलित प्रकाश के समान शुभ्र, शीतल और शान्तिदायक है और कानों में धारण किए हुए अनेक कुण्डलों की चमक करोड़ों सूर्य के प्रकाश के समान देदीप्यमान है। कृष्ण के सौन्दर्य पर करोड़ों कामदेवों की छवि को न्यौछावर किया जा सकता है और इनकी इसी सौन्दर्य छवि को देखकर हमने अपना सर्वस्व उनके प्रति समर्पित कर दिया है। उनकी भृकुटियाँ करोड़ों धनुषों के समान वक्र और खिंची हुई है उनकी चितवन धनुष की खिची हुई प्रत्यंचा के समान खिंची हुई है तथा सबको अपनी ओर आकर्षित करती है। जिस प्रकार धनुष की खिंची प्रत्यंचा को देखकर लोग भयभीत एवं स्तम्भित हो उसी को देखते रह जाते हैं। उनके बांके नयन करोड़ों कमलों के समान मनोहारी हैं तथा उनके नयनों के कटाक्ष बाणों के समान मर्मभेदी एवं हृदय को निकालकर अपनी ओर ले जाने वाले हैं।

उनकी शंख सदृश सुन्दर गर्दन में रत्नों से जड़ा हुआ हार सुशोभित होता है जिसमें पिरोई हुई कौस्तुभ मणि उनके विशाल वक्षस्थल पर शोभा पा रही है। उनकी घुटनों तक दीर्घ भुजाएँ शरणागत को सहायता करने में समर्थ है। उनके हाथ कमल के समान सुन्दर हैं तथा अमृत के सागर के समान सबको जीवन–दान देने एवं रक्षा करने में समर्थ हैं। उन्होंने अपने श्याम शरीर पर पीत परिधान धारण किया हुआ है और उत्पन्न शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। श्याम शरीर पर पीत–परिधान को देखकर ऐसा उत्पन्न होता है कि अतिशय प्रकाशित विद्युत काले बादलों में नृत्य कर रही हो।

ऐसी शोभा उत्पन्न रासलीला में हमारे साथ आनन्द का अनुभव करने वाले गोपाल कृष्ण को मिलकर हम प्रसन्न होती थीं तथा उनके अधरों के अमृत का पान करती थी। हे उद्धव ! अब तुम ही कहो कि ऐसे अनुपम रूप सम्पन्न कृष्ण के अतिरिक्त हमारी रक्षा और पालन कौन कर सकता है। अर्थात् कोई नहीं कर सकता। इसलिए हमें कृष्ण को छोड़ निर्गुण–ब्रह्म स्वीकार्य नहीं।

**विशेषः–**

1. इस पद में कृष्ण के लोकरंजक सौन्दर्य का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही उनके लोकरक्षक रूप की ओर भी संकेत किया गया है। ऐसे कृष्ण की तुलना में निर्गुण–ब्रह्म त्याज्य है।
2. 'पानि–पल्लव ..... बंधान' – इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है कि हम अपनी हस्त–रेखाओं को गिन–गिनकर विधाता के इस भाग्य लेख पर खेद प्रकट करती रहती हैं कि सर्वगुण सम्पन्न कृष्ण निश्चित अवधि बीत जाने पर भी लौटकर नहीं आए।
3. 'चन्द्रकोटि ..... कोटिक भान' तथा 'कंबु–ग्रीवा' में उपमा अलंकार।
4. 'कोटि मन्मय ..... दजित दान' में प्रतीप अलंकार।
5. 'भृकुटि ..... कोटिक बान' में सांग रूपक अलंकार।
6. 'मनहु निर्तत ..... दुतिमान' में उत्प्रेक्षा अलंकार।
7. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति।
8. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
9. सुन्दर लयात्मकता।
10. आकर्षक गेयता।

**।। 74 ।।**

**देन आए ऊधो मत नीको। आवहु री ! सब सुनहु स्यानी, लेह न जस को टीको।।**
**तजन कहत अम्बर आभुखन, गेह नेह सब ही को। सीस जटा, सब अंग भस्म, अति सिखवत निर्गुन फीको।।**
**मेरे जान यहै जुवतिन को देत फिरत दुख पी को। तेहि सर–पंजर भए स्याम तन, अब न गहत डर जी को।।**
**जाकी प्रकृति परी प्रानन सो, सोय न पोय भीली को। जैसे सूर ब्याल डसि भाजत का मुख परत अमी को।।७४।।**

**शब्दार्थः** नीको = अच्छा। तजन = छोड़ने के लिए। अम्बर = आकाश, यहाँ वस्त्र। पी = प्रियतम। सर–पंजर = बाणों का समूह पोय = बुरी। ब्याल = सर्प। अमी = अमृत।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश भक्ति काल के भक्त शिरोमणि सूरदास के 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। ब्रज की गोपियाँ उद्धव के योग–उपदेश के कारण अत्यन्त खीझी हुई हैं, यहाँ वे उन्हें स्वभाव से ही हत्यारा घोषित करती हुई उन पर व्यंग्य कर रही हैं

**व्याख्याः** गोपियाँ परस्पर कह रही हैं कि हे सखी ! ये उद्धव हमें बहुत अच्छा उपदेश देने के लिए यहाँ पधारे हैं। हे विवेकशील सखियों ! तुम सब यहाँ आकर इनकी बातें सुनो और उन पर आचरण करके यश प्राप्त करो अर्थात् इनका उपदेश सुनकर, इनका सत्संग करने का यश क्यों नहीं प्राप्त करतीं? ये हमसे वस्त्र, आभूषण, घर तथा स्नेहजनित सब सम्बन्धों को त्याग देने का आग्रह कर रहे हैं तथा कहते हैं कि हम शीश पर जटा–जूट धारण कर लें एवं समस्त शारीरिक अंगों पर भस्म मल लें। इस प्रकार ये हमें अत्यन्त फीके निर्गुण–ब्रह्म को अपना लेने का उपदेश दे रहे हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये उद्धव निर्गुण- ब्रह्म का उपदेश देकर युवतियों को उनके प्रियतम के वियोग का दुःख देते फिर रहे हैं।

अपना यह काम उद्धव अपने उपदेशी रूपी वाणी से कर रहे हैं, जिसके कारण इसका शरीर काला पड़ गया है – अब इनके पास इन उपदेश रूपी बाणों के समूह के अतिरिक्त किसी को देने के लिए कुछ नहीं रहा इन्हें इन बाणों से प्रहार करने में भय नहीं लगता, वस्तुतः ये स्वयं को अब अजेय समझते हैं। किसी ने उचित ही कहा है जिसका जैसा स्वभाव बन गया, अथवा जिसका स्वभाव प्राणों में समा जाता है, वह व्यक्ति अपने स्वभावानुसार कार्यरत रहता है और उसके सम्पन्न करते समय उसे भले-बुरे का विवेक नहीं रहता। वह यह विचार करता ही नहीं कि इससे उसे लाभ होने वाला है या हानि। जैसे सर्प का स्वभाव दूसरों को काटने का होता है, वह काटकर भाग जाता है, किंतु क्या ऐसा करने में उसके मुख में अमृत पड़ जाता है? नहीं यह बात

नहीं है। वस्तुतः दूसरों को डसना उसका स्वभाव बन गया है इसलिए वह अपनी प्रकृति अनुसार कार्य करता है और हानि–लाभ का विचार नहीं करता, चाहे इससे दूसरों के प्राण ही क्यों न चले जाएं।

उद्धव का स्वभाव भी इसी प्रकार की क्रूरता लिए हुए है। इन्होंने हम दुर्बल नारियों को प्रियतम कृष्ण के वियोग में अवश्य व्यथित करना है, जबकि यह तय है कि इससे इन्हें कोई लाभ होने वाला नहीं।

**विशेषः–**

1. सम्पूर्ण पद में व्यंग्य की छटा दर्शनीय है गोपियाँ उद्धव को सर्प के समान क्रूर सिद्ध करती हुई उन पर व्यंग्य कर रही हैं।
2. 'आबहु री ..... टीको' – का काकुवकोक्ति से यह भी अर्थ निकल सकता है कि तुम लोग उद्धव की बातें सुनकर और उन पर आचरण करके इस यश की अधिकारिणी मत बन जाना कि तुमने प्रियतम कृष्ण को त्याग नीरस निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार कर लिया है।
3. आकर्षक गेयता।
4. सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति।
5. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
6. सूक्ष्म बिम्ब–विधान।
7. भाषा का सुन्दर व स्पष्ट प्रयोग।
8. 'देन ..... टीको' में विपरीत लक्षण अलंकार।
9. 'मेरे जान ..... पीको' में उत्प्रेक्षा अलंकार।
10. 'ब्याल डसि ..... अमी को' दृष्टांत अलंकार।

**।। 75 ।।**

**प्रीत करि दीन्हीं गरे छुरी।जैसे बधिक चुगाय कपट कन पाछे करत बुरी।।**
**मुरली मधुर चेंप करं काँपो मोरचंद्र ठटवारी। बंक बिलोकनि लूक लागि बस सकी न तनहिं सम्हारी।।**
**तलफत छांडि चले मधुबन को फिरि के लई न सार। सूरदास वा कलप–तरोवर फेरि न बैठि डार।।७५।।**

**शब्दार्थः** कन = अनाज के दाने। बुरी = बुराई, बुरी दशा। काँपो = कम्प, नोंक पर लासा हुआ चिड़ियों को चिपका कर पकड़ने वाला। तरोवर = कल्प वृक्ष।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश भक्ति काल के भक्त शिरोमणि सूरदास के 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। इसमें प्रस्तुत पद में गोपियाँ कृष्ण के प्रेम को कपटपूर्ण व्यवहार घोषित करती हैं। कृष्ण ने पहले तो गोपियों के प्रति अपना प्रगाढ़ प्रेम प्रकट किया। किंतु एक दिन आकस्मिक रूप में उन लोगों को त्यागकर मथुरा चले गए, तथा आज उद्धव के हाथों निर्गुण–ब्रह्म को अपना लेने का संदेश भेज रहे हैं। इस प्रकार कृष्ण ने गोपियों से विश्वासघात किया है।

**व्याख्याः** हे उद्धव ! कृष्ण ने हमारे प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करके अन्ततः हमारे गले पर छुरी चला दी है और इस प्रकार का व्यवहार किया है जैसा बहेलिया पक्षियों के साथ उन्हें पकड़ने के लिए करता है। बहेलिया सबसे पहले पक्षियों को चुगने के लिए कपटपूर्ण अनाज के दाने डालता है और जब दाने के लालच में वह उसके जाल में फँस जाते हैं तो उनकी अत्यन्त बुरी गत बनाता है। कृष्ण ने भी हमें पहले झूठा प्रेम दर्शाकर अपने कपट–जाल में फँसा लिया और फिर हमें वियोग पीड़ा में तड़पता हुआ छोड़कर स्वयं मथुरा जा बैठे और अब तुम्हारे हाथों निर्गुण–ब्रह्म सम्बन्धी संदेश भेजकर मर्मान्तक पीड़ा पहुँचा रहे हैं। कृष्ण ने मुरली के मधुर स्वर रूपी लासा को अपने हाथ रूपी बांस पर लगाकर कम्पा बनाया, तत्पश्चात् मोर पंख के मुकुटरूपी टटिया की आड़ में छिपाकर हम गोपियोंरूपी चिड़ियों को अपने प्रेमजाल में फँसा लिया। और फिर हमें अपनी तिरछी चितवन रूपी ज्वाला में जलने के लिए छोड़ दिया। इस प्रेम की ज्वाला में हमारा सब कुछ होम हो गया, हम अपने शरीर को भी बचाने में सफल न हो सकीं अर्थात् तन--मन से कृष्ण के प्रेम–जाल में फंस कर उस कपटी बहेलिए के पूर्णरूप से वश में हो गई।

फिर जिस प्रकार बहेलिया पक्षियों को तड़पा–तड़पाकर आग में भूनता है और फिर उनका भक्षण करता है, उसी प्रकार कृष्ण भी वियोगाग्नि में तड़पने के लिए हमें छोड़कर स्वयं मथुरा के लिए प्रस्थान कर गए और न कभी स्वयं ही लौटे और न कभी कोई शुभ समाचार ही भेजा और न ही कभी कोई खोज खबर ली। इसके पश्चात् हम फिर कभी उस कृष्णरूपी कल्प–वृक्ष की डाल पर बैठकर आनन्द का उपभोग न कर सकीं। अब हम आश्रयहीन पक्षियों के समान भटकती रहती हैं, अब हमें सम्पूर्ण मनोकामनाओं को पूरा करने वाले कृष्णरूपी कल्पवृक्ष की छाया उपलब्ध नहीं होती।

**विशेषः–**

1. प्रस्तुत पद में बहेलियों के रूप में कृष्ण के छलपूर्ण व्यवहार की निंदा की गई है। व्यंग्य के स्थान पर इसमें दैन्यमिश्रित उपालम्भ है। दैन्य संचारी भाव के रूप में प्रस्तुत हुआ है। उसके साथ भर्त्सना भी है।
2. कृष्ण के विश्वासघात, निष्ठुरता के साथ उनके प्रति गोपियों के असीम अनुराग का मार्मिक चित्र प्रस्तुत हुआ है। कृष्ण गोपियों के लिए कल्पतरु के समान सम्पूर्ण मनोकामनाएँ पूर्ण करने वाले हैं।
3. आकर्षक गेयता।
4. सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति।
5. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
6. आकर्षक बिम्ब–विधान।
7. मधुर लयात्मकता।
8. मधुर भावों की प्रबल अभिव्यक्ति।
9. सम्पूर्ण पद में उपमा से सम्पुष्ट सांगरूपक अलंकार।
10. प्रथम दो पंक्ति में उपमा अलंकार।

**।। 76 ।।**

**कोउ ब्रज बाँचत नाहिन पाती। कत लिखि लिखि पठवत नंदनंदन कठिन बिरह की काती।।**
**नयन, सजल, कागद अति कोमल, कर अंगुरी अति ताती। परसत जरै, बिलोकत भीजै दुहूँ भाँति दुख छाती।।**
**क्यों समुझैं ये अंक, सूर सुनु कठिन मदन–सर–धाती। देखे जियहिं स्यामसुन्दर के रहहिं चरन दिनराती।।७६।।**

**शब्दार्थः** कोउ = कोई। बाँचत = बाँचता, पढ़ता। पाती = पत्री, चिट्ठी, पत्र। काती = छुरी। ताती = गर्म। परसत = स्पर्श करते ही। अंक = अक्षर। मदन–सर–धाती = कामदेव के बाणों के समान घातक।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश भक्ति काल के भक्त शिरोमणि सूरदास के 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। इसमें कृष्ण द्वारा भेजी हुई चिट्ठी को पहले तो गोपियाँ पढ़ने के लिए व्याकुल हो रही थीं। किंतु उसमें योग का संदेश होने के कारण अब उसे पढ़ना नहीं चाहती।

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती हैं कि इस ब्रज में कोई भी कृष्ण द्वारा भेजे हुए पत्र को नहीं पढ़ना चाहती। न जाने क्यों नंदनन्दन कृष्ण हमारी इस वियोगावस्था में इस प्रकार की कठोर एवं छुरी के समान प्राणघातक चिट्ठियाँ लिखकर हमें और भी दुःखी कर रहे हैं। इस पत्र का पढ़ना हमारे लिए सम्भव नहीं हो पा रहा है क्योंकि इसके लिए प्रयुक्त कागज अत्यन्त कोमल है। हमारे नेत्र आँसुओं से भीगे हुए हैं और विरह की अग्नि में जलते रहने के कारण हमारी उंगलियाँ गर्म हैं, इस प्रकार यदि हम इसे स्पर्श करती हैं तो इसके जल जाने का भय है। यदि पढ़ने के लिए देखती हैं तो आँसू गिरने के कारण इसके भीग जाने का भय है। इस प्रकार दोनों स्थितियों में इसे न पढ़ पाने के कारण हमारे हृदय में दुःख हो रहा है। हे उद्धव ! सुनो ! हम कृष्ण द्वारा लिखे हुए इन अक्षरों को किस प्रकार समझे – ये तो हमें कामदेव के कठोर बाणों के समान अत्यधिक पीड़ा पहुँचा रहे हैं। अर्थात् अपने प्रियतम कृष्ण द्वारा लिखित इन अक्षरों को देखकर हमारे हृदय में उनकी स्मृति हो आने से हमारे हृदय में काम–भावना उत्पन्न हो जाती है, जिससे हमारी वेदना और भी बढ़ जाती है। हम तो श्यामसुन्दर कृष्ण को देखकर तथा दिवा–रात्रि उनके चरणों में पड़े रहकर ही जीवित रह सकती है। उनके बिना हमारा यह जीवन व्यर्थ है।

**विशेषः–**

1. गोपियों की विरह–वेदना साकार हो उठी है, उनके लिए कृष्ण के बिना जीवन जीना कठिन हो रहा है।
2. 'काती', 'ताती' – ये दोनों शब्द लहंदा भाषा से गृहित हैं और आज भी इसी रूप में एवं अर्थ में वहाँ प्रचलित है जबकि ब्रज में अब इनका प्रचलन नहीं रहा।
3. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
4. प्रसाद–माधुर्य गुण शैली।
5. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम शब्दों का प्रयोग।
6. विप्रलम्भ का सुन्दर चित्रण।
7. प्रभावी अभिव्यंजना।
8. 'लिखि–लिखि' में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार।
9. 'क्यों ..... धाती' – उपमा अलंकार।

।। 77 ।।

**मुकुति आनि मंदे में मेली। समुझि सगुन लै चलो न, ऊधो! ये सब तुम्हारे पूँजि अकेली।।**
**कै लै जाहू अनत ही बेंचन, कै लै जाहु जहाँ विष–बेली। याहि लागि को मरै हमारे वृंदावन पाँयन–तर पेली।।**
**सीस धरे घर घर कत डोलत, एकमते सब भई सहेली। सूर वहाँ गिरिधरन छबीलो जिनकी भुजा अंस गहि मेली।।७७।।**

**शब्दार्थः** मुकुति = मुक्ति। मंदे = सस्ता बाजार। अनत = अन्य किसी स्थान पर। विष–बेली = विष की बेल अर्थात् कुब्जा। याही = इसी। मरै = जान खपाये। पाँयन–तर पेली = पाँव के नीचे कुचल दिया जाएगा। कत = क्यों। डोलत = घूमते हो। अंस = कंधा। मेली = रख ली।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश भक्ति काल के भक्त शिरोमणि सूरदास के 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। इसमें गोपियाँ अपने दैन्य–भावना, कातरता को त्यागकर पुनः उद्धव के योग–संदेश पर व्यंग्य–बाण छोड़ने के लिए तत्पर हो गई हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती है कि हे उद्धव ! तुमने निर्गुण–ब्रह्म से प्राप्त मुक्ति का सौदा यहाँ ब्रज के सस्ते बाजार में बेचने के लिए लाकर उतारा है। किंतु यहाँ इसका कोई ग्राहक या खरीददार तुम्हें नहीं मिलेगा। हमें लगता है कि तुम मथुरा से शुभ शगुन में नहीं चले, इसलिए तुम्हारा सौदा यहाँ न बिक सकेगा। तुम्हारे पास यही ही एकमात्र पूँजी है और यदि यहाँ न बिकी तो तुम्हें बड़ी हानि उठानी पड़ेगी, अतः तुम्हारे लिए यही उचित है कि इसे किसी अन्य स्थान पर बेचने के लिए ले जाओ। अथवा इसे यहाँ से ले जाओ जहाँ वह विष की बेल कुब्जा रहती है। वह तुम्हारी इस मुक्ति के महत्त्व को समझती है अतः तुम्हारे वहाँ पहुँचते ही वह तुरन्त इसे खरीद लेगी।

इसके लिए यहाँ ब्रज में कौन अपनी जान खपाता फिरे, अपनी मतिभ्रष्ट करे, यहाँ वृंदावन में तो इसे पाँवों के तले कुचल दिया जाएगा, यहाँ इसके महत्त्व को कोई नहीं समझता, यह सभी के लिए त्याज्य है। इसके बोझ को अपने सिर पर लेकर तुम व्यर्थ ही घर–घर घूम रहे हो और इसे बेचने का प्रयत्न कर रहे हो। वस्तुतः हम सब सहेलियाँ एकमत हो गई हैं और हमने मिलकर इसे न खरीदने का फैसला किया है। इस मुक्ति की तो भोग में पड़े हुए लोगों को आवश्यकता है, हम तो पहले ही कृष्ण के विरह में संतप्त हैं। वह अद्‌भुत छैल–छबीले, रंगीले गोवर्धनधारी कृष्ण वहीं मथुरा में हैं और उनकी भुजाओं को कुब्जा ने पकड़कर अपने कंधे पर रख लिया है। वे दोनों परस्पर रंगरेलियाँ मना रहे हैं, वे दोनों भोगी हैं। सम्भवतः तुम्हारी गुहार सुनकर उनके मन में विरक्ति की भावना उत्पन्न हो जाए और वह तुम्हारी इस मुक्ति को खरीद लें।

**विशेषः–**

1. गोपियाँ कृष्ण और कुब्जा पर गहरा व्यंग्य कर रही हैं वे दोनों स्वयं तो भोग–विलास में डूबे हुए हैं और उन्हें योग का संदेश भेज दिया है।
2. गोपियाँ मुक्ति को प्रेम की तुलना में हेय और तिरस्कृत घोषित करती हुई अनुराग की महत्ता पर बल देती हैं।
3. 'विष–बेली' – वस्तुतः गोपियों को संदेश है कि उद्धव का लाया हुआ संदेश कुब्जा ने ही भेजा है, इसी कारण वह उसे सारे फसाद की जड़ समझती हैं।
4. आकर्षक गेयता।
5. ब्रजभाषा का प्रयोग।
6. माधुर्य भाव की अभिव्यक्ति।
7. आकर्षक बिम्ब–विधान।
8. 'भेदे में मेली' में वृत्यानुप्रास अलंकार।
9. 'घर–घर' में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार।
10. 'विष–वेली' में समस्त पद रूप।

।। 78 ।।

**हम, अलि, गोकुलनाथ अराध्यां। मन बच क्रम हरि सो धरि पतिव्रत प्रेमयोग–तप साध्यो।।**
**मातु–पिता–हित–प्रीति निगम–पथ तजि दुख–सुख–भ्रम नाख्यो। मानऽपमान परम परितोषी अस्थिर थित मन राख्यो।।**
**साकुचासन, कुलसील परस करि, जगत बंध करि बंदन। मानऽपवाद पवन–अवरोधन हित–क्रम काम–निकंदन।।**
**गुरुजन–कानि अगिनि चहुँदिसि, नभ–तरनि–ताप बिनु देखे। पिवन धूम–उपहास जहाँ तहं, अपजस श्रवन अलेखे।।**
**सहज समाधि बिसारि बपु करी, निरखि निमेख न लागत। परम ज्योति प्रतिअंग–माधुरी धरत यहै निसि जागत।**

**त्रिकुट संग भ्रमग तराटक नैन नैन लगि लागे। हँसन प्रकास, सुमुख कुंडल मिलि चंद्र सूर अनुरागे।।**
**मुरली अधर श्रवन धुनि सो सुनि अनहद सब्द प्रमाने। बरसत रस रुचि–बचन–संग, सुख–पद–आनंद–समाने।।**
**मंत्र दियो मनजात भजन लगि, ज्ञान ध्यान हरि ही को। सूर, कहौं गुरु कौन करै, अलि, कौन सनै मत फीको? ।।७८।।**

**शब्दार्थः** अराध्यो = आराधना किया। क्रम = कर्म। निगम पथ = स्त्रियों के लिए वेदों द्वारा निर्धारित मार्ग। नाख्यो = लाघा पार किया। चित = स्थिर, स्थित। परस = स्पर्श। अवरोधन = रोक दिया है। काम–निकंदन = काम भावना पर विजय प्राप्त कर ली है। कानि = लज्जा, मर्यादा। तरनि = सूर्य। बपु = शरीर। निमेख = निमिष पल। त्रिकुटी = त्रिकुटचक्र दोनों भौहों के बीच का स्थल। तराटक = त्राटक, योग के छः कर्मों में से एक, टकटकी बाँधकर किसी एक बिंदु पर ध्यान केन्द्रित करना। मनजात = कामदेव। सामने = समा जाना, लीन हो जाना।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद में गोपियाँ कृष्ण के प्रति अपने प्रेम और आराधना को किसी भी योग–साधना से कम नहीं समझती। वह अपनी प्रेम–साधना को योगियों की योग–साधना के साथ तुलना करती हुई उद्धव से कहती हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती हैं कि हे भ्रमर ! हमने तो केवल गोकुलनाथ कृष्ण की आराधना की है। हमने मनसा, वाचा, कर्मणा अर्थात् मन, वचन, एवं कर्म से कृष्ण के प्रति पतिव्रत धर्म को धारण करते हुए प्रेमरूपी योग की साधना एवं तपस्या की है। जिस प्रकार एक योगी संसार के बंधनों से स्वयं को मुक्तकर, सुख–दुःख के भ्रम से छुटकारा पाकर समरसता की स्थिति को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार हमने भी प्रेम–योग में अपने माता–पिता तथा अन्य बंधुओं एवं हितैषियों के स्नेह को, वेदों एवं शास्त्रों द्वारा निर्धारित पथ एवं नारी सुलभ लोक–लज्जा एवं मर्यादा को त्यागकर सुख–दुःख तथा तज्जन्य भ्रम आदि तीनों सांसारिक अवस्थाओं को पार कर लिया है और इस प्रकार अब हमें योगियों के समान ही समरसता की स्थिति प्राप्त हो गई है। हम मान एवं अपमान दोनों स्थितियों में पूर्ण संतुष्ट रहती हैं, हमें अब ये दोनों अवस्थाएँ भी प्रेम–मार्ग से विचलित नहीं कर पाती, हमने अपने अस्थिर एवं चंचल मन को कृष्ण–प्रेम में इस प्रकार एकाग्र कर लिया है कि उस पर मानापमान अथवा सांसारिक प्रलोभनों का कोई प्रभाव नहीं होता। जिस प्रकार योगी आसन पर बैठकर ध्यान करता है, जल को हाथ में लेकर आचमन करता है। और फिर ससार द्वारा पूज्य ब्रह्म की वंदना करता है, उसी प्रकार हमने भी संकोच को अपना आसन बनाया है। अर्थात् अब हम सारे संसार से विरक्त हो गई हैं और अपने प्रेम को केवल कृष्ण में ही सीमित एवं संकुचित कर लिया है। अर्थात् कुल की मर्यादा और नारी सुलभ सहज गुणशीलता का हमने आचमन कर लिया है अर्थात् कुल की मर्यादा और शील की भावना को स्वयं में आत्मसात् कर लिया है और इस प्रकार अब हमारे लिए कुल मर्यादा और शील की भावना का अस्तित्व ही नहीं रहा इस स्थिति में अर्थात् सकाचरूपी आसन पर बैठकर, कुल–मर्यादा एवं शील की भावना का आचमन करके हम संसार द्वारा पूज्य श्री कृष्ण की वदना करती रहती हैं जिस प्रकार योगी प्राणायाम द्वारा कामभावना को पूर्णतया नष्ट कर देता है, उसी प्रकार हम भी मानापमान–प्रशंसा एवं बुराई की भावना को सर्वदा त्याग चुकी हैं तथा इन्हीं के द्वारा ही हमने काम–वासना पर विजय प्राप्त कर ली है।

जिस प्रकार योगी ब्रह्म प्राप्ति के लिए पंचाग्नि में तपकर साधना करते हैं। उसी प्रकार हम भी कृष्ण को प्राप्त करने के लिए तपस्या कर रही हैं। इसके लिए हमने अपने चारों ओर गुरु–जनों की मर्यादारूपी अग्नि प्रज्जवलित कर रखी है। अर्थात् हम अपने गुरु–जनों की मर्यादा का पूर्ण पालन करने के लिए कोई भी अमर्यादित–उच्छृंखलता पूर्ण कार्य नहीं करती। जिस प्रकार योगी पाँचवी–अग्नि के रूप में सूर्यताप को सहन करता है, उसी प्रकार हम भी कृष्ण की वियोगजन्य अग्नि के ताप को झल रही हैं। जिस प्रकार योगी पंचाग्नि से उत्पन्न धुएँ का पान करता है। उसी प्रकार हम भी संसार द्वारा किए गए उपहासरूपी कड़वे धुएँ का पान कर रही हैं अर्थात् संसार के उपहास को सहन कर रही है, जिस प्रकार योगी अपने मन को पूर्णत एकाग्रकर अपनी श्रवण–शक्ति पर आधिपत्य पा लेता है और इस प्रकार किसी भी होने वाली ध्वनि से उसका ध्यान भंग नहीं होता उसी प्रकार हम भी संसार में व्याप्त अपने अपयश को धैर्यपूर्वक सुनती हैं किंतु उसकी अवहेलना नहीं करती हैं, उससे प्रभावित हो दुःख अनुभव नहीं करती।

जिस प्रकार योगी अपने ध्यान की पूर्णता ब्रह्म में लीनकर सहज समाधि की अवस्था धारण कर लेता है। उसी प्रकार हम भी अपने शरीर की समस्त सुधि खोलकर कृष्ण ध्यान में लीन है। हमारी पलकें टकटकी बाँधे है, पलभर को भी नहीं झपकती जिस प्रकार योगी रात को जागकर परम–ज्योति अर्थात् ब्रह्म के दर्शनों का आनन्द–लाभ उठाता है। उसी प्रकार हम भी रात–रात भर जागते हुए कृष्ण के प्रत्येक अंग के सौन्दर्य एवं रूप–माधुरी का स्मरण करती हैं और उनके दर्शनों का लाभ उठाती हैं। इस प्रकार

हम योगियों के समान 'सुज्जान–अवस्था' को पारकर 'मुक्तावस्था' को प्राप्त कर चुकी हैं। योगी त्रिकूट–चक्र में अपने ध्यान को अर्थात् अनिमेष रूप से अपनी दृष्टि को केन्द्रित कर लेते हैं, उनकी भाँति हम भी ध्यान को कृष्ण के भ्रू–भंग पर केन्द्रित कर उनके भावों को जानने की चेष्टा करती रहती हैं। योगी इस स्थिति में 'पूर्ण स्थिर' हो जाते हैं। इस अवस्था को 'त्राटक मुद्रा' धारण करना कहते हैं जबकि हम अपने नेत्रों को प्रियतम कृष्ण के नेत्रों से मिलाकर उनकी ओर टकटकी बाँधे देखती रहती हैं – हमारी यह अवस्था पूर्ण स्थिर है और त्राटक मुद्रा के समान है।

जिस प्रकार योगी की कुण्डलिनी, इड़ा, पिंगला आदि नाड़ियों को भेदती हुई सुषुम्ना नाड़ी से होकर छः चक्रों को भेदती हुई ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाती है तथा इस स्थिति में पहुँचकर साधक को परम ज्योति के दर्शन होते हैं। यहाँ चन्द्र और सूर्य मिलकर एकाकार हो जाते हैं और परम ज्योति का प्रकाश चारों ओर फैलकर सारे संसार को ज्योतिमान करता है। उसी प्रकार हम भी कृष्ण के सुन्दर एवं शीतलतादायक मुखरूपी चन्द्र तथा कानों में पड़े कुण्डलरूपी सूर्य के सम्मिलित प्रकाश से युक्त कृष्ण के शोभायमान मुख पर परम ज्योति के समान व्याप्त मुस्कान के दर्शन करती हैं और इस प्रकार स्वयं को धन्य मानती हैं। योगी सहज समाधि में स्थिति अहनद–नाद का श्रवण करता है, उसी के समान हम भी कृष्ण के सुशोभित अधरों पर स्थित मुरली की मधुर तान को सुनती हैं। योगी अपनी जिह्वा को उलटकर ब्रह्मरन्ध्र से प्रवाहित अमृत रस का पान करके आनन्द अनुभव करता है। जबकि हमें कृष्ण के प्रिय एवं मधुर बोलों को सुनकर अमृतरस के समान आनन्द मिलता है। योगी इस अवस्था में पहुँचकर पूर्ण रसलीन हो जाता है जबकि हम कृष्ण के साथ रासरंग, क्रीड़ा–विहार में पूर्ण सुख का अनुभव करते हुए रसलीन हो जाती हैं और हमें संसार की सुधि नहीं रह जाती है।

योगी किसी गुरु से मंत्र प्राप्त कर योग–साधना की ओर प्रवृत्त होता है और ब्रह्म में ध्यान लगाता है। उसी भाँति हमने भी कामदेवरूपी गुरु से कृष्ण–प्रेमरूपी मंत्र ग्रहण किया है और निरन्तर कृष्ण के ध्यान में खोई रहती हैं। अतः हे भ्रमर ! अब तुम्हीं यह बताओ इस स्थिति में हम किसी अन्य को किस प्रकार अपना गुरु धारण कर लें ? अर्थात् अब हम तुम्हें अपना गुरु धारण करके योग मार्ग की दीक्षा लेने में असमर्थ हैं। इसी कारण हम तुम्हारे इस नीरस योग–सिद्धान्त को सुनना नहीं चाहती।

**विशेषः–**

1. गोपियों की अटल प्रेम–भावना।
2. दृढ़ निश्चय के साथ प्रेम पथ के राही।
3. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
4. आकर्षक गेयता।
5. सुन्दर लयात्मकता।
6. सुन्दर बिम्ब–विधान।
7. वाक्पटुता का सुन्दर चित्रण।
8. योग सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग।
9. सम्पूर्ण पद में सांगरूपक अलंकार।
10. 'सूर, कहौं ..... फीको .....' में व्यतिरेक अलंकार।

**।। 79 ।।**

**कहिबे जीय न कछु सक राखो लावा मेलि दए हैं तुमको बकत रहौ दिन आखो**
**जाकी बात कहौ तुम हमसौ सो धौं कहौ कौ काँधी। तेरो कहो सो पवन भूस भयो, बहो जात ज्यों आँधी।।**
**कत श्रम करत, सुनत काहयाँ है, होत जो बन को रोयो। सूर इते पै समुझत नाहीं, निपट दई को खोयो।।७६।।**

**शब्दार्थः** जीय = मन। सक = शक, संदेह। लावा मेलि दए = जादू–टोना करके पागल कर देना। बकत = बोलते रहना। आखो = पूरा, सारा। काँधी = स्वीकार की, अंगीकार की। दई को खोयो = नासमझ, गया–बीता।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद में गोपियों के अनेक प्रकार से समझाने–बुझाने और विरोध करने पर भी उद्धव अपनी ज्ञान–चर्चा बंद नहीं करते, इस पर गोपियाँ खीझ उठती हैं। उनकी यही खीझ प्रस्तुत पद में व्यक्त हुई हैं।

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव ! तुमने जो कुछ कहना है, कह डालो, तनिक भी संकोच न करो। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी ने तुम पर जादू–टोना करके पागल बना दिया है, इसी कारण तुम सारा दिन बकते रहते हो। तुम हमसे जिस ब्रह्म को स्वीकार कर लेने की बातें कर रहे हो, क्या उसे पहले भी किसी ने स्वीकार या अंगीकार किया है? अब तक निर्गुण ब्रह्म के सम्बन्ध में जो कुछ भी तुमने कहा है, वह यहाँ ऐसे विलीन हो गया है जैसे आँधी भूसे को उड़ाकर ले जाती है और उसका निशानमात्र भी नहीं रहता, अर्थात् यहाँ तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म उपदेश का किसी पर भी रंचमात्र प्रभाव नहीं पड़ा। तुम अपनी बातों

को कहने में व्यर्थ इतना श्रम कर रहे हो, यहाँ पर कोई ध्यान देने व आचरण करने वाला नहीं है। यहाँ तुम्हारा यह उपदेश उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार निर्जन वन में किसी विपत्तिग्रस्त व्यक्ति का सहायता के लिए चिल्लाना क्योंकि वहाँ उसकी सहायता करने के लिए कोई नहीं आने वाला। हमें इस बात का अत्यन्त खेद है कि तुम्हें इतना समझाने पर भी तुम समझ नहीं पा रहे, तुम तो निरे मूर्ख हो।

**विशेषः–**

1. गोपियों को कृष्ण के प्रति प्रेम–भाव।
2. गोपियों की वाक्पटुता।
3. सम्पूर्ण पद में व्यंग्य की छटा दर्शनीय है।
4. 'आखो' – गुजराती शब्द है जिसका अर्थ है पूरा–सारा।
5. 'बकत रहौ दिन आखा', इस पंक्ति से यह ध्वनि निकलती है कि गोपियों के लिए उद्धव के ब्रह्म ज्ञान सम्बन्धी समस्त उपदेश पागलों के प्रभाव के समान अनर्गल, व्यर्थ एवं मूर्खतापूर्ण हैं।
6. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
7. प्रसाद माधुर्य गुणसम्पन्न शैली।
8. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम शब्दों का योग।
9. विप्रलम्भ का सुन्दर चित्रण।
10. प्रभावी अभिव्यंजना।

**।। 80 ।।**

**अब नीके कै समुझि परी। जिन लगि हुती बहुत उर आसा सोम बात निबरी।।**
**वै सुफलकसुत, ये साखि। ऊधो मिली एक परिमाटी। उन तो वह कीदी तब हमसो, ये रतन छँड़ाई गहावत माटी।।**
**ऊपर मृदु भीतर ते कुलिस सम, देखत के अति भोरे। जोइ जोइ आवत वा मथुरा तें एक डार के से तोरे।।**
**यह सखि, मैं पहिले कहि राखी असित न अपने होंहीं। सूर कोटि जौ भायो दीजै चलत आपनी गौं हीं।।८०।।**

**शब्दार्थः** नीके कै = भली–भाँति। हुती = थी। निबरी = समाप्त हो गई। परिमाटी = परम्परा। सुफलकसुत = अक्रूर जी। गहावत = ग्रहण करने को कहते हैं। माटी = धूल के समान व्यर्थ निर्गुणोपदेश। रतन = रत्नों के समान कृष्ण प्रेम। छँड़ाई = छुड़ाकर, छीनकर। कुलिस = वज्र के समान कठोर। असित = श्यामवर्णीय। माथो दीजै = सिर फोड़े, प्रणाम करे। गौं = गैल रास्ता।

**प्रसंगः** उद्धव के ब्रज आगमन के समय गोपियों को कृष्ण की ओर से शुभ–संदेश की अपेक्षा थी। किंतु उद्धव के निर्गुण–ब्रह्म के उपदेश को सुनकर वे निराश हो गई और उद्धव को खरी–खोटी सुनाने को तत्पर हो उठीं।

**व्याख्याः** अब उद्धव के ब्रज पधारने का मूल उद्देश्य हमारी समझ में भली–भाँति आ गया है। इनके दर्शन करके हमारे मन में यह आशा उठी थी कि अब हमें कृष्ण के शीघ्र लौटने का संदेश प्राप्त होगा। किंतु अब सब कुछ समाप्त हो गया है। हे सखी ! वह अक्रूर और यह उद्धव – ये दोनों एक ही परम्परा से सम्बद्ध है – दोनों का एक ही उद्देश्य को लेकर ब्रज आगमन हुआ था। वह कृष्ण को हमसे छीनकर ले गए थे, यह उनकी स्मृति को हमसे छीनने आए हैं। अक्रूर शीघ्र ही कृष्ण को ब्रज लौटा जाने का आश्वासन देकर उन्हें यहाँ से ले गए और वह फिर कभी न लौटे, अब यह उद्धव कृष्ण की स्मृति रूपी अमूल्य रत्न को हमसे छीनकर प्रतिकार में धूल के समान व्यर्थ निर्गुण–ब्रह्म को हम पर थोपना चाहते हैं। ये लोग ऊपर से मृदुभाषी और कोमल–हृदय प्रतीत होते हैं किंतु इनके हृदय भीतर से पत्थर से भी कठोर हैं, और उनमें कपट भरा हुआ है। ये वस्तुतः कृष्ण के समान कठोर और छली हैं।

वह मथुरा वस्तुतः कपट की नगरी है, वहाँ से जो भी आते हैं, सभी एक ही डाली के तोड़े हुए फलों के समान कपटपूर्ण व्यवहार में दक्ष हैं। हे सखी ! मैंने तो पहले ही कह रखा था ये श्यामवर्णी कपटी होते हैं, ये अपने नहीं हो सकते, और न ही इन पर विश्वास किया जा सकता है। तुम इनके साथ लाख सिर फोड़ो, माथापच्ची करो किंतु इनमें सुधार होना सम्भव नहीं। ये सदा अपनी ही चाल चलेंगे। उचित बात इनकी समझ में नहीं आती।

**विशेषः–**

1. गोपियों की दृष्टि में श्यामवर्णी – कृष्ण, अक्रूर और उद्धव सब कपटी हैं, ऊपर से कोमल दिखाई देते हैं किंतु हैं वस्तुत कठोर।
2. अंतिम पंक्ति का यह भी अर्थ हो सकता है कि तुम चाहे लाख बार इनके (उद्धव के) सम्मुख शीश झुकाओ इन्हें प्रणाम करके सम्मानित करो किन्तु ये अपना कपटपूर्ण व्यवहार नहीं छोड़ेंगे। सदा अपनी ही स्वार्थसिद्धि में लगे रहेंगे।

3. गोपियों की वाक्पटुता का सुन्दर चित्रण।
4. सम्पूर्ण पद में व्यंग्य की छटा दर्शनीय है।
5. ब्रजभाषा का प्रयोग।
6. सुन्दर भावाभिव्यंजना।
7. आकर्षक गेयता।
8. सुन्दर बिम्ब–विधान।
9. तत्सम् के साथ तद्भव शब्दों का प्रयोग।
10. प्रसाद–माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।

**।। 81 ।।**

**मधुकर रह्यौ जोग लौं नातो कतहि बकत बेकाम काज बिनु, होय न हयाँ ते हातो।**
**जब मिलि मिलि मधुपान कियो हो तब तू कहि धौं कहाँ तो तू आयो निगुन उपदेसन सो नहिं हमैं सुहातो।**
**काँचे गुन लै तनु ज्यों बेधौ, लै बारिज को ताँतो। मेरे जान गह्यो चाहत हौ फेरि कै मैगल मातो।**
**यह लै देहु सूर के प्रभू को आयो जोग जहाँ तो। जब चाहिहैं तब माँगि पठैहे जो कोउ आवत–जातो।।८१।।**

**शब्दार्थः** लौं = तक। बकत = बोलना। हातो = दूर, अलग। तो = था। गुन = धागा। तांतो = तन्तु, रेशा। बारिज = कमल। मैगल = हाथी। मातो = मदमत्त। तो = से। आवत = जातो = मथुरा जी की ओर से आता–जाता हुआ व्यक्ति अर्थात् यात्री।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद में गोपियाँ उद्धव के ज्ञान–योग के सन्देश को बार–बार सुनकर खीझ उठती हैं और भ्रमर के माध्यम से उन्हें खूब फटकारती है। गोपियों को योग स्वीकार्य नहीं है, वे तो कृष्ण के प्रेम में पगी हैं।

**व्याख्याः** हे भ्रमर! यदि हम एक बार यह स्वीकार कर लें कि कृष्ण ने तुम्हारे द्वारा हमें यह योग–सन्देश भेजा है तो क्या उनसे हमारा सम्बन्ध योग तक ही सीमित है। तुम्हें तो वास्तविकता का ज्ञान नहीं, इसी कारण तुम व्यर्थ ही बिना काम के बकते चले जा रहे हो। तुम यहाँ हमें क्यों और भी दुःखी कर रहे हो, यहाँ से कहीं दूर जाकर हमारी नजरों से ओझल क्यों नहीं होते। उस समय तुम कहाँ थे, जब कृष्ण हमारे साथ प्रेम क्रीड़ाएँ करते समय हमारे अधरों का रसपान किया करते थे? हम उन मधुर क्षणों की स्मृति में इस प्रकार डूबी हुई हैं कि तुम्हारे द्वारा लाया यह निर्गुण ब्रह्म सम्बन्धी उपदेश स्वीकार करना हमारे लिए उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार कच्चा धागा अर्थात् सत् का डोरा लेकर शरीर को बाँधने का प्रयत्न असम्भव है। क्योंकि कच्चा धागा कमजोर होता है, उसके तुरन्त टूट जाने के कारण उसे शरीर पर बाँधा नहीं जा सकता। तुम्हारा निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार कराने का प्रयत्न वैसा ही व्यर्थ है जैसा कमल के कोमल तन्तुओं द्वारा एक मदमस्त हाथी को बाँधकर अपने वश में करने का प्रयत्न व्यर्थ है।

अतः तुम्हारे लिए यही उचित है कि तुम इसे वहीं ले जाओ जहाँ से लाए हो, अर्थात् इसे कृष्ण के पास ले जाओ और उन्हें लौटा दो, वे दिवारात्रि कुब्जा के साथ भोग–विलास में निमग्न रहते हैं, उन्हें ही इसकी आवश्यकता है और वे ही इसका उचित उपयोग कर सकते हैं। जब हमें इस योग एवं निर्गुण ब्रह्म की आवश्यकता अनुभव होगी तो हम किसी मथुरा आने–जाने वाले यात्री से इसे मँगा लेंगी।

**विशेषः–**

1. गोपियाँ किसी प्रकार उद्धव तथा उनके निर्गुण ब्रह्म से पीछा छुड़ाना चाहती हैं। इसलिए वे उन्हें आश्वासन दे रही हैं कि वे इसे मथुरा ले जायें, जब उन्हें आवश्कता पड़ेगी, वे मँगा लेंगी। उनकी यह व्यंग्योक्ति अत्यन्त कलात्मक बन पड़ी है।
2. गोपियों की वाक्पटुता का सुन्दर चित्रण।
3. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
4. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
5. तद्भव के साथ तत्सम् शब्दों का प्रयोग।
6. सुन्दर गेयता।
7. आकर्षक भावाभिव्यजना।
8. विप्रलम्भ का सुन्दर चित्रण।
9. सुन्दर बिम्ब–विधान।
10. सम्पूर्ण पद में उपमा अलंकार।
11. 'काँचे.....मातो.....' में निदर्शना अलंकार।

**।। 82 ।।**

**मोहन माँगो अपनो रूप या व्रज बसत अँचै तुम बैठीं, ता बिनु तहाँ निरूप।**
**मेरो मन, मेरो आल! लोचन लै जो गए धुपधूप। हमसो बदलो लेन उठि धाए मनो धारि कर सूप।**
**अपनो काज सँवारि सूर, सुनु, हमहिं बतावत कूप। लेवा–देह बराबर में है, कौन रंक को भूप।।८२।।**

**शब्दार्थः** अँचै = आचमन कर बैठी। निरूप = रूपहीन, निराकार। धुपधूप = दिन दहाड़े। सँवारि = सँवारकर, बनाकर। लेवा लेइ = लेन–देन। रंक = निर्धन/गरीब।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद में उद्धव बार–बार निर्गुण–निराकार ब्रह्म की रट लगाए रहते हैं। इस पर एक गोपी प्रकारान्तर से राधा के कृष्ण–प्रेम की प्रशंसा करती हुई राधा से कहती है कि मोहन ने उसका रूप मँगा भेजा है।

**व्याख्याः** हे सखी राधा! मोहन ने उद्धव द्वारा तुमसे वह रूप मँगा भेजा है जिसे तुमने उनके यहाँ ब्रज में रहते समय स्वयं में आत्मसात कर लिया था। उनका वह रूप अभी भी तुम्हारे पास है और कृष्ण उस रूप के बिना वहाँ मथुरा में निराकार बने हुए है। तभी तो उन्होंने हमसे निर्गुण ब्रह्म को अपना संदेश लेने भेजा है, जिससे तुम उन्हें छोड़कर निराकार ब्रह्म की प्रार्थना करो जिससे उन्हें अपना रूप प्राप्त हो सके।

अब राधा इस गोपी की बात का उत्तर देती हुई कहती है कि हे सखी! यदि वह अपना रूप मुझसे वापस माँगते है तो मेरा मन जो वह दिन–दहाड़े अपनी बाँकी चितवन से चुराकर ले गए थे, मेरा अपना है। वह पहले मेरा मन तो मुझे लौटाएँ। यह तो न्यायोचित नहीं कि वह तो अपनी वस्तु लौटाने को कहते हैं, और दूसरे की वस्तु देना नहीं चाहते।

उनसे बढ़कर एक यह उद्धव है जो दाना–पानी लेकर यहाँ आ गए हैं, और बदला लेने के लिए हमारे पीछे पड़ गए है अर्थात यह उद्धव भी एक ही हैं। हमारी वस्तु लौटवाने का नाम नहीं लेते और कृष्ण का रूप वापिस लेने के लिए भागे चले आये है इस प्रकार यह उद्धव तो अपना काम बना लेना चाहते हैं और हमें निर्गुण ब्रह्म की उपासना का उपदेश देकर कुएँ में धकेलना चाहते हैं। वस्तुतः सच तो यह है कि लेन–देन में तो समानता का व्यवहार चलता है, उसमें बड़ा–छोटा कोई नहीं होता और न ही राजा एवं रंक का मतभेद होता है, अतः न्यायोचित यही है कि यदि कृष्ण को अपना रूप वापिस लेना है तो पहले वह हमारा मन लौटा दें।

**विशेषः–**

1. हम सो.....कर सूप' – सूप हाथ में लेकर किसी के पीछे पड़ जाना एक ग्रामीण मुहावरा है जिसका अर्थ है कि हाथ धोकर किसी के पीछे पड़ जाना।
2. 'बतावत कूप'– भी एक मुहावरा है, जिसका अर्थ है कि हमारी ओर से चाहे तुम कुएँ में पड़ो, हमें इससे कोई सरोकार नहीं।
3. इस पद में राधा द्वारा कृष्ण का रूप आत्मसात् कर लेने मे गर्व नामक संचारी भाव है।
4. मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा की व्यंजना–शक्ति में वृद्धि हुई है।
5. ब्रजभाषा का प्रयोग।
6. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
7. सुन्दर – अभिव्यंजना।
8. आकर्षक गेयता।
9. सुन्दर बिम्ब–विधान।
10. अलंकार
    (क) मनो.....सूप' में व्यंग्योक्ति अलंकार।
    (ख) 'या.....निरूप' – उत्प्रेक्षा अलंकार।
    (ग) सम्पूर्ण पद में परिवृत्ति अथवा विनिमय अलंकार।

**।। 83 ।।**

**हरि सों भलो से पति सीता को। बन–बन खोजत फिरे बंधु–सँग, कियो सिंधु बीता को।**
**रावन मारयो, लंका जारी, मुख देख्यो भीता को। दूत हाथ उन्हैं लिखि न पठायो निगम ज्ञान गीता को।**
**अब धौं कहा परेखो कीजै कुब्जा के मीता को। जैसे चढ़त सबै सुधि भूली, ज्यों पीता चीता को?**
**कीन्हीं कृपा जोग लिखि पठयो, निरखु पत्र री! ताको। सूरदास प्रेम कह जानै लोभी नवनीता को।।८३।।**

**शब्दार्थः** भलो = अच्छा। बीता = बालिश्त। भीता = भयभीत। मीता = मित्र स्नेही। पीता = मदिरा पीने वाला। चीता = चैतन्य हुआ। ताको = उनका। नवनीता = मक्खन।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद में गोपियों के विरह का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि विरहिणी गोपियों के दुःख की कोई सीमा नहीं, इस पर कृष्ण ने उन्हें योग का संदेश लिख भेजा है। उनसे तो उन्हें सहानुभूति की अपेक्षा थी। ऐसे समय में उनके मानस–पटल पर विरहिणी सीता की स्मृति उभर आती है उन्हें प्राप्त करने के लिए राम ने रावण के साथ भयंकार युद्ध किया था और लंका पर विजय प्राप्त करके सीता का उद्धार किया था। एक कृष्ण हैं जिन्होनें गोपियों के निर्गुण–ब्रह्म को अपना लेने की बात करते हुए राधा अपनी एक सखी से कहती है–

**व्याख्याः** कृष्ण से कहीं अधिक भले और अच्छे तो सीता के पति राम थे। सीता का हरण हो जाने पर उन्हें राम ने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ वन–वन ढूँढ़ा था। जब उन्हें सूचना मिली कि सीता समुद्र पार लंका में हैं तो उन्होंने अपने अथक परिश्रम से सिन्धु पर पुल बाँधा और उसे इस प्रकार पार कर गए जैसे वह बालिश्त भर चौड़ी पानी की नाली हो। उन्होंने महान पराक्रम प्रदर्शित करते हुए रावण का वध किया। लंका को तहस–नहस कर डाला और अन्त में रावण के त्रास से संतप्त एवं भयभीत अपनी प्रिया सीता के दर्शन किए और उन्हें त्रासमुक्त किया। राम ने हमारे इन कृष्ण के समान अपने दूत द्वारा सीता के पास शास्त्रीय ज्ञान और गीता के उपदेश का संदेश नहीं भेजा था। अपितु राम ने दूत हनुमान के हाथों सीता को यह संदेश भेजा था कि वह धैर्य धारण करें, प्रभु को उनकी सुधि है। वह शीघ्र ही रावण का नाश करके उनके संताप को दूर करेंगे।

हमारे कृष्ण तो कुब्जा के प्रेम में निमग्न हैं, आज उसके मीत बने हुए हैं। उससे प्रभावित होकर उन्होंनें हमें योग का संदेश लिखकर भेजा है, अतः ऐसे पराधीन व्यक्ति की बातों का क्या बुरा मानें। कुब्जा के प्रेम में मदमत्त हुए उनकी गति ही ऐसी है और आज वह हमें इस प्रकार विस्मृत कर बैठें हैं जिस प्रकार मदिरापान के उपरान्त मस्त शराबी अपनी चैतन्यता खो बैठता है और उसे अपने स्नेही जनों की स्मृति नहीं रहती।

हे सखी। उन्होनें हम पर अत्यधिक कृपा की है जो योग का संदेश लिखकर भेजा है, इस बहाने हमें स्मरण तो किया है। जरा इनके पत्र को तो देखो। जो केवल मक्खन में ही रुचि रखता है, वह प्रेम के महत्त्व को किस प्रकार जान सकता है? मक्खन यूँ ही अनायास प्राप्त नहीं हो जाता उससे पूर्व दही बिलौना अदि अनेक क्रियाएँ सम्पन्न होने पर ही मक्खन प्राप्त हो सकता है, इसी भाँति नाना प्रकार के कष्टो को सहन कर, वियोग के ताप को बर्दाश्त करते हुए प्रेम जैसी 'स्निग्ध' एवं 'सारभूत' वस्तु उपलब्ध होती है। कृष्ण इन क्रियाओं से नहीं गुजरे। इसी कारण वह प्रेम के महत्त्व को नहीं जानते, वह तो मक्खन के लोभी अर्थात् इन्द्रिय–सुख में रुचि रखते हैं तभी तो हमें यहाँ बिलखता हुआ छोड़कर वहाँ मथुरा में कुब्जा के साथ भोग–आनन्द में निमग्न हैं।

**विशेषः–**

1. प्रस्तुत पद में राम और कृष्ण के प्रिय–प्रेम का अत्यन्त प्रभावशाली एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है।
2. अनेक चित्तवृत्तियों के संश्लिष्ट वर्णन द्वारा उपालम्भ का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया गया है।
3. इस पद में असूया संचारी भाव का चित्रण हुआ है।
4. 'जैसे–चढ़त....चीता को' इस पंक्ति में कृष्ण के कुब्जा–प्रेम में निमग्नता की तुलना चैतन्यता खोए हुए शराबी से की गई है, जिससे यह ध्वनि निकलती है कि जिस प्रकार शराबी नशे के प्रभाव तक ही अपने स्नेहीजनों की सुधि नहीं रखता उसी प्रकार कुब्जा के प्रेम में पड़े कृष्ण की विस्मृति भी अस्थायी है, वह शीघ्र ही इस स्थिति से उबरेंगे और हमारी सुधि लेंगे।
5. 'किन्हीं.....ताकों' में मधुर किन्तु तीखा व्यंग्य है।
6. आकर्षक गेयता।
7. सुन्दर लयात्मकता।
8. सुन्दर बिम्ब – विधान।
9. वाक्पटुता का सुन्दर चित्रण।
10. 'बन–बन'.....पुनरुक्तिप्रकाश।

**।। 84 ।।**

**निरमोहिया सों प्रीति कीन्ही काहे न दुख होय? कपट करि करि प्रीति कपटी लै गयो मन गोय।।**
**काल मुख तें काढ़ि आनी बहुरि दीन्हिं ठोय। मेरे जिय की सोइ जानै जाहि बीती होय।।**
**सोच आँखि मँजीठ कीन्हीं निपट काँची पोय। सूर गोपी, मधुप आगे दरकि दीन्हीं रोय।।८४।।**

**शब्दार्थः** निरमोहिया = निर्मोही। गोय = चुराकर, छिपाकर। बहुरि = फिर। नेय = धकेल दिया। मँजीठ = लाल पाय = पकाना। दरकि = फूट–फूटकर।

**प्रसंगः** कृष्ण के उपेक्षापूर्ण व्यवहार पर गोपियों की मर्मान्तक पीड़ा हो रही है। अपने प्रिय की उपेक्षा सदैव सहन नहीं होती गोपियों की अब इस बात का खेद है कि उन्होंने कृष्ण जैसे निर्मोही के साथ प्रेम ही क्यों किया। प्रस्तुत पद मे उनकी यही पीड़ा व्यक्त हुई है।

**व्याख्याः** प्रेम–भावना से रहित निर्मोही व्यक्ति से प्रेम करने पर क्यों न दुःख हो? अर्थात् निर्मोही कृष्ण से प्रेम किया जिससे अब हमें यह दुख झेलना पड़ रहा है। वह कपटी था और हमारे प्रति ऊपरी कपटपूर्ण प्रेम प्रदर्शित कर अर्थात् थोथा प्रेम प्रदर्शित कर हमारे मन को चुपचाप चुराकर अपने साथ ले गया। उद्धव के ब्रज आगमन पर हमने समझा था कि अब हमारे दुख के दिन व्यतीत हो गए क्योंकि हमें आशा थी कि वह वियोग रूपी काल के मुख से हमारा उद्धार करने के लिए आए हैं अर्थात वह कृष्ण के शीघ्र यहाँ पर आने का संदेश लेकर आए हैं। जिससे हमारा वियोग–संताप दूर होगा किंतु उन्होंने उनके आने की आशा दिलाकर क्षण भर के लिए जो हमें काल के मुख से निकाला था, पुनः उसी में धकेल दिया है अर्थात् हमें अपने को भूल जाने और निराकार–उपासना का संदेश देकर मर्मान्तक दुख दे रहे हैं। हमारे हृदय की इस मार्मिक वेदना को केवल वही अनुभव कर सकता है, जिसने प्रिय–वियोग की वेदना को अनुभव किया हो। हमें इस बात का अत्यन्त खेद है कि कृष्ण के पूर्ण रूप को अच्छा अर्थात् ऊपरी प्रेम को हमने सच्चा परिपक्व समझा और हमने उनके वियोग में रो–रोकर अपनी आँखे मजीठ के रंग की भाँति लाल कर ली हैं। अब हमारी आँखो की अवस्था ऐसी हो गई है जैसे गीली लकड़ियों को फूँक–फूँककर जलाने और तवे पर रोटियाँ सेकने से हो जाती हैं।

इस प्रकार कृष्ण की निर्मोहिता का वर्णन करते–करते उनकी निर्ममता तथा वियोगजन्य व्यथा के कारण वह फूट–फूट कर रो उठी

**विशेषः–**

1. अंतिम पंक्ति में गोपियों की समस्त वेदना साकार हो उठी है। इसमें गर्व एवं उपालम्भ का भाव लगभग विलुप्त हो गया है तथा उसके स्थान पर विवशता तथा दैन्य का भाव व्यंजित हुआ हैं
2. 'मेरे जिय की सोई जानै जाहि बीती होय'–इस पंक्ति से मिलता–जुलता भाव मीरा में भी उपलब्ध होता है। देखिए निम्न पंक्ति–'घायल की गति घायल जानै, और न जानै कोय।'
3. सुन्दर लयात्मकता।
4. आकर्षण गेयता।
5. सुन्दर बिम्ब–विधान।
6. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
7. ब्रजभाषा का प्रयोग।
8. सुन्दर अभिव्यंजना।
9. भाषा सहज–सरल।
10. अलंकार–प्रथम एवं पंचम पंक्ति में लोकोक्ति।

**।। 85 ।।**

**बिन गोपाल बैरिन भईं कुंजै। तब ये लता लगति अति सीतल, अब भईं विषम ज्वाल की पुंजै।**
**बृथा बहति जमुना, खत बोलत, बृथा कमल फूलै अलि गुंजै। पवन पानि धनसार संजीवनि दक्षिसुत किरन भानु भई भुंजै।**
**ए, ऊधो, कहियो माधव सों बिरह कदन करि मारत लुंजै। सूरदास प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भई बरन ज्यों गुंजै।।८५।।**

**शब्दार्थः** विषम = भयानक। पुंजै = समूह। बृथा = व्यर्थ। अलि = भ्रमर। गुंजै = गुंजार करते है। पानि = जल धनसार = कपूर। दक्षिसुत = चन्द्रमा। भानु = सूर्य। भुंजै = भुनती है। कदन= छुरी। लूजै = लुज पुज बना रहीं है। बरन = वर्ण रंग। गुंजै = गुंजा।

**प्रसंगः** यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि संयोग काल में सुखदायी वस्तुएँ वियोगावस्था में विरहजन्य पीड़ा को बढ़ाती हैं। प्रस्तुत पद में गोपियों ने इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य का उद्‌घाटन किया है कि वृन्दावन की कुँज गलियाँ गोपाल की अनुपस्थिति में भयानक हो गई है।

**व्याख्याः** कृष्ण की अनुपस्थिति में वन में सुखदायक कुंजें जिनमें हम उनके साथ क्रीड़ा–विहार करती थी, शत्रु के समान हमें पीड़ा पहुँचा रही है। जब कृष्ण यहाँ थे तब ये लतायें हमें अत्यन्त शीतलता प्रदान करती थीं किंतु अब उनके अभाव में ये भयानक अग्नि–ज्वालाओं के समूह के समान दग्ध करने वाली बन गई है। अब यह यमुना व्यर्थ प्रवाहित होती है तथा पक्षी भी व्यर्थ ही

चहचहा रहे हैं एवं बोल रहे हैं। व्यर्थ ही कमल विकसित होते हैं तथा उन पर व्यर्थ ही भ्रमर गुंजार करते हैं अर्थात् अब इन सबको देखकर हमें दुःख होता है। ये बातें सुखदायी तभी थी जब कृष्ण यहाँ थे, अब हमारे लिए इनकी कोई उपयोगिता नहीं रही। संयोगावस्था में वायु, जल, कपूर आदि हमें संजीवनी बूटी के समान जीवनदायक प्रतीत होते थे? किंतु अब हमें विरह में संतप्त करने वाले हैं। उस समय चंद्रमा की किरणे सुख एवं शांतिदायक थी किंतु अब ग्रीष्मकालीन सूर्य की तप्त किरणों के समान भूलने वाली बन गई है।

हे उद्धव! तुम माधव से जाकर यह कहना कि उनका विरह बधिक के समान हमें गोद–गोद कर हमारे अंग–प्रत्यंगों को क्षीण किए दे रहा है। अर्थात् हमें मारे डाल रहा है। कृष्ण की बाट जोहती अर्थात् राह देखती अँखियों गुंजा के समान लाल पड़ गई है।

**विशेषः–**

1. इस पद में प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण हुआ है संयोगावस्था में सुखदायक प्रकृति वियोगावस्था में गोपियों के विरह को और भी उद्दीप्त कर रही हैं।
2. किसी कवि ने इस संदर्भ में कहा भी हैं कि संयोग में जो सुखद था, वहीं वियोग में दुःखद हो गया है–
   **'जोइ जोइ सुखद, दुखद अब सोइ सोइ।''**
3. सीता हरण के उपरान्त विरही राम को भी प्रकृति की इस विषमता का अनुभव हुआ था–

**'नवतरु किसलय मनहु कृषानु। काल निया सम निसि ससि भानू।। जे हित रहे करत तेइ पीरा। उदघ स्वास सम त्रिविध सरीरा।**

4. आकर्षण बिम्ब –विधान।
5. सुन्दर लयात्मकता।
6. आकर्षण गेयता।
7. ब्रजभाषा का मार्मिक प्रयोग
8. भाषा सहज–सरल–सुन्दर, प्रभावमयी।
9. प्रसाद–माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
10. अलंकार–(क) अतिशयोक्ति (ख) उपमा।

**।। 86 ।।**

**संदेसो कैसे के अब कहौ? इन नैनन्ह या तन की पहरी कब लौ देति रहौ?**
**जो कुछ बिचार होय उर–अंतर रचि पचि सोचि गहौ। मुख, आवत, ऊधौ–तन चितवन न सो विचार, न हौ।।**
**अब सोई सिख देहु, सयानी! जातें सखहिं लहौं। सूरदास प्रभु के सेवक सों बिनती कै निबहौं।।८६।।**

**शब्दार्थः** कैसे के = किस प्रकार। रचि–पचि = अच्छी तरह। तन = ओर। लहौं = प्राप्त करूँ। निबहौं = निर्वाह करूँ।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद में कृष्ण की निष्ठुरता पर गोपियाँ संतप्त हैं उन्हें अब इस बात की चिन्ता है कि योग का सन्देश भेजने वाले निष्ठुर प्रिय के पास वे अपना प्रेम–सन्देश किस प्रकार भेजें। जब कि संदेशवाहक उद्धव भी प्रेम–भावना से शून्य शुष्क–हृदय व्यक्ति है। एक गोपी अपने मन की इस दुविधा को दूसरी के सम्मुख व्यक्त करती हुई कहती है कि–

**व्याख्याः** हे सखी! अब मैं अपना प्रेम सन्देश प्रियतम कृष्ण के पास किस प्रकार भेजूँ? मैं अपने इस शरीर पर इन नेत्रों का पहरा किस प्रकार बैठाती रहूँ। मेरा शरीर कृष्ण के वियोग में पहले ही क्षीण हो चुका है। फिर योग के सन्देश को सुनकर यह मृत–प्राय हो गया है और प्राणों को छोड़ना चाहता है किन्तु मेरे नेत्रों को कृष्ण के दर्शनों की आशा है, इसलिए ये शरीर पर पहरा लगाए हुए हैं ताकि यह प्राण न त्याग दे। यदि कभी मेरे हृदय में कृष्ण को प्रेम–संदेश भेजने की भावना उत्पन्न होती है तो मैं अत्यधिक सोच–विचार के उपरान्त मन मारकर चुप रह जाती हूँ। क्योंकि कृष्ण ने तो हमें योग का उपदेश लिखकर भेजा है, उसके प्रत्युत्तर में क्या हमारा प्रेम संदेश भेजना उचित है। फिर समस्त बल एकत्रित कर मैं कुछ कहना चाहती हूँ, मेरे मन में स्थित भावनाएँ वाणी का रूप धारण करना ही चाहती हैं कि उद्धव की ओर देखते ही न तो मेरे वे विचार ही स्थिर रह पाते हैं और न मैं ही। योग–संदेशवाहक उद्धव को देखते ही मुझे उनके हृदयहीन मन का ध्यान आ जाता है, जिससे मैं फिर संकोचवश मौन हो जाती हूँ। मेरे विचार पूर्णतया विलीन हो जाते हैं।

अतः हे चतुर सखी! अब तू मुझे कोई ऐसी शिक्षा दे जिससे मैं अपने सखा एवं प्रियतम कृष्ण को पुनः प्राप्त कर सकूँ मेरा विवेक तो यह कहता है कि स्वामी कृष्ण के इस सखा–उद्धव से प्रार्थना करने से हमारा निर्वाह हो सकता है, अर्थात् यदि इनकी हम पर कृपा हो जाय तो प्रियतम कृष्ण से हमारा मिलन सम्भव है। क्योंकि यदि हम इनसे प्रार्थना करके इन्हें मथुरा भेजें तो यह हमारी दीनावस्था पर तरस खाकर कृष्ण को यहाँ ला सकते है।

**विशेषः–**

1. सम्पूर्ण पद में गोपियों की असमंजसता का अत्यन्त सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है।
2. अन्तिम पंक्ति में उद्धव की खुशामद करके गोपियों ने पुरानी कहावत को चरितार्थ किया है, 'आवश्यकता के समय गधे को भी बाप बनाया जा सकता है।' अब तक तो वे उन्हें जली–कटी सुनाती रही हैं, किन्तु अब उनसे प्रार्थना कर रही हैं कि वे मथुरा से कृष्ण को लाकर उनके दर्शन कराएँ।
3. ब्रजभाषा का सहज एवं सुन्दर प्रयोग।
4. प्रसाद–माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
5. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम शब्दों का प्रयोग।
6. विप्रलम्भ का सुन्दर–चित्रण।
7. प्रभावी अभिव्यंजना।
8. आकर्षक गेयता।
9. रस, अलंकार का सुन्दर प्रयोग।

**।। 87 ।।**

**ऊधो! क्यों राखौं ये नैन? सुमिरि–सुमिरि गुन अधिक तपत हैं सुनत तिहारो बैन।**
**हैं जो मनोहर बदन चंद के सागर कुमुद चकोर। परम तृषारत सजल स्यामघन के जौ चातक मोर।**
**मधुप मराल चरन पंकज के गति विलास–जल मीन। चकवाक, मनिदुति दिनकर के, मृग मुरली आधीन।**
**सकल लोक सूनी लागतु है बिनु देखे वा रूप।। सूरदास प्रभु नंदनंदन के नखसिख अंग अनूप।।८७।।**

**शब्दार्थः** राखौ = रोकूँ/समझाऊँ (मनोहर = मनोहर, मन को हरने वाले) बदनंचद = चन्द्रमुख। तृषारत = प्यासे। मराल = हंस दिनकर = सूर्य । सकल = सार। लोक = संसार।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद में सूरदास गोपियों के बारे में लिखते हुए कहते हैं कि गोपियों के नेत्र कृष्ण के वियोग में अत्यधिक व्यथित हैं। गोपियाँ उन्हें कृष्ण का अनुरागी घोषित करते हुए कृष्ण के मन–मोहक रूप का वर्णन करती हैं जिसे देखे बिना समस्त संसार सूना है।

**व्याख्याः** कृष्ण वियोग मे व्यथित गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि, हे उद्धव! कृष्ण वियोग में हमारे ये नेत्र व्यथित हैं, हमारे लिए इनको समझाकर रखना भी एक समस्या बन गई हैं। हम इन्हें किस प्रकार सान्त्वना दें, हमारी समझ में नहीं आता। तुम्हारी निर्गुण–ब्रह्म सम्बन्धी बातों को सुनकर इन्हें कृष्ण के गुणों की स्मृति आ गई है। जिससे ये अब अधिक दुःख अनुभव कर रहे हैं। ये नेत्र हमारे मन के चोर कृष्ण के चन्द्र–सम सुन्दर मुख के प्रति अत्यन्त श्रद्धा एवं अनुराग से भर कुमुदिनी और चकोर के समान उनके दर्शनों को लालायित रहते हैं। ये काले मेघ के समान कृष्ण के सुन्दर शरीर को देखने के लिए उसी प्रकार प्यास अनुभव करते हैं जिस प्रकार चातक एवं मयूर।

हमारे ये नेत्र श्री कृष्ण के कमल–चरणों के भ्रमर एवं हंस के समान उत्कट प्रेमी हैं। जिस प्रकार मीन केवल जल में ही जीवित रह सकती है, उसी प्रकार हमारे ये नेत्र कृष्ण की मन्द–मंथर चाल को देखकर जीवन पाते हैं। ये उनके दर्शन पाकर उसी प्रकार आनन्दित होते हैं और आलोक से भर उठते हैं, जिस प्रकार चकवा–चकवी और सूर्यकान्त मणि सूर्य के प्रकाश को देखकर आनन्द एवं प्रकाश से आपूरित होते हैं। जिस प्रकार बधिक की मुरली की तान सुनकर मृग अपनी सुध–बुध खो बैठता है और उसके पास भागा चला आता है, उसी प्रकार ये कान भी कृष्ण का मुरली की मधुर ध्वनि को सुनकर उसके वशीभूत हो जाते हैं, और अपनी सुधि खो बैठते हैं। इन नेत्रों को कृष्ण के उस मधुर रूप को देखे बिना सारा ससार सूना–सूना प्रतीत होता है। स्वामी श्रीकृष्ण के नख से लेकर शिख तक सारे अंग–प्रत्यंगों का सौन्दर्य विलक्षण है, जिन्हे देखे बिना हमारे नेत्रों को चैन नहीं।

**विशेषः–**

1. कृष्ण के नख–शिख का अत्यन्त मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया गया है। गोपियों के नेत्र कृष्ण के इस विलक्षण स्वरूप के अनुरागी हैं, उसके बिना उनके लिए सारा संसार सूना है।
2. ब्रजभाषा का मनोहारी प्रयोग।
3. आकर्षक गेयता।
4. प्रभावी अभिव्यंजना।
5. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम् शब्दों का योग।
6. विप्रलम्भ का सुन्दर–चित्रण।
7. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
8. सुन्दर बिम्ब–विधान।
9. रूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग।

**।। 88 ।।**

**संदेसनि मधुबन–कूप भरे। जो कोउ पथिक गए हैं यहाँ तें, फिरि नहिं अवन करे।।**
**कै वै स्याम सिखाय समोधे कै वै बीच मरे? अपने नहिं पठवत नंदनंदन हमरेउ फेरि धरे।।**
**मसि खूँटी कागज जल भीजे, सर दव लागि जरे। पातीं लिखें कहो क्यों करि जो पलक–कपाट अरे?।।८८।।**

**शब्दार्थः** अवन करे = आए, लौटे। समोधे = समझा–बुझा दिए। मसि = स्याही। खूँटी = चूक गई, समाप्त हो गई। सर = सरकंडे। दव = दावाग्नि/वन मे लगने वाली आग। कपाट = द्वार, दरवाजा।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद में कृष्ण के कारण दुःखी गोपियों का वर्णन करते हुए सुरदास लिखते हैं कि गोपियों ने कृष्ण को अनेक पत्र भेजे, जिनसे सम्भवतः मथुरा के सब कुएँ भी भर गए होंगे। किन्तु उनमे से किसी एक का भी उत्तर नहीं आया, जिसके कारण गोपियाँ अधिक दुःखी हैं। इसी दुःख को एक गोपी दूसरी गोपी के सम्मुख व्यक्त कर रही है।

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती हैं कि हमने मथुरा में कृष्ण को इतने संदेश लिख–लिखकर भेजे हैं कि उनसे मथुरा के सब कुएँ भी भर गए होंगे। यहाँ से जितने भी पथिक हमारे सन्देश लेकर मथुरा की ओर गए, उनमें से कोई लौटकर वापस नहीं आया। हमें लगता है कि कृष्ण उन्हें समझा–बुझाकर वहीं रोक लेते हैं अथवा वे रास्ते में मरकर खत्म हो गए। नन्दनन्दन कृष्ण अपनी ओर से सन्देश रूप में कोई पत्र नहीं भेजते और जो सन्देश पत्र हम उनके लिए यहाँ से भेजती है, उन्हें भी चुपचाप अपने पास रख लेते हैं। उनका उत्तर तक भी नहीं देते।

अब हम उन्हें और अधिक पत्र लिखकर भेजने में भी असमर्थ हैं। क्योंकि सारी स्याही विरहाग्नि के ताप से सूखकर समाप्त हो गई हैं, सारे कागज नेत्रों के जल से भीगकर नष्ट हो गए हैं तथा हमारी विरहजन्य उत्तप्त उसाँसों के ताप से सारे जंगल मे आग लग गई है, जिससे कलम बनाने वाले सरकण्डों के झुण्ड जल गए हैं। अर्थात् स्याही, कागज, कलम इन तीनों के अभाव में हमारे लिए पत्र लिखना असम्भव है। इतना सब होता तो ठीक था अब हमारी आँखे भी काम करने योग्य नहीं रही। कृष्ण के वियोग में रो–रोकर हमारी पलकें इतनी सूज गई हैं कि वे एक प्रकार की किवाड़ बन गई हैं, जो बन्द हैं, और वे कुछ भी देख सकने में असमर्थ हैं।

गोपियाँ कहती हैं कि इस प्रकार हमें न तो दिखाई देता है और न हमारे पास पत्र लिखने का कोई साधन है हम किस प्रकार कृष्ण को पत्र लिखें।

**विशेषः–**

1. प्रस्तुत पद में गोपियों के संदेशों की अधिकता का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है। 2. मनोहर लयात्मकता।
3. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति। 4. सरल एवं बोधगम्य भाषा।
5. शब्द मोतियों का चयन। 6. मन भावन शैली।
7. ब्रजभाषा का प्रयोग। 8. आकर्षक बिम्ब विधान।
9. 'संदेसनि ..... भरे' – में अतिशयोक्ति अलंकार। 'पलक–कपाट' में रूपक अलंकार।'

**।। 89 ।।**

**नंदनंदन मोहन सो मधुकर! है काहे की प्रीति? जौ कीजै तो है जल, रवि और जलधर की सी रीति।।**
**जैसे मीन, कमल, चातक की ऐसे ही गइ बीति। तलफत, जरत, पुकारत सुनु, सठ! नाहिन है यह रीति।।**
**मन हठि परे, कबन्ध युद्ध ज्यों, होरहू भइ जीति। बँधत न प्रेम–समुद्र सर बल कहुँ बारुहि की भीति।।८९।।**

**शब्दार्थः** मधुकर = भँवरा। काहे की = कैसी/किस बात की। रवि = सूर्य। जलधर = बादल। मीन = मछली। तलफल = तड़पना। कबन्ध = मस्तकविहीन धड़। बारुहि=बालू की रेत की। भीति = दीवार।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश भक्तिकाल के भक्त शिरोमणि सूरदास के 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। इसमें कृष्ण निर्मोही हैं, निष्ठुर हैं, उनसे प्रेम करने वालों की ऐसी विषमावस्था है। गोपियों ने इसी बात का प्रस्तुत पद में वर्णन किया है।

**व्याख्याः** गोपियाँ अपनी बात पर जोर देती हुई कहती हैं कि हे मधुकर! नन्दनन्दन कृष्ण से हमारी किस प्रकार की प्रीति है, हम उनसे क्यों प्रेम करें? यदि कोई उनसे प्रेम करे तो उसकी वैसी ही गति होती है, जैसे जल, सूर्य और बादल से प्रेम करने वालों की होती है। अर्थात् मीन जल से प्रेम करती है, और उससे अलग होकर तड़प–तड़प कर अपने प्राण दे देती है। किन्तु जल

पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता और वह चुपचाप आगे बढ़ जाता है, उसी प्रकार कमल का सूर्य से प्रेम है, कमल सूर्य को देखकर विकसित होता है किन्तु सूर्य दिनभर अपने ताप से उसे जलाता है और संध्या समय उसकी उपेक्षा कर विश्राम करने चला जाता है। चेतक की भी घन प्रेम में यही गति है। वह प्रेम में सदा बादल को 'पिय–पिय' कह कर पुकारा करता है किन्तु बादल स्वाति नक्षत्र में उसकी खुली चोंच में पानी की एक बूँद भी टपकाने का कष्ट नहीं करता। मीन, चातक और कमल अपने प्रिय के वियोग में तड़प–तड़पकर प्राण त्याग देते हैं। किन्तु इनके प्रियतम इससे भी प्रभावित नहीं होते। प्रेम तो एकमार्गी नहीं ऐसा प्रेम घातक एवं वेदनापूर्ण होता है। प्रेम की यह रीति नहीं। वह तो दोनों ओर पलता हैं उसमें आत्मसमर्पण की भावना मुख्य होती है। उभय–पक्षीय प्रेम ही सफल है।

अब हम अपने इस मन को क्या कहें? इसने कृष्ण के साथ प्रेम करने का हठ पकड़ रखा है। यह अन्य किसी की ओर न तो आकृष्ट ही होता है और न प्रेम करना चाहता है। यह प्रेम संघर्ष में पराजित हो चुका है क्योंकि कृष्ण ने इसे टुकराकर यहाँ से चले गए। किन्तु यह स्वयं को उसी प्रकार विजयी समझ रहा है, जिस प्रकार युद्धभूमि में किसी योद्धा का सिर कटा कबन्ध निरन्तर युद्धरत रहता है, और शत्रुओं के संहार का यश प्राप्त करता है। उसे पराजित हो जाने पर भी विजयी समझा जाता है। हमारा मन सदैव कृष्ण के ध्यान में डूबा रहता है। अतः हे उद्धव! तुम्हारा योग–ज्ञान एवं निर्गुण–ब्रह्म की उपासना का उपदेश हमारे इस अगाध प्रेम–सागर के प्रवाह को रोक पाने में उसी प्रकार असमर्थ है, जिस प्रकार बालू की दीवार से समुद्र के प्रवाह को रोकना अथवा बाँधना। हमारी कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम–निष्ठा अविचल है, उसे तुम अपने उपदेशों एवं योग–ज्ञान की शिक्षा द्वारा डिगा नहीं सकते।

**विशेषः–**

1. गोपियों ने विभिन्न प्रतीकों द्वारा कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य प्रेम–निष्ठा व्यक्त की है। वे जानती हैं कि कृष्ण के प्रेम में उनकी मीन, कमल और चातक जैसी गति है, किन्तु उनका मन हठ पकड़े हुए है, और कबन्ध के समान स्वयं पराजित होते हुए भी विजयी समझ रहा है।
2. इस प्रकार इस पद से यह पता लगता है कि सच्चे प्रेमी प्रतिदान, न मिलने पर भी अपने प्रेम में निष्ठावान एवं दृढ़ रहते हैं
3. मनोहर लयात्मकता।
4. ब्रजभाषा का प्रयोग।
5. सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति।
6. आकर्षक गेयता।
7. तद्‌भव शब्दों के साथ तत्सम् शब्दों का सुन्दर प्रयोग।
8. आकर्षण बिम्ब – विधान।
9. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
10. अलंकार

(क) 'जौ....रीति' में क्रम अलंकार। (ख) 'मन.....जीति' में निदर्शना अलंकार। (ग) 'प्रेम–समुद्र' में रूपक अलंकार

**।। 90 ।।**

**मधुबनियाँ लोगनि को पतिआय? मुख औरै अन्तर्गत औरै पतियाँ लिखि पठवत हैं बनाय।।**
**ज्यों कोइल सुत काग जिआवत भाव–भगति भोजनहिं खवाय। कुहकुहाय आए बसंत ऋतु, अंत मिलै कुल अपने जाय।।**
**जैसे मधुकर पुहुप–बास लै फेरि न बूझै बातहु आय। सूर जहाँ लौं स्यामगात हैं तिनसों क्यों कीजिए लगाय?।।९०।।**

**शब्दार्थः** मधुबनियाँ = मथुरा के। को = कौन। पतिआय = विश्वास करें। अन्तर्गत = हृदय में। बनाय = बना–बनाकर भाव–भगति = प्रेम सहित। कुहकुहाय = कूक उठती है। पुहुप =पुष्प। बातहु = बात भी। स्याम = काले शरीर वाले। तिनसों = उसके साथ। लगाय = लगन, प्रेम।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश सूरदास द्वारा रचित 'भ्रमरगीत सार' से ली गई है। जिसमें सूरदास लिखते हैं कि कृष्ण के उपेक्षा एवं कपटपूर्ण व्यवहार से गोपियाँ अत्यन्त दुखी है। वे कोयल सुत तथा भ्रमर की पुष्प–पराग पान करने की स्वार्थ–भावना की कृष्ण के साथ तुलना करते हुए समस्त काले शरीर वालों की स्वार्थी सिद्ध करती है।

**व्याख्याः** गोपियाँ कह रही हैं कि मथुरावासी सब छली और कपटी हैं, ये विश्वसनीय नहीं, इन पर विश्वास कौन करे। इनके मुख में तो कुछ और है, और हृदय में कुछ और है और वहाँ बैठे–बैठे पत्र बना–बनाकर लिख भेजते हैं, किन्तु इनके मन कपट और छल से भरे हुए हैं। अतः ये पत्र में असली–मन की बात तो लिखते नहीं हमें बहलाने के लिए चिकनी–चुपड़ी बात लिख भेजते हैं। कौवा कोयल के बच्चे का पूरी लगन के साथ पालन–पोषण करता है, प्रेमपूर्वक उसे खिलाता है, किन्तु बसन्त ऋतु

के आते ही वह बच्चा कूकने लगता है और उड़कर अपने कुल के साथ जा मिलता है। वह अपने माता–पिता के पास पहुँचकर कौए के त्याग को पूर्णतया विस्मृत कर देता है। कृष्ण ने भी ठीक ऐसा ही किया है। ब्रज में नन्द–यशोदा ने उनका बड़े प्रेम और लगन के साथ पालन–पोषण किया। दूध–मक्खन खिलाया खुद कष्ट पाकर उन्हें सुखी रखा, किन्तु बड़े होने पर कृष्ण नन्द–यशोदा के इस स्नेह को पूर्णयता विस्मृत कर बैठे। उनके त्याग को भूलकर वह अपने वास्तविक माता–पिता वसुदेव व देवकी के साथ मथुरा चले गए। अब तुम्हीं बताओ उद्धव। ऐसे लोगों का विश्वास किस प्रकार किया जा सकता है।

जिस प्रकार एक भौंरा पुष्प के पराग का आनन्द लूटकर पुनः उसके पास नहीं आता, ठीक उसी प्रकार का व्यवहार कृष्ण ने हमारे साथ किया है। वे हमें प्रेम–क्रीड़ाओं में निमग्नकर हमारे अधरों का रसपान करके मथुरा जा बैठे और हम उनके विरह मे तड़प रही हैं। ये सभी काले शरीर वाले–कोयल, भ्रमर, कृष्ण निर्मोही, निष्ठुर होते हैं, इनसे प्रेम क्यों किया जाए।

**विशेषः–**

1. गोपियों ने सभी काले शरीर वालों को कपटी सिद्ध करके उन पर व्यंग्य किया है, वे सभी निष्ठुर है और प्रेम करने के योग्य नहीं।
2. ब्रजभाषा का प्रयोग।
3. आकर्षक गेयता।
4. वियोग रस का सुन्दर परिपाक।
5. स्पष्ट प्रभावी अभिव्यक्ति।
6. सुन्दर भाव–अभिव्यंजना।
7. सूक्ष्म भाव का स्पष्ट चित्रण।
8. प्रसाद–माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
9. आकर्षक बिम्ब–विधान।
10. 'कुहकुहाए.....जाए' में अर्थान्तरन्यास अलंकार।

**।। 91 ।।**

**हरि हैं राजनीति पढ़ि आए। समुझी बात कहत मधुकर जौ? समाचार कछु पाए?**
**इक अति चतुर हेतु पहिले ही, अरू करि नेह दिखाए। जानी बुद्धि बड़ी, जुबतिन को जोग–सँदेस पठाए।।**
**भले लोग आगे के, सखि री! परहित डोलत धाए। वे अपने मन फेरि पाइए जे हैं चलत चुराए।।**
**ते क्यों नीति करत आपुन जे औरनि रीति छुड़ाए? राजधर्म सब भए सूर जहँ प्रजा न जाय सताए।।६१।।**

**शब्दार्थः** इक = एक तो। हुते = थे। नेह = प्रेम, स्नेह। जुबतिन = युवतियों को, हम गोपियों के। डोलत धाए = दौड़ते–फिरते थे। नीति = न्याय, सदाचार। आपुन = स्वयं। जे = जिन्होंने। औरन = औरों की।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पंक्तियाँ भक्त शिरोमणि सूरदास के 'भ्रमरगीत' से ली गई है। ब्रज की गोपियों के मन में उद्धव द्वारा कृष्ण का योग–संदेश उन पर घोर अत्याचार एवं अन्याय है। कृष्ण अब राजनीति के पण्डित हो गए हैं, उन्हें यह अनीति शोभा देती है।

**व्याख्याः** एक गोपी दूसरी से कहती है कि हे सखी! अब कृष्ण ने राजनीति–शास्त्र में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर ली है, वे पूर्ण राजनीतिज्ञ हो गए हैं, तभी तो वह प्रेम में भी छल–कपट एवं कुटिलता से काम ले रहे हैं। यह भ्रमररूपी उद्धव जो ज्ञान–योग सम्बन्धी बातें हमसे कह रहा है। क्या ये तुम्हारी समझ में आ गई है। और इन बातों से तुमने कुछ मथुरा का समाचार जाना है अर्थात् क्या तुम इस योग सन्देश में निहित कृष्ण के वास्तविक अभिप्राय को समझ सकी हो? एक तो कृष्ण पहले ही अधिक चतुर थे, जिसे उन्होंने हमारे साथ कपटपूर्ण प्रेम करके प्रमाणित कर दिया था, क्योंकि हमें अपने प्रेम जाल में फाँसकर यहाँ तड़पता–बिलखता छोड़कर खुद मथुरा चले गए। अब वे हम नारियों को योग–सन्देश भेजकर अपनी विशाल बुद्धि एवं विवेक का परिचय दे रहे हैं।

हे सखी! पुरातन काल में सज्जन पुरुषों का निवास था वे सदा दूसरों के कल्याण एवं उपकार के लिए इधर–उधर भागते फिरते थे। एक ये सज्जन पुरुष उद्धव हैं जो हम अबलाओं को सताने और व्यथित करने के लिए यहाँ आए हैं। अब हम तो कृष्ण से केवल इतना चाहती हैं कि वे हमारा मन जो उन्होंने यहाँ से जाते समय चुरा लिया और अपने साथ ले गए, वह हमें लौटा दें। किन्तु हमें कृष्ण से ऐसे न्यायपूर्ण कार्य की आशा नहीं है, क्योंकि वह तो दूसरों से परम्परागत व्यवहारों एवं प्राचीन रीतियों को छुड़वाने में रत हैं।

तो फिर स्वयं उस पर आचरण क्यों करेंगे। हमारा आचरण तो यह है कि हम कृष्ण प्रेम मे निष्ठावान रहें और उद्धव के माध्यम से योग–संदेश भेजकर वह हमारी इस निष्ठा को भंग करना चाहते है। तो फिर उनसे न्यायपूर्ण आचरण की आशा किस प्रकार की जा सकती है?

सच्चा राजधर्म तो वह है जिसके अन्तर्गत शासक वर्ग प्रजाजनों के कल्याण मे लगें हो, उन्हें कभी भी सताया न जाय किन्तु यह कृष्ण अन्यायपूर्ण राज्य कर रहें है जो अपने स्वार्थ के लिए अर्थात् कुब्जा के साथ प्रेम करने की सुविधा पाने के लिए हमारे पूर्ण सुख–चैन को लूटना चाहते हैं और इसी हेतु उन्होनें हमें योग सन्देश लिख भेजा है।

**विशेषः–**

1. प्रस्तुत पद में कृष्ण और उद्धव पर चुभता हुआ व्यंग्य किया गया है।
2. गोपियों के मत में राजा का धर्म है प्रजा का अनुरंजन करना और उसे सुखी रखना। किन्तु कृष्ण इस धर्म से च्युत हो जाता है। और कुब्जा से प्रेम कर पाने की सुविधा प्राप्त करने के लिए गोपियों का सुख–चैन लूटना चाहते हैं। इस प्रकार गोपियों ने कृष्ण को कुटिल राजनीति का पोषक, अन्यायी, स्वार्थी और धोखेबाज सिद्ध किया हैं
3. गोपियों के विरह का सुन्दर चित्रण।
4. गोपियों की वाक्पटुता का सुन्दर प्रस्तुतीकरण।
5. ब्रजभाषा का प्रयोग।
6. सुन्दर बिम्ब–विधान।
7. आकर्षक गेयता।
8. वियोग रस का परिपाक।
9. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम शब्दों का योग।
10. मुक्तक शैली।
11. 'ते.....सताए' में लोकोक्ति अलंकार।

**।। 92 ।।**

**जोग की गति सुनत मेरे अँग आगि बई। सुलगि–सुलगि हम रहीं तन में फूँक आनि दई।**
**जोग हमको भोग कुब्जहि, कौने सिख सिखई। सिंह गज तजि तृनहिं खंडत सुनी बात नई।**
**कर्म रेखा मिटति नाहिं जो बिधि आनि ठई। सूर हरि की कृपा जापे सकल सिद्धि भई।।६२।।**

**शब्दार्थः** बई=लग गई। खंडत = विदीर्ण करना। ठई = निश्चित कर दी। जापै = जिस पर।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश भक्तिकाल के भक्त शिरोमणि सूरदास के 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। इसमें गोपियाँ उद्धव की योग–साधना की बातें सुनकर क्रोधित हो जाती हैं।

**व्याख्याः** सूरदाज जी लिखते हैं कि गोपियाँ कहती है कि उद्धव की योग–साधना की बातें सुनकर हमारे समस्त शरीर में आग लग जाती है, हमारी विरहाग्नि और भी प्रज्जवलित हो उठी है। हम तो कृष्ण वियोग में पहले ही सुलग रही थीं, उद्धव ने यहाँ आकर अपनी योग की बातों से हमारी विरहाग्नि को उसी प्रकार और भी भड़का दिया, जैसे कोई सुलगती हुई अग्नि को फूंक मारकर और भी भड़का दे या प्रज्जवलित कर दें। हमारी समझ में नहीं आता कि उद्धव को यह शिक्षा किसने दी है वह किस बलबूते पर हमें तो योग करने की शिक्षा दे रहे हैं कुब्जा के लिए भोग को उचित बता रहे हैं। हम वियोगिनियाँ पहले से ही संसार से विरक्त हैं, केवल कृष्ण की साधना से रत हैं, हमें तो योग–साधना की शिक्षा दी जा रही है, और पूर्णतया भोग- विलास में डूबी हुई कुब्जा को योग–साधना का उपदेश नहीं देते।

हमें कृष्ण से विमुख करने के अपने उपदेश में इन्हें सफलता नहीं मिल सकती, क्योंकि हम एक मात्र उन्हीं के प्रेम का व्रत धारण किए बैठी हैं जिसे छोड़ना हमारे लिए असम्भव है। क्या आज तक किसी ने यह बात सुनी है कि सिंह ने हाथी का वध करना छोड़कर घास चरनी आरम्भ कर दी हो? जिस प्रकार सिंह हाथी का शिकार करना छोड़कर घास नहीं चर सकता, उसी प्रकार हम भी कृष्ण–प्रेम में अपनी निष्ठा त्यागकर योग–साधना स्वीकार नहीं कर सकती। विधाता ने जो कर्मो की रेखा भाग्य में लिख दी है, वह मिटाए नहीं मिटती। हमारे भाग्य में कृष्ण प्रेम की एकनिष्ठा लिखी है, अतः कोई लाख प्रयत्न करे हम इस निष्ठा को नहीं छोड़ सकती। उद्धव के मत में निर्गुण ब्रह्म को अपनाने से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं किन्तु जिस पर कृष्ण की कृपा हो वह सम्पूर्ण वरदहस्त है, उसे तो समस्त सिद्धियाँ अनायास ही मिल जाती हैं। वह सम्पूर्ण सिद्धियों के बल पर प्राप्त सुख–वैभव का स्वतः अधिकारी बन जाता है।

**विशेषः–**

1. इस पद की अन्तिम पंक्ति में 'पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त' की पुष्टि की गई है, जिसके अनुसार 'भगवद्--अनुग्रह' के प्राप्त हो जाने पर जीव को समस्त सुख–वैभव स्वतः ही मिल जाता है।
2. सरल भाषा का प्रयोग।
3. गोपियों के विरह का सुन्दर चित्रण।
4. वियोग रस का सुन्दर प्रस्तुतीकरण।
5. कृष्ण के प्रति गोपियों का अटूट प्यार।
6. सुन्दर बिम्ब--विधान।
7. मनभावन लयात्मकता।
8. आकर्षक गेयता।
9. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
10. मुक्तक शैली।
11. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम् शब्दों का प्रयोग।
12. अलंकार (क) 'जोग .....सिखई' में अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार। (ख)'सिंह गज..... बात नई' में लोकोक्ति अलंकार।

**।। 93 ।।**

**ऊधो! जान्यो ज्ञान तिहारो। जानै कहा राजगति–लीला अंत अहीर बिचारो।।**
**हम सबै अयानी, एक सयानी कुब्जा सो मन मान्यो। आवत नाहिं लाज के मारे, मानहु कान्ह खिस्यान्यो।।**
**ऊधो! जाहु बाँह धरि ल्याओ सुन्दरस्याम पियारो। ब्याहौं लाख, धरौ दस कुबरी, अंतहि कान्ह हमारो।।**
**सुन री सखी! कछु नहिं कहिए माधव आवन दीजै। जबहीं मिलैं सूर के स्वामी हाँसी करि करि लीजै।।६३।।**

**शब्दार्थः** राजगति–लीला = राजनीति की पेचीदगियाँ। अयानी=अज्ञानी। खिस्यान्यो = खिसिया गए, लज्जित हो गए हैं। धरि = पकड़कर। धरौ= रखे, घर में बैठा लो। हाँसी करि करि = हँसते हुए, प्रसन्न मुद्रा में। लीजै = लेना, ग्रहण करना, स्वागत करना।

**प्रसंगः** सूरदास लिखते हैं कि पिछले पदों मे गोपियाँ कृष्ण को बहुत खरी--खोटी सुना चुकी हैं, अब तो आपस में विचार करके निश्चित करती हैं कि यदि उद्धव कृष्ण को मथुरा से लाने में सफल होते हैं तो हम उनसे प्रेमपूर्वक मिलें और उनका स्वागत करें।

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती है कि हे उद्धव! तुम्हारे इस ज्ञान का सारा रहस्य अब हमारी समझ में आ गया है। वस्तुतः यह सब तुम्हारी बनाई हुई बातें हैं, और कृष्ण बेचारे एक अहीर कुल के हैं, वह तुम्हारी राजनीति के दांव–पेंच को नहीं जानते। यह स्पष्ट है कि तुम और कुब्जा कृष्ण को यहाँ आने ही नही देना चाहते इस कारण तुम दोनों ने मिलकर यह षड्यन्त्र और प्रपंच रचा है, और कृष्ण को छोड़ योग की शिक्षा देना चाहते हो। क्योंकि तुम जानते हो कि कृष्ण के यहाँ चले आने पर राजकाज चलाना कठिन हो जाएगा। हम सब तो अज्ञानी एवं मूर्ख स्त्रियाँ है, और कुब्जा ही एक सयानी एवं चतुर है। उससे चतुराई एवं लोक–व्यवहार सीखते–सीखते उसके प्रेमजाल में फँस गए। इस कारण उन्हें अब यहाँ आने में लज्जा लग रही है। अब वह खिसियाने बने हुए है कि हमें किस प्रकार मुँह दिखाएँ।

इसलिए गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव! हमारी तुमसे प्रार्थना है, कि तुम तुरन्त मथुरा जाओं और कृष्ण की बाँह पकड़कर उन्हें यहाँ ले आओ, तभी उनकी लज्जा का निराकरण हो पाएगा। वे तो झेंप के कारण यहाँ आने में संकोच अनुभव कर रहे हैं। वह चाहे लाख स्त्रियों से विवाह कर लें, चाहे दस कुब्जाओं को अपने घर में डाल लें, लेकिन वे हमारे हैं और हमारे रहेंगे। हे सखी! मेरी बात सुनो, जब माधव यहाँ आ जाएँ, तो उनसे कोई कुछ न कहे। उन्हें आराम से यहाँ आने देना, जब वह यहाँ आएँ, तो हँसी--खुशी उन्हें ग्रहण करना और आदर एवं ससम्मान के साथ उनका स्वागत करना। तभी उनके मन की ग्लानि दूर होगी और हमारे बर्ताव से उनमें हमारे प्रति किए गए अन्याय के लिए पश्चाताप की भावना उदित होगी।

**विशेषः–**

1. प्रस्तुत पद मे गोपियों के इस विश्वास की व्यंजना हुई है कि कृष्ण उन्हीं के हैं चाहे वे अनेक स्त्रियों से विवाह कर लें और चाहें दस कुब्जाओं को घर में डाल लें। उनके मत में कृष्ण तो सीधे--सरल हैं वह तो कुब्जा और उद्धव के राजनीति सम्बन्धी दाँव--पेच में फँस गए हैं।
2. गोपियों ने कृष्ण की लज्जा एवं खिसियानेपन का अत्यन्त विदग्धतापूर्ण वर्णन किया है।
3. 'अन्त अहीर विचारों' में प्रियतम विषयक रति को शब्दों में प्रकट करने के कारण ' बिव्वोक' नामक हाव है।
4. गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम भाव।
5. गोपियों की वाकपटुता।

6. . ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग। 7. आकर्षक गेयता।
8. वियोग शृंगार की अभिव्यक्ति। 9. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
10. सुन्दर बिम्ब–विधान। 11. 'करि–करि' में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार

।। 94 ।।

**उर में माखनचोर गड़े। अब कैसहु निकसत नहिं, ऊधो! तिरछे हैं जो अड़े।।**
**जदपि अहीर जसोदानंदन तदपि न जात छँड़े। वहाँ बने जदुर्बस महाकुल हमहिं न लगत बड़े।।**
**को बसुदेव देवकी है को, ना जाने और बुझैं। सूर स्यामसुंदर बिनु देखे और न कोऊ सूझै।।६४।।**

**शब्दार्थः** कैसेहु = किसी प्रकार भी। छँड़े = छोड़े। सूझैं = सूझता, दिखाई देता।

**प्रसंगः** गोपियों के हृदय में माखनचोर अड़ गए हैं। वे उन पर इतनी मोहित हैं कि उनको अपने हृदय से निकाल नही पाती इसी कारण वह निर्गुण–ब्रह्म को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। प्रस्तुत पद उनके इसी भार की व्यंजना हुई है।

**व्याख्याः** हमारे हृदय में माखन–चोर कृष्ण की मोहिनी मूर्ति गड़ी हुई है। अर्थात् बस गई है क्योकिं उनकी माधुरी–मूर्ति त्रिभंगी है और तिरछी होने के कारण हमारे हृदय मे गड़ गई है। अतः अब यह मूर्ति वहाँ से किसी भी प्रकार निकल नहीं सकती अर्थात हम किसी भी प्रकार कृष्ण–प्रेम को छोड़कर तुम्हारे ब्रह्म को नहीं अपना सकतीं। यद्यपि यशोदानन्दन कृष्ण जाति के अहीर है फिर भी हमसे उन्हें नहीं बनता। वहाँ मथुरा में जाकर वह महान् कुल यदुवंश के एक अंग बन गए हैं, तो भी हमारे लिए वह बड़े आदमी नहीं बने। हमें तो वह अभी भी अहीर–कुल के छोटे–से आदमी लगते हैं जो हमारे साथ ब्रज में रहते हुए प्रेम–क्रीडाएँ किया करते थे। तुम जिनका बार–बार नाम ले रहे हो, वह सुखदेव कौन है और देवकी कौन हैं? हम उनके सम्बन्ध मे पूर्णतया अपरिचित हैं और न ही हमें उनके विषय में कुछ जानने–बूझने की इच्छा है। वे बड़े होंगे तो अपने घर में होंगे, हमें उनके बड़प्पन से कुछ लेना–देना नहीं। हम तो यह जानती है कि अपने श्यामसुन्दर कृष्ण के बिना देखे हमें और कुछ नहीं सूझता हम उनके बिना कुछ भी नहीं सुहाता, अतः तुम्हारें निर्गुण–ब्रह्म को स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

**विशेषः–**

1. प्रस्तुत पद में कृष्ण के प्रति गोपियों की अखण्ड–प्रेम निष्ठा की भावना का प्रकाशन हुआ है, साथ ही व्यंग्य का भाव भी व्यक्त हुआ है, व्यंग्य सम्पूर्ण यादववंश पर है।
2. प्रथम दो पंक्तियों में कृष्ण की त्रिभंगी मुद्रा की ओर संकेत है जिसकी मोहिनी गोपियों के हृदय में गड़ गई है अतः अब वहाँ किसी अन्य के लिए स्थान नहीं रहा।
3. आकर्षण लयात्मकता। 4. सुन्दर बिम्ब–विधान।
5. आकर्षक गेयता। 6. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
7. वियोग शृंगार की अभिव्यक्ति। 8. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
9. गोपियों कील वाक्पटुता। 10. प्रभावी अभिव्यंजना।

।। 95 ।।

**गोपालहिं कैसे कै हम देति? ऊधो की इन मीठी बातन निर्गुण कैसे लेति?**
**अर्थ, धर्म, कामना सुनावत सब सुख मुकुति समेति। जे व्यापकहिं बिचारत बरनत निगम कहत हैं नेति।।**
**ताकी भूलि गई मनसाहू देखहु जौ चित चेति। सूर स्याम तजि कौन सकत है, अलि काकी गति एति।।६५।।**

**शब्दार्थः** कैसे कै = किस प्रकार। देती = दे सकती है। समेति = सहित। व्यापकहिं = व्यापकता। निगम = वेद। नेति = यह नहीं हैं, न इति। मनसाहू = बुद्धि भी। चेति = विचारकर। काकी = किसकी। एति = इतनी।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद भक्ति काल के भक्त शिरोमणि सूरदास द्वारा लिखित 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। प्रस्तुत पद मे गोपियाँ कृष्ण को छोड़कर निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार करने में अपनी असमर्थता प्रकट कर रही हैं। कृष्ण तो उन्हें प्राप्त हैं, वे सदा उनके मन में निवास करते हैं, जबकि निर्गुण ब्रह्म को दुरूह साधना द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। वस्तुतः वह तो अन्त तक अप्राप्य बना रहता है। गोपियाँ पररूप इसी बात पर चर्चा कर रहीं है।

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती हैं कि हम अपने गोपाल को किस प्रकार उद्धव को दे सकती हैं? कृष्ण को भुलाना और उन्हें उद्धव को देना हमारे लिए नितान्त असम्भव है। हमारे लिए न तो यह ही सम्भव है और न ही हम इनकी चिकनी–चुपड़ी बातों में निर्गुण–ब्रह्म को स्वीकार कर सकती हैं। ये हमें प्रलोभन दे रहे हैं, कि हमें ब्रह्म की उपासना द्वारा मुक्ति के साथ–साथ अर्थ, धर्म और कामना की भी प्राप्ति होगी, अर्थात् ब्रह्म की साधना से हमारी सम्पूर्ण कामनाएँ फलीभूत हो जाएँगी। ये उद्धव उस ब्रह्म को सर्वव्यापक कहते हैं तथा वेद आदि ग्रन्थों ने ब्रह्म की व्यापकता पर विचार करते हुए उसे 'नेति–नेति' कहा है। जब इन शास्त्रों के अनुसार ब्रह्म कोई वस्तु ही नहीं तो वह उक्त सब बातों का फलदाता किस प्रकार हो सकता है। जिसने भी अभी तक इस ब्रह्म के विषय में अपने हृदय में सोच–विचार किया है, उसकी अगम्यता का अनुभव करके उसकी बुद्धि चकरा गई है – अर्थात् आज तक कोई भी इस व्यापक ब्रह्म को जान नहीं पाया। अतः हम कोई ऐसी मूढ़ तो हैं नहीं जो इस अप्राप्य ब्रह्म के प्रलोभन में आकर अपने श्यामसुन्दर कृष्ण को त्याग दें। कृष्ण तो हमें सहज रूप से प्राप्य हैं उन्हें त्यागकर दुरूह साधना द्वारा भी अन्त में अप्राप्य रहने वाले ब्रह्म की आराधना करना हमारे वश में नहीं।

**विशेषः–**

1. प्रस्तुत पद में गोपियों ने अत्यन्त सबल तर्कों द्वारा निर्गण ब्रह्म का खण्डन प्रस्तुत किया हैं उनके मत में कृष्ण उन्हें सहज प्राप्त हैं जबकि ब्रह्म दुरूह उपासना द्वारा भी अन्त में अप्राप्त ही बना रहता है, तो फिर हम कृष्ण को किस प्रकार छोड़ सकती है? यह न तो उचित ही है और न ही सम्भव है।

2. कृष्ण के प्रति गोपियों को अटूट प्यार। 3. भक्ति रस का सुन्दर परिपाक।
4. सहज एवं सरल भाषा प्रयोग। 5. मनभावन अभिव्यजंना।
6. आकर्षक ध्वन्यात्मकता। 7. मनोहारी बिम्ब–विधान।
8. आकर्षक गेयता। 9. रस, अलंकार का प्रयोग।
10. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति। 11. प्रसाद, माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।

**।। 96 ।।**

**उपमा एक न नैन गही। कबिजन कहत–कहत चलि आए, सुधि, करि–करि काहू न कही।**
**कहे चकोर, सुख–बिधु बिनु जीवन, भँवर न, तहँ उड़ि जात। हरिमुख–कमल कोस बिछुरे ते ठाले क्यों ठहरात?**
**खंजन मनंरजन जन जौ पै, कबहुँ नाहिं सतरात। पँख पसारि न उड़त, मंद है समर समीप बिकात।।**
**आए बधन व्याध हे ऊधो, जौ मृग, क्यों न पलाय। देखत भागि बसै घन बन में जहँ कोउ संग न धाय।।**
**ब्रजलोचन बिनु लोचन कैसे? प्रति छिन अति दुख बाढ़त। सूरदास मीनता कछू इक, जन भरि संग न छाँड़त।।६६।।**

**शब्दार्थः** गही = ग्रहण की। बिधु = चन्द्रमा। ठाले = अभाव में। ठहरात = स्थिर, अचल पड़े रहते। सतरात = सतर होते, क्रुद्ध होते। मन्द = शिथिल। समर = कामदेव। पलाय = भाग जाते। घन = सघन। छाँड़त = छोड़ते।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद में गोपियों ने प्रकारान्तर से अपनी आँखों की भर्त्सना की हैं, क्योंकि कृष्ण–वियोग में व्यथित रहने के कारण उनके नेत्रों ने अपना सम्पूर्ण सौन्दर्य तथा विशिष्टता खो दी है।

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती हैं कि हमारे इन नेत्रों ने कवियों द्वारा विवेचित विभिन्न उपमाओं में से एक भी उपमा को ग्रहण नहीं किया। कवियों ने नेत्रों की विशेषताओं के आधार पर इनके लिए अनेक उपमाएँ निश्चित की हैं, किन्तु हमारे नेत्रों पर उनमें से एक भी लागू नहीं होती क्योंकि इनमें कोई भी गुण अब उपलब्ध नहीं होता। प्राचीन काल से कविगण नेत्रों की विभिन्न पदार्थों, पशु–पक्षियों आदि के साथ गुण–कार्य के आधार पर अनेक उपमाएँ देते रहे हैं, किन्तु किसी भी कवि ने सोच–विचार पर कोई भी ऐसी उपमा नहीं दी जो हमारे नेत्रों पर संगत बैठती। कवियों ने नेत्रों को चकोर कहा, किन्तु हमारे नेत्रों में तो चकोर का गुण धर्म है ही नहीं क्योंकि ये कृष्ण के चन्द्र मुख को निहारे बिना भी अभी तक जीवित हैं इनके लिए भ्रमर की उपमा भी उचित नहीं। क्योंकि भ्रमर तो अनायास वहीं पहुँच जाता है, जहाँ कमल पुष्प होता है। और कमल–कोश में बन्दी बनकर स्वयं को धन्य मानता है, किन्तु हमारे ये नेत्र कृष्ण के मुखरूपी कमल–कोश से बिछुड़ गए हैं, किन्तु फिर भी उनके पास उड़कर नहीं जाते अपितु वे निठल्ले होकर यही स्थिर हो गए हैं और कृष्ण के लौटने की प्रतीक्षा में टकटकी लगाए हुए हैं अतः नेत्रों के लिए कवियों द्वारा प्रयुक्त उक्त दो उपमाएँ संगत नहीं प्रतीत होती।

यदि नेत्रों को मानव–जाति को मनोरंजन प्रदान करने वाले खंजन पक्षी के समान स्वीकार किया जाए। तो यह भी उचित प्रतीत नहीं होता। खंजन पक्षी अपने सम्मुख बधिक को आया पाकर क्रुद्ध होकर अकड़ उठता है और अपने पंख फैलाकर उससे दूर भाग जाता है। जबकि हमारे नेत्र किसी ऐसी स्थिति में न तो क्रुद्ध ही होते हैं और न ही कहीं दूर भागने का प्रयत्न करते हैं अपितु ऐसी स्थिति में ये स्वयं को शिथिल पाते हैं और कामदेव के प्रभाव में आकर उसके वश में हो जाते हैं।

इनके लिए मृग की उपमा भी संगत नहीं प्रतीत होती क्योंकि मृग बहेलिए को अपने पास आता हुआ देखर भाग खड़ा होता है और सघन बन में ऐसे स्थल पर जाकर छुप जाता है कि जिससे न तो उसका पीछा किया जा सके, और न ही ढूँढा जा सके किन्तु हमारे ये नेत्र उद्धव रूपी बहेलिए को अपना शिकार करने के लिए आया जानकर भी कहीं जाकर छुपते नहीं। इन्हें लोचन अर्थात् देखने वाला कहना भी व्यर्थ है, क्योंकि ब्रजलोचन कृष्ण के अभाव में यह उपमा भी सार्थक नहीं। इनकी सार्थकता तो केवल कृष्ण के दर्शन करते रहने में ही है। कृष्ण को बिना देखे इनका दुःख–वेदना क्षण–प्रतिक्षण बढ़ती रहती है

केवल एक ही उपमान ऐसा है जिसका थोड़ा सा अंश हमारे इन नेत्रों में उपलब्ध होता है। इनके लिए मछली की उपमा कुछ–कुछ सार्थक प्रतीत होती है। जिस प्रकार मछली क्षणभर के लिए भी जल से पृथक नहीं होती, उसी प्रकार हमारे ये नेत्र क्षण भर के लिए भी जल का साथ नहीं छोड़ते। अर्थात् इनके सदैव आँसू विद्यमान रहते हैं – ये कृष्ण–वियोग में सदा सजल रहते हैं

**विशेषः–**

1. प्रस्तुत पद में विभिन्न अलंकारों के प्रयोग द्वारा नेत्रों के विभिन्न उपमानों का अत्यन्त हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत किया गया है।
2. अन्तिम पंक्ति मे 'मीनता' शब्द का प्रयोग ध्वनिपूर्ण है।
3. उद्धव के कृष्ण–प्रेम को भुलाने की प्राण–घातक बात कहने के कारण बधिक कहा गया है।
4. कृष्ण के प्रति गोपियों की आस्था का मनोहारी चित्रण है।
5. ब्रज भाषा का सरल प्रयोग।
6. गोपियों की वाक्पटुता का सुन्दर चित्रण।
7. मुक्तक शैली।
8. सूक्ष्मभावों की सहज अभिव्यक्ति।
9. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
10. सुन्दर बिम्ब–विधान।
11. आकर्षण गेयता।
12. अलंकार

(क) सम्पूर्ण पद में 'रूपक और 'हीनोपमा' अलंकार। (ख) 'उपमा.....गही' में व्यंग्य के कारण व्यतिरेक अलंकार।
(ग) 'कविजन.....कहीं' में काव्यलिंग अलंकार। (घ) 'ब्रजलोचन' में परिकर अलंकार।

**।। 97 ।।**

**हरिमुख निरखि निमेख बिसारे। ता दिन ते मनो नए दिगंबर इन नैनों के तारे।।**
**घूँघट–पट छाँड़े, बीथिन महँ अहनिसि अटत उधारे। सहज समाधि रूपरुचि इकटक टरत न टक ते टारे।।**
**सूर,सुमति समुझति, जिय जानति, ऊधो! बचन तिहारे। करैं कहा ये कह्यौ न मानत लोचन हठी हमारे।।९७।।**

**शब्दार्थः** निमेख बिसारे = पलक झपकाना भूल गए। दिगम्बर = नंगे। तारे = पुतलियाँ। बीथिन = गलियों। अटत = समान घूमते। उधारे = नंगे बदन। टक = टकटकी बाँधकर देखना। टारे = मना करने पर। सुमति = अच्छा विचार।

**प्रसंगः** गोपियों के नेत्र कृष्ण की रूप–माधुरी के अतिरिक्त और कुछ देखना ही नहीं चाहते। वे रात–दिन उन्हीं के दीदार बने रहते है। गोपियाँ अपने नेत्रों की इस विवशता को उद्धव के सम्मुख व्यक्त कर रही हैं–

**व्याख्याः** गोपियाँ कहती है कि हे उद्धव! कृष्ण की रूप–माधुरी के दर्शन करके हमारे ये नेत्र अपनी पलकें झपकना भी विस्मृत कर बैठे हैं। जिस दिन से इन्होंने पलकरूपी घूँघट को उतार फेंका है – अर्थात् ये अपलक मधुबन की गलियों में घूमते रहती हैं और श्री कृष्ण के रूप के दर्शनों के लिए आतुर रहती हैं, सदैव उन्हें ही खोजती रहती है। कवि के कहने का भाव यह है

कि गोपियों के नेत्रों ने पलक न झपकने के कारण मानों पुतली रूपी वस्त्र को उतार फेंका है और अब नग्नावस्था में बिना लोक–लाज की चिन्ता किए बिना गलियों में भटका करती हैं और इस प्रकार कृष्ण को खोज रही हैं।

ये पुतलियाँ श्री कृष्ण के अनुपम सौन्दर्य के ध्यान में रहती है तथा टकटकी बाँधे ध्यान में तल्लीन ऐसी प्रतीत होती हैं मानो गोपियों के समान सहज–समाधि की अवस्था में स्थित योग–साधना कर रहीं हों। यह मना करने पर भी नहीं मानती और सदा अपलक कृष्ण के रूप के ध्यान में मग्न रहती हैं।

हे उद्धव! हम तुम्हारे श्रेष्ठ विचारों को समझ रही हैं, हम अपने हृदय में भी यह जानती हैं कि तुम हमारे कल्याण के लिए हमें निर्गुण ब्रह्म का उपदेश दे रहे हो। किन्तु हम कुछ कर नहीं पा रही हैं, बात हमारे वश में नहीं रही, क्योंकि ये हमारे हठधर्मी नेत्र हमारे कहने में ही नहीं आते। इन्हें तो कृष्ण रूप की लगन लगी है, उन्हें त्यागकर ये अन्य किसी ब्रह्म आदि को देखना पसन्द भी नहीं करते, अतः हम बाध्य हैं, तुम्हारी बात मानना हमारी सामर्थ्य में नहीं।

**विशेषः–**

1. गोपियों की वाग्विदग्धता दर्शनीय हैं। वे अपने वाक्–चातुर्य द्वारा ब्रह्म को स्वीकार न करने का सारा दोष अपने नेत्रों पर लगा रहीं हैं, और इस प्रकार उद्धव को मूर्ख बना रही हैं।
2. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
3. आकर्षक गेयता।
4. प्रभावी व्यंग्य योजना।
5. कृष्ण के प्रति अनूठा प्रेम–भाव।
6. सूक्ष्म भावों की सहज अभिव्यक्ति।
7. मुक्तक शैली।
8. सुन्दर बिम्ब–विधान।
9. ध्वन्यात्मकता।
10. 'ता दिन.....तारे' में उत्प्रेक्षा अलंकार।

*।। 98 ।।*

**दूर करहू बीना कर धरिबो। मोहे मृग नाहीं रथ हाँक्यों, नाहिन होत चंद को ढरिबो।।**
**बीती जाहि पै सोई जानै कठिन है प्रेम–पास को परिबो। जब तें बिछुरे कमलनयन, सखि, रहत न नयन नीर को गरिबो।।**
**सीतल चंद अगिनि–सम लागत, कहिए धीर कौन विधि धरिबो। सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु सब झूठो जतननि को करिबो।।६८।।**

**शब्दार्थः** धरिबो = धारण करना। ढरिबो = ढलना, अस्त होना। परिबो = पड़ता। नीर = अश्रु गरिबो = गिरना। अगिनि = आग। धीर = धीरज, धैर्य। दरस = दर्शन। झूठो = व्यर्थ। जतननि = यत्नों का, प्रयत्नों का। करिबो = करना।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद्यांश मे कवि सूरदास लिखते हैं कि राधा प्रिय कृष्ण के विरह मे दग्ध है। वियोगिनी राधा की दशा जब विषम हो उठती है तो अन्य सखियाँ उसका मन बहलाने की चेष्टा करती हैं। कृष्ण की ओर से उसका ध्यान हटाने के लिए एक सखी–वीणा बजाकर विरहिणी राधा को प्रसन्न करना चाहती है, किन्तु राधा उसे ऐसा करने से रोकती हैं, और प्रस्तुत पद में इसका कारण बताते हुए कहती हैं कि–

**व्याख्याः** हे सखी! यह जो वीणा तू हाथ मे लेकर बजा रही है इसे दूर करके रख दे। वीणा के मधुर स्वर को सुनकर चन्द्रमा के रथ में जुड़े हुए मृग स्थिर होकर रह गए हैं, जिससे चन्द्रमा अस्त ही नहीं हो रहा।

कवि के कहने का भाव यह है कि वियोगिनी राधा को चाँदनी रात अत्यन्त दुःखदायी प्रतीत होती है, काटे ही नहीं कटती क्योंकि उसे प्रिय कृष्ण के साथ क्रीड़ा–विहार की सुधि आ रही है। वीणा–वादन के कारण ही रात को लम्बा हुआ समझती है और उसे बंद करवा देती है। प्रेम–पाश में पड़ना और उसका निबाहना अत्यन्त कठिन होता है। इसकी वेदना तो वही अनुभव कर सकता है जिसने कभी किसी से प्रेम किया हो और अपने प्रिय के वियोग का दुःख सहा हो। हे सखी जबसे कमल–नेत्र श्री कृष्ण मुझसे बिछुड गए हैं, मुझे त्यागकर मथुरा में जा बैठे हैं, तबसे मेरे नयनों से आँसुओं का गिरना बन्द नहीं हुआ। मैं उनके वियोग मे सदा आँसू बहाती रहती हूँ।

संसार को शीतलता प्रदान करने वाला यह चन्द्रमा मुझे तो अग्नि में दग्ध करता हुआ प्रतीत होता है। अब तुम ही बताओं इस अवस्था में मैं किस प्रकार धैर्य धारण करूँ? सूरदास कहते हैं कि राधा अपनी सखी से कह रही है कि प्रिय कृष्ण के दर्शन से ही मेरी व्याकुलता दूर हो सकती है, बाकी सब यत्न व्यर्थ हैं, उनसे कोई लाभ होने वाला नहीं।

**विशेषः–**

1. संयोगावस्था में आनन्ददायक वस्तुएँ विरहिणी के लिए दुःखद बन जाती है। प्रस्तुत पद में इसी काव्य–परम्परा का निर्वाह हुआ है।

2. प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण हुआ है क्योंकि प्रकृति की सुखद अनुभूति भी राधा के विरह को उद्दीप्त कर रही है
3. जायसी की नायिका पर भी चाँदनी रात मे वीणा का यही प्रभाव पड़ा हैं–
   "गहै बीनु मकु रैन बिहाई। ससि वाहन तहँ रहे ओ नाई"।।
4. ब्रजभाषा का सरल प्रयोग। 5. वियोग रस का सुन्दर चित्रण।
6. सुन्दर बिम्ब–विधान। 7. आकर्षक ध्वन्यात्मकता।
8. मन भावन भावाभिव्यक्ति। 9. आकर्षक गेयता।
10. प्रसाद माधुर्य गुणसम्पन्न शैली।
11. अलंकार
    (क) 'मोहे .... दरिबो में' उत्प्रेक्षा अलंकार।
    (ख) 'सीतल....धरिबो में' अतिशयोक्ति अलंकार।
    (ग) 'प्रेम–पाश' में रूपक अलंकार।
    (घ) 'कमलनयन' में उपमा अलंकार।

**।। 99 ।।**

**अति मलीन वृषभानुकुमारी। हरि–स्रमजल अन्तर–तनु भीजे ता लालच न धुआवति सारी।।**
**अधोमुख रहति उरध नहिं चितवाति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी। छूटे चिहुर बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।।**
**हरि–संदेस सुनि सहत मृतक भई, इक बिरहिनि दूजे अलि जारी। सूर–स्याम बिनु यों जीवति हैं ब्रजबनिता सब स्यामदुलारी।।९९।।**

**शब्दार्थः** मलीन = मैली, शिथिल, उदास। वृषभानुकुमारी = राधा। हरि–स्रमजल = कृष्ण के साथ की गई प्रेम–क्रीडाओं में श्रम के कारण शरीर से निकले हुए पसीने की बूँदें। अन्तर–तनु = मन और शरीर। भीजे = भीगना। धुआवति = धुलवाना। अधोमुख = मुख नीचा किए हुए। उरध = ऊपर की ओर। चित = देखती। गथ = पूँजी। चिहुर = चिकुर, बाल। बदन = मुख। कुम्हिलाने = मुरझा जाना। नलिनी = कमलिनी। हिमकर = तुषार, पाला।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद भक्ति काल के भक्त शिरोमणि सूरदास द्वारा रचित 'भ्रमरगीत सार' से लिया गया है। इसमें कवि लेखते हैं कि कृष्ण–विरह में राधा की स्थिति अत्यन्त शोचनीय बन गई है। एक तो कृष्ण–विरह ने ही उसकी स्थिति दयनीय बना रखी है, उद्धव ने निर्गुण–ब्रह्म के उपदेश से उसे और भी विषम बना दिया है। प्रस्तुत पद में राधा की इसी अवस्था का चित्रण किया गया है।

**व्याख्याः** कृष्ण के विरह में वृषभानुकुमारी अर्थात् राधा अत्यन्त मलिन और शिथिल रहती है। उसकी साड़ी अत्यन्त मैली हो गई है किन्तु वह उसे मैली ही पहने रहती है, धुलवाती नहीं। साड़ी को न धुलवाने का कारण यह है कि कृष्ण के साथ विरह–लीला के समय प्रेमावेश के कारण उसके शरीर ने जो श्रम किया था उसके कारण निकले हुए पसीने से उसकी पूरी साड़ी भीग गई थी, अब उस साड़ी से राधा को कृष्ण के शरीर की सुगन्ध आती रहती है। इसी आकर्षण एवं आनन्द के कारण वह अपनी साड़ी नहीं धुलवाती, बल्कि मैली ही पहने रहती हैं।

राधा सदैव मुख नीचा किए हुए कृष्ण के साथ व्यतीत किए गए सुखद दिनों की मधुर स्मृति में खोई रहती है। वह कभी भी मुख ऊपर उठाकर नहीं देखती। उसकी यह दशा उस जुआरी जैसी है जो जुंए में अपनी समस्त पूँजी हार चुका हो और अब उसी सोच में उदास बैठा हो। वह कृष्ण पर अपना सर्वस्व अर्पित कर चुकी है और अब उसी सोच मे उदास रहती है।

राधा के बाल बिखरे रहते हैं तथा मुख कुम्हलाया रहता है। उसकी यह कान्तिहीन दशा उस कमलिनी का स्मरण दिलाती है जो तुषारापात के कारण मुरझा गई है और अपनी समस्त सुन्दरता खो बैठी है। कृष्ण के निर्गुण ब्रह्म के संदेश को सुनकर तो वह मरणासन्न हो गई है। कृष्ण के विरह में पहले ही संतप्त थी, अब उद्धव ने निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देकर उसे और भी अधिक व्यथित किया है, अब तो वह मृतप्राय ही है।

सूरदास जी कहते हैं, कृष्ण की विरह मे केवल राधा ही अकेली संतप्त नहीं और न केवल उसकी ही ऐसी विषम स्थिति है, बल्कि कृष्ण की प्रिय सभी ब्रज युवतियाँ कृष्ण के विरह में राधा के समान मर्मान्तक पीड़ा झेलती हुई किसी प्रकार जीवित हैं

**विशेषः–**

1. प्रस्तुत पद मे विरहिणी राधा का मार्मिक, प्रभावशाली एवं सहानुभूतिपूर्ण वर्णन उपलब्ध होता है।
2. इसमे विरह की अन्तिम अवस्था 'मरण' का चित्रण किया हुआ है।
3. वियोग रस का सुन्दर चित्रण।
4. ब्रजभाषा प्रयोग।
5. सूक्ष्मभावों की अभिव्यक्ति।
6. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम् शब्दों का प्रयोग।
7. प्रसाद, माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
8. सुन्दर बिम्ब–विद्यान।
9. आकर्षक गेयता।
10. अलंकार
    (क) 'ज्यों.....जुआरी' में उपमा अलंकार।
    (ख) 'ज्यों.....मारी' में उत्प्रेक्षा अलंकार।
    (ग) 'हरि.....अलि जारी' में काव्यलिंग अलंकार।

**।। 100 ।।**

**ऊधौ तुम हो अति बड़भागी। अपरस रहत सनेहतगा तें, नाहिंन मन अनुरागी।**
**पुरइनि–पात रहत जल–भीतर ता रस देह न दागी। ज्यों जन माँह तेल की गागरि बूँद न ताके लागी।**
**प्रीत नदी मे पाँव न बोर्‌यो, दृष्टि न रूप–परागी। सूरदास अबला हम भोरी गुर चींटी ज्यों पागी।।१००।।**

**शब्दार्थः** बड़भागी = बड़े भाग्य वाले, भाग्यशाली। अपरस = अनासक्त, उदासीन। सनेहतगा = स्नेह का तागा, डोरा, बन्धन। पुरइनि = कमल। रस = जल। दागी=दाग तक नहीं लगता। बोर्‌यो = डाला। रूप–परागी = सौन्दर्य में उलझी। गुर = गुड़। पगी = चिपक गई, आसक्त हो गई।

**प्रसंगः** प्रस्तुत पद में गोपियों ने अपने सगुण–प्रेम–पंथ की भयंकरता प्रकट करते हुए, उससे अपनी दृढ़ता प्रदर्शित की है तथा उद्धव की प्रेम–सम्बन्धी उदासीनता पर व्यंग्य किया है।

**व्याख्याः** गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव! तुम सचमुच अत्यन्त भाग्यशाली हो क्योंकि तुम प्रेम–बन्धन से बिल्कुल स्वतन्त्र हो। प्रेम का तुम्हारे लिए कोई आकर्षण नहीं, और न ही तुम्हारा मन किसी के प्रेम में अनुरक्त होता है, अर्थात् तुम्हारा मन प्रेम की भावना से रिक्त है। जिस प्रकार कमल पुष्प के पत्ते सदा जल के पास रहते हैं किन्तु जल से अछूते ही रहते हैं, उन पर जल की एक बूँद भी नहीं ठहरती है और जिस प्रकार तेल की मटकी को जल में भिगोने पर जल की एक बूँद भी उस पर नहीं ठहरती अर्थात् ये दोनों तेल का मटका और कमल का पत्ता जल के सहचर्य में भी उससे अनासक्त रहते हैं, उसी प्रकार तुम कृष्ण के समीप रहते हुए भी उनके रूपाकर्षण तथा प्रेम–बन्धन से सर्वथा मुक्त हो इसलिए वास्तव में तुम भाग्यशाली हो। वस्तुतः तुम आज तक प्रेम रूपी नदी में उतरे ही नहीं, अर्थात् तुमने कभी किसी से प्रेम ही नहीं किया और न ही कभी किसी के रूप लावण्य ने तुम्हें आकर्षित किया है, इस प्रकार न तो तुम रूप पारखी हो और न ही तुम्हारा मन प्रेम भाव से परिचित है। किन्तु हे उद्धव! हम तो भोली–भाली ग्रामीण अबलाएँ है और हम अपने प्रिय कृष्ण की रूप–माधुरी पर मोहित होकर इस प्रकार उनके प्रेम में पग गई है कि अब उनसे विमुख नहीं हो सकती। हमारी यह स्थिति उन चीटियों के समान है जो गुड़ पर आसक्त हो उससे चिपट जाती है और फिर स्वयं को छुड़ा न पाने के कारण वही प्राण दे देती है।

**विशेषः–**

1. प्रस्तुत पद में मुख्य भाव व्यंग्य है। गोपियाँ उद्धव की प्रेम हीनता पर व्यंग्य करती हुई उनकी भर्त्सना कर रही हैं।
2. वस्तुतः व्यंग्य यह है कि उद्धव भाग्यशाली न होकर अति अभागे हैं जो कृष्ण रूपी सौन्दर्य और प्रेम के सागर के किनारे पर बसते हुए भी उस आकर्षण एवं बन्धन से मुक्त है। इस प्रकार 'अति बड़भागी' में व्यंग्य है।
3. ब्रजभाषा का प्रयोग।
4. सुन्दर भावाभिव्यक्ति।
5. आकर्षक गेयता।
6. सूक्ष्म भावों की सुन्दर प्रस्तुतीकरण।
7. सुन्दर बिम्ब–विधान।
8. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
9. वियोग रस का सुन्दर परिपाक।
10. अलंकार (क) सम्पूर्ण पद में उपमा और दृष्टान्त अलंकार है। (ख) 'प्रीति.....नदी' मे रूपक अलंकार।

# तुलसीदास

## खण्ड (क)

### आलोचना

1. तुलसीदास का जीवन परिचय
2. तुलसीदास की काव्य कला
3. तुलसीदास की भक्ति भावना
4. तुलसीदास की दार्शनिक भावना
5. युगीन परिस्थितियाँ
6. तुलसीदास की सामाजिक चेतना
7. रामचरितमानस में लोकमंगल की चेतना
8. रामचरितमानस की प्रबन्ध कल्पना
9. तुलसीदास की विनय भावना
10. तुलसीदास का समन्वयवाद
11. तुलसीदास का प्रकृति चित्रण
12. रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड का सारांश
13. रामचरितमानस में उत्तरकाण्ड का महत्त्व
14. भरत का चरित्र
15. तुलसीदास की रामराज्य की कल्पना
16. तुलसी की काव्य भाषा
17. तुलसी की सांस्कृतिक योजना
18. तुलसीः यथार्थ बोध

## खण्ड (ख)

### व्याख्या

# खण्ड (क) : आलोचना

# अध्याय 1

# तुलसीदास : जीवन–परिचय

## गोस्वामी तुलसीदास जी का जीवन–परिचय

तुलसी मुगल सम्राट अकबर के समकालीन थे यह निर्विवाद तथ्य है। अकबर का शासनकाल, मुगलकालीन शासनकाल का सर्वश्रेष्ठ समय माना जाता है। धार्मिक सहिष्णुता, हिन्दुओं की उच्च पदों पर नियुक्ति आदि के कारण कुछ विद्वान् इसे भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल तक कह देते हैं यह भुलाकर कि पराधीनता आखिर पराधीनता है। 'दीन इलाही' के नाम पर अकबर स्वयं हिन्दुओं को धर्मान्तिरित करने का कौशलपूर्ण षड्यन्त्र कर रहा था। अकबर के वर्चस्व और मुगल संस्कृति के प्रभाव से हिन्दू जनता अपने उच्चादर्शों को भुलाकर उसे उसी प्रकार आत्मसात् कर रही थी, जिस प्रकार अंग्रेजी शासनकाल की समाप्ति हो जाने पर भी आज भारतवासियों द्वारा पाश्चात्य संस्कृति अपनाई जा रही है। पारिवारिक जीवन इस प्रकार त्रस्त हो चुका था, जिस प्रकार काठ को घुन लगकर उसे विकृत कर देता है। पारिवारिक दायित्त्व के निर्वाह से विमुख होकर लोग वैराग्य पथ के पथिक बन रहे थे–

**"नारि मुई गृह सम्पति नासी, मुंउ मुंडाई हों हि सन्यासी।"**

वर्णाश्रम धर्म पराधाम से विलुप्त होने की तैयारी कर रहा था। वैदिक सिद्धान्तों का पद.पद पर तिरस्कार हो रहा था। धूर्त जन नाना प्रकार के वेश बनाकर भोले.भाले व्यक्तियों को ठग रहे थे–

**"बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी।। द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजा सब।**
**कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।। मागर सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पण्डित सोइ जो गाल बजावा।।**
**× × × जाके नख अरु जटा बिलासा। सोइ तापस प्रसिद्ध कलि काला।।"**

राजनैतिक तथा सामाजिक दशा की भाँति तत्कालीन साहित्यिक दशा भी अच्छी नहीं थी। संस्कृत विद्वान लोकभाषा का आश्रय ले अपने विचारों की अभिव्यक्ति करना अथवा उनमें अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करना अपमानजनक मानते थे। प्रायः कवि कर्म चाटुकारिता के चरणों में समर्पित हो निज महत्त्व खोता जा रहा था। स्वयं हमारे प्रतिपाद्य गोस्वामी तुलसीदास को भी 'भाषा भन्निति' उपहासास्पद प्रतीत होती थी।

परन्तु राम के इस अनन्य साधक को 'राम भक्ति भूषित' होने के कारण विश्वास था कि हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादाधति साध ाक के अनुसार सज्जन व्यक्ति उनकी लोकभाषा में प्रस्तुत रचना को सुनकर उसकी सराहना किए बिना न रहेंगे।

ऐसी विषम परिस्थितियों से परिपूर्ण काल में एक महान् आत्मा का अविर्भाव भारत की पावन भूमि पर हुआ जिसने देश और समाज की पतितावस्था को खुले नेत्रों से हृदयंगम कर उन्हें इस दशा से उबारने का संकल्प किया। उन्होंने गहन चिन्तन और मनन के पश्चात् मानस रूपी "कैप्सूल" में 'राम.रसायन' तथा इस रूप में प्रस्तुत किया कि न केवल उनका युग बल्कि आज का युग भी उसे सेवन कर अनुपम पौष्टिकता का अनुभव करता है। दास बनाकर मॉरिशश तथा सूरी नाम (दक्षिणी अमेरिका) ले जाए गए भारतीय इसी की महत्ता से न केवल स्वयं जीवित रह पाये अपितु अपने कर्म और संस्कृति को भी बचा पाने में समर्थ रहे। तुलसीदास को किसी जाति अथवा वर्ग से बाँधना उस युग पुरुष के साथ अन्याय होगा। वे सही मायनों में युग पुरुष थे और उस युग के सारे मानव समुदाय के थे। सम्भवतः यही कारण है कि उनका अध्येता भले ही किसी देश अथवा जाति का हो उनके प्रति आत्मीयता की अनुभूति करता है। जॉर्ज ग्रियर्सन ने गोस्वामी तुलसीदास को गौतम बुद्ध के पश्चात् भारत का सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति स्वीकार किया है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने गोस्वामी तुलसीदास को 'लोक नायक' प्रतिपादित करते हुए लिखा है–

**"लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, बुद्धदेव समन्वयवादी थे, गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसीदास भी समन्वयकारी थे।"**

### अन्तः साक्ष्य के आधार पर तुलसी का जीवन

तुलसीदास जी की रचनाओं का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करते हुए उनके जीवन से सम्बद्ध जो सूत्र सामने आते हैं, वे एक ऐसे करुणापूर्ण जीवन का दिग्दर्शन कराते हैं जो पाषाण को भी विगलित कर देने में सक्षम हैं। इस अन्तः साक्ष्य के अनुसार वे बचपन में ही माता.पिता की स्नेहिल छत्र छाया से वंचित हो गए और फिर पाँच वर्ष की अवस्था तक इन्हें घर की सेविका ने पाला। इस

सेविका का नाम पुनियाँ था। जब तुलसी साढे पाँच वर्ष के हुए, पुनियाँ का निधन हो गया और तब उदर पूर्ति के लिए उन्हें द्वार द्वार भटकना पड़ा। देवीकृपा से 'राम शैल' निवासी श्री अनन्तानन्द जी के शिष्य श्री नरहरिदास जी ने इस बालक को देखा और होनहार जानकर उसे अपने साथ ले सूकर क्षेत्र (सौरों) आए और उसे रामकथा सुनाई तथा उसे नाम दिया—राम बोला। सम्वत् 1561 में नरहरि जी उन्हें अयोध्या ले गये और वहीं माघ शुक्ल पंचमी शुक्रवार को इनका यज्ञोपवीत संस्कार कराया तथा वैष्णवों के पाँच संस्कार करा उन्हें राम मन्त्र की दीक्षा दी और विद्याध्ययन कराने लगे। कुछ समय पश्चात् तुलसीदास काशी चले आए और शेष सनातन के पास रहकर 15 वर्ष तक वेद.वेदांग का अध्ययन किया। 1583 ज्येष्ठ शुक्ल 13 गुरुवार को इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से सम्पन्न हुआ, परन्तु इस मनस्वी के भाग्य में सम्भवतः दाम्पत्य जीवन का सुख नहीं था। एक बार बिना कहे उसके मायके चले जाने पर आप उसके पीछे.पीछे वहीं जा पहुँचे जिससे लज्जा अनुभव कर उसने इन्हें फटकारते हुए कहा था—

**"आस्थि चर्ममय देह मम, तामे ऐसी प्रीति। ऐसी जो श्रीराम महँ होती, न तौं भव भीति।।"**

कविवर सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने इस घटना को इस प्रकार रत्नावली के मुख से प्रकट कराया है—

**"धिकधिक् आँये यूं अनाहूत, धो दिया सभी निज धर्म धूत। राम के नहीं, काम के दूत कहलाये।।"**

पत्नी की यह कड़ी फटकार वैराग्य का कारण बनी। वे घर त्याग प्रयाग पहुंचे और साधुवेश ग्रहण कर तीर्थाटन करते हुए काशी पहुँचे। सम्वत् 1631 (1575 ई.) में अयोध्या में रामचरितमानस का प्रणयन आरम्भ हुआ और इसके पश्चात् विभिन्न ग्रन्थों की रचना कर सम्वत् 1680 (1623 ई.) में इस महापुरुष ने समन्वय की अभीय धार से संसार को सिंचित कर महाप्रयण किया।

## जन्म

गोस्वामी जी के जन्म तिथि के सम्बन्धों में विभिन्न मत हैं। गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस में दिए गए उनके जन्म वृत्त के अनुसार उनका जन्म बाँदा जिले के राजापुर धाम के आत्माराम दूबे तथा पत्नी दुलारी के यहाँ अभुक्त मूल नक्षत्र में सम्वत् 1554 की श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन हुआ था। इसके अतिरिक्त इनके जन्म के सम्बन्ध में यह दोहा भी सुना जाता है—

**"सम्वत् पन्द्रह सौ अस्सी, तरणी तनुजा तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी धर्‌यौ सरीर।।"**

मानस मयंक तथा मूल गोसाई चरित के अनुसार तुलसीदास जी का जन्म सम्वत् 1554 में हुआ था। शिवसिंह सराज के प्रणयिता शिवसिंह सेंगर के अनुसार तुलसीदास जी का जन्म सम्वत् 1583 है।

जॉर्ज ग्रियर्सन एवं माता प्रसाद गुप्त, पं. रामगुलाम द्विवेदी सम्वत् 1589 को उनका जन्म सम्वत् मानते हैं। प. रामनरेश त्रिपाठी एवं रामदत्त भारद्वाज भी उक्त मत के ही समर्थक हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार में गोस्वामी जी का जन्म सम्वत् 1554 मान लेने पर उनके लिए 127 वर्ष तक जीवित रहना असम्भव तो नहीं है किन्तु यह सम्भव है कि मानस मयंक के छन्दों का पाठ अशुद्ध हो।

'राम मुक्तावली' के आधार पर श्री जगमोहन वर्मा तुलसीदास जी का जन्म सम्वत् 1560 मानते हैं। कुछ विद्वान सम्वत् 1600 तथा 1668 विक्रमी सम्वत् को उनका जन्मकाल मानते हैं, परन्तु अधिकांश का मत 1554 विक्रमी सम्वत् के पक्ष में है अतः उसी को तुलसीदास जी का जन्मकाल मानना अधिक सटीक लगता है।

## जन्म स्थान

गोस्वामी जी के जन्म स्थान के सम्बन्ध में भी पर्याप्त मतभेद पाए जाते हैं। राजापुर, सोरों, तोरी, हस्तिनापुर आदि स्थान उनकी जन्म भूमि के रूप में विवादास्पद रहे हैं। पं. रामगुलाम द्विवेदी, शिवसिंह सराज मूल-गोसाई चरित, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि के अनुसार तुलसीदास जी का जन्म स्थान राजापुर स्वीकृत है और आज भी वहाँ तुलसीदास का आश्रम तथा मन्दिर विद्यमान है जो इसी स्थान को उनकी जन्म स्थली प्रतिपादित करता है। यही तुलसीदास जी के वंशजों के पास रामचरितमानस की प्राचीन प्रति की विद्यमानता भ उसी स्थान को उनकी जन्म स्थली सिद्ध करती है।

## जाति वंश आदि

तुलसीदास जी उच्च ब्राह्मण कुलोत्पन्न व्यक्ति थे यह तो निर्विवाद है। तथापि कुछ विद्वान् उन्हें कान्य कुब्ज ब्राह्मण, कुछ सनाद्य ब्राह्मण तथा कुछ सरयु पारीण ब्राह्मण मानते हैं। गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित परिचय तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार तुलसीदास जी सरयु पारीण ब्राह्मण दूबे (द्विवेदी) थे। इनके पिता का नाम 'आत्माराम दूबे' तथा माता का नाम 'हुलसी' था। माता के नाम का परिचय 'रहीम' के दोहे से भी मिलता है—

**"सुर–तिय नर–तिय नाग–तिय, अस चाहति सब कोय। गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय।।**

बाल्य काल

तुलसीदास जी का बाल्य काल अतीव विषम रहा। अभुक्त मूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण उत्पन्न होते ही माता.पिता द्वारा इनका परित्याग कर दिया गया। गृह सेविका पुनियाँ ने पाँच वर्ष की अवस्था तक इनका लालन.पालन किया और जब यह दिवंगत हो गईं, तुलसी को उदर पूर्ति हेतु 'घर.घर द्वारि फिरयो' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए द्वार.द्वार भटकना पड़ा और यह भटकाव तब तक बना रहा जब तक नरहरिदास जी का आश्रय इन्हें प्राप्त नहीं हो गया। तुलसी कृत विभिन्न रचनाओं में उनकी बाल्य दशा के परिचायक प्रमाण उपलब्ध होते हैं–

1. **"तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यों, तज्यो मातु पिताहू। खायो खोंचि माँगि मैं तेरो नाम लियो रे।।"** (विनय पत्रिका)
2. **"स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा को सो टोटक। औचक उलटि न हेरौं।।"** (विनय पत्रिका)
3. **"मातु पिता जग जाइ तज्यो। विधि हू न लिख्यो कछु भाल भलाई।।"** (कवितावली)

## गुरु

तुलसीदास ने अपने गुरु के सम्बन्ध में बहुत कम संकेत दिया है। मानस में उन्होंने अपने गुरु के सम्बन्ध में मात्र इतना संकेत दिया है–

**"बन्दौ गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि। महा मोह तम पुंज जासु वचन रविकर निकर।"**

गीता प्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'रामचरितमानस' में दिए गए तुलसी के परिचय के अनुसार रामशैल पर रहने वाले श्री अनन्तानन्द जी के प्रिय शिष्य नरहरि जी तुलसी के आदिम शिक्षा और दीक्षा गुरु थे और उन्हीं से रामकथा सुनने का सौभाग्य सुकर क्षेत्र (सौरों) में तुलसी को मिला था। इस सम्बन्ध में तुलसी का आत्मकथ्य इस प्रकार उपलब्ध होता है–

**"मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सु सुकर खेत। समुझि नहिं तीस बालपन, तब अति रहेऊं अचेत।।"**

जहाँ तक वेद.वेदांग की शिक्षा का प्रश्न है। शेष सनातन जी को इसका श्रेय जाता है। मानस के मर्मज्ञ विद्वानों में शेष सनातन जी को ही तुलसी का विद्या गुरु प्रतिपादित किया है।

डॉ. माता प्रसाद गुप्त के अनुसार तुलसीदास जी के गुरु बहुज्ञ एवं बहुश्रुत महात्मा थे। डॉ. गुप्त ने यद्यपि यह स्पष्ट नहीं किया कि वे थे कौन ? परन्तु अनुमानतः इंगित नरहरिदास जी की ओर ही है, यह सुनिश्चित है।

## मित्र

आचार्य शुक्ल के अनुसार विरक्त होते हुए भी वे मित्र संग्रही थे। अब्दुर्रहीम खानखाना, टोडरमल, मानसिंह, नाभादास, मधुसूदन सरस्वती जैसे विद्वान गोस्वामी जी के स्नेही मित्र थे।

## विवाह

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि गोस्वामी तुलसीदास जी का विवाह सं. 1583 ज्येष्ठ शुक्ल 13 गुरुवार को भारद्वाज गोत्रीय, सुन्दर, विदुषी कन्या रत्नावली के साथ हुआ था जो दीनबन्धु पाठक की आत्मजा थी। रत्नावली के एक दोहे के अनुसार तुलसीदास जी ने 15 वर्ष तक वैवाहिक जीवन व्यतीत किया था। रत्नावली के प्रति उनका विशेष अनुराग ही उनके वैराग्य का कारण बना और प्रकारान्तर से अभ्युदय का भी।

## आदि नाम

तुलसीदास जी का आरम्भिक नाम क्या था ? यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकेता। गीता प्रेस गोरखपुर के रामचरितमानस के अनुसार श्री नरहरिदास जी ने इन्हें 'राम बोला' नाम दिया था। कहा जाता है कि जन्म लेने के पश्चात् तुलसीदास रोये नहीं, किन्तु उनके मुख से 'राम' शब्द निकला था। सम्भवतः इसी बात को ध्यान में रखकर श्री नरहरिदास जी ने इन्हें 'राम बोला' नाम दिया। कवितावली के एक छन्द के अनुसार इनका नाम तुलसी था बाद में दास जुड़ गया था–

**"नाम तलसी पै भौंडे भाग जो कहायो दास, कियो अंगीकार ऐसे बड़े दगा बाज को।।"**

## पर्यटन

पत्नी की वाणी के कषाघात से उद्वेलित हो विरक्त बन गोस्वामी जी ने विभिन्न तीर्थ स्थानों की यात्रा की थी। इन तीर्थ धामों में काशी, चित्रकूट, अयोध्या, प्रयाग, हरिद्वार आदि प्रमुख हैं। इस यात्रा काल में गोस्वामी जी ने अनेक कड़वे.मीठे घूँट गले से उतारे और सांसारिक अनुभव प्राप्त किया।

चित्रकूट, अयोध्या, काशी आदि पावन तीर्थ धामों में इन्हें सन्त समागम का पर्याप्त अवसर प्राप्त हुआ जिससे इनकी वैराग्य भावना को बद्धमूल होने का अवसर मिला। इसी यात्रा काल में कहा जाता है कि ये काशी में महामारी से भी पीड़ित हुए थ।

गृहस्थ आश्रम का परित्याग करने के पश्चात् गोस्वामी जी सर्वप्रथम प्रयाग पहुँचे थे और फिर काशी। कहा जाता है कि ये काशी में महामारी से भी पीड़ित हुए थे। गृहस्थ का परित्याग करने के पश्चात् गोस्वामी जी सर्वप्रथम प्रयाग पहुँचे थे।

"काशी में तुलसीदास जी रामकथा कहने लगे। वहाँ उन्हें एक दिन एक प्रेत मिला, जिसने उन्हें हनुमान जी का पता बतलाया। हनुमान जी से मिलकर तुलसीदास जी ने उनसे भगवान् श्री राम के दर्शन कराने की प्रार्थना की। हनुमान जी ने कहा—"तुम्हें चित्रकूट में श्री राम के दर्शन होंगे।" इस पर तुलसीदास ने चित्रकूट की यात्रा की।

चित्रकूट पहुँचकर रामघाट पर उन्होंने अपना आसन जमाया। एक दिन जब वे कामद गिरी की प्रदक्षिणा करने के लिए निकल उन्हें दो घुड़सवार राजकुमारों के दर्शन हुए जो कि वास्तव में श्री राम और लक्ष्मण थे। तुलसीदास जी उन्हें देख मुग्ध तो हुए पर पहचान न पाए बाद में हनुमान जी से सारा भेद जानकर उन्हें अत्यधिक पश्चाताप हुआ। हनुमान जी ने उन्हें सांत्वना दी और बताया कि कल प्रातः उन्हें श्री राम दर्शन का सौभाग्य पुनः मिलेगा। सम्वत् 1607 विक्रमी मौनी अमावस्या बुधवार के दिन तुलसी का चन्दन लेने का आग्रह करते बालक के रूप में भगवान् श्री राम के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हनुमान जी ने यह सोचकर कि कहीं ये फिर से धोखा न खा जाएँ, उन्हें चेताने के लिए यह दोहा पढ़ा—

**"चित्रकूट के घाट पर भई सन्तन की भीर। तुलसीदास चन्दन घिसैं तिलक देत रघुवीर।।"**

तुलसीदास उस अद्‌भुत को निहारकर शरीर की सुधि भूल गए। भगवान् ने अपने हाथ में चन्दन लेकर अपने तथा तुलसीदास के मस्तक पर लगाया और अन्तर्धान हो गए। इस घटना में कितनी सच्चाई है ? ईश्वर जाने पर आस्तिक समुदाय तो इसे प्रामाणिक मानता ही है।

गोस्वामी जी के जीवन का अधिकांश काल चित्रकूट अयोध्या और काशी में ही व्यतीत हुआ था यह निर्विवाद है। अयोध्या और चित्रकूट तो श्री राम के लीला धाम रहे हैं और काशी श्री राम के आराध्य का। अतः इन स्थानों पर उनका चित्त स्वाभाविक ही था। प्रसिद्धि कपूर और कस्तूरी की भाँति वश सौरभ भी चतुर्दिक में प्रसुत होकर ही अपनी अन्वर्थका का परिचय संसार को दिया करता है। विद्वता की सुगन्ध छिपी नहीं रहती। वह तो सम्बद्ध को जन.जन का कण्ठहार ही बना देती है। महाकवि भर्तृहरि ने इसी बात को परिलक्षित कर लिखा है कि मालती के फूल के समान मनस्वी (विचारवान) पुरुष की दो ही गतियाँ होती हैं कि या तो वह सबके शीश पर विराजमान होता है अथवा उनके किसी निर्भूत कोने में चुपचाप मुरझा अपना अस्तित्व समाप्त कर देता है-

**"मालती कुसुमस्टोव द्वे गतीह मनस्विनः। मूध्निर्नवा सर्वलोकस्य शीर्य तेवन एववा।।"**

तुलसी के जीवन काल में ही उनका दश सौरभ चारों ओर व्याप्त हो चुका था। उनकी प्रसिद्धि से जलने वाले कुछ तथा कथित पण्डितों ने तत्कालीन सुप्रसिद्ध विद्वान मधुसूदन सरस्वती को 'रामचरितमानस' का अवलोकन कर अपने सम्पत्ति देने के लिए इस दृष्टि से उकसाया था, जिससे यदि उनकी सम्पत्ति तुलसी के विपक्ष और उनके पक्ष में हो तो वे तुलसी को नीचा दिखाएँ परन्तु विद्वान विद्वान ही होता है। मधुसूदन सरस्वती ने 'मानस' का अवलोकर कर न केवल प्रसन्नता व्यक्त की बल्कि लिखा — 'इस काशी रूपी आनन्द वन में तुलसीदास चलता.फिरता (जंगम) तुलसी का पौधा है। उनकी कविता रूपी मंजरी बड़ी ही सुन्दर हे। जिस पर श्री राम रूपी भंवरा सदा ही मँडराया करता है।"

**"आनन्दकानने हास्मिञ्जगस्तुलसी तरुः। कवितामञ्जरी भाँति राम भ्रमर भूषिता।।"**

नाभादास जी उन्हें साक्षात् वाल्मीकि का अवतार मानते थे। इस सम्बन्ध में उनकी यह पंक्ति प्रसिद्ध है—

**"कलि—कलुष जीव निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भये।"**

रहीम खानखाना भी उनके प्रशंसक थे ओर इसीलिए तुलसी दास ने लिखा है—

**"सुर तिय नर तिय नग तिय अस चाहती सब कोय।"**

के उत्तर में लिख था—

**"गोद लिये हुलसी फिरैं, तुलसी सो सुत होय।"**

कुछ लोग इनके यश सौरभ से ईर्ष्या भी करते थे, परन्तु राम में अनन्य निष्ठा तथा आत्मविश्वास के कारण वे विरोधियों की परवाह न कर सदैव अपने अभिमत पथ पर अग्रसर रहे। कवितावली का निम्न पद उनकी इसी स्थिति का परिचायक है

**"धुत कहौं अवधुत कहौं राजपुत कहौ जो लहा कहो कोऊ काहु की बेटी से बेटा न ब्याहब काहू की जाति बिगार न सोऊ तुलसी सरनाम है जाचक राम की जाकौ रुचे सो कहे कछु ओऊ मांगि कै खैबो मसीत को सोइ बो लैबे को एक न दैबो को दोऊ।।"**

## तुलसी के जीवन की अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाएँ

गोस्वामी तुलसीदास जी के जीवन की अन्य महत्त्वपूर्ण घटनाएँ निम्नलिखित हैं—

(1) सामान्यतया किसी भी बालक का जन्म नौ अथवा दस मास में हो जाता है, परन्तु गोस्वामी तुलसीदास जी का जन्म बारह माह गर्भ में रहने के पश्चात् हुआ था जो अपने आप में एक विलक्षण घटना थी। जन्म लेते समय बालक तुलसीदास रोए नहीं, किन्तु उनके मुख से 'राम' शब्द निकला जिसे सुनकर सबको आश्चर्य हुआ था। जन्म के समय ही उनके मुख में बत्तीसों दाँत मौजूद थे और उनका डील-डौल पाँच वर्ष के बालक के समान था।

(2) पुनियाँ दासी के निधन के पश्चात् जब तुलसीदास द्वार-द्वार भटकने लगे तब पार्वती को उन पर दया आई और वे ब्राह्मणी का वेश धारण कर प्रतिदिन उनके पास आकर अपने हाथों से उन्हें भोजन करा जातीं।

(3) यज्ञोपवीत संस्कार के समय बिना सिखाये ही बालक 'रामबोला' ने गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया था जिसे सुनकर उपस्थित जन-समुदाय आश्चर्यचकित रह गया था।

(4) सम्वत् 1628 में उन्होंने हनुमान जी की आज्ञा से चित्रकूट से अयोध्या की ओर प्रस्थान किया था। उन दिनों प्रयाग में माघ मेला था। वहाँ कुछ दिन वे ठहर गये। पर्व के छः दिन बाद एक वट वृक्ष के नीचे उन्हें भारद्वाज और ज्ञान-वल्क्य मुनि के दर्शन हुए। वहाँ उस समय कथा हो रही थी। जो उन्होंने सुकर क्षेत्र में अपने गुरु जी से सुनी थी। वहाँ से वे काशी चले आये और वहाँ प्रह्ल्लाद घाट पर एक ब्राह्मण के घर निवास किया। वहाँ उनके कवित्त्व शक्ति स्फुरति और वे संस्कृत में पद्य रचना करने लगे। परन्तु दिन में वे जितने पद्य रचते, रात्रि में वे सब लुप्त हो जाते। सात दिन तक यही काम चला। आठवें दिन स्वप्न में भगवान् शंकर ने उन्हें निज भाषा में काव्य रचना का आदेश दिया और उसके पश्चात् प्रत्यक्ष दर्शन देकर उन्हें अयोध्या में जाकर भारतीय भाषा में काव्य रचना करने के लिए कहा और आशीर्वाद दिया कि वह रचना समावेद के समान फलती रहेगी।

तुलसीदास आदेशानुसार अयोध्या आये। सम्वत् 1631 में जबकि त्रेताकाली रामजन्म के समान ही योग था। 'रामचरितमानस' की रचना आरम्भ की। दो वर्ष सात मास छब्बीस दिन में सम्वत् 1633 के मार्ग शीर्ष शुक्ल पक्ष में राम विवाह के पावन दिवस पर इस जीवन ग्रन्थ का प्रणयन पूर्ण हुआ।

इसके पश्चात् काशी लौटकर उन्होंने भगवान विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा को रामचरित-मानस सुनाया और भगवान् विश्वनाथ की सम्पति के लिए पुस्तक मन्दिर में रखी दी गई। प्रातः द्वारा खुलने पर उस पुस्तक पर भगवान् विश्वनाथ हे हस्ताक्षरों सहित यह लिखा पाया गया -- "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्।" इस घटना से क्षुब्ध होकर ईर्ष्यालु पण्डितों ने तुलसीदास जी की निन्दा करना शुरु किया और पुस्तक को समाप्त कर देने का प्रयास आरम्भ किया और इसी उपक्रम में दो चोरों को पुस्तक चुराने के लिए तुलसी की कुटिया पर भेजा गया, परन्तु दो धनुर्धारी राजकुमारों की कुटिया की रक्षा में संलग्न पाकर वे निराश लौटे। इस घटना से उनका हृदय परिवर्तित हो गया। चोरी छोड़ उन्होंने अपना मन भजन में लगाया। इधर अपने कारण भगवान् को कष्ट हुआ देखकर तुलसीदास जी ने कुटिया का सारा सामान लुटा दिया और पुस्तक अपने मित्र टोडरमल के यहाँ रख दी। इसके बाद उन्होंने एक दूसरी प्रति लिखी, जिसके आधार पर विभिन्न प्रतिलिपियाँ तैयार हुई और पूरे भारत में इसका प्रचार हो गया।

(5) कलियुग द्वारा पीड़ित होने पर हनुमान जी की प्रेरणा द्वारा 'विनय पत्रिका' भगवान् श्री राम को समर्पित कर उभय प्राप्त करना, अय बाहुक रोग से पीड़ित होने पर 'हनुमान बाहुक' की रचना कर रोग से मुक्त होना, अकबर द्वारा बन्दी बनाए जाने पर हनुमान की स्तुति कर वानरों के उत्पात से दिल्ली को व्यथित कर बन्दी गृह से मुक्त होना आदि घटनाएँ भी तुलसी के जीवन के साथ जुड़ी हुई हैं।

## तुलसीदास जी की कृतियाँ

गोस्वामी श्री तुलसीदास जी की कृतियों के सम्बन्ध में विद्वानों में एक मत नहीं है। शिवसिंह सरोज में तुलसी प्रणीत ग्रन्थों की संख्या 18 बताई गई है। मिश्र बन्धुओं के अनुसार इनकी संख्या 35 है। बंगवासी की तुलसी ग्रन्थावली के अनुसार यह संख्या बढ़कर 60 तक जा पहुँचती है। कुछ अन्य विद्वान यह संख्या 40-45 के मध्य मानते हैं।

यूँ तुलसी के नाम सबे उक्त सभी संख्याओं की पूर्ति करने वाली कृतियाँ मिल अवश्य जाती हैं परन्तु जिन कृतियों के सम्बन्ध में तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ मूर्धन्य विद्वान एक मत हैं उनकी संख्या मात्र बारह है। जॉर्ज ग्रियर्सन, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. माता प्रसाद गुप्त, आचार्य विनय मोहन शर्मा आदि विद्वान इसी संख्या के समर्थक हैं।

डॉ. माता प्रसाद गुप्त 'तुलसी सतसई' को भी तुलसी कृत मानते हैं। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि "तुलसी

के नाम पर अब तक कोई दो दर्जन पुस्तकें प्राप्त हो चुकी हैं।" परन्तु मिर्ज़ापुर के प्रसिद्ध रामायणी पं. रामगुलाम द्विवेदी केवल बारह ग्रन्थों को प्रमाणिक मानते हैं। इनमें छः ग्रन्थ बड़े और छः छोटे हैं। छन्नुलाल जी के प्रमाण पर और उक्त द्विवेदी की स्थापना को मानकर काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने भी इन्हीं बारह ग्रन्थों को प्रमाणिक माना है।" ये ग्रन्थ हैं—

(1) रामचरितमानस।
(2) रामलला नहछु जो सम्भवतः यज्ञोपवीत के अवसर को ध्यान में रखकर लिखा गया था।
(3) वैराग्य संदीपनी सन्त महिमा, सन्त स्वभाव और शान्ति का वर्णन करने वाली दोहा चौपाइयों में लिखी गई छोटी-सी पुस्तिका
(4) बरवै रामायण (जिसमें केवल 69 बरवै छन्दों का संकलन है)।
(5) पार्वती मंगल (164 छन्दों में शिव पार्वती विवाह का वर्णन है।) मिश्रबन्धु इसे प्रमाणिक नहीं मानते।
(6) जानकी मंगल (216 छन्दों में राम-जानकी विवाह का वर्णन)।
(7) रामज्ञा प्रश्न (जिसमें सात-सात दोहों के सात-सात सप्तकों वाले सात वर्ग हैं। यह सगुन विचारने के उद्देश्य से रचा गया है)
(8) कवितावली (कवित्त, सवैया, छप्पय आदि में रामकथा)।
(9) दोहावली (भक्ति, नीति और वैराग्य विषयक 573 दोहों का संग्रह)।
(10) गीतावली (लीलापरक गीतों का संग्रह)।
(11) श्रीकृष्ण गीतावली।
(12) विनय पत्रिका (विनय परक गेय पदों का संग्रह)।

इनमें रामचरितमानस, दोहावली, कवितावली, गीतावली, विनय पत्रिका ग्रन्थ बड़े हैं। कुछ विद्वान 'कलिधर्म निरूपण' को भी तुलसी की प्रमाणिक रचना मानते हैं। इन सभी रचनाओं में 'रामचरितमानस' सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है।

## दैवी आपदा और निधन

उपलब्ध जानकारी के अनुसार तुलसी की वृद्धावस्था में रुद्रबीसी तथा मीन की शनि दशा जैसे विषम योग पड़े थे जिनके कारण देश में भयंकर दुर्भिक्ष तथा महामारी का प्रकोप हुआ था। काशी भी इन उपद्रवों से संत्रस्त रही थी। तुलसी दास जी भी महामारी का शिकार बने थे और अपबाहुक (Armeric Ciatica) से ग्रस्त हो भगवान् श्री हनुमान की शरणागति लेने पर बाध्य हुए थे। जीवन प्रायः संघर्ष में ही बीता था, अतः जीवन भर का श्रान्त कलान्त पथिक विश्राम चाहता था। परिणामतः 1670 विक्रमी में तुलसी ने राम नाम की अक्षय निधि विश्व को सौंप महाप्रयाण किया। इनकी मृत्यु के सम्बन्ध में निम्नलिखित दो दोहे प्रसिद्ध हैं, जिनमें से अन्तिम को अधिक प्रमाणिक माना जाता है—

(1) **"सम्वत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर। श्रावण शुक्ला तीज शनि, तुलसी तज्यौ शरीर।।"**
(2) **"सम्वत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ शरीर।"**

कहा जाता है कि मृत्यु के समय तुलसीदास जी ने यह दोहा कहा था—

**"राम नाम जस बरनिकै, भयो चहत अब मौन।**
**'तुलसी' के मुख दीजिए, अबहि तुलसी सौन।"**

# अध्याय 2

# तुलसीदास जी की काव्य–कला

तुलसी सुर और केशव की काव्य कला की दृष्टि में रखकर इनके सम्बन्ध में कहा गया है–

**"सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केसवदास। अबके भवि खद्योत सम, जहँ तहँ करें प्रकास।।"**

शशि से उपमति गोस्वामी तुलसीदास निश्चय ही हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य कवि हैं। उनकी कृतियाँ हिन्दी साहित्य की स्थायी निधि तो हैं ही भारतीय धर्म, सभ्यता और संस्कृति की गौरव स्तम्भ भी हैं। तुलसीदास जी महान् कवि होने के साथ.साथ सर्वथा निरभिमानी भी थे। अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कृतियों का स्रष्टा होते हुए भी उन्होंने कहीं भी अपने सम्बन्ध में ऐसा संकेत नहीं दिया जिससे यह आभास हो कि कवि को अपने कृतित्व पर गर्व है। इसके विपरीत उन्होंने विनम्र स्वरूप का परिचय इस प्रकार किया है–

**"कवि न होउं नहि चतुर कहाऊँ, मति अनुरूप राम गुन गाऊँ। कविता विवेक एक नहिं मोरे, सत्य कहउं लिखि कागद कोरे।।"**

जब तुलसीदास ने प्रणयन के क्षेत्र में पदार्पण किया तब प्रणयन की भाषा थी संस्कृत। विद्वता की छाप उसी के द्वारा लगाई जाती थी। भाषा में रचना करना सिद्धान्तों के उपहासास्पद बनना था। परन्तु गोस्वामी तुलसीदास ने परम्परा की परवाह न कर जन. सामान्य की भाषा को अपने प्रणयन का माध्यम बनाकर न केवल यह सिद्ध किया कि वे रूढ़ी मुक्त हैं, बल्कि यह भी सिद्ध किया कि वे वस्तुतः सच्चे सन्त हैं और इसलिए जन.सामान्य के कल्याण और अभ्युदय के लिए कृत संकल्प हैं। अपने आराध्य श्री राम में अनन्य आस्था रखने के कारण उन्हें विश्वास था कि उनकी रचनाएँ राममय होने के कारण सज्जन समुदाय द्वारा अवश्य समाद्धत होगी। उनका यह विश्वास कितना सही था आज भी उसका अनुमान लगाया जा सकता है। शताब्दियों के पश्चात् भी उन कृतियों को उतना ही सम्मान है जितना उस युग में था, आज भी गोस्वामी जी अपनी अनुपम, लोकोपकारी साहित्य साधना के द्वारा महाकवि पद पर अधिष्ठित हैं।

तुलसीदास जी की काव्य कला का विवेचन दो दृष्टियों–भाव पक्ष और कला पक्ष की दृष्टियों में किया जा सकता है। भाव पक्ष के अन्तर्गत कवि द्वारा वर्णित विषटा एवं उसमें अनुस्युत रस पर विचार किया जा सकता है तथा कला पक्ष के अन्तर्गत काव्य के स्वरूप, भाषा अर्थ एवं गाम्भीर्य, छन्द, अलंकार आदि पर विचार किया जाता है।

## भाव पक्ष

गोस्वामी तुलसीदास जी भक्त कवि हैं। उनके उपास्य देव हैं श्रीराम। जो मूर्तिमान धर्म है–"रामो विग्रहवान् धर्मः।" तुलसी की सम्पूर्ण वाङमय उनके अपने आराध्य श्रीराम के गुणगान् से ओत-प्रोत है। श्री राम के शील स्वभाव तथा मर्यादा पुरुषोत्तम रूप पर तुलसी पूर्ण रूप से मुग्ध हैं और इसलिए कहते हैं–

**"सुनि सीता पति सील सुभाउ। मोदन, मन, तन, पुलक, नयन जल सो नर खेहर खाउँ।।"**

इन्हीं शील स्वभावादि पर अनुरक्त होकर गोस्वामी जी ने रामचरितमानस, गीतावली, कवितावली, विनय पत्रिका, जान की मंगल, रामलला नहछू, बरवै रामायण आदि कृतियों में श्री राम का गुणगान किया है–

**"एक भरोसे एक बल एक आस बिस्वास। स्वाति सलिल रघुनाथ जसु, चातक तुलसीदास।।"**

ɵ ɵ ɵ ɵ ɵ ɵ **"कहाकहु छवि आज की भले बिराजे नाथ।**

**तुलसी मस्तक तब नवै धनुष बाण लौं हाथ।"**

आदि पदों को देखकर तुलसी के काव्य क्षेत्र को सीमित मानकर उसे एकांगी सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, परन्तु स्थिति ऐसी नहीं इसके सर्वथा विपरीत है। तुलसी का काव्य अतीव विशद और व्यापक है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम का आधार लेकर उसमें भारतीय जीवन दर्शन की सम्पूर्ण व्याख्या की गई है। रामचरितमानस में हिन्दु धर्म, सभ्यता और संस्कृति को इस प्रकार अनुस्युत किया गया है कि उसके कारण भारत के ही नहीं विदेशों के व्यक्ति और परिवार भी लाभान्वित होते चले आ रहे हैं। अपने धर्म के प्रति आस्थावान् बने रहने के लिए प्रेरित हुए हैं। पारिवारिक आदर्श की शिक्षा का तो मानस जीता-जागता विश्वविद्यालय ही है। विनय पत्रिका का प्रणयन तो हुआ है कलियुग के भय मुक्ति पाने हेतु भगवान् श्री राम का अनुग्रह पाने के लिए परन्तु इसमें विभिन्न देवताओं से तुलसी अपने आराध्य के चरणों में अनुराग की याचना करते हैं। जानकी से भी अवसर पाकर भगवान् श्री राम ने अपनी संस्तुति की याचना इस रूप में करते हैं–

**"कबहुंक अंग महावार पाइ मेरिओ देधि धायबी कछु वारुण कथा चलाई।।"**

गोस्वामी जी ने गीतावली और कवितावली में श्री राम के मनोहर चरित्र का ही वर्णन किया है।

'जानकी मंगल' जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि भगवती जानकी के विवाह से सम्बद्ध कृति है। 'बरवै रामायण' मे भावपूर्ण बरव प्रयुक्त हुए हैं। यथावसर तुलसी ने लोक व्यवहार ज्ञान का भी परिचय कराया है। जनकपुर की स्त्रियाँ श्री राम के गुणों पर मुग्ध हैं सही परन्तु विवाह के अवसर पर वे ठिठौली करने से नहीं चूकतीं। वे परिहास में जानकी को राम से श्रेष्ठ बताते हुए कहती हैं

**"गरब करहु रघुनन्दन जनि मन माँह। देखहु आपनी मूरति सिय कै छाँह।।"**

इस प्रकार तुलसी की विभिन्न रचना का अध्ययन करने पर विदित होता है कि वे वस्तुतः सिद्ध हस्त कवि थ। उन्होंने स्थल के अनुरूप भावपूर्ण शैली में इस प्रकार अपने विचार प्रकट किये हैं कि उनका पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

## तुलसी साहित्य में रस परिपाक

शास्त्रों में नौ रसों का उल्लेख इस प्रकार मिलता है–

**"शृंगार हास्य करुण रौद्र वीर भयानकाः। विभत्साद्भुत संज्ञौच शान्तोऽषि नवमो रसः।।"**

आधुनिक काल में अथवा यह कहना अधिक संगत होगा – मध्यकाल में इन रसों की संख्या बढ़ाकर ग्यारह कर दी गई थी ये दो अन्य रस हैं– वात्सल्य रस तथा भक्ति रस। भक्ति मार्ग के आचार्यों के अनुसार भक्ति स्वयं एक परिपूर्ण रस है जिसमें भक्त का हृदय सदैव तरंगायित रहता है परन्तु काव्य शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान भक्ति रस की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार नहीं करते। वे केवल शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स तथा अद्भुत रस को ही सत्ता मानते हैं और इन्हीं में अन्य रसों का अन्तर्भाव स्वीकार करते हैं। कुछ विद्वान वात्सल्य को पृथक् रस मानते हैं। तुलसीदास जी ने शास्त्रानुमोदित नवों रसों तथा वात्सल्य और भक्ति रस का सुन्दर वर्णन अपनी कृतियों में किया है। इसका परिचय इस प्रकार किया जा सकता है–

(1) **शृंगार रस** : काव्य शास्त्रकारों ने इसे रस रूप कहा है। इसका स्थायी भाव रति है। काव्य में इसके प्रयोग में अतीव जागरुकता बरतने की आवश्यकता है अन्यथा अमृत के स्थान पर विषमय परिणाम की सम्भावना रहती है। गोस्वामी जी ने शृंगार का सन्तुलित, मर्यादित वर्णन किया है। शृंगार के दोनों पक्ष–संयोग और वियोग का इतना संयमित वर्णन तुलसी के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं कर पाया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी के शृंगार के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है – सीताजी द्वारा शृंगार के संचारी भाव क्रीड़ा की व्यंजना के लिए कैसा अवसर चुना है–वन के मार्ग में ग्रामीण स्त्रियाँ राम की ओर लक्ष्य करके सीता से पूछती हैं कि ये तुम्हारे कौन हैं ? इस पर सीता क्या कहे ? वह–

**"तिनहिं विलोकि विलोकति धरनी। दुहुं संकोच सकुचित बर बरनी।।"**

'विलोक्ति धरनी' कितनी स्वाभाविक चेष्टा है। दुँहु संकोच द्वारा कवि ने सीता के हृदय की कोमलता और अभिमान शून्यता कितने स्वाभाविक ढंग से व्यंजित कर दी है। सीताजी की शृंगारी चेष्टाओं का विधान भी अत्यन्त कुशलता और भावुकता के साथ गोस्वामी जी ने किया है–

**"बहुरिबदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चिहै भैंह करि बाँकी।।"**

**"खंजन मंजु तिरीछे नैननि, निज पति कहेउ तिन्हैं सिय सैननि।।"**

श्री राम.सीता के विवाह का शृंगार रस परक वर्णन तुलसी की कुशलता, रस प्रयोग पटुता का परिचय करा देता है

**"दुलह श्रीरघुनाथ बने, दुलहि सिय सुन्दर मन्दिर माहीं। गावति गीत सबै मिलि सुन्दरि, वेद जुवाजुरि विप्र पढ़ाहीं।**
**राम को रूप रूप निहारती जानकी कंकन के नग की परछाही। यातें सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं।।"**

विप्रलम्भ व शृंगार के वर्णन में भी गोस्वामी जी पूर्णतः सफल रहे हैं–

सीताहरण के पश्चात् राम वियोग दशा के वर्णन को इसके प्रमाण रूप में लिया जा सकता है–

**"हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृग नैनी।।"**

ɵ ɵ ɵ ɵ **"किमि कहि जात अनख तोहि पाहीं।**

**प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं।"**

राम के वियोग में सुमन्त के घोड़ों के अड़ जाने का वर्णन भी कवि की गठरी पैठ और वर्णन कुशलता का परिचायक है–

**"सोक सिथिल रघुसकइन हाँकी, रघुवर बिरह पीर उर बाँकी। जो कह रामु लखनु वैदेही, हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही।।"**

इसी प्रकार सीता के वियोग वर्णन में भी कवि ने अपनी कुशलता की छाप छोड़ी है–

**"देखिअ न प्रगट गगन अंगारा, अवनि न आवत एकौ तारा। पावकमय ससि स्रवतन आगी, मानहु मोहिं जाति हत भागी। सुनहि विनय मय विटप अशोका, सत्य नाम करु हरु मम शोका। नूतन किसलय अनल समाना, देहि आगिनी जाति करहि निदाना।।"**

(2) **वीर रस** : उत्साह स्थायी भाव वाले वीर रस की आचार्यों ने बहुत प्रशंसा की है। गोस्वामी जी ने इस रस का भी अतीव सुन्दर वर्णन किया है–

**1."जो राउर अनुसासन पाऊँ, कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ। काचे घट जिमि डारौं फोरी, सकउं मेरू मूलक इव तोरी।।"**
**2."अति बिसाल तरु एक उपारा, बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा।रहे रहा नट ताके लगा, गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा।।"**
**3."कट कटान कपि कुंजर मारी, दुहु भुजदंड तमकि महि मारी। डोलत धरनि सभासद से, चले आजि भय मारुत ग्रसे।।"**

(3) **करुण रस** : इस रस का स्थायी भाव शोक है। मृत अथवा विपन्न व्यक्ति की अवस्था के दर्शन से यह अद्‌भुत होता है। 'रामचरितमानस' में कई प्रसंग इस रस के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं– रावण की मृत्युपरान्त मन्दोदरी विलाप का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

**"पति सिर देखत मन्दोदरी। मुरछित विकल धरनि खसि परी।**
e e e e e e e e
**पति सिर देखिं ते करहिं पुकारा। छटे कच नहिंण्युष संकरा।।"**

(4) **रौद्र** : इसका स्थायी भाव क्रोध है। 'मानस' सुन्दर काण्ड में अक्षय के प्रति क्रुद्ध हनुमान जी का वर्णन तथा कामदेव पर शिव का प्रकोप आदि प्रसंग इसके उदाहरण रूप में लिए जा सकते हैं। द्रष्टव्य हैं–

1. **भयऊ इते मन छोभु बिसेषी। नयन उधारि सकल दिसि देखी।।**
   **सोरभ पल्लव मदनु विलोका। भएउ कंपेउ त्रैलोका।।**
   **तब सिव तीसर नमन उचारा। चितक्त काम भयउ जरि छारा।।**
2. **चला इन्द्रजित जतुलित जोधा। बन्धु निधन सुनि उपजा क्रोधा।**
   **कवि देखा दारुन भट आवा। कटकटाई गर्जा अरु धावा।।**
   **अति बिसाल तरु एक उपरा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा।।**
   **रहे महा भट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा।।**

(5) **भयानक** : इसका स्थायी भाव भय है। लंका दहन प्रसंग में इसकी सुन्दर अभिव्यंजना हुई है–

**"जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट बहुकोटि कराला।।**
**तात मातुहा सुनि अ पुकारा। एहि अवसर को हमहि उबारा।।**

(6) **वीभक्त रस** : घृणा स्थायी भाव वाला यह रस लंकाकाण्ड में वर्णित है–

**"वीर परहिं जनु तीर तरु मज्जा बहु वह फेनू। कौदर देखि डरहिं तहँ सुभटन के मन चैन।।"**
e e e e e e **"काक कंक ले भुजा उड़ाहीं। एकुते छीनि एक ले खाहिं।।**

(7) **अद्‌भुत रस** : इसका स्थायी भाव विस्मय है। गोस्वामी जी ने कई स्थानों पर इस रस की सृष्टि की है। शिव की बारात का प्रसंग द्रष्टव्य है–

**"कोउ मुख हीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद पर कोउ बहु पद बाहू।।**
**विपुल नयन कोउ नयन बिहीन। रिष्ट पुष्ट कोउ अति तन खीना।।"**

'कवितावली' में हनुमान के संजीवनी लाने के प्रसंग में इस रस का उदाहरण द्रष्टव्य है–

**"लीन्हों उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहिकाल विलम्ब लायो। मारुत नन्दन मारुत को, मन को खगराज की बेग लजाओ।। तीखी तुरा 'तुलसी' कहतो, पै हिये उपमा को समाउन आयो। मानो प्रतच्छ परम्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो।।"**

(8) **शान्त रस** : इस रस का स्थायी भाव राम अथवा निर्वेद है। संसार की अनित्यता इसका आलम्बन है। मानस में पार्वती तम तथा मनुशत रूप प्रसंग में उस रस का स्वरूप-सा आभास मिलता है। परन्तु श्री राम के स्वरूप वर्णन में 'शान्त शाश्वतम प्रमेय मनछम्' आदि में उन्होंने सर्वत्र शान्त रूप का दर्शन कराने का प्रयास किया है – विनय पत्रिका की निम्न पंक्तियों में शान्त रस का सुन्दर परिपाक मिलता है–

**"जागु जागु जीवजड़ जो है जग जामिनी। देह गेह नेह जानि जैसे घन दामिनी।।"**

(9) **हास्य रस** : स्थायी भाव है हँसी तथा आलम्बन है विचित्र वेश, विचित्र चेष्टाएँ आदि। मानस के बालकाण्ड में शिव-विवाह प्रसंग में इसका वर्णन हुआ है–

**"ससि ललाट सुन्दर सिर गंगा। नयन तीनि उपवीत भुजंगा।।**

**गरल कण्ठ उन नर--सिर माला। असिव वेष सिव धाम कृपाला।।**
**कर त्रिशुल अरु डमरु विराजा। चल बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा।।**
**देखि सिवहिं सुरत्रिय मुसुकाही। बरलायक दुलहिनी जग लाँहि।।**

(10) **वात्सल्य रस** : इसका स्थायी भाव अपत्य स्नेह है। तुलसीदास जी ने बालकाण्ड में इस रस का सरस वर्णन किया है

**"सुन्दर श्रवण सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तो तरे बोला।।**
**चिक्कन कच कुंचित गमुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे।।**
**पीत झगुलिया तनु पहिराई। जानु जानि विचरनि मोहिं भाई।**
**रूप सकहिं नहिं कहिं श्रुति शेषा। सो जानइ सपनेहुँ जोहिं देखा।।**
**"एकहि विधि सिसु विलेद प्रभु कीन्हा। सकल नंगरवासिन्ह सुख दीन्हा।।**
**लै उछंग कबहुँ के हलरावै। कबहुँ पालने घलि झुलावै।।**

अन्यत्र तुलसीदास जी की इस रस की सुन्दर पंक्तियाँ इस प्रकार उपलब्ध होती हैं--

**"पगनि कल चालहौं चारौं भैया। प्रेम पुलकि, उरलाइ सुवन सब, कहति सुमित्रा मैया।।**
**सादर तनु, सिसु बसन विभूषन नखसिख निरखि निकैसा। बलि तृण प्राण निछावरि करिकरि लैहैं मातु बलैया।।**

(11) **भक्ति रस** : आचार्यों ने भक्ति को स्वयं एक स्वतन्त्र रस माना है। इसका स्थायी भाव है आराध्य के प्रति अनन्य श्रद्धा

**"सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरि कृयाँ हृदय बस आई।।**
**जब तप व्रत जम नियम अपारा। ये श्रुति कह सुभ धर्म आचारा।।**
**भाव सहित खोजइ जो प्रानी। चाव भगति मनि सब कुछ खानी।।"**

## कला पक्ष

गोस्वामी जी ने काव्य की सभी शैलियों में रचनाएँ की हैं। 'रामचरितमानस' महाकाव्य है। जानकी मंगल, पार्वती मंगल खण्ड काव्य है। विनय पत्रिका, दोहावली मुक्तक काव्य है। गीतावली विनय पत्रिका गीति काव्य हैं। गीतावली, कवितावली मुक्तक काव्य होते हुए भी प्रबन्धात्मक गुण युक्त रचनाएँ हैं। इस प्रकार इस महाकवि की सर्वतोमुखी प्रतिभा अपनी प्रभा से सबको चमत्कृत कर देती है। मानस के आरम्भ में अपनी रचना का उद्देश्य गोस्वामी जी ने 'स्वान्तः सुखाय' बताया है। विनय पत्रिका के अध्ययन से विदित होता है कि 'स्वान्तः सुखाय' के साथ.साथ गोस्वामी जी ने आत्माभिव्यक्ति का माध्यम भी अपनी रचनाओं को बनाया है। भाषा पर गोस्वामी जी का असाधारण अधिकार था। उन्होंने मुख्य रूप से अवधी को आत्मभिव्यक्ति का साधन बनाया है, परन्तु ब्रज भाषा के भी वे सिद्ध हस्त कवि तथा प्रयोक्ता थे। इनकी अवधि जायसी से भिन्न सुसंस्कृत एवं परिमार्जित है। अवधी को निखारने एवं उसे माधुर्य प्रदान करने का श्रेय एकमात्र गोस्वामी जी को है। भाषा के सफल प्रयोक्ता के रूप में जब उनके साहित्य का अध्ययन किया जाता है तब विदित होता है कि भोजपुरी, बुन्देलखण्डी, अरबी, फारसी, संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश आदि भाषाओं के भी वे जानकार थे और इसीलिए अपने काव्य में इन भाषाओं के शब्दों का वे समुचित प्रयोग कर सके। माधुर्य, ओज और प्रसाद इन तीनों गुणों से सम्बन्धित उनकी भाषा वस्तुतः ही आकर्षक है। अवसरानुकूल शब्दावली का प्रयोग इस भाषा को इतना जीवन्त बना देता है कि उसका प्रभावी सीधा हृदय पर होता हैं जनकपुर की वाटिका में कंकण, किंकिणी की मधुर ध्वनि सुनते ही राम का ध्यान अनायास उस ओर आकृष्ट हो जाता है। इस अवसर पर तुलसी द्वारा प्रयुक्त भाषा उसी माधुर्य और आकर्षण को प्रकट करती है--

**"कंकन किंकिनी नूपूर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हिये गुनि।।"**

जहाँ युद्ध का प्रसंग आया है वहाँ ओज पूर्ण भाषा का प्रयोग करके तुलसी ने उसका यथावत् निर्दशन किया है। कवितावली, रामचरितमानस के सुन्दर लंकादि काण्डों में इसके प्रचुर उदाहरण विद्यमान हैं--

**"महानाद करि गर्जा कोटि कोटि गहि कीस। महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दससीस।।"**

मुहावरे और कहावतों के प्रयोग से भाषा में अपूर्व प्रषेणीयता आ जाती है। गोस्वामी जी ने उनका समुचित प्रयोग कर अपनी भाषा को अधिक सजीव, सशक्त तथा आकर्षक बनाया है। उनके कुछ मुहावरे द्रष्टव्य हैं--

(1) **धोबी कैसो कूकर, न घर को, न घाट को।** (2) **सावन अधहिं ज्यो सूझत रंग हरो।** (3)**बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा।** (आदि,

गोस्वामी जी की भाषा के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल ने लिखा है--

"सबसे बड़ी विशेषता गोस्वामी जी की है भाषा की सफाई और रचना की निर्दोषिता जो हिन्दी के और कवि में पाई नहीं है। सारी रचना इसका उदाहरण है।"

## शब्द शक्ति

अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शब्द की तीन शक्तियाँ हैं इनका समुचित प्रयोग कर कवि साहित्य क्षेत्र में अपनी महत्ता सिद्ध कर

सकता है। भाव और विचार को गति प्रदान करके लक्षणा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। गोस्वामी जी ने इसका सफल प्रयोग किया है—

**"सीदत साधु स्त्राध्त्राफत्त्र स्त्रैच्थ्त्र। ख्त्राल थ्त्रल्स्थ्त्र छफल्सति खलई है।।"**

इसमें खलई और साधुता का लाक्षणिक प्रयोग दर्शनीय है। मानस में राम वन गमन के समय सीता-राम संवाद में व्यंजना का सफल प्रयोग गोस्वामी जी ने किया है—

**"मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मोहि कहँ भोगु।।**

यह एक ही पंक्ति श्री राम के उपदेश पर ताला डाल देती है।

## चित्रात्मकता

भाषा में अथवा विशेषतः श्रव्य काव्य में चित्रात्मकता आने से वर्ण्य विषय का महत्त्व बढ़ जाता है, अतः चित्रात्मकता उत्तम काव्य की विशेषता मानी गई है। गोस्वामी जी के काव्य में बहुलः चित्रात्मकता का प्रयोग हुआ है। जिससे पाठक उनके हृदयगत भाव तक पहुँच सकता है। उदाहरण द्रष्टव्य है। लंका से लौटकर हनुमान सीता की दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं—

**"रघुकुल तिलक वियोग निहरि। मैं देखी जब जाइ जानकी मनहुं बिरह मूरति मन मारे।**
**चित्र से नयन अरु गढे से चरन कर मढे से स्तवन् नहिं सुनत पुकारे। रसना रटति नाम कर सिर चिर रहै नित निज पद कमल निहारे।।**

## छन्द योजना

गोस्वामी जी ने अपने युग में प्रचलित सभी प्रमुख छन्दों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, सोरठा, बरवै, छन्द आदि उनके द्वारा प्रयोग प्रयुक्त उनके युग में प्रचलित छन्दों का सफल प्रयोग उनकी विभिन्न रचनाओं में हुआ है। उनके द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक छन्द में उनकी प्रकृति के अनुरुप लय और भावानुकूलता का समावेश उनकी विदग्धता का परिचायक है।

## अलंकार योजना

गोस्वामी जी अलंकारवादी नहीं, अलंकार प्रेमी थे। काव्य सन्दर्भ में अलंकार प्रयोग काव्य में शोभा वृद्धि अथवा वहाँ चमत्कार लाना है। तुलसी इस विशेषता के प्रति सतत् जागरुक रहे हैं और उन्होंने इनका समुचित अथवा सफल प्रयोग अपनी कृतियों में किया है। कुछ अलंकारों का प्रयोग द्रष्टव्य है—

(I) **अनुप्रास :** **"कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। मंगल मूरति मारुति नन्दन।।"**

(II) **यमक :** **भयउ विदेहु विदेहु विसेषी।**

वक्रोक्ति, वीप्सा, पुनरुक्ति प्रकाश आदि इनकी कृतियों में यथावसर प्रयुक्त हुए हैं। उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक अलंकारों का प्रयोग तुलसी ने प्रचुरता से किया है। रामचरितमानस में वर्षा वर्णन में उत्प्रेक्षालंकार की छटा दर्शनीय है—

**"भूमि परत भा डाबर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी।।"** e e e e e e e

**सिमिटि सिमिटि जलु भरहि तलावा। जिमि सद्गुण सज्जन पहिं आवा।।"**

गोस्वामी जी ने सर्वाधिक प्रयोग रूपक अलंकार का किया है। छोटे-छोटे निरंग एवं परम्परित रूपकों के अतिरिक्त बड़े-बड़े सांग रूपकों का भी प्रयोग कवि ने रामचरितमानस, गीतावली एवं विनय पत्रिका में किया है। इन लंबे सांग रूपकों में सादृश्य एवं साधर्म्य का आद्योपान्त निर्वाह हुआ है। इसके लिए कवि ने केवल परम्परागत उपादानों को ही नहीं चुना वरन् स्वयं-स्वकीय पर्यवेक्षण शक्ति के आधार पर भी प्रकृति के व्यापारों से उदाहरण चुनकर अपनी मौलिकता का परिचय दिया—

**"अस कहि कुटिल भई उठि ठाढी। मानहु शेष तरंगिनी बाढी।। पाप पहार प्रकट भई सोई। भरी क्रोध जाइ न सोई।।**
**ढाहत भूप—रूप—तरू—मूला। चली विपत्ति वारिधि अनूकुला।।"** (मानस अयोध्या काण्ड)

मात्र चमत्कार प्रदर्शक अलंकारों का प्रयोग तुलसी को पसन्द नहीं था। परिणामतः मुद्रा, चित्र पहेलिका आदि अलंकारों की उन्होंने अवहेलना.सी ही की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी पर तुलनात्मक दृष्टि से प्रकाश डालते हुए लिखा है—"बिहारी रीति. ग्रन्थों के सहारे जबरदस्ती निकाल—निकालकर दोहों के भीतर शृंगार रस के विभाव अनुभाव और संचारी ही भरते रहे।" केवल एक. ही महात्मा और है जिनका नाम गोस्वामी जी के साथ लिया जा सकता है और भर लिया जाता है। वे हैं—प्रेम स्रोत स्वरूप भक्त वर सुरदास जी। जब तक हिन्दी साहित्य और हिन्दी भाषी हैं, तब तक सूरदास और तुलसीदास का जोड़ा अमर है। ..... न जाने किसने यमक के लोभ से यह दोहा कह डाला कि "सुर.सुर तुलसी ससी उडुगन केसवदास।" यदि कोई पूछे कि जनता के हृदय पर सबसे अधिक विस्तृत अधिकार रखने वाला सबसे बड़ा कवि कौन है तो उसका एकमात्र यही उत्तर ठीक हो सकता है कि भारत हृदय, भारती कण्ठ भक्त चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास। सारांश में तुलसी की कविता के विषय में तुलसी के ही शब्दों में यह कहना पर्याप्त होगा—

**"कविता मनिति भूति तल सोई। सुर सरि सब कहुँ हित होई।।**

तुलसी के काव्य का एक और महत्त्वपूर्ण गुण है उसका अर्थ गांभीर्य। कथावाचकों ने तो एक-एक चौपाई के अनेकों अर्थ निकाले हैं। डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र ने तुलसी काव्य के अर्थ गांभीर्य के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डाला है। निष्कर्ष रूप में तुलसी का काव्य भाव तथा कला पक्ष दोनों ही दृष्टियों से अनुपम है। काव्य कला मानों तुलसी जैसे कवि को पाकर कृतार्थ हो गई है। उनके सम्बन्ध में किस कवि ने सत्य ही कहा है—

**"कविता करि कै तुलसी न लसे। कविता लसी पा तुलसी की कला।।"**

# अध्याय 3

# तुलसीदासजी की भक्ति–भावना

भज-सेवायाम् धातु से क्तिन् प्रत्यय लगाकर 'भक्ति' शब्द बनता है। जिसका अर्थ है प्रेमपूर्वक सेवा करना। भक्ति का सम्बन्ध हृदय से अधिक होता है। भक्त भावुकता में श्रद्धा और विश्वास की विचारभूमि में अपने-अपने आराध्य में अनन्य होता है। विश्वास उसका इतना अविचलित होता है कि अपने उस विश्वास के समक्ष वह संसार, संसार के प्रलाप, अप्रलाप आदि की तनिक भी परवाह नहीं करता। भक्ति और विश्वास के साम्राज्य में आराध्य की कृपा के अतिरिक्त अन्य बातों का विचार सर्वथा ही नहीं होता। गोस्वामी जी ने अपनी अनन्य भक्ति का परिचय जहाँ इस रूप में दिया है–

**"एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास। स्वाति सलिल रघुनाथ जसु, चातक तुलसीदास।।"**

वहीं भक्ति के सम्बन्ध में ये विचार भी प्रगट किए हैं–

(अ) **"साध बिनु सिद्धि विकल लोग तपत। कलयुग बर बनिज विपुल नाम नगर खपत।।"**

(ब) **"बैठे नाम काम तरु को डर कौन घोर घन घास को।"**

(स) **"रघुपति भगति करत कठिनाई।"**

गोस्वामी जी की भक्ति का यथावत् परिज्ञान प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम भक्ति ग्रन्थों में प्रतिपादित भक्ति के मूलभूत रूप को जान लेना आवश्यक है। नारद भक्ति सूत्र तथा शाण्डिल्य भक्ति सूत्र के अनुसार ईश्वर में परानुरक्ति ही भक्ति है– 'सा परानुरक्ति रीश्वरे।' इसके साथ ही यह भक्ति ईश्वर के प्रति परम् प्रेम रूपा तथा अमृत रूपा भी है। 'सात्वस्मिन् परम् प्रेमरूपा, अमृत रूपाच। इसे पाकर व्यक्ति सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है। भक्ति मार्ग के मूर्धन्य आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने सर्वेश के प्रतिचित् की धारावाहिक वृति को भी भक्ति प्रतिपादित किया है–

**"द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतांगता। सर्वेशे मनसोवृत्तिर्भक्ति रित्यभिधीयते।।"**

मध्वाचार्य जी महात्म्य ज्ञान से उत्पन्न परमानुरक्ति को ही भक्ति की संज्ञा देते हैं। सम्भवतः इसी से प्रभावित होकर गोस्वामी जी ने भी भगवान् राम के मुख से भक्ति का स्वरूप.दर्शन इस प्रकार कराया है– "जाति बेग द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई।" भक्ति ग्रन्थों के अनुसार भक्ति के गौणी और शुद्धा दो मुख भेद तथा श्रवण, कीर्तन, स्मरण, चरण, सेवा, पूजन, वादन दास्य, सख्य, आत्म निवेदनारियाँ भेद तथा रूपा, पूजा रमणादि ग्यारह आसक्तियाँ प्रतिपादित की गई हैं और भक्ति के साधन तथा अन्तरायों का भी विशद विवेचन हुआ है। तुलसीदास जी ने भक्ति मार्ग का यथावत् परिज्ञान प्राप्त कर उसके सम्बन्ध में अपना मत स्थिर किया था। दोहावली में अपने अभिमत भक्ति तत्व के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा–

**"प्रीति राम सों नीथि पथ चलिय राग–रिस जीति। तुलसी सन्तन के मत इहै भक्ति की रीति।।"**

अर्थात् उनके अनुसार राग और क्रोध को जीतकर, नीति पथ पर चलते हुए राम के प्रति प्रेम रखना ही भक्ति है। गोस्वामी जी के अनुसार प्रेम की प्रगाढ़ता ही भक्ति परिपक्वता का प्रमाण है। तुलसीदास जी ने भक्ति मार्ग शास्त्र सम्मत तथा रीति-विवेक सयुत मानते हुए उसी का आश्रय लेने का परामर्श दिया है।

**"श्रुति समत हरि भगति पथ संजुत बिरति विवेक। तेहि न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पन्थ अनेक।।"**

उनके अनुसार राम की भक्ति सहज प्राप्त होना सम्भव नहीं। वह किसी.किसी को ही प्राप्त होती है और वह भी तब जब राम की कृपा हो जाए–

**"सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई। रामकृपा काहूँ एक दाई।।"**

राम की भक्ति सभी उपाधियों से रहित विश्वासाश्रित होती है। वह निर्विघ्न रूप से जिस हृदय में निवास करती है उस हृदय को देख माया भी सकुचा जाती है। इसी कारण विवेकशील प्राणी सुख की खान भक्ति की याचना करते हैं। भक्ति की उपलब्धि होते ही मुक्ति पद पर उनका अधिकार हो जाता है–

**"अति दुर्लभ कैवल्य परम्पद। सन्त पुरान निगम आगम बद।।**
**राम भजत सोइ मुक्ति गोसाई। अन इच्छित आवै बरि आइ।।"**

गोस्वामी जी ने भक्ति के साधन के रूप में निम्न बातों को अधिमान दिया है–

(1) **मानव शरीर** : गोस्वामी जी के अनुसार शरीर के बिना भक्ति नहीं हो सकती। 'तनु बिनु वेद भक्ति नहिं बरना।' महाकवि कालिदास ने भी कुमार सम्भव महाकाव्य में शरीर की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए कहा है — "शरीर मद्यं खलु धर्म साधनम्।" शरीर के सम्बन्ध में गोस्वामी जी की मान्यता है—

**"बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा। साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा।।"**

अतः शरीर को पूर्ण स्वस्थ रखकर उसका सदुपयोग करना चाहिए।

(2) **श्रद्धा और विश्वास** : ये दोनों भक्ति की आधार शिलाएँ हैं। बिना श्रद्धा के धर्म साधना सम्भव नहीं। 'श्रद्धा बिना धरमु नहिं होइ।' और बिना विश्वास के भक्ति की पुष्टि नहीं होती—

**"बिनु विश्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।"**

(3) **निर्मल हृदय** : भक्ति की साधना में निर्मल हृदय सर्वोपरि उपादान है। भगवान् श्री राम कहते हैं—

**"निर्मल मल जन सो मोहिं पावा। काट छल छिद्र न भावा।।"**

(4) **प्रभु अनुशासन को अधिमान** : भगवान् श्री राम कहते हैं—

**"सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुशासन मानइ जोई।।**

(5) **विवेक और वैराग्य** : विवेक के लक्ष्य निर्धारण सम्भव नहीं होता तथा वैराग्य के बिना प्रभु चरणों में अनन्य अनुराग नहीं हो सकता।

**"तब लगि कुसल न जीव कहँ सपनेहुँ मन विस्त्राम। जब लगि भजत न राम कहँ सोक धाम तजि काम।।"**

भक्ति की दृढ़ता के लिए नाम, जप एवं सत्संग परमावश्यक है—

**"एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप–तप व्रत पुजा।।**
**रामहिं सुमिरिय गाइय रामहिं। सन्तन सुनिय राम–गुन ग्रामहि।।"**

तथा – **"तात स्वर्ग–अपवर्ग सुख–धरिय तुला इक अंग। तूल न मिला सके, जो सुख–भव सतसंग।।"**

तुलसीदास जी की रचनाओं में नवधा भक्ति के नवों स्वरूपों के स्थान पर दर्शन हो सकते हैं। इसके साथ ही ग्यारहों आसक्तियों का परिचय भी उनके साहित्य में यत्र.तत्र मिल जाता है। नारद, भुसुण्डी और शिव के प्रसंग में गुण महात्म्यसक्ति, मिथिला निवासियों में रूपासक्ति, हनुमान और लक्ष्मण के प्रसंग में पूजा शक्ति ध्रुव, प्रहलादाहि में स्मरण शक्ति, विभिषण सुग्रीव, निषादादि के प्रसंग में संख्याशक्ति, सीता में कान्ताशक्ति, दशरथ कौश्ल्यादि में वात्सल्यशक्ति, विभीषण, हनुमानादि में आत्म–निवदनाशक्ति दशओं में परम्–विरहाशक्ति तथा सुतीक्ष्ण प्रसंग में तन्मयाशक्ति के दर्शन किये जा सकते हैं—तुलसी की भक्ति एकांगी तथा एकान्तिक नहीं है। यह लोक धर्मी है और इसीलिए ज्ञान तथा कर्म से संचलित है। उनकी भक्ति में ज्ञान और कर्म दोनों का उचित मात्रा में समावेश है। शास्त्रों में धर्म के तीन अंग माने जाते हैं — ज्ञान, कर्म और भक्ति, तुलसी की भक्ति पद्धति में इन तीनों का समुचित समावेश है। तुलसी को भक्ति पद्धति की सर्वांग पूर्णता का उल्लेख करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है — गोस्वामी जी की भक्ति. पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांग पूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती है। सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है। उसका कर्म या धर्म से विरोध है न कि ज्ञान से। धर्म तो उसका नित्य लक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं। योग का भी इसमें समन्वय हैं पर उतने ही का जितना के ध्यान लिए, चित्त को एकाग्र करने के लिए आवश्यक है।

मानस उत्तर–काण्ड में तुलसीदास जी ने भक्ति और ज्ञान की चर्चा की है। यद्यपि वे शास्त्रानुसार ज्ञान को मोक्ष.दायक मानते हैं। परन्तु उनके मार्ग को कृपाण की धारा बताते हैं क्योंकि उसका कहना और समझना ही कठिन नहीं, साधना और भी कठिन है—

**"कहत कठिन समुझत कठिन, साधत कठिन विवेक। होइ धुनाच्छर न्याय ज्यों पुनि प्रत्यह अनेक।"**

प्रथम तो ज्ञान का साधन ही कठिन है फिर यदि उनके कष्ट.साध्य उपायों का आलम्बन कर ज्ञान.दीप जला भी लिया तो उसे प्रज्ज्वलित रखने में अनेक बाधाएँ हैं। माया की संज्ञा का भय उसके हित सदैव बना रहता है। यह भय भक्ति.मार्ग नहीं है। भक्ति. रूपी चिन्तामणि पा लेने पर भय पास भी नहीं फटक सकता। इसे ही दृष्टिगत रखकर तुलसीदास जी ने कहा है—

**"रामचन्द्र के भजन बिनु जो पद चह निर्वान। ग्यानवन्त आपि सो नर पसु बिन पूँछ विषान।।"**

गोस्वामी ने अपनी भक्ति.पद्धति में भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ प्रतिपादित करते हुए भी ज्ञान को सर्वथा हेय नहीं बताया है, बल्कि कहा है—ज्ञान से भक्ति की उत्पति ऐसे ही होनी चाहिए जैसे कौशल्या की गोद से राम। वास्तव में भक्ति बिना प्रीति के हो ही नहीं सकती। प्रीति प्रतीति (विश्वास) बिना सम्भव नहीं और प्रतीति जाने बिना (परिचय के बिना) नहीं हो सकती।

**"जाने बिना न होई परतीति, बिनु परतीति होइ नहिं प्रीति। प्रीति बिना नहीं भक्ति दिढाई, जिमि खगपति जलकै चिकनाई।।"**

कलिकाल में मोक्ष.प्राप्ति का एकमेव साधन (हरिनाम स्मरण) ही है। पुराणों में कहा गया है–

**"हरे र्नाम हरे र्नाम मेव केवलम्। कलौ नास्त्येव गतिरन्यथा।।"**

तुलसीदास जी ने भी इसे ही दृष्टिगत रख कहा है–

**"कलिजुग.जोग न जज्ञ न जाना। एक.अधार राम.गुन गाना।।"**

तुलसीदास जी के पदे.पदे भक्ति की श्रेष्ठता स्वीकार की है, प्रतिपादित की है तथा स्वीकार किया है–

**"भक्तिहीन.गुन सब सुख ऐसे, लवन बिना बहु व्यंजन जैसे।"**

उन्होंने स्पष्ट रूप में कहा है कि भक्ति, मणि की भाँति अतीव दुर्लभ है। उसे ज्ञान और वैराग्य रूपी नेत्रों से ही खोजा जा सकता है। मर्मज्ञ सज्जन इस भक्ति रूपी मणि की सुमति रूपी कुदाल से खोदकर हस्तगत कर पाने में सफल रहे हैं–

**"पावन पर्वत वेद पुराना, रामकथा रुचिशकर नाना। मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी।।'**

तुलसीदास जी राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि थे। राम की प्रतिष्ठा जन.जीवन में उनका उद्देश्य ही नहीं पावन कर्त्तव्य था। यह कार्य उन्होंने जिस कुशलता से पूरा किया वह विश्व के इतिहास में अपना उपमान आप है। उन्होंने राम के सगुण रूप की प्रतिष्ठा ही यद्यपि की है, तथापि निर्गुण का खण्डन कहीं नहीं किया है। अर्चन, पूजन, दास्य.भाव से सेवा, सख्य भाव से अन्तरंग भावों में पैठ आदि क्योंकि सगुण रूप में ही सम्भव है, अतः सगुण की ओर झुकाव स्वाभाविक है। वे कहते हैं–

**"सगुनहिं अगुनिहिं नहिं कछु भेदा, गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।।"**

परन्तु साथ ही यह कहने में भी नहीं चूकते कि वह निर्गुण ब्रह्म ही 'भक्त.प्रेम' के वश में होकर सगुण रूप धारण करता है–

**"अगुन रूप अलख अज जोई, भगत प्रेम बस सगुन सोहोई।"**

उनकी यह मान्यता वेदादि शास्त्रों के अनुकूल है। यह यजुर्वेद में आता है।

**"प्रजापतिश्चरतिगर्भे अन्तर जाय मानो बहुधा विजायते।"**

अर्थात् प्रजापति समस्त चराचर पालक परमात्मा, गर्भेअस्तः गर्भ के बीच में चयित विचरण करता है। अजाय मानः वह अजन्मा होता हुआ भी (भक्तों की रक्षा अथवा इच्छा पूर्ति के लिए) बहुधा बार.बार अनेक रूपों में विजायते विशेष रूप से प्रकट होता अर्थात् अवतार धारण करता है। यथा–

**"इन्दो मायाभिः पुरू रूप ईयते।"**

अर्थात् इन्द्र.परमात्मा, मायाभिः.अपनी माया शक्तियों द्वारा पुरु रूप अनेक धारण करके ईयते संसार में आता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं निर्गुण का सगुण रूप से अवतरित होना प्रतिपादित करते हुए कहते हैं–

**"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजनाम्यहम्।।**
**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।"**

गोस्वामी जी के राम क्योंकि विष्णु के ही अवतार हैं अतः उनके कृष्ण जन्म को ध्यान में रखते हुए वे कहते हैं–

**"जब जब होहिं धरमकै हानि, बाढ़हि असुर महा अभिमानी। तब तब धरि विविध सरीरा, हरहिं कृपा निधि सज्जन पीरा।।"**

यह निर्गुण ब्रह्म सगुण कैसे हो जाता है, इसे बताते हुए गोस्वामी जी कहते हैं–

**"जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे, जलु हिम उपल विलग नाहिं जैसे।।"**

अन्य कवियों ने निर्गुण को दुरुह तथा अनुपयुक्त कहा है। सूरदास जी ने तो स्पष्ट शब्दों में यहाँ तक कह दिया है–

**"रूप रेख गुन जाति जुगति चिनु, निरालम्ब मनचक्रित धावे। सब विधि अगम विचारहिं, ताते सूर सगुन लीला पद गावें।।"**

परन्तु तुलसीदास जी ने सगुण के सम्बन्ध में सर्वथा भिन्न विचार व्यक्त किये हैं–

**"निर्गुण रूप सुलभ अति सुगुन जान नहिं कोई। सुतम अगम नाना चरित सुनि सुनि मन भ्रम होइ।।"**

गोस्वामीजी का केवल आग्रह ही सगुण के सम्बन्धों में नहीं है, बल्कि उनका विश्वास है कि निर्गुण भावना ही सगुण सापेक्ष है। वे मानते हैं कि सगुण के बिना निर्गुण हो ही नहीं सकता–

**"ग्यान कहै अग्यान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास। निरगुन कहै जो सगुन बिनु, जो गुरु तुलसीदास।।"**

यहाँ ज्ञातव्य है कि सृष्टि में दो विरोधी वस्तुएँ इसीलिए उत्पन्न की गई जिससे उपयोगी, अनुपयोगी, ग्राह्य, अग्राह्य, श्रेष्ठ और हीन का अन्तर जाना जा सके और प्रशस्त का ग्रहण तथा निकृष्ट का परित्याग किया जा सके। एक की विद्यामानता में दूसरी की उपादेयता का यथावत् मूल्यांकन हो सके। तुलसीदास जी ने इस तथ्य की इस रूप में अभिव्यक्ति दी है—

**"जड़.चेतन गुन दोस मय, बिस्व कीन्ह.कतार। सन्त हंस गुन गहहि पय, परि हारि बारि विकार।।"**

सृष्टि में दिन.रात, पाप, पुण्य, धर्म, अधर्म, सुख.दुःख, हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश आदि युगल इसी भावना को व्यक्त करते हैं।

तुलसीदास जी ने भक्ति में भी समन्वयात्मक दृष्टिकोण के प्रामुख्य दी है। शुक–नीति में जहाँ देवों की उपासना का विधान बताया जाता है। यहाँ लिखा है—

**"शृंगार के ग्राम मध्ये विष्णोर्वाशंकरस्मच। गणेशच्च खेदेव्याः प्रसादान् क्रमत्तोन्यसेत्।।"**

परन्तु मध्य.काल में इसे भावना के सर्वथा विपरीत शिव और विष्णुपरक सम्प्रदाय के केवल आपस में घृणा करते थे। बल्कि एक–दूसरे के देवता को भी घृणा की दृष्टि से देखते थे। तुलसीदास जी भक्ति–मार्ग के इस भयानक–विरोध अथवा घृणा–रूपी अवरोध को हटाकर भक्ति मार्ग को ऐसा राजमार्ग बना देना चाहते थे जिसमें बिना ईर्ष्या, द्वेष और घृणा के सभी देवता समान रूप से समाहत पूजित हों। यद्यपि श्रीमद्भागवत में जो कि वैष्णों का परम धन है—भगवान् शिव को परम् वैष्णव प्रतिपादित किया है—

"वैष्णवानां यथा शम्भुः" परन्तु इसे अलक्ष्य कर शैव और वैष्णव एक.दूसरे का विरोध करना ही जीवन का लक्ष्य बना बैठे थे। तुलसीदास जी ने इस विरोध को दूर करने के लिए एक और शिव को राम.कथा का परम् अधिकारी बताया तथा दूसरी ओर स्वयं अपने आराध्य श्री राम के मुख से शंकर भक्ति की महिमा का बखान करा इस विरोध को शामिल कर सामाजिक समस्या विधान में योगदान दिया। श्री राम कहते हैं—

(1) **"संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास। ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ वास।।"**

(2) **"संकर विमुख भगति चर मोरी, सो नर की मुढ मति थोरा।।"**

(3) **"औरों एक गुपुत मत सबहिं कहौं कर जोरी। संकर भजन बिना नर भगतिन पावइ मोरि।।"**

'रामचरितमानस' में गोस्वामी जी के तीन स्थानों पर भक्ति के साधनों की चर्चा की है। ये प्रसंग हैं—बाल्मीकि राम संवाद, पंचवटी में राम.लक्ष्मण संवाद तथा शबरी से राम की भेंट। वाल्मीकि राम संवाद में भक्ति के चौदह साधन तथा दूसरे दो और प्रसंगों में नौ. नौ साधनों का उल्लेख किया है। इसमें से एक में नवधा भक्ति का शास्त्रीय रूप है तथा दूसरे में नवधा भक्ति का सहज रूप। इन साधनों के अन्तर्गत उन्होंने यद्यपि रूपासक्ति आदि विभिन्न आसक्तियों, ब्राह्मण.पूजा, वैराग्यवृत्ति आदि की भी यथा सम्भव चर्चा की है तथापि महत्त्व दिया है नाम स्मरण, कथा श्रवण, सत्संगति आदि को ही। राम नाम के महात्म्य का वर्णन करते हुए उन्होंने नाम को राम से बड़ा अर्थात् अधिक महत्व वाला प्रतिपादित किया है—

(1) **"अभय अगम जुग सुगम नाम तें, कहौ नाम बड़ ब्रह्म राम तें।"**

(2) **"सबरी गीध सुसेवकहि सुगति दीन्ह रघुनाथ। नाम उधारे अमित खल वेद विदित गुन नाथ।।"**

'राम' ये दोनों वर्णनों भक्ति सुन्दरी के कर्णाभरण तुलसी ने प्रतिपादित किये हैं—

**"भगति.सुतिय कल करन विभूषन।"**

राम नाम तुलसी को राम लक्ष्मण के समान ही प्रिय था—

**"कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके, राम–लखन सम प्रिय तुलसी के।।"**

जिस प्रकार श्रावण और भाद्रपद मास का वर्षा से सहज सम्बन्ध है उसी प्रकार भक्ति का राम नाम से—

**"बरखा रितु रघुपाते भगति तुलसी साखि सुदास। राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास।।"**

नाम की महिमा अमित है जिसका उल्लेख तुलसीदास जी बहुशः इस प्रकार किया है—

**"कहउँ कहा लगि नाम बड़ाई। राम न सकहिं नाम गुन गाई।।"**

कलियुग में तो एक मात्र आधार ही राम का नाम है—

**"नहि कलि करय न भगति विवेकू। रामनाथ अवलम्बन एकू।।"**

तुलसीदास जी मानते हैं कि यूँ तो प्रभु के हज़ारों नाम हैं परन्तु 'राम सकल नामन ले अधिका' राम नाम सबसे विशेष है। तुलसीदास जी की यह मान्यता उस श्लोक की पुष्टि करती है। जिसमें भगवान् शंकर पार्वती से कहते हैं कि राम नाम हज़ारों दूसरे नामों से बढ़कर है—

**"राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्त्र नामत स्तुल्यं राम नाम वरानने।।"**

तुलसीदास जी राम नाम की एक और विशेषता बताते हुए कहते हैं कि राम नाम सगुण और निर्गुण के बीच सुन्दर साक्षी है दोनों का ज्ञान कराने वाला चतुर दुभाषिया है–

**"अगुन–सगुन बिच नाम सुसाखी, उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।"**

राम की कथा को उन्होंने भक्ति दायिनी, ज्ञान, वैराग्यदि को दृढ़ करने वाली संसार के रोगों को दूर भगाने वाली सजीवनी बूटी कहा है–

**"विरति विवेक भगति दृढ़ करनी, मोह नदी कहुँ सुन्दर तरनी।।"**

e e e e **"संसृति रोग संजीवन मूरी।"**

राम रक्षा स्त्रोत में कुछ ऐसे ही भाव लेकर कहा है–

**"भजंनं भव वीजानाम् अर्जुनं सुख सम्पदाम्। तर्जनम् यम दूतानम, रामेति गर्जनम्।।"**

भक्ति में दृढ़ता मोह नाश होने पर ही आती है ओर मोहनाश हरि कथा श्रवण तथा सत्संग से सम्भव है--

**"बिनु सत्संग व हरि कथा, तेहि बिनु मोहन भाग"।।**

तुलसीदास जी ने राम भक्ति में अकेले राम को नहीं सीता को भी लिया है, क्योंकि वाल्मीकि मुनि के अनुसार "कृतस्न रामायण प्रोक्तं सीतायाः चरितं महत्" अर्थात् मेरी कृति का नाम रामायण भले हो, परन्तु सही मायने में यह सम्पूर्ण रामायण सीता का ही महान चरित्र है। इसे ध्यान में रख उन्होंने भी समस्त संसार की वन्दना सीय राम मय कहकर की है–

**"सीय राम मय सब जग जानी। करऊँ प्रणाम जोरि जुग पानी।।"**

तुलसीदास जी नवधा भक्ति का यथा स्थान वर्णन करते हुए भी दास्य भक्ति को सबसे अधिक महत्त्व दिया है, क्योंकि उनकी मान्यता थी–

**"सेवक सेव्य भाव बिनु भवन तरिअ उरगारि। भजहु रास पद पंकज अस सिद्धान्त विचारि।।"**

तुलसी भक्ति पद्धति के समबन्ध में किसी विद्वान का कथन है कि "तुलसीदास जी की भक्ति जोग की अलग नहीं चलाती कर्मकाण्ड का पाखण्ड नहीं रचती और न ही ज्ञान का धुणाक्षर न्याय लेकर चलती है। वह जितनी व्यावहारिक और सुगम है उतनी ही सरल और सहज भी। यह बिरला मार्ग नहीं सबके लिए ग्राह्य सहज मार्ग है" तुलसी दास जी स्वयं भी कहते हैं-

**"निगम अगम, साहब सुगम, राम साँचिली चाह। अंबु असन अवलोकियत सुलभ सबै जग माँह।।"**

इस मार्ग पर चलने के लिए केवल सरलता चाहिए–मन की सरलता, वचन की सरलता, कर्म की सरलता। तुलसीदास जी लोकधर्म के मर्मज्ञ थे, इसीलिए उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम भक्ति को अपना ध्येय बनाया तथा लोक धर्म विरोधी तत्वों का बहिष्कार कर उन्होंने अपने आराध्य के शील, सदाचार एवं मर्यादा से उसे समन्वित कर इस रूप में उसे प्रतिष्ठित किया कि उसके अनुसारगामी उन गुणों से स्वयं को मण्डित कर आदर्श रूप ही संसार के सामने प्रस्तुत करें। उनकी भाँति वैयक्तिक साधना के साथ साथ लोक धर्म को लेकर चलती है। इसे परिलक्षित कर आचार्य शुक्ल ने लिखा है–"तुलसी की भक्ति में कोरी भावुकता का उपदेश नहीं जो उद्दण्डता होती है, कोरे ज्ञान का उपदेश नहीं जो आलस्य होता है, कोरी चतुरी का आदेश नहीं जो धूर्तता होती है। यह राम के महत्व की अनुभूति, शील, शक्ति और सौन्दर्य के उस समन्वय के साथ है जिससे मनुष्य का सम्पूर्ण हृदय आकर्षित होता है। इसी कारण तुलसीदास की धर्म लक्षण भी केवल वैयक्तिक साधना के दया, दाक्षिण्य वाले सीमित लक्षण ही नहीं, जिनसे मन, तन और आत्मा शुद्ध होते हैं।"

वस्तुतः तुलसीदास जी की भक्ति सामंजस्य मूलक है और भक्ति के हर अंग आधार स्वरूपादि में उनकी समन्वयवादी विचारधारा कार्य करती दृष्टिगोचर होती है। ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के समन्वय, सगुण और निर्गुण में समन्वय, अद्वैत.विशिष्टाद्वैत में समन्वय, भक्ति के विराट् समन्वयात्मक भावना साकार होती है। इसी समन्वयात्मक दृष्टिकोण से प्रेरित तुलसीदास जी ने अपनी भक्ति को 'श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ संयुत विरति विवेक' कहा है। समष्टि रूप में तुलसीदास जी के मत में भक्ति चिन्तामणि के समान है। यह भक्ति जिसके हृदय में निवास करती है उसे दीपक के प्रकाश की आवश्यकता नहीं पड़ी। मोहादिक का तिमिर उसके पास तक नहीं फटकता और न लोभ रूपी वायु इसे बुझा ही सकती है। यह अविद्या जनित अन्धकार को नष्ट कर सत्य का साक्षात्कार कराने में सर्वाधिक समर्थ है। जिसके हृदय में यह भक्ति रूपी मणि प्रतिष्ठित रहती है उसे कामादि विकार प्रभावित नहीं कर पाते। वास्तविक सुख और अत्यान्तिक कल्याण इसी के द्वारा सम्भव हैं। वे सांसारिक जन निश्चय ही बड़भागी हैं जो इसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। गोस्वामी जी के मत से राम भक्ति ही सबसे बड़ा धर्म, सबसे महान् कर्म, सबसे बड़ी नीति तथा सर्वाधिक सरल सम्मत मार्ग

है। यह भक्ति भगवान् की अनन्त कृपा के फलस्वरूप ही प्राप्त होती है। भगवान् अपने आराधक की आराधना पर प्रसन्न होकर अन्य सब तो उसकी इच्छानुसार सहज ही दे देते हैं, परन्तु किसी भाग्यवान को ही प्राप्त होती है—'मुक्ति उदाति कर्हिचित्सम न तु भक्ति योगम्।' भक्ति रहित जीवन वैसा ही है जैसा लवण रहित व्यंजन्। इसीलिए तुलसी भक्ति के सामने अन्य वस्तुओं की कामना नहीं करते। वे अपने आराध्य प्रभु से यहीं याचना करते हैं—

**"कामिहिं नारि पियारी जिमि लोभिहिं प्रिय जिमि दाम। तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहिं राम।।"**

यही उनका सर्वोपरि अभीष्ट है, यही उनकी भक्ति का लक्ष्य है। तुलसीदास जी ने भक्ति को इतना महत्व क्यों दिया इसे जानने के लिए डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र द्वारा प्रतिपादित भक्ति मार्ग की कुछ प्रमुख विशेषताओं को जान लेने की आवश्यकता है, जो इस प्रकार हैं—

(1) यह मार्ग जीव की स्वाभाविक रुचि के अनुकूल है।

(2) इस मार्ग के साधन कष्टकर नहीं होते।

(3) इस मार्ग में प्रत्यूहों और विघ्नों का झंझट कम रहता है।

(4) यही सब साधनों का फल और आधार है।

(5) यही वह साधन है जिसमें साधन भी (भक्ति) साध्य (मुक्ति) की भाँति बल्कि साध्य से भी अधिक सुख प्रद रहता है।

(6) भगवान् की कृपा प्राप्त कर लक्ष्य तक पहुँचने का यह सबसे छोटा और सीधा मार्ग तो है ही; लोक और परलोक का सुख भी इसी पर निर्भर रहता है।

(7) इन्हीं विशेषताओं को दृष्टिगत रखकर तुलसीदास जी ने भक्तिमान व्यक्ति को धन्य कहा है—

**"पुत्रवती युवती जग सोई, रघुवर भगत जासु सुत होई। सोई सरवग्य तग्य सोई पण्डित, सोई गुन गृह विग्थान अखंडित। बच्छ सकल लच्छन जुत सोई, जागे पद सरोज रति होई।।"**

तुलसीदास जी की भक्ति निष्काम दास्य भाव की भक्ति है। उसमें सांसारिक क्षुद्र स्वार्थों के लिए तनिक भी अवकाश नहीं है। इस मार्ग के अनुयायी तुलसी मात्र इसी फल की कामना करते हैं—

**"सब कर माँगहिं एक फल राम चरन रति होउ।**

वे इस जीवन में ही नहीं जन्म जन्मांतर में ही केवल अपनी भक्ति साधना का यही फल चाहते हैं—

**"अर्थ न धर्म न काम रुचि गानि न कहहुँ निखान। जन्म जन्म सिय राम पद यह वरदान न आन।।"**

इस प्रकार गोस्वामी जी के अनन्य दास्य भाव को चरमिति प्रस्तुत कर जन.सामान्य को निज कल्याण की दिशा में अग्रसर कर भक्ति को ऐसे आलोक स्तम्भ के रूप में प्रतिष्ठित किया है जिसे व्यक्ति सही दिशा.दर्शन पा अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सफल हो सके।

# अध्याय 4

# तुलसीदासजी की दार्शनिक विचारधारा

भारतीय जीवन में दर्शन का अपना महत्व है। दर्शन का शाब्दिक अर्थ है—देखना (दृश—अन)। परिभाषिक अर्थ में इस शब्द से आध्यात्मिक ज्ञान का बोध होता है। कुछ विद्वान जीवन के चिन्तन की विशेष पद्धति को ही दर्शन कहते हैं। भारत के प्रसिद्ध दार्शनिक, शिक्षक, भू०पू० राष्ट्रपति राधाकृष्णन् के अनुसार "दर्शन एक ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान है जो आत्मा रूपी इन्द्रिय के समक्ष सम्पूर्ण रूप से प्रकट होता है।" धर्म सम्राट स्वामी करपात्री जी के अनुसार "दर्शन एक ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान है जिसमे प्रमाण द्वारा आत्मा.परमात्मा का ज्ञान प्रकट होता है।" डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र दर्शन को साधना के विचार पक्ष के रूप में स्वीकार करते हैं। स्वामी अखण्डानन्द जी सरस्वती जीव से सम्बद्ध विभिन्न विषयों के सूक्ष्म चिन्तन को दर्शन मानते हैं। सृष्टि के आदि अन्तरिक्षण से विश्व गुरु पद पर अधिष्ठित रहने वाला भारत चिन्तन का न केवल प्रेमी रहा है, बल्कि इसने चिन्तन की ऐसी अजस्त्र धारा भूतल पर प्रवाहित की है कि उसके सम्पर्क में आकर सारा संसारं ही चिन्तनधारा में अवगाहन कर भाव मणियाँ समेटने में दत्त चित्त सा हो गया है। आदिकाल से ही भारतीय मनीषियों की जिज्ञासा रहस्यमय ब्रह्माण्ड के रहस्य को जानने की रही है। ऋग्वेद में भारतीय मनीषा का रहस्यमय ब्रह्माण्ड के जानने की दिशा में अग्रसर होना प्रत्यक्षतः अनुभव किया जा सकता है। सृष्टि के आरम्भिक काल से ही भारतीय मनीषी इन बातों पर विचार करते थे कि इस सृष्टि का निर्माता तथा नियन्ता कौन है ? अपरिमित जलराशि का केन्द्र सागर नीलाकाश. गगन चुम्बी पर्वत माला, सूर्य चन्द्र आदि का समय पर उदय और अस्त होना, प्रत्येक दो मास के पश्चात ऋतु का बदल जाना आदि कार्य तथा समय किसके इंगित पर किसके नियन्त्रण में होता है। इन सब कार्यों का प्रवर्तक तथा सूत्रधार कौन है ? सृष्टि चक्र में परिवर्तन क्यों होता है ? मृत्यु के समीप जीव किंकर्त्तव्यविमूढ़ की सी स्थिति में क्यों पहुँचता है ? ईश्वर मानव का लक्ष्य क्या होना चाहिए आदि ऐसे प्रश्न थे जिसने भारतीय मनीषा को इन पर चिन्तन करने के लिए उकसाया और परिणामस्वरूप जो विकसित चिन्तन धारा निसृत हुई उसे ही उपनिषदादि के रूप से उपलब्ध चिन्तन—पराग की संज्ञा प्रबुद्ध अध्येताओं ने दी है।

चिन्तन के इन्हीं विभिन्न पक्षों को स्वीकार कर विभिन्न विद्वानों ने जो स्थापनाएँ स्थापित की उनके आधार पर दर्शन को दो भागों में विभाजित किया गया। परिणामस्वरूप द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि परक विभिन्न विचारधाराएं सामने आईं और सभी ने तथ्यपरक रुचि रखने वाले मानव समुदाय को प्रभावित किया।

गोस्वामी तुलसीदास जी भी चिन्तकों की इस परम्परा के अनुयायी थे। उन्होंने चिरकाल तक भारतीय आर्ष वाङ्मय का गम्भीर अध्ययन और मनन किया था और उसी अध्ययन मनन का सार 'रामचरितमानस' के रूप में संसार के सामने प्रस्तुत कर स्वयं को चिन्तक दार्शनिकों की परम्परा का सफलतम अनुयायी सिद्ध करने का प्रयास किया था। यद्यपि तुलसी मूल रूप में भक्त ही विशेषतः थे तथापि उनके काव्य में दार्शनिक तत्वों को भी ढूँढने का प्रयास सतत् किया जाता रहा है।

डॉ. माता प्रसाद गुप्त के अनुसार, "तुलसीदास दर्शन' पर जो भी विचार किया गया है वह सामान्यतया 'रामचरितमानस' पर आधारित है। परन्तु इस कथन से यह अभिप्रेत नहीं है कि उनकी अन्य कृतियाँ दार्शनिक तत्त्वों से विरहित हैं या इस दृष्टि से उनकी उपयोगिता कुछ कम है। तुलसी की एतद्विषयक मान्यताएँ विनय पत्रिका में और भी अधिक मुखरित हुई हैं। तुलसी के दार्शनिक विचारों पर द्वैत, अद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि में से किसका विशेष प्रभाव है ? यह प्रश्न वस्तुतः बाद में उठाया जाना चाहिए था। परन्तु विद्वानों ने अद्वैत, विशिष्टाद्वैत तथा द्वैतवाद के सिद्धान्तों को लेकर तुलसीदास जी की दार्शनिक मान्यताओ को बिना स्वतन्त्र रूप से समझने, सुलझाने का प्रयास किया है। इस प्रयास में अपना पक्ष सुस्थिर करने के लिए खींचा-तानी भी हुई है। इस प्रकार का प्रयास करने वाले महानुभाव प्रायः यह भूलकर कि तुलसीदास जी ने जो कुछ भी कहा है निगमागम सम्मत ही कहा है "नाना पुराण निगमागम सम्मतयत् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।" उनके मतानुसार प्रस्तुत करने का प्रयास करते दृष्टिगोचर होते हैं जो सर्वांश में समीचीन नहीं कहा जा सकता। तुलसीदास जी के कथन में उनकी नवीनता विषय प्रतिपादन शैली की वैयक्तिकता स्पष्टतः मुखरित हुई है। इस वैयक्तिकता के कारण ही तुलसी विचारधारा को 'तुलसी दर्शन कहा जाता है' विद्वानों ने इसे सगत माना है

. गोस्वामी तुलसीदास जी ने काव्य में यत्र—तत्र उपलब्ध अद्वैत और विशिष्टाद्वैत परक सिद्धान्तों को परिलक्षित कर कुछ विद्वान उन्हें अद्वैतवादी तथा कुछ विशिष्टा द्वैतवादी मानते हैं। गोस्वामी जी किस मत के अनुयायी थे। यह बताने से पूर्व उक्त दोनों मतों के सूक्ष्म अन्तर को जान लेना चाहिए। अद्वैत मत के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप निर्गुण है। उनकी मान्यता है—'सत्यब्रह्म जगन्मिथ्या' अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है। जीव और जगत् की पृथक् सता नहीं है भ्रमवश जीव को जगत की सत्यता का ज्ञान होता

है। आत्मा और परमात्मा अभिन्न हैं अतः इसे प्रतिपादित करने के लिए 'सोऽहम की कल्पना इस मत में विशेष की जाती है। जीव और ब्रह्म की यही ऐक्य ज्ञान ही मोक्ष है।'

'विशिष्टाद्वैत' के पर्वत हैं श्रीरामानुजाचार्य जी। उनके अनुसार ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप के साथ उसका सगुण स्वरूप पर व्यूह, विभव अन्तर्यामी और अंशावतार के रूप में विशिष्ट रूप धारण करता है। श्रीरामानुचार्य जी की यह मान्यता अर्थववेद परक कही जा सकती है, क्योंकि वहाँ भी ब्रह्म को सगुण और निर्गुण दो प्रकार का प्रतिपादन किया गया है–

**"द्वैवाब ब्रह्मणों रूपे मूर्तञ्चैवामूतञ्च"**

चिद्–चिद् विशिष्ट ब्रह्म के रूप में जीव और जगत की भी सत्ता है। जीव ब्रह्म का अंश है और वह 'सामीप्य' में भी अपनी सत्ता बनाए रहता है। इसे ध्यान में रखकर ही 'सोऽहम्' की परिणति यहाँ 'तू और मैं' में की गई है। विशिष्टाद्वैत मतानुयायी माया को भगवान की शक्ति मानकर उसे 'सीता' के रूप में स्वीकार करते हैं और ज्ञान मार्ग का अवलम्बन न करके भक्ति का आश्रय लेते हैं।

तुलसीदास जी क्योंकि विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के अनुयायी थे अतः उस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का पोषण उनका कर्तव्य था। यह होने पर भी उनकी कृतियों में विभिन्न मत समर्थक सूत्रों को परिलक्षित कर विद्वानों ने इनके मत के सम्बन्ध से जो विचार व्यक्त किए हैं उन्हें भी जान लेना आवश्यक है। महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी तुलसी के दार्शनिक दृष्टिकोण के सम्बन्ध में कहते हैं–"दावे के साथ कहा जा सकता है कि शंकर अद्वैत के विरूद्ध पड़ने वाले साम्प्रदायिक विचार रामायण में नहीं हैं।" श्री नगेन्द्र बसु का कहना है कि 'रामायण में कई जगह शंकराचार्य का मत ग्रहण किया गया है।' विजयानन्द त्रिपाठी रामायणी का कथन है–'मानस की अन्तरंग और बहिरंग परीक्षा का यही फल मिला है कि गोस्वामी जी का दार्शनिक विचार विशुद्ध अद्वैतवाद ही है।' बाबू श्यामसुन्दरदास तथा डा० पीताम्बर दत्त वडश्वाल तुलसी दर्शन को अद्वैत से मिलता जुलता मानते हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि गोस्वामी जी के मायावाद और शंकराचार्य जी के मायावाद में स्पष्ट भेद है। शंकराचार्य जी माया का अस्तित्व ही नहीं मानते किन्तु गोस्वामी जी राम के बल पर उसका अस्तित्व मानते हैं। आचार्य शुक्ल का मत है–"परमार्थ दृष्टि ने शुद्ध ज्ञान से अद्वैत मत गोस्वामी जी को मान्य है, लेकिन भक्ति के व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुसार भेद करके चलना वे अच्छा समझते हैं।" डॉ० बलदेव प्रसाद जी मिश्र भी इस मत को स्वीकार करते हैं। पं० केशव प्रसाद मिश्र की मान्यता है कि "यों तो गोस्वामी जी की सामान्य बुद्धि सभी दार्शनिक सिद्धान्तों में अवरोध देखती है, सभी को यथा स्थान महत्व देती है और सभी पक्षों का समर्थन करती है, पर उनके प्रस्थान के अनुरोध ा तथा ग्रन्थ के उपक्रम तथा उपसंहार के विचार से द्वैत सिद्धान्त और भक्ति पक्ष में ही उसका (दार्शनिक दृष्टिकोण का) पर्यावसान प्रतीत होता है। तुलसी के दृष्टिकोण की कुछ ऐसी ही विशेषता है कि उसमें एक ही साथ परस्पर विरोधी विचारों वाले विद्वानों की जिज्ञासा उसी प्रकार शान्त हो जाती है जिस प्रकार सभी पिपासु जीवों की प्यास गंगाजल से बुझ जाती है, तुलसीदास जी के मत का अध्ययन करने पर विदित होता है कि उन्होंने निर्गुण ब्रह्मवादियों के समान यह भी कहा–

**"आदि मध्यान्त भगवन्त तुम सर्वगतमीश पश्यन्ति ते ब्रह्मवादी।**

**यथा पट–तन्तु, घट–मृतिका, सर्प–क्षग, दारु–करि, कनक कटकांगदादि।**

**वही विशिष्टाद्वैत प्रतिपादित रूप में पर व्यूह, विभव अन्तर्यामी।**

अर्चावतार आदि पाँचों रूपों का भी दिग्दर्शन कराया है जो क्रमशः इस प्रकार है–

(1) अनन्त भगवन्त जगदन्त अन्तकत्रास समन श्रीरमन भुग्नाभि रामा (पर)।

(2) ग्यान गोतंति मनुवृत्ति हरता (व्यूह)।

(3) भूमि पर भार हर प्रकट परमात्मा ब्रह्म नर रूप घर भक्त हेतु (विभव)।

(4) झूठ क्यों कहौं जानो सभी के मन कौं (अन्तर्यामी)।

(5) निज प्रभुता बिसारि जन के बस होत सदा यह रीति।

गोस्वामी जी दार्शनिक दृष्टिकोण को स्थूल रूप से पांच अंगों में बांटा जा सकता है–

(1) ब्रह्म (2) जीव (3) जगत् (4) माया (5) मोक्ष।

**ब्रह्म**–तुलसीदास जी ने ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को रूप में अभिकृत किया है। वे कहते हैं–

**"अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनुपा।**

इस निर्गुण रूप की अनिर्वचनीयता के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है–

**"अगुन अखण्ड अनन्द अनादी। जेहिं चितहिं परमारथवादी। नेति नेति जेहिं वेद निरूपा। चिदानन्द निरुपादि निरूपा।।**

*** * * * * * व्यापक व्यापि अखण्ड अनन्ता, अखिल अमोद्य सक्ति भगवन्ता।**

**अगुन अदभ्रगिरा गोतीता, सब दरसी अनवद्य अजीता।। निर्मल निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सब सन्दोहा।।**

**प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी।।**

बालकाण्ड के आरम्भ में ही गोस्वामी जी के ब्रह्म विषयक दृष्टिकोण का यत्किचित् आभास मिलने लगता है-

**"एक अनोह अरूप अनामा, अज सच्चिदानन्द परधामा। व्यापक विश्वरूप भगवाना, तेहिं धरि देह चरित कृत नाना।।**

आगे चलकर वेद स्तुति के ब्याज से उन्होंने अपने ब्रह्म का स्वरूप इसे दर्शाया है–

**"बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करइ विधि नाना।।**

**आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानौ बकता बढ़ जोगी।।**

**तन बिनु बरस नयन बिनु देखा। गहइ घ्रान बिनु बास असेषा।।**

**अस बस भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी।।**

आगे चलकर पुनः उतरकाण्ड में उसी ब्रह्म की महिमा उन्होंने इस प्रकार प्रतिपादित की है–

**"अगुन अदभ्र गिरा गोतिता, सबदरसी अनवद्य अजीता। निर्मम निराकार निर्मोही, नित्य निरजन सुख सन्दोहा।।**

**प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी, बह्म निरीह बिरज अविनासी। इहाँ मोह का कारन नाहीं, रबि सन्मुख तम कबहुँ की जाहीं।।**

तुलसीदास जी ने ब्रह्म की चर्चा श्रीराम के माध्यम से की है। तुलसी के ब्रह्म सगुण भी हैं और निर्गुण भी। इसीलिए जनक के मुख से श्रीराम के लिए 'निरगुन–गुनरासी', सुतीक्षण मुनी के मुख से 'निर्गुण सगुण विषय समरूप', वेदों के मुख से 'जय सगुन निर्गुन रूप–रूप अनूप भूप सिरोभने' तथा सतकादि ऋषियों के मुख से 'जय' निगुर्णन जय जय गुन सागर' आदि कहलाकर उन्होंने अथर्ववेद वेद के इस कथन के प्रति आस्था प्रकट की हैं–'द्वेवाब ब्रह्मणों रूप मूर्तञ्चैवामूर्तञ्च ओर इसे ही दृष्टिगत रखकर उन्होंने लिखा है-

**'सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा, गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा।**

**अगुन अरूप अलख अज जोई, भगत प्रेम सब सगुन सो होई।**

**जो गुन रहित सगुन सोई कैसे, जलु हिम उपल विलग नहिं जैसे।।'**

तुलसी की मान्यता है कि सगुन रूप का यथावत् परिज्ञान सर्वथा दुरूह है। निर्गुण को समझना सहज है परन्तु सगुण का कठिन। इसी कारण करूण सती आदि का मोह हुआ था–

**"निर्गुण रूप सुलभ अति सगुण जान नहिं कोइ। सुगम अगम जाना रचित सुनि मुनि मन भ्रम होई।।"**

गोस्वामी जी के अनुसार अनुन, अलख, अरूप, ब्रह्म ही भक्तों की इच्छा पूरी करने के लिए सगुण रूप में धाराधाम मे अवतरित होता है–

**"अगुन अरूप में अलख अज जोई, भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।"**

समष्टि रूप में निर्गुण ब्रह्म ही सगुण राम के रूप में अवतरित हुए हैं और तुलसी ने उन्हीं के माध्यम से विशिष्टा द्वैतपरक विचारधारा के अनुरूप सगुण राम के माध्यम से ब्रह्म की सभी विशेषताओं से हमें परिचित कराने का स्तुत्य अभय सफल प्रयास किया है। तुलसी के राम निर्गुण पर ब्रह्म का सगुण रूप है। वे विभिन्न प्रकार एक नट क्रिया करता है।

**"जथा अनेक वेशधरि नृत्य करइ नट कोइ। सोइ सोइ भाव देखावइ आपुन होइ न सोइ।।"**

**माया**–श्रीमद् भागवतादि में विद्या माया, अविद्या माया के रूप में माया की विस्तृत चर्चा मिलती हैं। वहां भगवान ने अपने श्रीमुख से इन्हें अपना ही अंग प्रतिपादित किया है–'विद्याविद्ये ममतन्। 'माया' दो अक्षरों से बना शब्द है मा + या। सस्कृत में मा का अर्थ है मत, नहीं और या का पहुँचना, जाना। इस प्रकार सीधे रूप में इसका अर्थ है इसके पास न जाओ। परन्तु यदि इसे उलटा कर दिया जाए तो रूप बनता है यामा। यामा का अर्थ है रात्रि। अर्थात् जिस प्रकार निरभ्र आकाश में चन्द्र तारक युक्त रात्रि। अर्थात् जिस प्रकार रात्रि आकर्षक, आह्लादिक होती है उसी प्रकार माया भी है। उसके आकर्षक से बच पाना सहज नहीं है। यही परिलक्षित कर कबीरदास जी ने कहा था–

**"माया दीपक नर पतंग भ्रमि इवै पऽन्त, कहै कबीर गुरू, ज्ञानतें एक आध उबरन्त।**

तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' में माया की चर्चा कई स्थानों पर की है–बालकाण्ड में मनु–शतरूपा के वरदान सर्ग में

वहाँ यह वर्णन श्रीमद्भगवत् गीता के अनुसार है। गीता में भगवान् कहते हैं–

**'प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया'।**

मानस में गोस्वामी जी भगवान् के मुख से कहलाते हैं–

**'आदि सक्ति जेहिं जग उपजाया, सोउ अवतारिहि मोरि यह माया।'**

अरण्य काण्ड में लक्ष्मण के साथ राम द्वारा भक्ति योग की चर्चा में उत्तरकाण्ड में गरुड़–काक भुसुण्डी संवाद में। माया को गोस्वामी जी ने भगवान की परमशक्ति, त्रिगुणात्मक रूप में प्रतिपादित करते हुए उसे राम के अधीन बताया है। उन्होंने बताया है कि यह माया संसार में क्रियाशील है और इसी के कारण मिथ्या जग सत्यवत् प्रतीत होता है। यह सम्पूर्ण विश्व माया के वशीभूत है।

**"मैं अरु मोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया। गो गोचर जहं लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु माई।।**
**तेहिकर भेद सुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ। एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव पराभव कूपा।।**
**एक रचै जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें।।**

अद्वैतमत में 'माया' और 'अविद्या' को एक दूसरे का पर्यायवाची माना जाता है। विशिष्टाद्वैत मत इसे स्वभावतः सगुण ब्रह्म की अचिन्त्य शक्ति प्रतिपादित करता है। तुलसी दास ने दोनों के समन्वित सिद्धान्त को स्वीकारा है। उन्होंने सीता को मूल प्रकृति, महामाया अवतार भी कहा है और रमा को भी। तुलसीदास जी की शब्दावली पर विचार करने पर वे भक्ति का मूर्तिमान रूप भी प्रतिभासित होती है। काक भुसुण्डी जी एक स्थान पर कहते हैं–

**"हरि सेवक हिं न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापहि तेहिं विद्या।**
**तातें नास न होइ दास कर। भेद भगति बढाइ बिहंगवर।।"**

तुलसीदास जी ने भक्ति और माया का अलग–अलग वर्णन कर माया को नर्तकी (भगवान की रखैल) तथा भक्ति को भगवान की प्रियतमा (ब्याहता) प्रतिपादित किया है–

**"पुनि रघुबीर भगति पिटारी। माया खलु नर्तकी विचारी।**
**भगतिहिं सानुकूल रघुराय। तातें तेहिं डरपति अति माया।।"**

यह माया सबको नचाती है परन्तु स्वयं राम के इंगित कर नाचती है–

**"जो माया सब जगहिं नचावा, जासु चरित लखि काहु न पावा।**
**सोइ प्रभु भ्रू बिलासा खगराजा, नाच नटी इसे सहित समाजा।।"**

गोस्वामी जी माया को अत्यन्त दुस्कर मानते हैं–

**"माधव ! अस तुम्हारि यह माया।**
**करि उपाय पचि मरिय, तरिय नाहिं, जब लगि करहु न दाया।"**

इसके मोह–पाश से भगवत्कृपा से ही छुटकारा मिल सकता है। ईश्वर तथा जीव के मध्य असत्य भेद का कारण माया ही है। यह असत्य भेद बिना प्रभु कृपा दूर होना असम्भव है। सारा संसार माया से व्याप्त है। माया का परिवार पृथुल है। धन, स्त्री, पुत्र, कीर्ति, अभिलाषा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अलंकार आदि इनके परिजन हैं। इसकी प्रबलता कैसी है ? इस सम्बन्ध में उतरकाण्ड में गोस्वामी जी कहते हैं–

**"व्यापि रहेउं संसार महुँ माया कटक प्रचण्ड। सेनापति कामादि भर दम्भ काट पाखण्ड।।"**

वैसे तात्विक दृष्टि से यह माया मिथ्या है परन्तु इसका पाश इतना प्रबल है कि उससे छुटकारा ईश्वर कृपा बिना सम्भव ही नहीं। ईश्वर के सम्बन्ध में भी मोह कारण माया ही है। भगवान श्रीराम की भक्ति ही जीव माया के चंगुल से उद्धार कर सकती है। भक्त में इसका प्रवेश नहीं होता अतः तत्व ज्ञानी, भक्ति की ही याचना करते हैं जिसके प्रभाव से वे माया के पास से मुक्त हो सकें–

**भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अविद्या नासा।।**

**जीव**–भारतीय दर्शन में मूलतः जीव के केन्द्र बिन्दु पर विचार किया गया है। जीव को स्पष्टतः अंश माना गया है और ईश्वर को अंशी। श्री वल्लभाचार्य जी ने 'स्फुल्लिंग इवाग्नेस्तु' के रूप में अंगार और उससे अद्भुत चिनगारियों के द्वारा ईश्वर और जीव की स्थिति को दर्शाया है। जीव की अत्यधिक दुःख निवृति ही जीव के जीवन का मूलोदेश्य है। जीव नाना प्रकार के दैहिक दैविक, भौतिक तापों से पीड़ित है। माया के प्रभाव से अपने स्वरूप को भूलकर देह को ही सब कुछ मान बैठना उसके दुःख का कारण है। वर्षा वर्णन के अन्तर्गत गोस्वामी जी इसका संकेत इस प्रकार देते हैं–

**"भूमि परत का डाबर पानी, जिसि जीवहिं माया लपटानी।।"**

गोस्वामी जी ने कर्म भेद से जीव तीन प्रकार के माने हैं—

**'विषमी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जंग बखाने।'**

जीव क्या हैं ? इसकी चर्चा करते हुए तुलसीदास जी कहते हैं कि जीव ब्रह्म की भाँति नित्य है। जन्म—मरण से पर हैं और पाँच भौतिक शरीर से सर्वथा विलग है। भगवान् राम के मुख से ताप विलाप प्रसंग में गोस्वामी जी ने कहलाया है—

**"छिति जल पावक गगन समीरा। पंचरचित अधम सरीरा।**
**प्रकट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य कहि लोग तुम सरीरा रोवा।।**

जीव ईश्वर का अंश अतएव अविनाशी है—'ईश्वर' अंस जीव अविनासी' ईश्वर और जीव का भेद माया जनित है जो एक रस ज्ञान की प्राप्ति होने पर समाप्त हो सकता है—

**"ग्यान अखण्ड एक सीतावर, माया बल्य जीव सचराचर। जा सबके रह ग्यान एक रस, ईश्वर जीवहिं भेद कहहु कस।।**

दोनों में भेद मात्र इतना ही है कि अज्ञानान्ध जीव माया के वश में होता है तथा माया ईश्वराधीन है—'माया वस्य जीव अभिमानी है। ईस बस्य मायागुन खानी'। दूसरे शब्दों में जीव मायावश होता है और ईश्वर स्वतन्त्र—

**'पर बस जीव स्वबस भगवन्ता, जीव के अनेक एक श्रीकान्ता।'**

यह सब चिन्तन न्याय सम्मत है। तर्क संग्रह में भी अन्नम भट्ट ने जीवात्मा के सम्बद्ध में लिखा हैं—

**'ज्ञानाधिकरणात्मा। स द्विविधः परमात्मा जीवात्माचेति। तत्रेश्वरः सर्वज्ञः मरमान्मैक एव। जीवात्मा प्रति शरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च।'**

जीव को जब आत्मा अनुभव होता है और भव—मूल भेद भ्रम नष्ट हो जाता है तब ईश्वर और जीव में कोई भेद नहीं रहता। यह भ्रम होता है हरि भक्ति से। माया के बन्धन में पड़ा जीव कर्म फल भोगता है—

'निज कृत कर्म भोग सब भ्राता।' तथा 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करह तो तस फलु चाखा।' माया के वश में पड़ा जीव कर्म ही नहीं काल और गुणों से भी बँधा भव—भँवर में फँस उभ चूस करता रहता है।..... भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कम गुननि भरे।' वह हर्ष विषादादि में उलझा रहता है—'हरष विषाद ग्यान अग्याना, जीव धर्म अहमिति अभिमाना। और इनके परिणामस्वरूप लख चौरासी में भटकना ही उसकी नियति रह जाती है। परन्तु क्योंकि जीव का लक्ष्य है मोक्ष अतः उसकी लालसा उसे आकुल बनाए रखती है। अवश्य, परन्तु बिना भक्ति, बिना हरि कृपा यह सुलभ नहीं होती। तुलसीदास जी ने मानस उत्तरकाण्ड में जी की स्थिति और अधिक उजागर की है। माया के आवरण से मुक्त होने तथा आत्म ज्ञान के लिए जीव के समक्ष एक ही उपाय गोस्वामी जी बताते हैं और वह उपाय है भगवान् के चरण कमलों में अविचल भक्ति।

**जगत**—श्री शंकराचार्य जी ने ब्रह्म से पृथक् जगत् को सत्ता स्वीकार नहीं किया हैं। वे निज विवेक चूड़ामणि के 237 वें श्लोक में जगत् के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण इस प्रकार उजागर करते हैं—

**"अतः पृथङ् नास्ति जगत्परात्मनः। पृथक प्रतीतिस्तु मृषा गुणाहिवत्।।**
**आरोपित स्यास्ति किमर्थवता। धिष्ठानमभाति तथा भ्रमेण।।**

अर्थात् जगत् परमात्मा से पृथक है ही नहीं। उसकी पृथक प्रतीति तो रज्जु में सर्प की प्रतीति की भाँति मिथ्या ही है। आरोपित वस्तु की वास्तविकता ही क्या ? वस्तुतः यह तो अधिष्ठान ही भ्रम से उस पर प्रतीत हो रहा है। गोस्वामी जी ने इस जगत का मूल कारण परब्रह्म राम को ही मानकर लिखा हैं—

**"प्रकृति महतत्व, शब्दादि गुण देवता, व्योम मरुदग्नि अमलाम्बु उर्वी।**
**बुद्धि, मन, इन्द्रिय, प्राण, चितात्मा, काल परमाणु, चिच्छक्ति गुर्वी।**
**सर्व मेवात्रत्द्रप भूपालमणि, व्यक्त मव्यक्त, गत भेद विष्णो।"**

अर्थात् मूल प्रकृति, महतत्व, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सत्व—रज, तम गुण, समस्त देवता, आकाश, वायु, अग्नि निमल जल पृथ्वी, बुद्धि, मन, दसों इन्द्रियाँ, प्राण, अपान आदि पंच प्राण, चित्त, आत्मा, काल, परमाणु आदि पदार्थ आपका ही रूप हैं। अन्यत्र गोस्वामी जी ने अपने उक्त कथन की पुष्टि इस रूप में की है—'जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।' मन्दोदरी के द्वारा भी गोस्वामी जी ने अपने विचारों की पुष्टि कराई है। मन्दोदरी रावण को समझाते हुए कहती हैं—

**'विस्व रूप रघुवंशमणि कर बहुवचन विस्वासु। लोक कल्पना वेद कर अंग अंग प्रतिजासु।'**

तुलसीदास जी की मान्यता है कि राम की प्रेरणा से ही माया पंचभूतों को उत्पन्न करती है और फिर उन्हीं से स्थावर जंगमात्मक जगत् उत्पन्न होता है—तब प्रेरित माया उपजाए।' राम की माया के कारण ही रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति यह सारा दृश्य जगत् सत्य ही प्रतीत होता—

**"जासु सत्यता में जड़ माया, भास सत्य इत मोह सहाय।"**

तुलसी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों गोस्वामी जी की जगत् सम्बन्धी मान्यताओं को तीन भागों में बांटा है। जहाँ गोस्वामी जी जगत् को असत्य मानते हैं, वहाँ उनका कथन है—

**"झूठी है, झूठी है, झूठी सदाजगु, सन्त कहनत जे अन्तुलहा है।**

**ताको सहै, सठ ! संकट कोटिन, काढ़त, दन्त, करता हदा है।** तथा

**"जग नभ वाटिका रही है फली—फलि फूलि रे।"** एवं **"उमा कहउं में अनुभव अपना, सत हरि भजन जगत तब सपना।"**

जहाँ उन्होंने जगत को राम का रूप स्वीकार कर उसे सत्य माना है वहाँ उन्होंने जगत राममय तथा उनका अंग रूप स्वीकार कर उसकी नित्यता प्रतिपादित की है। वहाँ वे भागवत के इस श्लोक से प्रभावित दृष्टिगोचर होते हैं—

**"खावायु मग्नि सलिल महींच ज्योतींबि सत्वानि दिशो द्रुमादीन। सरित्समुद्रशच हरेशशरीरं यकिंत्कच भूतं प्रणमेदनन्यः।**

जहाँ वे कहते हैं कि जगत को सत्य, असत्य अथवा उभय रूप में स्वीकार करना भी भ्रम है, वहाँ वे लिखते हैं—

**"केशव ! कहि न जाइ का कहिये। देवत तब रचना विचित्र अति, समुझि मनहिं मन रहिये।।"**

* * * **"कोऊ कह सव्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोऊ माने।**

**तुलसीदास परि हरै तीन भ्रम, सो आपन पहचाने।।"**

**मोक्ष**—पुरूषाथे चतुष्ठम अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में मोक्ष का स्थान अत्यन्तम है। जीव का अन्तिम काव्य यही है। मोक्ष से अभिप्रेत 84 लाख योनियों में आवागमन के चक्र तदा तद्—तद् योनियों के श्लेष से मुक्ति अथवा छुटकारा पाना। इसके महत्व का प्रतिपादन गोस्वामी जी ने मानस के अरण्य काण्ड में इस प्रकार किया है—

**"त्रटते ज्ञानान्नमुक्तिः"**

आगे चलकर उत्तरकाण्ड में गोस्वामी जी ने ज्ञान मार्ग को अतीव कठिन बताते हुए लिखा है—"ज्ञान कौ पन्थ कृपाण कै धारा।" हाँ यदि सावधानीपूर्वक इस मार्ग पर चला जाए तो मुक्ति सुनिश्चित है यह मोक्ष अत्यन्त दुर्लभ है परन्तु भगवत् भक्ति से सहज सुलभ है। जिस प्रकार जल बिना पृथ्वी के आधार पर नहीं टिका सकता। उसी प्रकार मोक्षसुख भी प्रभु भक्ति छोड़कर नहीं रह सकता। भगवान के भक्त इसीलिए मुक्ति का तिरस्कार करके भक्ति की साधना में निमग्न रहते हैं। श्रीमद् भागवत में भगवान कहते हैं कि मैं मुक्ति तो अनायास दे देता हूँ परन्तु भक्ति नहीं—

**'मुक्तिं ददाति कहिं चित्स्मन न तु भक्ति योगम्।'** तुलसीदास जी भी इस दुर्लभ वस्तु मोक्ष के लिए अनुराग रखते थे यह निर्विवाद है।

उपर्युक्त दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन करने पर विदित होता है कि तुलसीदास जी पर अद्वैतवाद तथा विशिष्टाद्वैतवाद दोनों का प्रभाव था, परन्तु उन्हें किसी विशेष सम्प्रदाय से सम्पृक्त न कर यह मानना अधिक संगत होगा कि वे उस राम भक्ति पथ के अनुयायी थे जो ज्ञान और निर्गुण का विरोधी नहीं था। वे समन्वयात्मक दृष्टिकोण रखते थे और शिव तथा राम के अभेद द्वारा सामाजिक विरोध को दूर हटा, सगुण की लीलाओं के द्वारा ऐसी शिक्षा समाज को देना चाहते थे, जिससे यह लोक और परलोक दोनों ही उसके लिए सुखद बन सकें। उन्होंने अपने मत अथवा पथ के सम्बन्ध में अपना तात्विक मन्तव्य इस प्रकार दिया है—

**"श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ संयुत विरति विवेक।"**

# अध्याय 5
# युगीन परिस्थितियाँ

## तुलसीदास की युगीन परिस्थितियाँ

### विषय प्रवेश

साहित्य मानव समाज की भावात्मक स्थिति एवं गतिशील चेतना की अभिव्यक्ति है। अतः उसके प्रेरक तत्व के रूप में मनुष्य के परिवेश का बहुत महत्व है। किसी साहित्यकार या काल के साहित्य को समझने के लिए उस परिवेश को ठीक प्रकार से समझना अत्यन्त आवश्यक होता है। इसी दृष्टि से तुलसी के साहित्य को समझने के लिए तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थितियों को जानना अपेक्षित है।

### राजनीतिक स्थिति

दिल्ली के सिंहासन पर सन् 1526–1530 ई० बाबर; सन् 1530 से 1539 ई० तथा 1555–1556 ई० तक हूमायुँ, सन् 1556 से 1605 ई० तक अकबर सन् 1605 से 1628 ई० तक जहाँगीर तथा 1628 से 1658 ई० तक शाहजहाँ आदि मुगल सम्राटों ने शासन किया। सन् 1539 से लेकर 1555 तक दिल्ली का सिंहासन शेरशाह सूरी और इस्लामशाह सूरी आदि सूरी–वंश के शासकों के आधिपत्य में रहा। मुगल साम्राज्य के बीजारोपण के समय दिल्ली का साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो चुका था, बड़े–बड़े सूबों के पृथक पृथक राजा थे, छोटे–छोटे जिले यहां तक कि प्रत्येक शहर या किले का स्वामित्व किसी बड़े सरदार या घराने के हाथों में था। इनके ऊपर कोई अधिकारी न था। मध्यप्रदेश में राजपूती वीरता का ह्रास हो चुका था और मुसलमान भारत में शासक वर्ग के रूप में बस गये थे। जो प्रदेश हिन्दुओं के अधिकार में थे वे भी अपनी सत्ता बनाये रखने में प्रयत्नशील थे। राजनीति के अनिश्चय के इस काल में हिन्दू जनता विशेष आतंकित थी। मुगलों के शासनकाल से पहले उत्तरी भारत में अत्याचारी, सत्तालोलुप तथा घोर साम्प्रदायिक दास, खिलजी, तुगलक, सैयद और लोदी वंशों के पठान शासक दिल्ली के सिंहासन पर आसीन रह चुके थे। वस्तुतः उनके राज्य का आदर्श इस्लामी कानूनों पर आधारित था। अतः उल्माओं की प्रेरणा से मुस्लिम शासकों ने या तो हिन्दुओं को इस्लाम स्वीकार करने के लिए विवश किया या उन्हें मौत के घाट उतारने का यत्न किया। बाबर अन्य धर्मावलम्बियों के प्रति अपने समय के किसी भी कट्टर सुन्नी मुसलमान से अधिक उदार नहीं था।

बाबर, हुमायूँ एवं अकबर आदि ने अपने राज्य विस्तार के सन्दर्भ में राजपूतों से लोहा लिया। भारत में मुगल साम्राज्य के वास्तविक संस्थापक अकबर को वस्तुतः हिन्दुस्तान को अपने आधिपत्य में लाने के लिए बीस वर्ष तक भीषण संघर्ष करना पड़ा। अकबर के प्रयत्नों से कितने ही हिन्दू राजाओं ने उसका आधिपत्य स्वीकार किया। आमेर के राजा बिहारीमल अकबर के दरबार में आये। अपनी कन्या को सहर्ष उन्होंने राजा को भेंट के रूप में प्रस्तुत किया। सम्राट ने उसे स्वीकार किया। उससे पहले भी उनके हरम में कई राजपूत नारियाँ, रानियों के रूप में विद्यमान थीं। अकबर का हरम और भी कितनी ही हिन्दू नारियों से भरा था। जहाँगीर के हरम में भी राजा उदयसिंह, राजा राय सिंह, मानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र जगतसिंह एवं रामचन्द्र बुन्देला आदि की बेटियां पहुँच गई थीं। इससे स्पष्ट है कि हिन्दुओं की विवशता उस समय परिस्थितियों के कैसे चक्र में पड़ी हुई थी। मेवाड का शासक राणा प्रताप इसका अपवाद था। उसने अपने पराक्रम एवं देशभक्ति के कारण भारत के मुख–मण्डल को सदा के लिए आलोक से मण्डित किया। दमनकारी यवन शासकों की अनीति और साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को लक्षित करते हुए तुलसी ने रावण के दुराचार के सम्बन्ध में कहा है–

**"भुजबल बिस्व बस्य करि, राखेंसि कोउ न सुतन्त्र। मण्डलोक मनि रावन राज करहु निज मन्त्र।।"**

रावण ने अपने भुजबल से अनेक जातियों को कुमारियों और अन्य उत्तम स्त्रियों को जीतकर अपनी पत्नी बना लिया था। इसका वर्णन करते हुए तुलसी ने मुगल राजाओं के अन्तपुर की ओर निगुढ़ संकेत किया है–

**"देव जच्छ गन्धर्व नर किंनर नाग कुमारी। जीत बरी निज बाहुबल बहु सुन्दर नर नारी।।"**

कवितावली में तुलसीदास ने अनेक दोहों में तत्कालीन शासकों की अनीतिपूर्ण शासन पद्धति, प्रजा की दुर्दशा और राजकर्मचारियों की कुटिलता का विशद वर्णन किया है। 'रामचरितमानस' और 'विनय पत्रिका' में आए हुए कलियुग वर्णन में भी तुलसी ने तत्कालीन राजनीतिक दुर्दशा का चित्र प्रस्तुत किया है–

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल की पूर्व पीठिका का विश्लेषण करते हुये कहा है—"मुगल शासकों ने पूर्ववर्ती सुल्तानों की शासकीय कमियों से सजग होकर उनसे अपना बचाव किया और शासन व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया। बाबर की योग्यता और सजगता ने सफल बनाने में उसे पर्याप्त सहायता पहुँचायी। वैसे मुगलों में अकबर का राज्यकाल सभी दृष्टियों से सर्वोपरि रहा है और उसे अभीष्ट को पाने में बहुत कुछ सफलता भी मिली। उसने भरसक पक्षपात रहित बने रहने का यत्न किया। उनके शासनकाल में नागरिकों को सेना की मनसबदारी पाने तक की छूट सुलभ थी। फौजदारी मुकद्मों का फैसला काजी लोग किया करते थे किन्तु न्याय का सर्वोच्च अधिकार स्वयं उसकी सत्ता में निहित था। उसकी सेना तत्कालीन सभी उपकरणों से युक्त थी। सम्राट अपने अधिकारों का दुरुपयोग कभी नहीं करता था। उसने शेरशाह की योजनाओं से भी लाभ उठाया था। जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी बहुत कुछ अकबर का अनुसरण किया। अलाउद्दीन खिलजी द्वारा प्रस्तुत की गयी और शेरशाह द्वारा पुष्ट की गई सैन्य योजना तथा यातायात की सुव्यवस्था को अकबर ने भी किसी न किसी रूप में अपना लिया। शेरशाह द्वारा खेतों को नापकर भी युक्ति संगत नियमों द्वारा मालगुजारी का निर्धारण किया। जमा, कर लगाते समय सावधानी बरतना और पक्षपात रहित होकर कर की वसूली करना उसकी सफलता में सहायक बने। अकबर ने टोडरमल की सहायता से भू–व्यवस्था में आवश्यक संशोधन किए और ऐसी व्यवस्था ला दी कि वह नई लगने के साथ लोकप्रिय भी बन गई। राज्य कर के रूप में पूरी आय का तृतीयांश लिया जाने लगा और दसवर्षीय योजना के अनुसार लगान की सालाना वसूली की जाने लगी। जजिया और तीर्थ कर उठा दिये गए, जिसका हिन्दू जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। अकबर के शासनकाल में तांबे, चाँदी ओर सोने के सिक्कों का प्रचलन हुआ। टकसालों का सुधार अकबर के शासनकाल में ही सम्भव हुआ।" शाहजहाँ ने बिना समझे बूझे लगान की रकम बढ़ाने के कारण अपने दीवान सादुल्ला खाँ को बुरी तरह फटकारा था और कर वसूल करने वाले फौजदार को पद से हटा दिया था।

लेकिन इस सत्य को अस्वीकार नहीं कर सकते कि मुगलों का शासन प्रकृतितः सैनिक शासन था। इसमें राजसत्ता की एक तन्त्र केन्द्रीयता अत्यधिक थी। समस्त शासन प्रणाली का सूत्र व्यक्ति विशेष में होने के कारण उसका लक्ष्य नितान्त संकीर्ण और भौतिक था। आधुनिक युग की भाँति न्याय की व्यवस्था नहीं थी। यहाँ की जनता को रंच मात्र का भी स्थानीय अधिकार नहीं था। सभी प्रकार के सामाजिक कार्यों में प्रमुखता मुगल शासन प्रणाली की मुख्य प्रवृति होने के कारण तुलसी के समकालीन समाज के लिए अवनति के गर्त का द्वारा उन्मुक्त था।

## सामाजिक स्थिति

राजनीतिक और सामाजिक विवशताओं के कारण हिन्दुओं में बाल विवाह भी प्रचलित था। मुसलमानों के प्रभाव से उच्च स्तरीय हिन्दुओं में भी बहु विवाह तथा पर्दा–प्रथा का प्रचलन था। हिन्दू स्त्रियों में पर्दा–प्रथा के दो कारण थे–एक तो शासक वर्ग की स्त्रियों के अनुकरण की प्रवृत्ति, दूसरे अपनी सामाजिक मर्यादा और शील की रक्षा के लिए पर्दे का प्रयोग सुरक्षा साधना के रूप में करना। भारतीय समाज जिन तत्वों के ताने–बाने के साथ निर्मित हुआ था उनमें वर्णों और जातियों का विशिष्ट स्थान है। समय–समय पर विभिन्न विश्वासों रीति–रस्मों और आचार–विचार वाले शक, हूण, यवन आदि भारत में आये। आरम्भ में विजित और विजेता में जो संघर्ष विद्यमान रहता था वह कालान्तर में सामंजस्य और समन्वय की भावना के कारण लुप्त हो जाता था। किन्तु इस्लाम धर्म के अनुयायियों में आस्था विश्वास, आचार–विचार, और जीवन प्रणाली की कुछ ऐसी विशेषताएँ थीं जो आपसी मेल मिलाप में बाधक थीं। इनसे सामंजस्य एवं समन्वय की प्रक्रिया में तीव्रता न आ पायी। फलस्वरूप तीनों के पक्षों के बीच परस्पर सन्देह, जुगुइत्सा और पवित्रता और अपवित्रता–जनित भेदभाव बलवान हो उठा। जो इस्लाम भ्रातृभाव का सन्देश लेकर चला था, उसका द्वार कुछ शर्तों पर सब के लिए खुला था। हिन्दुओं ने धर्म परिवर्तन की शास्त्रीय व्यवस्था नहीं थी। अतः धर्म परिवर्तन उनके संस्कारों के विरूद्ध था। इस बीच धर्म–परिवर्तन के दो उदाहरण मिलते हैं, वे धर्म-प्रेरित न होकर स्वार्थ या बलात्कार के परिणाम थे।

हिन्दू समाज में वर्णाश्रम धर्म का उचित पालन नहीं हो पाता था। फलस्वरूप जातियों–उपजातियों की संख्या में वृद्धि हो गई थी। छूआछूत के नियम इतने कठोर थे कि शुद्रादि जातियों में परस्पर भेदभाव बरता जाने लगा था। भारतीय मुस्लिम समाज की अवस्था इस सन्दर्भ में हिन्दुओं से अधिक भिन्न न थी। सैयद, शेख, मुगल, पठानों में तथा सुन्नी एवं शिया सम्प्रदायों में हिन्दू संस्कारों से युक्त धर्मान्तिरित मुसलमानों में आपसी भेद–भाव था। मुस्लिम महिलाओं की स्थिति हिन्दू स्त्रियों से अधिक भिन्न न थी। बहु विवाह प्रथा के कारण हरमों में इनकी दुर्गति हुआ करती थी। फिर भी स्त्री शिक्षा की व्यवस्था थी और कला साहित्य के निर्माण में स्त्रियों का योगदान रहा करता था।

तत्कालीन भारतीय समाज सुविधा सम्पन्न और असुविधा ग्रस्त वर्गों में विभाजित था। सुल्तान, राजा–महाराजा, सामन्त,

सेठ–साहूकार एवं अमीर प्रथम वर्ग में आते थे जो सूती और रेशमी वस्त्र पहनते थे और बहुमूल्य आभूषणों को पहनते थे। द्वितीय वर्ग में किसान, मजदूर, सैनिक और घरेलू उद्योग–धन्धों में लगी सामान्य जनता आती थी, जिन्हें न तो कोई स्वेच्छापूर्वक काम करने का अवसर प्राप्त था न ही यथेष्ट पारिश्रमिक मिला करता था। गोस्वामी तुलसीदास कृत 'कवितावली' की निम्न पंक्तियों में तदयुगीन परिस्थिति का सशक्त चित्रण द्रष्टव्य हैं–

**"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भली, बनिक को न बनिज न चाकर को चाकरी।**
**जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस, कहैं एक एकन सों कहाँ जाई, का करी।।"**

**आर्थिक स्थिति**—मुगलों के शासनकाल में सामान्य जनता की आर्थिक स्थिति दयनीय थी। उच्च वर्ग के लोग महलों में निवास करते थे जबकि निम्न वर्ग के लोग झोपड़ियों में रहते थे। उच्च अधिकारियों को अकबर के शासन काल में जितना वेतन मिलता था उतना आज भी भारत में और विश्व में कहीं नहीं दिया जाता। लेकिन इसके विपरीत किसी विशेष योग्यता से रहित नौकर को लगभग डेढ़ रूपये माहवार मिलता था और पश्चिमी तट के क्षेत्र में शायद दो रूपये।

डॉ० सत्यप्रकाश संगर ने भी लिखा है कि–"किसानों की दुर्दशा मजदूरों से भी बढ़कर थी। गरीब किसानों से लगान कठोरता से वसूल किया जाता था और जब वे नहीं दे पाते थे तो उनकी स्त्रियों और बच्चों को गुलाम बना लिया जाता था।" मुगल काल में अनेक बार अकाल पड़े। बच्चे एक–एक रूपये से भी कम दाम पर बेच दिये जाते थे। उस युग में गुलामी प्रथा प्रचलित थी। तत्कालीन स्मृतियों के अनुसार दासों की चार कोटियां थीं–जन्मजात, क्रोत, अपहृत या कहीं से प्राप्त, अपने यहां उत्पन्न। जो किसान राजस्व अदा नहीं कर पाते थे उन्हें परिवार सहित दासता की बेड़ी पहना दी जाती थी। अतः लगान वसूल करने वाले छोटे–छोटे कर्मचारी लुटेरों की भांति दीन किसानों को नोचते खसोटते थे।

## धार्मिक स्थिति

इस काल में मुसलमान प्रायः देश के शासक वर्ग के रूप में बस चुके थे। हिन्दू धर्म पर इस्लाम का जबरदस्त आक्रमण हो रहा था। इससे हिन्दू जाति की कठोरता एवं संकीर्णता में वृद्धि हुई। इस कठोरता से पीड़ित वर्ग ने एक नवीन मत की स्थापना की जिसका रूप इस उक्ति में निहित है–

**"जाति पांति पूछैं नहि कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।"**

एक और अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए तद्युगीन ब्राह्मण अन्धविश्वासों एवं अनाचारों का प्रचार कर रहे थे तो दूसरा ओर बौद्ध–सिद्ध और नाथ योगी भ्रष्ट होकर अपनी कामेच्छा की पूर्ति के यत्नों में लगे थे। ऐसे ही समय प्राचीन भागवत धर्म के नवोद्भावाते, भक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य एवं उनके अनुयायी तथा वैष्णव सम्प्रदाय के अन्यान्य अधिष्ठाय सर्वश्री विष्णुस्वामी, वल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ, हितहरिवंश आदि ने अपने प्रयत्नों से हिन्दू धर्म को मिटाने से रोका। इससे प्राचीन वैष्णव–भक्ति के अवतारवाद के आधार पर रामभक्ति और कृष्णभक्ति का नवीन रूप में विकास हुआ। दक्षिण भारत में उस समय वैष्णव भक्ति आन्दोलन को साथ–साथ शैव भक्ति आन्दोलन का भी प्रचार एवं प्रसार हो रहा था। हिन्दू जाति के संकीर्ण घेरे को तोड़कर एक ऐसे सामान्य भक्ति मार्ग की आवश्यकता को कुछ लोगों ने महसूस किया जिसे हिन्दू, मुसलमान, छूत–अछूत, ऊँच नीच सभी अपना सकें। यही आगे चलकर निर्गुण सन्त मत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस्लाम धर्म और हिन्दू में सामंजस्य स्थापित करने तथा उन दोनों धर्मों के मतभेद की खाई पाटने का सशक्त प्रयत्न तब सन्त कबीर एवं जायसी आदि ने किया।

अपने युगीन समाज की धार्मिक दुर्दशा का जो चित्रण तुलसी ने किया है उससे पता चलता है कि देवस्थल एवं तीर्थस्थल नाना प्रकार के अनाचार एवं छदम् के अड्डे थे, उनकी दशा चिन्तनीय थी–

**"सूर सदननि तीरथ पुरिन, निपट कुचालि कुसाज। मनहु मवासे मारि कलि, राजत सहित समाज।"**[1]

ब्राह्मण अपने कर्तव्यों को भूलकर नाना प्रकार के राग–द्वेषों के केन्द्र बन गए थे। उनकी वृद्धि पंकिल हो गयी थी–

**"प्रभु के वचन वेद–बुध–सम्मत मम मूरति महादेव भई है। तिन्हकी मति रिस–राग–मोह–मद–लोभ–लालची लीलिलई है।"**[1]

* * *** "द्विज श्रुति–बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान नियम अनुसासन।"**[2]

विविध पन्थों के प्रसार के कारण लोग प्राचीन वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा से दूर होते जा रहे थे, वेद शास्त्रों के निन्दको की संख्या उतरोत्तर बढ़ रही थी–

**"दमिन निज मत कलपि करि प्रकट किये बहु पंथ।"**[3] * * *

**"बरन–धरम नहिं आस्त्रम चारी। श्रुति–विरोध–रत सब नर नारी।।"**[4]

तत्कालीन समाज में योगियों को प्राप्त विशेष प्रतिष्ठा तथा योग जगाने आकांक्षा का चित्रण तुलसी ने निम्न पंक्तियों में किया है—

**"गोरथ जगायो जोग, भगति भगायो लोग, निगम नियोग ते सो कलि ही घरो सो है।"**[5]

* * * **"जाके नख अरु जटा विलासा।**

**सोइ तापस प्रसिद्ध कलि काला।।"**[6] * * *

**"असुभ वेष, भूषन धरे भच्छायच्छ जे खाहिं। तेह जोगी तेह सिद्ध नर पूजित कलिजुग माहिं।।"**[7]

सूफियों एवं कबीर पंथियों द्वारा हिन्दू धर्म पर किए जा रहे आघातों का चित्रण तुलसी ने किया है।

**"साखी सबदी दोहर, कहि किहनी उपखान। भगति निरूपहिं भगत कलि निंदहिं वेद–पुरान।।"**[7]

## सांस्कृतिक स्थिति

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार भक्तिकालीन सांस्कृतिक चेतना को सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति सार्वभौम सत्य के आधार पर प्रतिष्ठित धार्मिक भावना और दार्शनिक चिन्ताधारा के माध्यम से हुई है। कला, शिल्प, साहित्य और संगीत इन्हीं की अनुषंगिक उपलब्धियाँ हैं। समन्वय साधना इस युगीन भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख प्रवृति है। शैव एवं वैष्णव धर्म साधना के बीच समन्वय, बौद्ध जैन एवं हिन्दुओं के विश्वासों में समन्वय, हिन्दू एवं इस्लाम धर्मों के बीच समन्वय के प्रयास इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं। अन्याय क्षेत्रों की भाँति मध्यकालीन कला क्षेत्र में भी समन्वय की प्रवृत्ति जाने अनजाने काम कर रही थी और इस प्रकार भारतीय कला में एक नया मोड़ आ गया था। ताजमहल का निर्माण, राजस्थानी एवं ईरानी चित्रकला शैलियों के मेल–जोल से विकसित मुगल चित्रकला शैली, सूफियों की कव्वालियाँ तानसेन एवं बैजूबावरा आदि द्वारा प्रवर्तित गायन पद्धति आदि कला क्षेत्र में प्रस्तुत किए गए समन्वय भावना के कतिपय उदाहरण हैं।

## साहित्यिक स्थिति

इस काल में मुक्तक काव्य, खण्ड काव्य एवं प्रबन्ध काव्य लिखे गये। भाषा के क्षेत्र में अवधी एवं ब्रज दोनों भाषाओं में विपुल साहित्य का सृजन हुआ। मध्यकालीन कवियों ने तत्कालीन विषम राजनीतिक स्थिति के प्रति अपनी आक्रोशपूर्ण पीड़ा की अभिव्यक्ति अपने काव्य में की है। इस सन्दर्भ में विद्यापति, कुम्भनदास, दामोदरदास (सेवक जी), हरिराम व्यास और तुलसीदास उल्लेखनीय हैं।

सगुणोपासक साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दू समाज को विधत्य एवं उत्पीड़न से बचाने का प्रयास किया। सगुणोपासकों की समन्वय की भावना मुख्यतः हिन्दू समाज के विभिन्न घटकों को ही संगठित करने तक ही सीमित थी। निर्गुणोपासकों ने अपने दृष्टिकोण की व्यापकता के कारण हिन्दु और मुसलमान दोनों धर्मों के लोगों को संगठित करने का प्रयास किया। उन्होंने उदात्त मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा द्वारा जाति, सम्प्रदाय और धर्म के भेद को मिटाने और मनुष्य यात्र को समन्वय के सूत्र में गूंथने की चेष्टा की। मुसलमानों को भी हिन्दुओं की ही भाँति भारतीय समाज का अभिन्न अंग मान लेने के कारण निर्गुणोपासकों ने अपने साहित्य में मुसलमान शासकों के अत्याचारों के प्रति सगुण भक्तिधारा के कवियों की भाँति तीखी प्रतिक्रिया प्रकट नहीं की। उन्होंने दोनों की वर्गों की दुर्बलताओं पर प्रहार करके पूरे समाज को सुधारने की चेष्टा की और सैद्धान्तिक स्तर पर ही हिंसा, दुराचार, पाप और पाखण्ड के विरूद्ध आक्रोश व्यक्त किया।

आदिकाल की भांति ही भक्तिकाल में भी कुछ कवियों को राज्याश्रय प्राप्त हुआ। इस सन्दर्भ में अकबरी दरबार के महापात्र नरहरि बन्दीजन, महाराज टोडरमल, महाराज बीरबल, गंग मनोहर कवि केशवदास, होलराय, रहीम खानखाना, पुहकर कवि, सैयद मुबारक अली आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी रचनाओं में प्रधानतया श्रृंगार, वीररस एवं नीति विषयक बातों की चर्चा हैं। अबुलफजल और फैजी अकबर के समय के उत्कृष्ठ विद्वान थे। फारसी में अबुलफजल ने 'आइने अकबरी' एवं 'अकबरनामा' आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया था। उस समय राजाज्ञा से महाभारत, रामायण, पंचतन्त्र आदि ग्रन्थ फारसी में अनुदित हुए। अकबर के दरबार के हिन्दी के कवियों को राजाश्रय मिलने के कारण छोटे, बड़े, राजा, अमीर सभी हिन्दी काव्य से प्रेम करने लगे।

## निष्कर्ष

तुलसी की समकालीन परिस्थितियों पर प्रस्तुत इस विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि—"1206 ई० में दिल्ली में मुस्लिम सल्तनत की स्थापना ने भारतीय धर्म और संस्कृति के बहुत से मूल्यों पर मान्यताओं को कड़ी चुनौती दी। निराशा के इन घुमड़ते हुए बादलों में भक्ति का आन्दोलन बिजली की तरह कौंध गया। धर्म और संस्कृति का समस्त सृजनात्मक शक्ति इसके माध्यम से विकसित और प्रसारित हुई और देश के कोने–कोने में नव चेतना का स्फुरण और स्पन्दन हो गया है।"

इन परिस्थितियों में जिस नवीन भक्ति साहित्य का आविर्भाव हुआ, उसका वर्णन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में इस प्रकार है—"नया साहित्य मनुष्य जीवन के एक निश्चित लक्ष्य और आदर्शों को लेकर चला। यह लक्ष्य है भगवद् भक्ति आदर्श के शुद्ध सात्विक जीवन और साधन हैं। भगवान के निर्मल चरित्र और सरल लीलाओं का गान। इस साहित्य में प्रेरणा देने वाला तत्व भक्ति है। इसलिए यह साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य में सब प्रकार से भिन्न है।"

# अध्याय 6

# तुलसीदास की सामाजिक चेतना

संत गोस्वामी तुलसीदास जी जिस युग में अवतरित हुए थे वह युग जघन्य अत्याचारों, घोर अनाचारों से व्याप्त था। अकबर जहाँगीर जैसे कट्टर मुस्लिम शासकों ने भारतीय जनता को अपनी तलवारों के बल पर मुस्लिम धर्म स्वीकार करने को बाध्य किया था। कट्टर हिन्दुओं के प्रति उनका दृष्टिकोण बर्बरपूर्ण था। अतः धर्म, राजनीति, समाज, परिवार, आचार–विचार व्यवहार में विश्रृंखलता आने लगी थी। जाँति–पाँति का भेदभाव बढ़ने लगा था। अनेक कुरीतियाँ कुवासनाएँ जन्म ले रही थीं जिन्होंने हिन्दुत्व की व्यवस्था और धर्म को छिन्न–भिन्न कर दिया था। सामाजिक मर्यादा, मान–सम्मान व सम्बन्धों में विसंगतियाँ उत्पन्न हो गयी थीं। ऐसे युग में सामाजिक एकता को एक सूत्र में पिरोने के लिए महामानव की आवश्यकता की पूर्ति संत शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी में निहित थी। युग की प्रताड़ना को झेलते हुए जगह–जगह भ्रमण करते हुए प्रत्येक कोने को देखा था कलियुगीन आवाज को आत्मसात् कर अभिव्यक्त के साथ वर्णित किया–

**भए वरन संकर भिन्न सेतु सब लोग। करहिं पाप पावहिं भय रूज सोक वियोग।।**

इस युग में सामाजिक वर्ण संकट, मर्यादाहीनता, पाप, भय, रोग, शोक, वियोग आदि अनेकों कष्टों को भोगना पड़ता था। काम–वासना में लिप्त सामाजिक आचारण अनौचित्यपूर्ण हो चुका था।

**नारि विवस नर सकल गोसाईं। नाचहि नट मर्कट की नाईं।।**

कामनी के कामचेष्टाओं पर समाज नाचता था निम्नवर्ग ब्राह्मणों पर राज्य करते थे। जैसे ही उनकी पत्नी मर जाती सम्पूण सम्पत्ति नष्ट हो जाती थी। वे सिर मुँडाकर ढोंगी सन्यासी बन जाते थे और आचारहीन हो समाज को भ्रष्ट कर रहे थे। संत तुलसीदास व समान सजग कलाकार के लिए समाज का यथार्थ चित्रण करना पर्याप्त नहीं था, बल्कि उन्होंने समाज को नूतन दृष्टि दी थी। उसका उल्लेख उत्तम समाज के रूप में किस प्रकार होना चाहिए ?

**(1) समाज का ढांचा**—'श्रीरामचरितमानस' के माध्यम से संत गोस्वामी तुलसीदास जी ने समाज को नया रूप दिया जिसका विवेचन उन्होंने राम–राज्य की परिकल्पना से किया है वे कहते हैं–

**वरनाश्रम निज–निज धरम निरत वेद पथ लौग। चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय् सोक न रोग।।**

समाज को चार वर्णों में विभक्त होना चाहिए–ब्राह्मण, क्षत्रिए, वैश्य और शूद्र। इनके अपने–अपने कार्य निर्धारित ग्रन्थों में निहित हैं। मानव–जीवन को चार आश्रमों–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास में विषक्त कर सामाजिक मर्यादा रखनी चाहिए। इसी आधार पर समाज सुखी रहेगा, उन्हें किसी तरह की भी भय, रोग, शोक व्याप्त न होगा। न कोई किसी से वैर करे, न लडाई झगड़ा करे–

**वैर न विग्रह आस न त्रासा।**

जैसे समुद्र अपनी मर्यादा में रहता है उसी प्रकार सभी मर्यादित और पर्वत, वृक्ष, पृथ्वी नदी के समान परोपकारी रहें, छलकपट दंभ, मद, क्रोध, लोभ कामादि दुर्गुण से दूर रहें। समस्त प्रजा पंडित, ज्ञानी व संतों का सम्मान करें–

**सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।**

राम के राज्य का यही सामाजिक ढांचा था। वहाँ न कोई शोषक था और न ही किसी का शोषण होता था। न पीड़ित था न पीड़ा देने वाला था। समाज धन्य धान्य से परिपूर्ण था, प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध थीं। 'उत्तरकाण्ड' में तुलसीदास जी वर्णित कर कहते हैं–

**बाजार रुचिर न बरइ बरनत वस्तु बिनु गथ पाइए। जहँ भूप राम निवास तहँ की सम्पदा किमि गाइए।।**

**बैठे समाज सराफ बनिक् अनेक मनहुँ कुबेर ते। सब सुखी सब सच्चरित सुन्दर नारि नर सिसु जरउ जे।।**

अयोध्या का बाजार इतना सुन्दर (रमणिक) है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। वहाँ सभी वस्तुएँ बिना मूल्य मिल जाती हैं। जहाँ का राजा स्वयं लक्ष्मीपति हो वहाँ के धन का वर्णन करना कठिन है।

कपड़े का व्यापारी (बजाज), सोने चाँदी का व्यापारी (सर्राफ), अन्य सामान का विक्रेता (वणिक्) इतनी समृद्धिता के साथ अपनी–अपनी दुकानों पर बैठे हैं मानो कुबेर हों। स्त्री, पुरूष, बच्चे, बूढ़े, जो भी वहाँ जाते हैं, सभी सुखी होकर आते हैं। उस समाज

में सभी उदार, परोपकारी हैं, नारी पतिव्रताएं हैं पुरूष सदाचारी हैं। अतः सामाजिक स्थिति, उसका ढांचा इतना मनोरम है कि वहाँ का राजा किसी भी प्रजा–जन को दण्डित न कर सके। राम–राज्य के मार्मिक चित्रण की प्रस्तुति है–

**दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज। जीतहु मनहिं सुनिए अस रामचन्द्र के राज।।**

दण्ड केवल सन्यासियों के हाथ में था, अन्यथा राम के राज्य में किसी को दण्डित नहीं किया जाता था। भेदभाव केवल नृत्य कलाकारों तक ही सीमित था समाज में नहीं। सामाजिक ढांचा इतना मनोरम, सुखद व कल्याणकारी था जहाँ वैर–भाव, लड़ाई–झगड़ा व भय से मुक्त था–

**वैर न विग्रह आस न त्रास। सुखमय तहि सदा सब उनासा।।**

समाज में चारों दिशाओं में सुख–शान्ति व्याप्त थी।

**(2) राजा की योग्यता और कर्तव्य**—संत गोस्वामी तुलसीदास जी ने मुस्लिम शासकों के अत्याचारों व उत्पीड़न की असहाय वेदना को समझा था अतः उन्होंने सामाजिक मर्यादा बनाए रखने के लिए ऐसे राजा की परिकल्पना की थी कि जो शक्ति, नीति एवं ऐश्वर्य सम्पन्न, धर्मात्मा, प्रतापी व शीलवान हो–

**धरम धुरंधर नीति निधाना। तेज प्रताप सील बलवाना।।**

राजा प्रजा का पालन करता, संरक्षक, शासन विधि को वेद के अनुसार चलाने वाला सदाचारी, नीति निपुण कर्तव्यपालक विद्वानों, धर्मात्मा, ब्राह्मणों व ऋषि–मुनियों का सम्मान करने वाला हो। जिस राजा के राज्य में यति–मुनि कष्ट पाते हैं। वह बिना अग्नि के ही भस्म हो जाता है। जिस राजा के राज्य में प्रजा दुःखित रहती है वह नरक का भागी होता है। दोहावली में अच्छे–बुरे राजाओं की विशेषताओं का वर्णन है। अनीति को अपने वाला राजा पतित हो जाता है। सुविचारी राजा किसान के समान अपनी प्रजा रुपी खेती का पालन–पोषण करके उससे फल प्राप्त करता है, उत्तम राजा सूर्य, माली व किसान के समान होता है। उदार राजा दीन हीन व अनाथों की पूर्णतया देखरेख करता है। श्रेष्ठ राजा के लिए नीति का उल्लंघन करना अनौचित्यपूर्ण है। राजा प्रजा पर उचित कर लगाकर उसकी भलाई में धन समर्पित करता है वनगमन के समय राम ने भरत को यह संदेश दिया कि वे राजा की नीति का पालन करते हुए, 'मनसा वाचा कर्मणा' मन, वचन और कर्म से प्रजा के हितार्थ कार्य करें–

**कहत संदेश भरत से आए।। नीति न तजिअ रामपदु पाए। पालेहु प्रजहिं करम मन बानी।।**

श्रीराम ने अपनी प्रजा के लिए तन, मन धन समर्पित किया था। वे अपने कर्तव्य और धर्म का पालन करते थे–

**चलहिं स्वधर्म निरज श्रुति नीति।**

सभी प्रजा जन अपने–अपने धर्म के अनुरूप चलते थे कोई भी पाप नहीं करता था। सभी में प्रेम व्याप्त था इतनी ही नहीं, रामराज्य में प्रकृति सदैव उनका साथ देती थी खेती से समय पर अन्न की उपलब्धता व वृक्ष सदैव फल–फूलों से परिपूर्ण थे। पशु–पक्षी निर्भय होकर भ्रमण करते थे, यही श्रीराम का पुण्य प्रताप था श्रीराम के विषय में गोस्वामी तुलसीदास जी वर्णित करते हुए कहते हैं–

**श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर।।**

इस प्रकार राजायादि प्रजा का रक्षक, पालनकर्ता, हितैषी हो तो प्रजा सदा सुख [illegible] है।

**(3) आदर्श प्रजा**—तुलसी युगीन सामाजिक मर्यादा भ्रष्ट हो गयी है, प्रजा ने अपना [illegible] पथ छोड़ दिया है सन्यासी ढोंगी व धार्मिक परम्पराय नष्ट हो चुकी हैं अतः संत गोस्वामी तुलसीदासजी ने ऐसी प्रजा की परिकल्पना की थी कि जो [illegible] अनुरूप में अपने कर्तव्य पथ पर अग्रसर रहें, जहाँ परस्पर प्रेम तथा परोपकारी भावनाएँ निहित [illegible] चार वर्णों में विभक्त [illegible] प्रत्येक व्यक्ति का जीवन चार आश्रम में व्यतीत होता था। राजा यदि प्रजा के लिए समर्पित [illegible] भी राजा के प्रति [illegible] भाव से ओत–प्रोत थी राम वन–गमन दृश्य देखकर समस्त प्रजा जन अश्रुपूरित हो उनके [illegible] दी थीं। श्रीराम के राज्याभिषक के समय संत तुलसीदास जी वर्णित कर कहते हैं–

**राम राज्य बैठे त्रैलोका। हरषित भए गये सब सोका।।**

प्रजा पाप मुक्त थी धर्म अपने चारों चरण–सत्य, सोच, दया, दान से सम्पूर्ण [illegible] परिपूर्ण था अर्थात् प्रजा में सत्यनिष्ठा, पवित्रता, दया की भावना व दान देने की प्रवृत्ति निहित थी–

**सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी।।**

**सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी।।**

प्रजा अहंकार रहित, धर्म में हमेशा लवलीन थी। नर–नारी बुद्धिमान, गुणवान, पंडित और ज्ञानी थे। सभी एक दूसरे के प्रति उपकारिक भावना का सम्मान, गुणी जनों का आदर करते थे। किसी में भी छल, कपट, धूर्तता आदि नहीं थी। सभी उदारवान परोपकारी, ब्राह्मणों की सेवा करते थे समाज में यह प्रथा निहित थी–

**एक नारि व्रत सब पर उपकारी। ते मन वच क्रम प्रति हितकारी।।**

पुरुष एक–पत्नी व्रती थे नारियाँ अपने पति, संतति के प्रति 'मनसावाचा कर्मणा' मन, वचन ओर कर्म से समर्पित थीं हितकारी भावना युक्त थीं। प्रजा में सुख, शान्ति, समृद्धि पूर्णतया व्याप्त थी।

**(4) मर्यादित पारिवारिक जीवन**–तुलसी युगीन मुस्लिम बादशाहों ने अनेक समस्याएं और उलझनें प्रजा के समक्ष रख दी थीं वे अपने परिवार का पालन पोषण करने में असमर्थ थे। बादशाहों का ऋण चुकाने, व पेट भरने के लिए उन्हें पुत्र -पुत्री की बिक्री करनी पड़ती थी। सामाजिक विषमता, स्वार्थ परायणता से परिवार छिन्न भिन्न होकर दुर्गति को प्राप्त था। संत गोस्वामी तुलसीदास जी ने पारिवारिक सदस्यों को मर्यादित भावना में रहकर चलने का संदेश दिया था कि समस्त जनमानस में प्रेम भावना ममत्व निरन्तर बढ़ता रहे। राम–राज्य में संयुक्त परिवारिक अनुराग–प्रेमभाव निहित था। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चारों में परस्पर प्रेम–भाव व्याप्त था। भाई–भाई के प्रति समर्पित तथा बड़ों का आदर करना, छोटों का परम् कर्तव्य व धर्म था। श्रीराम को राज्याधिकारी मानकर भरत अयोध्या का राज्य नहीं स्वीकारते हैं। लक्ष्मण अपने भाई राम का साथ वनवास के समय भी देते हैं सीता पतिव्रता धर्म की रक्षा के लिए वन को चल पड़ती है, माताएं पुत्रार्थ नहीं, अपितु पति सेवार्थ अपना जीवन व्यतीत करती हैं। परिवार स्नेह, ममत्व, अपनत्व के सूत्र में बंधे हुए हैं। माँ सीता के विषय में गोस्वामी तुलसीदास जी वर्णित कर कहते हैं–

**पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खाने सुसील विनीता।।**

यद्यपि घर में अनेक सेवक–दासियाँ थी फिर भी सीता सेवा में सदैव लगी रहती थीं।

**निजकर गृह परिचराचा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई।।**

सीता अपने हाथों से घर की सेवा (देख–रेख) व श्री राम की आज्ञा का पूर्णतया पालन करती हैं उन्हें घर में सास को माता के तुल्य ममत्व प्राप्त है, उसके देवर उसका बहुत सम्मान करते हैं। राजा दशरथ जी के चारों पुत्र प्राणों से युक्त प्रिय हैं वे अपने पिता का सम्मान करते हैं, श्रीराम हर्षित हो पिता की आज्ञा–पालन करने के लिए वन गमन करते हैं। उनका मनसा–द्वेष, मलिनता से परे है। वे कहते हैं कि–

**रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाँय पर वचन न जाई।।**

समाज में यदि परिवार मर्यादा का पालन करेगा तो इसमें संदेह नहीं कि समाज में सभी व्यक्ति सुखी, समृद्धशाली होगा समाज की मूल इकाई का व्यक्तिगत आधार परिवार है। परिवारों से समाज बनता है। पारिवारिक मर्यादाएं ही सामाजिक मर्यादा का आदर्श हैं, तुलसी सामाजिकता के आधार पर परिवार में मर्यादा, धर्म व आधार चाहते थे।

**(4) नारी की स्थिति**–सामाजिक पक्ष–नर, नारी हैं यदि एक दुःखित है तो समाज को सुखी नहीं कहा जा सकता है, तुलसी ने काम वासना से युक्त बादशाह युगीन नारी दुर्दशा के चित्रण की प्रस्तुति की है वह मात्र भोग–विलास की सामग्री थीं, उसकी समाज में न कोई आवाज थी और न ही अस्तित्व था वह पुरुषों के आनन्द का साधन थीं जो घर की चारदीवारी में बन्द करके रखी जाती थीं। पर्दे के पीछे रहकर जीना चाहती थीं। परन्तु तुलसी ने सामाजिक मर्यादा के लिए नारी को बेटी, पत्नी व माता के रूप में देखा था। सीता विवाह के लिए स्वयंवर में मनमाना वर प्राप्त करती हैं। रावण की बहन अपना प्रेमी खोजने में स्वतन्त्र थी राम पत्नीव्रत रह जीवन व्यतीत करते हैं। तुलसी बहु विवाह में विश्वास नहीं करते थे। रावण व दशरथ ने भले ही अनेकों विवाह किये हों परन्तु संत गोस्वामी तुलसीदास ने नारी को सामाजिक मर्यादा अनुसार समान व उचित स्थान दिया था। सीता श्रीराम के साथ स्वयं वन गई थीं। सीता के विषय में संत गोस्वामी तुलसीदास जी का अभिकथन है–

**जेहि विधि कृपासिंधु सुख मानई। सोई करइ श्री सेवा विधि जानई।।**

**कौसल्यादि सासु ग्रह माहीं। सेवई सबन्हिं मान मद नाहीं।।**

श्रीराम जिस प्रकार से सुख की अनुभूति करते हैं उसी प्रकार से सीता जी के क्रिया–कलाप थे। कौशल्या आदि सासें थीं जो घर में माता के समान थीं, उन्हें किसी प्रकार का मान मद नहीं था। इस प्रकार संत गोस्वामी तुलसीदास जी समाज में नारी की महत्ता की चित्रण प्रस्तुत किया था।

**लोक–मर्यादा**–समाज का कल्याण तभी सम्भव है जब वहाँ पर मर्यादा हो। समाज के सभी प्राणी अपनी मर्यादा के अर्न्तगत जीवन निर्वाह करें जहाँ कौशलाधीश मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम चन्द्र प्रजा के हितार्थ कर्तव्यनिष्ठ थे। वे निरंकुश बादशाह नहीं थे उन्होंने मानो प्रजारञ्जन का व्रत ले रखा हो, उन्होंने समाज में वर्णित कर कहा–

**सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहऊँ न कछु ममता उर आनी।।**

हे नगर वासियों। मेरी वाणी को सुनो। मैं तुम्हें मनोहृदयगत (ममता रखकर) कुछ नहीं कह रहा हूँ और न हीं कुछ अनीतिपूर्ण बातें कहता हैं–और न हीं मेरी समप्रभुता हैं आप सभी संकोच रहित होकर, भय•त्याग कर मेरी बातें ध्यान से सुनों यदि तुम्हें अच्छी लगे तो ग्रहण करो, यदि कोई अनुचित पक्ष दिखाई पड़े तो मुझसे कहो–

**जौ अनीति कछु भाषौं भाई। तो मोहि बरजहु भय बिसराई।।**

मेरे द्वारा किए गये अनीतपूर्ण कार्य भयविहीन होकर रोक देना। श्रीराम का यह कथन उनकी महानता का प्रतीक है। जिस देश व समाज में कल्याणकारी राजा हो, वह समाज कभी भी दुःखित नहीं होगा। उसके प्रति समाज का प्रत्येक वर्ग सदैव समर्पित रहेगा। यही कारण है कि राम–राज्य में समाज का प्रत्येक पक्ष सशक्त था। आर्थिक अभाव, नैतिक पतन व धार्मिक हानि नहीं थी। दैहिक, दैविक व भौतिक संताप नहीं था, सभी एक दूसरे के प्रति सम आदर भाव रखते थे। परोपकारी भावना व उदारवादी दृष्टिकोण समाहित था। नर, नारी में प्रगाढ़ ममता प्रीति निहित थी किसी प्रकार का वैमनस्य नहीं था अपार धन–सम्पदा होने की स्थिति में धन संचय करने की आवश्यकता नहीं थी। सम्पत्ति कोश किसी को अकर्मण्य नहीं बनने देता था। सभी अपने कार्य के प्रति सजग थे उससे सौभाग्य, सुख–समृद्धि व मंगल युक्त वर्षा होती थी। समाज का प्रत्येक वर्ग व व्यक्ति सुख समृद्धिशाली था। विद्वान् आलोचक के शब्दानुसार–

"समाज के सभी लोग नियमों का पालन करते थे। इसलिए दण्ड देने की जरूरत नहीं पड़ती थी। पड़ोसी और विदेशी राष्ट्रों में राम की यही समाजवादी व्यवस्था कायम हो गयी थी। इसी कारण राम को सोना रखने की जरूरत नहीं थी। रावण को समाप्त करने से पहले राम ने धनुष– बाण भले ही धारण किये हों, किन्तु लंका से लौटकर आने के बाद उसे उठाने की आवश्यकता नहीं हुई। राम राज्य एक आदर्श समाजवादी राज्य था।"

# अध्याय 7

# रामचरितमानस में लोकमंगल की चेतना

'मंगल' शब्द के विभिन्न अर्थ है—शुभ, कल्याण, सौभाग्य, कल्याणप्रद, आनन्द, प्रसन्नता, उल्लास आदि। तुलसीदास ने पार्वती मंगल' और जानकीमंगल दो कृतियों की रचना 'मंगल' शब्द को लेकर लिखी है, परन्तु यहाँ 'मंगल' शब्द उपर्युक्त अर्थों का द्योतक न होकर 'विवाह' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'मंगल' शब्द यहाँ (पार्वती मंगल और जानकी मंगल) नारी के साथ जुड़ा हुआ है। इसलिए इसका अर्थ विवाह संदर्भ में प्रयुक्त हुआ। परन्तु जब यही मंगल शब्द लोक के साथ जुड़ जाता है तो वहाँ कल्याण या आनन्द या उल्लास का अर्थ प्रदान करता है। 'लोकमंगल का अर्थ है—लोक कल्याण। तुलसीदास एक लोकनायक कवि के रूप में विख्यात हैं। उन्होंने अपने समय को अच्छी प्रकार देखा था, उसकी विषमताओं से वे पूर्णतया परिचित थे। अपने समय में मुस्लिम बादशाहो द्वारा होने वाले अत्याचारों को देखकर वे बड़े व्यथित थे। युगीन परिस्थितियाँ उनके लिए असह्य थीं क्योंकि वे भारतीय समाज के लिए अभिशाप बन गई थीं। भारतीय जनता मुस्लिम शासकों के घोर अन्याय, दुर्दमनीय अत्याचारों से पीड़ित होकर निराश एवं व्याकुल हो चुकी थी। तुलसीदास जैसे भक्त के लिए अत्याचारी बादशाहों के विरूद्ध आवाज उठाने का दुःसाहस कैसे संभव था अत उन्होंने भक्ति का सहारा लिया और अपने युग की आवाज को बुलन्द किया। सच्चा साहित्य समाज का दर्पण होता है। तुलसीदास सच्चे साहित्यकार थे। अतः उनकी कृतियों में युग बोलता है। 'रामचरितमानस' भी उनसे अछूती रचना नहीं हैं। इसमें भी उन्होंने लोक कल्याण हेतु लोकमंगल की भावना का समावेश किया है।

**1. रामराज्य की स्थापना**—तुलसीदास ने जहाँ एक ओर 'मानस' में कलियुग का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर मुगलकाल की सामाजिक परिस्थितियों का खुलकर चित्रण किया है। उन्होंने बताया है कि किस प्रकार मुगलो के अत्याचारों से हिन्दुओं की धर्म–कर्म, वर्ण–आश्रम व्यवस्था समाप्त हो चुकी थी। भोग–विलास की पराकाष्ठा के कारण समाज की मर्यादा भंग हो चुकी थी। समाज के अत्याचार, अनाचार व दुराचार से कवि क्षुब्ध थे। कलियुग का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं

**"नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहि नर मर्कट की नाईं।।"**

नारी के सौन्दर्य एवं भोगविलास में लीन होकर मानव अपने कर्तव्यों के पथ से विमुख हो चुका था तथा काम, क्रोध, लोभ मोह में पड़कर कुमार्ग का सेवन कर रहा था। कलियुग में धर्म के स्थान पर पाप होने लगे थे। तुलसीदास जी कहते हैं

**"भए बरन संकर कलि भिन्न सेतु सब लोग। करहिं पाप पावहिं दुःख भय रुज शोक वियोग।।"**

तुलसीदास जहाँ एक ओर इस प्रकार की सामाजिक, अव्यवस्था व मर्यादाहीनता को देखकर बहुत अधिक दुख व्यक्त किया था तो दूसरी ओर, 'रामचरितमानस' में 'उत्तरकाण्ड' में रामराज्य की विशेषताओं का उल्लेख करके इस ओर संकेत दिया था कि यदि इस प्रकार का राज्य हो तो समाज सुखी और आनंदमय हो सकता है। रामराज्य की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं—

**"वरनाश्रम निज–निज धरम निरत वेदपथ लोग। चलहि सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग।।"**

रामराज्य में सम्पूर्ण प्रजा अपने–अपने वर्ण के अनुसार कार्य करती है तथा अपने धर्म का पालन आश्रयों के अनुरूप करती है। वेदों के अनुसार सभी अपने–अपने कर्तव्य मार्ग पर चल रहे हैं, जिससे उन्हें सुख प्राप्त होता है। उन्हें किसी प्रकार का कोई दुःख या शोक नहीं होता, सदाचरण करने से वे निरोगी भी रहते हैं। इससे समाज में एक–दूसरे के प्रति प्रेम बढ़ता है। न कोई दरिद्र रहता है न कोइ अज्ञानी व बुद्धि रहित रहता है। तुलसीदास मानव कल्याण की भावना से कहते हैं कि यदि रामराज्य जैसा राज्य चारों तरफ फैल जाएं तो किसी प्रकार का भी कष्ट नहीं रहता—

**"दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज्य नहिं काहुहि व्यापा।।"**

कवि का मानना है कि यदि राजा और प्रजा एक दूसरे के उपकारक हों सहायक हों और उदार हृदय हों तो प्राकृतिक आपदाए भी नहीं आती हैं। वृक्ष फूलों एवं फलों को समयानुसार प्रदान करते हैं। पशु–पक्षी भी आपसी वैर–विरोध त्यागकर आपस में प्रेमपूर्वक व्यवहार करते हैं। कवि का दृष्टिकोण है कि जिस प्रकार रामराज्य में पुरूष एक नारिव्रत को धारण करता था तथा नारी मन वचन और कर्म से पति की सेवा करती थी—

**"एक नारि व्रतरत एक धारी। ते मन वच कर्म पति हितकारी।।"**

उसी प्रकार स्वस्थ समाज एवं मर्यादा की रक्षा तथा शुद्ध आचरण की स्थापना के लिए नर–नारी को यह मार्ग अपनाना चाहिए।

राम–राज्य में इस प्रकार का वातावरण था कि वहाँ किसी के मन में किसी के प्रति भी वैर–विरोध नहीं था। वहाँ ऐसा समाज था जहाँ सभी एक–दूसरे के उपकार में लीन रहते थे। अतः उनमें परस्पर प्रेम की भावना थी। सभी अपने–अपने धर्म के मार्ग को स्वीकार करके और उस पर चलकर नीति एवं मर्यादा का पालन करते थे। तुलसीदास इस प्रकार के राज्य को मानव जाति के लिए कल्याणकारी एवं हितकारी मानते हैं। जब तक समाज में मानव–मानव के मध्य परस्पर प्रेम, स्नेह, ममता, सदाचरण व परोपकार की भावना उत्पन्न नहीं होगी तब तक समाज सुख एवं आनन्द की प्राप्ति नहीं कर सकता। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में विभिन्न स्थलों पर सुक्तियां के द्वारा भी यह स्पष्ट किया है कि लोक का मंगल तभी संभव है जब समाज अपने सत्पथ का आचरण करे, अपनी शालीनता और मर्यादा को न छोड़े जैसाकि रामराज्य में था। तभी समाज उन्नत हो सकता है तभी आदर्शों की स्थापना हो सकती है।

**2. आदर्शवाद की स्थिति**–तुलसीदास जी आदर्शवाद को लोक कल्याण के लिए अति आवश्यक मानते हैं। वस्तुतः तुलसीदास के समय में मुगलों के अत्याचारों के कारण राजा और प्रजा दोनों ने अपनी आदर्श भावना को खो दिया था। सभी का आचरण अनिष्टकारी था। कामवासना, क्रोध और लोभ के वशीभूत होकर मानव कार्य कर रहा था। उचित–अनुचित का उसे कोई ध्यान नहीं था–

**'सब नर काम लोभरत क्रोधी'**

ब्राह्मण शास्त्रों के विरूद्ध आचरण कर रहे थे। नारी अपने पतिव्रत धर्म से विचलित होकर अपने सुंदर पति का त्यागकर के परपुरूष का सेवन कर रही थीं–

**'भजहिं नारि पर पुरूष अभागी।'**

तुलसीदास प्रजा के इस अनुचित एवं घृणित व्यवहार से अत्यन्त दुःखी थे। इसी कारण उन्होंने आदर्शवादी भारतीय प्राचीन परम्परा को सर्वश्रेष्ठ माना था। क्योंकि कहा भी गया है–"आदर्श परिवार ही आदर्श समाज को बना सकते हैं और आदर्श समाज ही आदर्श राष्ट्र का निर्माण कर सकता है।" राम स्वयं आदर्शवादी थे, उन्होंने अपने परिवार में आदर्श भावना का संचार किया था। भाई–भाई, पिता–पुत्र, पति–पत्नी, स्वामी–सेवक, गुरू–शिष्य के आदर्श रूप को प्रस्तुत किया था। 'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने आदर्श समाज की ओर संकेत किया है वहाँ प्रजा में परस्पर प्रेम है, सहानुभूति है, सहयोग है, परोपकार की सच्ची भावना है। इसी कारण तुलसीदास परोपकार को सर्वोत्तम धर्म मानते हैं और पर पीड़ा को तुच्छ मानते हैं–

**"परहित ससि धरम नहिं भाई पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।"**

तुलसीदास ने राम का जीवन इतना आदर्शवादी बनाया है कि जिनके आदर्श जीवन से सभी सुख के आनन्द की अनुभूति होती है। वे निषाद से प्रेमपूर्वक मिलते हैं। शबरी के जूठे बैर खाते है। अपनी सेना के वानरों व रीछों के प्रति उनका असीम स्नेह एवं प्यार है। तुलसी ने मानव–प्रेम को आदर्शवाद का उच्चतम रूप माना था। तुलसी समाज में वर्णाश्रम व्यवस्था को आदर्शरूप मानते थे। राम के राज्य में यह आदर्श व्यवस्था समाज को स्वस्थ बनाती थी। आदर्श समाज में नर और नारी सदाचारी होते हैं। उनमें उदारता और परहित की भावना रहती है।

**'सब उदार सब पर उपकारी।'**

राम के राज्य में यही आदर्शवादी भावना थी। नारी का सम्मान था तथा जहाँ नारी पतिव्रता होती थी वहाँ नर एक पत्नीव्रत धारण करता था। तुलसी ने कहा भी है–

**"एक नारि व्रत रत सब झारी। ते मन वचकर्म पति हितकारी।।"**

समाज में किसी भी प्रकार की विकृति या उच्छृंखलता तुलसीदास को मान्य नहीं है। नारी हो या नर सभी के लिए कुछ आदर्शवादी नियम होते हैं जिनका पालन करना उनका कर्तव्य है वही उनका धर्म है और वही लोक मर्यादा और लोक कल्याण है। जिस परिवार, समाज या राष्ट्र में ये आदर्शवादी परम्पराएँ नहीं रहती वह अवश्य पतित हो जाता है। तुलसी ने अपने युग में यही भ्रष्टाचार देखा था जहाँ पर राजा, अधिकारी, समाज के प्रति पालक, संन्यासी और व्यक्ति स्वयं पथभ्रष्ट हो चुके थे उनकी आदर्श मान्यताएँ एवं मर्यादाएँ समाप्त हो चुकी थीं। तुलसीदास ने राम के जीवन के माध्यम से, उनके सद् आचरण और हितकारी भावनों से समाज में आदर्शवाद की स्थापना की ओर संकेत किया है। राम स्वयं एक आदर्श राजा थे। अतः उनके राज्य में प्रजा उनके अनुरूप आचरण करती थी, जिससे राजा को ऐसा अवसर नहीं मिलता था जो किसी को दण्ड देना पड़े। वहाँ 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति चरितार्थ होती थी अर्थात् जब राजा ही आदर्शों का पालन करता था तो प्रजा भी वैसी ही थी। अतः तुलसी कहते हैं कि 'दण्ड' शब्द यदि कहीं था तो साधु के साथ ही था अर्थात् संन्यासी ही दण्ड या दण्डा धारण करते थे। भेदभाव या परस्पर

द्वेष प्रजा में नहीं था, केवल नृत्य कला में कुछ भेद था–

**"दण्ड गतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज। जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद के राज।।"**

आदर्श के विषय में एक विद्वान ने ठीक ही कहा है–"अपने युग की सामाजिक स्थिति से क्षुब्ध होकर गोस्वामी जी ने राम परिवार के आदर्श एवं रामराज्य की सामाजिक व्यवस्था को सामने रखना चाहा था, क्योंकि उनका विश्वास था कि रामराज्य का आदर्श सामने रखने पर निश्चय ही लोगो का युग प्रभाव से कलुषित मन नव चेतना और स्फूर्ति से भर जाएगा और एक अभिनव सुंदर समाज की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया जाएगा। यथार्थ की कीच पर आदर्श का कमल खिलाना, कलिकाल की पानी रजनी के बाद रामराज्य का सूर्योदय करना ही तुलसीदास का अभीष्ट था।"

**3. शालीनतापूर्ण प्रवृति**--तुलसीदास के समय में अकबर और जहांगीर जैसे अत्याचारी शासक थे, जिन्होंने तलवार की नोक पर शासन किया तथा भारतीय जनता का शोषण किया। उस समय राज्य के अधिकारी एवं कर्मचारी भी मनमाना अत्याचार करते थे, जिससे कोई व्यवस्था एवं नियम नहीं रह गए थे। तुलसीदास इस प्रकार की राज्य व्यवस्था व राजा की कर्तव्यहीनता से अत्यन्त दुःखी थे क्योंकि प्रजा ऐसे शासकों से बहुत पीड़ित थी। तुलसीदास स्वयं लिखते हैं–

**"बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी।**

**द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुशासन।।"**

चार वर्ण, चार आश्रम का आचरण नहीं हैं, न धर्म है। सभी नर–नारी शास्त्रों के विरुद्ध चले रहे हैं। ब्राह्मण वेदों को बेचने वाले तथा राजा प्रजा का भक्षण करने वाले हो रहे हैं। शास्त्रों की आज्ञा का पालन करने वाला कोई नहीं है। तुलसीदास इस प्रकार की अव्यवस्था का दोष प्रमुख रूप से राजा को देते हैं। वे इसी कारण अत्यन्त विक्षुब्ध होकर कहते हैं--

**"जासु राजु प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवासी नरक अधिकारी।।"**

अर्थात् जो राजा इतना शालीन नहीं है कि अपनी प्रिय प्रजा के सुख का ध्यान नहीं रखता, बल्कि उसके शासन में प्रजा दुखी रहती है वह राजा अवश्य ही नरक का दुःख भोगेगा। तुलसीदास ने राम को आदर्श राजा के रूप में माना था, जिसने शालीनता के साथ राज्य करके अपने समय में लोक कल्याण की भावना को प्रमुखता प्रदान की थी। राम के मन में प्रजा के प्रति स्नेह एवं प्रेम की भावना थी। उनके लिए प्रजा का सुख ही अपना सुख था। राजा–प्रजा के बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं था। उनके बीच में स्नेह का संबंध विद्यमान था। राम ने इस प्रकार राज्य किया था--

**"बयरन न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।"**

समाज में लोगों का आपसी प्रेम विद्यमान था। किसी भी व्यक्ति के मन में दूसरे के प्रति हीन भावना नहीं थी। सभी आपस में मिलजुलकर प्रेम से रहते थे। राम एक ऐसे राजा थे जिन्होंने अपने यश, शक्ति व शील के आधार पर प्रजा के पारस्परिक द्वेष को भी मिटा दिया था। अतः प्रजा शोक रहित, निर्भय और निरोग रहती थी। तुलसीदास ने राजा को एक निश्चित सीमा में बंधकर चलने वाला कहा है। जहाँ किसी प्रकार का अन्याय न हो। प्रजा के साथ कोई असद् व्यवहार न हो। आदर्श राजा को मर्यादा में बंधकर चलना चाहिए। राम ऐसे ही राजा थे जो प्रजा के लिए अपनी प्रिय पत्नी सीता का भी परित्याग करने में नहीं हिचकते थे। वे स्वयं अपनी प्रजा से कहते हैं–

**"जौं अनीति कछु भाखऊँ भाई। तो कोहि वरजेउ भय बिसराई।।"**

अर्थात् यदि मैं (राम) प्रजा के साथ किसी प्रकार का अन्याय करूँ या अनुचित बातें कहूँ तो प्रजा निर्भय होकर मुझे उसके लिए रोक दें। अपने मन में किसी प्रकार का कोई संकोच न करें। तुलसीदास ने अपनी रचना 'रामचरितमानस' में राजा राम के जीवन और मर्यादा को इतने आदर्श, उदात्त और शालीनता के साथ प्रस्तुत किया है कि वे सदा प्रजाजनों के प्रिय बने रहे। उन्होंने प्रजा का पालन संतान के समान किया। तुलसीदास प्रजा और राजा दोनों को सुगम्य पथ पर चलते देखना चाहते थे। वस्तुतः वे तत्कालीन राज्य व्यवस्था और राजा के व्यवहार को देखकर लोक कल्याण की स्थापना करना चाहते थे। यदि राजा और प्रजा का व्यवहार एक–दूसरे के विपरीत होगा तो यह संभव ही नहीं हो पाएगा, इसलिए ही कवि ने दोनों में आदर्श की स्थापना करके समन्वय किया। अतः 'रामचरितमानस' में कवि ने लिखा है–

**"राम राज नभ गेस सुनु सचराचर जग माहिं। काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुःख काहुहिं नाहिं।।"**

राम की राज्य–व्यवस्था अत्यन्त शालीन थी, जिसे देखकर चर–अचर किसी भी प्राणी के मन में किसी प्रकार का कोई दुःख नहीं था। सब अपने–अपने कर्तव्यों को निभाते हुए शालीनता के साथ जीवन जी रहे थे।

**4. संतों का महत्व**–तुलसीदास ने अपनी अमर कृति 'रामचरितमानस' में बार–बार यह स्वीकार किया है कि संतों के वचन

मान्य हैं, उनका मार्ग ही प्रशस्त है। संतों की संगति से दुष्ट भी उसी प्रकार सुधर जिस पारसमणि के स्पर्श से लोहा भी सोना बन जाता है।

**"सठ सुधरहिं सत्संगति पाई। पारसपरसि कुधातु सोहाई।"**

संत सदैव दूसरों के दुःखों से द्रवित होता है जबकि नवनीत मक्खन गर्मी की तपन से पिघलता है। कहने का अभिप्राय है कि संतों का स्वभाव नवनीत से भी कोमल है—

**'निज परिताप द्रवत नवनीता। पर दुःख द्रवहि संत सुपुकीता।'**

संतों की प्रसन्नता के विषय में तो यहाँ तक कहा गया है कि सज्जनों के मिलने के समान और कोई सुख नहीं हैं।

**'संत मिलन सम सुख कहु नाहीं।'**

इस प्रकार तुलसीदास ने अनेक प्रसंगों के माध्यम से संतों की प्रशंसा की है। साथ ही उन्होंने दुर्जनों की निंदा भी की है—को न कुसंगति पाई ना साईं कुसंगति से कौन नष्ट नहीं होता? तुलसीदास ने संतों की प्रशंसा करके दुर्जनों की अप्रशंसा करके लोक कल्याण आ संदेश दिया है। समाज की मर्यादा व आदर्श का आधार संत हैं तथा मर्यादा और नियमों का उल्लघंन करने वाला दुर्जन है। तुलसीदास ने दुर्जनों का समय देखा था। वे समाज में संतों को स्वच्छ बनाना चाहते थे। 'रामचरितमानस' में दो स्थलों पर संतों के लक्षण और उनकी महिमा का वर्णन किया गया है। एक स्थान पर तो 'अरण्यकाण्ड' में संत विषयक वर्णन आता है जब नारद के पूछने पर राम संत के विषय में उपदेश देते हैं तथा दूसरे स्थान पर 'उत्तरकाण्ड' में भाई भरत के पूछने पर राम संत की विशेषताओं का वर्णन करते हैं। वस्तुतः तुलसीदास मानव जाति को यही बताना चाहते थे कि लोकमंगल की भावना यदि कहीं पर है तो संतों के मिलन से ही संभव है। संत के समान स्वभाव वाले राम संत के विषय में नारद से कहते हैं—

**"सम शीतल नहिं त्यागहि नीति। सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीति।।"**

संत समस्त जीवों के साथ समानता का व्यवहार करते हैं। वे शांत जीवनयापन करते हुए न्याय के मार्ग पर चलते रहते हैं, कभी कभी वह मार्ग नहीं छोड़ते। उन्हें मानव जाति से प्रेम होता है, उनका स्वभाव सरल होता है। तुलसीदास भी यही कामना करते है कि मानव–मानव के बीच स्नेह रहे, सभी न्याय का पथ अपनाकर जीवन यापन करें यदि ऐसा संभव हो जाता है तो लोकमंगल अवश्य ही होगा। राम ने जिस समय भरत को उपदेश दिया था तब केवल यही कहा था कि संतों और असंतों का स्वभाव चंदन और कुल्हाड़ी के समान होता है। कुल्हाड़ी चंदन को भी काट देती है, जिसमें सुगंध है। जिस प्रकार कुल्हाड़ी चंदन को काटकर अपनी तीखेपन अर्थात् दुष्टता (असत तत्व) का परिचय देती है उस समय चंदन अपनी सुगंध (संत तत्व) उसे देकर सुगंधित बना देता है। उसके इसी गुण के कारण चंदन देवताओं के मस्तक की शोभा बनता है। संसार को भी चंदन प्रिय होता है। दूसरी ओर कुल्हाड़ी जो चंदन (संत तत्व) को काटकर देती है उसके मुख को यह दण्ड दिया जाता है कि उसे अग्नि में तपाकर फिर घन से पीटा जाता है। वास्तव में तुलसीदास मुस्लिम शासकों से, उनके व्यवहार से अत्यन्त दुःखी थे जैसे वे कुल्हाड़ी के समान थे। वे तुलसीदास राम के समान संत समाज की स्थापना की कल्पना करते थे।

राम संतों के विषय में कहते हैं—

**"सबहिं मानप्रद आपु अमानी। भरत प्राण सम मम ते प्रानी।।"**

हे भरत ! वे प्राणी जो संत हैं अपना मान नहीं चाहते तथा दूसरों का सम्मान करते हैं वे मेरे लिए प्राणों के समान प्रिय हैं। तुलसीदास के हृदय से निकली यह आवाज वास्तव में समाज में लोक मंगल की स्थापना करने की पक्षधर थी, वे हृदय से चाहते थे कि समाज में रामराज्य की स्थापना हो जाए।

**5. मर्यादापूर्ण जीवन**—तुलसीदास का मानना है कि यदि लोकमंगल की स्थापना करनी है तो मर्यादापूर्ण जीवन अतिआवश्यक है। उन्होंने स्वयं अपने समय में देखा था कि राजा–प्रजा, नर–नारी, युवा, वृद्ध और बालक सभी अपनी सामाजिक धार्मिक और नैतिक मर्यादाएँ खो चुके हैं। न वर्ण व्यवस्था संतुलित है और न ही आश्रम रीति। चारों ओर जंगल राज्य है जो बलवान है, धनवान है वही निर्धन एवं निर्बल हो दुःखी कर रहा है। मुस्लिम राजा, राजाधिकारी व सम्पन्न व्यक्ति तलवार के बल पर भारतीयों पर अत्याचार कर रहे हैं और कुछ शक्तिशाली व सम्पन्न व्यक्ति उनका साथ दे रहे हैं। अपनी आजीविका के लिए अपने धर्म को छोड़ कर प्रजा भी अधर्म का साथ दे रही है। समर्थ एवं धनी व्यक्ति भले ही मुस्लिम शासकों का साथ देकर कुछ सुख प्राप्त कर रहे हों, अन्यथा सामाजिक नियमों व मर्यादाओं का उल्लंघन होने के कारण जनता में त्राहि– त्राहि मची हुई है। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में राम का इतना मर्यादापूर्ण जीवन चरित प्रस्तुत किया है कि सम्पूर्ण समाज, परिवार यहाँ तक कि राष्ट्र के लिए भी अनुकरणीय है। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि सभी राम बन जाएं, अपितु मर्यादापूर्ण जीवन जीकर जीवन को सार्थक

बनाया जा सकता है। तुलसीदास काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद आदि को मानव का घोर शत्रु कहते थे, परन्तु इनके मर्यादित रूप को जीवन के लिए अनिवार्य भी मानते थे। मर्यादा का उल्लंघन सदैव कष्ट देने वाला होता है। जैसे 'रामचरितमानस' में रावण और शूर्पणखा में काम वासना की अतिशयता दिखाई पड़ती है, जिससे मर्यादा का उल्लंघन हुआ है। अतः उन्हें अपनी मर्यादाहीनता का दण्ड भोगना पड़ा। नारद को अपने ब्रह्मचर्यव्रत का अहंकार था परन्तु उसने काम का सर्वथा परित्याग किया था। राम में काम भावना का मर्यादित एवं संतुलित रूप दिखाई पड़ता है, इसलिए कहीं भी किसी प्रकार की पीड़ा या कठिनाई नहीं होती। यद्यपि राम को अपनी वीरता पर गर्व है परन्तु उनके गर्व की भी एक सीमा है। वे समुद्र के प्रति क्रोध करते हैं, परन्तु उससे पहले वे प्रार्थना करते हैं। अतः तुलसीदास ने राम के क्रोध को मर्यादा में ही बांधे रखा है। राम और भरत आदर्श भाई हैं। दोनों को राज्य के प्रति आसक्ति नहीं व अपनी–अपनी मर्यादा में बंधे हैं। राम अपनी माताओं के साथ, दास–दासियों के साथ, मन्त्रियों के साथ, गुफाओं के साथ, अपने भाईयों के साथ सदैव अपनी मर्यादा में रहकर बातें करते हैं। राज्याभिषेक के अवसर पर जब माता कैकेयी राम को वनवास देने का वर मांगती है तो पिता दशरथ अप्रत्यक्ष रूप से जब उन्हें वनवास दे देते है तो भी राम शांत रहते हैं। किसी भी प्रकार का विकार उनके मन में उत्पन्न नहीं होता अपितु शांत भाव से पिता की आज्ञा का पालन करते हैं। उस समय न तो उन्हें पिता के प्रति क्रोध होता है और न ही माता के प्रति विक्षोभ। अपितु शांत चित्त एवं मन से वन की ओर चले जाते हैं।

तुलसीदास का मानना है कि राजा में राजा के गुण तभी आ सकते हैं जब स्वयं कष्ट भोगकर लोक कल्याण की भावना से युक्त हो। इसी प्रकार वे राम के जीवन को राजा के रूप में तभी महत्वपूर्ण मानते थे जब कि उसमें राजा की अपेक्षा लोकमत का अधिकार हो। लोकमत का निर्माण उन मर्यादाओं से संभव है जिनके लिए समाज का सृजन हुआ है। प्रत्येक समाज में ऊँच–नीच, छोटे–बड़े, धनी–निर्धन, समर्थ–असमर्थ, पवित्र–अपिवत्र, ज्ञानी–अज्ञानी सभी प्रकार के मानव रहते हैं, परन्तु समाज में सभी को समान अधिकार होते हैं। समाज का अर्थ है मर्यादा पर चलने वाले लोग, जो अपने कर्तव्य का पालन करें। कर्तव्य ही धर्म है और उसका मूल आधार है–लोक मर्यादा या लोक मंगल की भावना। तुलसीदास इसी प्रकार के समाज को राम की प्रजा या राम का राज्य कहते हैं। जहाँ पर ना किसी को दण्डित किया जाए और न किसी के प्रति द्वेष भावना हो। एक विद्वान का मार्यादा से सम्बन्धित कथन है जो राम के जीवन चरित्र पर चरितार्थ होता है और राम के संबंध में ही लिखा गया है–"राम आदर्श पुत्र, आदर्श पति आदर्श राजा हैं, सीता आदर्श पत्नी है, कौशल्या आदर्श माता है, लक्ष्मण और भरत आदर्श भाई हैं। हनुमान आदर्श सेवक है और सुग्रीव आदर्श सखा है। राम मर्यादा पुरूषोतम है। मर्यादा और आदर्श की प्रतिष्ठा ही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य है।

**6. समन्वय की भावना**–तुलसीदास एक सच्चे समन्वयवादी कवि थे। वे समाज में एकता व उसके कल्याण के लिए विभिन्न धर्मों में, अनेक रीति–रिवाजों, विविधत मतों तथा विभिन्न मार्गों में समन्वय की स्थापना करने के अभिलाषी थे। उनके समय में उन्होंने स्वयं देखा कि तत्कालीन समाज में, राजनीति में, धर्म में, विचारों में तथा विभिन्न धर्मों में परस्पर बहुत अधिक वैमनस्य विद्यमान है। धर्म के क्षेत्र में हिन्दू और मुस्लिम दोनों मतों में संघर्ष है तो हिन्दू धर्म में शैव, वैष्णव धर्मों के बीच विषमता एवं द्वेष की भावना बढ रही थी। समाज की दशा बड़ी शोचनीय थीं। हिन्दू समाज भी ब्राह्मण और शूद्रों के बीच में छुआछूत की भावना के कारण वातावरण विच्छृखलित हो गया था। राजा और प्रजा में एकत्व की भावना मिट गई थी। राजा लोग ऐश और आराम का जीवन जी रहे थे। आम जनता का शोषण किया जा रहा था। सारा धन राज्य के कोष में जमा हो रहा था समाज की खुशहाली के लिए कोई प्रयास नहीं किए जा रहे थे। इस प्रकार की विषादपूर्ण विकृत परिस्थितियों में तुलसीदास ने समन्वयकारी प्रयास किए। जिससे समाज में एकत्व की स्थापना हुई। इस विषय पर डॉ० हजारी प्रसार द्विवेदी का कथन बिल्कुल सटीक प्रतीत होता है–"भारत का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय समाज में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी सांस्कृतिक, साधनाएं विचार और धर्म सिद्धान्त प्रचलित थे। बुद्धदेव समन्वयवादी थे। गीता में समन्वय की चेष्टा की गई है।" तुलसीदास भी समन्वयवादी कवि थे। उन्होंने अपने युग में राजनीतिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक व धार्मिक क्षेत्रों में समन्वय किया था। वे लोक दृष्टा थे लोक स्रष्टा थे, लोक कल्याणकर्ता हैं। उन्होंने ज्ञान और भक्ति के अंतर मिटाने का प्रयास किया तथा दोनों ही साधनों को भगवान प्राप्ति का माध्यम बताया–

**"भगतहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।।"**

ज्ञान और भक्ति यद्यपि दोनों अलग–अलग मार्ग हैं परन्तु दोनों का उद्देश्य एक ही है और वह है–ईश्वर प्राप्ति। तुलसी के समय में हिन्दू धर्म में दो प्रकार की उपासना पद्धति विद्यमान थीं–एक सगुण तथा दूसरे निर्गुण। एक मानना था कि भगवान को देखा जा सकता है, वे आकार युक्त हैं, उनका रंग, रूप विद्यमान है; वह सब कुछ करता है; वही रक्षक है। तुलसीदास यद्यपि भगवान के सगुण रूप के उपासक थे परन्तु फिर भी उन्होंने 'बालकाण्ड' में निर्गुण और सगुण दोनों रुपों का समन्वय किया है और कहा है–

**"सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गादहि मुनि पुरान कुछ वेदा।**
**अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुण सो होई।।"**

जबकि दूसरी तरफ निर्गुण मत के उपासक थे। उनका मानना था कि भगवान अरूप हैं। निराकार हैं, उनका कोई रंग रूप नहीं है। वे तो सृष्टि के कण–कण में विद्यमान हैं, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, सर्वव्यापक हैं परन्तु उन्हें न देखा जा सकता है न ही उनके स्वरूप को अभिव्यक्त किया जा सकता है। वे अनिवर्चनीय हैं। तुलसी से पूर्व राम का महत्व दशरथ के पुत्र के रूप में ही था। उन्हें बहुत कम लोग परात्पर ब्रह्म, अज एवं अविनाशी मानते थे। इसीलिए कबीर ने कहा है–

**"दशरथ सुत तिहूँ लोक बखाना राम नाम का मरम है आना।"**

ऐसा कहकर उन्होंने राम के दशरथ–पुत्र को ब्रह्म से अलग कहा कहा था। परन्तु तुलसी ने 'भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी' कहकर उन्हीं ब्रह्मा को कौशल्यापुत्र या दशरथ पुत्र के रूप में प्रतिष्ठित करके अपने इष्टदेव को साधारण 'नर' से ऊपर उठाकर 'नारायण' के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

इस प्रकार उन्होंने हिन्दू धर्म में समन्वयवादी विचारों को प्रदान करके उनका कल्याण कर दिया था। वे केवल धर्म व दर्शन के क्षेत्र में ही समन्वयवादी नहीं थे। अपितु व्यवहार में भी समन्वयवादी थे। राम का पारिवारिक जीवन समन्वयवाद का सच्चा उदाहरण है। वे क्रोधी स्वभाव वाले लक्ष्मण के भी भाई थे तथा शांत एवं तपस्वी साधु संत भरत के भी भाई थे। उन्होंने कैकेयी का भी उतना ही सम्मान किया था जितना कौशल्या माता का। राज्य उनके लिए भोगने के लिए नहीं था अपितु प्रजा की सेवा करने के लिए था। तुलसीदास ने समाज व धर्म को एक नया रूप प्रदान किया था। जिस आधार पर वे विरोधी भावनाओं के समाप्त करने के इच्छुक थे। उनका मानना था कि लोक का कल्याण या लोक मंगल तभी संभव है जब धर्म, धर्म के साधन, धार्मिक विचार व मान्यताओं के विरोध को समाप्त कर दिया जाए। अतः कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि अनेक लोगों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। जिससे वे अपने समाज को पतन की राह से वापिस ला सके।

***7. सच्चे समाजवाद की कल्पना***–तुलसीदास के समय में समाज विच्छृंखल हो चुका था। कहीं पर भी कोई मर्यादा नहीं रह गई थी। तब समाज आदर्शहीन, मर्यादाहीन पथभ्रष्ट तथा हीनभावनाओं से ग्रस्त हो गया था। नारी मात्र भोग विलास का साधन थी। चारों ओर विसंगतियां व्याप्त हो चुकी थीं। मुस्लिम साम्राज्य में हिन्दुओं को अनेक प्रकार के कष्ट दिए जा रहे थे। समाज में नारी वर्ग ही दुःखी नहीं था अपितु सभी किसी न किसी रूप में दुःखी थे। आजीविका का साधन न दिखाई देने पर गरीबों को अपने बेटे–बेटियों को बेचना पड़ रहा था। तुलसीदास की यही यथार्थवादी दृष्टि जहाँ एक ओर 'कवितावली' में प्रकट हुआ है वहीं दूसरी ओर 'रामचरितमानस' में भी यह भावना पर्याप्त रूप से प्रकट हुई है। 'मानस' में वे एक ओर राम की भक्ति को सच्चे हृदय से प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी ओर रामराज्य की स्थापना करके समाज में ऐसा परिवर्तन चाहते हैं जहाँ सभी सुखी रहें। उन्होंने जिस सामाजिक जीवन को अंकित किया है उसका मूल आधार है–सदाचार। प्रत्येक समाज की अच्छाई एवं बुराई उसके आचार पर निर्भर रहती हैं। व्यक्ति और परिवार के आचरण देश व समाज के लिए कल्याणकारी सिद्ध होते हैं। राम यद्यपि क्षत्रियवंश में उत्पन्न होकर शक्ति, शील और सुंदरता के प्रतीक थे, परन्तु फिर भी वे वानरों और रीछों को गले से लगाते हैं। भीलनी (शबरी) के जूठे बेर खाते हैं। निषादराज को स्नेह प्रदान करते हैं। जटायु का श्राद्ध करते हैं। उन्होंने समाज के छोटे–बड़े, धनी–निर्धन, ऊँच–नीच, जाति–पाँति, छुआछूत के भेद को नहीं समझा था। सभी में वे मानवता के दर्शन करते थे। शत्रु रावण के भाई विभीषण को भी अपनत्व प्रदान करता हैं, उसे अपना मित्र मानते हैं तथा लंका को जीतकर उसका राज्य उसी (विभीषण) को प्रदान कर देते हैं। उन्होंने प्रजा से कहा कि–

**"जौ अनीति कछु भायऊँ भाई। तो मोहि वरनेउ भय बिसराई।।"**

उन्होंने ऐसे समाज की कल्पना की थी जहाँ न कोई पीड़ित हो, न पीड़ा देने वाला हो, न कोई दरिद्र हो, न दुःखी हो। राम के राज्य में न कोई दैहिक दुःख था न मानसिक। तुलसीदास अपने युग की सामाजिक विषमता, बेबसी, दरिद्रता व दुःखी अवस्था से अत्यन्त व्याकुल थे। अतः उन्होंने लोककल्याण के लिए ऐसे समाज की कल्पना की थी जहाँ सभी सुख शांति और आनन्द से रह सकें। इस प्रकार स्वान्तः सुखाय कवित का सृजन करने वाले तुलसी का काव्य लोक कल्याणकारी सिद्ध हुआ। वे काव्य विषय में कहते थे–

**"कीरति मनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।"**

अर्थात् वही यश, कवि वाणी, सम्पत्ति कल्याणकारी है जो गंगा के समान सभी का हित करने वाली हो। इस प्रकार तु की वाणी एक ओर उनकी भक्ति का जीता जागता उदात्त रूप है दूसरी ओर परिवार और समाज का कल्याण करने वाली है। त अपने समय के विषाक्त वातावरण में रहकर स्वच्छ एवं निर्मल समाज की कल्पना की थी जो जन–जन के लिए कल्याणकारी ह एक विद्वान के शब्दों में कहा जा सकता है–" 'रामचरितमानस' में भक्ति–सरोवर में जहाँ तुलसी स्वयं मज्जन करके निष्कलुष बने, वहां जनता को उनका रसामृत पान कराकर युगों तक अमर बना दिया। वे कोरे भक्त नहीं थे और न ही 'रामचरितमानस' को कोरी भक्ति का ग्रन्थ कहा जा सकता है उसमें लोक–समूह की भावना अत्यन्त बिखरी हुई हैं। उनकी भक्ति में एकान्तिक साधना नहीं, किंतु उनमें अंतःसंघर्ष के साथ लोक संघर्ष छिड़ा हुआ है।"

इस प्रकार से सिद्ध होता है कवि तुलसीदास ने लोकमंगल की पावन भावना की स्थापना की।

# अध्याय 8

# 'रामचरितमानस' की प्रबंध कल्पना

**"था भक्त, सुधारक था, कवि था, ज्ञानी था, परहितकारी था।**
**भारत माता के मन्दिर का वह एक अनन्य पुजारी था।।**
**मृदुमानस का सर्वत्र सुलभ अक्षय प्रवाह वह बहा गया।**
**कागत के पत्रों को तुलसी 'तुलसीदास' जैसा बना गया।।"**

'रामचरितमानस' के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास भारतीय संस्कृति के अमर गायक, मर्यादापुरूषोत्तम राम के भक्त--शिरोमणि व लोकप्रिय कवि थे। वे अपने युग के सृष्टा थे। कलिकाल के बाल्मीकि थे तथा जनमानस के प्रतिनिधि कवि थे। यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि वे महात्मा बुद्ध के पश्चात् सबसे बड़े लोकनायक थे। उन्होंने भारत के विविध धर्मों, विभिन्न मतों, अनेक जातियों को एकता के सूत्र में पिरोने का प्रयास किया था। वे ज्ञानी थे, भक्त थे, समाज–सुधारक थे, पण्डित थे, भारतीय संस्कृति के कीर्ति थे, उच्च कोटि के साधु थे, जनमानस के प्रतिनिधि कवि थे। उनकी सर्वोत्तम और लोकप्रिय कृति–'रामचरितमानस' भारतीय धर्म, विचार, ज्ञान--विज्ञान, इतिहास व काव्य का अनूठा दर्पण है। जिसके प्रति आज भी भारतीय जनमानस श्रद्धा से नत -मस्तक है। जिसका घर–घर में प्रतिदिन पाठ होता है जिसके प्रति भारतीय नर–नारियों की असीम भक्ति है। इसमें सत्यं शिवम् सुन्दरम् की भावना निहित है तथा जिसकी अनुपम मर्यादा और आदर्श मानव जीवन के लिए प्रेरणा--स्त्रोत बना हुआ हैं यह अद्वितीय व अनुपम रचना केवल भारत के लिए ही नहीं, बल्कि समस्त सृष्टि के लिए गहनीय रही है। भारतीय व अभारतीय विद्वानों और मनीषियों ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है फिर भी जिसका समुचित मूल्यांकन नहीं हो सका। वास्तव में यह एक अनिर्वचनीय काव्य, धर्मशास्त्र या शिक्षाप्रद ग्रन्थ है।

**1. महाकाव्य का स्वरूप व परिभाषा**–'रामचरितमानस' साहित्य की दृष्टि से क्या है ? यदि इस विषय पर विचार किया जाता है तो भारतीय काव्य शास्त्रों में काव्य मूलतः दो प्रकार के माने गये हैं--(1) प्रबंधकाव्य, (2) मुक्तक काव्य। यह कृति रामकथा पर आधारित है अतः मुक्तक काव्य तो हो नहीं सकती, प्रबंध काव्य की श्रेणी में ही संभव है। प्रबंधकाव्य में भी यह वृहदाकार होने के कारण महाकाव्य ही हो सकती है। महाकाव्य के विषय में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों की धारणाएं एक जैसी, किसी रूप में भिन्न भी रही हैं। भारतीय आचार्यों में भामह, दण्डी, रूदट, आनंदवर्धन, हेमचन्द्र आदि ने महाकाव्य के जो लक्षण दिए हैं उन्हें प्रायः एक सूत्र में बांधकर आचार्य विश्व ने महाकाव्य को निम्नलिखित विशेषताएं प्रस्तुत की हैं–

(क) महाकाव्य का कथानक विशाल होता है जो सर्गों में विभक्त किया जाता है।

(ख) इसका एक नायक होता जो या तो कोई देवता होता है अथवा उच्च क्षत्रिय वंश में उत्पन्न कोई राजा होता है जो धीरादात्त गुणों से युक्त होता है।

(ग) श्रृंगार, वीर व शान्त इन तीन रसों में से कोई एक रस प्रमुख रूप से रहता है शेष रस गौण रूप में होते हैं।

(घ) इसमें नाटक की पाँच संधियाँ (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श, निर्वहण) होती हैं।

(ङ) इसका उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से किसी एक वर्ग की प्राप्ति रहता है।

(च) इसका कथानक या तो इतिहास प्रसिद्ध होता है अन्यथा किसी सज्जन के चरित्र पर आधारित होता है।

(छ) इसमें इस प्रकार का मंगलाचरण रहता है जो आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक या कथावस्तु का निर्देशक हो।

(ज) इसमें खल–निन्दा व सज्जन प्रशंसा का समावेश रहता है।

(झ) कथावस्तु का विभाजन कम से कम आठ सर्गों में रहता है जो न तो बहुत लघु आकार के हो ओर न बहुत बड़े हो।

(ञ) प्रत्येक सर्ग के अन्त में छंद–परिवर्तन होता है जो भाषी कथा की सूचना देने वाला होता है। इसमें विविध छन्दों की योजना रहती है।

(ट) इसमें संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, प्रातः, अंधकार, मध्याह्न, वन, पर्वत, ऋतु, समुद्र, यात्रा, संयोग–वियोग आदि का वर्णन होता है।

(ढ) प्रत्येक सर्ग का नामकरण उसकी कथावस्तु के अनुरूप होता है तथा महाकाव्य का नामकरण नायक, कथानक, कवि या अन्य आधार पर किया जाता है।

पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य को Epic कहकर पुकारा है। अरस्तु, एवरक्राम्बी, सी० एम० बोवरा, हीगेल आदि विद्वानों ने महाकाव्य की परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं। एक विद्वान का कथन है—An Epic is the Mirror of this world and contains all in itself अर्थात् महाकाव्य विश्व का दर्पण है। एवरक्राम्बी केवल वृहदाकार वर्णनात्मक प्रबन्ध के कारण ही किसी रचना को महाकाव्य नहीं मानते, अपितु उनके अनुसार महाकाव्य उसी प्रबन्ध को कहेंगे जिसकी शैली महाकाव्योचित होगी और जिसमें कवि की कल्पना और विचारधारा का उदात्तरूप दिखाई पड़ेगा। इसमें एक पुष्ट, स्पष्ट प्रतीकात्मक उद्देश्य होता है जो महाकाव्य की गति का आद्यान्त संचालन करता है। वास्तव में पाश्चात्य व भारतीय विद्वानों ने जो महाकाव्य की परिभाषाएँ की हैं। वे मूल रूप से अथवा आकार–प्रकार की दृष्टि से एक ही हैं। सर्वत्र उसकी आत्मा एक जैसी है। महान् कथानक, महान चरित्र, वृहद् कार्य, गरिमामयी शैली विस्तृत वर्णन आदि सभी में समान है। इतना अवश्य है कि पाश्चात्य महाकाव्यों में रस, छंद आदि की दृष्टि से असमानता है। परवर्ती या आधुनिक विद्वानों ने भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के विचारों को लेकर मोटे तौर पर महाकाव्य के कतिपय सामान्य लक्षणों को लेकर आधुनिक महाकाव्यों का मूल्यांकन किया है। महाकाव्य के गौण लक्षणों पर ध्यान देना अपेक्षित नहीं समझा है। 'रामचरितमानस' एक भारतीय महाकाव्यात्मक गौण लक्षणों पर ध्यान देना अपेक्षित नहीं समझा है। 'रामचरितमानस' एक भारतीय महाकाव्यात्मक रचना है। इसके महाकाव्यत्व के विषय में अलग–अलग धारणाएँ हैं–

**2. 'रामचरितमानस' महाकाव्य नहीं हैं**—भारतीय हिन्दी और संस्कृत महाकाव्यों की परम्परा में 'रामचरितमानस' अत्यन्त प्राचीन है। अधिक संभव है कि संस्कृत के महाकाव्यों के आधार पर संस्कृताचार्यों ने महाकाव्य की परिभाषाएं प्रस्तुत की हों। कुछ विद्वान 'रामचरितमानस' को महाकाव्य स्वीकार नहीं करते। इस विषय में डॉ० श्रीकृष्ण लाल ने निम्नलिखित तर्क दिए हैं–

(क) महाकाव्यों के लक्षणों में सर्ग संख्या, छंद योजना, मंगलाचार, सज्जन प्रशंसा, खल–निन्दा, पंच संधियों, रस योजना, प्रकृति चित्रण, विविध वर्णन आदि गौण लक्षण हैं वे भले ही 'रामचरितमानस' में प्राप्त हो जाएं, परंतु इस रचना में महाकाव्य के प्रमुख लक्षणों का अभाव है।

(ख) महाकाव्य के लक्षण में नायक या तो कोई देवता होता है या धीरोदात्त कुलीन क्षत्रिय वंशीय मानव। 'मानस' में नायक राम है जो अज, अद्वैत, अविनाशी, परमेश्वर, पर ब्रह्म हैं; ब्रह्म, विष्णु और महेश को भी नचाने वाले हैं। उनका मानव रूप दिखावा मात्र है। स्वयं तुलसीदास कहते हैं–

**"नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतंत्र एक भगवाना।।**

**अन्यत्र भी कहा गया है— जथा अनेक वेश धरि, नृत्य करइ नट रोइ।**

**सोई–सोइ भाव देखावह, आपुन होइ न सोइ।।"**

अतः नायक दृष्टि से 'रामचरितमानस' महाकाव्य नहीं हैं।

(ग) 'रामचरितमानस' का प्रतिपाद्य महाकाव्य के समान नहीं है। उसका प्रतिपाद्य तो राम के परब्रह्मत्व का निरूपण है। अतः प्रतिपाद्य की दृष्टि से यह महाकाव्य नहीं है।

(घ) महाकाव्य का उद्देश्य चतुवर्ग में से एक की प्राप्ति है वहाँ 'मानस' का उद्देश्य भक्ति मार्ग की स्थापना है यद्यपि तुलसीदास यह घोषण करते हैं कि उन्होंने यह ग्रन्थ स्वान्तसुखाय लिखा था। कवि ने स्वयं कहा है–

**"स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा। भाषानिनिबन्धबन्धमतिमंजुलमातनेति।।"**

परन्तु इसका मुख्य उद्देश्य राम की भक्ति का प्रचार हो रहा है। अतः उद्देश्य की दृष्टि से भी यह महाकाव्य नहीं है।

(ङ) जहाँ तक शैली का प्रश्न है वह भी 'मानस' में सर्वथा भिन्न है। इस विषय में 'डा० श्रीकृष्णलाल का कथन है–"परस्पर प्रशंसा करने की प्रवृति, घुमा–फिराकर बातें कहने का ढंग, अवान्तर प्रसंगों की अवतारणा तथा एक संवाद के भीतर अन्य संवादों का अत्यधिक विस्तार मिलता है। वही मानस की पौराणिक शैली का प्रत्यक्ष प्रमाण है। काव्यों के संवाद इस प्रकार के नहीं होते, वे एक महती भावना से अनुप्राणित होते हैं। उनमें सरलता के साथ गंभीरता तथा स्पष्टता के साथ एक सहज और स्वाभाविक आवेश होता है। 'मानस' के सभी संवादों में एक प्रकार की कृत्रिमता दिखाई देती है, उनमें लच्छेदार बातें तो प्रचुर मात्रा में हैं, परन्तु तर्कसंगत बात का लेश नहीं।"

अतः कहा जा सकता है कि 'मानस' में पौराणिक शैली का समावेश है, महाकाव्यात्मक शैली नहीं है।

च) डॉ० श्रीकृष्ण लाल 'रामचरितमानस' को महाकाव्य नहीं मानते, बल्कि पुराण काव्य कहते हैं। पुराण का अर्थ है–पूर्वकाल में कही गई परम्परा। मानस में भी यह परम्परा प्राप्य है। तुलसीदास का कथन है कि भगवान शिव ने इस चरित को बनाया था और कृपा करके उसे उमा को सुनाया था। उसी को शिवजी ने काकभुशुंडि को सुनाया। काकभुशुंडि से यज्ञावल्क्य ने और उनसे भारद्वाज ने प्राप्त किया था। उसी चरित को तुलसीदास ने अपने गुरू नृसिंह से सुना था जिसे श्रोताओं के कल्याण के लिए प्रयास किया था, जैसाकि 'मानस' में कहा है।

**"संभु कीन्ह यह चरित सुहावा।**
**बहुरि कृपाकरि उमहि सुनावा।।**
**सोइ सिव काकभुशुंडि दीन्हा।**
**रामभगत अधिकारी चीन्हा।।"**

इन आधारों पर विद्वान डॉ० श्रीकृष्ण लाल ने इसे महाकाव्य नहीं माना है।

**3. रामचरितमानस का महाकाव्यत्व**—'रामचरितमानस' में पौराणिक शैली का आभास भले ही हो, परन्तु पुराण के समस्त लक्षण नहीं हैं। पुराणों में जो सृष्टि, लय, मन्वन्तर, ऋषियों, मुनियों आदि का वर्णन होता है वह इसमें नहीं है। यह महाकाव्य के स्वरूप और लक्षणों से अधिक समानता रखता है। डॉ० रामदत्त भारद्वाज का कथन है, "रामचरितमानस ही संसार का ऐसा अकेला महाकाव्य है जिसका करोड़ों व्यक्तियों के बीच धर्मग्रन्थ और काव्य दोनों ही रूपों में आदर है और अकेले उस ग्रन्थ ने ही लोक जीवन को जितनी गहराई तक प्रभावित किया है, उतना संसार के किसी भी महाकाव्य ने शायद ही कभी किया हो।"

वस्तुतः महाकाव्य सम्पूर्ण निश्चित सीमाओं में बंधकर नहीं चलते। हिन्दी के महाकाव्यों में चाहे 'पद्मावत' हो या 'कामायनी' 'साकेत' हो या 'प्रियप्रवास' सभी में महाकाव्य के लक्षण समान नहीं हैं। इतना निश्चित है कि 'रामचरितमानस' पुराण न होकर महाकाव्य है, परन्तु उसकी महाकाव्यात्मका अन्य महाकाव्यों से किसी न किसी रूप में अवश्य पृथक् होगी। तुलसीदास पुराणकार नहीं थे, उनके अन्य काव्य जैसे —'कवितावली', 'विनयपत्रिका' आदि में काव्यत्व है, पुराणत्व नहीं है। जिस आधार पर तुलसीदास को काव्यकार ही कहा जा सकता है। 'रामचरितमानस' में महाकाव्य के विविध लक्षण पाये जाते है जो इस प्रकार है।

**4. वृहद् कथानक**—'रामचरितमानस' के नाम से ही ज्ञात है कि इसमें मुख्य कथा राम के जीवन से सम्बन्धित है। इस महाकाव्य के सम्पूर्ण कथानक को सात भागों में विभक्त किया जाता है।

**"सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यन नयन निरखत मनमाना।।"**

वे सात काण्ड हैं—बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किंधा काण्ड, सुन्दरकाण्ड, लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड। 'बालकाण्ड' सभी काण्डों में बड़ा है इसमें 1800 छंद हैं। इसमें मंगलाचरण राम महिमा, राम जन्म तथा उसके जीवन की सभी घटनाएँ सूक्ष्मता से प्रस्तुत हैं जब राम जनकपुरी में जाते हैं और शिवजी का धनुष तोड़कर सीता स्वयंवर में पति के रूप में वरण किए जाए, 'अयोध्याकाण्ड' में राम के राज्याभिषेक की तैयारी होती है। उन्हें वनवास होता है। वे चित्रकूट में जाकर रहने लगते हैं। इधर उनके पिता दशरथ की मृत्यु होती है व भरत वन में जाकर को राज्य करने की प्रार्थना करते हैं, पुनः उनकी चरण पादुका लेकर अयोध्या वापिस आते हैं। 'अरण्यकाण्ड' अपेक्षाकृत छोटा है। जैसा कि इसके नाम से ज्ञात है कि राम वनवास का चित्रण है तभी सीता का हरण होता है, शबरी की भक्ति भी प्रदर्शित है। 'किष्किन्धा काण्ड' सब काण्डों में लघुतम आकार लिये हुए है जहाँ राम की हनुमान से भेंट हुई है, सुग्रीव की राम से मित्रता होती है, बाली का वध किया जाता है तथा सीता का पता लगाने के लिए हनुमान चल देते हैं। 'सुन्दरकाण्ड' में हनुमान लंका में प्रवेश करते हैं, लंका–दहन होता है, लंका पर आक्रमण की योजना की जाती है। विभीषण राम के चरणों में आ जाते हैं। 'लंकाकाण्ड' में समुद्र पर सेतु का निर्माण करके समुद्र का उल्लंघन किया जाता है, लक्ष्मण–मूर्छा, राम प्रलाप, कुंभकरण वध, मेघनाथ वध, राम–रावण युद्ध व रावण की मृत्यु आदि घटनाएँ, इसमें वर्णित है। अन्तिम काण्ड 'उत्तरकाण्ड' है। जिसमें राम का अयोध्या लौटना, अयोध्या में सभी से मिलाप करना, वहीं पर सुग्रीव, विभीषण, अगद आदि का परिचय सभी से कराया जाता है और ससम्मान सभी को विदा किया जाता है। राम के राज्याभिषेक के समय नगर में खुशियाँ मनाई जाती हैं तथा राम के राज्य का वर्णन किया जाता है और सन्त लक्षण आदि भी प्रस्तुत हैं। ज्ञानमार्ग में कठिनाई व भक्तिमार्ग का उपदेश भी प्रस्तुत है। विशेषतः राम का गुणगान भी किया गया है।

वास्तव में राम की कथा लोक में पर्याप्त प्रचलित व सर्वविदित है। अतः उसका विस्तारपूर्वक कथन अपेक्षित नहीं है भाव यह है कि राम का जीवनवृत इस महाकाव्य के लिए सर्वथा उपयुक्त कथानक है जो अपने में बृहदाकार है। यहाँ पर यह ज्ञातव्य है कि महाकाव्य की कथावस्तु कम से कम सात सर्गों में विभक्त होनी चाहिए जबकि 'रामचरितमानस' का कथानक केवल सात काण्डों में विभक्त है। पश्चिमी महाकाव्यों में इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है। जहाँ तक सर्ग के स्थान पर 'काण्ड' नामकरण किया गया है वहां अपभ्रंश के महाकाव्यों में 'सन्धि' आदि नामों से कथावस्तु का विभाजन किया गया है। जहाँ तक काण्डों का नामकरण का प्रश्न है वह उस काण्ड की घटना के आधार पर प्रस्तुत है जो सर्वथा उपयुक्त है। कथानक अत्यन्त लोकप्रिय व इतिहास प्रसिद्ध है। एक विद्वान आलोचक का कथन है—'रामचरितमानस' तुलसीदास का सबसे महत्वपूर्ण एवं सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें रामकथा के साथ जीवन के प्रश्नों को व्यापक धरातल पर उठकर समाधान खोजने को प्रयास किया गया है। तुलसी का सारा दर्शन, भक्ति समन्वय भावना इसी रचना में पूर्ण गरिमा के साथ अभिव्यक्त हुई है।"

**5. इतिहासकार प्रसिद्ध एवं कुलीन नायक तथा अन्य पात्र**—'रामचरितमानस' का नायक मर्यादा पुरूषोत्तम राम है। जो ऐतिहासिक दिव्य पुरूष है तथा क्षत्रिय वंश में उत्पन्न है। कवि कहता है—

**दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम को मरम न जाना।।**

राम की सबसे बड़ी विशेषता है कि मर्यादा पालन करने वाले हैं, वे परोपकारी, पाप विनाशक, भक्तों के रक्षक व धर्म के उद्धार के लिए युग–युग में अवतार लेते हैं। उनमें शील, शक्ति, व सौन्दर्य का समन्वय है। सौन्दर्य में वे तीन भुवनों की लज्जित करने वाले हैं। शक्ति द्वारा दुष्टों व पापियों को दहन करने वाले हैं तथा प्राणियों के लिए अनुकरणीय हैं। वे मर्यादा पुरूषोत्तम हैं और आदर्श की प्रतिष्ठा करने वाले भी हैं। उन्होंने अधर्म का विनाश व धर्म की रक्षा की है। राम ने गृहस्थ धर्म की उपेक्षा नहीं की, जबकि लोक सेवक बनकर सच्चे गृहस्थ धर्म की मर्यादा का पालन किया था। सीता के साथ विवाह करके जैसे सीता ने पतिव्रत धर्म का पालन किया था उसी प्रकार राम ने एक पत्नीव्रत का निर्वाह किया। राम के जीवन का आदर्श पक्ष सदा उन्नतशील रहा है। बाल्यावस्था से लेकर जीवनान्त तक उन्होंने सामाजिक मर्यादा का पालन किया था। उनके जीवन में कहीं पर भी कोई भी पक्ष या रूप ऐसा नहीं प्राप्त होता है, जहाँ उन्होंने सामाजिक व आदर्शवादी मर्यादा को तोड़ा हो। माता–पिता, भाई–बहन, सम्बन्धी मित्र, शुभ–अशुभ, सेवक–गुरू, सामान्य नागरिक या पूज्य ऋषि, पत्नी, ससुर आदि सभी के प्रति उनका व्यवहार जिस आदर्श की प्रतिष्ठा करता है—वह इतिहास आज तक नहीं भुला सका, क्योंकि इस दशा में उनका सानी कोई नहीं हुआ। एक विद्वान आलोचक का कथन है कि राम आदर्श पुत्र है, वे आदर्श राजा भी है, सीता आदर्श पत्नी है। कौशल्या आदर्श माता है। लक्ष्मण और राम आदर्श भाई हैं, उनका हनुमान आदर्श सेवक हैं, सुग्रीव आदर्श सखा है। इस काव्य में जीवन का मूल्यांकन आचार की कसौटी पर किया गया है। राजा प्रजा, पिता–पुत्र, पति–पत्नी, भाई–भाई, स्वामी–सेवक के सुन्दर अथच स्वस्थ सम्बन्धों पर आधृत समाज आचार के बल पर ही जी सकता है। राम मर्यादा पुरूषोत्तम हैं। 'आदर्श' की प्रतिष्ठा करके उनके जीवन का अथ और इति है। मर्यादा और आदर्श की प्रतिष्ठा करना मानो उनके जीवन का उद्देश्य था। उनके सामने चाहे कितनी ही विषम से विषम परिस्थिति हों, वे अपने मनोबल से उसका सामना करते रहे। आपत्ति में वे घबराए नहीं।

दस महाकाव्य में ऐसे पात्र भी हैं जिन्हें अपनी करनी का फल मिल गया। रावण और शूर्पणखा ने काम की मर्यादा का अतिक्रमण किया तो उन्हें इसका दण्ड मिल गया। रावण व परशुराम में मद की अतिशय थी। राम में भी अपनी वीरता का गर्व था जो सीमा का उल्लंघन का करना नहीं ज्ञात होता। राम अत्यन्त भ्रम, विनयी, विनम्र, शान्त स्वभावी, क्षमावान, परोपकारी व मर्यादा का पालन करने वाले थे। एक विद्वान का कथन है, "सच यह है कि 'रामचरितमानस' के पात्रों द्वारा तुलसीदास ने जिन नैतिक मूल्यों की स्थापना की वे जनता के मनोबल को दृढ़ करने वाले थे, उसे संघर्ष के रास्ते पर आगे बढ़ाने वाले थे। वस्तुतः तुलसीदास ने समग्र उत्तरी भारत के जीवन को राममय बना दिया था।" 'रामचरितमानस' में अनेक पात्र हैं जिन्हें तीन कोटि में रख सकते हैं, सत्वगुण, राजगुण प्रधान व तम गुण प्रधान। इन तीनों प्रकार के पात्रों का चरित्र–चित्रण इस महाकाव्य में प्राप्त है। अन्त में राम की रावण पर विजय दिखाकर मानो धर्म की अधर्म पर विजय दिखाई गयी है। चरित्र–चित्रण में तुलसी अनुपम कलाकार थे। राम, सीता, लक्ष्मण, आदि चरित्र मानव जाति को नूतन संदेश देते हुए दिखाई पड़ते हैं।

**6. रसाभिव्यक्ति ओर विविध भाव**—तुलसी रससिद्ध कवि थे उसका यह काव्य भक्ति के रस से परिव्यपाप्त रस है। काव्य के सभी रसों का समावेश इस रचना में प्राप्त है। यद्यपि 'रामचरितमानस' का प्रमुख रस शान्त है। तुलसी का काव्य विराट् है उसमें रसों का समावेश यथास्थान दिखाई पड़ता है। इतना अवश्य है कि मर्यादा पर चलते रहे इसी कारण उनके काव्यों में श्रृंगार रस की योजना मर्यादा रूप में या संयमित रही है। वे स्वयं यह कहते हैं–

**'जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहि सिंगारू न कहऊँ बखानी।।'**

अर्थात् शिव और पार्वती जगत् के माता–पिता हैं इसी कारण उनका श्रृंगारिक वर्णन मैं नहीं करता हूँ यही पूज्य दृष्टि उनकी राम और सीता के प्रति भी रही है। 'रामचरितमानस' में पुष्पवाटिका प्रसंग में जब सीता ने राम के दर्शन किए तो कवि कहता हैं–

**'नख–सिख देखि राम के सोभा। सुमरि पिता पनु भनु अति छोभा।।'**

राम ने भी जब सीता के नुपुरों की ध्वनि सुनी तो राम राम के हृदय की आवाज को अंकित करते हुए कवि कहता हैं–

**"देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदय सराहत वचनु व आवा।।**
**जनु विरंचि सब निज निचुनाई। विरचि विश्व कह प्रकटि दिखाई।।"**

इस प्रकार श्रृंगार रस का समावेश सीमित दायरे में प्रस्तुत है, परन्तु हास्य रस विविध प्रसंगों में है जैसे लक्ष्मण–परशुराम प्रसंग, केवट–राम प्रसंग इत्यादि में सुन्दर हास्य रस की योजना है। खरदूषण के कटक पर राम का आक्रमण व राम–रावण युद्ध का प्रसंग

वीर रस से युक्त हैं। रौद्र रस की अभिव्यक्ति लक्ष्मण में कई बार दिखाई पड़ी है जैसे सीता स्वयंवर में जब राजा जनक कहते हैं—'वीर विहीन मही मैं जानी' तो लक्ष्मण क्रोधित हो उठते है और उनकी जनक प्रति उक्ति रौद्ररसमय हैं। इसी प्रकार 'चित्रकूट' में लक्ष्मण का क्रोध, युद्ध में राम का रावण के प्रति क्रोध आदि प्रसंगों में भयानक रस है। राम—रावण युद्ध की परिसमाप्ति पर वीभत्स रस की अभिव्यक्ति है तो दशरथ—मृत्यु का प्रसंग, सीताहरण, लक्ष्मण मूर्छा आदि प्रसंगों में करूण रस की योजना की गयी है। अत विविध रसों की अभिव्यक्ति प्रसंगानुसार 'रामचरितमानस' में प्राप्त है। भक्ति रस का समावेश इस काव्य में आदि से अन्त तक हुआ है इसका मूल कारण यह था कि तुलसी मूलतः भक्त थे और उनकी भक्ति प्रमुखतः दास्य थी। रामकथा का पर्यावसान शान्तरस में हुआ है।

तुलसी भावना के कवि थे अतः उनके इस काव्य में विविध भावों की योजना प्राप्त है। तुलसी ने मानव—मन के अन्तस तल तक पहुँच कर उसकी विविध दशाओं, परिस्थितियों और रूपों को ज्ञात किया था तथा उनके मार्मिक से मार्मिक भावों का चित्रण किया था। इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्रशुक्ल का कथन है कि मानव—प्रकृति के जितने अधिक रूपों के साथ गोस्वामी जी के हृदय का रागात्मक सामंजस्य हम देखते हैं उतना अधिक हिन्दी भाषा के और किसी कवि के हृदय का नहीं। यदि कहीं सौन्दर्य है, प्रफुल्लता है, शक्ति है तो प्रणति है, शील है तो हर्ष है, पुलक गुण है तो आदर है, पाप है तो घृणा है, अत्याचार है तो क्रोध है, अलौकिकता है तो विस्मय है, महत्व है तो दीनता तुलसीदास के हृदय में बिम्ब—प्रतिबिम्ब भाव से विद्यमान है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने विशेष रूप में तत्कालीन दार्शनिक व धार्मिक मान्यताओं को एकता में बांधने का प्रयास किया है स्वय कवि भक्त को महत्व देते थे, फिर भी ज्ञानमार्ग की उन्होंने उपेक्षा नहीं की थी। वे कहते हैं—

**"ग्यानहि भगतहि नहि कछु भेदा। उभय हरहि भव संभव खेदा।।"**

तुलसी समन्वयवादी कवि थे अतः उन्होंने परमसत्ता के निर्गुण व सगुण में, निराकार व साकार रूप में समन्वय किया था इतना ही नहीं, उनकी भावना समाज की विषमता को दूर करने वाली थी। उन्होंने धर्म, व्यवहार को, विचारों को ऐसा समन्वयवादी रूप दिया था जो सभी को स्वीकार्य हो। उन्होंने धर्म के विषय में कहा था।

**"परहित सारस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।"**

परोपकार के समान कोई धर्म नहीं है व दूसरों को कष्ट देने वाले के सामन कोई अधर्म नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि व सच्चे समाज सुधारक थे। अतः उनके काव्य में धर्म, जाति, समाज आदि के प्रति अतीव उदात्त भावनाएँ हैं।

**8. विविध वर्णन व प्राकृतिक चित्रण**—'रामचरितमानस' एक वृहदाकार महाकाव्य है इसमें वर्णनों की विविधता ही नहीं बल्कि कहीं—कहीं वर्णन अति विस्तृत भी है। राम की बाल लीला, सीता स्वयंवर, राम—विवाह, कैकेयी—मंथरा का संवाद, चित्रकूट प्रसग भरत का चित्रकूट—गमन, भरत को ससैन्य देखकर लक्ष्मण का क्रोध, राम का पिता की मृत्यु पर दुख व श्राद्ध करना, राम—भरत संवाद आदि प्रसंग अत्यन्त सुन्दर हैं। इनका वर्णन कवि ने खुलकर किया है। कहीं—कहीं तो ऐसी चित्रात्मकता है जैसे कवि ने उन दृश्यों को देखा हो। यथास्थान कवि ने प्राकृतिक चित्रण भी किया है। प्राकृतिक चित्रण प्रायः आलम्बन रूप में है, कहीं—कहीं उद्दीपन रूप में भी प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए भरत जब वन प्रदेश में स्थित राम से मिलने जाते हैं तो चित्रकूट जाते समय मार्ग में सुन्दर वन प्रदेश हैं। कवि ने उनका विस्तृत वर्णन किया है जो प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण है जैसे

**"झरना झरहि मत्तगज गाजहिं। मनहुँ निसात विविध विधि बाजहिं।।**
**चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन।।"**

'अरण्यकाण्ड' में राम का अगस्त्य आदि ऋषियों के दर्शन करते हुए पंचवटी में पर्णकुटी बनाकर रहना, वहाँ पर रावण की बहिन शूर्पणखां राम के रूप पर मोहित होकर कहती है—

**"मम अनुरूप पुरूष जग माहीं। देखेऊँ खोजि लोक तिहुँ नहीं।।**
**ताते अब लगि रहिऊँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहिं निहारी।।"**

आदि वर्णन भी भले ही लघु हों, परन्तु अतीव सुन्दर है। सीताहरण, जटायु की अन्त्येष्टि, राम सुग्रीव—मैत्री, वानरों का सीता की खोज करना आदि वर्णन सुन्दर बन पड़े हैं।

**"दामिनि दमक रही घन माहीं। खनकै प्रीति जथा थिर नाहीं।।**
**वरषहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध विद्या पाए।।**
**बूंद अघात सहहिं गिरि कैसें। खलके वचन संत सह जैसे।।**

वर्षा के पश्चात् शरद ऋतु का भी कवि ने मनोरम चित्रण किया है। 'सुन्दरकाण्ड' में हनुमान का लंका प्रस्थान, लंकावर्णन,

सीता की खोज करना, अशोक वाटिका का विध्वंस, लंकादहन, वानरों का समुद्र पार करना आदि वर्णन भी मनोरम हैं। समुद्र का मानवीकरण किया गया है वह राम के पास आकर कहता है—

**"समय सिन्धु गहि पद प्रभु केरे। घमहुनाथ सब अवगुन मेरे।।**
**गगन समीर अनल–जल धरनी। इन्ह कई नाथ सहज जड़ करनी।।"**

'लंकाकाण्ड' में विविध वर्णनों के युद्ध का सजीव वर्णन किया गया है। साथ ही, लक्ष्मण–मूर्छा पर राम का विलाप अत्यन्त करूणापूर्ण है तथा हृदयद्रावक है। राम लक्ष्मण को मूर्छित देखकर कहते हैं—

**"सुत वित नारि भवन परिवारा। होहि जाहिं जंग बारंह बारा।।**
**अस विचारि जिउं जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।।"**

राम का उनके प्रति सगे भाई जैसा प्रेम है। 'उत्तरकाण्ड' में राम का अयोध्या आना, राम का राज्याभिषेक तथा रामराज्य का वर्णन अतीव मनोरम है इस प्रकार इस महाकाव्य की वर्णन योजना व प्राकृतिक चित्रण अकृत्रिम व आह्लादकारी है।

**9. पंचसधियों का समावेश**—'रामचरितमानस' में नाटकीय पंच संधियों का पूर्ण निर्वाह हुआ है। डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने उनका विवेचन इस प्रकार किया है—बालकाण्ड के आरंभ में उल्लेख है कि राक्षसों के अत्याचारों से पीड़ित होकर पृथ्वी और देवगण ब्रह्माजी के पास जाते हैं और भगवान् विष्णु आकाशवाणी के द्वारा उन्हें सांत्वना प्रदान करते हैं। काव्य के इस स्थल में मुखसंधि है। प्रतिमुख संधि उस स्थल में केन्द्रित है जब राम वन में निवास करते हैं और सीता हरण होता है। राम–सुग्रीव मित्रता, सीता–खोज, लंका से हनुमान के प्रत्यागमन आदि में गर्भसंधि है। युद्धाभिमान, सेतु निर्माण आदि में विमर्श संधि है। रावण वध से अयोध्या में रामराज्य तक की स्थापना तक के वर्णन में निर्वहरण संधि है। अतः संधि योजना की दृष्टि से भी यह महाकाव्य है।

**10. गरिमामयी भाषा–शैली**—तुलसीदास नाना शास्त्रों के ज्ञाता थे वं संस्कृतज्ञ थे। फिर भी उनकी मातृभाषा ब्रजावधि थी जिसका प्रयोग उन्होंने 'रामचरितमानस' में किया है। इस काव्य के आदि में उन्होंने संस्कृत के श्लोक भी प्रस्तुत किए हैं। ऐसा प्रस्तुत होता है कि संस्कृत लिखने की उनकी कोई इच्छा न थी वे अपने विचार जनभाषा में ही प्रस्तुत करना चाहते थे। जैसाकि उन्होंने कहा हैं—

**'गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान'**

भाषा अवधी व ब्रज का मिश्रण रूप होने पर भी उन्होंने अयोध्या, चित्रकूट, राजापुर व काशी में निवास किया था तथा पश्चिमी उत्तरप्रदेश में रहने के कारण उन पर मुसलमानी भाषाओं का भी प्रभाव रहा है। इसी कारण उनकी भाषा में अरबी, फारसी, उर्दू, राजस्थानी, पंजाबी आदि के शब्द मिल जाते हैं।

'मानस' में मुख्य रूप से दोहों और चौपाइयों का प्रयोग है। परन्तु सोरठा, हरिगीतिका, तोतक, नाराच, भुजंगप्रयात आदि अनेक छन्द भी प्राप्त है। महाकाव्य के नियमों के अनुसार प्रत्येक सर्ग के अन्त का पद परिवर्तित छंद में होना चाहिए। काण्ड के अन्त में हरिगीतिका छंद है। संस्कृत व ब्रजभाषा को उन्होंने इतने सुन्दर ढंग से संजोया है कि भाषा महाकाव्य के अनुरूप बन पड़ी है। फिर भी उनकी शैली को व्यास–शैली कहना चाहिए क्योंकि उनके पद भावों की गहनता को लेकर भी सहज ज्ञातव्य है।

तुलसीदास की कविता–कामिनी अलंकारों से सहज सुसज्जित हैं। विविध अलंकारों का प्रयोग होने पर भी वह अलंकारों से लदी हुई नहीं है, बल्कि सुशोभित है। विविध शब्दालंकारों व अर्थालंकारों की योजना 'रामचरितमानस' में प्राप्त है। फिर भी उपमा अलंकार का प्रयोग सबसे अधिक है। शायद ही कोई ऐसा पृष्ठ हो जहां पर उपमा का सौन्दर्य न बिखरा हुआ है। कुछ विद्वान तो तुलसी की उपमा को संस्कृत के महाकवि कालिदास से भी अधिक मानते हैं। उपमा अलंकार का उदाहरण इस प्रकार है—

**"निज अध समुझि न कछु कहि जाई। तवै अवा इव उर अधिकाई।।"**

(अपना आप समझकर कुछ कहते नहीं बनता, परन्तु हृदय कुम्हार के आवे के समान अत्यन्त जलाने लगा है।) यहाँ पर सती के आन्तरिक पश्चात को 'आवा' की समानता करके सुन्दर रूप से व्यक्त किया है। इसी प्रकार तुलसी कहते हैं—

**"कीरति भनिति भूति भलि होई। सुरसरि सम सब कहै हित सोई।।"**

यश, वाणी, सम्पदा को गंगा के समान हितकारी मानकर उसकी प्रशंसा की है। तुलसीदास उत्प्रेक्षा अलंकार के प्रयोग में भी सिद्धहस्त थे। कहा जाता है कि मानस उत्प्रेक्षाओं का रत्नाकार है। उदाहरण के लिए सीता की सुन्दरता के लिए कवि कहता है—

**सुन्दरता कहै सुन्दर करई। छविग्रह दीपशिखा जनु बरई।।**

(सीता की सुन्दरता मानो सुन्दरता को भी सुन्दर करने वाली है। मानो सुन्दरता रूपी घर में दीपक की लौ जल रही है।)

# अध्याय 9

# तुलसीदासजी की विनय भावना

'विनय' अर्थात्–विनम्रता। किसी व्यक्ति विशेष के प्रति गुणों की अतिशयता को देखकर जो नम्रता का भाव हृदय में उत्पन्न होता है उसे विनय कहते हैं। गर्व अथवा औदात्य भाव के परिहारार्य किया जाने वाला अनुनय या अपने किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए किया जाने वाला विनम्र निवेदन भी विनय की श्रेणी में ही रखा जाता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने आराध्य भगवान श्रीराम का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए उनसे तथा उनके अनुग्रह में सहयोग देने के लिए विभिन्न देवों से अत्यन्त विनम्र शब्दों में अपनी आकांक्षा व्यक्त की है। विनय भावना की दृष्टि से तुलसीदास जी की 'विनय पत्रिका' सर्वश्रेष्ठ कृति कही जा सकती है। इसमें कवि का हृदय अत्यन्त व्यापक रूप में उजागर हुआ है। कि उनकी हतन्त्री के एक–एक तार के स्वर को अलग–अलग सुना जा सकता है। उसमें हमें दैन्यभाव का मार्मिक चित्रण मिलता है।

कलियुग की यातनाओं से व्यथित कवित ने हनुमान जी के प्रेरणा से अपने आराध्य श्रीराम की चरण शरण ग्रहण करने का प्रयास इसके माध्यम से किया है कलियुग के उत्पीड़न से पीड़ित उसके जीवन में गहरी वेदना भरी हुई है। यह वेदना मात्र उनके अपने हृदय की नहीं है बल्कि इसमें मानव मात्र की व्यथा का आधार पारावार उर्मिला होता दीख पड़ता है। इस व्यथा अथवा पीडा से मुक्ति पाने के लिए तुलसीदास का एक सामान्य प्रजा जन के रूप में राजा राम के दरबार में विनय पत्रिका के रूप मे अपना प्रार्थना पत्र भेजते हैं। क्योंकि यह पत्रिका राज दरबार में भेजी जाती है अतः राजदरबार के सभी नियमों का निर्वाह करते हुए वे अपनी व्यथा कथा राजा राम के कानों तक पहुँचाना चाहते हैं, अतः वे पूरी तरह उस भरणि का अनुसरण करते हैं जिसका एक राजा के दरबार में प्रार्थना पत्र पहुँचाते समय पालन करना अनिवार्य होता है। यही कारण है कि हमें 'विनयपत्रिका' में एक परम्परागत व्यवस्थित क्रम मिलता है।

किसी भी राजदरबार में अनेक दरबारी होते हैं। जिनकी सहायता के बिना किसी भी व्यक्ति की पहुँच राजा तक नहीं हो सकती। अतः अपनी प्रार्थना राजा तक पहुँचाने के लिए इन दरबारियों को रिझाना, उन्हें खुश करना आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है, अन्यथा संभव है ये दरबारी प्रार्थना पत्र पर विचारहीन होने दें अथवा कार्य ही न सिद्ध होने दें, राजा को कुछ का कुछ परामर्श देकर ये कार्य में बाधा भी पहुँचा सकते हैं।

यदि वे प्रार्थी पर प्रसन्न हों तो वे राजा को समझा बुझाकर प्रार्थना करने वाले का कार्य सिद्ध करा सकत हैं। यह बात ध्यान में रखकर गोस्वामी जी ने राजा श्रीराम के दरबारी देवताओं की क्रमशः स्तुति की है। इस स्तुति में उन्होंने सब देवताओं का श्रीराम को उनके अनुकूल बनाने के लिए प्रयास किया है। भारतीय संस्कृति में गणेश अग्रपूज्य है। अतः उन्होंने सर्वप्रथम श्री गणेश से ही श्रीराम को अपने अनुकूल बनाने की प्रार्थना इस प्रकार की है–

**'गाइए गणपति जगवंदन। संकर सुवन भवानी नंदन।**

**× × × माँगत तुलसीदास कर जोरे।**

**बसहिं रामन सिय मानस मोरे।'**

गणेश की वंदना के पश्चात् गोस्वामी जी ने क्रमशः सूर्य, शिव, शक्ति, गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की विस्तार से स्तुति की है। इस विस्तृत स्तुति का उद्देश्य भी श्रीराम तक उनकी संस्कृति पहुँचा उन्हें प्रसन्न करना अथवा अपने अनूकूल बनाना ही है। क्योंकि इन सबका राम से अधिक निकट का संबंध है। अतः इन्हें अनुकूल बनाकर इनके अनुग्रह से राम का प्रसाद प्राप्त करना तुलसी का कार्य है। यह उनकी व्यावहारिक कुशलता का परिचायक तो है ही उनकी सूझबूझ का दिग्दर्शन भी है। सूर्य क्योंकि उनके कुल के आदि है। अतः गणेश जी कि स्तुति के पश्चात् उनकी स्तुति की गई है। फिर शिव और शक्ति की स्तुति की गई है। शिव क्योंकि राम के अनन्य भक्त तथा शक्ति स्वयं राम की ही माया की ही अभिव्यक्ति हैं तथा नारी होने के कारण उनका शीघ्र द्रवित होना संभव है। अतः उनकी स्तुति करते हुए कहते हैं–

**"दुराह दोष दुःख दलानि, मरुदेवी दाया। विस्व मुलाइसि, जम सानुकूलादसि,**

**कर सूल धारिनी महामूल माया। × × ×**

**दहि या मोहिपन प्रेम यह, नेम निज, राम घनश्याम तुलसी पपीहा।**
**विष्णु पदकंज इव अम्बुवर बहसि, दुःख बहसि अधवृन्द विद्रा विनी।**
**× × × देहि रघुवीर पद प्रीति निरभर मातु।**
**दास तुलसी त्रास हरनि भव भामिनी।"**

गंगा जिसका दूसरा नाम है विष्णु नदी क्योंकि भगवान विष्णु के चरणों से उद्‌भूत हुई है। विष्णु के अवतार राम के अधिक निकट है, यह विचार कर तुलसीदास ने गंगा की स्तुति करते हुए कहा है–

**विष्णु पद सरोज जासि, ईस–सीस पर विभासि, त्रिपथ भासि, पुण्य राक्षि, पाप, छालिका।**
**× × × × तुलसी सब तीर–तीर सुमिरत रघुवंश वीर,**
**विचरत मति देहि मोह–महिष–कालिका।"**

इस प्रकार तुलसीदास ने उपर्युक्त सभी देवताओं की स्तुति करके उनसे रामभक्ति की याचना की है। अपनी स्तुति से सभी देवी–देवताओं को प्रसन्न कर उन्होंने राज दरबार में प्रवेश का सुगम मार्ग प्राप्त कर लिया है और वे आशान्वित भी हो चले हैं कि उनकी पत्रिका राम तक अवश्य पहुँच जाएगी ओर उस पर शीघ्र कार्यवाही भी होगी। परन्तु मात्र दरबारियों को प्रसन्न कर लेने से कार्य नहीं चल सकता।

इसके साथ ही तुलसीदास जी इस तथ्य से भी परिचित हैं कि किसी भी व्यक्ति से उसी समय कार्य सम्पन्न कराया जा सकता है जब उसकी मनःस्थिति अनुकूल हो। राम क्योंकि साधारण मानव नहीं हैं, अतः उनकी मनःस्थिति को ध्यान में रखना और भी आवश्यक है। अतः तुलसी अत्यन्त सूझ बूझ के साथ एक सरल मार्ग ढूँढ निकालते हैं, वे अपनी विनय भावना स्वयं राम को न सुनाकर माता सीता के द्वारा उन तक पहुँचाने का कार्य करते हैं, क्योंकि पत्नी पति का अर्धांग तो होती ही है, महाकवि कालिदास के शब्दों में "गृहिणी, सचिव, मिथः ससी, प्रिय शिष्या ललिते कला विधो" भी होता हैं श्रांत, क्लान्त पति के घर लौटने पर वह अपनी सेवा द्वारा उसे रिझाकर उससे अपना कार्य करवा लेती है। इसके अतिरिक्त उसे ही यह भली–भांति जानकारी होती है कि किस समय उनके पतिदेव की मनोदशा इस प्रकार की होगी कि वे उसकी बात मनोयोगपूर्वक सुन सकेंगे। यह सब सोचकर तुलसीदास जी उनसे अनुनय निवेदन करते हैं–

**"कबहुँक अम्ब अवसर पाइ। मेरिऔ सुधि छाइबो कछु कहन कथा चलाइ।।**
**दीन, सब अंग, हीन, छीन, मलीन, अधी, अघाइ। नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी दास कहाई।।**
**बुझि हैं सो हें कौन' कहिबौ नाम दसा जनाइ। सुनत राम कृपालु मेरो बिगरिओ बन जाइ।।**
**जानकी जग जनाने जनकी किए वचन अहाइ। तरै तुलसीदास अब नाथ गुन–गान गाई।।**
**× × × कबहुँ समय सुधि द्यामबी, मेरी मातु जानकी।**
**जनक हाइ नाम लेत हौं, किए पन चातक ज्यों, व्यास प्रेम पानकी।।"**

इन पंक्तियों के द्वारा तुलसीदास जी ने स्पष्ट किया है कि वे व्यवहार ज्ञान के कितने ज्ञानी हैं। वे जानते है कि भगवान राम को सर्वाधिक प्रभावित माता जानकी ही कर सकती हैं और वे ही भली–भाँति इस तथ्य से परिचित हैं कि राम की मनोदशा कब कैसी रहती है तथा कब बात उनके सामने प्रस्तुत करने पर अपने अनुकूल फल की आशा की जा सकती है। यह सब विचारकर ही वे सीता जी को माँ ! शब्द से संबोधित करते हैं और उसी में अपनी सारी करूणा इस प्रकार अनुस्यूत कर देते हैं कि पुत्र वत्सला माँ उस करुणा से भरी पुकार को अनसुना कर ही नहीं पाती। उनकी वात्सल्योपलब्धि के पश्चात् वे उनसे सविनय निवेदन करते हैं कि हे माँ ! कभी यदि अवसर मिल जाए तो किसी करूण कथा के ब्याज से भगवान राम को मेरा स्मरण कराना। कितनी कुशलता से तुलसीदास जी ने भगवती सीता द्वारा राम तक अपनी बात पहुँचाने की कोशिश की है। वे इस ढंग से राम तक अपनी करूण कहानी पहुँचाना चाहते हैं जिससे उनकी चर्चा राम के हृदय पर प्रभाव डाले इसके लिए वे जानकी से वे निवेदन करते है कि पहले कोई और करूण कथा चलाकर फिर उसी प्रसंग में मेरी दीनता की कथा राम को सुनाना और बताना कि जिस व्यक्ति की करूण कथा वे सुना रही है वह उन्हीं की दासी का दान है। इस कथन में तुलसीदास ने कितना विनय भाव भर दिया है जिस पद्धति से उन्हें अपनी बिगड़ी बनाने की आशा है वह उनकी विनय के अनुकूल है।

सीता जी की स्तुति के पश्चात् तुलसीदास जी को विश्वास हो जाता है कि अब वे बिना किसी व्यवधान के राम के निकट पहुँच अपनी विनय पत्रिका उन्हें प्रस्तुत कर सकते हैं और इस विश्वास के मन में आने पर वे विस्तार से श्रीराम की स्तुति करते हैं। इस स्तुति में वे श्रीराम का विस्तार से गुणगान करते हैं। और उनके पूर्व हुए दशावतारों के महत्व का बखान करते हुए इस बात की झलक दी है। कि वे जिसे अपनी विनय सुनाना चाहते हैं, उसके महत्व का बखान यदि न किया गया तो उसे आकृष्ट किस प्रकार किया जा सकेगा अपनी ओर बिना आकृष्ट किए विनय का प्रभाव ही क्या होगा। अतः उनके गुणगान द्वारा अपने प्रति उन्हें आकृष्ट करने के पश्चात् तुलसी अत्यन्त स्पष्ट रूप से अपनी विनय भावना को राम के सामने प्रस्तुत करते हैं, इस अभिव्यक्ति में उनकी दीनता, आत्म प्रकाशन तथा दुःख निवेदन अत्यन्त स्पष्ट एवं मार्मिक शब्दों में उजागर हुआ है। यही विनय पत्रिका का मूल भाग है जो अत्यन्त शालीन विनय को लेकर उस विनय को स्वीकारने में सक्षम अधिकारी के सामने प्रकट हुआ है। तुलसीदास ने अपने जन्म जन्मान्तर की दुःखद कथा को सुनाते हुए अपनी वर्तमान करूण दशा से राम को जीवित कराया है तथा अनेक प्रकार के आत्मग्लानि से गलते मन को ढांढस बँधाया है।

अपनी विनय भावना के माध्यम से तुलसी ने एक अभिनव व्यावहारिक श्रेणी उन लोगों के लिए प्रस्तुत की है जो विनय सुनना चाहते हैं। उन्होंने बार–बार अपने उद्धार का आग्रह करने की अपेक्षा अपनी दीन हीन दशा प्रकट कर अपने आराध्य के हृदय की इच्छा जगाने का प्रयास किया है। वे कहते हैं–

**1. मोहि मूढ मन बहुत बिगोयो। याके लिए सुनहू करूनामय, मैं जग जनमि जनानि दुःख रोयो।**
**शीतल मधुर पियूष सहज सुख निकट हि रहत दूरि जनु खोयो।**
**करम कीच जिय जानि सानि चित, चाहत कुटिल मलहिमला धोयो।**
**2. कैसे दे उन्नयहि खोरि, काम लोलुप भ्रमत मन हरि भागति परिहाई तोरि।**
**× × × × लोभ मनाहिं न चाव कापी ज्यों गरे आसा डोरि।**
**बात कहौं बनाइ बुध ज्यों बर बिराग निचोरि। एते हूँ पर तुम्हरो कहावत लाज ऊँचाइ घोरि**
**निलजता पर रीझि रघुवर देहु तुलसिहिं छोरि। × × ×**
**कहाँ जाऊँ, कासौं कहौं, कौन सुने दीन की। त्रिभुवन तु ही मति सब अंगहीन की।**
**× × × ताहि तें आयो क्षरन सवेरें।**
**ग्यान विराग भगति साधन कछु सपने हूँ नाथ न मेरे।**

यह विनय भावना जिसमें तुलसीदास ने अपने हृदय की समस्त वेदना को व्यक्त किया है भगवान राम के चरणों में निवेदित है यह कार्य उन्होंने अर्थात् यह विनयभावना उन्होंने स्वयं अपने हाथों से अपने आराध्य भगवान श्रीराम के समर्पित करने के इच्छुक हैं परन्तु संकोचवश यह कार्य स्वयं नहीं करना चाहते, क्योंकि राम साधारण व्यक्ति नहीं हैं कि जिन्हें उस जैसा सामान्य जन जब चाहे आगे बढ़कर अपना प्रार्थना पत्र दे दे । राज दरबार की एक मर्यादा होती है जिसके अन्तर्गत उचित माध्यम से राजा के कर कमलों तक प्रार्थना पत्र पहुँचाया जा सकता है अतः तुलसीदास जी की दृष्टि हनुमान और लक्ष्मण पर ठहरती है क्योंकि इन्होंने राम के लिए जो कुछ किया है उसे देखते हुए उन्हें विश्वास है कि उनके द्वारा प्रस्तुत की जाने पर उनकी विनय पत्रिका अस्वीकृत हो सकती है। यह सब विचार कर वे भरत, लक्ष्मण और हनुमानजी से प्रार्थन करते हैं कि वे उनकी विनय पत्रिका को भगवान श्रीराम के सन्मुख प्रस्तुत कर दें–

**"पवन, सुवन, रिपु, दमन, भरत लाल लखन दीन की। निज निज अवसर सुधि किए, बलि जाऊँ।**
**दास आज पूजि है खास खील की। राज द्वार भली सब कहैं साधु समी चीन की।**
**सुकृत सुनय साहिब कृपा स्वस्थ परमारथ। गति भए गति विहिन की।।"**

इस प्रार्थना का अनुकूल प्रभाव हुआ। राम के दरबार में जहाँ अनेक देवता विराजमान थे हनुमान तथा लक्ष्मण की महिमा देखकर लक्ष्मण ने तुलसी की विनय पत्रिका भगवान श्रीराम के सामने इन शब्दों के साथ प्रस्तुत कर दी–

**"काली कालहु नाथ ! नाम सौ परतीति प्रीति एक किकार निर्वाह है। मारुति मन, रुचि भरत को लषण कही है।**

तुलसीदास जी विनय पत्रिका भगवान श्रीराम के सामने प्रस्तुत करने से पूर्व राजदरबार के सभी देवताओं से अपनी स्तुति से अपने अनुकूल कर ही चुके थे। अतः जब लक्ष्मण ने पत्रिका प्रभु के सामने प्रस्तुत की तब सबने एकमत से तुलसी की कलिकाल में भी दृढ़तापूर्वक राम की भक्ति करने वाला श्रीराम का अनन्य भक्त प्रतिपादित किया और लक्ष्मण के कथन का इन शब्दों में समर्थन किया "कि हाँ लक्ष्मण ने तुलसी के संबंध में जो कुछ भी कहा है वह पूर्ण सत्य है। हम सब भी तुलसी की भक्ति की दृढ़ता से भली भाँति परिचित हैं–

**"सकल सभा सुनि लैं उठि, जानी रीति रही है। कृपा गरीब निवाज जी।**
**देखत गरीब को, साहब बाहँ गही है।।"**

जब सारी परिषद का समर्थन तुलसी के पक्ष में देखा तब श्रीराम उसे अस्वीकृत कर देते यह कैसे संभव था ? उन्हें भी अपने पार्षदों, अनुज और सेवकों की बात को मान देना आवश्यक था अतः उन्होंने हँसते हुए कहा–

**"विहँसि राम कह्यौ सत्य है। सुधि मैं हूँ लही है।"**

राम के कथन से विदित होता है कि पहले से ही तुलसीदास के संबंध में बहुत कुछ जान चुके थे। संभव है यह जानकारी उन्हें भगवती सीता द्वारा प्राप्त हुई हो क्योंकि तुलसीदास जी ने उन जगन्माता से करूण स्वर में अवसर पाकर किसी करुण कथा प्रसंग में अपना स्मरण भगवान श्रीराम को दिलाने का आग्रह किया था। जब माँ ने पुत्र की संस्तुति कर दी तो तब पिता अस्वीकृत कर ही कैसे देते। राम ने तुलसी की विनय भावना को स्वीकार कर उस पर अपने हस्ताक्षर कर उन्हें काली के भय से अभय कर दिया। तुलसी कृतकृत्य हो गए–

**"मुदित माथ नावत, बनीं तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ हाथ सही है।"**

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त कहा जा सकता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी की विनय भावना आरम्भ से अंत तक अत्यन्त शालीन एवं संयम के साथ अभिव्यक्त हुई है। उनकी विनय की पद्धति इतनी प्रभावपूर्ण तथा सामाजिकता और मनोवैज्ञानिकता से परिपूर्ण है कि उसका अनुसरण कर्ता अपनी विनय को असफल होता देख ही नहीं सकता। तुलसी ने राम की महत्ता तथा स्वयं की दुर्बलता से उभय पक्ष को परिचित कराकर अपनी विनय से इस प्रकार प्रभावित किया है कि श्रोता मात्र श्रोता न रहकर प्रार्थी के लिए कुछ करने पर विवश हो जाता है। "प्रभावपूर्ण विनय सफलता का द्वार है" यह तुलसी की विनय भरी वाणी के प्रवाह को देखकर सहज ही जाना जा सकता है।

# अध्याय 10

# तुलसीदासजी का समन्वयवाद

## समन्वय भावना

जिस युग में तुलसीदासजी का आविर्भाव हुआ, उस युग में धर्म, समाज, राजनीति आदि के क्षेत्रों में सर्वत्र पारस्परिक वैषम्य एवं भेदभाव का बोलबाला था। धर्म के क्षेत्र में एक ओर हिन्दू–मुस्लिम भावनाओं के कारण वैमनस्य जड़ पकड़ रहा था, दूसरी ओर शैव, शाक्त एवं वैष्णव मत के अनुयायियों में भी पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष बढ़ता चला जा रहा था। दक्षिण भारत में तो यह विद्वेष एवं वैमनस्य इतना बढ़ा कि शिव कांची एवं विष्णु कांची तक का निर्माण हो गया। उतरी भारत में भी प्रायः धार्मिक संघर्ष चलते रहते थे और ये संघर्ष तत्कालीन धार्मिक शांति के सर्वथा प्रतिकूल थे। धार्मिक शांति के साथ–साथ सामाजिक शांति भी भंग हो रही थी। ब्राह्मण और शुद्र एवं ऊँच और नीच के भेदभाव से हिन्दू समाज विश्रृंखलित हो रहा था, उसमें पारस्परिक वैमनस्य के साथ–साथ वर्ग भेद उत्पन्न होता जा रहा था और वर्ग भेद की यह खाई इतनी गहरी होती जा रही थी कि उसे देखकर यही ज्ञात होता था, कि हिन्दू–समाज पतन के कगार पर पहुँच चुका है। यही दशा राजनीति एवं साहित्यिक क्षेत्रों में भी थी। आपस में ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य एवं विद्वेष के कारण समूचे भारत में घोर अशांति एवं विषमता का वातावरण उत्पन्न हो गया था। उस समय अकबर जैसे धार्मिक सहिष्णु शासक ने पारस्परिक ऐक्य एवं समता के लिए प्रयत्न अवश्य किए, परन्तु उन प्रयत्नों के पीछे उसकी स्वार्थमयी मनोवृत्ति एवं राज्य–लिप्सा होने के कारण उसे भी अधिक सफलता नहीं मिली। हाँ, तत्कालीन संत कवियों ने अवश्य सारे भारत में भावात्मक एकता स्थापित करने का सफल प्रयत्न किया। गोस्वामी तुलसीदास भी उन्हीं संत कवियों में से एक थे, जिन्होंने तत्कालीन परिस्थिति का गहराई के साथ अध्ययन एवं अनुशीलन करके समाज में व्याप्त विषमता एवं वैमनस्य दूर करने का प्रयत्न किया। तुलसीदास जी ने उस विषमता को दूर करने के लिए समन्वय की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया और स्वयं धर्म, राजनीति, समाज, साहित्य आदि के क्षेत्रों में यथासंभव समन्वय स्थापित करते हुए पारस्परिक विरोध एवं वैमनस्य को दूर करने का प्रयास किया। इस समन्वय के लिए तुलसी ने सामाजिक, पारिवारिक आध्यात्मिक, धार्मिक, राजनीतिक, भौतिक आदि सभी क्षेत्रों को चुना और इन क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करते हुए तत्कालीन जन–जीवन में व्याप्त घोर अशांति, पापाचार, अनाचार, अधार्मिकता, विषमता आदि को दूर करने की सफल चेष्टा की। अपने इसी समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण तुलसी लोकनायक भी कहलाते हैं। संक्षेप में तुलसी के समन्वयवादी विचार इस प्रकार हैं–

**1. शैव एवं वैष्णव मत का समन्वय**–भारतीय विचारधारा के अनुसार त्रिदेव की कल्पना बड़ी महत्वपूर्ण मानी गई है। इसके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीन प्रमुख देव माने जाते हैं। जिनमें से ब्रह्म सृष्टि के उत्पादक हैं, विष्णु सृष्टि के पालक हैं और शिव सृष्टि के संहारक हैं। इसी आधार पर विष्णु को अपना सर्वस्व मानने वाले भक्त 'वैष्णव' कहलाते हैं और शिव को अपना सर्वस्व मानने वाले 'शैव' कहलाते हैं। कालान्तर में वैष्णव एवं शैव मतों में विष्णु और शिव को ही सृष्टि का उत्पादक, पालक संहारक कहकर सर्वशक्तिमान माना जाने लगा और फिर आपस में विद्वेष भी फैल गया, जिसके परिणामस्वरूप वैष्णव शैवों को तुच्छ एवं हेय दृष्टि से देखने लगे और शैव भक्त वैष्णवों से घृणा करने लगे। तुलसी के समय में यह विद्वेष अपनी चरम सीमा पर पहुँचा हुआ था। अतः तुलसी ने दोनों मतों में समन्वय स्थापित करने के लिए एक ओर तो शिव के मुख से–

**'सोइ मम इष्टदेव रघुवीरा, सेवत जाहि सदा मुनि धीरा।'**

कहलवाकर शिव को राम का उपासक सिद्ध कर दिया तो दूसरी ओर राम के मुख से–

**"संकर प्रिय मम द्रोही, शिव द्रोही ममदास। ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महूँ बास।।"**

कहलवाकर राम को शिव का अनन्य प्रेमी सिद्ध कर दिया है। इतना ही नहीं, तुलसी ने सेतु (पुल) का निर्माण होने पर राम के द्वारा शिव की प्रतिष्ठा एवं पूजा–अर्चना कराकर राम को शिव का अनन्य भक्त भी सिद्ध कर दिया है। साथ ही–

**'हरि हर पद रति मति न कुतर की'**

कहकर तुलसी ने राम और शिव में अभेद एवं अभिन्नत्व भी स्थापित किया है और राम–स्त्रोत के साथ 'रामचरितमानस' में ही शिव–स्त्रोत की रचना करके इस पार्थक्य एवं वैमनस्य को दूर करते हुए शिव एवं विष्णु के अवतार राम में पूर्णतया समन्वय स्थापित कर दिया है।

**2. वैष्णव एवं शाक्त मत का समन्वय**–शिव और विष्णु के भक्तों में जिस तरह पारस्परिक वैमनस्य एवं विद्वेष फैला हुआ था, उसी प्रकार वैष्णवों एवं शाक्तों में भी उस समय घोर संघर्ष चलता रहता था। संभवतः इसी कारण कबीर ने भी

**'वैष्णव की छपरी भली, नहिं साकत को गाँव'**

कहकर शाक्तों की अपेक्षा वैष्णवों को श्रेष्ठता प्रदान की थी। परन्तु तुलसी ने शैव एवं वैष्णवों की भांति शाक्तो एवं वैष्णवो के संघर्ष एवं वैमनस्य को दूर करते हुए 'शक्ति' की भी उपासना की, और 'रामचरितमानस' में सीता को ब्रह्म की शक्ति बताकर तथा -

**उद्भव स्थिति संहारकारिणी क्लेशन्हारिणी सर्वश्रेयकारी'**

आदि कहकर शक्ति की इस प्रकार प्रार्थना की--

**"नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव वेद नहिं जाना।।**
**भवन्भव विभव पराभव कारिनि। विश्व विमोहनि, स्ववस विहारिनि।।"**

इस प्रकार के कथन के द्वारा शाक्त मत में वर्णित शक्ति को भगवान राम की प्रिया कहते हुए तथा 'नतोऽहं रामवल्लभाम द्वारा उस शक्ति के प्रति पूज्य भाव प्रकट करते हुए तुलसी ने शाक्त एवं वैष्नवों में भी समन्वय स्थापित किया, जिससे शाक्त भी अपने को एक धर्म का अंग समझने लगे।

**3. रामावत सम्प्रदाय एवं पुष्टिमार्ग का समन्वय**--तुलसीदास स्वामी रामानन्द के शिष्य सम्प्रदाय में स्वामी नरहर्यानेन्द के शिष्य होने के कारण रामावत सम्प्रदाय में ही दीक्षित हुए थे। रामावत सम्प्रदाय में राम को ही परब्रह्म माना गया है तथा ब्रह्म के पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्थावतार नामक पाँच रूप माने गए हैं। इन्हीं रूपों में उनकी आराधना एवं अर्चना होती है। तुलसी ने उक्त पाँचों रूपों के अनुकूल ही 'रामचरितमानस' में भगवान राम का चित्रण किया है, परन्तु इसके साथ ही पुष्टिमार्ग के अनुसार ब्रह्म की कृपा अथवा अनुग्रह को भी सर्वोपरि बताया है और सिद्ध किया है कि कितनी ही पूजा, अर्चना एवं उपासना की जाए किंतु भगवान की कृपा के बिना कभी कुछ नहीं होता। इसीलिए तुलसी ने--

**"तुम्हरिहिं कृपा तुमहिं रघुनन्दन, जानहिं भगत भगत उर चंदन।"**

कहकर स्पष्ट किया है कि भगवान की कृपा से ही भगवत् साक्षात्कार होता है। साथ ही बिना भगवान की कृपा के राम की भक्ति भी प्राप्त नहीं होती। इसीलिए तुलसी लिखते हैं--

**राम भगति मन उर बस जाके। दुःख लवलेश न सपने हूँ ताके। चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं।।**
**सो मनि जदपि प्रकट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई।।**

इस प्रकार राम की भक्ति में भी राम की कृपा की महत्ता प्रदर्शित करते हुए तुलसी ने रामावत समुदाय एवं पुष्टिमार्गीय मत में सुंदर समन्वय स्थापित किया है।

**4. अद्वैतवाद एवं विशिष्टा द्वैतवाद का समन्वय**--तुलसी ने दार्शनिक विचारों में भी समन्वय स्थापित करने का सुदर प्रयास किया है। तुलसी से पूर्व सभी भक्ताचार्यों के शंकर के अद्वैतवाद का खण्डन करके अपने--अपने मत की स्थापना की थी। उस समय शंकर का अद्वैतवाद के अनुसार 'ब्रह्म सत्यं जग मिथ्या' की मान्यता थी। इसीलिए शंकराचार्य ने शंकर के अद्वैतवाद का खण्डन करके अपने--अपने मत की स्थापना की थी। इसीलिए रामनुजाचार्य ने शंकर के अद्वैतवाद का विरोध करके अपने विशिष्टाद्वैतवाद का प्रचार किया, मध्वाचार्य ने द्वैतवाद का प्रचार किया, विष्णु स्वामी ने शुद्धाद्वैतवाद का प्रतिपादन किया और निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैत का प्रचार किया था। यद्यपि गोस्वामी जी रामानुजाचार्य के मतानुयायी होने के कारण विशिष्टाद्वैतवाद को मानते थे और इसी कारण अपने जीव को ईश्वर का अंश, कहकर ईश्वर की ही भाँति चेतन, अमल, अविनाशी आदि कहा है; ब्रह्म का सगुण, निर्गुण, अगुन, अरूप, अलख, अज आदि कहकर विशिष्टता प्रदान की है तथा 'पल्लवत फूलत नवल नित संसार विटप नमामहे' तथा 'जौं जँग मृषा ताप त्रय अनुभव होत कहहु केहि लेखें' आदि कहकर विशिष्ट द्वैतवादियों की भांति संसार को नित्य, शाश्वत एवं अविनाशी घोषित किया है, परन्तु 'विनय पत्रिका' में आकर तुलसी ने शंकर के अनुसार ब्रह्म को अज, स्वतन्त्र, सर्वज्ञ, सत्य आदि कहा है; जीव और जगत को मिथ्या बताया है तथा माया का निरूपण भी शंकर की ही भाँति किया है। गोस्वामी जी ने इन दोनों मतों में समन्वय स्थापित किया है। वे एक ओर तो शंकैराचार्य के 'जगान्मिथ्या' के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए प्रतीत होते हैं--

**"जागु--जागु जीव जड़ जो है जाग जामिनी। देह--गेह--नेह जानि जैसे घन--दामिनी।**
**सोवत सपनेहूँ सहै संसृति संताप रे। बूड्यो गृत--तारि खायो--जेवरी को सांप रे।"**

तो दूसरी ओर उन्होंने ब्रह्म एवं जीव के मध्य माया का आवरण भी स्वीकार किया है--

**"ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुख राखी। सो माया बस परयो गोसाई। बच्चों कीर मरकट की नाई।।"**

सत्य तो यह है कि तुलसीदास ने अद्वैत सत्ता को स्वीकार किया है किंतु सृष्टि की प्रक्रिया के व्यवहार--पक्ष में वे किसी एक

सिद्धान्त में बंधे हुए नहीं हैं। सच्चे के लिए द्वैत, अद्वैत एवं विशिष्टाद्वैत नामक भेदों से ऊपर उठाना आवश्यक है—

**"कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ माने। तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम, सो आपुन पहिचानै।।"**

**5. ज्ञान और भक्ति का समन्वय**—तुलसी के समय में ज्ञानियों एवं भक्तों में बड़ा विवाद चल रहा था, जिसके फलस्वरूप ज्ञानीजन भक्तों को तुच्छ मानकर स्वयं को श्रेष्ठ समझते थे और भक्तजन ज्ञानियों को तुच्छ समझते हुए स्वयं को श्रेष्ठ मानते थे। ज्ञान की इस श्रेष्ठता की ओर यह कहकर संकेत किया है—

**"कहहि संत मुनि वेद पुराना, नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना।"**

परन्तु तुलसी ने भक्ति के लिए ज्ञान की महत्ता घोषित की। यद्यपि तुलसी ने 'ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका' अथवा 'ग्यान का पंथ कृपान की धारा' आदि कहकर ज्ञान मार्ग की कठिनाईयों की ओर संकेत किया है और 'भक्ति सुतन्त्र सकल सुख खानी' कहकर भक्ति को ज्ञान की अपेक्षा श्रेष्ठ सिद्ध किया है। यद्यपि तुलसी ने—

**"भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा, उभय हरहिं भव संभव खेदा।"**

कहकर दोनों की समता भी सिद्ध की है। साथ ही—

**"जोग अगिनि करि प्रकट तब कर्म सुभासुभलाइ, बुद्धि सिरावै ग्यान धृत ममता मल जरि जाई।"**

कहकर तुलसी ने ज्ञान को श्रेष्ठ बताया है, जिसके द्वारा चित्त रूपी दीपक प्रज्ज्वलित होता है और मोह, मद आदि रुपी पतंगें नष्ट हो जाते हैं, इसके साथ ही 'कहहिं भगति भगवन्त कै संजुत ग्यान विराग' कहकर भक्ति को ज्ञान एवं वैराग्य से युक्त बताया है तथा 'श्रुति सम्मत हरि–भगति पथ संनुत विरति विवेक' कहकर भी भक्ति और ज्ञान के समन्वय की ओर संकेत किया गया है।

गोस्वामी जी के अनुसार ज्ञान एवं भक्ति ही मुक्ति के साधन हैं। ज्ञानी भक्त पर प्रभु का विशेष प्रेम होता है—

**"राम भगत जग चारि प्रकारा, सुकृति, चारिउ, अनघ उदारा। यहूँ चतुर कहुँ नाम आधारा, ज्ञानी प्रभुहि विशेष पियारा।।"**

इस तरह तुलसीदास ने दर्शन के विषय में अज्ञान से उत्पन्न मतवैभिन्य को दूर कर अपने युग की जनता को सच्चा मार्ग दिखाया है। ज्ञान एवं भक्ति में भक्ति को सर्वजन सुलभ एवं साध्य बताया है—

**"ज्ञान पंथ कृपान के धारा। परत खगेस होई नहिं बारा। राम भक्ति चिंतामणि सुंदर। बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर।।"**

**6. सगुण और निर्गुण का समन्वय**—तुलसी से पूर्ववर्ती भक्तों में ही ब्रह्म के निर्गुण एवं सगुण स्वरूप पर पर्याप्त संघर्ष चला आ रहा था। इसी संघर्ष के परिणामस्वरूप महात्मा सूरदास ने अपने 'भ्रमरगीत' में ब्रह्म के निर्गुण रूप का खण्डन करके सगुण की महत्ता का प्रतिपादन किया था परन्तु गोस्वामी तुलसीदास ने सगुण और निर्गुण के विद्वेष एवं वैमनस्य को मिटाते हुए दोनों में समन्वय स्थापित किया है और बताया है कि यद्यपि ब्रह्म निर्गुण, निराकार, अज, अनघ, अद्वैत, अव्यक्त, अविकार, अचल, अनिकेत, अविरत, अविरल, अनामय, अनारम्भ एवं अमल है; तथापि वह दीनबंधु, दयालु, शरणागत–वत्सल, भक्त वत्सल है और गो, द्विज, सुर आदि के कष्टों का निवारण करने के लिए सगुण रूप धारण करता है। इसी कारण तुलसी ने राम को निर्गुण और सगुण दोनों रुपों में देखा है और अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुण सगुण ब्रह्म सुमिरामि नरभूप रूप कहकर उनकी स्तुति की है। इस प्रकार तुलसी ने निर्गुण और सगुण को एक ही ब्रह्म के दो रूप बताते हुए दोनों में समन्वय किया है—

**"अगुन–सगुन दूइ ब्रह्म सरूपा, अवध अगाध अनाधि अनूपा।"**

**7. नर और नारायण का समन्वय**—तुलसी से पूर्व राम का महत्व दशरथ के पुत्र के रूप में ही था। उन्हें बहुत कम लोग परात्पर ब्रह्म, अज एवं अविनाशी मानते थे। इसीलिए कबीर ने—

**"दशरथ सुत तिहु लोक बखाना, रामनाम का मरम है आना।"**

कहकर राम के दशरथ–पुत्र रूप को ब्रह्म से पृथक कहा था। परन्तु तुलसी ने—

**"भए प्रकट कृपाला दीनदयाला कौशल्या हितकारी।"**

कहकर उन्हीं ब्रह्म को कौशल्या पुत्र या दशरथ–सुत के रूप में अवतरित दिखाकर अपने इष्टदेव को साधारण 'नर' से ऊपर उठाते हुए 'नारायण' के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित किया है। इसी कारण तुलसी के राम अवतारी पुरूष होकर भी अज, अनवद्य, अरूप एवं अचल हैं, सगुण होकर भी निर्गुण एवं निर्विकार हैं, साकेत–निवासी होकर भी अनिकेत हैं, शील एवं सौंदर्य युक्त होकर भी अखण्ड, अनन्त एवं व्यापक हैं। इस प्रकार तुलसी ने राम के रूप में नर और नारायण का अथवा जीव और ब्रह्म का सुंदर समन्वय स्थापित किया है।

**8. द्विज और शूद्र का समन्वय**—तुलसीदास के समय में जाति–पाँति एवं छुआछूत का भेदभाव अत्यधिक बढ़ा–चढ़ा था। उच्च वर्ण के व्यक्ति नीच वर्ण के शूद्रादि से घृणा करते थे और उनसे अपना व्यवहार रखना भी बुरा मानते थे। तलसी ने इस

सामाजिक विषमता को दूर करने के लिए अपने 'रामचरितमानस' में ब्राह्मण कुलाववंश गुरू वशिष्ठ को शूद्रकुल में उत्पन्न निषादराज से भेंट करते हुए दिखाकर ब्राह्मण और शुद्रों में भी समन्वय स्थापित किया है तथा उच्च क्षत्रिय कुल में उत्पन्न राम को तुच्छ वानर भालू, रीछ, विभीषण राक्षस तक का प्रेमालिंगन करते हुए दिखाकर उच्चवर्ग एवं निम्नवर्ग में सुंदर समन्वय स्थापित किया है।

**9. राजा और प्रजा का समन्वय**—तुलसी के काल में राजा और प्रजा के अन्तर्गत गहरी खाई बनती जा रही थी। राजा प्रजा से कहीं अधिक श्रेष्ठ, उन्नत, एवं महान् समझा जाता था और ईश्वर का रूप तक माना जाता था। इसीलिए 'दिल्लीश्वरो वा जगदीशवरों वा' कहकर दिल्लीश्वर की प्रशंसा की जाती थी। तुलसी ने 'रामचरितमानस' में राजा और प्रजा के कर्त्तव्यों का निर्धारण करते हुए दोनों के सम्पूर्ण रूप की व्यवस्था की और बताया कि

**'सेवत कर पद नयन से, मुख सो साहिबु होई'**

अर्थात् राजा को मुख के समान और प्रजा को कर, पद एवं नेत्रों के समान राजा का हितैषी होना चाहिए इतना ही नहीं

**"मुखिया मुख सो चाहिए खान–पान कहूँ एक, पालइ पोषइ सकल अंग तुलसी सहित विवेक।"**

कहकर तुलसी ने राजा को मुख के समान बताते हुए अपनी प्रजा के पालन–पोषण के लिए ही वस्तुओं का संग्रह करने वाला घोषित किया है। इस प्रकार शरीर में जिस तरह मुख और अन्य अंगों का समन्वय रहता है, उसी तरह तुलसी ने राजा और प्रजा के समन्वय पर बल दिया है।

**10 कर्म एवं भाग्य का समन्वय**—कर्म एवं भाग्य आचार्यों के लिए विवाद के विषय बने रहे। गोस्वामी जी ने एक ओर कर्म को प्रधान माना है। तो दूसरी और भाग्य को बलि सिद्ध किया है–

**"कर्म प्रधान विश्व करि राखा, जो जस करिय सोतस फल चाखा।"**

**× × × तुलसी जय भवितकता तैसी मिलै सहाय।"**

तुलसीदास ने दोनों के समन्वयात्मक दृष्टि रखते हुए कहा है कि कर्म के आधार पर ईश्वर भाग्य का निर्माण करता है

**"सुभ अरु असुभ करम अनुहारी, ईस देह फल हृदय विचारी। कहइ जो करम पाव फल सोई, निगम नीति अस कह सब कोई।।"**

**11. पारिवारिक क्षेत्र में समन्वय**—तुलसी ने धर्म एवं समाज के क्षेत्र में ही समन्वय स्थापित नहीं किया, अपितु पारिवारिक क्षेत्र के अन्तर्गत पिता और पुत्र में, पति और पत्नी में, सास और पुत्रवधू में, भाई–भाई में, स्वामी और अनुचर में तथा पत्नी और सपत्नी में भी समन्वय स्थापित किया है। इसी कारण तुलसी ने राम जितने पिता के भक्त है, उतने ही वे माताओं के भी भक्त है और माता–पिता भी राम के उतने ही भक्त है, ऐसे ही जितना आदर वधुएं अपनी सासों का करती हैं, उतना ही स्नेह उन्हें सासों से भी प्राप्त होता है, साथ ही जितना स्नेह राम अपने भाइयों से करते है, उतना ही स्नेह उन्हें अपने भ्राताओं से भी प्राप्त होता है और जितना प्रेम राजा दशरथ या राजा राम अपने सेवकों से करते हैं, उतना ही प्रेम उन्हें सेवकों से प्राप्त होता है। इस प्रकार तुलसी ने पारिवारिक जीवन में समन्वय स्थापित करते हुए आदर्श परिवार की प्रतिष्ठा की है।

**12. सामाजिक स्तर पर समन्वय**—मनुष्य से परिवार एवं परिवार से समाज का निर्माण होता है संगठित एव व्यवस्थित समाज का निर्माण तभी संभव है जब उस समाज में रहने वाले परिवार संगठित हों। परिवार का संगठित हो पाना व्यक्ति के विवेक पर निर्भर करता है। तुलसीदास जी ने आदर्श के निर्माण हेतु आदर्श मानव की मर्यादा एवं पारिवारिक मर्यादा का विवेचन किया है।

पारिवारिक मर्यादा के अन्तर्गत सर्वाधिक महत्व दाम्पत्य जीवन की सुदृढ़ आधारशिला का है। गोस्वामी जी ने एक ओर स्त्रियों के लिए पतिव्रत धर्म का उपदेश देते हुए वृद्ध, रोगी, धनहीन, अंध, बधिर, क्रोधी एवं दीन–क्षीण पति का भी अपमान न करने का आदेश सामने रखा तो दूसरी ओर पुरूषों के लिए भी एक पत्नीव्रत एवं सच्चरित्रता का संदेश देते हैं। नारी की अविवेकपूर्ण अच्छृंखलता के विरोधी तुलसी उसे ताड़न की अधिकारिणी मानते हैं तो दूसरी ओर नारी की असहाय अवस्था के प्रति उनके मन में असहानुभूति भी विद्यमान है–

**"कत विधि सृजी नारि जग माँही, पराधीन सपनेहुँ सुख नाही।"**

दाम्पत्य जीवन भी सीमित भावन से ग्रसित होकर परिवार की मर्यादा की अपेक्षा करने वाले व्यक्ति को तुलसी आदर्श समाज के लिए अहितकर मानते हैं। ऐसे स्वार्थी व्यक्ति का वर्णन करते हुए तुलसी जी लिखते हैं–

**"सुत मानहिं मातु–पिता तब लौं, अबला नव दीख जब नदीं लौं। ससुरारि विभारि लगी तब ते, रिपु कुटुब भये तब ते।।**

**× × × नहिं मानत कोई अनुजा तनुजा"**

तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' के माध्यम से आदर्श व्यक्ति, आदर्श दाम्पत्य एवं आदर्श परिवार की मर्यादाओं की व्याख्या की है जोकि पूरे विश्व साहित्य में अनूठी है।

**13. प्रवृति मार्ग और निवृति मार्ग में समन्वय**—शास्त्रीय मान्यताओं के अनुसार मनुष्य को मुक्ति के लिए दो मार्ग हैं—प्रवृति और निवृति। प्रवृति का द्योतक गृहस्थ जीवन है और निवृति का संन्यास। अधिकांश आचार्यों ने प्रवृति मार्ग को मुक्ति में बाधक माना है। उनके अनुसार गृहकार्य के नाना जंजालों से परे होने पर ही भगवद् भक्ति सफल हो सकती है। इस कारण मुक्ति के लिए सक्रिय जीवन से पलायन की प्रवृति बढ़ती जा रही थी। जीवन के दायित्वों से विमुख होकर सन्यासी बनने का दौर चल रहा था। तुलसीदास ने इस स्थिति को लोक–जीवन के लिए अहितकर माना। उन्होंने निवृति और प्रवृति मार्गों की अतिशयता से बचते हुए मध्यमवर्ग का रास्ता दिखाया। उनका कहना था कि मुक्ति के लिए गृहत्याग कर संन्यास लेने की आवश्यकता नहीं है। राम की भक्ति गृहस्थ जीवन में रहकर भी की जा सकती है। आवश्यक यह है कि शुद्ध मन से राम का स्मरण किया जाए। मन में प्रभु के प्रति दृढ़ प्रेमभाव जगाया जाए। राम बस प्रेम ही चाहते हैं। इसलिए कहा है—'रामहि केवल प्रेम पियारा।' अतः स्पष्ट तुलसीदास का मत है कि रामभक्ति और मुक्ति के लिए मन को एकाग्र कर गृहस्थ ही सही स्थान है। तुलसीदास का कथन है—

**"घर कीन्हे घर जात है, घर छोडे घर जाय। तुलसी घर बन बीच ही राम प्रेम पुर छाय।।"**

इस प्रकार तुलसीदास ने निवृति और प्रवृति मार्गों में समन्वय कर समाज का बड़ा उपकार किया। तुलसीदास की इसी समन्वयवादी दृष्टि को ध्यान में रखकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया हो। भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचार–विचार और पद्धतियाँ प्रचलित हैं। तुलसीदास स्वयं व अनेक प्रकार के सामाजिक स्तरों में रह चुके थे।

..... उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। उसमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है—गार्हस्थ्य और वैराग्य का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृत का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेश चिंतन का समन्वय 'रामचरितमानस' के आदि से अंत तक दो छोरों पर जाने वाली परा–कोटियों को मिलाने का प्रयत्न है।

**14. राजनीतिक स्तर पर समन्वय**—तुलसी के मत में समाज का संरक्षक राजा एक मुखिया होता था, जिसका धर्म प्रजा का निष्पक्ष रूप से पालन करना था।

**"मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान को एक। पाले पोसे सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।।"**

मुखिया का यह आदर्श तुलसी के युग में अनुपस्थित था। अतः तुलसी ने रामराज्य का आदर्श जनमानस में स्थापित किया। अपने युग की राजनैतिक विषमता का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने कहा—

**"गोड गँवार नृपात महि, चमन महा महिपाल। साय न दाम न भेद काली, केवल दण्ड करात।।"**

सुखी समाज के निर्माण के लिए राजा को निःस्वामी एवं लोक–सेवा परायण होना चाहिए। इसके विपरीत गुण वाला राजा तुलसी को अभीष्ट नहीं है। इसीलिए तो वे कहते हैं—

**"जासु राजप्रिय प्रजा दुखारी, सोनृप अवसि नरक अधिकारी।"**

राजा के लिए रामगद्दी की अपेक्षा प्रजा की रक्षा को अपना प्रथम कर्तव्य मानना चाहिए। राम के वनगमन द्वारा गोस्वामी जी ने इस आदर्श की स्थापना की हैं। श्रेष्ठ साम्राज्य में शासक एवं प्रजा में सद्भावना एक अनिवार्य गुण है। एक आदर्श साम्राज्य के लिए गोस्वामी जी रामराज्य का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

**"दैहिक दैविक भौतिक तापा, राम राज नहिं काहुहि कापा। सब नर करहिं परस्पर प्रीती, चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति। नहिं दरिद्र कोई दुःखी नदीना, नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।"**

**15. साहित्य के क्षेत्र में समन्वय**—तुलसी का लक्ष्य लोक कल्याण था। लोक कल्याण हेतु उन्होंने साहित्य को साधन बनाया। उनके साहित्य का लक्ष्य "लोक मंगल विधान" करना था। अतः साहित्यिक एवं काव्य शास्त्रीय सीमाएं वहाँ मौन हो गई हैं। उन्होंने काव्य रचना की विविध शैलियों एवं छंदों को अपने साहित्य में स्थान प्रदान किया है। एक ओर उन्होंने बालक राम के रूप में वात्सल्य की झाँकी प्रस्तुत की है, तो दूसरी ओर उन्होंने जनक वाटिका एवं स्वयंवर सभा में मर्यादित श्रृंगार का मनोहारी चित्र खींचा है—

**"राम को रूप निहारति जानकी, कंकण में नग की परछाई।।"**

तुलसी के युद्ध वर्णन में वीर गाथा काल की छटा विद्यमान है तो वैराग्य संदीपनी में साखी पद्धति प्रतिबिम्बित होती है। मुक्तक काव्य की रचना के लिए उन्होंने पद–शैली को ग्रहण किया तो आत्माभिव्यक्ति की तल्लीनता में गीतिशैली का प्रयोग किया है तुलसीदास ने अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं का समन्वय करके 'रामचरितमानस' की रचना की है, इसीलिए हिन्दी के साथ–साथ, संस्कृत भाषा के श्लोकों की रचना करके तथा 'मानस' और 'विनय पत्रिका' के स्त्रोतों में संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का प्रयोग करके संस्कृत और हिन्दी का सुंदर समन्वय किया है। छंदों के प्रयोग में भी समन्वय है।

सारांश यह है कि तुलसी एक उच्चकोटि के समन्वयवादी कवि थे। उन्होंने जीवन और जगत् के सभी क्षेत्रों में समन्वय स्थापित करने का स्तुल्य प्रयत्न किया और अपने समन्वयवादी विचारों द्वारा तत्कालीन समाज में व्याप्त विषमता, विद्वेष, वैमनस्य, कटुता आदि को दूर करके पारस्परिक स्नेह, सौहार्द, समता, सहानुभूति आदि का प्रचार किया। इसीलिए तुलसी एक उच्चकोटि के कवि, महान, लोकनायक, सफल समाज सुधारक, भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ प्रचारक, समाज में उन्नत आदर्श के संस्थापक तथा समन्वयवाद के प्रतिष्ठापक संत कहलाते हैं।

# अध्याय 11

# तुलसीदास का प्रकृति चित्रण

साहित्य में प्रकृति का उल्लेख वस्तु वर्णन के अन्तर्गत किया जाता है। वहाँ प्रकृति से तात्पर्य मानव एवं मानव निर्मित वस्तु समूह से अलग पदार्थों से हैं। वन, पर्वत, सरिता, सागर, पशु, पक्षी, बादल, बिजली, चंद्रमा तथा तारे आदि उसके विषय हैं। दर्शन की शब्दावली में चेतना आत्मा से अलग सम्पूर्ण जगत का नाम प्रकृति है। तुलसीदास का उद्‌भव जिस युग में हुआ था, वहाँ भक्ति की भावधारा प्रबल थी। वहाँ प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता को नहीं स्वीकारा गया था। समस्त प्रकृति ब्रह्म की अभिव्यक्त मात्र मानी गई थी। इसीलिए उस काल के कवियों ने प्रकृति सौंदर्य अपने आराध्य देव के सौंदर्य में लीन कर दिया। तुलसी भी भक्त कवि थे। राम उनके आराध्य देव थे। राम की प्राणप्रिय सीता जगत् जननी थी। उनका लक्ष्य रामलीला का गान था अथवा ब्रह्म निरूपण। अतः प्रकृति चित्रण उनके यहाँ प्रधान न होकर गौण ही है। उनका उद्देश्य प्रकृति चित्रण करनी नहीं, बल्कि प्रकृति के माध्यम से अपने विचारों को प्रकट करना ही रहा। तुलसी के काव्य में प्रकृति–चित्रण, आलम्बन, उपदेश, उद्दीपन, अलंकार एवं मानवीकरण आदि रूपों में मिलता है।

**1. आलम्बन रूप**–काव्य में प्रकृति चित्रण के मुख्य और गौण दो रूप होते हैं। जब मनुष्य अपने परिवेश से उबरकर प्रकृति की सुखद छाया में विश्राम करता है तब वह उसके भाव का प्रेरक आधार बनती है। वह उसके मधुर एवं उग्र रूपों का चिताकर्षक चित्रांकन करने लगता है। सफल कवि उन रूपों को वाणीबद्ध करता है। यह प्रकृति का मुख्य रूप है। इसे काव्य वर्णित प्रकृति का आलम्बन रूप भी कहते हैं। तुलसीदास ने प्रकृति के इस स्वतंत्र रूप को नहीं देखा। समस्त प्रकृति को राम रूप मानने वाले तुलसी कभी भी प्रकृति के विस्मय विमुग्ध करने वाले रूप को नहीं देख पाए। उनकी आध्यात्मिक दृष्टि प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता को आच्छादित किए रही। फिर भी उनके काव्य में कुछ स्थल ऐसे मिल जाते हैं। जहाँ उन्होंने प्रकृति को स्वतन्त्र रूप में चित्रित किया है। चित्रकूट और पम्पा सरोवर स्थलों पर किया गया प्रकृति का चित्रांकन आलम्बन रूप का अच्छा उदाहरण है। किंतु तुलसी में ऐसे वर्णन बहुत कम मिलते हैं। वे कुछ क्षणों के लिए उन दृश्यों पर ठहरते हैं–पम्पा सरोवर पर कुछ पक्षियों, वृक्षों तथा शीतल मंद समीर ने उन्हें आकृष्ट किया है–

**"विकसे सरसिज नाना रंग। मधुर मुखर गुंजन बहुभृंगा।। बोलन जल कुक्कट कलहंसा। प्रभु विलोकि जनु करत प्रशंसा।।**
**चक्रवाद बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई।। चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला।।**
**नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचूकि पहली कर गाना।। सीतल मंद सुगन्ध सुभाऊ, सन्तत बहइ मनोहर बाऊ।।"**

'गीतावली' के चित्रकूट वर्णन में कवि का मन विशेष रमा है। वर्षा ऋतु में चित्रकूट की छटा आनन्द विभोर करने वाली है उन्नत शिखर, काली घटनाएं बीच–बीच में उड़ती बुगलों की पंक्ति, अनोखा दृश्य प्रस्तुत करती हैं–

**"सब दिन चित्रकूट नीको लागत। वर्षा ऋतु प्रवेश विशेष गिरि देखत मन अनुरागत।**
**सिखर परस घन घटहि मिलति बग पाति सो छवि कवि वरनी। आदि वराह बिहरि बादिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरिनी।।**
**जल जुल विमल सिलनि झलकत नभ वन प्रतिबिंब तरंग। मानहु जब रचना विचित्र बिलसति विराट अंग–अंग।।**
**मंदाकिनिहिं मिलत झरना झरि झरि भरि–भरि जल आछे। तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानौ राम भक्ति के पाछे।।"**

परन्तु तुलसी प्रकृति के इस चिताकर्षक रूप पर अधिक नहीं ठहर पाते। उनका भक्त रूप प्रबल हो उठता है। रामभक्ति के पीछे चलने वाली यह प्रकृति छटा दब जाती है। सहज उल्लास लुप्त हो जाता है। उनकी काव्य दृष्टि को मोक्ष दृष्टि ढक लेती है। प्रकृति फिर गौण हो जाती है।

**2. उपदेशिका रूप**–तुलसी की मोक्ष दृष्टि लोक कल्याण भावना का फल है। कवि होने से पहले वे भक्त, दार्शनिक और संत हैं। राम के प्रति उनका दृढ़ अनुराग है। वे प्रकृति के प्रत्येक कण में उसी की झलक देखते हैं। जनमानस के परिष्कार के लिए वे प्रकृति की क्रियाशीलता में ऐसे गंभीर दार्शनिक तत्व ढूँढ निकालते हैं जिनके अनुशीलन से लोक परलोक से लोक परलोक सभी सुधर सकता है। 'रामचरितमानस' के अरण्यकाण्ड ओर किष्किन्धाकाण्ड प्रकृति के इसी विशिष्ट रूप का उद्‌घाटन करते हैं। तुलसी के शिव पम्पा–सरोवर को देखकर गूढ़ दार्शनिक तत्व को कितने सुबोध ढंग से प्रस्तुत करते है

**"संत हृदय जस निर्मन बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी। तहं तहं पिअहिं मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा।।**
**पुरइन सघन ओर जल बेगि न पाइअ मर्म। मायाच्छन्न न देखिए जैसे निर्गुण ब्रह्म।।"**

किष्किन्धाकाण्ड में प्रकृति का उपदेशात्मक रूप अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है। यह तुलसी की अपनी निजी विशेषता है। उन्हें सदा लोक धर्म और लोक नीति की चिंता रहती है। वे अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति द्वारा प्रकृति का यथातथ्य तो तत्काल पकड़ लेते हैं किंतु उससे प्रकृति के मन को लीन कर देने वाले राम रूप की अभिव्यक्ति नहीं होती। वे उसे अपमान रूप में प्रस्तुत कर अपने उपदेश का साधन बना लेते हैं। 'किष्किन्धाकाण्ड' के वर्षा एवं शरद ऋतु के वर्णन में ऐसे उपदेशों की भरमार है—

**"दामिनि दमकि रही घन माही। खल की प्रीति जथा थिर नाहीं।। बरलहिं जलद भूमि निअराएं। जया नवहि बुध विद्या पाएं। बूंछ अघात् सहहि गिरि कैसे। खल के वचन संत सह जैसे। छूद्र नदी भरी चली तो राई। जस थोरेहुं धन खल इतराई।। भूमि परत आ डाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी।। सिमटि सिमटि जल भरहिं तलाब।। जिमि सदगुण सज्जन पहिं आया। सरिता जल जलनिधि महु जाई। होई अचल जिमि जिव हरि पाई।। हरित भूमि तृन संकुल ममुझ परदिं नहिं पंथ। जिमि पाखंड बाद तें लुप्त होंहि सदग्रन्थ।।"**

यहाँ एक बात उल्लेखनीय यह है कि उनकी लोक नीति में मोक्ष दृष्टि सदा घुली मिली रहती है। मायाच्छल जीव की मुक्ति का वे सदा ध्यान रखते हैं और भक्ति के साधन को हाथ से नहीं जाने देते। शरद् ऋतु के वर्णन से यह बात अधिक पुष्ट हो जाती है—

**"फूले कास सकल महि छाई, वरषा कृत प्रकट बुढ़ाई।।**
**जल संकोच विकल भइ मीना। अबुध कुटुम्बी जिमि धन छीना।।**
**कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरो। कोउ कोउ पाव भगति जिमि मोरी।।**

इस प्रकार तुलसी के उपदेश बहुल प्रकृति वर्णन में प्रकृति का युद्ध चित्रांकन नहीं हुआ है। नीति एवं उपदेश के लिए ही उन्होंने प्रकृति का उपयोग किया है। उनका मन प्रकृति के रमणीय रूप में कभी नहीं टिका रहा। किंतु इससे उनके प्रकृति प्रेम की न्यूनता का भाव लक्षित नहीं होता है। अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति द्वारा उन्होंने नीरस उपदेशों को भी प्रकृति के माध्यम से हृदयग्राही बना दिया है। उपदेश के स्थलों पर काव्यालोचना की सरसता का अभाव नहीं खटकता है। भक्तों के लिए तो वे सरस प्रसंग हैं ही।

**3. उद्दीपन रूप**—काव्य में रस सृष्टि का उद्दीपन विभाग एक आवश्यक अंग माना जाता है। आश्रयगत भावनाओं को तीव्रता प्रदान करने के लिए उद्दीपन का बहुत बड़ा हाथ होता है। प्रकृति इसमें सर्वाधिक सहायक होती है। सुख की स्थिति में प्रकृति के जो उपकरण मन को अतिशय आनन्द देने वाले होते हैं, दुःख में वे अत्यन्त कष्टकारक बन जाते हैं। दोनों दशाओं में भाव का उत्कर्ष दिखाने के लिए प्रकृति वर्णन किया जाता है। इस संदर्भ में न जाने कितने बारह मासे और षड्ऋतु वर्णन लिखे गए हैं। तुलसीदास के काव्य में बारह मासे जैसा वर्णन तो नहीं हैं परन्तु विभिन्न पात्रों की मानसिक दशा की अभिव्यक्ति में प्रकृति का उपयोग बड़े चिताकर्षक ढंग से किया गया है।

राम परमवीर धीर प्रशान्त नायक होने पर भी प्रकृति के विविध व्यापारों से प्रभावित हो जाते हैं। प्राणप्रिय सीता के वियोग में विरहाकुल राम जब वन्य प्राणियों को देखते हैं अथवा प्राकृतिक सुषमा के सम्मुख होते हैं तो उन्हें सीता के अंग–प्रत्यंगों की याद सताने लगती है। उनका हृदय वेदना से कराह उठता है—

**"खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना। कुंदकली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी। श्रीफल कनक कदलि हरषाही। नेकु न संक सकुच मगमाही। सुनु जाणदी तोहि बिनू आजू। हरसे सकल पाइ जनु राजू। किमि सहिजात अनख देहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रकटसि कस नाहीं।।"**

यह स्थिति अत्यन्त करुणाजनक है। अपने धनुष की टँकार से तीनों लोकों को प्रकम्पित कर देने वाले रामवर्षा ऋतु में सीता के पास न होने पर अत्यन्त निरीह बन जाते हैं—

**'घन घमण्ड नभ गरजत छोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोहा।'**

यह राम की वियोगावस्था का मार्मिक चित्र है। प्रकृति का ऐसा ही उद्दीपन रूप स्थान–स्थान पर तुलसीदास के काव्य में आया है। सुख की अवस्था में भी भावोद्दीपन की उसमें उतनी ही क्षमता है जितनी दुःख में। जनक वाटिका में प्रकृति राम–सीता मिलन की उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार करती है—

**लागे क्टिप मनोहर नाना। वरन वरन वर बेलि बिताना। नव पल्लव फलसुमन सुहाए। निज सम्पति सुर सरन लजाए। चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहंग नटत कल मीरा। विमल सलिल सरसिज बहुरंगा। जल खग कूजत गुँजत भृँगा। बागु तड़ाग बिलोकि प्रभु हरषे बंधु समेत। परम रम्य आराम येहु जो रामहिं सुख देत।**

तुलसी ने प्रकृति के उद्दीपन रूप का प्रयोग राम तक ही नहीं किया है। वह नायक, नायिका के दोनों पक्षों के भ्रम की तीव्रता को समान रूप से ध्वनित करने में समर्थ हैं। सीता के वियोग में यदि राम वन–वन घूमकर प्रत्येक खग, मृग एव मधुकर से सीता का पता पूछते हैं और प्रकृति के उत्तेजक रूप से व्याकुल हो जाते हैं तो सीता भी अशोक वाटिका में मृत्यु का आह्वान करती है

**"पावकमय ससि स्रवत न आगि। मानहु मोहि जानि हतभागी। सुनहु विनय मम विहप असोका।सत्य नाम करु हरु मम सोका। नूतन किसलय अतल समाना। देहि अभि निजनि करहिं निदाना।"**

इतना ही नहीं, चंद्रमा की ज्योत्स्ना धरती का रोम–रोम शीतल करती है, पर वियोगिनी सीता के मन मे फिर भी आग लगा रहती है–

**"डहकुन है उजयारिया निसि नहिं धाम। जगत जात अस लागु मोहि बिनु राम।।"**

तुलसी द्वारा उपयोग में लाए गए प्रकृति के इन उद्दीपनकारी रूपों को देखकर पता चलता है कि उन्होंने प्रकृति का सामान्य रूप में ही देखा है। वे अधिकतर परम्परागत ही है, मौलिकता के वहाँ दर्शन नहीं होते। फिर भी रागोत्प्रेरकता की उनमे पूर्ण क्षमता है। प्रकृति के माध्यम से मन की आंशिक स्थिति का उद्‌घाटन करने में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है।

**4. अलंकार विधान**–अलंकार सौंदर्य वर्धन करने का मुख्य उपादान हैं। यह सौंदर्य चाहे शारीरिक सौंदर्य से सम्बन्धित हो या वाणी सम्बन्धी। अलंकार केवल सौंदर्य की बढ़ोतरी ही करते हैं। कथन या उक्ति में चारुता एवं चमत्कारिता के उत्कर्ष को बढ़ाने में अलंकार अत्यधिक सहायक होते हैं। उनमें अभिव्यक्ति में स्पष्टता, भावों में प्रभविष्णुता एवं भाषा में निखार आता है।

**रूपक**–धनुष यज्ञ के प्रसंग में–राम का धनुष तोड़ने के लिए उठाने की क्रिया का रूपक द्वारा अत्यन्त सजीव वर्णन हुआ है।

**"उदित उदयगिरि मंच पर रघुवर बाल पतंग। बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग।।"**

**उत्प्रेक्षा**–जहाँ सादृश्य के कारण उपमेय में उपमान की संभावना की जाती है वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। यह कविया का प्रिय अलंकार है। भावाभिव्यक्ति का यह सरलतम साधन है। इसमें कवि की कल्पना की खुली छूट होती है। तुलसी ने भी इसका अत्यधिक प्रयोग किया है। जनक वाटिका के प्रसंग में राम लक्ष्मण को लताओं की ओर से बाहर निकलते देखकर कवि उनके अतुलित सौंदर्य का अंकन करते हुए लिखते हैं–

**"लता भवन है प्रकट में तेहि अवसर दोउ भाई। निकसे जन जुग विमल विधु जलद पटल बिलगाई।।"**

राम विवाह पर जनक की रानियाँ अटारी पर बैठी हुई राम को बड़े स्नेहपूर्वक देखती हैं और कवि को उनके चित्राकन का रूप मिल जाता है–

**"तुलसी मुक्ति मन जनक नगर जन, झाँकती झरोखे लागो सोभा रानी पावती।**
**मनहु चकोरी चार बैठी निज–निज नीड़, चंद की करनि पावै–पलकैं न लावती।"**

तुलसी का कल्पना वैभव बड़ा विलक्षण है। राम के शरीर पर श्रमबिंदु उनके सौंदर्य में वृद्धि करते हैं

**"स्याम सरीर रुचिर सीकर सोनित कन बिच–बिच मनोहर। जनु खद्योत निकट हरिहित गन भ्राजत मरकत सैल सिखर पर।।"**

**उपमा**–तुलसी ने अपनी अलंकार योजना में प्रकृति के अंगों का मनोहर चित्रण किया है। बालक राम के रूप चित्रण म अनक मनोरम उपमान एकत्रित किए हैं–

**"वरदन्त की पंक्ति कुंदकली अधराघर पल्लव खोलन की। चपला चमकै घन बीच जगै छवि मोतिन माल अमोलन की।।"**

*प्रकृति से लिए गए उपमान बालक राम की दन्त पंक्ति, अधरोष्ठ, एवं वक्ष पर शोभायमान मोतियों की माला का सुदर चित्रण हुआ है।*

*धरा और आकाश के उपमानों को एक स्थान पर प्रस्तुत करके तुलसी ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। शिशुराम के आकर्षक नेत्रों का वर्णन करते हुए कवि कहता है–*

***"तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नैन सुख जन जताक के। सजनी ससि में समशील उभे नवनील सरोरुह से बिकसे।।"***

**मानवीकरण**–प्रकृति के जड़ रुपों के अतिरिक्त तुलसी की दृष्टि उसके चेतन रूप पर भी गई है। वे जड प्रकृति के अचेतन रूप के नैसर्गिक सौंदर्य तक ही नहीं रहती है वे प्रकृति पर चेतना का भी आरोप करते दिखाई देते हैं–

**'नदी उमगि अंबुधि कहुं छाई। संगम करहि तलाब तलाई।।'**

वे प्रकृति पर मानव गुणों का आरोप करते दिखाई देते हैं। इसे मानवीकरण कहा जाता है। तुलसी ने इसका सार्थक प्रयोग किया है। कवि मानवीकरण की कल्पना समानुभूति, विषयानुभूति अथवा तटस्थता की स्थिति को प्रकट करने में करते हैं। तुलसी के मानवीकरण में इन तीनों स्थितियों का समावेश पाया जाता है।

**5. समानुभूति**—गीतावली के अरण्य काण्ड में सीता हरण हो जाने पर प्रकृति राम के दुःख में संवेदना प्रकट करती दिखाई देती है—

**"सरित जल मलिन सराने सूखे नलिन,**
**अलि न गुँजत कल कूंजो न मराल।**
**कोलिनि कोल किरात जहाँ—तहाँ बिलखत,**
**बने न बिलोकि जात खग मृग माल।**
**तरु जे जानकी लाए ज्यादे हरि करि कपि,**
**हेरैटन न हुँकरि अरैं फल न रसाल।**
**जे सुक सारिका पाले मातु ज्यों ललकि लाले,**
**तेऊ न पढ़त पढ़ावै मुनि बाल।"**

यहाँ मानव की तरह प्रकृति की संवेदना भी मार्मिक ढंग से प्रस्तुत की गई है।

**6. विषयानुभूति**—प्रकृति में मानव अनुभूति के प्रतिकूल भावों का आरोप विषयानुभूति होता है। जैसे—सीताहरण हो जाने पर प्रकृति के पदार्थों का हर्षित होना। इसमें पात्र की सहानुभूति के अवसर पर अवसाद का वर्णन और अवसाद के क्षणों में आनन्द का वर्णन होता है तुलसी में इस प्रकार के वर्णन कम मिलते हैं। सीताहरण के प्रसंग में प्रकृति राम को चिढ़ाती हुई—सी लगती है। सीता के न होने पर वह अपने सौंदर्य में इठला सकती है। पर यह भी अप्रत्यक्ष रूप में सीता के अंगों की सुंदरता प्रकट करने का ही एक ढंग है।

**"खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकट कोकिला प्रवीना।**
**सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू।।"**

**7. तटस्थता**—तटस्थता की स्थिति में प्रकृति न तो मानव के सुख में सुखी होती और न दुःख में दुःखी। वह अपनी जड़ स्थिति में जैसी की तैसी रहती है। सीता के वियोग में राम प्रत्येक लता, खग तथा मृग से सीता का पता पूछते हैं—पर वे मौन हैं—

**"हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी, तुम्ह देखी सीता मृग नैनी।"**

यद्यपि यह प्रकृति के तटस्थ रूप का चित्रांकन है किंतु इसका प्रयोग भी तुलसी ने अनुभूति की तीव्रता प्रकट करने के लिए बड़े कौशलपूर्ण ढंग से किया है।

इस प्रकार तुलसी के प्रकृति चित्रण की सीमाओं को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उन्होंने प्रकृति का वर्णन गौण रूप में किया है। कवि के भावानुकूल प्रकृति सहज एवं स्वाभाविक रूप में ही हमारे सामने आती है। इस दृष्टि से उनका प्रकृति वर्णन उत्कृष्ट है।

# अध्याय 12

# रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड का सारांश

'उत्तरकाण्ड' लोकनायक महाकवि तुलसीदासकृत 'श्री रामचरितमानस' का अन्तिम काण्ड है। तुलसीदास के 'श्रीरामचरितमानस' महाकाव्य में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी की सम्पूर्ण जीवन–लीला का मार्मिक चित्रण है। उसी आधार पर इस महाकाव्य को सात काण्डों (भागों) में विभक्त किया है—(1) बालकाण्ड, (2) अयोध्याकाण्ड, (3) अरण्यकाण्ड, (4) किष्किन्धाकाण्ड, (5) सुन्दरकाण्ड, (6) लंकाकाण्ड, (7) उत्तरकाण्ड। इनके नामकरण भी श्रीराम–कथा पर आधारित हैं। उदाहरणार्थ– 'लंका काण्ड' में श्रीरामचन्द्र जी लंका में जाकर रावण वध करके माता सीता को छुड़ाकर अयोध्या की ओर प्रस्थान करते हैं। इसी प्रकार 'बालकाण्ड' में उनके जन्म से लेकर बचपन की समस्त घटनाओं का उल्लेख तुलसीदास जी ने किया है। 'उत्तरकाण्ड' अन्तिम काण्ड है जिसमें संत तुलसीदास जी ने निम्नलिखित बातों पर प्रकाश डाला है–

**(1) श्री रामचन्द्र जी का अयोध्या वापस आना**—श्री रामचन्द्रजी के अयोध्या आने की अवधि आने जब एक दिन रह जाती है तो अयोध्या वासियों को चिन्ता होने लगती है कि श्रीराम वापस क्यों नहीं आये ? भरत का मन भी शंकाकुल हो जाता है तभी शुभ शकुन होने लगते हैं सभी समझ जाते हैं कि राम आने वाले हैं और सभी प्रसन्न होते हैं। उसी समय हनुमान जी ब्राह्मण का वेश(रूप) धारण कर आते हैं। वे श्रीराम के सकुशल आने (आगमन) की सूचना देते हैं। भरत के पूछने पर वे अपना परिचय देते है कि वे श्रीराम के सेवक पवनपुत्र हनुमान हैं। श्रीराम शत्रुओं पर विजयोपरान्त लक्ष्मण व सीता के साथ अयोध्या आ रहे हैं। भरत अत्यधिक हर्षित हो जब यह समाचार जाकर नगर में सुनाते हैं तो नगर में खुशियाँ व्याप्त हो जाती हैं। सभी श्रीरामचन्द्रजी के स्वागत के लिए शुभ सामग्री तैयार करते हैं। नगर सजाया जाता है। श्रीरामचन्द्र जी की अगवानी करने के लिए गुरू वशिष्ठ अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मण, भाइ शत्रुघ्न व अन्य कटुम्ब–जन भरत के साथ चल देते हैं।

**(2) राम का अयोध्या वासियों से मिलन**—श्रीरामचन्द्रजी वनवास की अवधि पूर्ण करने के पश्चात् अयोध्या वापिस आ रहे हैं अयोध्या के समीप आकर सुग्रीव, अंगद, विभीषण आदि से अयोध्या की ओर संकेत करते है कि यह अयोध्या नगरी है, यहां मेरा निवास है। नगर के पास आकर राम पुष्पक विमान से उतर जाते हैं तथा पुष्पक विमान को अपने साथी कुबेर के पास जाने की आज्ञा देते हैं। राम अपना धनुष–बाण रखकर गुरू के चरणों में वन्दना करते हैं। सभी गुरूजनों आदरणीयों व मान्यों का अभिवादन करके चरणों में आये हुए भरत को गले लगा लेते हैं। सभी अयोध्या वासियों से राम अपने असंख्य रूप बनाकर मिलते है। सभी माताएं राम आदि से मिलती है। कैकेयी के मन में अवश्य संकोच पैदा होता है। लक्ष्मण व सीता भी यथानुसार स्वजनो व नगरवासियों से मिलते हैं। उसी समय विभीषण, सुग्रीव, नल, नील, जामवन्त, अंगद, हनुमान आदि मानवों का रूप धारण करते हैं। राम उनका परिचय देते हैं। उनके नमस्कार करने पर कौशल्या माता उन्हें आर्शीवाद देती है चारों ओर अपर हर्ष (खुशी) का आगम है।

**(3) राम का राज्याभिषेक**—इसी समय गुरू वशिष्ठ ब्राह्मणों को बुलाकर कहते हैं कि यह शुभ समय है अतः इन का राज्याभिषेक होना चाहिए। राज्याभिषेक के लिए सम्पूर्ण मांगलिक वस्तुएँ मंगायी जाती है। राम ने तभी सेवकों को बुलाकर कहा कि मेरे सखाओं को पहले स्नान कराओ राम की आज्ञा का पालन किया गया। तभी राम ने अपने भाइयों को स्नान कराया तथा बाद में अपनी जटाएँ खोलकर स्वयं स्नान किया। इधर माताओं ने सीता को स्नान कराया। राम गुरू वर्ग व अन्य ब्राह्मण को नमस्कार करने के पश्चात् सिंहासनारूढ़ हुए। आकाश में देवताओं और ऋषियों के जय–जय कार व ब्राह्मणों के वेदोच्चारण से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड गूँज उठा। ब्राह्मणों को दान व याचकों को बहुत धन दिया गया। चारों ओर प्रसन्नता व्याप्त हो गयीं। वेदों ने राम की महिमा का गान किया तथा वे अन्तर्ध्यान हो गये। तभी महादेव जी वहाँ आये और हर्षित हो राम की प्रशंसा करने लगे, उनकी प्रार्थना करते हुए कैलाश पर्वत पर चले गये। प्रतिदिन नये–नये मंगलोत्सव होने लगे।

**(4) राम ने सभी सखाओं को ससम्मान विदा किया**—इस प्रकार राम के राज्यारोहण के हर्ष से छः माह व्यतीत हुए। राम ने विभीषण अंगद आदि सखाओं को बुलाकर उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त की और कहा–

**सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहँउ मोर यह बाना।।**

संसार में मुझे जो कुछ भी प्रिय है तुम सभी उनसे बढ़कर हो। राम ने उन्हें अपने–अपने घर जाने के लिए कहा। जाते समय सुग्रीव को भरत ने आभूषण पहनाये, लक्ष्मण ने विभीषण को वस्त्रालंकार पहनाए, स्वयं राम ने जामवन्त, नल, नील आदि को आभूषण व वस्त्र पहनाए थे। तभी भावुक अंगद को राम ने अपनी माला व अन्य वस्त्रालंकार स्वयं पहनाकर विदा किया। उन्हे विदा करने

के लिए भरत, लक्ष्मण व शत्रुघ्न गये। निषादराज को भी आभूषण वस्त्र देकर राम ने विदा किया, परन्तु हनुमान वहीं रह गये।

**(5) राम–राज्य की विशेषताएँ**–राम का राज्य अनुपम व ऐतिहासिक माना जाता है। राम के राज्य में चारों वर्ष के मनुष्य चारों आश्रम (गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास) का धर्मानुसार सेवन करते थे। उन्हें किसी प्रकार का भय, शोक, शंका न थी। सभी प्रकार से सुख, समृद्धि व धन--धान्य से परिपूर्ण थे। न ही किसी को अल्पायु में मृत्यु होती थी और न ही कोई किसी प्रकार से पीड़ित था। उस समय सभी परस्पर प्रेम से रहते थे। रामराज्य के विषय में कहा है–

**दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज्य काहू नहिं व्यापा।।**

सभी उदार, परोपकारी, एक पत्नीधारी व शत्रु रहित थे।. प्रकृति भी समय–समय पर फल–फूलों से प्रजा की सेवा करती थी। पशु–पक्षियों तक ने अपना स्वाभाविक वैर भुला दिया था। चन्द्रमा और सूर्य सदा सभी को प्रसन्न रखते थे। सागर अपनी मर्यादा में रहता था। अतः कहा गया हैं कि–

**"अति प्रसन्न दस दिशा विभागा।।"**

तभी राम के लव और कुश नामक दो पुत्र हुए तथा सभी भाइयों के दो–दो पुत्र हुए। रामराज्य में राम का दर्शन करके सभी अपने को धन्य समझते थे।

**(6) संतों की महिमा व असंतों के अवगुण**–एक बार भरत ने राम से संत और असंत के विषय में पूछा–"संत–असंत भेद विलगाई। प्रनत पाल मोहि कहहु बुझाई।"

राम ने उन्हें बताया कि संत और असंत अर्थात् दुर्जन का स्वभाव कुल्हाड़ी जैसा है। कुल्हाड़ी लकड़ी को काट डालती है। चन्दन की लकड़ी फिर भी उसे सुगंधित कर देती है। संत शत्रु को भी अपने गुण देते हैं। गुण के कारण चन्दन देवताओं के सिर पर चढ़ता है तथा कुल्हाड़ी के मुख को दण्ड मिलता है कि उसे आग में खूब तपाया जाता है और घन से खूब पीटा जाता है। संत पराये दुःख को अपना दुःख समझते हैं। लोभ, क्रोध, मोह, त्याग देते है। उनका चित निर्मल होता है वे दोनों पर दया करते हैं। वे निन्दा और स्तुति में समान होते हैं। अतः उनकी संगति सदा करनी चाहिए। दूसरी ओर असंत स्वभाव से दुष्ट व परसंताप को देने वाले होते हैं। वे क्रोधी, कामी, मोही और लोभी तथा बिना कारण वैर करते हैं। जो भलाई करता है उसकी भी बुराई करते हैं अतः उनसे बचकर रहना चाहिए।

**(6) गरुड़ का काकभुशुण्डि से राम–कथा सुनना**–पार्वती ने शिव जी से यह प्रश्न किया था। काकभुशुण्डि एक (कौआ) पक्षी है, जबकि गरुड़ पक्षियों के राजा हैं। क्या कारण है--कि पक्षिराज गरुड़ ! ने काकभुशुण्डि से कथा सुनी थी शिवजी उत्तर देते हुए कहते हैं–कि जब राम ने नर की लीला करते हुए मेखनाथ के हाथों अपने नागपाश में बँधवा लिया था तो उन्हें छुड़ाने के लिए नारद मुनि ने पक्षीराज ! गरुड़ ! को भेजा था। सर्पों के भक्षक गरुड़ ने राम का बन्धन काट दिया था। तब गरुड़ के मन में यह मोह पैदा हो गया था कि राम तो परम् परमेश्वर है, फिर यह बंधन कैसा? वे मोहवश होकर देव ऋषि नारद के पास गये और अपनी शंका बताई। नारद जी ने उन्हें ब्रह्मा जी के पास भेज दिया। ब्रह्मा जी ने उन्हें मेरे (शिव) के पास भेज दिया। मैं तब कुबेर जी के पास जा रहा था। अतः गरुड़ ! को मार्ग में सभी कुछ नहीं समझा सकता था। तब मैंने उन्हें काकभुशुण्डि के पास भेज दिया और कहा–वहाँ प्रतिदिन रामकथा होती है, वहाँ तुम्हारा सभी सन्देह दूर हो जाएगा। मुझे यह ज्ञात हो गया है कि उसने कभी अभिमान किया होगा। उस अभिमान को कृपानिधान श्रीराम नष्ट करना चाहते हैं दूसरी बात यह है कि मैंने उसे अपने पास नहीं रखा क्योंकि पक्षी ही पक्षी की भाषा को समझते हैं–

**'सभुझइ खग खगहीं कै भाषा।"**

तब गरुड़ वहाँ गये और उन्होंने काकभुशुण्डि से राम कथा सुनकर अपने मोह को दूर किया।

**माया का कुचक्र**–जब मोह के चक्र में पड़कर गरुड़ व्याकुल हो गये तो शिवजी ने उन्हें काकभुशुण्डि के पास भेज दिया था। तब काकभुशुण्डि ने कहा

**मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही।।**

कौन ऐसा है जिसे मोह ने अन्धा (विवेक रहित) नहीं किया है ? अर्थात् ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, कवि, विद्वान, गुणवान सभी को मोह व माया ने नचाया है। माया का परिवार बलवान है, अपार है। कामादि (काम, क्रोध, लोभ) उसके सेनापति हैं। दम्भ, पाखण्ड, कपट आदि योद्धा हैं–

**जो माया सब जगहि नचाया। जासु चरित लखु काहुँ न पावा।।**

माया समस्त संसार को नचाती है, उसके चरित्र को किसी ने नहीं समझा है, परन्तु वह माया राम की दासी है–

**"सो दासी रघुवीर कै।"**

**(9) काकभुशुण्डि के कथा कहने का कारण**—यह रामकथा महादेव ने पार्वती को सुनायी है। तब पार्वती पूछती हैं—हे महादेव ! जो रामकथा आप मुझे सुना रहे हैं वह आपने काकभुशुण्डि से सुनी है। काकभुशुण्डि तो एक पक्षी (कोआ) है उसने इस कथा को क्यों कहा ? पार्वती के इस प्रश्न को सुनकर महादेव ने बताया—काकभुशुण्डि ने कोए का शरीर पाया है, फिर भी वह वैराग्य ज्ञान और विज्ञान में दृढ़ है। उनकी राम में भक्ति है। उनकी कथा इस प्रकार है—सुमेर पर्वत की उत्तर दिशा में सुन्दर नील पर्वत है उसके स्वर्णमयी शिखर हैं। उन शिखरों पर बरगद आदि के वृक्ष हैं और एक सुन्दर तालाब है वहीं पर काकभुशुण्डि रहता था वह हरि का भजन करता था और पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान करता था बरगद के वृक्ष के नीचे हरिकथा कहता था। सभी पक्षीगण वहाँ आकर राम—कथा सुनते थे। मैंने तो वहाँ जाकर यह दृश्य देखा। मैंने भी महादेव (हंस) का शरीर धारण किया और राम—कथा सुनकर कैलाश पर्वत पर आ गया। काकभुशुण्डि ने यह बताया कि वह राम की बाल—लीलाएँ अयोध्या जाकर देखते हैं। राम की लीलाएं विचित्र हैं—

**जब—जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्ति हेतु लीला बहु करहीं।।**

काक के रूप में काकभुशुण्डि भगवान के साथ कृपाएँ करता है। उसकी जूठन खाता है। राम का शरीर सुन्दर है महल मनोहर है। उनका बाल रूप मन हरने वाला है। बालक राम किलकारी मारते हुए मुझे पकड़ने दौड़ते हैं तो मैं भाग जाता हूँ। एक बार राम ने मुझे पकड़ने के लिए भुजा फैलाई। मैं बचने के लिए जैसे—जैसे आकाश में उड़ता गया वैसे—वैसे उनकी भुजा को अपने पास देखता गया। मैं राम के इस रहस्य से व्याकुल हो गया मैंने आंखें बन्द कर ली। जैसे ही मैंने आंखें खोलीं तो मैंने अपने को अयोध्या में पाया। मुझे देखकर राम मुस्कराने लगे। उनके हँसते ही मैं उनके पेट में चला गया।

**(10) काकभुशुण्डि द्वारा प्रस्तुत राम—भक्ति**—काकभुशुण्डि ने राम के उदर में देखा कि वहाँ अनेक ब्रह्माण्ड हैं, जिनमें प्रत्येक से अलग—अलग लोक हैं। सभी के भिन्न—भिन्न ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मनु व दिक्पाल हैं—

**'लोक—लोक प्रति भिन्न विधाता'।**

वहाँ पर असुर देव, मानव पशु पक्षी सभी अलग—अलग हैं। वे सभी जीव विभिन्न (अलग— अलग) प्रकार के हैं। पृथ्वी नदी समुद्र, पर्वत, तालाब सभी अलग—अलग हैं, प्रत्येक लोक में अयोध्या नगरी भी अलग है। सभी में दशरथ, भरत आदि भाई कौशल्या आदि माता भी भिन्न रूपों में हैं, परन्तु राम एक ही हैं।

**'राम न देखउँ आनी।'**

काकभुशुण्डि नहीं समझ सके कि राम का स्वरूप क्या हैं ? उनकी बुद्धि मोह रुपी कीचड़ में फँस गयी। वे व्याकुल हो गये। तब राम हँस दिये तो काकभुशुण्डि उनके मुख से बाहर आ गये। उसने देखा कि राम उसी प्रकार क्रीड़ाएं करने लगे हैं। काकभुशुण्डि की व्याकुलता और अधिक बढ़ गयी। वे राम को रक्षा के लिए पुकारने लगे। राम ने उनके उपर दयामय दृष्टि के साथ वरदान मागने का आग्रह किया। कि चाहे वह ऋद्धि—सिद्धि या मुक्ति तक मांग लें, जो भी वह माँगेगा वही मिलेगा। परन्तु काकभुशुण्डि ने राम से भक्तिगत वरदान माँगा। राम अत्यधिक प्रसन्न हो 'एवमस्तु' कहकर भक्तिगत वरदान दिया। भक्ति संसार में सौभाग्यवान को ही मिलती हैं। जो भक्ति को प्राप्त होते है, राम उन्हें अत्यन्त प्रिय मानते हैं। यद्यपि एक पिता की अनेक संतानों को अपने—अपने अनुसार वस्तुएं प्रिय होती हैं। कोई विद्वान होता है, कोई धनवान होता है, परन्तु पिता को प्रिय वही होता है जो पितृ भक्त होता है उसी प्रकार राम कहते हैं—

**'सुचि सेवक मम प्राणा।'**

जो मेरा भक्त हे वह पवित्र हे और मेरे प्राण के समान प्रिय है। काकभुशुण्डि ने राम की भक्ति का महत्व पक्षीराज गरुड को भी बताया।

**(11) गरुड़ के प्रश्न**—गरुड़ यद्यपि काकभुशुण्डि के माध्यम से राम की भक्ति को समझते हुये उसके महत्व को भी जान गये थे। परन्तु उनके मन में काकभुशुण्डि के विषय में जिज्ञासा पैदा हुई तथा उन्होंने काकभुशुण्डि से प्रश्न किए—हे काकभुशुण्डि ! आप राम के सेवक हैं, फिर आपने कोए का शरीर क्यों प्राप्त किया ? तथा मैनें शिव जी से सुना है कि महा प्रलय मे भी विनाश को प्राप्त नहीं होंगें। ऐसा क्यों हैं ? जब कि सभी कुछ संसार में नाशवान है।

**(12) काकभुशुण्डि का पूर्व जन्मों का वर्णन**—काकभुशुण्डि कहते हैं कि मुझे अपने पूर्व जन्मों के विषय में पर्याप्त स्मृति है मैंने विविध जन्मों में जप, तप, योग यश, दान आदि अच्छे कर्म भी किए और बुरे कर्म भी किए। विभिन्न योनियों में मैं भटकता फिरा लेकिन मुझे सुख कहीं भी नहीं मिला। एक कल्प में कलियुग आया जिसमें सभी नर—नारी अधर्म का सेवन करने लगे। उसी कलियुग

में अयोध्यापुरी के एक शुद्र के यहाँ मेरा जन्म हुआ। तब मैं शिव का परम् सेवक बन गया, मुझे इतना अभिमान हो गया कि शिव के अतिरिक्त अन्य देवों की सदा निन्दा करता था। मैं राम के विषय में कुछ भी नहीं समझ सका था। उस कलियुग का प्रभाव मेरे ऊपर भी पड़ा।

**(13) कलियुग के प्रभाव का वर्णन**—काकभुशुण्डि ने कलियुग के अनिष्ट प्रभाव को देखा था। वर्णित कर कहते हैं। कि उस समय प्रजा में वर्ण व्यवस्था व आश्रम परम्परा समाप्त हो गयी थी। सभी शास्त्रों की बातों का विरोध करते थे। राजा प्रजा के रक्षक न हो भक्षक हो गये थे। पण्डित ढोंगी, अज्ञानी, घमण्ड व पापाचार में लिप्त थे। सामाजिक मर्यादा भंग हो चुकी थी सभी पापाचरण में लिप्त व खान–पान तो भष्ट हो गये थे। दुराचरण के साथ कामोवासना में लिप्त थे। अतः तुलसीदास जी वर्णित कर सकते हैं।

**नारि विवस नर सकल गोंसाई। नाचहि नर मर्कट की नाई।।**

इतना ही नहीं शूद्र ब्राह्मणों के उपदेशक थे। कामी, लोलुप, पाखण्डी पापाचारी, दुराचारी, क्रोधी, मानी, मायावीजन से समाज भरा पड़ा था। पतिव्रता नारी अपमानित होती थी विधवा श्रृंगार करती थीं। निम्न जातियों ने ढोंगी ब्राह्मणों व साधु का वेश धारण कर समाज में ठगी व नारियों से व्याभिचार करते थे।

**नारि मुई घर सम्पत्ति नासी। मूड़ मुड़ाय भये सन्यासी।।**

आचारहीन समाज में वर्ण संकट हो गया था। पापमय वातावरण में अकाल पड़ने लगे थे। पैदावार नहीं होती थी। सभी प्रजा दुःखी थी, चारों ओर हाहाकार व्याप्त थी।

संसार में चार युग हैं—सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग सभी युगों के अपने–अपने धर्म हैं और सभी युगों से संसार से पार होने के उपाय हैं। कलियुग की विशेषता यह है कि इसमें योग, यज्ञ, पूजा आदि नहीं करनी पड़ती, बल्कि प्रभु के गुणगान करने से ही कल्याण हो जाता है। बिना प्रयास के ही व्यक्ति संसार से पार हो जाता है।

**(14) काकभुशुण्डि के अन्य जन्मों का वर्णन**—काकभुशुण्डि पक्षिराज गरुड़ से कहते हैं कि कलिकाल का विपरीत प्रभाव मेरे भी ऊपर पड़ा। मैंने बहुत वर्षों तक अयोध्या में निवास किया। उस समय वहाँ एक बार अकाल पड़ा। जिसके दुःखद प्रभाव से घबराकर मैं अयोध्या छोड़कर उज्जैन चला गया। धीरे–धीरे मैने धन इकट्ठा किया और भगवान शिव की उपासना में मगन हो गया। वहीं पर मैं एक ब्राह्मण से मिला जो सज्जन, परोपकारी, ज्ञानी शिव उपासक थे। वे भगवान राम के निन्दक नहीं थे। मैं उनकी सेवा करने लगा, परन्तु मेरे मन में छल कपट था। उस सज्जन ब्राह्मण ने मुझे प्रभु के समान स्नेह, शिक्षा व शिव–मंत्र से भी दिया। मैं भगवान शिव के मन्दिर में जाकर नियमित शिव–मंत्र का जाप किया करता था किन्तु मेरा अहंकार निरन्तर बढ़ता गया। मैं आन्तरिक मन से पापी था किन्तु राम भक्तों को देखकर मैं जल उठता था। मेरे गुरू ब्राह्मण ने मुझे बहुत समझाया। परन्तु मुझे उनका विचार अच्छा नहीं लगता था। मैं जाति से नीच था अतः मन ही मन गुरूद्रोही था ब्राह्मण गुरू द्वारा उपदेशित हितकर बातें अहित कर प्रतीत हुई। एक दिन शिव मन्दिर में शिव जाप रहा था। तभी वहाँ गुरू जी आ गये। अभिमान के कारण मैंने उनका अभिवादन भी न कर सका परन्तु गुरूवर ने अपने दयालु, क्षमाशील, सज्जन स्वभाव के कारण कुछ भी नहीं कहा। महादेव जी इस घटना से गुरू के अपमान की नीति से क्रोधित हो उठे क्योंकि जो गुरू का अपमान करता है, वह करोड़ों वर्षों तक रीख नरक में पड़ा रहता था तथा वहाँ से आकर भी तिर्यग्य (पशु–पक्षी आदि) का शरीर धारण करता हैं। अतः शिव जी ने शाप दिया—

**'सर्प होहि खल मल मति व्यापी।'**

हे दुष्ट ! तुम सर्प योनि प्राप्त करो तथा किसी विशाल वृक्ष की कोटर में जाकर रहो ब्राह्मण गुरू यह सुनकर अत्यन्त व्याकुल हुए। उन्होंने हाथ जोड़कर शिव की प्रार्थना के साथ रुद्राष्टक पढ़ा जिससे शिवजी ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। उसने दो वरदान माँगे–

1. शिव भक्ति, 2. प्रशप्त शिष्य पर कृपा।

शिव जी ने आकाशवाणी के माध्यम से उन्हें स्वीकार कर लिया साथ ही उन्होंने कहा कि शाप असत्य तो नहीं होगा, इतना अवश्य है कि जन्म–मरण में दुस्सह दुःख नहीं होगा। काल की प्रेरणा से में विन्ध्याचल में सर्प बना कुछ समय इसी प्रकार बिताया। मैंने विविध शरीर बिना कष्ट के प्राप्त किया ? वे अत्यधिक सज्जन व कृपालु थे। अन्त में ब्राह्मणत्व का शरीर प्राप्त किया, परन्तु मेरी रामभक्ति में इतनी श्रद्धा थी कि मैंने माता–पिता के कथनानुसार कोई पढ़ाई नहीं की उनकी मृत्यु के पश्चात् मैंने विविध स्थानों पर भ्रमण किया रामभक्ति व उनके जीवनभक्ति विषयक जानने की इच्छा व्यक्त करता रहा। अन्त में सुमेरु पर्वत पर निवास करने वाले ऋषिमुनि लोमश के पास पहुँचा। उन्होंने मेरी श्रद्धा, नम्रता आदि देखकर पहले तो राम–कथा कही, परन्तु शीघ्र ही उन्होंने

मुझे निर्गुण–भक्ति की ओर प्रेरित किया। मैं उनसे निर्गुण–सर्गुण भक्ति विषयक वाद–विवाद करते हुए सगुण को निर्गुण से उत्तम सिद्ध कर देता था। अतः लोमश ऋषि ने क्रोधित होकर मुझे शाप दिये जिससे मैं कौआ बन गया। परन्तु मैंने कोए का रूप धारण करके भी उनके प्रति क्रोध व्यक्त नहीं किया।

अतः वे बहुत प्रसन्न हुए तथा मुझे 'श्री रामचरितमानस' सविस्तार सुनाया। उन्होंने इस कथा को शिवजी से प्राप्त किया था। इस प्रकार मैं कौआ बनकर अपने आश्रम में आ गया। मैं प्रभुराम की नगरी में रहता हूँ और उनकी शिशुलीला देखता हूँ। इस प्रकार काकभुशुण्डि ने गरुड़ ! की शंकाएं दूर कर दी।

**(15) निर्गुण पर सगुण भक्ति की विजय**–काकभुशुण्डि जब लोमश ऋषि–मुनि के पास गये तो उन्होंने काकभुशुण्डि की योग्यता, पात्रता, विनयशीलता देखकर निर्गुण भक्ति का उपदेश दिया था। उन्होंने कहा था कि भगवान्, अजन्मा, अद्वैत, निर्गुण तथा अन्तर्यामी है, वह राम रहित, रूप रहित, अखण्ड व अदृश्य है। उन्होंने कहा था–

**मन गोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवद्यि सुख रासी। सो तै ताहि ताहि नहिं भेदा। वारि बीच इस गावहिं वेदा।।**

अर्थात् निर्गुण भगवान मन और इन्द्रिय से अगोचर है, अविनाशी हैं, निर्विकार है, सीमारहित हैं। वह 'तत्वमसि' कहकर पुकारा जाता है। जीव और ब्रह्म में उसी प्रकार का सम्बन्ध है जैसे लहरों व जल में होता है। वे अलग–अलग होकर भी एक हैं

काकभुशुण्डि ने इस निर्गुण रूप को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने पूछा–

**मायावस परिछिन्न जड़ जीव कि ईस समान।**

अर्थात् जीवन माया के वश में रहता है, अज्ञानी हैं, वह ईश्वर के समान कैसे हो सकता है? जीव भगवान के स्वरूप को पहचान कर ही सुखी होता है। अन्यथा जीव सदा दुःखी रहता है। परमात्मा ही उसे प्रदान करते हैं। राम की भक्ति ही संसार में पापा को दूर करती है। राम अलग हैं जो सगुण है, वे लीलाएँ करते हैं व सुखी रहने का आर्शीवाद देते हैं। जीव संसार की वासनाओं में लिप्त रहता है, परमात्मा उनकी रक्षा करते हैं। सगुण भक्ति में जीवात्मा, परमात्मा के विभिन्न रूप हैं उनका सम्बन्ध स्वामी सेवक का है। राम–भक्ति से काकभुशुण्डि को ज्ञान, वैराग्य, इच्छानुसार मरण आदि सुख प्राप्त हुए थे।

**(16) भक्तिगत माया में अन्तर**–पक्षीराज ! गरुड़ ! के प्रश्न पर काकभुशुण्डि ने बताया कि भक्ति और माया दोनों ही सभी वर्ग से सम्बन्ध हैं। माया विष्णु भगवान से प्रकट हुई।

(विष्णु माया प्रकट) भक्ति भगवान श्रीराम को प्रिय है। एक स्त्री दूसरी स्त्री पर कभी भी मोहित नहीं होती अतः दोनों का सम्बन्ध नहीं हो पाता। माया तो नाचने वाली है–

**'माया खलु, नर्तकी बेचारी।'**

अर्थात् वह नाचने वाली नर्तकी है भक्ति श्रीराम के अनुरूप है। माया–भक्ति से डरती है जिसकी हृदय में रामभक्ति नहीं उसके हृदय में माया निवास करती है। भक्ति को देख माया सकुचाती है उस पर वह अपना प्रभुत्व नहीं रखती। इसी कारण ऋषि मुनि सुखद भक्ति की चाहत रखते हैं। माया को नहीं चाहते। जो व्यक्ति माया के वशीभूत होते हैं वे तोते, बन्दर के समान नाचते फिरते हैं–

**सो मायावश भयउ गोंसाईं। बन्हयों कीर मर्कट की नाईं।।**

माया के कारण जीव और अचेतन में एक गाँठ पड़ जाती है। जब तक वह गाँठ रहती है तब तक जीव संसार में बंधा रहता है। उसके हृदय में व्याप्त अज्ञानता के अन्धकार को, भक्ति ही दूर करती है।

**(17) भक्ति और ज्ञान में अन्तर**–पक्षीराज ! गरुड़ ! काकभुशुण्डि से प्रश्नगत कहते हैं–

**'ग्यानहिं भगतहिं अन्तर केता ?'**

ज्ञान और भक्ति में कितना अन्तर है ? उनके इस प्रश्न को सुनकर काकभुशुण्डि ने कहा था–

**भक्तिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।। नाथ मुनीस कहहिं कछु अन्तर।।**

यद्यपि ज्ञान और भक्ति में कोई अन्तर नहीं है दोनों ही सांसारिक दुःख से मुक्ति दिलाने वाले फिर भी ऋषि मुनियों ने उसके अन्तर को कहा है–ज्ञान, वैराग्य, योग, विज्ञान–ये सभी पुरुष जो प्रबल हैं। वे माया रुपी नारी के वशीभूत हैं–

**सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी विधु मुख निरखि।**

जैसे मनुष्य किसी मृगनैनी को देखकर उसके वशीभूत हो जाता है, वैसे ही ज्ञान–वान भी माया के वशीभूत हो जाते हैं। दूसरी ओर भक्ति जहाँ है वहाँ श्री राम का निवास है। जिनके हृदय में श्रीराम की भक्ति है वहाँ जाते हुए माया सकुँचाती हुई उसपर अपनी प्रभुता नहीं चला सकती। यही कारण है कि सभी भक्ति की कामना करते हैं। जो भक्ति को जान लेता है उसे स्वप्न में भी मोह

नहीं होता है। वास्तव में 'ज्ञान के मार्ग पर चलना बहुत कठिन हैं। जबकि भक्ति का मार्ग बहुत सरल है। ज्ञान के मार्ग पर अनेक बाधाएँ आती हैं। जिनसे छुटकारा पाना बहुत कठिन.है भक्ति के मार्ग में वे बाधाएँ नहीं रहती हैं जो मुक्ति ज्ञान के द्वारा कठिनता से नहीं मिल पाती, वही मुक्ति भक्ति माध्यम से प्राप्य हैं। श्रीराम की भक्ति से मुक्ति बिना इच्छा किये अपने आप दौड़ कर आ जाती है–

**राम भजत सोई मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआई।।**

भक्ति करने से ही माया या अविद्या का विनाश बिना परिश्रम के सम्भव है जैसे जल की स्थिति थल के बिना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार राम–भक्ति के बिना मुक्ति का सुख प्राप्त नहीं हो सकता। जैसे संसार में जीव तृप्ति के लिए भोजन करता है परन्तु पेट (दुधा) की अग्नि उसे पचा देती है, उसी प्रकार मानव को राम की भक्ति से मुक्ति स्वयमेव मिल जाती है। भक्ति एक चिन्तामणि है जिससे अज्ञान रुपी दरिद्रता स्वयं मिट जाती है।

**(18) ज्ञान का स्वरूप**–भक्ति की महत्ता की प्रस्तुति संत तुलसीदास जी ने ज्ञान के कठिन प्रकाश पर डाला है। उनकी दृष्टि में ज्ञान एक कठिन साधना है, इस विषय में उन्होंने एक रूपक प्रस्तुत किया है, जैसे किसी गाय को हरी–हरी घास खिलाकर पहले पालन–पोषण किया जाता है उसको दूहकर उसका दूध निकाला जाता है, दूध मथकर घी निकाला जाता है घी का दीपक जलाया जाता है उससे प्रकाश होता है। उसी प्रकार श्रद्धा रुपी गौ का हृदय में बाँधकर निवृत्ति विश्वास आदि के द्वारा मन को वश में किया जाता है। धर्म, भाव, क्षमा, सन्तोष, धैर्य, शर्म, सत्य, वैराग्य, योग के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती हैं। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् भी ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ आकर विहन करती हैं। इन्द्रियाँ व इन्द्रियों के विषय उस दीपक को जलने नहीं देते, उनकी तेल हवाएँ उस ज्ञान रूपी दीपक को बुझाने का प्रयास करती हैं, जिसे रोकना बहुत ही कठिन है। यदि कदाचित ज्ञान रूपी दीपक बुझ जाता है तो बहुत कष्ट होता है। ज्ञान को कहना बहुत कठिन है, उसको समझना बहुत कठिन है व उसकी साधना भी बहुत कठिन है। अतः तुलसीदास जी का कथन है कि–

**'ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होई नहिं बारा।।**

ज्ञान का रूप उसी प्रकार है जैसे तलवार की धार। जैसे तलवार की तेजधार पर चलना कठिन है। वैसे ही ज्ञान का मार्ग अपनाना अत्यन्त कठिन है। तलवार की धार पर चलता हुआ व्यक्ति कभी भी गिर सकता है। उसी प्रकार ज्ञान के कठिन मार्ग से थोड़ी सी असावधानी होने पर साधक गिर जाता है बिना विध्न के जो उस मार्ग को अपना लेता है। उसे ही मोक्ष या कैवल्प की प्राप्ति होती है।

**(19) भक्तिगत महत्ता**–भक्ति का मार्ग ज्ञान के मार्ग की अपेक्षा अत्यन्त सरल है। हरि–भक्त से मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है जैसे जल की आधार पृथ्वी है वैसे ही भक्ति का आधार ईश्वर है, भक्ति से सभी संसार के दुःख अनायास छूट जाते हैं भक्ति तो एक चिन्तामणि रत्न है–

**'राम भक्ति चिन्तामणि सुन्दर'।**

इस मणि का प्रकाश दिन–रात रहता है उसमें न घी जलता और न ही बत्ती की आवश्यकता रहती है तुलसीदास जी के कथनानुसार–

**खल कामादि निकट नहीं जाहीं। बसई भगति जाके उर माहीं।।**

जिसके हृदय में भक्ति है वहाँ काम, क्रोध, लोभ आदि दुष्ट नहीं जाते हैं। उनके लिए जहर भी अमृत तुल्य है, शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। उनके हृदयागत दुःख स्वप्न में भी नहीं रहता–

**'राम भगति उर बस जाकें'। दुःख लवलेशन सपनेहुँ ताके।।**

संत ही भक्ति–मणि की खोज करते हैं। हे पक्षीराज ! गरुड़ ! वेद समुद्र है, ज्ञान मन्दराचल पर्वत है। संत देवता हैं। समुद्र को मथकर जो कथा रुपी अमृत निकाला जाता है उसी में भक्तिगत मधुरता रहती है। जो प्राणी वैराग्य रूपी ढाल से अपनी रक्षा करते हुए ज्ञानरूपी तलवार से मद, मोह, लोभ रूपी शत्रुओं को मारकर विजय पताका फहराता है वही हरि–भक्ति से लाभान्वित होता है।

**(20) गरुड़ के सात प्रश्नों के उत्तर**–गरुड़ ने काकभुशुण्डि से सात प्रश्न किए थे। जिनका यथोचित उत्तर काकभुशुण्डि ने दिया था वे प्रश्नोत्तर इस प्रकार हैं–(1) संसार में सबसे बड़ा दुर्लभ शरीर कौन सा है ? उत्तर में कहा गया है कि मानव–शरीर संसार में सबसे दुर्लभ है। इसे प्राप्त करने के लिए चर–अचर जीव लालायित रहते हैं यही मुक्तिगत सोपान है।

(2) संसार में सबसे बड़ा दुःख कौन सा हैं ? उत्तर में कहा गया है कि दरिद्रता संसार में सबसे बड़ा दुख है।

(3) सबसे बड़ा सुख क्या हैं ? उत्तर में संत समागम को सबसे बड़ा सुख कहा गया है।

(4) संत–असंत में क्या भेद हैं ? उत्तर में कहा गया है कि संत परोपकार के लिए जीवन को समर्पित करते हैं जब कि असंत दूसरों को कष्ट देते हैं।

(5) सबसे बड़ा पुण्य क्या है ? अहिंसा को सबसे बड़ा पुण्य व धर्म कहा गया है।

(6) सबसे बड़ा पाप क्या है ? पर निंदा को सबसे बड़ा पाप कहा गया है।

(7) मानस रोग क्या है ? मानसिक रोग अनेक हैं।

**उदाहरणार्थ**–क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, दुष्टता, दम्भ, मद आदि। ये जीवों को सदा पीड़ित करते रहते हैं। वस्तुतः ये सात प्रश्नोत्तर आत्म–शुद्धि के लिए उपयोगी हैं।

**संत–असंत में अन्तर**–काकभुशुण्डि ने संक्षेप में संत और असंत के विषय में कहा है–

**संत सहहिं दुःख परहित लागी। पर दुःख हेतु असंत अभागी।।**

संत दूसरों के लिए कष्ट सहन करते हैं और असंत दूसरों को दुःख देते हैं। संत अनेक दुःख उठाते हैं, परन्तु सभी का ध्यान रखते हैं उनकी उन्नति सभी के लिए सुखदायक है दुष्टों की उन्नति सभी के लिए दुःखदायक है। सज्जन भोज के वृक्ष के समान दूसरों का हित करने के लिए अत्यधिक विपत्ति सहते हैं। असंत सन के समान दूसरों को बाँधते हैं। ओलों की वर्षा के समान खेती का विनाश करके स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं असंत पराई सम्पत्ति का विनाश करते हैं और अपना भी नाश करते हैं। इस प्रकार असंत संतों के विपरीत चलते हैं तथा संत परोपकाराय (परोपकार के लिए) सदैव समर्पित रहते हैं।

**(22) मानस रोग और उनके उपचार**–रोग दो प्रकार के होते हैं–

1. शारीरिक रोग।

2. मानसिक रोग। मानसिक रोग का सम्बन्ध मन से है। मानस रोग अनन्त है, जिनका मूल आधार है–अज्ञान–मोह।

**मोह सकल व्याधिन्ह का मूला। तिन्ह से पुनि उपजहिं बहु सूला।।**

मोह से ही अनेक रोग उत्पन्न होते हैं–उदारणार्थ–काम, लोभ, क्रोध, ममता, ईर्ष्या, हर्ष–विषाद, दुष्टता, कटुता, अहंकार व कपट, तृष्णा, मत्सर, अविवेक आदि अनंत मानसिक रोग हैं। मानव एक रोग से ही छुटकारा प्राप्त नहीं कर पाता है। उसी के वशीभूत होकर मर जाता है, फिर ये तो असाध्य रोग हैं, जो सभी प्राणियों को निरन्तर कष्ट देते रहते हैं।

नियम धर्म, सदाचार, तप, ज्ञान, यज्ञ जप, दान आदि अनेकों औषधियाँ हैं जिनसे भी ये रोग जल्दी दूर नहीं हो पाते हैं। संसार के सभी जीव किसी न किसी रोग से पीड़ित हैं। केवल राम की भक्ति ही ऐसी है जिन से ये रोग नष्ट हो जाएं। भगवान श्रीराम को भगवद् भक्ति ही संजीवनी बूटी है श्रद्धा अनुपम है विषयों से दूर रहना परहेज है। हृदय में वैराग्य उत्पन्न होने के स्थिति में मन निरोग होता है। जब मानव श्रीराम रूपी जल में स्नान कर लेता है, तब मनुष्य को हृदय में राम–भक्ति बढ़ जाती है। तब मानस रोग का अन्त हो जाता है।

**(23) राम–कथा के अपात्र और अधिकारी**–यद्यपि रामकथा सुख–शान्ति युक्त है, परन्तु संसार के जीव विभिन्न प्रकार के हैं, उनके आचरण भी अलग–अलग हैं अतः श्रीराम–कथा के सभी पात्र नहीं हैं। राम–कथा के अपात्र वे हैं जो धूर्त हैं, हठी स्वभाव से रामलीला में मन लगाने में असमर्थ हैं, क्रोधी व कामोवासना में लिप्त हैं जो बहुत अधिक लोभी हैं, भगवान श्रीराम का कभी भजन नहीं करते, जो ब्राह्मणों के द्रोही हैं। ये व्यक्ति भले ही धनवान हों तो भी ये श्रीराम कथा के पात्र नहीं हैं।

श्रीराम कथा के जो अधिकारी हैं, उनके विषय में संत तुलसीदास वर्णित करते हुए कहते हैं।

**रामकथा के तेइ अधिकारी। जिन्ह के सत संगति अति प्यारी।।**

अर्थात् जिन्हें सत्संगति प्रिय है वे ही श्री रामकथा के अधिकारी हैं। इसके अतिरिक्त जिनके गुरू के चरणों में प्रीति है, जो नीति–परायण हैं, जो ब्राह्मणों की सेवा करते हैं, जिन्हें श्रीराम प्राण के समान प्रिय हैं, जो मोक्ष चाहते हैं, जो कथा रूपी अमृत को कान रूपी दोने से पान करता हैं, वे ही श्रीराम कथा के वास्तविक अधिकारी हैं।

# अध्याय 13

# रामचरितमानस में उत्तरकाण्ड का महत्व

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में सगुण भक्ति काव्यधारा के कवियों में श्रेष्ठ कवि तुलसीदास जी हैं। उन्होंने भारतीय सभ्यता संस्कृति का'उत्तम गौरवगान अपने ग्रंथों में किया है। यद्यपि उनकी सभी कृतियाँ उत्तम हैं परन्तु उनकी कृतियों में 'रामचरितमानस' अद्वितीय है। 'मानस' में भी 'उत्तरकाण्ड' समस्त ग्रंथ का निचोड़ है।

सृजन की दृष्टि से भी यह काण्ड महत्वपूर्ण है। इसमें जन–जन के आराध्य प्रभु राम के वनवास से आगमन का वर्णन है। राम के वियोग से प्रजा वर्ग दुःखी है। चौदह वर्ष की प्रतीक्षा के पश्चात् उनके आराध्य के शुभागमन का करुणापूर्ण चित्रण किया है। भरत की चिंता–'कहीं प्रभु ने मुझे विस्मृत तो नहीं कर दिया।' आदि का वर्णन किया है। भरत की चिंताओं को मिटाने वाले अंजलि पुत्र हनुमान विप्र–वेश धारण करके आ जाते हैं। उनका आगमन सभी को आनंदित कर देता है।

नंदिग्राम से अयोध्या आकर भरत् श्रीराम के शुभागमन की सूचना सभी को देते हैं। सारा नगर उत्साह एवं आनन्द से भर जाता है। युवतियाँ मंगल थाल सजाकर भगवान के स्वागतार्थ चल पड़ती हैं। श्रीराम अपने साथियों को पुष्पक विमान से नगर की शोभा दिखाते हुए, समीप ही उतर जाते हैं। अयोध्या में अपने मित्रों की सुख–सुविधा का उन्हें पूरा ध्यान रहता है। शुभ दिन में भगवान सिंहासनारूढ़ होते हैं। देवता ऋषि मुनि सभी आनन्दित होते हैं। वेद भी भगवान की स्तुति करने के पश्चात् ब्रह्म भवन को चले जाते हैं। वेदों के चले जाने के पश्चात् भगवान शंकर श्रीराम से विनय करते हैं। उनका सारा शरीर हर्ष से गद्–गद् हो जाता है। वे श्रीराम से केवल उनकी दुर्लभ भक्ति की याचना करते हैं।

गरुड़ को श्रीराम कथा सुनाने के पश्चात् काकभुशुण्डि कथा का महात्म्य बताते हुए कहते हैं– यह पवित्र कथा त्रितापों को मिटाने वाली है तथा इसका श्रवण करने से मनोवांछित वस्तु की प्राप्ति होती है।

अयोध्या में कुछ समय रहने के पश्चात् श्रीराम के मित्र विदा हो जाते हैं, किन्तु हनुमान ही भगवान राम के समीप रह जाते हैं।

उपर्युक्त कथा के बाद रामराज्य की विशेषताओं का वर्णन आरम्भ हो जाता है। तुलसी के समय में भवन शासकों से हिन्दु समाज संत्रस्थ था। अतः स्वाभाविक ही था कि तुलसी राज्य के ऐसे प्रजाहितैषी स्वरूप का आदर्श उपस्थित करते की जिससे आर्त्तजनों को किंचित संबल तथा शासक वर्ग को अपनी त्रुटि का आभास मिलता। भगवान राम उनके आदर्श शासक थे।

उनके राज्य में वर्णाश्रम धर्म का पालन होता था। प्रजा को कोई कष्ट नहीं था। वैदिक मार्ग का सभी अनुसरण करते थे। अल्प मृत्यु, निर्धनता, मूर्खता आदि बुराइयों का नामोनिशान नहीं था। स्त्री और पुरूष सभी गुणवान तथा निष्कपट एवं सदाचारी थे। रामराज्य में लोग एक पत्नीव्रती थे और स्त्रियां मन, कर्म एवं वाणी से पतिव्रता थीं।

वैदिक धर्म में यज्ञ अनेक शुभ कर्मों के द्योतक माने जाते हैं। वैदिक ग्रंथों में विविध प्रकार के यज्ञों का विधान है जिनसे दैवी आपत्तियों से त्राण प्राप्त होता है। भगवान ने भी वैदिक धर्म का पालन करते हुए करोड़ों अश्वमेघ यज्ञ किये थे। इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन धार्मिक मान्यताओं पर भी उस समय लोगों की पूर्ण आस्था थी।

'चैरिटी बिगिन्स ऐट होम' अर्थात् 'दान परिवार से आरम्भ होता है।' यह अकाट्य कथन है। राम का परिवार एक आदर्श परिवार था। उसकी पत्नी सीता अपने पति का रूख देखकर आचरण करती थीं। वे राम के महत्व से पूर्णतः अवगत थीं। वे अपने पति की स्वयं सेवा करती थीं।

राम के अनुज भी उनके प्रति पूर्ण श्रृद्धा भक्ति रखते थे। वे सब इस प्रतीक्षा में रहते थे कि उनके अग्रज राम उनकी सेवा का सुअवसर प्रदान करें। राम भी अपने भाइयों का पूरा ध्यान रखते थे तथा उन्हें नैतिक शिक्षा देते थे। सभी भाइयों के रूप, गुण एवं शील से सम्पन्न दो–दो पुत्र थे।

'उत्तरकाण्ड' के इन वर्णनों से स्पष्ट है कि रामराज्य हर प्रकार से एक आदर्श राज्य था। तुलसी के काल का शासन और आचरण इसके ठीक विपरीत थे। तुलसी का हृदय उस स्थिति से अत्यन्त क्षुब्ध था। वे चाहते थे कि राजा और प्रजा दोनों ही राम का अनुकरण करके अपने जीवन को सुखमय बनाएँ। परस्पर विरोध का परित्याग करके आत्मीयता और स्नेह के साथ जीवन यापन करें। 'उत्तरकाण्ड' में रामराज्य की प्रशंसा तथा उसकी विशेषताओं का वर्णन उनके सभी दृष्टिकोण का परिचायक है इसी विचार से यह काण्ड 'रामचरितमानस' में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

तुलसीदास समन्वयवादी कवि थे। लोक कल्याण की कामना से अभिभूत होने के कारण उन्होंने सज्जनों को सावधान रखने के लिए संतों तथा असंतों का यथावसर वर्णन किया है। उत्तरकाण्ड में श्रीराम के भाई उनके संतों की महिमा तथा संत–असंतों के भेद अलग–अलग जानना चाहते हैं। अपने भाइयों की इच्छानुसार श्रीराम अत्यन्त सरलता से उन्हें बताते हैं कि संत–असंत के आचरण इस प्रकार होते हैं कि जैसे चंदन और कुठार (कुल्हाड़ी) का आचरण। कुल्हाड़ी चंदन को काटती है परन्तु चंदन अपनी सुगन्ध से उसे सुवासित कर देता है। इसी प्रकार संत का अपकार किए जाने पर भी वह अपने अपकारी के प्रति किसी प्रकार की

कुलषता नहीं रखता। असंत को अपनी करनी का फल उसी प्रकार भोगना पड़ता है जैसे–कुल्हाड़ी लौहार की भट्ठी में तपकर हथौड़ों से पिटती है। जबकि चंदन देवताओं के मस्तक की शोभा बनता है।

संत शीलवान दूसरों के दुःख से दुःखी तथा दूसरों के सुख से सुखी होते हैं। उनका हृदय कोमल होता है। वे इच्छा रहित तथा प्रभु की भक्ति में तत्पर, शांत तथा सबके मित्र होने के साथ ही वे सरल, धार्मिक एवं विजातियों के प्रति श्रद्धावान होते हैं कठोर शब्दों का वे प्रयोग नहीं करते और न नीतिपथ का परित्याग करते हैं। अंत में भगवान राम कहते हैं कि जिनका मेरे चरणों में प्रेम होता है। वे लोग सुख के समूह हैं। और मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं।

श्रीराम असंतों (दुष्टों) के स्वभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इनका संग कभी भी नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे अधर्मी होते हैं। सीधी–सादी गाय को जैसे शरारती गाय आघात पहुँचाती है उसी प्रकार दुष्ट भी दूसरों को पीड़ा पहुँचाने में तत्पर रहते हैं वे दूसरों के उत्कर्ष को देखकर ईर्ष्या करते हैं। परनिंदा दत्तचित्त होकर सुनते हैं। वे मलिन मन, निर्दयी, कपटी, कामी, क्रोधी, व्याभिचारी, घमण्डी और लोभी होते हैं। वे ऐन्द्रिय भोग तथा भोजन के भूखे होते हैं। निरन्तर दूसरों से द्रोह करते हैं ऐसे व्यक्तियों का शरीर ही मानव जैसा होता है आचरण राक्षसों के समान होता है। किसी को विपति में फँसा देखकर इस प्रकार प्रसन्न हो जाते हैं। परिवार में विरोध उत्पन्न करते हैं। माता–पिता, ब्राह्मणों की उपेक्षा करते हैं। उन्हें सत्संगति तथा प्रभु की कथा अच्छी नहीं लगती। ऐसे व्यक्ति कलियुग में अधिक होते हैं।

निष्कर्ष रूप में भगवान कहते हैं। कि परोपकार ही सबसे बड़ा धर्म तथा परपीड़ा सबसे जघन्य अपराध है। मानव शरीर धारण करके जो व्यक्ति दूसरों को कष्ट पहुँचाते हैं उन्हें भयंकर सांसारिक व्यथा सहन करनी पड़ती है। जो चतुर हैं वे दुराचरण न करके केवल मेरी भक्ति में तत्पर रहते हैं।

एक बार श्रीरामचंद्र जी ने दरबार में अपने गुरू वशिष्ठ जी, ब्राह्मणों तथा नगरवासियों को बुलाया। उनका समुचित आसन देने के बाद भगवान राम कहने लगे कि मैं कोई अनीति की बात नहीं कर रहा हूँ। लोग अपनी इच्छानुसार कार्य करने में स्वतन्त्र हैं। मेरा प्रिय वही है जो मेरी आज्ञा माने। यदि इसमें कुछ अनुचित हो तो निर्भय होकर मुझे रोक दो। मानव शरीर अत्यन्त दुर्लभ है। यह साधना गृह तथा मोक्ष–प्राप्ति माध्यम है। इसे प्राप्त करके जो परलोक नहीं सुधारते तथा इस जीवन को व्यर्थ ही विनष्ट कर देते हैं, वे लोग अन्ततः पश्चाताप करते है तथा ईश्वर के कर्म तथा समय को निरर्थक ही दोषी ठहराते हैं। इस शरीर का ज्ञान का फल विषय नहीं है। मानव शरीर पाकर लोग विषयों में मन लगा लेते हैं। वे मूर्ख अमृत से बदलकर विष बन जाते हैं पारसमणि गँवाकर धुँधुली को ग्रहण करने वाले को कोई भला नहीं कहता है। चौरासी लाख योनियों में यह अविनाशी जीव चक्कर खाता रहता है। माया की प्रेरणा से काल, कर्म, गुण एवं स्वभाव के घेरे में पड़ा हुआ वह भ्रमित होता रहता है। अकारण ही कृपालु भगवान करूणा करके मानव योनि प्रदान कर देते हैं। मानव शरीर संसार समुद्र को पार करने के लिए बेड़ा है। मेरी कृपा सम्मुख की वायु है। सद्गुरु सुदृढ़ नाव का कर्णाधार है। इस प्रकार का सुयोग समान पाकर भी जो मनुष्य भव सागर से पार नहीं उतरता है वह कृतध्न तथा मंदबुद्धि तथा आत्महत्या करने वालों की गति को प्राप्त होता है।

यदि परलोक तथा इस लोक में सुख प्राप्त करना चाहते हो तो मेरा वचन सुनो। भक्ति मार्ग में सुगम ओर सुखकारीद अनेक विघ्न हैं। उसका साधन कठिन है। उसके मन के लिए आधार नहीं है। बहुत कष्ट उठाने के पश्चात् कदाचित् ही उसकी प्राप्ति हो सकती है, परन्तु भक्तिहीन होने के कारण वह मुझे प्रिय नहीं है। भक्ति स्वतन्त्र तथा सभी सुखों की जननी है। बिना सत्संग के भक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। संत जन भी बड़े पुण्यों से मिलते हैं। सत्संगति से सृष्टि में बार–बार आवागमन से छुटकारा मिल जाता है। एक ओर बात यह है कि शंकर जी के भजन बिना मेरी भक्ति को प्राप्त नहीं हो सकते।

भक्ति मार्ग में जरा–सा भी परिश्रम नहीं है न तो उसमें योग है, न यज्ञ न जप और न तप। कुटिलता का परित्याग जो मिले उसी में संतोष आदि। यही भक्त के लिए पर्याप्त है। मेरा सेवक होकर मनुष्य से आशा रखे तो फिर मुझ पर विश्वास ही क्या रहा ? मानव वही है जो निराश्रय, मानरहित, निष्पाप, क्रोधरहित हो। दक्ष और विज्ञानी हो, सज्जनों से प्रेम करे, विषय सुख एवं मोक्ष को तृण के समान समझे भक्ति के पक्ष में हठ करे परन्तु दुष्टता नहीं। सभी प्रकार के कुतर्कों से दूर रहे। जो मेरे गुणों के समूह तथा नाम में मन लगाए रहते हैं, ममता–मद–मोह रहित हैं उसका सुख वही जान सकता है अर्थात् वह सुख अनिर्वचनीय है।

इस प्रकार राम सीता का प्रकरण समाप्त हो जाता है। आगे इस काण्ड में श्रीनारद कृत भगवान की स्तुति, काकभुशुण्डि गरुड संवाद तथा कलियुग की विशेषताओं का वर्णन किया गया है।

**निष्कर्ष**—उत्तरकाण्ड विविध आख्यानों तथा उपदेशों का समुच्चय है। इसमें भगवान के राजस्व काल का भव्य वर्णन है। साथ ही तुलसी की भक्ति एवं ज्ञान विषयक विचारधारा भी स्पष्ट हुई है। इसके अध्ययन से मानसकार के उद्देश्य का भी ज्ञान होता है। विनयपत्रिका इसका ज्वलंत उदाहरण है। वे विधि देवताओं की स्तुति अवश्य करते हैं, परन्तु उनसे भगवान राम के चरणविंदों में अचल भक्ति की याचना करते हैं। 'उत्तरकाण्ड' में जहाँ उन्होंने तत्कालीन परिस्थितियों का आभास कराकर उससे मुक्ति पाने का सुगम उपाय श्रीराम भक्ति बताया है। वहीं उन्होंने ज्ञान का हेय तथा त्याज्य भी घोषित किया है। इसका मुख्य कारण यही रहा है कि तत्कालीन ज्ञानी वर्ग समाज को समुचित दिशा देने में असमर्थ था तथा वह अहमन्यतावादी प्रवृत्तियों में उलझा हुआ था। समाज के उद्धार की भी तुलसी को चिंता थी अतः उन्होंने राम भक्ति के माध्यम से लोगों को समाज की उन्नति करने का मार्ग दिखाया।

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त उत्तरकाण्ड एक ऐसी संहिता है जिसमें राजा, प्रजा, भाई, पत्नी, सेवक, गुरू, शिष्य सभी के कर्तव्यों का बोध कराया गया है। अपने इन्हीं गुणों के कारण इस काण्ड को 'रामचरितमानस' में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है

# अध्याय 14

# भरत का चरित्र

तुलसीदास द्वारा रचित विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के पात्रों में सर्वश्रेष्ठ एवं उदात्त चरित्र राम के छोटे भाई भरत का ही है। यदि उन्हें राम की ही दूसरी मूर्ति कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। राम के समस्त गुण, शील, भ्रातृप्रेम, त्याग, धार्मिकता, दानशीलता, संकोचशीलता, विनम्रता एवं शिष्टाचार आदि भरत के अंदर विद्यमान हैं। 'भरत' के चरित्र का अध्ययन तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' में आधार पर निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है।

**1. भ्रातृस्नेही**—भरत अपने बड़े भाई राम के प्रति अगाध स्नेह एवं श्रृद्धा की भावना से ओत–प्रोत है। उनका मातृ–स्नेह विशेष रूप से अयोध्या काण्ड के 'चित्रकूट प्रसंग' में प्रकट होता है। जब भरत राम को वापस लाने के लिए अपनी सम्पूर्ण सेवा एवं नगरवासियों सहित वन में जाते हैं। उस समय राज्य के समस्त सुखों के होते हुए भी वे भ्रातृ स्नेह हेतु नंगे–पांव वन में यात्रा करते है; क्योंकि उनके आराध्य राम एवं भाई भी तो नंगे पांव वन में विचरण कर रहे थे। अपने मन में अपने बड़े भाई के कष्टों का अनुमान करके ही भरत ने सब सुख–सुविधाओं का परित्याग किया और कष्ट झेलने पर विवश हुए।

वन मार्ग के बीच चित्रकूट पहुँचने से पूर्व ऋषि भारद्वाज का आश्रम पड़ता था। भरत वहाँ गए। वहाँ पर ऋषियों ने भरत तथा उसके साथ आए हुए गुरुजनों माताओं आदि के सत्कार के लिए अनेक दुर्लभ वस्तुओं एवं सुख–सुविधाओं का प्रबन्ध किया, यद्यपि भरत ने भारद्वाज ऋषि के आतिथ्य को स्वीकार किया परन्तु उन दुर्लभ वस्तुओं, सामग्री का उन्होंने स्पर्श तक नहीं किया—

**"संपत्ति चकई भरतु चक, मुनि आयसु खेलवार, तेहि निसि आश्रम पिंजरा, राखे भामिनुसार।"**

भरत के मन में अपने भाई श्रीराम के प्रति कितना स्नेह है इसकी कल्पना करना सहज संभव नहीं है। वे भी मार्ग के कष्टों को सहन करते हुए चित्रकूट तक पैदल जाते हैं; क्योंकि श्रीराम भी तो वहाँ तक पैदल ही गए थे। वन के सभी कष्टों को उन्होंने सहन किया था। मार्ग में उपस्थित वे स्थान जहाँ पर राम, लक्ष्मण, सीता ने विश्राम किया था। उन स्थानों का भरत एवं शत्रुघ्न प्रणाम करते हुए वे आगे बढ़ा लगे। इस प्रकार वन के कष्टों का दुःख उठाते हुए भरत अपने भाई से मिलने के लिए आगे बढ़ते गए। उनकी इस प्रकार प्रेममयी दशा एवं मातृ–प्रेम को देखकर ऋषि, मुनि एवं सिद्ध महात्मा लोग प्रशंसा करते हैं। जब वे राम को लेकर लम्बी आह भरते हैं तो ऐसा लगता है जैसे चारों तरफ मातृ–स्नेह की धारा उमड़ पड़ी हो।

जैसे ही भरत चित्रकूट पहुँचा। वहाँ अपने बड़े भाई राम को देखकर आनन्द मग्न हो गए। अपने सारे दुःख क्लेष सब भूल गए। वे दौड़कर भाई के चरणों के गिर पड़े। अपने अश्रु जल से राम के पांवों पक्षातन किया। लम्बे समय तक भरत के चरण–कमलों में दण्डवत् पड़े रहे। भाई राम ने स्वयं अपने हाथों से पकड़कर उन्हें उठाया। गले मिलकर श्रीराम ने भरत के आने का प्रयोजन जाना। तत्पश्चात् श्रीराम ने समस्त गुरुजनों एवं माताओं को प्रणाम किया। रात के समय चित्रकूट सभा में भरत अत्यन्त दीन, कातर होकर भगवान श्रीराम से वापिस अयोध्या चलने का आग्रह करते हैं। किन्तु राम ने अपने पिता के वचन एवं रघुकूल की वचन परम्परा का अनुसरण करते हुए वन में ही रहना स्वीकार किया और भरत को आदेश दिया कि आप ही राज्य–व्यवस्था का कार्य संभालें। अपने भाई की आज्ञा मानकर उनकी चरण–पादुका को शिरोधार्म करके अयोध्या के राज काज के प्रबन्धन का, उत्तदायित्व निभाने के लिए भरत वापिस लौट आए। अयोध्या पहुँचने पर राम की चरण–पादुका को सिंहासन पर रखना। उनके दर्शनों के उपरान्त ही कार्य करना तथा अपने भाई के अनुरूप ही पृथ्वी पर सोना ये सब घटनाएं भरत के मन में भ्रातृ–स्नेह को दर्शाती है। इससे सिद्ध होता है कि भरत भातृ–स्नेही थे।

**2. विवेकशील**—भरत जितने अपने आराध्य भगवान श्रीराम के प्रति स्नेह रखते हैं वे उतने ही विवेकशील हैं। किसी भी अवस्था में अपने विवेक को विचलित नहीं होने देते। उन्हें इस बात की जानकारी थी कि भाई से वन में मिलने के लिए जाने के समय में काफी समय लगने वाला है तभी उसने अयोध्या के राज व्यवस्था का उचित प्रबन्ध किया था तभी वे वन की ओर गए थे। वे भातृ–स्नेह के आवेग में अपने कर्तव्य पथ से पतित नहीं होते। उन्हें इस बात का आभास है कि अयोध्या की सारी सम्पत्ति श्रीराम की है ओर एक सेवक के नाते उसकी रक्षा करना उसका ही कर्तव्य है। उन्हें इस बात की भी जानकारी है कि संसार इस विषय से अनभिज्ञ नहीं है कि राम को वनवास स्वयं उसकी माँ कैकेई ने दिलवाया है। यद्यपि उसके (भरत) मन में राजसिंहासन के प्रति तनिक भी लोभ नहीं था, परन्तु फिर भी स्वयं को निर्दोष सिद्ध करना अनिवार्य था। इसी कारण वे माता कौशल्या के समक्ष शपथ लेते हैं कि माता कैकेई की इस चाल में उसका तनिक भी हाथ नहीं हैं। जब वे चित्रकूट पर राम से मिलने के लिए जाते हैं तब वहाँ पर वे

राम के स्थान पर स्वयं वन में 14 वर्ष का वनवास व्यतीत करने की इच्छा प्रकट करते हैं। वे कहते हैं–भाई राम! "हमें रघुकुल की रीत को बनाए रखना है तो आप राज्य संभालें, मैं आपके स्थान पर वनवास व्यतीत करूँगा।" परन्तु राम इसे स्वीकार नहीं करते।

राम भरत को अयोध्या का राजसिंहासन संभालने के लिए ही कहते हैं–यदि तुम राजा नहीं बनना चाहते तो मेरे आने तक तुम उसके संरक्षक बनो। यह कहकर उन्होंने अपनी चरण–पादुका भरत को दे दी और भरत उन चरण–पादुकाओं को शिरोधार्य करके वापिस लौट आए। राम की पादुका को राजसिंहासन पर रखकर वे राज्य व्यवस्था को व्यस्थित करने में जुट गए और श्रीराम के आने का इंतजार करने लगे।

**3. रामभक्त**–भरत एक ओर राम के छोटे भाई वहीं दूसरी तरफ वे रामभक्त भी हैं। वे अपना आराध्य देव एवं स्वामी श्रीराम को मानते हैं उनकी भक्ति दास्य भाव की है। 'रामचरितमानस' के सभी भक्त एक साथ मिलकर भी भरत की भक्ति की समानता नहीं कर सकते। यद्यपि भरत श्रीराम से दूर रहते हैं परन्तु दूर से भी उन्होंने अपनी दृढ़ भक्ति श्रीराम के चरणों में अर्पित की है।

यद्यपि राम के वन गमन के पश्चात् अयोध्या लौटने पर भरत को गुरू, मंत्री, माता आदि सभी अयोध्या का राजसिंहासन ग्रहण करने के लिए समझाते हैं, परन्तु वे अपनी दृढ़ राम भक्ति के कारण उन्हें उचित उत्तर देकर उन्हें उत्तरहीन कर देते हैं। जब वे वन में श्रीराम से मिलने के लिए वन में जाते हैं उस समय वे संकल्प लेते हैं–

**"एकहिं आँख उहइ मन माहीं। प्रात काल चालिहउँ प्रभु पाहीं।"**

उनकी रामभक्ति की दृढ़ता एक अन्य स्थल पर भी देखते ही बनती है, जब वे गंगा, यमुना के मिलन स्थल प्रयाग में अपनी आर्त एवं करुण वाणी में क्षत्रिय धर्म का परित्याग करते हुए हाथ जोड़कर सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले तीर्थ से अपनी रामभक्ति की कामना करते हुए कहते हैं–

**"अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहऊँ निरवान। जनम–जनम रति राम पद यह वरदान नऊआन।।"**

संसार के समस्त पदार्थों को पवित्र मानकर प्रेम एवं आनन्द मग्न होकर उन्हें दण्डवत प्रणाम करते हैं, उस समय भी उनकी भक्ति की पराकाष्ठा देखते बनती हैं। वे उन सभी पदार्थों के प्रति भी विनय भावना रखते हैं जो भगवान राम के संपर्क में आए थे। वे प्रभु राम के चरणों की धूल को भी मस्तक पर धारण करते हैं। इस प्रकार के कार्य–व्यापार से भरत की राम के प्रति अनन्य भक्ति ही सिद्ध होती है। वे अपनी भक्ति भावना में किसी प्रकार का दिखावा या प्रदर्शन करना उचित नहीं मानते।

जब वे जैसे ही चित्रकूट पहुँचते हैं उस समय दूर से अपने आराध्य ईश्वर श्रीराम के दर्शन पाकर उनके समस्त दु ख एव मन के ताप मिट जाते हैं। वे भगवान राम को देखते ही 'पहिनाथ', 'पाहिगोंसाईं' कहकर पृथ्वी पर इस तरह से गिर पड़ते हैं जैसे कोई दण्ड मालाठी गिर पड़ी हो, जैसे उनके शरीर में प्राण ही न हो–

**"पाहिनाथ कहि पाहि गोंसाईं भूतल परे लकुट की नाईं।"**

भरत की अनन्य एवं दृढ़ भक्ति को देखकर देवी–देवता भी व्याकुल हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें पता हैं कि भगवान श्रीराम तो भक्त के वश में होते हैं और भरत जैसा भक्त तो श्रीराम से अपनी इच्छानुसार कार्य करवा सकता है। इसलिए यह सोचकर कि कहीं राम भरत के प्रेम एवं भक्ति को देखकर अयोध्या वापिस न लौट जाएं, इसलिए शंकाकुल होकर सभी देवी–देवता अपने गुरू वृहस्पति एवं माता सरस्वती के पास जाकर निवेदन करते हैं कि उनकी भक्ति का प्रभाव कम करें; परन्तु गुरू बृहस्पति ने उन्हें स्पष्ट कहा कि यदि ऐसा किया अर्थात् भरत जैसे भक्त के साथ किसी भी प्रकार का अनुचित व्यवहार किया तो राम के कोप का भाजन बनना पड़ सकता। अतः उचित है समय की प्रतीक्षा करें, समय स्वयं आपके प्रश्नों का उत्तर देगा और भगवान राम के लिए मार्ग भी स्वयं प्रशस्त करेगा।

**"सुनु सुरेश रघुनाथ सुनाऊ, निज अपराध रिसाहिंन काहू।**
**जो अपराध भगत कर करई, राम रोष पावक सो जरई।।"**

भरत के भक्ति से सम्पन्न एवं करुणापूर्ण निवेदन को सुनकर राम का अंतःकरण भी आश्रम में द्रवित हो जाता है और उन्हें कहना पड़ता है।

**"मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।"**

इसी प्रकार भरत की भक्ति एवं उसकी बुद्धि के विषय में माता सरस्वती भी केवल यही कहकर चली गई थी कि भरत की बुद्धि तो स्वयं ब्रह्म भी नहीं बदल सकते। स्वयं भगवान राम ने भरत को तीनों लोकों एवं तीनों कालों पुण्यात्मा पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ घोषित किया है। इस प्रकार सिद्ध होता है भरत सच्चे राम भक्त थे।

**4. मर्यादा का पालन करने वाले**—'रामचरितमानस' में मर्यादापुरूषोतम कहलाने वाले श्रीराम जितने अधिक मर्यादावादी दिखाई पड़ते हैं भरत भी उनसे कम नहीं हैं वे भी उतने ही मर्यादावादी हैं। वे अपनी सीमाओं में बंधे होकर भी मर्यादा का पालन करते हैं। दोनों (राम–भरत) की मर्यादा में अंतर केवल इतना है कि जिस समय माता कैकेयी ने राम के लिये चौदह वर्ष के वनवास का वर माँगा तो उस समय राम के मन में अपनी माता कैकेयी के प्रति किसी प्रकार का क्रोध, रोष, दुःख आदि का लेशमात्र भी अंश नहीं था जबकि भरत ने माता कैकेयी की इस कुचाल के कारण उसका एक प्रकार से त्याग कर दिया था। यद्यपि स्थिति के अनुसार भरत का यह निर्णय उपयुक्त था।

अपने ननिहाल आगमन से लेकर चित्रकूट गमन तक भरत अपने प्रत्येक कार्य में मर्यादा का पालन करते हैं। कहीं पर कोई विच्छृंखलता दिखाई नहीं पड़ती। चाहे वे माता कौशल्या के समक्ष स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास करते हों, या गुरू वशिष्ठ द्वारा किए गए आग्रह–'राजसिंहासन पर बैठने के निर्णय, का विरोध करते हों, वे प्रत्येक स्थिति में अपनी मर्यादा का दामन पकड़े रखते हैं। भारद्वाज ऋषि के आश्रम में भी वे मर्यादा का पालन करते हैं–

**"जानि गरुड़ गुरू गिरा बहोरी, चरन बंदि बोले कर जोरी। सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा, परम धरम यहु नाथ हमारा।।"**

**5. नैतिकता**—'रामचरितमानस' में भरत नैतिकता का पालन करने वाला पात्र हैं। उनके चरित्र में कहीं भी अनैतिकता दिखाई नहीं पड़ती। जैसे ही उन्हें माता कैकेयी राम के वन गमन व अपने राजतिलक की घटना का पूरा वृतान्त सुनाती है उस समय भी भरत अपनी नैतिकता को नहीं खोते। अपने छोटे भाई शत्रुध्न, कैकेयी के कान भरने वाली दासी मंथरा को सब अनर्थ की जड़ मानकर उसका वध करने को तैयार होते हैं। तब भी भरत उन्हें इस अनैतिक कार्य को करने से मना करते हैं।

चित्रकूट सभा में वे बार–बार भगवान राम के आदेशों का पालन करने की बात कहते हुए भी उनसे विनम्र निवेदन करते हैं कि आप अयोध्या लौट जाएँ और मैं स्वयं चौदह वर्ष तक बनवास व्यतीत करूँगा। नैतिक दृष्टि से भी यदि देखा जाए तो भरत का यह आग्रह उपयुक्त ही था। अतः भरत जैसे विवेकशील महापुरूष के लिए यह नैतिक कर्त्तव्य बनता है कि कैकेयी का पुत्र होने के कारण वह इस विषम परिस्थिति में इस समस्या का समाधान करें।

**6. धार्मिक भावना से ओत–प्रोत**—'रामचरितमानस' भारतीय धर्म एवं संस्कृति का प्रतिस्थापक ग्रन्थ है। उसी ग्रन्थ में भरत भी एक विशेष एवं मुख्य पात्र के रूप में सामने आते हैं। जोकि धार्मिक प्रवृत्ति के स्वामी हैं। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में अनेक स्थानों पर उनकी इस धार्मिक भावना को प्रकट किया है। 'मानस' के आरम्भ में तुलसीदास यह कहकर भरत की वंदना करते हैं कि उनके नेम व्रत आदि का वर्णन नहीं किया जा सकता–

**"प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम व्रत जाइ न बरना।"**

राजा जनक, गुरू वशिष्ठ देवी–देवता, गुय वृहस्पति और यहाँ तक स्वयं श्रीराम भी भरत की धार्मिक भावना की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते है। भरत जब अपनी चतुरंगी सेना लेकर श्रीराम के पास चित्रकूट के लिए प्रस्थान करते हैं। तब यह संदेश सुनकर लक्ष्मण तो युद्ध के लिए तत्पर हो उठते हैं परन्तु श्रीराम भरत के धार्मिक व सात्विक आचरण में अपना अगाध विश्वास दर्शाते हुए कहते है–

**"भरतहि हो हि न राजमदु, विधि हरि हर पद पाइ। कबहुँ किकांनी सी करनि छीर सिंधु बिसनाई।।"**

इस प्रकार रामचरिमानस के आधार पर भरत के चरित्र का सम्पूर्ण विवेचन करने के उपरान्त स्पष्ट हो जाता है कि भरत में विनम्रता है, विवेक, मर्यादा के प्रति विनव भाव हैं, धार्मिक निष्ठा विद्यमान है। इसके साथ–साथ वे एक सजग प्रहरी भी हैं। हनुमान जब मूर्च्छित लक्ष्मण के लिए संजीवनी बूटी समेत पूरे पर्वत को उठाकर आकाश मार्ग से जाते हैं तब भरत अयोध्या के एक सजग प्रहरी के रूप में रात के समय हनुमान पर बाण चलाते हैं।

यदि सम्पूर्ण 'रामचरितमानस' का गहराई से अध्ययन किया जाए तो पता चलता है कि भरत ही एक आदर्श पात्र हैं। राम का चरित्र भी पूर्ण रूप से दोषरहित नहीं है, क्योंकि उन्होंने बाली का वध छल से किया था, शूर्पणखां को कुरूप बनाने के लिए लक्ष्मण की ओर संकेत किया था। यह ठीक है कि राम ने अनेक दुष्टों का संहार किया था परन्तु किसी को छलपूर्वक वध करना नैतिक कार्य किस प्रकार हो सकता था फिर किसी स्त्री को इस प्रकार कुरूप बनाने का कार्य उनकी मर्यादावादी छवि को क्षति पहुँचाता है। इसी प्रकार सीता का चरित्र भी पूर्णतः दोषरहित नहीं हैं। वन में स्वर्ण मृग को मारने के उद्देश्य से दूर पहुंच चुके राम की अनुपस्थिति में वह लक्ष्मण पर दोषारोपण करती है, क्योंकि लक्ष्मण ने अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए वन में सीता को अकेली छोड़कर जाने से मना कर दिया था। इसी प्रकार लक्ष्मण का चरित्र भी दोषयुक्त हैं। उनके चरित्र में आवेश भरा हुआ है। सीता स्वयंवर, कैकेयी द्वारा वर मांगने के अवसर पर, चित्रकूट पर्वत पर भरत मिलन के अवसर पर उनका बार–बार आवेश में भरकर क्रोध करना उनके चरित्र को कलंकित करता है। यद्यपि यह ठीक है कि क्षत्रिय धर्म के अनुरूप आवेश होना अनिवार्य है, परन्तु इस प्रकार के व्यवहार से उनके चरित्र की महत्ता कम होती है। परन्तु सम्पूर्ण रामचरितमानस के अध्ययन करने पर कहीं भी ऐसा कार्य या ऐसी कोई घटना दिखाई नहीं पड़ती जिससे भरत के चरित्र पर उँगली उठे।

अतः संक्षेप में केवल यही कहा जा सकता है कि भरत का चरित्र उदात्त है। वे त्याग के सागर हैं, राम–प्रेम की दृढ़ प्रतिमूर्ति हैं, विवेक एवं मर्यादा के वाहक हैं, धार्मिक भावना से ओत प्रोत हैं। अंत में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि भरत का चरित्र हृदयग्राही है।

# अध्याय 15

# तुलसीदास की रामराज्य की कल्पना

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में जिस समय तुलसीदास का उद्‌भव हुआ, उस समय देश राजनीतिक एवं सामाजिक अव्यवस्था से पीड़ित था। चारों ओर विच्छृंखलता व्याप्त थी। भारत की सत्ता उस समय विदेशियों के हाथ में थी। अकबर और जहाँगीर जैसे कट्टर एवं अत्याचारी मुस्लिम शासकों का शासन था। तलवार की नोंक पर हिन्दुओं को मुस्लिम बनने के लिए विवश किया जाता था। यदि हिन्दू, मुस्लिम बनना स्वीकार नहीं करते थे तो या तो मार दिया जाता था फिर उनकी सारी सम्पत्ति छीनकर उन्हें दण्डित किया जाता था। उनकी स्त्रियों का अपहरण करके उनके साथ अनाचार किया जाता है। कर भी बहुत अधिक लगा दिया जाता था, जिसे वहन करना उनके सामर्थ्य से बाहर होता था। फलतः असहाय होकर मुस्लिम धर्म को स्वीकार लेते थ। तुलसीदास ने उस समय की इस दुर्दमनीय एवं घृणापूर्ण दशा का वर्णन करते हुए लिखा है—

**"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि, बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।**
**जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच वश, कहै एक एकन सौ, कहाँ जाई, का करी ?"**

अर्थात् उस समय ऐसी अव्यवस्था व्याप्त थी कि किसान की खेती नहीं होती थी। भिखारी को भीख नहीं मिलती थी। व्यापारी का व्यापार नहीं चलता था। नौकरी करने वालों की नौकरी समाप्त हो गई थी। बिना आजीविका के साधन के सम्पूर्ण समाज अस्त–व्यस्त एवं व्याकुल होकर दुःखी था। सभी शोक एवं दुःख से व्याकुल होकर एक–दूसरे से कहते थे कि कहाँ जाएं ? क्या करें ? अर्थात् कोई मार्ग ही दिखाई नहीं पड़ता जिससे जीविका कमा सकें। समाज में सभी छोटे–बड़े, ऊँच–नीच सभी दुःखी थे। पेट पालने के सभी मार्ग बंद कर दिए गए थे। चारों तरफ त्राहि–त्राहि मच रही थी। रक्षा करने वाला या सुध लेने वाला कोई नहीं था। रक्षा करने वाला ही भक्षक बन जाए तो जनता की पुकार कौन सुने ? तुलसीदास समाज की विषम स्थिति को देखकर अत्यन्त व्याकुल एवं व्यथित थे। विशेषकर हिन्दुओं के प्रति होने वाले अत्याचारों से वे अत्यन्त क्षुब्ध थे, परन्तु वे क्या कर सकते थे ? बर्बर शासकों, दुराचारियों के प्रति जो कि राज्य के बड़े–बड़े अधिकारी बने बैठे थे, उनके विरुद्ध आवाज उठाना भी मौत को आमन्त्रित करना था। दिन–प्रतिदिन प्रजा अन्यास अन्यास ही चक्की में पिसती जा रही थी। कोई भी आम जनता की ओर देख नहीं पा रहा था। उस समय कवि–कराह उठता है और कहता है—

**"ऊँच नीच करम, धरम–अधरम करि,पेट ही को पचत् बेचत बेटा–बेटकी।"**

समाज में इस प्रकार अव्यवस्था व्याप्त हो चुकी थी स्वयं अपने पेट पालने के लिए प्रजा को अधार्मिक कार्य करने पड़ते थ। उन्हें धर्म–अधर्म का कोई ज्ञान नहीं रह गया था। अपना पेट भरने के लिए अपने पुत्र–पुत्रियों को बेचना पड़ता था।

तुलसी ने इस प्रकार का अन्याय न देखा था, न सुना था और न ही कहीं पढ़ा था। इस घृणास्पद कार्य एवं व्यवहार को देखकर उनका हृदय रो उठा। उन्हें अंदर से पीड़ा होने लगी। उनका दिल अंदर से कचोटने लगा। उनके लिए यह घोर कटु राजनीति असह्य थी। वे इसका मुकाबला करना चाहते थे। वे सजग, सचेत एवं जागरूक व्यक्ति थे। कवि थे। वे लोगों की वेदना को समझ सकते थे। उनके साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहते थे। उनके लिए ऐसा शासन सहनीय नहीं था। उन्होंने स्वय अपने जीवन में अनेक कष्ट सहन किए थे, परन्तु मानव जाति पर होने वाले इस प्रकार के अत्याचारों से वे काँप उठे थे। इसी कारण उन्होंने अपने युग की यथार्थ अभिव्यक्ति 'रामचरितमानस' और 'कवितावली' दोनों निर्भिकता के साथ प्रकट की हैं।

**1. रामराज्य की कल्पना एवं उसके आधार**—रामराज्य से अभिप्राय है—राम का राज्य ! अर्थात् राम के समय में जिस प्रकार का उनका राज्य था, वैसे ही राज्य की कल्पना 'रामचरितमानस' के रचयिता 'तुलसीदास' ने रामराज्य का वर्णन करते हुए माना है कि रामराज्य में सभी को सब प्रकार के स्वतन्त्रता थी। सभी सुखी थे। किसी को कोई कष्ट नहीं था। इस विषय में कवि कहता है—

**"राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका। वयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।"**

अर्थात् राम के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित होते ही तीनों लोकों में हर्ष एवं खुशी की लहर दौड़ गई। उनके सभी शोक दूर हो गए। उन्होंने परस्पर वैर विरोध छोड़ दिया। राम के प्रताप से परस्पर विषमता समाप्त हो गई। भाव यह है कि राम का राज्य इतना अनोखा, अनुपम, सुखद, पाप–विनाशक, दुःख रहित व स्वतन्त्र है जितना न कभी पहले हुआ है और न भविष्य में होगा।

महाकवि तुलसीदास ने ऐसे राज्य को आदर्श राज्य मानकर तत्कालीन शासकों को प्रेरणा दी थी कि कुशासन का परित्याग

करो और सच्चे शासक बनों। तुलसीदास राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि मानते हैं। उनके राम तो स्वयं ही ईश्वर के अवतार हैं। भारत का इतिहास साक्षी है कि यहाँ राजसिंहासन के लिए भाई ने भाई का, पुत्र ने पिता का, सेवक ने स्वामी की हत्या कर डाली। परन्तु तुलसीदास ऐसे रामराज्य की कल्पना करते हैं जहाँ पर इस प्रकार का कोई वैर–विरोध उत्पन्न न हो और सत्ता केवल राजा के ज्येष्ठ पुत्र के हाथों में सौंपी जाती हो। यद्यपि यह ठीक है कि कैकेयी ने राम से राजसिंहासन छीन लेने में सफलता प्राप्त कर ली थी, परन्तु भरत ने उस सिंहासन को स्वीकार नहीं, अपितु उसे अपने बड़े भाई की धरोहर समझकर उसकी रक्षा की और उनकी चरण–पादुका को सिंहासन पर भावी समाज तथा शासकों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया। अतः तुलसी के राम राज्य में शासन एवं राज्य सत्ता के लिए न मार काट होती है और न ही किसी प्रकार का छल–कपट ही। वहाँ तो केवल सत्ता के लिए एक आदर्श स्थापित होता है।

तुलसीदास ने अपने ग्रन्थों 'कवितावली' और 'रामचरितमानस' में कलिकाल का वर्णन किया है जो उस युग का जीता–जागता चित्रण है। तुलसी दास जी कहते हैं–

**"कलियुग सम जुग आन नहिं।"**

अर्थात् कलियुग के समान दुःखदायक और कोई अन्य युग नहीं है। वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदास ने कलियुग की इस विकरालता से भयभीत होकर ही ऐसे युग की परिकल्पना की थी जो सुख शांति प्रदान करने वाला हो। अपने युग की प्रतिक्रिया ही रामराज्य की कल्पना कही जा सकती है। तुलसीदास भक्त कवि थे। अतः शील, शक्ति और संदर्भ के प्रतीक मर्यादा पुरूषोतम आदर्श पुरूष राम ही हो सकते हैं जिनके राज्य में सभी प्रकार के दुःख समाप्त हो गए हों।

**2. राज्य की शासन व्यवस्था**–राज्य की शासन व्यवस्था का ठीक होना इस बात का परिचायक है कि वहाँ की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति उत्तम है। वहाँ किसी प्रकार की कोई कमी नहीं है। ऐसी शासन व्यवस्था में स्वयं राजा ही प्रजा का ध्यान रखता है। यदि कहीं पर शासक ही प्रजा का ध्यान न रखे, नियमों और कानूनों का ही पालन न किया जाए, वहाँ समाज में विष व्याप्त हो जाता है, सम्पूर्ण वातावरण विषाक्त हो जाता है। या फिर जंगल राज होने लगता है। तुलसीदास ऐसे युग के विषय में लिखते हैं–

**"वेद–पुराण बिहाइ सुपंथु, कुमारग कोटि कुचाल चली हैं। कालु कराल नृपाल कृपालु न, राज समाजु, बड़ोई छली है।"**

शासन व्यवस्था (कलियुग में) इतनी अव्यवस्थित हो गई थी कि सभी व्यक्ति अपने धार्मिक कार्य एवं कर्त्तव्यों को छोड़कर कुमार्ग पर चल रहे थे। यहाँ तक कि जो कुछ थोड़े बहुतं व्यक्ति नीति के मार्ग पर चल रहे थे उन्होंने भी उस नीतिपथ को त्यागकर छलकपट का मार्ग अपनाना आरम्भ कर दिया था। राजा के अधिकारी एवं कर्मचारी छल–कपट पूर्ण आचरण करते हुए अधार्मिक कार्य कर रहे थे। यहाँ तक कि राजा भी कठोर हृदय का हो गया था उसको किसी पर दया नहीं आती थी। तुलसीदास की इस प्रकार की शासन–व्यवस्था रुचिकर नहीं लगी, वे इससे बहुत दुःखी थे। अतः वे रामराज्य की परिकल्पना में ऐसी शासन व्यवस्था चाहते थे जिसमें राजा का लोगों के प्रति प्रेम हो और राजा शाक्त, नीति एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न हो। अतः अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति करने के लिए कवि ने 'रामचरितमानस' में कहा है–

**"सत सुरेस सम विभव विलासा। रूप तेज बलनीति निवासा।।"**

अर्थात् सौ इन्द्रों के समान वैभव, रूप तेज व बल से युक्त तथा नीतियों से सम्पन्न घर हों। इतना ही नहीं अच्छा शासक धर्मात्मा, न्याय का ज्ञात व तेजस्वी तथा शीलवान होना चाहिए–

**"धरम धुरंधर नीति विधाना। तेज प्रताप शील बलवाना।।"**

राजा को धार्मिक प्रवृत्ति का होना चाहिए। उसका तेजस्वी, प्रतापी और सदाचारी होना भी अनिवार्य है। यदि ये सभी गुण राजा में होगें तभी वह प्रजा का कल्याण कर सकता है। वहाँ पर कोई भी छल–कपट भी नहीं कर पाएगा। 'रामचरितमानस' में शील निधि और सत्यकेतु उसी प्रकार के राजा थे। उनके राज्य में प्रजा पूर्णरूपेण सुखी थी। तुलसीदास की दृष्टि में ऐसा राजा धिक्काराणीय है जिसके शासन में प्रजा दुःखी हो। राजा प्रजा के लिए पिता के समान होता है, जिस प्रकार एक पिता अपनी संतान का पालन–पोषण करता है उसी प्रकार राजा को चाहिए कि वह भी अपनी प्रजा को संतान समझकर उसका पालन करे। उन्हें सुख–सुविधाएं प्रदान करे। ऐसा राजा जो अपनी प्रजा से प्रेम नहीं करता, उनके दुःखों में साथ नहीं देता, वह तो तुलसीदास की नजर में नरक का अधिकारी है।

**"जासु राज प्रिय प्रजा दुःखारी सो नृप अवसि नरक अधिकारी।"**

राजा को आराम की जिंदगी नहीं व्यतीत करनी चाहिए अपितु उसे तो प्रजा का सेवक बनकर उसका पालन करना चाहिए।

**"रामराज नभ गेस सुनु सचराचर जग माहिं।काम कर्म सुभाव गुण कृत दुःख काहुहिं नाहिं।।"**

अर्थात् राम के राज्य में चर और अचर किसी को भी कष्ट नहीं था। वे प्रजा का इतना ध्यान रखते थे कि किसी को भी किसी प्रकार की वेदना नहीं थी। तुलसी दास राम राज्य के समान इसी प्रकार की शासन व्यवस्था चाहते थे।

**3. समाज में सुख–शांति की स्थापना**–उत्तम शासन वही कहला सकता है जिसकी प्रजा सुखी हो और चारों ओर शांति छाई हुई हो। वहाँ प्रत्येक स्त्री–पुरूष को सुख–शांति से रहने का अवसर मिलता हो। तुलसीदास का युग समाज की दृष्टि से अशांति का युग था। उस समय प्रजा बहुत दुःखी थी। न तो रात को उन्हें नींद आती थी न दिन को चैन मिलता था। प्रजा का जीवन नरक बन गया था। छोटे–बड़े, धनी–निर्धन, रागी–बैरागी सभी की दशा बड़ी शोचनीय थी। इस अशांत वातावरण को कवि ने कलियुग का प्रभाव माना है। उन्होंने कहा है–

**"जागिए न सोइए, विगोइए जनमु जायँ,दुःख, रोग, रोइए, कलेस कोह काम को।**
**राजा रंक रागी और विरागी, भूरिभागी ये,अभागी जीव जरत, प्रभाउ कलि बाम को।"**

'रामचरितमानस' में जब राम वन के लिए चित्रकूट से प्रस्थान करते हैं तब उन्होंने भरत को उपदेश देते हुए उसे प्रजा के प्रति कर्तव्य की याद दिलाते हैं कि वे राजा होकर न्याय व धर्म को न भूलें। राजा होकर प्रजा की सेवा करें। मन–वचन और कर्म से प्रजा के हित में लगे रहें–

**"पालेहु प्रजहि करम मन बानी।"**

राजा का कार्य प्रजा का धन छीनना नहीं है, बल्कि उससे उतना ही धन प्राप्त करना है जिससे वह सरलता से अपना पेट भर सके। रामराज्य की कल्पना करते हुए तुलसी कहते हैं–

**नहिं दरिद्र कोउ दुःखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।"**

अर्थात् रामराज्य में प्रजा सुखी थी कोई भी निर्धन नहीं था, न किसी को कोई दुःख था, न कोई दीन था, न कोई अज्ञानी था और न कोई शुभ लक्षणों से रहित था। तुलसीदास ने सर्वश्रेष्ठ राज्य वही माना था जहाँ समाज में किस प्रकार की अशांति न हो। जहाँ समाज एक उच्च आदर्श अपनाकर सुखी रहे। राजा का न्याय उसकी प्रजा के लिए हितकारी हो। जब प्रजा सुखी रहेगी तो किसी प्रकार का कोई पाप या अशुभ कार्य वह नहीं करेगी। अतः राजा को किसी व्यक्ति को दण्ड भी नहीं देना पड़ेगा। तुलसीदास यही कहते हैं कि रामराज्य वही है जहां प्रजा सुव्यवस्थित रहे व सुमार्ग पर चले। कवि कहता है–

**–'दण्ड जतिन्ह कर' अर्थात् दण्ड (डण्डा) केवल यतियों के हाथ में होता था,**

किसी को दण्डित करने का अवसर राजा को नहीं था, क्योंकि प्रजा नियमों का पालन करके सुखी और शांतिपूर्वक रहता थी।

**4. वर्णाश्रम सुव्यवस्था**–प्राचीन काल में समाज चार वर्णों में विभक्त था। ये वर्ण थे–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ये सभी अपने–अपने कर्त्तव्य का पालन करते थे, जिसके कारण समाज का प्रत्येक कार्य सही ढंग से चलता था। उस समय समाज में चार आश्रम थे–ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास। इन आश्रमों के अनुसार जीवन यापन करने से समाज में अनैतिकता एवं अनाचार नहीं फैलता। मुस्लिम साम्राज्य बहुत पतित हो गया था। मुस्लिम शासक एवं उनके अधिकारी बहुत चरित्रहीन एवं दुराचारी हो गए थे। उनकी दृष्टि में समाज का ऊँच–नीच कोई महत्व नहीं रखता था। न ही उन्हें किस प्रकार के आश्रम का ही ध्यान था। किसी भी वर्ण की नारी हो किसी भी अवस्था की हो उसका हरण करना उनके साथ अन्याय एवं अनाचार करना उनके लिए एक सामान्य–सा कार्य बन गया था। प्रतिदिन ऐसी घटनाएं होने लग गई थीं। तुलसीदास इस वर्गहीनता से दुःखी होकर कहते हैं–

**"वरन–छरनु गंयो, आश्रयु निवास तज्यो,त्रासन चकित सो परावनो परो–सो है।"**

अर्थात् ऐसे दुराचारी काल (मुस्लिम साम्राज्य) में वर्ण व्यवस्था नष्ट हो गई थी, आश्रम के अनुसार आचरण करना छोड़ दिया गया था। इस प्रकार चारों ओर अधर्म व्याप्त था कि सभी भयभीत थे और भय एवं आतंक के कारण इधर–उधर मारे–मारे फिरते थे। कोई सदाचारी है ? इसका विश्वास नही रहा गया था। अतएव तुलसीदास ने ऐसे उत्तम रामराज्य की कल्पना की थी जहाँ पर वर्ण और आश्रम व्यवस्था का दृढ़ता से पालन होता हो। ऐसे रामराज्य की कल्पना करते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं –

**"वरनाश्रम निज–निज ध्झश्र्म थ्न्श्रत ैछ–प्थ्झ ल्झैग। च्त्थ्ळ। स्छझ प्झथ्ळ। स्फख्झहिं नहिं भय सोक न रोग।।"**

रामराज्य में सम्पूर्ण प्रजा अपने–अपने वर्ण और अपने–अपने आश्रम के अनुसार आचरण करती है जिससे सभी सुखपूर्वक जीवन जीते हैं, किसी को भी कोई डर नहीं है न किसी अनिष्ट की आशंका का भय रहता है, न कोई शोकग्रस्त रहता है न शारीरिक व मानसिक रोग ही उन्हें सताता है। तुलसीदास की कामना थी समाज में सभी प्रकार से शांति तभी संभव है जब सभी अपने–अपने धर्म का पालन करें, अपने कर्त्तव्य का पूरी तरह निर्वाह करें। वे बार–बार अपने युग की अव्यवस्था से दुःखी होकर सामाजिक व्यवस्था

को पुनः प्रजा में स्थापित करना चाहते थे। राम जब वन में जाते हैं तब भरत को जहाँ उपदेश देते हैं वहीं यह भी कहते हैं—'करहूँ प्रजा परिवार सुखारी।' अर्थात् राजा बनकर तुम प्रजा का परिवार के समान ध्यान रखना। उनको किसी प्रकार का कोई दुःख न हो। सभी सुख से रहें।

**5. त्रि–संतापों का विनाश**—संसार में तीन प्रकार का संताप ऐसे हैं जिससे सम्पूर्ण मानवजाति सत्रस्त है। कोई भी ऐसा नहीं है जो इनसे स्वयं को बचा सके। ये संताप है— 1. अध्यात्मिक, 2. आधि भौतिक, 3. आधि दैविक। आध्यात्मिक संताप से अभिप्राय हैं—हिंसक प्राणियों या प्राकृतिक कारणों से होने वाली आपत्ति या दुःख। आधि दैविक का अर्थ हैं—राक्षस, भूत, पिशाच आदि से होने वाला कष्ट। ये तीनों प्रकार के कष्ट या संताप अत्यन्त दुःखदायी हैं। अतः इन त्रितापों से छुटकारा पाना ही मानव का संसार की यात्रा करना अनिवार्य है। तुलसीदास ने रामराज्य की जो कल्पना की है—उसमें ये तीनों प्रकार ताप नहीं थे—

**"दैहिक, दैविक, भौतिक तापा। रामराज्य काहू नहीं व्यापा।।"**

रामराज्य की कवि ने इस प्रकार की कल्पना की है जहां न तो किसी को शारीरिक कष्ट होता है न मानसिक पीड़ा होती है। न प्रकृति से होने वाली कोई आपदा उन्हें सताती है—अर्थात् न भूकंप, अकाल, अतिवर्षा, अनावृष्टि, आदि विपत्ति आती है और न देवता सम्बन्धी कोई आपत्ति ही उन्हें पीड़ित करती है। कवि का मानना है कि इसका मूल कारण राजा और प्रजा का धर्म के अनुसार आचरण हैं; तुलसी का कथन है—

**"सब नर करहिं परस्पर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।"**

जब सम्पूर्ण प्रजा अपने–अपने धर्म का पालन करें, शास्त्रों की वाणी के अनुसार आचरण करें तथा परस्पर प्रेम रखे तो निःसन्देह में त्रिसंताप उन्हें कभी भी नहीं पीड़ित करेंगे। रामराज्य की कल्पना करके तुलसीदास इस प्रकार का राज्य चाहते थे जहाँ प्रजा में धर्म का लाभ हो, प्रेम का विचार हो, शास्त्रों के नियमों का सभी पालन करें।

**6. आदर्शवाद की स्थापना**—'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने जो राम की रावण पर विजय दिखाई है इसका मूल कारण है तत्कालीन समाज की विषम स्थिति और राजनीतिक दुर्व्यवस्था। उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से यह सिद्ध किया है कि धर्म की अधर्म पर, शुभ की अशुभ पर, भलाई की बुराई पर अवश्य विजय होनी चाहिए। रामत्व की रावणत्व पर विजय केवल भारतीय प्रजा को ही प्रेरणा प्रदान नहीं करती, बल्कि, समस्त मानव समाज को 'सत्यं, शिवं, सुंदर' का उपदेश है। एक विद्वान आलोचक का कथन है—'रामचरितमानस' पारिवारिक और व्यक्तिगत आदर्शों का खजाना है। व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज और समाज से राष्ट्र का निर्माण संभव है। इस आदर्श व्यवस्था से समाज की उच्छृंखलता का विनाश होता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जीवन आदर्श भावना पत्नी के रूप में सम्मानित है। कौशल्या आदर्श माता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। भरत और लक्ष्मण आदर्श भाई के ज्वलंत उदाहरण हैं। हनुमान आदर्श सेवक हैं। भाव यह है कि राम ने आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए ही अपने जीवन को प्रस्तुत था। राम का जीवन आदर्शवाद की धाराओं से प्रवाहित है उसमें कहीं भी कलंक नहीं है। पिता वनवास देते है तो पिता की आज्ञा शिरोधार्य मानकर वन जाते हैं। न तो उन्हें कैकेयी के प्रति द्वेष है, न पिता दशरथ के प्रति आक्रोश। भरत उन्हें मनाने वन में आते हैं तो वे अयोध्या वापिस जाना स्वीकार नहीं करते, अपितु भरत को ही समझाकर वापिस भेज देते हैं। अपने वनवास चौदह वर्ष को व्यतीत करने के उपरान्त जब श्रीराम अयोध्या आते हैं तो वे आदर्श राज्य की स्थापना में ही अपना गौरव मानते हैं। स्वयं श्रीराम अपनी प्रजा को उपदेश देते हुए कहते हैं—

**"वैर न विग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा।।"**

मर्यादा से बंधा हुआ जीवन वही होता है जिसमें न तो किसी से वैर भावना ही रखी जाए और न ही भयभीत रहा जाए। हमेशा सुख–पूर्वक जीवन व्यतीत किया जाएगा। राम ने अपनी जीवन में जिस आदर्श का पालन किया था वह सदा अनुकरणीय है। एक ओर उन्होंने लंका को राजतन्त्र से मुक्त कराया था, दूसरी ओर जब से अयोध्या आए तो वे निरंकुश शासक के रूप में कार्य करने के पक्षधर नहीं थे। उनका राजा के रूप में नियम था कि यदि वे स्वयं कुछ भी अन्याय या अनीतिपूर्ण कार्य करें तो प्रजा निर्भय होकर उन्हें रोक सकती है—

**"जो अनीति कछु भाखौं भाई। तो मोहि बरजों भय बिसराई।।"**

**7. मर्यादा पालन**—तुलसीदास का समय विच्छृंखल एवं मर्यादाहीन था। शासक एवं प्रजा मर्यादाहीन जीवन व्यतीत कर रहे थे। जिसके कारण समाज में नित्यप्रति अनैतिक कार्य होने लग गए थे। उस समाज में लोग इस प्रकार का व्यवहार अपनाते थे कि उत्तम कार्यों एवं धार्मिक कृत्यों को छोड़कर बुरे, अशुभ व अन्यायपूर्ण आचरण करने लगे थे। भाव यह है कि उत्तम और धर्मानुकूल आचरण छोड़कर पुण्य अर्जन करने के लिए अशुभ व धर्म के विरुद्ध आचरण किया जाने लगा था। इस मर्यादाहीन समाज को धिक्कारता हुआ कवि कहता हैं–

**"कलिकाल विचार अचारु हरो। नहिं सूझै कछु घमघूसर को।।"**

कलियुग में इस प्रकार के अशुभ व अनुचित आचरण हो गए थे कि सभी बुद्धिहीन हो गए हैं और उन्हें कोई भी मार्ग दिखाई नहीं देता। तुलसीदास समाज में इस प्रकार की अमर्यादा नहीं चाहते थे। इसी कारण उन्होंने ऐसे रामराज्य की कल्पना की थी जो मर्यादा पर चलती हो, धर्म का पालन करती हो। वे कहते हैं–

**"सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।।"**

रामराज्य में मर्यादा तभी बनी रह सकती है जब समाज में नर–नारी किसी को भी अहंकार नहीं हो। सभी चातुर्य के साथ अपने–अपने कर्तव्य व मर्यादा का पालन करें एक दूसरे के प्रति कृतज्ञ रहें। कोई भी छल कपट न करें। रामराज्य में इतनी शांति एवं मर्यादा है कि 'रहहि एक संग गजपंचानन।' अर्थात् हाथी और सिंह भी एक–दूसरे से बैर नहीं रखते अर्थात् पशु–पक्षी भी एक–दूसरे का वैर भूलकर आपस में प्रेमपूर्वक रहते हैं। जिस कारण सभी में प्रेम–भावना बढ़ जाती है। तुलसी का कहना है–

**"सागर निज भरजादाँ रहहीं। डारहिं रतन तरन्हि नर लहहीं।।"**

रामराज्य में समुद्र भी अपनी मर्यादा में रहता था। वह मानव जाति का इतना उपकार करता था कि रत्नों को अपने तटों पर लहरों द्वारा लाकर छोड़ देता था, जिससे मानव उन्हें सरलता से प्राप्त कर लेते थे। पक्षी पेड़ों पर आसानी से निर्भय होकर बैठते थे और विभिन्न प्रकार के पशु अपने–अपने समूहों में वन में निडर होकर विचरण करते थे। शीतल और सुगन्धित वायु धीरे–धीरे चलती थी जो सभी का मन मोहित करती थी। गायें भी मन चाहा दूध प्रदान करती थी। भाव यह है कि कवि ने ऐसे रामराज्य की कल्पना की है जहाँ मानव जाति अपनी–अपनी मर्यादा में चलकर सुखी रह सके, बल्कि वहाँ पशु–पक्षी भी मर्यादा युक्त जीवन व्यतीत करें। यदि मानव अपने जीवन में मर्यादा व नैतिकता का पालन करता है तो प्राकृतिक आपदाएं भी संभव नहीं हो सकती। राम के राज्य में मानव के शुद्ध आचरण को देखकर ही वृक्ष खूब फल फूल प्रदान करते थे। नदियाँ मधुर एवं शीतल जल प्रदान करके प्यास को शांत करती थी। संक्षेप में सम्पूर्ण चर–अचर प्राणी मर्यादायुक्त जीवन व्यतीत करते थे।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने लोक–कल्याण और लोक रंजन की भावना से रामराज्य का वर्णन करके यह सन्देश दिया था कि यदि वसुधा पर सुख और शांति रखना है, पृथ्वी को स्वर्ग बनाना है तो मुस्लिम साम्राज्य रूपी राक्षस का विनाश करके रामराज्य के अमृत को बहाना होगा। इस विषय में एक प्रसिद्ध विद्वान का कथन है कि 'अपने युग की सामाजिक स्थिति से क्षुब्ध होकर गोस्वामी जी ने राम के आदर्श एवं रामराज्य की सामाजिक व्यवस्था को सामने रखना चाहा था, क्योंकि उनका विश्वास था कि रामराज्य का आदर्श सामने रखकर निश्चय ही लोगों का युग–प्रभाव से कलुषित मन नवीन चेतना और स्फूर्ति से भर जाएगा और एक अभिनव सुंदर समाज की प्रतिष्ठा कर प्रयत्न किया जाएगा। यथार्थ की कीचड़ पर आदर्श का कमल खिलाना, कलिकाल की रजनी के बाद रामराज्य का सूर्योदय लाना ही गोस्वामी जी का अभीष्ट था।"

# अध्याय 16

# तुलसी की काव्य भाषा

भाव सम्प्रेषणीय काव्य का प्रमुख गुण है। भाव की सम्प्रेषणीयता के लिए भाषा का माध्यम अपेक्षित होता है। भाव और भाषा का वही संबंध है जो शरीर और आत्मा का होता है। आत्मा को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए शरीर की आवश्यकता होती है। उसी प्रकार भावों को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए भाषा की संरचना होती है। इस प्रकार भाषा और भाव का संबंध अन्योन्याश्रित है।

भावों के आदान–प्रदान में भाषा वाहिका का कार्य करती है। अधिकतम सम्प्रेषण के लिए भाषा के कुछ गुण आवश्यक हैं। कहीं यह भावों की अनुगायिनी होती है तो कहीं पात्र की पात्रतानुसार साहित्यकार भाषा का चयन करता हैं। महाकाव्य में जहाँ कवि का लक्ष्य समाज होता है वहाँ भाषा में सामाजिक की पात्रता का भी विचार करना आवश्यक हो जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास एक महान् कवि, चिंतक, ज्ञानी एवं भक्त थे। रामकथा के माध्यम से उन्होंने कालजयी कृतियों की रचना की है। अतः उनकी भाषा का उतना ही समृद्ध होना आवश्यक है। वे भाषा के महान् पारखी थे। यह उक्ति उन पर बिल्कुल ठीक कही गई है–

**"कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।"**

यह इसलिए संभव हो सका क्योंकि उनका भाषा पर पूर्ण अधिकार था। उन्हें भाव और भाषा के घनिष्ठ संबंध का ज्ञान था। इस विषय में उनकी कुछ उक्तियां हैं–

**"सारद दारु नारि सम स्वामी। राम सूत्रधर अन्तरजामी। जेहि पर कृपा करहिं जन जानी। कवि पर अजिर नचावहिं बाजी।"**

× × × **"गिरा अरथ जल बीचि सम, कहिअत भिन्न न भन्न।"**

× × × **"वर्णनां अर्था सधानां रसानां छंदसमापि।"**

× × × **"कविहि अरथ आखर बल साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाँचा।।"**

तुलसी को यह ज्ञान था कि यदि कविता प्रसाद गुण से पूर्ण न हो तो वह लोक ग्राहय नहीं होती। कठिन भाषा अर्थ की व्यंजना में बाधक होती है। इसके विपरीत सरल भाषा में की गई भावाभिव्यक्ति विवेकशील पण्डितों एवं कम पढ़े जन साधारण दोनों को समान रूप से प्रभावित करती है।

**"सरल कवित कीरति विमल, सोई आदरहिं सुजान।"**

'रामचरितमानस' के प्रारम्भ में यद्यपि तुलसीदास "स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा" का उद्घोष करते हैं किन्तु उनका लक्ष्य मध्यकालीन संघर्ष में डूबती उतरती भारतीय संस्कृति की रक्षा हेतु जनमानस में परिवर्तन करना था। इसलिए उन्हें ऐसी भाषा का चयन करना था कि जो लोकग्राहय हो। उस समय एक भ्रान्त धारणा थी कि दैवी चरित्रों का वर्णन देवभाषा संस्कृत में ही किया जाना चाहिए। गोस्वामी जी ने इसका परिहार किया। संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार रखते हुए उन्होंने लोक–भाषा का चयन किया। उनका विचार था कि–

**"कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई"**

× × × **"का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच।**

**काम जु आवै कामरी का लै करिअ कुमाँच।।"**

तुलसीदास के युग में हिन्दी की दो उपभाषाएँ–अवधी और ब्रज भाषा विशेष रूप से प्रतिष्ठित हो चुकी थीं। उन्होंने अपनी काव्य रचना के लिए इन दोनों भाषाओं को ही अपनाया। 'रामचरितमानस' के प्रत्येक सोपान के आरम्भ में मंगल श्लोकों की रचना में उन्होंने संस्कृत का भी प्रयोग किया। वे अपनी कृतियाँ जनता के लिए लिख रहे थे और जनसाधारण तक अपने संदेश को पहुँचाने के लिए जनसाधारण की भाषा में ही रचना करना अपेक्षित था। अतएव उन्होंने लोकप्रचलित भाषाओं अवधी और ब्रजभाषा को गौरव दिया। प्रेमाख्यानक कवियों ने प्रबन्ध काव्यों में अवधी भली–भाँति मँज चुकी थी। तुलसी ने भी अपनी प्रबन्ध काव्यों में अवधी का प्रयोग किया। उन्होंने अपने निम्नांकित ग्रन्थों की रचना अवधी में की–

1. राम लला नहछू (पूर्वी अवधी) 2. बरवै रामायण (पूर्वी अवधी)

3. जानकी मंगल (पश्चिमी अवधी) 4. पार्वतीमंगल (पश्चिमी अवधी) 5. रामचरितमानस (बैंसवाड़ी अवधी)

हिन्दी का अधिकांश कृष्ण काव्य ब्रजभाषा में ही लिखा गया है। तुलसी के पूर्ववर्ती सूरदास आदि ने ब्रजभाषा के माध्यम से प्रचुर काव्य–साहित्य का निर्माण किया था। मुक्तक–रचना के क्षेत्र में ब्रजभाषा का स्थान अप्रीतम था। तुलसी ने भी अपनी मुक्तक रचनाओं के लिए ब्रजभाषा का ही चुनाव किया। उनकी नीचे लिखी हुई कृतियां ब्रजभाषा में ही रची गई हैं–

1. गीतावली (पश्चिमी ब्रजभाषा)
2. विनयपत्रिका (पश्चिमी ब्रजभाषा)
3. दोहावली (पश्चिमी ब्रजभाषा)
4. वैराग्य संदीपनी (पश्चिमी ब्रजभाषा)
5. कवितावली (पश्चिमी ब्रजभाषा)
6. हनुमान बाहुक (पूर्वी ब्रजभाषा) 7. श्रीकृष्ण गीतावली (पूर्वी ब्रजभाषा)

तुलसी की दोनों भाषाओं के शब्द भण्डार का अध्ययन करने के लिए उन्हें सुविधा की दृष्टि से पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं-

1. संस्कृत के तत्सम शब्द
2. मध्यकालीन पालि, प्राकृत अपभ्रंश आदि के शब्द
3. विदेशी शब्द
4. तत्कालीन प्रांतीय भाषाओं के शब्द
5. हिन्दी की अन्य बोलियों के शब्द

**1. संस्कृत के तत्सम शब्द**–तुलसी की रचनाओं में संस्कृत के तत्सम शब्द पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। तुलसी ने कुछ पद तो पूर्णतया संस्कृत में ही लिखे हैं; जिनमें संस्कृत के तत्सम शब्दों को ही अपनाया गया है। जैसे–

**"संकर संप्रदं सज्जानंददं सैलकन्यावरं परम रम्यं। काम मद मोचनं तामरसलोचनं वामदेवं भजे भावगम्यं।।**
**कंबु कुंदेदु कर्पूर गौर शिवं सुंदरं सच्चिदानन्दकदं। सिद्ध सनकादि योगींद्र वृंदार का विष्णु विधि वंद्य चरनार बिंदं।।"**

अनेक स्थलों पर हिन्दी–संस्कृत मिश्रित तिलचावली भाषा का प्रयोग मिलता है, जैसे–

**"यत्र कुत्रापि मम जन्म निज कार्य बस भ्रमत जग जोनि संकट अनेकं। यत्र त्वद्भक्ति सज्जन समागम सदा भवतु में राम विश्राममेकं।।"**

ऐसे ही हिन्दी–संस्कृत मिश्रिम शब्दावली–

**"श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन हरन भवमय दारूणं।"**

इसी प्रकार तुलसी दास की अन्य ब्रज एवं अवधी की रचनाओं में भी पर्याप्त संस्कृत के तत्सम शब्द मिल जाते हैं जैसे–'भद्रदाताऽसमाकं', 'नौमि श्रीराम सौमित्रि साकं', 'सुमिरामि नरभूपं रूपं, 'वल्लभ', 'दुर्लभ', 'करुणाकरं', 'भुवनैकभर्तां जयति वैराग्य विज्ञान', 'वारांनिधे', 'नौमिजनक सुतावरं', भक्ति वैराग्य विज्ञान समादान–दम नाम आधीन साधन अनेक' आदि। इस प्रकार तुलसी के काव्यों में संस्कृतनिष्ठ पदावली का व्यवहार स्त्रोत एवं स्तुतियों में तो मिलता ही है, उनके अतिरिक्त भी तुलसी ने संस्कृत के तत्सम शब्दों को सबसे अधिक मात्रा में अपनाया है।

इसके अतिरिक्त मम, तब ते, अहम आदि संस्कृत के सर्वनामों का प्रयोग भी किया है, अस्ति पश्य आदि क्रियाएँ भी प्रयुक्त हुई हैं। हिन्दी में संस्कृत शब्दों के प्रयोग से वे भाषा को शिष्ट रूप प्रदान करना चाहते थे। उन्होंने देशी भाषा को परिनिष्ठित रूप प्रदान किया। संस्कृत के प्रयोग से उनकी भाषा बोझिल नहीं होने पाई है। अपितु भाषा में निखार ही आया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में–"उन्होंने जो संस्कृत उक्तियाँ ली हैं उन्हें भाषा पर अपने अद्वितीय अधिकार के बल से एकदम मूल हिन्दी रचना के रूप में प्रयोग कर डाला है। कहीं से संस्कृतपन या वाक्य विन्यास की दुरूहता नहीं आने दी है। बहुत जगह तो उन्होंने उक्ति का अधिक व्यंजक बनाकर और चमका दिया है।"

**2. पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के शब्द**–तुलसी के काव्यों में पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं के शब्द भी पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं। प्रायः वीर, रौद्र या भयानक रस का निरूपण करते समय तुलसी ने उक्त भाषाओं के शब्दों का प्रयोग अत्यधिक मात्रा में किया है। क्योंकि इन भाषाओं में प्रयुक्त शब्दों के अन्तर्गत द्वित्व वर्णों का प्राधान्य होने के कारण उक्त रसों के लिए ये शब्द बड़े सहायक होते हैं। इसलिए तुलसी ने भट्टा, धट्टा, चमकहिं, दमकहिं, कटकट्ट कट्ठहिं, दपट्टहिं, खग्ग, अलुज्झि जुज्झ, उच्छलित, रघुप्पति, दसरथ्य, लक्खन, विपच्छ, परब्बत, बोल्लहिं आदि का प्रयोग किया है। इन शब्दों के कारण नाद–सौंदर्य के साथ–साथ ओजगुण एवं रौद्र तथा वीर रस की व्यंजना में बड़ी सहायता मिलती है।

**3. विदेशी भाषाओं के शब्द**–तुलसीदास मुस्लिम शासनकाल में हुए थे। वे अपने युग की विदेशी राजभाषा से भली–भांति परिचित थे। यह राजभाषा का ही प्रभाव है कि हिन्दू–संस्कृति का प्रबल समर्थक और धार्मिक कवि होने पर भी उनकी रचनाओं में अरबी–फारसी (विशेषतया फारसी) शब्दों की इतनी बहुलता पाई जाती है। अँबारी, अबीर, सहन, बलाइ, हलक, अकारथ, गनी, ताल, हाल, खास, खलक, खवास, खसय, आदि शब्द अरबी से लिए गए है। जहाँन, जमात, बकसीस, दरबार, कसम, गुजान गरूर, अरखतु, दाहि, मसीह, निसान, उसीला आदि बहुसंख्यक शब्द फारसी से लिए गए हैं।

विदेशी अरबी फारसी शब्दों को ग्रहण करते समय तुलसी ने अवधी और ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुसार उनमें ध्वनि–परिवर्तन किया है, उदाहरण के लिए जीन का ज़ीन, शहनाई का सहनाई, बही का बहरी, फ़ील का पील, बैरख का बैरक आदि। यही नहीं विदेशी शब्दों में ध्वनि–परिवर्तन करके और हिन्दी–प्रत्यय लगाकर उनका इस प्रकार रूप–निर्माण किया है कि उनके मूल रूप का आभास भी नहीं मिलता, जैसे शरीक से सरीकता, मिस्कीन से मिसकीनता, नवाज से निवाजा, निवाजे निवाजिको आदि।

तुलसीदास के शब्द–भण्डार के विषय में पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है–"तुलसीदास का शब्द भण्डार तो ऐसा वृहत्त था कि गूढ़–से गूढ़ भावों को सरलता से व्यक्त करने में उन्हें कहीं कठिनाई नहीं पड़ी है। तुलसीदास की कविता की बदौलत नब्बे हजार संस्कृत शब्द देहात के अपढ़ आदमियों के घरों में जा बैठे हैं, जो शिक्षा विभाग या विश्वविद्यालयों द्वारा भी वहाँ हरगिज नहीं पहुँच सकते थे। ये शब्द हिन्दु–संस्कृति के मूल स्वरूप हैं जो बौद्ध मत और पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के अंधड़ में उखड़ गए थे, तुलसीदास जी ने उन्हें फिर जमा दिया। उसी तरह गाँवों के लगभग तीस–चालीस हजार शब्दों को सभ्य या शहराती समाज तक पहुँचा दिया, जिन्होंने पढ़ी लिखी और देहात की अनपढ़ जनता में विचारों की समानता स्थापित कर दी। मौक़े–मौके पर अरबी–फारसी के शब्द भी डाल दिए गए हैं जिनसे वे लोग आकर्षित हुए, जो अरबी–फारसी भी जानते थे।"

**4. प्रांतीय भाषाओं के शब्द**–तुलसी की रचनाओं में उत्तरी भारत के विभिन्न प्रांतों की भाषाओं के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। जैसे दारू, नारि (गर्दन), म्हाको, मेला, सारयो, पूजि, ठोंकि–ठोंकि खए आदि राजस्थानी के शब्द मिलते हैं और जून, लाथे (प्राप्त किया), भूकिए (छोड़िए), मोंगी (मौन) आदि शब्द गुजराती के मिलते हैं। ऐसे ही वैसा (बैठा), पारा (सका), खटाइ (निभती) आदि शब्द बंगला के मिलते हैं, तथा पँवारों, अवकलत आदि शब्द मराठी के भी मिलते हैं।

**5. हिन्दी की अन्य बोलियों के शब्द**–तुलसीदास की भाषा में ब्रज तथा अवधी बोली के शब्दों का व्यवहार तो अत्यधिक मात्रा में हुआ ही है। इनके अतिरिक्त हिन्दी की अन्य बोलियों के शब्द भी मिल जाते हैं; जैसे–सरल (सड़ा हुआ), दिहल (दिया), धायल (दौड़ा), सूतल (सोया), राउर, रावरी, जहवाँ, तहवाँ, लोइ, लोई, तपुकिया, शरण आया; सारे मचा, लीजिए, कीजिए गई, देना आदि खड़ी बोली के शब्द प्रयुक्त हुए हैं और सुआर, बागत (घूमते) आदि बघेली बोली तथा छतीसगढ़ी के शब्द भी मिलते हैं।

**शब्द शक्तियाँ**–सामान्यतः शब्द की तीन शक्तियां मानी गई हैं–अभिधा, लक्षणा, और व्यंजना। प्रभावशाली कवि अपने काव्य में इन तीनों का ही अधिकारपूर्वक और सफलता के साथ प्रयोग करता है। तुलसी की रचनाएँ इन शब्द–शक्तियों के चमत्कार से भरी पड़ी हैं। तीनों के एक एक उदाहरण दृष्टव्य हैं–

अभिधा–

**"मोचिनि बदन सँको चिनि हीरा माँगन हो। पनहि लिएकर सोभित सुंदर आँगन हो।।**
**नैन विसाल नउनियाँ भौं चमका वइ हो। देह गारी रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो।।"** –रामललानहयू

लक्षणा–

**'राजमराल के बालक पेलि कै पालत लालत खूसर को। सुचि सुंदर सालि स्कोलि सो बारि कै बीजु बहोरत ऊसर को।।**
**गुन ग्यान गुमानु मँमेरि बड़ी कलु पद्रुम काटत मूसर को। कलिकाल विचारु अचारु हरो नहि सूझै कछू घम घूसर को।।"**

व्यंजना–

**"चारु चरन नख लेखति घरनी। नुपुर मुखर मधुर छवि बरनी। मनहु प्रेमवस विनती करहीं। हमहि सीच पद जानि परिहरिहीं।।"**

**लोकोक्ति एवं मुहावरे**–तुलसी की भाषा में लोकोक्ति एवं मुहावरों की भरमार मिलती है। जैसे–'धोबी कंसो कूकर, न घर को न घाट को, 'धान को गाँव पयार ते जानिय', 'खाली दीप मालिक ठठाइत सूप हैं', 'अपने चना चबाइ हाय चाटियत है', 'त्यों ज्यों होइगी गरई ज्यों ज्यों कामिरि भीजैं', 'दूध कौ जर्‌यो पियत फूँकि–फँकि महयो है' आदि लोकाक्तियों का प्रयोग मिलता है। तथा 'जहैं बारह बाट', 'कहब जीभ करि दूजी', 'ठग के से लाडू खए', 'पानी भरी खाल है', 'मुहँ लाए मूडहि चढ़ी', 'छोटे-बदन कहहुँ बड़ी बाता', 'जीवन पाउँ न पाछे घर हीं', 'पूतरो बांधि है', 'तज्यो दूध माखी ज्यों' आदि अनेक मुहावरों का सुंदर एवं सजीव प्रयोग हुआ है।

**गुण–व्यंजक पदावली**–गुण तीन हैं–प्रसाद, माधुर्य और ओज। ये गुण वस्तुतः रस के धर्म हैं, परन्तु शब्दों की रस–व्यंजकता के कारण इन्हें शब्द का धर्म भी कह दिया जाता है। जिस रचना के पढ़ते ही तत्काल अर्थ–बोध हो जाता है और रस की अनुभूति होने लगती है, उसमें प्रसाद गुण माना जाता है; जैसे–

**"तुलसीदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज शेष कछु नहिं गोयो। डासत ही गइ बीत निसा सब कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो।।"**

जिस शब्द रचना से पाठक का चित्त द्रुत हो जाता है, उसमें माधुर्य गुण होता है। उसमें प्रायः कोमल कान्त पदावली का प्रयोग

किया जाता, उदाहरणार्थ—

**"कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि। कहत लषन सन राम हृदय गुनि। मानहुँ मदन दुदुंभी दीन्हीं। मनसा विस्व विजय कहँ कीन्हीं।।"**

ओज गुण उस रचना में माना जाता है जिससे चित्र दीप्त होता है। उसमें प्रायः कर्णकटु वर्णों का प्रयोग किया जाता है

**"मत भत मुकुट दरकण्ठ साहस सइल संग विदुरनि जनु ब्रज टाँकी।**
**दासन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठु, सेषु संकुचित संकित पिनाकी।।"**

**वृतियाँ**—काव्य में उपर्युक्त तीनों गुणों के अनुरूप ही शब्दों अथवा वर्णों का विन्यास किया जाता है। वर्ण–विन्यास के क्रम को 'वृत्ति' कहते हैं। वृतियाँ तीन हैं—परुषा, उपनागारिका और कोमला। जहाँ दीप्ति प्रधान भावों की व्यंजना में कठोर वर्णों का प्रयोग किया जाता है, वहाँ परुषा वृति होती है; जैसे—

**"डिगति उर्बि अति गुर्बि सर्ब पब्बें समुद्र सर। ब्याल बधिर तेहि काल विकल दिगपाल चराचर।**
**दिग्गयंद लरखरत परदत दसकंधु मुख्य भर।। सुर विमान हिमभानु भानु संघटत परसपर।।"**

सुकुमार भावों की व्यंजना के लिए किए गए कोमल वर्णों के विन्यास में उपनागरिका वृति पाई जाती है; जैसे—

**"तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से। सजनी ससि मैं समसील उमै नवनील सरोऊह से विकसे।।"**

कोमलावृति परुषा की तुलना में कोमल होने के कारण कोमला कहलाती है। जिस रचना में सुकुमार वर्ण–विन्यास अथवा परुष पदावली का आग्रह न हो, अर्थात् जिसमें दोनों ही प्रकार के वर्णों का प्रयोग दिया गया हो, उसमें कोमला वृति होती है, जैसे—

**"सब प्रकार मैं कठिन मृदुल हरि दृढ़ विचार जिय मोरे। तुलसीदास प्रभु मोह सृंखला छूटहिं तुम्हारे छोरे।।"**

**शब्दालंकार योजना**—तुलसीदास की भाषा अलंकारों से अलंकृत है। अर्थालंकारों की चर्चा करना यहाँ पर अनपेक्षित है। शब्दालंकारों में अनुप्रास भारतीय कवियों का प्रिय अलंकार रहा है। तुलसी का सम्पूर्ण साहित्य अनुप्रास की छटा से मंडित है। उदाहरण के लिए—

**सुमन समेत बाम कर दोना। साँवर कुँवर सखी सुठिलोना।**

× × ×

**गोरो गरूर गुमान भर्‌यौ कहौ कौसिक छोटो सो ढोतो है काकी।।"**

अनेक स्थलों पर लातानुप्रास, श्लेष, यामक आदि अलंकारों का भी स्वाभाविक और प्रभावशाली प्रयोग हुआ है।

**लाटानुप्रास—**

**हरषे हेतु हेरि हर ही को। किए भूषण तिय भूषण को तो।**

**अथवा**

**"लोचन जल रह लोचन कोना। जैसे परम कृपिन कर सोना।"**

**श्लेष—** **"रावन सिर सरोज बन चारी। चालि रघुवीर सिली मुख धारी।।"**

**यमक—** **"अस मानस मानस चष चाही। भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही।।"**

भाषा पर कवि तुलसीदास का असाधारण अधिकार है। अपने प्रतिपाद्य विषय की समर्थ व्यंजना के लिए उन्होंने प्रसंग, पात्र एवं भावों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। कवि ने दोनों भाषाओं का प्रयोग बड़ी सजीवता, मार्मिकता, प्रभावोत्पादकता एवं सफलता के साथ किया है। उनकी भाषा में कलात्मक सौंदर्य के साथ–साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक शब्दावली का प्राधान्य होने के कारण हमारे जन–जीवन का समग्र रूप विद्यमान है। तुलसी ने इसीलिए सामान्य दैनिक जीवन में प्रयुक्त वस्तुओं एवं व्यापार का बड़ी रोचकता एवं सरसता के साथ वर्णन किया है तथा भारतीय जीवन में व्याप्त 'परम्परागत सांस्कृतिक कृत्यों का उल्लेख भी बड़ी तत्परता एवं सजीवता के साथ किया है। अतः तुलसी की भाषा भाव एवं प्रसंग के अनुकूल होने के साथ–साथ हमारे सांस्कृतिक एवं व्यावहारिक जीवन को चित्रित करने में पूर्ण सशक्त, समर्थ एवं सक्षम दिखाई देती है, उसमें रामकथा के साथ–साथ हमारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन की सजीव झाँकी अंकित हुई है और जनसाधारण व्याप्त रीति–रिवाज, त्यौहार, संस्कार जन–विश्वास आदि का चित्रण भी बड़ी ही मार्मिकता के साथ किया गया है। वस्तुत वे भाषा के सम्राट हैं।

# अध्याय 17
# तुलसीदास की सांस्कृतिक योजना

गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' भारत का ही नहीं, वरन् विश्वसाहित्य का अनुपम ग्रन्थ है जिसमें भारतीय संस्कृति, धर्म, साहित्य, दर्शन, आदर्श समाज, न्याय–व्यवस्था, मानवीय कर्त्तव्य, उदात्त आचारों व विचारों का सुन्दर समन्वय है। तुलसीदास अपने युग के सच्चे दृष्टा थे। उन्होंने स्थान–स्थान पर भ्रमण करके जन–जन की भावनाओं को देखा था, उन्हें भली–भाँति समझा था। उन्होंने नाना शास्त्रों व ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन करके उनकी विचारधाराओं को ज्ञात किया था तथा भारत में व्याप्त विविध रीति–रिवाजों, मान्यताओं व नाना परिवेशों का अवलोकन किया था। प्रो० ए०ए० मैकडानल का कथन है–

Ramchartimanas ..... with its ideal standard of virtual and purity is a kind of Bible to a hundred millions of the people of Northern India.

अर्थात्, धर्म और पवित्रता के आदर्शमान से समन्वित 'रामचरितमानस' उत्तरी भारत के करोड़ों लोगों के लिए एक प्रकार का बाइबिल है। यद्यपि इस वृहद् ग्रन्थ का मूल आधार मर्यादा पुरूषोत्तम राम का चरित है। वस्तुतः यह महाकाव्य तत्कालीन भारतीय संस्कृति का जीता–जागता उदाहरण है।

**1. संस्कृति का अर्थ**–सम् + कृति = संस्कृति। अर्थात् उत्तम कृति या चेष्टाएँ संस्कृति हैं। अथवा 'संस्कृति' शब्द का अर्थ–उत्तम या सुधरी हुई स्थिति से भी लिया जा सकता है। भाव यह है कि मानव बुद्धिमान प्राणी होने के कारण अपने चारों ओर की परिस्थितियों को सुधारता रहता है तथा प्रगति करता रहता है। अतः जीवन–पद्धति, रीति, नीति, रहन–सहन, आचार–विचार आदि उनकी संस्कृति के अंग बन जाते हैं। वस्तुतः संस्कृति संस्कारों के समूह का नामान्तर है। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल का कथन है–संस्कृति का अर्थ है–संस्कार–सम्पन्न जीवन। संस्कार मानव के आध्यात्मिक जीवन को, जिस समाज का वह अंग है, उस समाज के जीवन को और उसके सम्पर्क में आने वाले भौतिक पदार्थों को सुन्दर, सुखमय, सशक्त और विश्व–नियमों के अनुकूल बनाते हैं। नियमों की संज्ञा धर्म है जो मानव–जीवन को मर्यादित रखते हैं। जिनके समुचित पालन करने से व्यक्ति और समूह दोनों को सुख मिलता है और दोनों का कल्याण होता है। इस प्रकार धर्म और जीवन संस्कृति शब्द के पर्याय कहे जा सकते हैं। मानव अपने कर्म से, मन से, शब्द से जो कुछ अब तक सुधार कर सका है वह सब उनकी संस्कृति है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि जीवन का जितना विस्तार है, उतनी ही संस्कृति की बहुमुखी सामग्री है। धर्म, दर्शन, साहित्य, कला, समाज और उसकी परिवर्तनशील अनेक संस्थाएं हैं–इन सबकी संज्ञा संस्कृति है।

**2. धार्मिक एवं दार्शनिक मान्यताएँ**–धर्म के क्षेत्र में वैदिक संस्कृति प्रायः स्वीकार्य स्थापना के चरम बिन्दु थे। धार्मिक जीवन सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। जीवन को मर्यादा के साथ व्यतीत करना सर्वोत्तम था। रामचन्द्र का समस्त जीवन मर्यादा में बंधा हुआ है। इसी प्रकार उन्हें 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहा जाता था। धर्म का चरम–लक्ष्य मोक्ष या मुक्ति की प्राप्ति है। उसके दो साधन थे–ज्ञान और भक्ति। भगवान के निर्गुण व सगुण रूप की उपासना होती थी। तुलसी सगुणोपासक थे। उन्होंने कहा था–

**सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध वेदा।।अगुण अरूप अलख अज जोई। भगत–प्रेम वस सगुन सो होई।।**

अर्थात् सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं हैं। भक्त प्रेम के कारण निर्गुण ही सगुण हो जाता है। जैसे जल, शीतलता के कारण हिम रूप में परिवर्तित हो जाता है। ज्ञान और भक्ति दोनों ही मुक्ति प्रदाता है, परन्तु ज्ञान–मार्ग की अपेक्षा भक्ति–मार्ग सुलभ है, सरल है व सहज है। ज्ञान का मार्ग उसी प्रकार कष्ट–साध्य है जैसे तलवार की धार पर चलना–ज्ञान पंथ कृपान कै धारा–कठिन है। किन्तु बिना ज्ञान के भक्ति भी उसी प्रकार है जिस प्रकार बिना मल्लाह के नाव।

तुलसी न द्वैतवादी थे और न अद्वैतवादी। वे विशिष्टाद्वैतवादी थे। वस्तुतः उनके दार्शनिक विचारों में क्रमबद्धता उपलब्ध नहीं हैं। उनका उद्देश्य दार्शनिक विचारधारा अभिव्यक्त करना नहीं था। इतना अवश्य है कि उनके दार्शनिक विचार उनके काव्यों में यत्र–तत्र परिव्याप्त हैं। वे मूलतः भक्त भी थे और कवि भी थे। दोनों का समन्वय उनमें था। इसी कारण उनका दार्शनिक पक्ष भी समन्वित है।

तुलसी राम को चराचर प्राणियों का रक्षक व भगवान मानते थे, जो दशरथ के पुत्र होकर भी विष्णु के अवतार हैं। वे जगत के विधाता हैं। सभी परम शक्तियाँ उनसे उत्पन्न हैं। माया भी परब्रह्म राम की शक्ति है जिससे समस्त संसार का निर्माण हुआ। राम भक्त होने पर भी तुलसी की विभिन्न देवी–देवताओं में आस्था थी। तीर्थों में उनका विश्वास था जो उस समय व्याप्त था। उस समय विभिन्न धर्म थे। सभी धर्मों को एक सूत्र में बांधने के लिए तुलसी ने कहा था–

**"परिहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।"**

वस्तुतः मुस्लिम साम्राज्य होने के कारण भारतीय धर्म अपनी मर्यादा से गिरने लगे थे। धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के ढोंग और बुराईयां पनपने लगी थीं। अतः तुलसीदास ने धर्म के लिए समन्वयात्मक तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया था जो प्रचलित हो गया था। राम की उपासना सर्वोपरि हो गयी थी।

**3. सामाजिक व्यवस्था**—उस युग में वर्ण व्यवस्था थी। सभी जातियाँ मुख्यतः चार वर्णों में विभक्त थी—ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य व शुद्र। ब्राह्मणों का सर्वाधिक सम्मान था, परन्तु वे वेदपाठी व धर्म का पूर्णतः पालन करने वाले होते थे। क्षत्रिय युद्ध करते थ। राम स्वयं क्षत्रिय थे अतः युद्ध करना तथा अपनी शक्ति से प्रजा रक्षण करना उनका परम कर्तव्य था। वैश्य व्यापार करते थ। ब्राह्मण वैदिक परम्परा का पालन करते हुए तपस्वी होते। गुरू विश्वामित्र, वशिष्ठ ऋषि वामदेव इसी प्रकार के तपस्वी हैं। राजा जनक सब कुछ होने पर भी तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हैं। चारों वर्णों में विभिन्न जातियाँ थीं। धोबी, लुहार, भील, कोल, निषाद, दास, दासियाँ, भीलनी आदि जातियाँ थीं जो कुछ नगर में रहती थीं, कुछ ग्रामों में व कुछ वनप्रदेशों में। ग्राम प्रदेशों व वन प्रदेशों में भील, गुह्य, निषाद आदि परिश्रम पूर्वक कठिन जीवन व्यतीत करते थे, परन्तु नगर में रहने वाले प्रायः समृद्ध थे। ऊँचे-ऊँचे महल या भवन थे (धवल धाम ऊपर नभी चुम्बत) सभी महलों में मणियां लगी थी जो दिन-रात प्रकाश करती थी। कवि अयोध्या के भवनो का वर्णन करते हुए कहते हैं—

**"मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी विद्रुम रची। मनि खंभ भीति बिरंचि कनक मणि मरकत खची।।**
**सुन्दर मनोहर मंदिरायत अजिर खचिर फटिक रचे। प्रति द्वारा-द्वारा कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि रचे।।"**

घरों में मणियों के दीपक शोभा पा रहे थे। मूँगों की बनी हुई देहलियाँ चमक रही थीं। मणियों के खम्बे थे। मरकत मणियो से जड़ी हुई सोने की दीवारें ऐसी सुन्दर हैं मानो ब्रह्मा ने उन्हें विशेष रूप से बनाया हो। महल सुन्दर, मनोहर और विशाल थ उनमें सुन्दर स्फटिक के आंगन बने हुए थे। प्रत्येक द्वार पर बहुत-से खराद से तरासे हुए हीरे जड़े थे। वहाँ का बाजार बहुत समृद्ध था। कपड़े बेचने वाले (बजाज) सोना-चांदी आदि अलंकार बेचने वाले (सराफ) रुपए-पैसे का लेन-देन करने वाले (वणिक) वस्तुओं का लेन-देन कराने वाले (व्यापारी) थे।

नगर के आस-पास बड़े-बड़े फल-फूलों से लदे बाग होते थे। नगर के महलों व भवनों के आस-पास चारों ओर वाटिक होती थीं। अयोध्या नगरी के पास तो सरयू नदी बहती है जिसके तटों पर मन्दिर हैं, बगीचे हैं, राजघाट हैं यहाँ नगरवासी नहात होते हैं। नगर में बावड़ियाँ, तालाब, कुण्ड, कुएँ आदि बने थे। जिनमें निर्मल पेयजल है। अतः राम जैसे राजा के रहते हुए न राजनीतिक स्थिति सुदृश होने के कारण सामाजिक व्यवस्था उत्तम थी।

**4. राजनीतिक व्यवस्था**—उस युग में प्रमुखतः राजतन्त्र था। समस्त भारत में छोटे-छोटे राज्य थे उनका प्रभुत्व राजा के हाथों में था। राजा की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र राज्याधिकारी होता था। दशरथ की मृत्यु के पश्चात् उनका ज्येष्ठ पुत्र राम ही राज्य को प्राप्त करने वाला था। परन्तु जिन राजाओं को शत्रु जीत लेते थे वे अपने अनुसार राजा बनाते थे। लंका का राज्य जीतकर राम ने उसका राजा लंकेश्वर रावण के भाई विभीषण को बनाया था। जितनी-जिस राजा के राज्य की सीमा होती थी उतने क्षेत्र का राजा स्वामी होता था। भारतीय राजा मुस्लिम राजाओं की अपेक्षा प्रजा के हितकारी व रक्षक होते थे। उनकी राजनीति और धर्मनीति एक साथ मिली हुई थी। राजा, अपने मित्र नरेशों का सम्मान करते थे। राम जब रावण को मार कर अयोध्या आए तो उनके साथ विभीषण, हनुमान, सुग्रीव, नल, नील, जाम्बवत्, अंगद आदि भी विभिन्न नरेश व प्रजा पालक थे। राम ने उसका सम्मान कर उपहार देकर विदा किया था तथा अपने भाई से कहा था—

**"सब मम प्रिय, नहिं तुम्हहिं समाना। मृषा न कहऊँ मोर यह बाना।।"**

अर्थात् संसार में मुझे सभी प्राणी प्रिय हैं, परन्तु तुम्हारे समान नहीं, तुम उनसे अधिक प्रिय हो, मैं असत्य नहीं कहता हूँ। यह मेरा स्वभाव है।

प्रत्येक व्यक्ति राजा बनने योग्य नहीं होता था। राजा के लिए यह आवश्यक था कि वह शक्ति नीति और ऐश्वर्य-सम्पन्न होना चाहिए। उसमें अनेक गुण होने चाहिए—

**"धरम धुरंधर नीति-निधाना। तेज प्रताप सील बलवान।।"**

राजा को धर्म का पालन करने वाला, नीति का ज्ञाता, तेजस्वी, प्रतापी तथा शक्तिशाली होना चाहिए। सत्यकेतु व शीलनिधि इस प्रकार के राजा थे। उस समय राजा ऋषियों, मुनियों, यतियों आदि तापसों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देते थे। राजा दशरथ, राजा जनक, राजा राम इन्हीं गुणों से सम्पन्न थे। उत्तम कोटि का राजा वही होता था जो निति का पालन करते हुए किसान माली व सूर्य के समान हो। जो वृक्ष, नदी, पर्वत, पृथ्वी आदि के समान परोपकारी हो। राम में ये परोपकार की भावनाएँ थीं। वन को जाते समय भी राम भरत को यह संदेश देना नहीं भूलते कि वह राजा होकर न्याय व नीति का पालन करे—

**"कहब संदेश भरत के आए। नीति न तजिए राजपदु पाए।।"**

शूर्पनखा ने भी रावण से यही कहा था कि नीति के बिना राजा सफल नहीं होता। राजा अपनी सहायता के लिए मंत्रीगण, समिति तथा परिषदें बनाता था। गुरू की आज्ञा का पालन करता था। राजा विशेष प्रकार के वस्त्र व बहुमूल्य अलंकार धारण करता था। सिंहासन, छत्र, बहुमूल्य वस्त्र, चँवर, कोष, रानी, बन्दी, अन्य सेवक, दुर्गा, सेना आदि राजा के आडम्बर थे। राम यद्यपि राजकुमार थे, परन्तु वन में जाते समय उन्होंने सभी राजकीय वस्त्रों व अलंकारों का परित्याग कर दिया था। राजा के अनेक गुप्तचर होते थे। जो गुप्त रूप से देश व परदेश की सूचना देते थे। राजा जनक ने राम के वनवास के समय अपने गुप्तचर भेजे थे जो यह ज्ञात करके आए थे कि भरत राम के विरूद्ध नहीं है। यज्ञों में राजाओं का विश्वास था। यज्ञ अपने प्रजा हितार्थ और अपने पुण्य के लिए होते थे। राम, जनक, रावण, मेघनाथ सभी यज्ञ करते हुए दिखाई पड़ते हैं। शक्तिशाली व विस्तृत भूखण्ड के राजा के पास चतुरंगिणी सेना होती थी। युद्ध में चारों प्रकार की सेना होती थी, परन्तु युद्ध रात्रि में नहीं होता था। राम अपनी प्रजा के अनुरंजन के लिए जीवन समर्पित करने वाले थे। ये अपनी प्रजा से यहाँ तक कहते थे कि यदि कोई उनसे अनीति हो जावे तो वह उसे रोक दे. इसके लिए डरने की आवश्यकता नहीं हैं। रामराज्य के लिए विद्वान आलोचन डॉ० भारद्वाज का कथन है–

"रामराज्य का लक्ष्य था जन कल्याण। यह वास्तव में प्रजा–सत्तात्मक था जिसमें सभी को अपनी बात कहने और अपना मत देने की स्वतन्त्रता थी।"

**5. शिक्षा**–उस समय शिक्षा दो प्रकार की होती थी–(1) शस्त्र, (2) शास्त्र। ये दोनों शिक्षाएं गुरु के पास वन प्रदेश में ही मिलती थीं। ग्रामीण–प्रदेशों व नगरों में पढ़ाई का किसी भी स्तर पर कोई साधन नहीं था। शास्त्र विद्या का अध्ययन प्रायः ब्राह्मण करते–कराते थे। वे ब्रह्म ज्ञानी, ज्योतिष, मर्मज्ञ व विद्या के प्रति समर्पित रहते थे। शास्त्र विद्या प्रायः क्षत्रिय पढ़ते थे क्योंकि उनका कार्य रक्षा करना, युद्ध करके शत्रुओं की जीतना आदि था। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय नारी शिक्षा का अभाव था क्योंकि वे वन प्रदेश में जाकर रह नहीं सकती थी तथा नगर में रहने वाली मुनि–कन्याएं शिक्षित होती थीं। शास्त्र विद्या को सिखाने वाले भी प्रायः ब्राह्मण होते थे जो बड़े तपस्वी, साधन परिश्रमी व विभिन्न शास्त्रों को चलाने में कुशल होते थे। राजा दशरथ के चारों पुत्रों–राम, भरत, लक्ष्मण व शत्रुघ्न ने मुनि वशिष्ठ से शिक्षा प्राप्त की थी–

**"गुरू गृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल विद्या सब पाई।।**
**विद्या विनय निपुन गुन सीला। खेलहिं खेल–सकल नृपलीला।।"**

चारों भाइयों ने गुरू के आश्रम में सभी विद्याएं बहुत शीघ्र प्राप्त कर ली थी। उनके एक नहीं बल्कि अनेक गुरू थे। गुरू विश्वामित्र उन्हें राक्षसों से यज्ञ की रक्षा करने हेतु ले गए थे। तथा उन्हीं के साथ वे जनकपुरी में गए थे। जहाँ पर राम ने धनुष तोड़कर सीता से विवाह किया था। विश्वामित्र शस्त्र विद्या में अत्यन्त निपुण थे। उन्होंने शस्त्र विद्या के विशेष गुर राम और लक्ष्मण को सिखाए थे। परशुराम के क्रोधित होने पर राम से रोके जाने पर लक्ष्मण गुरू विश्वामित्र के पास गए थे, (गुरू समीप गवने सकुंचि परिहरि बानी राम) दैविक शास्त्रों को प्राप्त करने के लिए विशेष साधनाएं करनी पड़ती थीं। राम और लक्ष्मण को यदि दिव्य ब्रह्म शस्त्र आदि प्राप्त थे तो रावण, मेघनाद को भी दिव्य शस्त्र प्राप्त थे। मेघनाद ने वीरघातिनी शक्ति का प्रयोग कर लक्ष्मण को मूर्च्छित कर दिया था। राम अपने दिव्य शास्त्रों से राक्षसों की मायावी शक्तियों को दूर कर देते थे। राम नागपाश से बाँध दिए गए थे। रावण की वह शक्ति भी लक्ष्मण को लगी थी जो रावण को ब्रह्मा जी से प्राप्त हुई थी, परन्तु राम की माया से उसका प्रभाव नष्ट हो गया। लंकाकाण्ड में इस प्रकार दिव्य शस्त्रों का प्रयोग दिखाई पड़ता है। यह रामकथा एक क्षत्रिय की जीवनी है। अतः यहाँ पर शस्त्र विद्या का बहुत कम प्रयोग है। फिर भी शस्त्र विद्या में शास्त्र विद्या का योगदान था। दिव्य शस्त्रों को प्राप्त करने के लिए विशेष शास्त्रों को ही आधार बनाया जाता था।

**6. नारी की स्थिति**–भारत में प्रारंभ से ही पुरूष की अपेक्षा नारी की स्थिति दयनीय रही है। क्योंकि भारत पुरूष प्रधान देश रहा है। 'रामचरितमानस' में भी देखा जाता है कि नारी का अस्तित्व, उनकी प्रसन्नता या कष्ट उसके पति पर निर्भर करता था। उस समय बहु विवाह की प्रथा थी। विशेषतः धनिक वर्ग व राजागण बहु विवाह करते थे। राजा दशरथ की तीन रानियां थीं–कौशल्या, कैकेयी व सुमित्रा। लंका नरेश रावण की अनेक रानियां थीं। स्त्री का व्यक्तित्व तभी सार्थक था। जब वह पतिव्रता धर्म का पालन करें। विधवा–विवाह समाज में मान्य नहीं था। नारी का वैधव्य उसके लिए अभिशाप था। राजा दशरथ की मृत्यु के पश्चात् उसकी तीनों रानियां वैधव्य के अभिशाप को भोगती रहीं। रामचन्द्र के युग में पुरूष एक पत्नीव्रती होने लगे थे। राम व उनके भाइयों ने एक–एक ही विवाह किया था। नारी अपने पति का स्वयं वरण कर सकती थी। सीता के विवाह के समय स्वयंवर का आयोजन किया गया था जिसमें अनेक राजगण आमंत्रित थे। रावण की बहिन शर्पूनखा अपना पति राम या लक्ष्मण को चाहती थी। परन्तु उन्होंने अपना प्रेम ठुकरा दिया था, परिणामस्वरूप, राम और रावण की शत्रुता हो गयी थी। नारियों का हरण करना

कोई दोष नहीं था। रावण ने सीता का हरण किया। परन्तु नारियों से बलात्कार नहीं होता था। रावण ने सीता को अपनी लंका में रखा। उसे बार–बार प्रेरित किया कि वह विवाह कर ले। विवाह के पश्चात् ही नारी को अपने अंतःपुर में लाया जाता था। विशेष प्रकार के यज्ञों में पत्नी को समान आसन देकर बैठाया जाता था।

दूसरी ओर, नारियां भी अपने कर्तव्य के प्रति समर्पित थीं। सीता जहाँ अयोध्या में राम का ध्यान रखती है, जहा वह वन में भी राम की तन–मन से सेवा करती है। वह अपनी सासों, देवरों आदि के प्रति अत्यन्त मर्यादित रूप से व्यवहार करती है। बड़ों का सम्मान करना उसका परम कर्तव्य है। छोटों के प्रति उसका अपना स्नेह है। तुलसीदास का कथन है–

**सीय मन राम चरन अनुरागा। अवध सहस मन प्रिय लागा।। परन कुटी प्रिय प्रियत्तम संगा। प्रिय परिवार कुरंग विहंगा।।**

सीता जब अयोध्या में थी तो उनका मन राम के चरणों में अनुरक्त था। परन्तु वन में भी उसी प्रकार उसका मन राम के साथ है। वहाँ उसके परिवार के सदस्य हिरण व पक्षी है, राम के सहोदर भ्रातागण नहीं। वन्य मुनि पत्नियां व मुनिवर सीता के लिए सास–ससुर के समान पूज्य हैं। वह अपने प्रियत्तम के लिए सभी आवश्यक कार्य करती है। कुटिया स्वच्छ करना, जल भरकर लाना, ईंधन व कंदमूल लाना आदि उसका प्रतिदिन का कार्य है। इस प्रकार नारियाँ अपने पति सेवा को ही अपना धर्म समझती थीं। पुरुष उनकी रक्षा करते थे।

**7. लोकमान्यताएं व मर्यादा**–समाज में विभिन्न प्रकार की मान्यताएं थीं। पुनर्जन्म में विश्वास था। शकुन व अपशुन का महत्व दिया जाता था। राम जब अयोध्या आने वाले थे तो भारत की दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा बार–बार फड़क रही थी। इसी शुभ शकुन से उन्होंने अनुमान लगा लिया था कि राम वापस लौट कर अयोध्या आने वाले हैं–

**"भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार। जानि शकुन मन हरष अति लगे करन विचार।।"**

उस समय शुभ और अशुभ का ध्यान रखा जाता था। राम के राज्याभिषेक के लिए शुभ मुहुर्त निकलवाने हेतु वशिष्ठ गुरूवर से पूछा जाता है (गुरु वशिष्ठ द्विज लिए बुलाई। आजु सुधरी सुदिन सूमुदाई।) ब्राह्मण ही शुभ दिन, समय आदि बताते थे जिस के आधार पर विवाह, लग्न, यज्ञ, हवन आदि होते थे। किसी के स्वागत के लिए शुभ कार्य किए जाते हैं। राम के अयोध्या वापिस आने पर राम के स्वागत के लिए थालियों में दही, दूध, गोरोचन, फल, फूल, तुलसीदास भरकर लाए जाते हैं। अनेक धार्मिक अनुष्ठान होते थे। बीमार होने पर वैद्य की जाती थी। लक्ष्मण–मूर्छा होने पर पर्वतीय औषधि से उन्हें चेतना लाई जाती है। जन्मोत्सव विवाहोत्सव, राज्याभिषेक, विजय–घोषणा आदि के अवसरों पर विशेष प्रकार की खुशियाँ मनाई जाती थीं। अपशकुन का भी ध्यान रखा जाता था। कुछ शकुन प्राकृतिक होते थे जो मंगलकारी माने जाते थे। राम के अयोध्या लौटने पर तीनों प्रकार की वायु बहने लगी। सरयू नदी का निर्मल जल हो गया। अवधपुरी का प्राकृतिक सौंदर्य बढ़ गया–

**अवध पुरी प्रभु आवत ज्ञानी। भई सकल सोभा कै खानी।। बहइ सुहावन त्रिविध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा।।**

जहाँ इस प्रकार की मान्यताएं थीं वहां सभी लोग मर्यादा में बंधकर चलते थे। चाहे सामाजिक व्यवहार हो या पारिवारिक सभी में मर्यादाएं थी। अपनी मर्यादा का उल्लंघन कोई नहीं करता था–

**सब नर करहि परस्पर प्रीति। चलहि स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।**

रामराज्य में सभी प्रजा परस्पर प्रेम करती थी। सभी नर–नारी शास्त्रों की मर्यादा का पालन करते हुए अपने धर्म का पालन करते थे। सभी जन परोपकारी थे। ब्राह्मणों व विद्वानों की सेवा करते थे। उनका सम्मान करना आवश्यक था। सभी पुरुष एक पत्नी व्रतों थे (एक नारी व्रतरत सब) स्त्रियाँ भी पतिव्रता होकर पति की मन, वचन व काय से सेवा करती थीं।

उस समय प्राकृतिक वातावरण अत्यन्त मनोरम था। नदियां, नाले, वाबड़ियां, कुएं आदि स्वच्छ जल से भरे रहते थे। नगरों के चारों ओर विशाल बाग थे जिनमें विविध प्रकार के फल प्राप्त थे। नगरों के महलों के आसपास वाटिकाएं थी जो पुष्पों से लदी रहती थीं। राम के राज्य में पशु–पक्षी भी शत्रुता छोड़ कर रहते थे। वस्तुतः उस समय प्राकृतिक समृद्धि थी–

**"खग मृग सहज वयरू बिसराई। सबहि परस्पर प्रीति बढ़ाई।।"**

राजा के पुण्यात्मा होने से न कभी अकाल पड़ता था और न किसी की अल्प मृत्यु होती थी। इस प्रकार प्राचीन काल में राज्य व्यवस्था बहुत सुन्दर होने के कारण धर्म की विजय व अधर्म का विनाश होने के कारण प्रमुख दैहिक, दैविक व भौतिक व्याधियों से रहित थे। सभी अपने–अपने कर्तव्य का पालन करते थे। चाहे कितनी भी श्रीसम्पन्नता हो, तो भी सभी परिश्रमी थे। जब राजनीतिक स्थिति अच्छी हो, राजा प्रजानुरञ्जन के लिए तत्पर रहे तो स्वाभाविक है वहाँ के आचार–विचार, रहन–सहन, कार्य–व्यापार उत्तम कोटि के होते हैं। पृथ्वी पर ही मानो स्वर्ग दिखाई पड़ता है।

# अध्याय 18

# तुलसीदास : यथार्थ बोध

तुलसी काव्य में चित्रित यथार्थ–बोध पर प्रकाश डालिए।

काव्य में यथार्थ बोध से तात्पर्य युगीन परिवेश व सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति से है, तुलसीदास के काव्य में तत्कालीन समाज के वर्ग–वैषम्य, आर्थिक विषमता, धार्मिक पाखंड आदि का स्पष्ट चित्रण हुआ है। तुलसीदास–युगीन समाज में साधारण जनता अन्याय, अत्याचार व शोषण का शिकार थी। शासक वर्ग भोग विलास में लीन था, उसके कर्मचारी जनता को लूटते थे और राजकीय खजाने के साथ–साथ अपनी जेबें भी भरते थे। धर्म के नाम पर पाखंडी पाण्डे जनता को उल्लू बनाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते थे। तुलसी–काव्य में इन सभी विषमताओं, अत्याचार, कुरीतियों आदि का चित्रण हुआ है क्योंकि तुलसीदास न केवल सहृदय कवि थे बल्कि वे ऐसी दीन–हीन प्रजा के मध्य पलकर बड़े हुए थे। फलतः उन्होंने इस सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक संस्कृति आदि विषमताओं को खुली आँखों से देखा व समझा था। तुलसीदास के यथार्थ बोध को मुख्यतः निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है–

1. सामाजिक यथार्थ–बोध 2. राजनीतिक यथार्थ–बोध
3. धार्मिक यथार्थ–बोध 4. आर्थिक यथार्थ–बोध 5. सांस्कृतिक यथार्थ–बोध

**1. सामाजिक यथार्थ–बोध**–तुलसी युग में समाज दो वर्गों में बंटा हुआ था–शासक वर्ग व शोषित वर्ग। शासक वर्ग में बादशाह, राजा, अमीर, सूबेदार आदि आते थे, जबकि शोषित वर्ग में किसान, मजदूर, छोटे व्यापारी आदि आते थे। एक ओर तो यह शासक वर्ग ऊँचे, विशाल महलों में रहता था जहाँ ऐश्वर्य, सुख–साधन, वैभव आदि का प्रधान्य था तो दूसरी ओर शोषित वर्ग झोपड़ियों में रहता था जहाँ पर घोर दरिद्रता का साम्राज्य था। तुलसीदास शासक वर्ग के सफेद पत्थरों से बने ऊँचे महलों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–

**"धवल धाम मनि पुरट, सुघटित नाना भांति। सिय निवास सुन्दर सदन, सोभा किमि कहि जाती।।"**

गाँवों में रहने वाले निर्धन किसानों के सिर पर फूस का छप्पर ही होता था क्योंकि उनकी उपज के आधा भाग तो शासकों की भेंट चढ़ जाता था। इसलिए तुलसीदास इन निर्धन किसानों के छप्परों की ओर संकेत करते हुए कहते हैं–

**"ऐहि पापिनिह बूझिका परेऊ। छाइ भवन पर पावुक घरेऊ।**

राजाओं, बादशाहों की विलासिता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि वे अपने कार्यों कर्तव्यों से विमुख होकर केवल भोग–विलास में डूबे रहते थे। उनके इसी भोग–विलास के कारण हिन्दू समाज में नारियों को पर्दा प्रथा को अपनाना पड़ा, सती प्रथा, बाल–विवाह जैसे कुरीतियों ने जन्म लिया। तुलसीदास युग में नारी केवल भोग्या बन चुकी थी। जहाँगीर ने नूरजहाँ के पति का कत्ल इसलिए करवाया क्योंकि वह नूरजहाँ को पसन्द करता था। अतः उसने अपनी वासना की पूर्ति के लिए एक स्त्री को पहले विधवा किया और फिर उसे अपने हरम में ले आया। तुलसीदास ने देखा था कि समाज में नारी को कोई सम्मान न प्राप्त था। इसलिए वे तत्कालीन युग की विलासिता का वर्णन करते हुए कहते हैं–

**"नहिं मानता कोउ अनुजा तनुजा।"**

जब बादशाह, राजाओं, की विलासिता में यह दशा थी, तब समाज के अन्य वर्गों में ऐसी प्रवृत्ति का पाया जाना स्वाभाविक ही है, क्योंकि जैसा राजा वैसी प्रजा। विलासिता का वातावरण देशभर में व्याप्त था। तुलसीदास ने समाज में नारी की दुर्गति देखकर कहा है कि वह पुरूष के हाथ की कठपुतली थी और उसे मदारी के बन्दर की भांति दूसरों के संकेतों पर नाचना पड़ता था–

**"नारि बिबर नर सकल गोसाई। नाचहिं नट मरकट की नाई।।"**

इसी प्रकार परिवार में नारी की दुर्दशा का वर्णन करते हुए तुलसी दास कहते हैं–

**"सुत मानहिं मातु पिता तबलौं। अबला नव दीख नहीं जब लौ।।**
**ससुरारि पियारि लगि जब तें। रिपु रूप कुटुंब भये तब तें।।"**

लोगों में चारित्रिक पतन हो रहा था क्योंकि उनके शासक स्वयं चरित्रहीन पतित चरित्र के स्वामी थे। तुलसीदास तत्कालीन समाज के इस चारित्रिक पतन की ओर संकेत करते हुए कहते हैं–

**"कुलवंति निकरहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरी गति।"**

यदि समाज में शोषण हो, अत्याचार हो, उच्च वर्ग केवल भोग विलास को ही अपना कर्तव्य और जीवन का लक्ष्य समझें तो निश्चय ही ऐसी दशा में पारिवारिक सम्बंधों, परस्पर व्यवहार आदि पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि निर्धनता सभी दुःखों, कष्टों का मूल कारण है। तुलसी युग में भी साधारण जनता निर्धनता से ग्रस्त थी फलतः पारिवारिक क्लेश, पुत्रों द्वारा माता–पिता के प्रति कटु व्यवहार आदि घटनाएँ एक साधारण सी बात थी। तुलसीदास ने तत्कालीन युग में संतान द्वारा अपने माता–पिता के प्रति उपेक्षित व्यवहार के संबंध में लिखा है–

**"फोरहिं सिल लोढ़ा सदन, लागे अदुक पहार। कामर कूर कपूत कलि, घर घर सहस हार।।"**

तुलसी–युग में समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित था। परन्तु यह व्यवस्था अब उतनी शुद्ध व व्यावहारिक नहीं रह गई थी। पहले जहाँ वर्ण–व्यवस्था धर्म पर आधारित थी, वही अब यह जन्मना हो गई थी। उच्च वर्ग में ब्राह्मण शेष वर्गों को अपने से छोटा मानकर हेय दृष्टि से देखते थे परन्तु क्षत्रिय व वैश्य वर्गों के साथ तनिक उचित व्यवहार करते हुए शूद्रों के साथ अमानवीय व पशुवत व्यवहार करते थे। शूद्रों को समाज में कोई स्थान प्राप्त न था। किसी पर्व, उत्सव आदि के आयोजन के अवसर पर शूद्रों को अलग से बैठाया जाता था ताकि वे उच्च वर्ग के लोगों को स्पर्श न कर दें। इस प्रकार समाज में छुआ–छूत पर आधारित भेदभाव का चलन था। तुलसीदास ने इस दशा का चित्रण करते हुए लिखा है–

**"खग गनिका गज व्याधि पांति, जहँ तहँ हौं हूं बैठारौं, अब केहि लाज कृपा निधान, परसत पनवारी पारी।"**

तुलसीदास ने अपने काव्य में इस बात का बार–बार उल्लेख किया है कि तत्कालीन समाज में लूट–खसोट अन्याय अत्याचार आदि का बोल–बाला था। काशी में जब महामारी फैली, तब भी उन्होंने उसका एकमात्र मूल कारण वहाँ के निवासियों का पाप माना है। वे कहते है कि जो मनुष्य दूसरों को रास्ते में मारकर उनका धन लूटते हैं, ब्राह्मणों की हत्या करके और उन्हे पीड़ा पहुचाकर उनका धन छीन लेते है, जो अशुभ कर्मों से धन कमाते हैं, भगवान शंकर के क्रोध से वह पाप का धन उनके हृदयों को जलाकर राख कर देगा। वह कहते हैं कि काशी में जितनी भी पापी हुए हैं वे अपने कर्मों के फल पाकर ही गए हैं। वे बार–बार लोगों को सचेत करते हुए कहते हैं कि पाप का धन कभी फलीभूत नहीं होता हैं। उनके इस आह्वान में तत्कालीन समाज का यथार्थ बोध होता है

**"मारग मारि महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो। संकर कोप सो पाप को दाम, परिच्छित जाहिगो जारि के हीयो।**
**कासी में कंटक जेते भये ते गें पाइ अघाई कैं आपनी कीयो। आजु कि कालि वरो कि नरों जड़ जाहिगे चाहि दिवारी दी दीयो।।"**

तुलसीदास ने अपने युग में फैली महामारी के प्रभाव को भी यथार्थ रूप में चित्रित किया है। महामारी के प्रकोप के कारण काशी नगरी के नर–रूपी जलचर महामारी रूपी माजा (जलचरों का रोग) के कारण अत्यंत व्याकुल हो गए है। कुछ तो जल में उछलते है, कभी ऊपर तैरते है, कभी हा–हाकार करते है और अन्त में मर जाते हैं। कुछ नर–नारी व्याकुल होकर काशी छोड़कर भाग रहे हैं। ऐसी दुर्दशा में भी यहाँ के राजा प्रजा की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। जिसके कारण यहाँ पर लोग एक दूसरे के लूट–खसोट रहे हैं; अन्याय बढ़ रहा है–

**"संकर–सहस सर नरनारि बारिचर, विकल सकल महामारी माजा मई है।**
**उछरत उतरात हहरात मरिजात, भभरि भागत जल–थल मीचुगई हैं।**
**देव न दयाल, महिपालन कृपा लचित, बारानसि बाढ़ति अनीति नित नई हैं।**
**पाहि रघुराज। पाहि कपिराज रामदूत, समूह की बिगरि तुही सुधारि लई हैं।"**

समाज में अधिकांश जातियाँ दमित व शोषित थीं। प्रत्येक जाति में स्वाभिमान नाममात्र के लिए भी शेष न बचा था। किसानों मजदूरों, छोटे व्यापारियों की परिश्रम की कमाई को कर, दण्ड आदि के रूप में लूटा जाता था। फलतः ऐसी दशा में निर्धन किसान मजदूरों आदि के समक्ष परिश्रम करने के पश्चात भी भूखे मरने की तुलना में भिखारी बनाना अधिक सरल व सहज कार्य था। तुलसी युग में भिखारियों, मांग कर खाने वालों की संख्या लाखों में थी। फलतः ऐसी लाखों भिखारियों का भार भी समाज के कमाऊ परिश्रम वर्ग पर ही पड़ा क्योंकि यह वर्ग ही अधिक धर्म–भीरू था। तुलसीदास ने इस यथार्थ का चित्रण करते हुए कहा है

**"नहिं तोष विचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भर माँगता।।"**

यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि बादशाह अकबर ने हष्ट–पुष्ट भिखारियों को भीख मांगने से रोकने का हुक्म जारी किया था।

**2. राजनीतिक यथार्थ–बोध**–तुलसीदास के युग में राजतन्त्र था। अधिकाश राजाओं का मुख्य उद्देश्य अपने खजाने को भरना अपने वैभवशाली महलों में सुख–सुविधा जुटाने और अपने राज्य की रक्षा करने तथा दूसरों के राज्य को हड़पने के लिए सेना का संगठन करना था। अपने राज्य में जनसाधारण के जीवन के लिए अवश्य मूलभूत सुविधाएँ प्रदान करने, कृषि क्षेत्र में सुधार करने

आदि जैसे कार्यों में इन राजाओं की कोई रूचि न थी। इसका मुख्य कारण यह था कि अधिकांश शासक अशिक्षित, अयोग्य थे। स्वार्थ–सिद्धि उनका प्रथम लक्ष्य था। ऐसे शासक राजनीति में नितांत अयोग्य सिद्ध हुए। अपवाद स्वरूप कुछ शासकों ने साधारण जनता के दुखों, कष्टों आदि को समझकर उनकी स्थिति को सुधारने का प्रयास किया। परन्तु अधिकांश शासक भोगविलासी, कामी, अपनी सत्ता के मद में चूर, सुरा और सुन्दरियों के दास थे। राजनीति के चार प्रमुख हथकंड़ों–साम, दाम, दण्ड, भेद में से केवल 'दण्ड' का ही प्रयोग किया जाता था।

**"गोड़ गंवार नृपाल कलि यवन महा महिपाल। 'साम न दाम न भेद कलि दंड कराल।।"**

तुलसी–युग में अधिकांश शासन मुस्लिम समुदाय से थे। उनका प्रमुख उद्देश्य इस्लाम का प्रसार करना व यहाँ की जनता का यथासम्भव मनोबल तोड़ना था ताकि वे इन शासकों के प्रत्येक उचित–अनुचित आदेश का पालन करें। फलतः उन्होंने जनता को मनमाने ढंग से प्रताड़ित किया, उनका शोषण किया, मूर्तियों व मन्दिरों को नष्ट किया। तुलसी दास ने अपनी काव्य में ऐसे बुरे राजाओं, अत्याचारी राजाओं के सम्बन्ध में कहा है–

**"कंटक करि करिपत गिरि, साखा सहज खजूरि। भरहिं कुनृप करिकरि कुनय, सो कुचालि भवभूरि।।"**

जिन राजाओं, सूबेदारों, शासकों का उद्देश्य ही प्रजा को लूटना रहा हो, वहाँ पर सुराज की कल्पना कैसे की जा सकती है। यह सही है कि अपराधियों को दण्ड दिया जाता था, परन्तु केवल वही अपराधी दण्ड पाते थे जो जनता का शोषण केवल अपने लाभ के लिए करते थे। यदि शोषण से प्राप्त धन का कुछ अंश राजकोष तक पहुँचता था, तब वह शोषण अपराध नहीं माना जाता था शासकों द्वारा नियुक्त सूबेदार जमींदारों आदि का कार्य यही तो था कि जनता पर लगे करों को वसूलो और राजकोष तक पहुँचाओ। यदि कोई सूबेदार या जमींदार केवल अपने हित में उस धन का प्रयोग कर लेता था तो वह अपराधी घोषित कर दिया जाता था। अतः यह कहा जा सकता है कि तुलसी युग में सुराज नहीं बल्कि कुराज था। तुलसीदास ने इसी कुराज की ओर संकेत करते हुए कहा हैं–

**"चढ़े बधूरे चंग ज्यों, म्यान ज्यों सोक समाज। करम धरम सुख संपदा, त्यों जानि बे कुराज।।"**

यदि शासक वर्ग ही लूट–खसोट की नीति पर चलता है तो निश्चय ही उसके कर्मचारी भी इस नीति का पालन करेगें। फलतः साधारण जनता दोहरी मार झेलती है। एक ओर तो राजाज्ञा द्वारा निर्धारित करों का भुगतान तो दूसरी ओर अत्याचारी कर्मचारी द्वारा किया जाने वाला शोषण।

तुलसीदास ने तत्कालीन, युग में सम्राटों, राजाओं आदि के अत्याचारी कर्मचारियों के सम्बन्ध में लिखा है–

**"प्रभु ते प्रभुगन दुखद लखि प्रजाहिं संभारे राउ। करते होत कृपान को कठिन घोर धन धाउ।।"**

अब यदि शासक अशिक्षित, अयोग्य हो, उसके कर्मचारी अत्याचारी हों तो निश्चय ही प्रजा में शांति नहीं रह सकती। तुलसी–युग में प्रजा भी अपने शासकों व राजकर्मचारियों के अनुरूप बनती जा रही थी। वैसे भी कहावत है–यथा राजा, तथा प्रजा। समाज में असामाजिक तत्वों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था, पथिकों को हत्या करके उनका धन लूट लिया जाता था। लोग परिश्रम करने के स्थान पर छलकपट पर ज्यादा विश्वास करने लगे थे। तुलसीदास ने प्रजा की इस मनोवृत्ति को भी अपने काव्य में चित्रित किया है–

**"काल बिलोकन ईस रूख, भानु फाल अनुहारि। खाहिं राउ राजहिं प्रजा, बुध व्यवहारिहिं बिचारी।।"**

तुलसीदास ने शासक, राजकीय कर्मचारी वर्ग व प्रजा तीनों के दोषों का वर्णन करते हुए कहा है कि समाज ने वेद और पुराणों में प्रस्तुत श्रेष्ठ मार्ग को छोड़कर कुमार्ग का सेवन कर लिया है। उन्होंने अनेक प्रकार के अशुभ आचरण अपना लिए हैं। इतना कठोर अर्थात् दुखदायक समय आ गया है कि राजा किसी प्रकार की दया नहीं करता, राज्य के अधिकारी भी बहुत अधिक छल–कपट करने लगे हैं–

**"वेद पुरान बिहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचालि चली है। काल कराल नुपाल कृपाल न, राज समाज बड़ोई छली है।"**

**3. धार्मिक यथार्थ–बोध**–तुलसी युग में देव स्थानों एवं तीर्थों की दशा चिन्तनीय थी। ये धर्म स्थल अब उपासना व भक्ति के स्थल नहीं रह गए थे बल्कि वे अनेक प्रकार के छद्म व्यवहार, अनाचार आदि के अड्डे बनते जा रहे थें। मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं की तीर्थ–यात्रा पर 'जजिया कर' लगा रखा था। इन तीर्थ स्थानों, मन्दिरों का संचालन करने वाले पंडे, पुरोहित आदि यहाँ पर आने वाली भोली–भाली जनता को लूटते थे। धर्म के नाम पर उनसे अनेक कर्म–काण्ड करवाते थे जिसके पीछे मुख्य उद्देश्य उनका धन प्राप्त करना था। तुलसीदास ने ऐसे मन्दिरों, तीर्थ–स्थलों के सम्बन्ध में कहा है–

**"सुर सदननि तीरथ पुरिन, निपट कुथालि कुसाज। मनहु गवारो मारि कलि, राजत सहित समाज।।"**

तुलसी युगीन समाज में चारों वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शुद्र का धर्म नष्ट होता जा रहा था। समाज में चारों आश्रमों–ब्रह्मचर्य,

गृहस्थ, वानप्रस्थ, व सन्यास ने अपनी व्यवस्था छोड़ दी थी। प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म कर्तव्य आदि से विमुख होता जा रहा था। मनुष्य की काम–वासना में सद्कर्म, उपासना, ज्ञान आदि का नष्टकर दिया था। अधिकांश साधु केवल वचन मात्र से वैराग्य धारण किए हुए थे और उसी के अनुरूप वेष धारण करके लोगों को ठगते थे। गोरखनाथ की योग–साधना के प्रभाव से मनुष्य में भक्तिभादना का लोप हो चुका था। वेद, शास्त्रों में वर्णित उपदेश या आदेश सरलता से ही छल कपट से भर गए थे। ऐसे पाखंड़ी साधुओं ने वेद, शास्त्रों के उपदेशों को अपनी इच्छानुसार व्याख्या करके जनता को दिग्भ्रमित कर दिया था। तुलसीदास ने तत्कालीन समाज की इस वास्तविक दशा का वर्णन भी किया है–

**"बरन धरम गयो आश्रम निवास तज्यो, त्रासन त्रकित सो परावनो परो–सो है।**
**करम उपासना कुवासना विनास्यो ग्यानु, बचन विराग वेष जगत हरो–है सो है।**
**गोरख जगायो जोग भगति भगयो लोगु। निगम–नियोग तें सो केलि ही छरो–सो है।"**

धर्म में पाखंड किस स्तर पर समा चुका था, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है। कि जो साधु सिर पर विशाल जटा धारण कर लेता था, नाखूनों से विकट वेश बनाये रखता था, उसे समाज में उतना ही बड़ा भारी तपस्वी समझ लिया जाता था। तुलसीदास ने इस यथार्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा हैं–

**"जाके नख अरु जटा बिसाला। सोई तापस प्रसिद्ध कलि काला।"**

तुलसीदास ने कलियुग के माध्यम से तत्कालीन युग के पाखंड़ी, साधुओं, जोगियों, सिद्धों आदि की वेश–भूषा, खान–पान आदि की ओर संकेत किया है।

**"असुभ वेष भूषण धरे भच्छाभच्छ जे खाहिं। तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूजित कलिजुग माहि।।"**

तत्कालीन समाज में विविध पन्थों का प्रसार असामान्य वेग से हो रहा था, वेद–शास्त्रों के निंदकों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी, हेतु वाद का बोल–बाला था, अधिकांश मतावलम्बी अपने मत की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए वाद–विवाद के लिए तत्पर रहते थे–

**"दंभिन निज मत कलपि, करि प्रगट किये बहुपंथ।**
× × × × × × ×
**वाद–विवाद विषाद बढ़ाई के छाती पराई औ आपनी जारै।**
**चारिहु को छहुको नक्को दस आठ को पाठ कुकाछ ज्यों फाटे।"**

तुलसी–युग में वैदिक वर्णश्रम धर्म का लोप हो रहा था, शास्त्रानुकूल आचरण के स्थान पर स्वच्छन्दतावाद को बढ़ावा मिल रहा था। इसलिए वे कहते हैं–

**"बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्हले कुछ घाटि। जानई ब्रहत सो विप्रवर, आस्ति दे हा वहि डाटि।।"**

तुलसीदास ने केवल हिन्दू–समाज के धार्मिक आडम्बरों, पाखंड़ों का ही वर्णन नहीं किया है बल्कि मुस्लिम–समुदाय में प्रचलित धार्मिक अन्धविश्वास का भी विरोध किया है। कामना की पूर्ति के लिए गाज़ियों और पीरों की दरगाहों में लोग नाक रगड़ते फिरते थे, तुलसीदास ने ऐसे अन्धविश्वास को भी अपने काव्य में चित्रित किया है–

**"लही आँख कब आँधरे, बांझ पूत कब ल्याय। जब कोढ़ी काया लही, जग बह राइचं जाय।।"**

**4. आर्थिक यथार्थ बोध**–जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि तत्कालीन युग में शासक वर्ग व उसका कर्मचारी वर्ग प्रजा का शोषण करता था। इस शोषण का परिणाम यह निकला कि समाज में धन–प्रवाह की श्रृंखला टूट गई क्योंकि जब सारा धन एक जगह पर होने लगा था। छोटे व्यापारी अपनी वस्तुओं को छुपाकर रखते थे ताकि राजकर्मचारी उस वस्तु का देखकर छीन न ले जाऐं, किसानों को अपनी फसल का आधा भाग लगान के रूप में देना पड़ता था, श्रमिकों को उनकी मेहनत का पूरा पैसा नहीं मिलता था फलतः चारों ओर दरिद्रता, भूख आदि का साम्राज्य था। तुलसीदास ने तत्कालीन युग की आर्थिक दशा का वर्णन करते हुए कहा है–

**"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि, बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।**
**जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस, कहैं एक एकन सों कहाँ जाय क्या करी ?"**

तत्कालीन शासकों की कर–व्यवस्था अत्यंत जटिल थी। किसानों को अपनी फसल का अधिकांश भागकर के रूप में देना पड़ता था, पशुओं को चराने के लिए थोड़ी–सी भी जगह न छोड़ी जाती थी औ जहाँ चरागाह थे वहाँ पर पशुओं को चराने के बदले कर

पड़ता था। तुलसीदास ने तत्कालीन कर–व्यवस्था को गौड़ की गाय के बिम्ब के माध्यम से प्रस्तुत किया है–

**ाने धेनु चरितु चरत प्रजा सुबच्च पेन्हाई। हाथ कछु नहिं लागि हैं किएं गौड की गाय।।"**

तुलसी युग में आर्थिक–दशा अनिश्चित रहती थी। राजा के कृपा पत्रों, धनिकों आदि की स्थिति थोड़े ही समय में बदल जाती त्योंकि राजाओं की इच्छा विरूद्ध आचरण करने पर सबसे पहले उसकी धन–सम्पदा को छीन लिया जाता था। अतः राजा की ष्टि अथवा प्रकोप से धनिक शीघ्र ही निर्धन बन जाया करते थे–

**मय दिन द्वै निसान सबके द्वार बाजै। कुसमय दसरथ के दानि तैं गरीब निवाजैं।।**

आलोच्य युग में जनसाधारण को भरपेट भोजन नहीं मिल पाता था। भले ही राजाओं, सम्राटों के यहाँ के अन्न भंडार रहे हों तु साधारण प्रजा निर्धन ही थी। साधारण जनता की निर्धनता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यदि भिखारी को मुट्ठी अनाज भी मिल जाता था तो उसकी दशा अत्यंत मुदित हो जाती थी। इसका वर्णन तुलसीदास ने इस प्रकार किया है–

**सी विलोकि कपि भालु किलकत। ललकत लखि ज्यों पातरी सुनाज की।"**

अकाल के समय में जनता अन्न के दाने–दाने के लिए तरस गई थी, तुलसीदास ने इस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है–

**"यह निसिचर दुकाल सम अहई। कनिकुल देस पन अब चहई।"**

तत्कालीन युग में विविध प्रकार के व्यवसाय, आजीविका के साधन होने पर भी सामान्य जन बड़ी कठिनता से निर्वाह करता पेट की क्षुधा बुझाने के लिए लोग अपनी संतान तक को बेच देते थे–

**बी किसान–कुल बनिक भिखारी भाट, चाकर चपल नट चोर चार चेटकी।**

**को पढ़त गुन गढ़त चढ़त गिरि, अटत गहन–गन अहन अखेट की।**

**नीचे करम धरम–अधरम करि, पेट ही की पचत, बेचत, बेटा–बेट की।"**

चूँकि तत्कालीन युग में भूमि पर विजेता का अधिकार हो जाता था और किसानों को नए राजा की आज्ञानुसार लगान देना पड़ता सलिए तुलसीदास ने सम्पत्ति अपहरण करने की पूर्वोक्त प्रथा को इंगित करके राजा को भूमिचोर की संज्ञा दी है–

**धर्म दूरि गए, भूमि चोर भूप भये, साधु सीद्यमान, जान रीति पाप पीन की।"**

**5. सांस्कृतिक यथार्थ बोध**–तुलसीदास ने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति में हो रहे परिवर्तन का भी चित्रण किया है। य संस्कृति में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य समाज का उत्थान करना था। परन्तु न केवल तुलसी युग में बल्कि आज भी शिक्षा का अपना पेट भरना बन गया है। तुलसीदास ने इस यथार्थ को उद्घाटित करते हुए कहा है–

**पिता बालकन्ह बोलावहिं। उदर भरइ सोइ पाठ पढ़ावहिं।।"**

इस प्रकार ब्राह्मण अपने जिस कर्तव्य और सात्विकता के कारण साक्षात भगवद्रूप माने जाते थे। वे लुप्त प्राय हो गए थे। उनकी ाना प्रकार के राग–द्वेष से पंकिल हो गई थी। वे विद्या बेचकर जीविकोपार्जन किया करते थे–

**श्रुति–बेचफ भूप प्रजासन। कोउ नहि मान निगम–अनुशासन।।"**

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि तुलसीदास ने अपने समय का यथार्थ वर्णन किया है। जिस प्रकार का समाज ीन समय में था ज्यों के त्यों सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक वातावरण की यथार्थ अभिव्यक्ति तुलसी के काव्य में मिलती हैं।

# खण्ड (ख)

## व्याख्या

1. चौ.– **लोक तोक प्रति भिन्न विधाता। भिन्न विष्नु सिवं मनु दिसित्रता।।**
**नर गंधर्व भूत बेताला। किंनर निसिचर पसु खग ब्याला।।**
**देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती।।**
**महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनइ आना।।**
**अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनस अनेक अनूपा।।**
**अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी।।**
**दसरथ कौसल्या सुनु ताता। विविध रूप भरतादिक भ्राता।।**
**प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखउँ बालविनोद अपारा।।**
दो.– **भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति विचित्र हरिजान।**
**अयनित भुवन देखत फिरउँ प्रभु राम न देखउँ आन।।**
**सोइ सिसुपन सोई सोभा सोइ कृपाल रघुवीर।**
**भुवन भुवन देखत फिरउँ प्रेरित मोह समीर।।**

**शब्दार्थ**– **लोक-लोक प्रति** = प्रत्येक लोक में। **भिन्न** = अलग-अलग। **विधाता** = ब्रह्मा। **दिसित्राता** = दि ाओं क रक्ष दिग्पाल। **निसिचर** = राक्षस। **पसु-खग** = प ु-पक्षी। **ब्याला** = सर्प। **दनुज** = असुर। **नाना जाती** = अनेक जाति। **तहँ** = व **आनहि भाँति** = कुछ अन्य रूप के। **यहि** = पृथ्वी। **सरि** = नदी। **सर** = तालाब। **गिरि** = पर्वत। **नाना** = अनेक। **प्रपञ्च** = सृ **आनइ आना** = अन्य-अन्य प्रकार की। **अंडकोस** = ब्रह्माण्ड। **जिनस** = प्रकार। **अनूपा** = विचित्र। **अवधपुरी** = अयोध्या। नि = न्यारी, अलग। **सरजू** = सरयू नदी। **सुन ताता** = हे तात ! सुनो। **विविध** = अनेक। **बाल-विनोद** = बाल-लीलाएँ। **अपार** अद्वितीय। **अति विचित्र** = अत्यन्त अनोखा। **हरि जान** = राम को ज्ञात किया, देखा। **अगनित** = असंख्य। **आन** = अन्य, भ **सोइ** = वही। **सिसुपन** = बालकपन। **सोभा** = सौन्दर्य। **कृपाल** = कृपा करने वाले, दयालु। **समीर** = वायु।

**प्रसंग**–प्रस्तुत पद्य भाग हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन सगुण भक्तिधारा के प्रतिनिधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्व विरचित 'रामचरित मानस' के उत्तरकाण्ड से अवतरित है।

प्रस्तुत काव्यखण्ड में उस समय का वर्णन किया गया है, जिस समय काकभु ुण्डि छोटे अकार वाले कौए क रूप म बाल राम के साथ क्रीड़ाएँ करके प्रसन्न हो रहा था और राम के रहस्य को समझ नहीं रहा था। राम उसे देखकर बार-बार हँसते काकभुशुण्डि उसकी विचित्र हँसी को नहीं समझ पाता है। वह उनके मुख में प्रवे ा करके पेट में पहुँच जाता है। जहाँ पर वह अद्भ सृष्टि का द न करता है जिसका वर्णन करते हुए काकभु ुण्डि कहता है–

**व्याख्या**– पक्षीराज गरुड़ को संबोधित करके काकभुशुण्डि कहता है – हे गरुड़ ! मैंने वहाँ पर प्रत्येक लोक के अलग–अ ब्रह्म के दर्शन किए। वहाँ प्रत्येक लोक के अलग.अलग विष्णु, शिव, मनु, दिशाओं की रक्षा करने वाले दिक्पाल देखे तथा प्रत्येक ल में मानव, भूत, गंधर्व, बैताल, किन्नर, राक्षस पशु.पक्षी एवं सर्प देखे थे। वहाँ पर विभिन्न जातियों के देवगन व दैत्यगण थ। वहाँ सभी जीवन कुछ अलग ही रूप में मुझे दिखाई दिए। वहाँ विभिन्न प्रकार के पर्वत, नदियाँ, समुद्र, तालाब, पर्वत आदि थे। अथ वहाँ ऐसा लगता था कि विधाता सर्वस्व ही नया रचा था इसलिए प्रत्येक वस्तु मुझे अलग.अलग दिखाई दे रही थी। इस प्रकार सभी तत्वों की रचना अलग.अलग थी। वहाँ पर प्रत्येक ब्रह्माण्ड की रचना का अलग.अलग रूप था, जो विचित्र रूप में मुझे दिख पड़ा था। वहाँ प्रत्येक लोक में अलग.अलग अयोध्या नगरी विद्यमान थी। सरयू नदी भी अलग.अलग थी और वहाँ के नर नारी अलग प्रकार के थे। जिनमें राजा द रथ, माता कौ ल्या भी अलग.अलग थीं। हे तात ! सुनो, वहाँ पर भरत आदि भाई भी अन प्रकार के रूपों को धारण किए हुए थे। मैंने प्रत्येक ब्रह्माण्ड में राम के अवतार को भी अलग.अलग रूप में देखा था तथा उनकी बा लीलाओं को भी देखा था जो कि अद्वितीय एवं अनोखी थीं।

गरुड़ जी से काकभुशुण्डि कहते हैं – हे हरिवाहन गरुड़, मैं वहाँ अनेक ब्रह्माण्डों में घूमा जहाँ मुझे अन्य सभी चीज अल अलग एवं निराली दिखाई दीं। किंतु इस तरह से अनेक ब्रह्माण्ड में घूमकर भी श्रीराम मुझे सर्वत्र एक ही रूप में दिखलाई पड़े उन

कोई अन्य रूप मुझे कहीं भी दिखाई नहीं पड़ा। वे सर्वत्र एक ही रूप में दिखाई दिए। मैंने श्रीराम के रूप को जहाँ भी देखा वहीं उनके प्रत्येक रूप में बालपन रूप ही था, वही सौंदर्य था और उसी एक ही रूप में कृपालु राम थे। इस प्रकार मैं मोह.रूपी पवन से प्रेरित होकर निरन्तर प्रत्येक लोक में विचरण करता रहा। ऐसा करने पर भी मुझे राम का रूप एक ही दिखाई दिया।

**काव्य–सौंदर्य –**

1. श्रीराम का प्रत्येक ब्रह्माण्ड में एक-सा पाया जाना इस बात की ओर संकेत करता है कि वे माया के प्रभाव से सर्वथा मुक्त हैं, माया का उन पर कोई प्रभाव नहीं है।
2. राम के निर्गुण रूप का चित्रण प्रस्तुत किया गया है, वे सर्वव्यापक हैं।
3. काकभु ुण्डि की राम के प्रति भक्ति भावना प्रदर्ित हुई है।
4. मोह-समीर में रूपक, लोक-लोक, प्रति-प्रति, भिन्न-भिन्न, में पुनरुक्ति प्रका ा अलंकार है।
5. प्रथम आठ पंक्तियाँ चौपाई छंद युक्त हैं।
6. अंतिम चार पंक्तियाँ दोहा छंद युक्त हैं।
7. अवधी भाषा का सुंदर प्रयोग है।
8. राम का अलौकिक एवं दिव्य रूप अंकित किया गया है।

**2. चौ.– भ्रमत मोहि ब्रह्माण्ड अनेका। बीते मनहुँ कल्प सत एका।।**
**फिरत फिरत निज आश्रम आयउँ। तहँ पुनि हहि कछु काल गवाँयउँ।।**
**निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायउँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ।**
**देखऊँ जन्म महोत्सव जाई। जेहि विधि प्रथम कहा मैं गाई।।**
**राम उदर देखउँ जग नाना। देखत बनइ न जाइ बखाना।।**
**तहँ पुनि देखउँ राम सुजाना। माया पति कृपाल भगवाना।।**
**करउँ विचार बहोरि बहोरि। मोह कलिल व्यापित मति मोरी।।**
**उमय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह विसेषा।।**
**दो.– देखि कृपाउ विकल मोहि विहँसे तब रघुबीर।**
**विहँसतहीं मुख बाहेर आयउँ सुनु मतिधीर।।**
**सोई लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम।**
**कोटि भाँति समुझावउँ मनु न लहइ विश्राम।।**

**शब्दार्थ– भ्रमत** = भ्रमण करते हुए, भटकते-भटकते। **मोहि** = मुझे। **मनहुँ** = मानो। **सत एका** = एक सौ। **कल्प** = ब्रह्मा का एक दिन या एक हजार युग अथवा सृष्टि की अवधि का नाम। **फिरत–फिरत** = इधर-उधर भ्रमण करता हुआ। **तहँ** = वहाँ। **पुनि** = फिर। **निज प्रभु** = अपने प्रभु राम का। **अवध** = अयोध्या। **सुनि पायउँ** = सुना। **निर्भर प्रेम** = प्रेम से भर कर। **उठि धायउँ** = उठकर दौड़ा। **विधि** = प्रकार। **जेहि** = जिस। **प्रथम कहा** = पहले 'बालकाण्ड' में कहा है। **उदर** = पेट। **नाना** = अनेक। **बखाना** = वर्णन करना। **सुजाना** = ज्ञानवान्। **माया–पति** = माया को वश में रखने वाले, माया के स्वामी। **बहोरि–बहोरि** = बार–बार।**कलिल** = कीचड़। **व्यापित** = फँसी हुई। **मति मोरी** = मेरी बुद्धि। **उमय घरी** = दो घड़ी। **मँह** = में। **भ्रमित** = भ्रम में पड़ गयी। **कृपाल** = दया करने वाले राम। **विकल** = व्याकुल। **विहँसे** = हँसे। **बाहेर आयउँ** = बाहर आ गया। **मति धीर** = धैर्य बुद्धि वाले। **लरिकाई** = बालकपन। **मो सन** = मेरे साथ। **कोटि** = करोड़ों। **मनु** = मन।

**प्रसंग**– प्रस्तुत पद्य भाग हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन सगुण काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। इस पद्य में उस समय का वर्णन किया गया है जिस समय काकभुशुण्डि अपने संक्षिप्त कौए रूप में बालक राम के साथ क्रीड़ाएँ करके प्रसन्न हो रहा था। काकभुशुण्डि राम के पेट में प्रवेश करके वहाँ के दृश्य (विराट लोक) को देखकर आश्चर्यचकित होता है और कहता है–

**व्याख्या**– काकभुशुण्डि अपने जन्म जन्मांतरों की कथा सुनाते हुए पक्षीराज गरुड़ से कहते हैं कि मुझे राम के पेट में स्थित अनेक ब्रह्माण्डों में विचरण करते-करते मानो एक सौ कल्प का समय बीत गया अर्थात् बहुत समय हो गया। इस तरह से भ्रमण करता

हुआ मैं अपने आश्रय में आया और वहाँ रहकर कुछ समय व्यतीत किया। इसके पश्चात् मैंने अपने प्रभु राम के जन्म के विषय में सुना कि उनका जन्म अयोध्या नगरी में हुआ है। तब मैं प्रेम के वशीभूत होकर, अत्यन्त हर्ष एवं खुशी के साथ अयोध्या के लिए दौड़ पड़ा। वहाँ पहुँचकर मैंने राम का जन्म महोत्सव देखा। उस जन्मोत्सव की शोभा का वर्णन मैंने पहले बालकाण्ड में गा-गाकर किया है। राम के पेट में मैंने अनेक लोक देखे थे जिनको केवल देखा तो जा सकता है, परन्तु वर्णन करना कठिन प्रतीत होता है। वहाँ पर मैंने ज्ञानवान् राम को देखा जो माया का स्वामी, कृपालु एवं भगवान थे। उस समय मैंने अनुभव किया कि मेरी बुद्धि मोहरूपी कीचड़ में फँसी हुई है अर्थात् मोह के कारण मेरी बुद्धि कुछ निर्णय ही नहीं कर पा रही थी। ये सभी दृश्य मैंने दो घड़ी (थोड़े से समय) में ही देख लिए थे। मेरा मन मोह के वशीभूत था इसलिए मैं भ्रम में पड़ गया था।

जब कृपालु राम ने मेरी ओर देखा कि मैं बड़ा व्याकुल हूँ, उस समय वे हँसने लगे। हे धीर बुद्धि गरुड़ ! जैसे ही श्रीराम हँसे तभी मैं उनके मुख से बाहर आ गया। मेरे बाहर आने के बाद वे पुनः मेरे साथ बाल क्रीड़ाएँ करने लगे अर्थात पुन वे मुझसे बालसुलभ चेष्टाएँ करने लगे। तब मैंने अपने मन को करोड़ो प्रकार से समझाया। परन्तु इतना होने पर भी मेरे मन को शांति प्राप्त न हो सकी। अर्थात् मेरा मन विचलित एवं व्याकुल ही रहा।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. प्रभु राम की महिमा का गुणगान किया गया है।
2. काकभुशुण्डि ने प्रभु राम के बालपन की लीलाओं का आँखों देखा वर्णन प्रस्तुत किया है।
3. राम के विराट रूप का वर्णन हुआ है।
4. तुलसी की भक्ति भावना राम के प्रति दिखाई पड़ी है।
5. **कल्प**— ब्रह्मा का एक दिन या एक हजार युग अंथवा सृष्टि की अवधि का नाम है।
6. **अलंकार**— उत्प्रेक्षा — बीते मनहुँ कल्प सत एका। पुनरुक्ति — फिरत-फिरत, बहोरि-बहोरि।
   रूपक — मोह-कलिल। विभावना — कोटि भांति ..... विश्राम।
7. प्रथम आठ पंक्तियों में चौपाई छंद हैं। जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं।
8. अंतिम पंक्तियों में दोहा छंद है।
9. अवधी भाषा का प्राँजल रूप प्रयुक्त हुआ है।

**3. चौ.— देखि चरित यह सो प्रभुताई। तमुझतं देह दसा बिसराई।।**
**धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्रहि.त्रहि आरत जन त्रता।।**
**प्रेमाकुल प्रभु मोहि विलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी।।**
**कर सरेाज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीनदयाल सकल दुख हरेऊ।।**
**कीन्ह राम मोहि विगत विमोहा। सेवक सुखद कृपा सन्दोहा।।**
**प्रभुता प्रथम विचारि विचारी। मन महँ होइ हरष अति भारी।।**
**भगत वछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति विसेषी।।**
**सजल नयन पुलकित कर जोरी। कीन्हिउँ बहु विधि विनय बहोरी।।**
**दो.— सुनि सप्रेम मय बानी देखि दीन निज दास।**
**वचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास।।**
**काकभुशुण्डि मागु वर अति प्रसन्न मोहि जानि।**
**अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल सुख खानि।।**

**शब्दार्थ**— **चरित** = आचरण। **प्रभुताई** = प्रभुता, विराट्रूपता। **देह दशा विसराई** = शरीर की सुध भूल गय। **धरनि परेउँ** = पृथ्वी पर गिर पड़े। **आव न बाता** = वचन नहीं निकले। **त्राहि** = रक्षा करो। **आरत जन** = दुखी जनों के। **त्राता** = रक्षक। **प्रेमाकुल** = प्रेम से व्याकुल। **विलोकी** = देखा। **कर–सरोज** = हाथ रूपी कमल। **ममसिर धरउँ** = मेरे सिर पर रखा। **हरेऊ** = हरण कर लिया, दूर किया। **विगत विमोह** = मोह रहित। **कृपा–संदोहा** = कृपा के समूह के करने वाले। **मन महँ** = मन में। **भगत बछलता** = भक्त का वात्सल्य (प्रेम)। **मम उर** = मेरे हृदय में। **सजल नयन** = नेत्रों में आँसू। **पुलकित** = रोमांचित। **कर जारी** = हाथ जोड़े। **बहोरी** = बहुत। **मम वानी** = मेरे वचन। **रमा निवास** = राम। **मोहि** = मुझे। **अनिमादिक** = अणिमा आदि। **अपर** = और। **मोच्छ** = मोक्ष। **खानि** = खजाना।

**प्रसंग**— प्रस्तुत पद्य भाग हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन सगुण काव्यधारा के प्रति-निधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित उनके प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है।

काकभुशुण्डि राम के बालरूप में रहस्यमयी बाल-लीलाओं को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं, उनकी बुद्धि चकित एवं व्याकुल हो जाती है। वे राम की विचित्रता को समझ नहीं पाते हैं—

**व्याख्या**— प्रभु राम के विचित्र आचरण एवं उनकी विराट प्रभुता की सत्ता को देखकर भी काकभुशुण्डि समझ नहीं पाते हैं कि उनकी शैशव-लीला कैसी है ? अतः वे अपने शरीर की सुध खो बैठे, अर्थात् स्वयं को भूल गए और पुकारने लगे—हे दुःखीजनों की रक्षा करने वाले भगवान राम ! मेरी रक्षा करो। रक्षा करो। यह कहते हुए वे पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके मुख से एक भी शब्द नहीं निकला। इसके पश्चात् जब राम ने मुझे प्रेम से व्याकुल देखा तब अपनी माया के प्रभाव को रोक लिया जिससे मेरी व्याकुलता समाप्त हो गई। तब मैंने भगवान राम के कमल के समान सुंदर एवं कोमल चरणों पर अपने मस्तक को रखकर उनसे क्षमायाचना की। दीनों के सहायक, उनकी रक्षा करने वालो प्रभु श्रीराम ने मेरे समस्त दुःखों को दूर कर दिया। जैसे ही उन्होंने मुझे सुख प्रदान किया वैसे ही मैंने उनकी पूर्व स्मृति अर्थात् जो मैंने उनके पेट में रहकर अनुभव किया था उस सुखद स्मृति को स्मरण करके सुख उठाया। भगवान राम की अपने भक्तों के प्रति भक्त वत्सलता देखकर मेरे हृदय में उनके प्रति अपार प्रेम उत्पन्न हुआ। जिससे मेरी आँखों में खुशी के आँसू भर आए। मेरा शरीर रोमांचित हो उठा। मैंने अपने दोनों हाथ जोड़कर अनेक प्रकार से उनकी विनती की।

काकभुशुण्डि कहते हैं कि मेरी प्रेमभरी वाणी सुनकर और अपने सेवक (दास) को दीन देखकर श्रीपति रामचंद्र जी सबको सुख प्रदान करने वाले गंभीर एवं मधुर स्वर में बोले— हे काकभुशुण्डि ! मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे जो भी चाहो वर माँग लो। जिसमें चाहे अणिमा, आदि सिद्धियों की, ऋद्धियों को तथा सभी सुखों के खजाने मोक्ष को भी माँग लीजिए।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. *भगवान राम का अद्भुत रूप अंकित किया गया है। ऐसे रूप को देखकर सामान्य जीव भी संशयग्रस्त हो जाते हैं।* राम ने एक बार अपनी माता कौशल्या को भी अपने ब्रह्म रूप के दर्शन कराए थे। 'बालकाण्ड' में राम के ब्रह्म रूप को देखकर उससे विमोहित माता कौशल्या की दशा का वर्णन तुलसी ने इस प्रकार किया है—

   "तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मुँद चरनन सिर नावा।।"

   यहाँ तुलसी ने यह भी स्पष्ट किया है कि माया की शक्ति से जीव को मुक्त कराने का कार्य भगवान राम के हाथ में है।
2. काकभुशुण्डि अपनी पूर्व कहानी सुनाता है जिसमें राम ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया था।
3. भक्ति भावना का वर्णन है।
4. 'देह दशा विसराई' मुहावरे का उचित प्रयोग किया गया है।
5. **अलंकार**— पुनरुक्ति प्रकाश — त्राहि-त्राहि, विचारि-विचारि। रूपक — कर-सरोज। सुख-खानि।
6. *पद्य भाग अवधी भाषा के प्राँजल रूप से बहुत सुंदर बन गया है।*
7. चौपाई छंद प्रथम आठ पंक्तियों में हैं।
8. दोहा छंद अंतिम पंक्तियों में हैं।

**4. चौ.— ग्यान विवेक बिरति विग्याना। मुनि दुर्लभ गुन जे जग जाना।।**
**आजु देउँ सब संसय नाहीं। माँगु जो तोहि भाव मन माहीं।।**
**सुन प्रभु वचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ।।**
**प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही।।**
**भगति हीन गुन तब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे।।**
**भजन हीन सुख कवने काजा। अस विचारि बोलेउँ खगराजा।।**
**जौं प्रभु होइ प्रसन्न वर देहू। मो पर करहू कृपा अरु नेहू।।**
**मन भावत बर माँगउँ स्वामी। तुम्ह उदार उर अन्तरजामी।।**
**दो.— अविरल भगति विसुद्ध तब श्रुति पुरान जो गाव।**
**जेहि खोजज जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव।।**
**भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपासिंधु सुख धाम।।**
**सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम।।**

**शब्दार्थ**– **विरति** = वैराग्य। **विज्ञान** = विशेष ज्ञान की धारा। **देउँ** = प्रदान करूँगा। **मनमाही** = मन में। **अनुरागेउँ** = अनुराग हो गया। **लागेउँ** = लगा। **कह देन** = देने को कहा। **सही** = सत्य है। **देन न** = नहीं देने को। **लवन** = नमक। **बिंजन** = व्यञ्जन, खाद्य पदार्थ। **कवने काजा** = किस काम के ? व्यर्थ हैं। **खगराजा** = पक्षियों के राजा ! गरुड़। **वर देहू** = वरदान दें। **अरु** = और। **नेहू** = स्नेह। **मन भावत** = जो मन को अच्छा लगेगा। **उर** = हृदय। **अन्तरजामी** = अन्तरंग की बात के ज्ञाता। **अविरल** = निरन्तर, नित्य। **विशुद्ध** = निष्काम। **श्रुति** = शास्त्र। **गाव** = गाते हैं। **जोगीश** = योगीश्वर। **प्रसाद** = कृपा। **कोउ पाव** = को ही प्राप्त करता है। **कल्पतरु** = कल्प वृक्ष, मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला वृक्ष। **प्रनत** = नमन करने वाले शरणागत। **सुख धाम** = सुख के घर। **सोइ** = वह। **निज** = अपनी। **मोहि** = मुझ। **दया करि** = कृपा करके।

**प्रसंग**– प्रस्तुत पद्य भाग हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में सगुण काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। इसमें बताया गया है कि काकभुशुण्डि के विचारों को सुनकर भगवान राम खुश हो जाते हैं और उसे वर माँगने को कहते हैं। राम ने वरदान में ऋद्धियों, सिद्धियों यहाँ तक मुक्ति तक को भी माँगने के लिए कहा। राम उसे इच्छानुसार वरदान देने के लिए तत्पर हो जाते हैं। साथ ही श्री राम उससे (काकभुशुण्डि) कहते हैं

**व्याख्या**– हे काकभुशुण्डि ! 'ज्ञान, विवेक, वैराग्य, विज्ञान और वे अनेक गुण जो संसार में मुनियों के लिए भी दुर्लभ हैं, ये सब मैं तुझे आज दे दूँगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। इस कारण तुझे जो भी पसंद हो मुझसे माँग लो।' प्रभु के इस प्रकार के प्रेमपूर्वक वचनों को सुनकर काकभुशुण्डि का मन आनंद एवं प्रसन्नता से भर गया। तब वह अपने मन में यह अनुमान करने लगा यह सत्य है कि प्रभु राम ने मुझे सभी सुख प्रदान करने वाली वस्तुएँ देने को कहा है, परन्तु अपनी भक्ति को देने के लिए नहीं कहा। काकभुशुण्डि सोचने लगा कि भक्ति के बिना सभी गुण और सुख उसी प्रकार नीरस एवं फीके हैं जैसे नमक के बिना अनेक प्रकार के भोजन या खाद्य पदार्थ। भगवान की भक्ति के बिना सुखों का कोई महत्व नहीं होता, वे किसी भी काम के नहीं हो सकते। अर्थात् वे निरर्थक होते हैं। हे पक्षिराज, यही सोचकर अर्थात् अच्छी प्रकार विचार करके मैंने प्रभु श्री राम से कहा – हे भगवन् ! यदि आप मुझ पर स्नेह एवं कृपा दृष्टि रखते हैं और आप मुझ पर प्रसन्न होकर मुझे वरदान देना चाहते हैं तो हे स्वामी, मैं अपना मन चाहा वरदान माँगता हूँ। आप अत्यन्त उदार हैं और अंतर्यामी हैं। कहने का भाव है कि अब मेरे हृदय की बात भी आपसे छिपी नहीं है।

हे प्रभु ! आपकी जिस प्रगाढ़, अचल एवं विशुद्ध अर्थात् निष्काम भक्ति का गायन वेद एवं पुराण भी किया करते हैं तथा जिस भक्ति की खोज योगी, महात्मा तथा मुनिजन आदि निरन्तर करते रहते हैं परन्तु उसे प्राप्त नहीं कर पाते, शायद कोई विरला ही आपकी कृपा दृष्टि के कारण उसे प्राप्त कर पाने में सफल हो पाता है। हे भक्तों को मनोवांछित फल प्रदान करने वाले कल्पवृक्ष हे शरणागतों के हितरक्षक तथा हे कृपा के सागर एवं सुखों के धाम प्रभु ! आप मुझ पर दया करते हुए मुझे अपनी वही भक्ति प्रदान करने की कृपा करें।

**काव्य-सौंदर्य**–

1. कवि तुलसीदास ने काकभुशुण्डि के माध्यम से भक्ति को ज्ञान, वैराग्य और विवेक आदि सभी से ऊँचा ठहराकर भक्ति के महत्व को प्रतिपादित किया है।
2. 'कल्पतरु' स्वर्ग का वृक्ष है। ऐसा माना जाता है कि यह वृक्ष सबकी मनोकामनापूर्ण करता है।
3. प्रस्तुत पद में वर्णित भक्ति भावना के महत्व को तुलसीदास ने उत्तरकाण्ड में अन्यत्र भी लिखा है–
   "जो परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदय दृढ़ गहहू।।
   सुलभ सुखद मारग यह भाई। भक्ति मोरि पुरान श्रुतिभाई।।"
4. 'भक्तिहीन गुण सब सुख ऐसे।' में दृष्टान्त अलंकार है।
5. 'भगत्-कल्पतरु' में उपमा अलंकार है।
6. 'कृपा सिंधु', 'सुख धाम' में रूपक अलंकार है।
7. अवधी भाषा का सुंदर प्रयोग है।
8. प्रथम आठ पंक्तियों में चौपाई छन्द है। शेष पंक्तियों में दोहा छंद है।

**5. चौ.– एवमस्तु कहि रघुकुलनायक। बोले वचन परम सुखदायक।**
**सुनु वायस तैं सहज सयाना। काहे न माँगसि अस वरदाना।।**
**सब सुख खानि भगति तैं मागी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी।।**

**जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं। जे जप जोग अनल तन दहहीं।।**
**रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। मागेहु भगति मोहि अति भाई।।**
**सुनु विहंग प्रसाद अब मोरें। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरें।।**
**भगति ग्यान विग्यान विरागा। जोग चरित्र रहस्य विभागा।।**
**जानव तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा।।**
**दो.— माया संभव भ्रम सब अब न व्यापिहहिं तोहि।**
**जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि।।**
**मोहि भगत प्रिय संतत अस विचारि सुनु काग।**
**कायँ वचन मन मन पद करेसु अचल अनुराग।।**

**शब्दार्थ**— **एवमस्तु** = ऐसा ही हो। **रघुकुलनायक** = रामचन्द्र। **सुखदायक** = सुख देने वाले। **वायस** = कौआ, काकभुशुण्डि। **सयाना** = समझदार, ज्ञानी। **काहे न** = क्यों नहीं। **माँगसि** = माँगते हो। **अस** = ऐसा। **कोउ** = कोई। **तोहि सम** = तुम्हारे समान। **बड़भागी** = भाग्यशाली। **कोटि जतन** = करोड़ों प्रयत्न। **अनल** = अग्नि। **तन दहहीं** = शरीर जलाते हैं। **मोहि** = मुझसे। **रीझेउँ** = प्रसन्न हूँ। **विहंग** = पक्षी, काकभुशुण्डि। **प्रसाद** = कृपा। **बसिहहिं** = रहेंगे। **उर** = हृदय। **विरागा** = वैराग्य। **चरित्र** = आचरण, लीला। **विभागा** = विभाग, खण्ड। **जानव** = जानोगे। **मम** = मेरे। **खेदा** = कष्ट। **संभव** = उत्पन्न। **व्यापिहहिं** = व्याप्त होंगे। **जानेसु** = जानो। **अनादि** = आदि रहित। **अज** = जन्म रहित। **गुनाकर** = गुण की खान। **काग** = कौआ, काकभुशुण्डि।

**प्रसंग**— प्रस्तुत खण्ड रामभक्ति शाखा के प्रमुखतम भक्त कविवर 'तुलसीदास' द्वारा प्रणीत भारतीय संस्कृति और धर्म के लोकमान्य महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। प्रभु श्री राम द्वारा प्रसन्न होने पर काकभुशुण्डि ने उनसे वरदान में एकमात्र निष्काम भक्ति की याचना की थी, क्योंकि इसके समक्ष संसार के समस्त सुख फीके हैं, तुच्छ हैं। काकभुशुण्डि की इस प्रकार की याचना करने पर प्रभु श्री राम कहते हैं—

**व्याख्या**— हे काकभुशुण्डि ! 'ऐसा ही हो' अर्थात् तुम्हें मेरी भक्ति प्राप्त हो। इस प्रकार रघुकुल के शिरोमणि स्वामी राम ने ऐसे वचन कहे और अत्यन्त सुख प्रदान करने वाली वाणी से कहने लगे — हे काकभुशुण्डि, तुम सुनो ! तुम स्वभाव से अत्यन्त चतुर हो, अतः ऐसा उत्तम वरदान भला तुम क्यों न माँगते। अर्थात् तुम बहुत समझदार हो और इसलिए ही तुमने भक्ति का वरदान माँगा है। तुमने सब सुखों की खान के रूप में भक्ति का वरदान माँगा है। ऐसा करने पर संसार में तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई भी प्राणी भाग्यशाली नहीं है। जिस भक्ति को प्राप्त करने के लिए मुनिजन करोड़ों प्रयत्न करते हैं, जप करते हैं, तप करते हैं, अग्नि में शरीर को संतप्त करते हैं, फिर भी भक्ति को प्राप्त नहीं कर पाते। तुमने उसी भक्ति को माँगा है। मैं तुम्हारी इस चतुराई से बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारा वरदान के रूप में मेरी भक्ति माँगना मुझे अत्यन्त प्रिय लगा, अतः हे पक्षिवर सुनो ! मेरी कृपा दृष्टि के प्रभाव के कारण अब सभी सुंदर गुण तुम्हारे हृदय में निवास करेंगे। भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, योग तथा साधना आदि रहस्य युक्त क्षेत्रों के जितने भी चरित्र हैं इन सभी के भेद को तुम मेरी कृपा से सहज ही जान जाओगे। इनका ज्ञान प्राप्त करने के लिए तुम्हें साधना आदि का कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा।

माया से उत्पन्न होने वाले किसी प्रकार के भ्रम तुम्हें कभी भी नहीं होंगे और तुम मुझे आदि रहित, जन्म न लेने वाला, गुणों से रहित तथा गुणों की खान ब्रह्मा के रूप में जानोगे। हे काकभुशुण्डि ! मेरी बात सुनो, मुझे मेरे भक्त सदा ही अत्यन्त प्रिय रहे हैं यह विचार करके ही तुम मन से, वचन से व शरीर से मेरे चरणों में अटल प्रेम रखना।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. यहाँ महाकवि ने अपने आराध्य देव राम की कृपा को ही सर्वोपरि माना है जिसके प्रभाव से अत्यन्त दुर्लभ वस्तु भी सहज ही प्राप्त हो जाती है।
2. प्रस्तुत पद्य में श्री राम कौए (काकभुशुण्डि) की चतुराई का बखान करते हैं, जिससे कौए ने भगवान से उनकी भक्ति माँगी है।
3. 'काहे न माँगसि अस वरदाना' में वक्रोक्ति अलंकार है।
4. 'सुखदानि', 'गुणकार' में रूपक अलंकार है।

5. 'अगुन गुणाकार' में विरोधाभास अलंकार है।
6. तत्सम शब्दों का समावेश होने पर अवधी भाषा का सुंदर प्रयोग है।
7. चौपाई छंद प्रथम आठ पंक्तियों में हैं, शेष चार पंक्तियों में दोहा छंद विद्यमान हैं।

**6. चौ.— अब सुनु परम विमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानि।।**
**निज सिद्धांत सुनावउँ तोही। सुनु मन धरु सब तजि भुज मोही।।**
**मम माया संभव संसारा। जीव चराचर विविध प्रकारा।।**
**सब मम प्रिय सब सम उपजाए। सब ते अधिक मनुज मोहि भाए।।**
**तिन्ह महँ द्विज, द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन्ह महुँ निगम धरम अनुधारी।।**
**तिन्ह महँ प्रिय विरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानिहु ते अति प्रिय विग्यानी।।**
**तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि दूसरि न आसा।।**
**पुनि पुनि सत्य कहउँ तोहि पाहीं। मोहि सेवक सन प्रिय कोउ नाहीं।।**
**भगति होन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई।।**
**भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी।।**
**दो.— सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहिन नाग।**
**श्रुति पुरान कह नीति असि सावधान सुनु काग।।**

**शब्दार्थ**— **परम** = अत्यन्त। **विमल** = निर्मल। **मम** = मेरी। **सुगम** = सहज बोधगम्य। **निगमादि** = वेद शास्त्र आदि। **बखानी** = कही है। **तजि** = छोड़कर। **भजु** = भक्ति करता है। **संभव** = उत्पन्न। **चराचर** = चर और अचर जीव। **मनुज** = मानव। **द्विज** = ब्राह्मण। **श्रुतिधारी** = शास्त्रों के ज्ञाता। **तिन्ह महँ** = उनमें। **विरक्त** = वैरागी। **विग्यानी** = विज्ञानी। **पुनि** = फिर। **मोरि** = मेरी। **पुनि–पुनि** = फिर-फिर। **सम** = समान। **बिरंचि** = ब्रह्मा। **किन होई** = क्यों न हो। **सब जीवहु** = सभी जीवों में। **सोई** = वह। **भक्तिवंत** = भक्ति वाला। **नीचउ** = तुच्छ, नीच। **असि** = यह। **सुचि** = पवित्र। **सुशील** = सदाचारी। **सुमति** = अच्छी बुद्धि वाला। **श्रुति** = शास्त्र, वेद। **असि** = यह। **काग** = काकभुशुण्डि।

**प्रसंग**— व्याख्या हेतु प्रस्तुत पद्य खण्ड रामभक्ति शाखा के भक्तिकालीन लोकप्रिय कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित भारतीय धर्म और संस्कृति के प्रतिष्ठापक महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। श्री राम काकभुशुण्डि से अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। उन्हें उनकी इच्छानुसार वरदान दे देते हैं। जिसमें काकभुशुण्डि ने प्रभु राम की निष्काम भक्ति माँगी है। वरदान देने के पश्चात् राम उससे कहते हैं—

**व्याख्या**— हे काक ! अब तुम मेरी अत्यन्त पवित्र, सरल, सुगम, सत्य और वेद आदि के द्वारा वर्णित निर्मल वाणी को सुनो मैं तुम्हें अपना सिद्धान्त सुनाता हूँ। जिस सिद्धान्त को मैं तुम्हें सुनाने जा रहा हूँ, उस सिद्धान्त को तुम अपने हृदय में धारण करना संसार में जितने भीविविध प्रकार के विषय हैं उनको छोड़कर केवल मेरा ही भजन करो अर्थात् मेरी ही भक्ति करो। यह समस्त संसार मेरी माया से उत्पन्न है। इस संसार में जितने भी चर (चलने वाले) और अचर (न चलने वाले) जीव हैं अर्थात् जड-जंगम हैं वे सभी मेरे द्वारा ही उत्पन्न किए गए हैं। ये संसार के सभी प्राणी मुझे अत्यन्त प्रिय हैं तथापि इन सभी चर, अचर जीवों में मनुष्य ही मुझे सर्वाधिक प्रिय हैं। मनुष्यों में भी ब्राह्मण, ब्राह्मणों में भी वेदों को जानने वाले अर्थात् वेदों का अध्यन करने वाले अर्थात् वेदज्ञ वेदज्ञों में भी वे वेदज्ञ ब्राह्मण प्रिय हैं, जो शास्त्रों (वेदों के) अनुसार धर्म का आचरण करते हैं। उन धर्मात्मा ब्राह्मणों में भी वे प्रिय हैं जो वैरागी हैं और ज्ञानी हैं। इन वैरागी ज्ञानियों में भी वे प्रिय हैं जो विज्ञानी अर्थात् विशेष ज्ञान रखते हैं या ज्ञान के रहस्य को समझते हैं। उन विज्ञानी ब्राह्मणों में भी वे प्रिय हैं जो मेरे दास हैं अर्थात् मेरी भक्ति करते हैं। जिन्हें मेरा ही सहारा है और किसी अन्य से उन्हें कोई सहारा या आश्रय नहीं है। हे काकभुशुण्डि ! मैं तुम्हें बार-बार समझाकर सत्य वचन से अवगत कराता हूँ कि मुझे अपने सेवक के समान कोई भी प्रिय नहीं है।' अर्थात् जो मेरी भक्ति के कारण मेरे सेवक हैं वे मुझे प्रिय हैं। यदि किसी को मेरी भक्ति प्राप्त नहीं है तो वह चाहे ब्रह्मा ही क्यों न हो ? वह भी मुझे सामान्य जीवों के समान लगता है। दूसरी तरफ, यदि कोई भक्ति करने वाला जीव है वह भले ही नीच हो, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है— यह मेरी वाणी है अर्थात् सत्य वचन है। जो सेवक पवित्र मन वाला, सदआचरण करने वाला तथा सदबुद्धि वाला है, वह किसे प्रिय नहीं लगेगा ? अर्थात् सभी को प्रिय होगा। वेद-शास्त्र भी इसी प्रकार की नीति कहते हैं। अतः हे काकभुशुण्डि ! यह बात तुम सावधान होकर सुनो।

**काव्य-सौंदर्य–**

1. 'मानसकार' ने ज्ञानी, मुनियों की भाँति संसार अथवा सांसारिक प्राणियों को व्यर्थ नहीं कहा, अपितु वे तो मनुष्य को श्रीराम का सर्वाधिक प्रिय प्राणी बताकर उनमें आशा का संचार करने के पक्षपाती हैं। कविवर पंत ने भी कहा है–

   **"सुंदर है विहग, सुमन सुंदर, मानव तुम सबसे सुन्दरतम।"**

2. 'सब तजि भजि मोहि' के समान गीता के अठारहवें अध्याय में भगवान श्री कृष्ण भी कहते हैं–

   **"सर्व धर्मानि परियज्य मामेकंशरणं ब्रज।"**

3. भक्ति भावना की प्रधानता है।
4. **अलंकार** – पुनरुक्ति प्रकाश – 'पुनि-पुनि'
   वक्रोक्ति – 'प्रिय कहु काहि न लाग'
   अनुप्रास – 'सुचि सुशील सेवक सुमति'।
5. अवधी भाषा में तत्सम शब्दों का सुंदर प्रयोग है।
6. प्रथम आठ पंक्तियों में चौपाई छंद है शेष में दोहा छंद है।

7. **चौ.– एक पिता के विपुल कुमारा। होहिं पृथक् गुन सील अचारा।।**
   **कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता।।**
   **कोउ सर्वग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई।।**
   **कोउ पितु भगत वचन मन कर्मा। सपनेहुं जान न दूसर धर्मा।।**
   **सो सुत प्रिय हितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना।।**
   **एहि विधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते।।**
   **अखिल विस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया।।**
   **तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन वच अरु काया।।**
   **दो.– पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोई।**
   **सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोई।।**
   **सो.– सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय।**
   **अस विचारि भजु मोहि परिहर आस भरोस सब।।**

**शब्दार्थ–** **विपुल** = अनेक। **कुमारा** = पुत्र। **पृथक्** = अलग-अलग। **सील** = स्वभाव। **अचारा** = आचरण। **कोउ** = कोई। **तापस** = तपस्वी। **ग्याता** = ज्ञानवान। **सूर** = वीर। **दाता** = ज्ञानी। **सर्वग्य** = सभी कुछ ज्ञाता। **प्रीति सम** = समान स्नेह। **कर्मा** = कर्म से। **जान न** = नहीं जानता। **दूसर धर्मा** = अन्य धर्म। **हितु** = हितकारी। **अयाना** = अज्ञानी। **जेते** = जितने। **त्रिजग** = तिर्यञ्च, पशु-पक्षी। **समेते** = सहित। **अखिल** = सम्पूर्ण। **मोर उपाया** = मेरे द्वारा उत्पन्न किया गया। **दाया** = कृपा। **तिन्ह महँ** = उनमें। **परिहर** = छोड़कर। **अरु** = और। **काया** = शरीर। **भज** = भजता है। **तजि** = छोड़कर। **सुचि** = पवित्र। **मम** = मेरा। **अस विचारि** = यह विचार करके। **सोइ** = वह।

**प्रसंग**–प्रस्तुत पद्य भाग रामभक्ति काव्यधारा के शिरोमणि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित भारतीय संस्कृति की स्थापना करने वाले महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। जब काकभुशुण्डि राम की भक्ति का वरदान माँग लेते हैं। तब भगवान् राम अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। वे काकभुशुण्डि को भक्ति का महत्व बताते हैं और अपनी भक्ति के विषय में कहते हैं–

**व्याख्या**– श्री राम बोले कि हे काक ! जैसे एक पिता के अनेक पुत्र होते हैं पर उन सभी के गुण, स्वभाव एवं आचरण आदि अलग-अलग होते हैं अर्थात् उनके गुणों, स्वभाव एवं आचरण आदि में पर्याप्त भिन्नता होती है। इनमें कोई पंडित होता है, तो कोई तपस्वी, कोई ज्ञानवान् होता है तो कोई धनी और इसी प्रकार कोई शूरवीर होता है तो कोई दानवीर। यही नहीं, उन पुत्रों में कोई सर्वज्ञ होता है तो कोई धर्मात्मा। इन सभी के लिए पिता के हृदय में समान प्रेम-भावना विद्यमान रहती है। इन पुत्रों में कोई पुत्र यदि ऐसा है जिसके हृदय में अपने पिता के प्रति असीम भक्ति है, जो मन, वचन एवं कर्म से पिता का अनन्य सेवक है तथा पितृ-भक्ति अथवा सेवा के अतिरिक्त स्वप्न में भी उसके लिए कोई दूसरा धर्म नहीं है। तो ऐसा पुत्र सभी प्रकार से मूर्ख होते हुए भी अपने

पिता को प्राणों के समान प्रिय होता है। ठीक इसी प्रकार से तिर्यक् अर्थात् पशु-पक्षी, देवगण, मनुष्य एवं असुरों सहित चराचर अर्थात् जड़-चेतन जीव हैं। कहने का भाव है कि इन सभी जड़-चेतन जीवों से युक्त संसार में जो मेरी ही सृष्टि का परिणाम है, सब पर मेरी समान दया है, अर्थात् सृष्टि के सभी जीव मेरी समान कृपा के अधिकारी हैं, तथापि इन सबमें भी जो मद एवं माया का परित्याग करके मनसा, वाचा एवं कर्मणा से मेरा ही भजन करता है मेरा वह भक्त मुझे सर्वाधिक प्रिय जान पड़ता है।

श्री राम बोले कि मेरा भक्त चाहे पुरुष हो, चाहे नपुंसक, चाहे वह स्त्री हो, चाहे चर-अचर अन्य कोई जीव छल-कपट के आचरण का परित्याग करके निश्छल भाव से जो भी मेरी आराधना करता है वही मुझे परम् प्रिय है। हे काक ! मैं तुमसे सत्य ही कहता हूँ कि पवित्र अर्थात् अनन्य एवं निष्काम भावना से युक्त सेवक मुझे प्राणों से अधिक प्रिय हैं अतः मन में ऐसा विचार कर तथा अन्य सभी की आशा तथा भरोसे को छोड़कर मेरा ही भजन कर।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. भक्ति की महत्ता प्रतिपादित की गई है। पिता के पुत्रों का उदाहरण प्रस्तुत करने में उदाहरण अलकार का प्रयाग भी यहाँ किया गया है।
2. तुलसी को नारी निदंक कहते फिरने वालों के लिए ये पंक्तियाँ विशेष रूप से दर्शनीय हैं। कवि ने यहाँ अन्य जीवा के साथ नारी को भी महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है तथा घोषणा की है कि भगवान नारी की भक्ति को भी अन्य जीवों की भक्ति के समान अत्यन्त प्रेम-पूर्वक स्वीकार करते हैं।
3. 'सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना' में उपमा अलंकार है।
4. तत्सम शब्दावली के साथ अवधी भाषा का प्रयोग किया गया है।
5. प्रथम आठ पंक्तियों में चौपाई छंद है जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं।
6. आठ पंक्तियों के बाद की दो पंक्तियों में दोहा छंद है जिसके विषम चरणों में 13-13 मात्राएँ तथा समचरणों में 11-11 मात्राएँ होती हैं।
7. अंतिम दो पंक्तियों में सोरठा छंद है, जिसके प्रत्येक विषमचरण में 11 मात्राएँ व सम- चरण में 13 मात्राएँ होती है सोरठा दोहा छंद के विपरीत होता है।

**8.** **चौ.— कबहुँ काल न व्यापिहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही।।**
**प्रभु वचनामृत सुनि न अघाऊँ। तनु पुलकित मन अति हरषाऊँ।।**
**सो सुख जानइ मन अरु काना। नहिं रसना पहिं जाइ बखाना।।**
**प्रभु सोभा सुख जानहि नयना। कहि किमि सकहिं तिन्हहि नहिं बयाना।।**
**बहु विधि मोहि प्रबोधि सुख देई। लगे करन सिसु कौतुक तेई।।**
**सजल नयन कछु मुख करि रूखा। चितइ मातु लागि अति भूखा।।**
**देखि मातु आतुर उठि धाई। कहि मृदु वचन लिए उर लाई।।**
**गोद राखि कराव पय पाना। रघुपति चरित ललित कर गाना।।**
**दो.— जेहि सुख लागि पुरारि असुभ वेष कृति सिव सुखद।**
**अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन।।**
**सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ।।**
**ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जन सुमति।।**

**शब्दार्थ**— **कबहुँ** = कभी। **काल न व्यापिहिं** = काल प्रभाव नहीं करेगा। **सुमिरेसु** = स्मरण करो। **भजेसु** = भक्ति करा **वचनामृत** = वचन रूपी अमृत। **अघाऊँ** = तृप्त हुआ। **तनु** = शरीर। **पुलकित** = रोमांचित। **अरु काना** = और कान। **रसना** जीभ। **पहिं** = से। **जाइ बखाना** = कहा जा सकता है। **किमि** = कैसे। **बयाना** = वाणी से। **प्रबोधि** = समझा कर **कौतुक** लीला, क्रीड़ा। **तेई** = वही। **सजल** = आँसू सहित। **रूखा** = उदास। **चितइ** = देखा। **आतुर** = व्याकुल। **उर लाई** = हृदय से लगा लिया। **पय पाना** = दूध पिलाने लगी। **ललित** = मनोरम। **पुरारि** = शिवजी। **असुभवेष** = कोढ़े का रूप **संतत** = निरंतर। **मगन** = डूबे रहते हैं। **लवलेस** = थोड़ा-सा। **बारक** = एक बार। **लहेउ** = प्राप्त किया है। **नहि गनहिं** = नहीं समझते। **खगेस** = पक्षिराज, गरुड़। **सुमति** = बुद्धिमान्।

**प्रसंग**— प्रस्तुत पद्य भाग हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन सगुण काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। इसमें भगवान राम काकभुशुण्डि को भक्ति का महत्व समझाते हैं क्योंकि काक ने वरदान में राम की भक्ति को माँगा था। राम भक्ति के विषय में कहते हैं—

**व्याख्या**— श्री राम ने फिर कहा कि हे काक, मेरा स्मरण करते रहने पर तुम्हें कभी भी काल व्याप्त नहीं होगा। अतः नित्य ही मेरा स्मरण तथा आराधना करते रहना। काकभुशुण्डि गरुड़ से बोले कि प्रभु के इस अमृत के समान वचनों को सुनकर मेरा हृदय तृप्ति का अनुभव नहीं कर पा रहा था। मेरा सारा शरीर रोमांच से भर उठा तथा हृदय हर्ष से अनुरंजित हो गया। प्रभु के इन मधुर वचनों के सुख अर्थात् उनके वचनों से होने वाली सुखानुभूति को या तो मेरा मन ही जानता है या मेरे कानों ने ही उसका रस लिया है, वाणी द्वारा उस सुख की अनुभूति का वर्णन तो संभव नहीं। उस समय की शोभा को तो मेरे इन नेत्रों ने देखा है, मेरे यह नेत्र बिना वाणी के हैं अतः फिर प्रभु की उस शोभा का वर्णन भला यह किस प्रकार कर सकते हैं ? इस प्रकार से हे गरुड़ ! प्रभु मुझे विविध प्रकार से समझाकर तथा अनेक प्रकार के सुख प्रदान करके फिर उसी बाल-लीला में जा उलझे। उन्होंने बाल सुलभ चेष्टा द्वारा नयनों में जल भरकर तथा अपने मुख को कुछ रूखा-सा बनाकर अपनी माता की ओर इस प्रकार देखा जिससे माता यह समझें कि प्रभु भूखे हैं। माँ ने बालक राम को इस प्रकार व्याकुल देखा तो वे तुरन्त उठकर दौड़ पड़ीं तथा अत्यन्त कोमल वचन कहते हुए अपने हृदय से लगा लिया। वे उन्हें गोद में लेकर दूध पिलाने लगीं और प्रभु की लीलाओं का गान करने लगीं।

काकभुशुण्डि बोले हे गरुड़, जिस सुख की प्राप्ति के लिए सबको सुख प्रदान करने वाले कल्याण मूर्ति भगवान शिव ने भी अशुभ वेष (एक वृद्ध ज्योतिष शास्त्री का) धारण कर लिया था, अवधपुरी के नर-नारी उस सुख में सदैव निमग्न बने रहते थे। हे पक्षिराज ! उस सुख में लेशमात्र की अनुभूति एक बार स्वप्न में भी कर लेने पर कोई बुद्धिमान सज्जन उस सुख के समक्ष ब्रह्म के साक्षात्कार से प्राप्त होने वाले सुख को कुछ नहीं समझता।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. यहाँ काकभुशुण्डि की दशा का वर्णन पुलक एवं हर्ष आदि सात्विक भावों के माध्यम से अत्यन्त चारुता से किया गया है।
2. 'सो सुख जानइ मन ..... नहिं बयना' की भाँति तुलसी ने अन्यत्र भी कहा है—

   "गिरा अनैन, नैन बिनु वाणी।"

   एक प्रसिद्ध उर्दू शायर के शब्दों में नायक द्वारा अपनी प्रिया के रूप-लावण्य की प्रशंसा भी देखिए—

**"तुझको देखा है मेरी नज़रों से, तेरी तारीफ हो मगर कैसे ?**
**कि बने यह नज़र जुबाँ कैसे ? कि बने यह जुबाँ नज़र कैसे ?**
**न जुबाँ को दिखाई देता है, न निगाहों से बात होती है।"**

3. मानसकार द्वारा प्रभु की बाल सुलभ चेष्टाओं का वर्णन भी यहाँ अत्यन्त मोहक बन पड़ा है।
4. भगवान की लीला को देखने के लिए भगवान शिव ने एक बार एक वृद्ध ज्योतिषी का रूप धारण कर लिया था। इस संदर्भ में गीतावली की निम्न पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं—

   **"अवधुआजु अगम एक आयो। बूढ़ो बड़ों प्रमाणिक बाँझन संकर नाम सुहाहो।"**

5. 'वचनामृत' में रूपक अलंकार है।
6. 'ते नहिं गनहिं' में यमक अलंकार है तथा मुहावरे का प्रयोग है।
7. प्रथम आठ पंक्तियों में चौपाई छंद है जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं।
8. अंतिम चार पंक्तियों में दो सोरठे हैं। सोरठा छंद के प्रत्येक विषम चरण में ग्यारह मात्राएँ तथा सम चरण में तेरह मात्राएँ होती हैं।

**9.** **चौ.— मैं पुनि अवध रहेउ कछु काला। देखउँ बालविनोद रसाला।।**
**राम प्रसाद भगति वर पायउँ। प्रभु पद वंदि निजाश्रम आयउँ।।**
**तब ते मोहि न व्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया।।**
**यह सब गुप्त चरित मैं गावा। हरि मायौं जिमि मोहि नचावा।।**
**निज अनुभव सब कहउँ खगेसा। बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा।।**
**राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई।।**

**जानें बिनु न होई परतीती। बिनु परतीति होई नहिं प्रीती।।**
**प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई।।**
**सो.– बिनु गुर होई कि ग्यान, ग्यान कि होई विराग बिनु।**
**गावहिं वेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु।।**
**कोउ विश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु।।**
**चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि–पचि मरिअ।।**

**शब्दार्थ**– **पुनि** = फिर। **कछु काला** = कुछ समय। **बाल–विनोद** = बाल-लीला। **रसाला** = आनंद भरी। **राम-प्रसाद** = राम की कृपा। **वर** = वरदान। **बंदि** = नमस्कार करके। **आयउँ** = आ गये। **व्यापी माया** = माया का प्रभाव। **अपनाया** = अपना बनाया। **गुप्त** = रहस्य। **जिमि** = जैसे। **खगेसा** = पक्षीराज, गरुड़। **कलेसा** = कष्ट। **खगराई** = पक्षियों के राजा गरुड़। **जानिन जाइ** = ज्ञात नहीं होती। **परतीती** = विश्वास। **प्रीती** = प्रेम। **दिढ़ाई** = दृढ़। **खगपति** = पक्षिराज गरुड़। **चिकनाई** = चिकना पदार्थ। **कि** = कैसे ? **विराग** = वैराग्य। **लहिअ** = प्राप्त करना। **हरि** = राम। **विश्राम** = परम शान्ति। **कि पाव** = कैसे प्राप्त करें। **सहज** = स्वाभाविक। **जतन** = प्रयत्न, उपाय। **पचि–पचि मरिअ** = पूरी शक्ति लगाकर प्रयत्न करना।

**प्रसंग**– प्रस्तुत पद्य भाग रामभक्ति शाखा के भक्तिकालीन कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा प्रणीत भारतीय संस्कृति और धर्म और काव्य के महान ग्रन्थ 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। इसमें काकभुशुण्डि अपने जीवन के अनुभवों को गरुड़ से सुनाता है कि किस प्रकार उसने राम के बालरूप को देखकर उससे रामभक्ति प्राप्त की थी। राम भक्ति के आधार पर ही वह परम आनन्द को प्राप्त कर सका था।

**व्याख्या**– काकभुशुण्डि बोले कि मैं कुछ समय तक अवधपुरी में निवास करता हुआ श्री राम की रसमयी बाल-लीला को देखता रहा। प्रभु की असीम कृपा से मुझे उनकी अनन्य भक्ति का वरदान प्राप्त हुआ, इसके उपरान्त श्री राम के चरणों की वंदना करके मैं अपने आश्रय में लौट आया। मुझे याद है जब से रघुपति राम ने मुझे अपनाया अर्थात् अपना सेवक बनाया, तब से मेरे ऊपर माया का कभी भी प्रभाव नहीं हुआ। अतः मैंने यह अनुभव किया है कि भगवान की माया ने मुझे जिस प्रकार नचाया था उसका रहस्य से भरा आचरण मैंने ज्ञात कर लिया। हे खगराज ! अब मैं आपको अपने व्यक्तिगत अनुभव से अवगत कराता हूं कि बिना श्री हरि का भजन किए सांसारिक, दुःख एवं क्लेशों से मुक्ति पा सकना कठिन है। इतना ही नहीं, श्री राम की प्रभुता अर्थात् महत्व का ज्ञान भी बिना उनकी कृपा-दृष्टि के संभव नहीं। बिना श्री राम की प्रभुता का ज्ञान किए श्री राम के प्रति आस्था उत्पन्न नहीं होती और इस आस्था अर्थात् विश्वास के अभाव में प्रभु के प्रति प्रेम भावना की अनुभूति नहीं हो पाती। बिना प्रेमानुभूति किए श्री राम की भक्ति में दृढ़ता अर्थात् स्थायित्व आ पाना उसी प्रकार कठिन होता है जिस प्रकार जल के ऊपर पड़ी चिकनाई न तो स्थिरता प्राप्त कर पाती है और न स्थायित्व।

काकभुशुण्डि कहते हैं कि हे खगराज ! गुरु के बिना क्या ज्ञान की प्राप्ति संभव है ? और बिना ज्ञान प्राप्त किए क्या वैराग्य भावना उत्पन्न हो सकती है ? कहने का अभिप्राय यह है कि बिना गुरु के न तो ज्ञान पाना संभव है और न वैराग्य। वेद एवं पुराणों में भी यही गायन उपलब्ध होता है कि क्या कहीं बिना भगवद् भजन के भी सुखों की प्राप्ति हो सकती है ? हे तात ! क्या बिना स्वाभाविक संतोष के कोई शांति प्राप्त कर सकता है ? क्या करोड़ों उपाय करने पर भी बिन जल के नाव का चल पाना संभव है ?

**काव्य-सौंदर्य**–

1. यहाँ महाकवि ने भक्ति के साथ-साथ प्रेम-भावना की महत्ता का प्रतिपादन भी किया है। कबीर ने भी यही कहा था–
   **"पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय। ढाई आखर प्रेम के, पढ़े सो पंडित होय।।"**
2. यहाँ महाकवि ने भी भक्ति-युग के अन्य कवियों की भाँति, ज्ञान एवं वैराग्य पाने के लिए गुरु के आशय की महत्ता का प्रतिपादन किया है। दूसरे सोरठा में दृष्टान्त अलंकार प्रयुक्त हुआ है। मानसकार की भाँति सूर भी अपनी गोपियों से इसी दृष्टान्त का प्रयोग कराते हैं। वे भी कहती हैं कि उद्धव, तुम हमें योग और निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देकर सूखी हुई नदी की बालू में नाव चलाने का असंभव प्रयत्न कर रहे हो। जिस प्रकार बालू में नौका नहीं खेची जा सकती उसी प्रकार हमारे हृदय पर भी तुम्हारे ज्ञान का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता–
   **"सूर सिकत हठि नाव चलायो ये सरिता है सूखी।"**
3. अंतिम चार पंक्तियों में वक्रोक्ति अलंकार है।
4. तत्सम शब्दों के समावेश से अवधी भाषा का रूप निखर आया है।

5. प्रथम आठ पंक्तियों में चौपाई छंद है।
6. अंतिम चार पंक्तियों में दो सोरठे हैं।

**10.** **चौ.– बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं।।**
**राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा। थल–विहीन तरु कबहु कि जामा।।**
**बिनु विग्यान कि समता आवइ। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ।।**
**श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध की पावइ कोई।।**
**बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होई संसारा।।**
**सील की मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गोसाँई।।**
**निज सुख बिनु मन होई कि थीरा। परस कि होइ विहीन समीरा।।**
**कवनिउ सिद्धि कि बिनु विस्वासा। बिनु हरि भजन न भव भय नासा।।**
**दो.– बिनु विस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।**
**राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न की विश्रामु।।**
**सो.– अस विचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल।**
**भजहु रास रघुवीर करुनाकर सुन्दर सुखद।।**

**शब्दार्थ**– **काम** = इच्छाएँ, काम-वासनाएँ। **नसाहीं** = नष्ट होते हैं। **अछत** = सभी। **भजन** = भक्ति। **थल** = भूमि। **विहीन** = बिना। **तरु** = वृक्ष। **जामा** = उत्पन्न होना। **विग्यान** = तत्वज्ञान। **अवकास** = स्थान, जगह। **महि** = पृथ्वी। **कि** = क्या। **कर** = का। **कि मिल** = क्या मिलेगा। **बुध** = बुद्धिमान्। **जिमि** = जैसे। **थीरा** = स्थिर। **निजसुख** = आत्म-सुख। **परस** = स्पर्श। **समीरा** = वायु। **कवनिउ** = कौन सी। **भव–मय नासा** = संसार के भय का विनाश। **प्रवहिं** = पिघलना, स्नेह करना। **विश्रामु** = परम शान्ति। **मतिधीर** = बुद्धि में धैर्य धारण करने वाले। **तजि** = छोड़ दें। **कुतर्क** = व्यर्थ के तर्क। **करुनाकर** = करुणा-निधान, दया के खजाने। **सुखद** = सुख देने वाले।

**प्रसंग**– प्रस्तुत व्याखांश भक्ति काल के श्रेष्ठ कवि 'तुलसीदास' द्वारा रचित उनके प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। काकभुशुण्डि प्रतिदिन राम कथा कहता था। अतः गरुड़ के आने पर भी राम कथा में राम भक्ति के महत्व को समझाता है और काकभुशुण्डि अपने अनुभव के आधार पर कहता है–

**व्याख्या**– काकभुशुण्डि पक्षीराज गरुड़ से कहता है – संतोष के बिना कामवासनाओं का नाश नहीं होता। जब तक कामवासनाएँ रहती हैं तब तक सुख स्वप्न में भी नहीं मिलता। राम के भजन अर्थात् उनकी भक्ति के बिना कभी भी कामवासनाएँ नष्ट नहीं होती। क्या बिना भूमि के वृक्ष की उत्पत्ति कभी हो सकती है ? अर्थात् वृक्ष की उत्पत्ति के लिए भूमि आवश्यक है। क्या बिना ज्ञान के समानता का भाव आ सकता है ? अर्थात् समता या समानता के भाव के लिए तत्व ज्ञान आवश्यक है। क्या कोई आकाश के बिना अवकाश प्राप्त कर सकता है ? अर्थात् आकाश तत्व ही सभी द्रव्यों को स्थान देता है। धर्म कभी भी श्रद्धा के बिना नहीं हो सकता। जैसे कोई भी व्यक्ति गंध को भूमि तत्व के अतिरिक्त कहीं भी प्राप्त नहीं कर सकता। क्या कभी तपस्या के बिना तेज को फैलाया जा सकता है ? या जैसे संसार में रस तत्व जल के बिना संभव नहीं है। बुद्धिमानों को सेवा के बिना शील या सद् आचरण नहीं होता है जैसे तेज या अग्नि तत्व के बिना कभी भी रूप संभव नहीं है। क्या कभी आत्मा के सुख के बिना मन की चञ्चलता समाप्त होती है ? अर्थात् मन की स्थिरता आध्यात्मिक सुख में है। स्पर्श की प्राप्ति, बिना वायु तत्व के क्या कभी संभव है ? क्या कभी बिना विश्वास के किसी प्रकार के कार्य सिद्धि हुई है ? अर्थात् नहीं हुई है। राम के भजन (भक्ति के बिना संसार के भय का विनाश नहीं होता है)।

काकभुशुण्डि बोले कि बिना हृदय में विश्वास उत्पन्न किए प्रभु की भक्ति सुलभ नहीं होती, बिना भक्ति के श्री राम का हृदय द्रवित नहीं होता। अर्थात् उनकी कृपा दृष्टि प्राप्त नहीं की जा सकती और बिना उसकी कृपा के जीव को स्वप्न में भी शांति अथवा विश्राम की प्राप्ति असंभव है। अतः हे धीर बुद्धि वाले गरुड़ ! मन में ऐसा विचार कर तथा सभी कुतर्कों एवं संदेह आदि का परित्याग करके, करुणा की निधि, सुंदर तथा सदैव सुख प्रदान करने वाले श्री रघुनाथ का ही भजन कीजिए।

**काव्य-सौंदर्य**–

1. संसार में प्रत्येक वस्तु का कोई न कोई आधार अवश्य होता है, उसको पाने के लिए आधार का ज्ञान आवश्यक है।

2. तुलसी दास की भक्ति भावना प्रतिपादित हुई है।
3. समस्त पद में वक्रोक्ति अलंकार का सुंदर प्रयोग हुआ है।
4. "राम भजन ..... जामा" तथा "सील कि ..... गोसाँई।" में उदाहरण अलंकार है।
5. 'करुणाकर' में रूपक अलंकार है।
6. अवधी भाषा में तत्सम शब्दों का सुंदर प्रयोग हुआ है।
7. चौपाई छंद प्रथम आठ पंक्तियों में हैं।
8. "बिनु ..... विश्रामु" में दोहा छंद है।
9. "अस ..... सुखद" में सोरठा छंद है।

**11. चौ.– निज मति सरिस नाथ में गाई। प्रभु प्रताप महिमा खगराइ।।**
**कहेउँ न कछु करि जुगुति बिसेषी। यह सब मैं निज नयनन्हि देखी।।**
**महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा।।**
**निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं। निगम सेष सिव पार न पावहिं।।**
**तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता।।**
**तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा।।**
**रामु काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन।।**
**सत कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा।।**
**दो.– मरुत कोटि सत बिपुल बल रवि सत कोटि प्रकास।**
**ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास।।**
**काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत।**
**धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत।।**

**शब्दार्थ**– **निज मति** = अपनी बुद्धि। **सरिस** = समान। **खगराई** = पक्षीराज। **जुगुति** = युक्ति। **निज** = अपने। **नयनन्हि** = नेत्रों से। **गुण गाथा** = गुणों का वर्णन।**अमित** = अपार। **निगम** = शास्त्र, वेद आदि। **शेष** = शेषनाग। **पार न पावहि** = पूरा नहीं कर सकते। **खग** = पक्षी। **मसक** = मच्छर। **प्रजंता** = पर्यन्त। **पावहिं अन्त** = तट नहीं प्राप्त करते। **तिमि** = उसी प्रकार। **अवहागा** = अवगाहन करना। **कि** = क्या। **थाहा** = गहनता। **सत** = सौ। **कोटि** = करोड़। **सुभग** = सुन्दर। **तन** = शरीर। **अमित** = अनन्त। **अरि मर्दन** = शत्रुओं का नाशक। **सक्र** = इन्द्र। **सरिस** = समान। **विलास** = वैभव, भोग सामग्री। **अवकासा** = स्थान। **मरुत** = वायु। **विपुल बल** = विशाल शक्ति। **रवि** = सूर्य। **ससि** = चन्द्रमा। **समन** = विनाशक। **त्रास** = भय। **धूमकेतु** = पुच्छल तारा। **दुराधरष** = अत्यन्त प्रबल, बहुल शक्तिवान।

**प्रसंग**– व्याख्येय पद्यांश भारतीय संस्कृति के लोकनायक रामभक्त कविवर 'तुलसीदास' द्वारा सुप्रसिद्ध व लोकप्रिय ग्रन्थ 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। काकभुशुण्डि राम की कथा सदा कहता था। जब पक्षीराज गरुड़ वहाँ पर आए तो उन्होंने रामभक्ति पर प्रकाश डालते हुए राम के बाल्य जीवन को अभिव्यक्त किया। राम के विषय में अन्य विचार व्यक्त करते हुए काकभुशुण्डि पक्षिराज गरुड़ से कहते हैं–

**व्याख्या**– हे पक्षिराज ! मैंने जो कुछ भी वर्णन किया है वह सब अपनी बुद्धि के अनुसार ही श्री राम की महिमा एवं प्रताप का गायन किया है। मैंने यहाँ अपनी कल्पना शक्ति आदि युक्ति विशेष के माध्यम से कुछ न कह कर वही वर्णन किया है। जिसे मैंने स्वयं अपनी ही आँखों से देखा था। श्री रघुनाथ की महिमा, नाम, रूप, गुण और उनकी कथाएँ सभी अनन्त हैं, उनका कोई पार नहीं पा सकता। स्वयं श्री राम भी अनन्त एवं असीम हैं। उनकी महिमा इतनी विशाल है कि स्वयं अनेक मुनिगण भी अपनी-अपनी बुद्धि के अनुरूप गा-गाकर करते हैं। वेदादिशास्त्र (हजारों मुख वाला) शेषनाग व शिवजी भी उनका गुणगान नहीं कर सकते हे पक्षिराज गरुड़ ! आपसे लेकर अनेक छोटे-मोटे मच्छर तक आकाश में उड़ते रहते हैं, परन्तु फिर भी आकाश की सीमा का अन्त कोई नहीं पा सका। उसी प्रकार से हे तात ! श्री राम की महिमा भी असीम है, अनन्त है। क्या कभी कोई उनकी सीमा का पार पा सकता है ? श्री राम का शारीरिक सौंदर्य अरबों कामदेवों के समान है। वे अनन्त कोटि दुर्गाओं के समान शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ अर्थात् अत्यन्त शक्तिशाली हैं। वे शत् कोटि इन्द्रों के समान ऐश्वर्यवान हैं तथा उनका विस्तार करोड़ों आकाशों के समान है। कहने का अभिप्राय यह है कि अनेक आसमान भी उनमें समा सकते हैं।

श्री राम के अनन्त रूप का वर्णन करते हुए काकभुशुण्डि बोले कि वे अरबों पवनों के समान बलशाली हैं। वे अरबों सूर्यों के प्रकाश से युक्त हैं अर्थात् उनका तेज अत्यन्त प्रखर है। शीतलता में वे अरबों चंद्रमाओं के समान हैं तथा समस्त संसार के भय का नाश करने वाले हैं। अपनी कठोरता में वे अरकों कालों के समान कठोर हैं। अरबों कालों के समान ही वे दुर्गम तथा प्रचण्डता से युक्त हैं तथा अरबों धूमकेतुओं अर्थात् पुच्छल तारों के समान प्रबल अर्थात् बलशाली हैं।

**काव्य-सौंदर्य**–

1. यहाँ तुलसीदास ने अपने आराध्य देव राम के उज्ज्वल स्वरूप का प्रकाशन किया है तथा उन्हें शिव एवं शेष से ऊँचा स्थान प्रदान किया है।
2. राम के विषय में काकभुशुण्डि का कथन आँखों देखा बताया गया है।
3. 'तुम्हहिं आदि ..... चाहा' में उदहारण अलंकार है।
4. 'तात कबहु को कोउ पाव कि थाहा' में वक्रोक्ति अलंकार है।
5. 'राम काम ..... भगवंत' में अतिश्योक्ति व उत्प्रेक्षा अलंकार है।
6. 'धूमकेतु' एक पुच्छल तारा होता है जो विनाश का प्रतीक माना जाता है।
7. अवधी भाषा में तत्सम शब्दों की बहुलता है।
8. प्रथम आठ पंक्तियों में चौपाई छंद है जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं।
9. अंतिम चार पंक्तियों में दो दोहे हैं। दोहे के प्रत्येक विषम चरण में तेरह मात्राएँ होती हैं तथा प्रत्येक सम चरण में ग्यारह मात्राएँ होती हैं।

**12.** **चौ.– प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला।।**
**तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन।।**
**हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा।।**
**कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना।।**
**सादर कोटि अमित चतुराई। विधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई।।**
**विष्नु कोटि सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता।।**
**धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपँच निधाना।।**
**भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा।।**
**छं.– निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै।**
**जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै।।**
**एहि भाँति निज निज नति विलास मुनीस हरिहि बखानहीं।**
**प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं।।**
**दो.– रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ।**
**सतन्ह सन जस किछु सुनेउँ तुम्हहि सुनायउँ सोइ।।**
**सो.– भाव वस्य भगवान सुख निधान करुणा भवन।**
**तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रमन।।**

**शब्दार्थ**– **अगाध** = गहन। **समन** = यमराज। **सरिस** = समान। **कराल** = भयंकर। **अमित** = अनंत। **सम** = समान। **पावन** = पवित्र। **अखिल** = सम्पूर्ण। **अघ–पूग** = पाप समूह। **नसावन** = कष्ट करने वाले। **हिमगिरि** = हिमाचल। **अचल** = स्थिर। **सिन्धु** = समुद्र। **गंभीर** = गहरा। **कामधेनु** = इच्छा पूर्ण करने वाली गाय। **काम–दायक** = इच्छाओं को पूरी करने वाले। **विधि** = विधाता। **निपुनाई** = चतुराई। **संहर्ता** = संहार करने वाले। **धनद** = कुबेर। **प्रपंच–निधाना** = प्रपञ्च के खज़ाने। **अहीसा** = शेषनाग। **निखधि** = सीमा रहित। **निरुपम** = उपमा रहिता। **निगम** = शास्त्र। **जिमि** = जैसे। **खद्योत** = जुगनू। **रवि** = सूर्य। **मनीश** = श्रेष्ठ मुनि। **बखानहीं** = कहते हैं। **ग्राहक** = ग्रहण करने वाले। **अमित** = अनन्त। **थाह** = गहराई। **सन** = से। **किछु** = कुछ। **वस्य** = वशीभूत। **करुणा–भवन** = दया के घर। **सीता–रमन** = सीता के पति।

**प्रसंग**— प्रस्तुत पद्य खण्ड भक्तिकालीन सगुण काव्यधारा के श्रेष्ठ कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। काकभुशुण्डि ने स्वयं अनुभव किया है कि श्री राम अत्यन्त शक्तिशाली हैं एवं सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। अतः राम की महिमा का बखान करते हुए काकभुशुण्डि पक्षिराज गरुड़ से कहते हैं –

**व्याख्या**— हे खगराज ! प्रभु श्री राम अरबों पातालों के समान अगाध हैं, अथाह हैं। वे अरबों यमराजों के समान भयानक अर्थात् प्रचण्ड शक्ति के समान हैं। वे असंख्य कोटि तीर्थों के समान पवित्र हैं उनका नाम सम्पूर्ण पाप-समूह को नष्ट करने वाला है। श्री रघुनाथ करोड़ों हिमालयों के समान स्थिर चित्त वाले अर्थात् दृढ़ हैं तथा अरबों समुद्रों की भाँति गहन एवं गंभीर हैं, इतना ही नहीं वे अरबों कामधेनुओं के समान मनवांछित फल को प्रदान करने वाले भी हैं अर्थात् वे सभी प्राणियों की कामनाओं का पूर्णता प्रदान करने वाले हैं। वे करोड़ों सरस्वतियों के समान अपार बुद्धि से युक्त तथा अरबों ब्राह्माओं के समान सृष्टि रचना की कला में निपुण हैं। यही नहीं, वे इस सृष्टि का पालन करने में करोड़ों विष्णुओं के समान समर्थ तथा संहार-कार्य में अरबों रुद्रों के समान सक्षम हैं। वे अरबों कुबेरों के समान धनवान हैं, करोड़ों मायाओं के समान प्रपंच की अक्षय निधि हैं तथा अरबों शेषनागों के समान भार धारण करने वाले हैं। सम्पूर्ण जगत के ईश्वर प्रभु श्री राम की न तो कोई सीमा है और न उनकी उपमा ही किसी अन्य से दी जा सकती है।

काकभुशुण्डि गरुड़ से कहते हैं कि श्री राम उपमा रहित हैं, उनकी समता कर पाने के लिए दूसरी कोई उपमा है ही नहीं, वेदों में भी यही उल्लिखित है कि राम के समान तो केवल राम ही हैं। जिस प्रकार सूर्य को अरबों जुगनुओं के समान कहने पर वह लघुत्व को ही प्राप्त होता है अर्थात् सूर्य की निंदा ही होती है उसी प्रकार अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार मुनीश्वर श्री हरि का वर्णन किया करते हैं, पर प्रभु तो इतने कृपालु हैं कि वे इसमें भी भक्त का भाव ही देखते हैं। अतः इस थोड़े से ही वर्णन को अत्यधिक प्रेमभाव से सुनकर ही खीझ उठते हैं।

काकभुशुण्डि पुनः गरुड़ से कहते हैं कि श्री राम तो असीम गुणों के ऐसे सागर हैं जिसकी गहनता की थाह कोई नहीं पा सकता। मैंने तो आपसे वही कुछ कहा है, जो मैं संत महात्माओं से सुन पाया हूँ। सुख की राशि एवं करुणा के सागर प्रभु तो बस भाव के भूखे हैं अतः ममत्व भाव, मद एवं मान का परित्याग करके सीतापति श्री राम का ही भजन कीजिए।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. महाकवि तुलसीदास ने राम को सर्वोपरि कहकर उनकी आराधना की है।
2. मानसकार ने राम के महिमामय स्वरूप का गुणगान किया है।
3. राम की भक्ति को महत्त्व दिया गया है।
4. **अलंकार** — 'निरुपम' में परिकरांकुर अलंकार है।
   प्रपंच विधान, गुन-सागर, करुणा-भवन में रूपक अलंकार है।
   'थाह कि पावइ कोई में' वक्रोक्ति अलंकार है।
5. अवधी भाषा के प्रयोग में तत्सम शब्दों की बहुलता है।
6. प्रथम आठ पंक्तियों में चौपाई छंद है।
7. 'निरूपम .....मनहीं' में हरि गीतिका छंद हैं, जिसके प्रत्येक चरण में 28 मात्राएँ हैं।
8. 'रामु ..... सोई' में दोहा छंद है, जिसके प्रत्येक विषम चरण में 13-13 मात्राएँ तथा सम चरण में 11-11 मात्राएँ होती हैं

**13. चौ.— सुनि भुसुंडि के वचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए।।**
**नयन नीर मन अति हरषाना। श्री रघुपति प्रताप उर आना।।**
**पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि माना।।**
**पुनि पुनि काग चरन सिरु नावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा।।**
**गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई।।**
**संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता।।**
**तव सरूप गारुडि रघुनायक। मोहि जिआयउ जन सुखदायक।।**
**तव प्रसाद मम मोह नसाना। राम रहस्य अनूपम जाना।।**

**दो.— ताहि प्रसंसि बिविधि विधि सीस नाइ कर जोरि।**
**वचन विनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुड़ बहोरि।।**
**प्रभु अपने अविवेक ते बूझउँ स्वामी दोहि।**
**कृपासिंधु सादर कहुहु जानि दास निज मोहि।।**

**शब्दार्थ— खगपति** = पक्षीराज, गरुड़। **पंख फुलाए** = प्रसन्न हुए। **नयन नीर** = आँखों में खुशी के आँसू। **उर आना** = हृदय में आ गया। **पाछिल** = पूर्ववर्ती। **अनादि** = आदि रहित। **मनुज करि माना** = मानव के रूप में जाना था। **पुनि–पुंनि** =बार-बार। **सम** = समान। **भव–निधि** = संसार रूपी सागर। **बिरंचि** = ब्रह्मा। **संसय सर्प** = संदेह रूपी साँप। **ग्रसेउ** = काट लिया है। **कुतर्क** = अशुभ विचार। **ब्राता** = व्याप्त हो गये। **गारुड़ि** = सर्प का विष उतारने वाले। **जिआयउ** = जीवित कर दिया। **तव प्रसाद** = तुम्हारी कृपा। **मम** = मेरा। **नसाना** = नष्ट हो गया। **अनूपम** = अद्वितीय। **प्रसंसि** = प्रशंसा करके। **विविधविधि** = अनेक प्रकार से। **बहोरि** = फिर से। **अविवेक** = अज्ञान। **कृपासिंधु** = दया के सागर।

**प्रसंग**— प्रस्तुत व्याख्या हेतु पद्य–खण्ड भक्तिकालीन सगुण काव्यधारा के अन्तर्गत राम काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। गरुड़ जब अपने संदेह को दूर करने के लिए काकभुशुण्डि के पास गए और काक के मुख से उपदेश सुना तब गरुड़ का सारा संदेह दूर हो गया।

**व्याख्या**— रामकथा को कहने वाले काकभुशुण्डि के वचनों को सुनकर गरुड़ बहुत प्रसन्न होते हैं। अतः प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिए उन्होंने अपने पंखों को फुलाया। प्रसन्नता के कारण उनकी आँखों में आँसू भर आए। वे अपने मन में बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने भगवान राम के प्रताप को अपने हृदय में प्राप्त किया। अर्थात् वे हृदय से राम के प्रताप को समझ गए। जब उन्होंने अपने पूर्ववर्ती मोह के विषय में ज्ञात किया तो वे पछताने लगे कि राम तो अनादि ब्रह्म हैं, उनको मनुष्य कैसे समझ रखा था ? गरुड़ ने बार-बार काकभुशुण्डि के सामने सिर झुकाया और उन्हें राम के समान ही समझकर उनके प्रति प्रीति की और अधिक वृद्धि की। गुरु के बिना कोई भी इस संसार रूपी समुद्र को पार नहीं कर सकता भले ही वह ब्रह्मा या शंकर के समान अपार शक्ति सम्पन्न ही क्यों न हो। अर्थात् कल्याण के लिए गुरु का रहना अनिवार्य है। काकभुशुण्डि की इस कल्याण करने वाली बात को सुनकर गरुड़ बोले— हे तात् ! मुझे संदेह रूपी सर्प ने ग्रस लिया था।

जिस कारण मेरे अन्दर अनेक दुःख देने वाली कुतर्क रूपी लहरें व्याप्त हो गयी थीं। भाव यह है कि जैसे साँप के काटने से जहर की लहरें शरीर में फैल जाती हैं वैसे ही भगवान् के विषय में संशय होने से अनीतिपूर्ण भावनाएँ मन में भर जाती हैं। अब मैंने (गरुड़ ने) भगवान् के गारुड़ी रूपी सच्चे स्वरूप को ज्ञात कर लिया है अर्थात् अब मेरा संदेह रूपी विष उतर गया है। मानो सुख देने वाले राम ने मुझे जीवित कर दिया है। (हे काकभुशुण्डि !) तुम्हारी कृपा से मेरा मोह अब नष्ट हो गया है। मैंने राम के रहस्य को समझ लिया है। वे अद्वितीय हैं।

इस प्रकार गरुड़ काकभुशुण्डि की अनेक प्रकार से बड़ाई करने लगे और हाथ जोड़कर उनके समक्ष सिर झुका लिया तथा नम्रता भरे वचनों से प्रेम सहित कोमल भावना से भरकर इस प्रकार कहने लगे — हे स्वामी ! हे प्रभु ! मैं अपने अज्ञान से मरा हुआ हूँ तो भी आपसे पूछता हूँ। हे दया के सागर ! मुझे अपना सेवक जानकर आप मेरी शंका का समाधान करें।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. यहाँ तुलसी ने सांगरूपक के माध्यम से अपने आराध्य के साथ-साथ उसके भक्तों को भी उस जैसा ही मान प्रदान किया है। 'गुरु बिन भव निधि तरइ न कोई' कहकर एक बार फिर गुरुजनों के प्रति अपने हृदय की असीम भक्ति को वाणी प्रदान की है।
2. काकभुशुण्डि के वचन सुनकर गरुड़ ने उनके समक्ष श्रद्धा से सिर झुका दिया।
3. भक्ति भावना प्रतिपादित की गई है।
4. अलंकार — 'जानि राम समप्रेम पढ़ाया' में उपमा अलंकार है।
   'गुरु बिनु ..... बाता' में सांगरूपक अलंकार है।
5. अवधी भाषा में तत्सम शब्दों के प्रयोग से सौंदर्यवर्धन हुआ है।
6. प्रथम आठ पंक्तियों में चौपाई छंद है।
7. अंतिम चार पंक्तियों में दोहा छंद है।

**14.** चौ.– **तुम्ह सर्वग्य तग्य तम पारा। सुमति सुसील सरल आचारा।।**
**ग्यान विरति–विग्यान निवासा। रघुनायक के तुम्ह प्रिय दासा।।**
**कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहू बुझाई।।**
**राम चरित सर सुन्दर स्वामी। पायहु कहाँ कहहु नभगामी।।**
**नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं।।**
**मुधा वचन नहिं ईस्वर कहई। सोउ मोरे मन संसय अहई।।**
**अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा।।**
**अंड कटाह अमित लय कारी। कालु सदा दुरितक्रम भारी।।**
**सौ.– तुम्हहिं न व्यापत काल अति कराल कारन कवन।**
**मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि जोग बल।।**
**दो.– प्रभु तब आश्रम आएँ मोर मोह भ्रम भाग।**
**कारण कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग।।**

**शब्दार्थ– सर्वग्य** = सभी कुछ जानने वाले। **तग्य** = तत्व ज्ञानी। **तम** = अंधकार। **पारा** = पार करने वाले। **सुमति** = अच्छी बुद्धि वाले। **सुसील** = सदाचारी। **विरति** = वैराग्य। **कवन** = कौन। **देह** = शरीर। **बुझाई** = समझाकर। **सर** = सरोवर। **नभगामी** = आकाश चारी। **अस** = यह। **पाहीं** = पास से। **नास** = विनाश। **तव** = आपका। **मुधा** =असत्य। **अग–जग** = चर-अचर जीव। **काल–कलेवा** = काल द्वारा विनाश होने वाले। **अंड कटाह** = ब्रह्माण्ड। **अमित** = अनंत। **लयकारी** = विनाशकारी। **दुरतिक्रम** = अनुलंघनीय। **कराल** = भयंकर। **नहि व्यापत** = प्रभाव नहीं। **कवन** = कौन-सा। **किआनंदभरी** = क्या। **मोर** = मेरा। **भाग** = नष्ट हो गया। **अनुराग** = प्रेम।

**प्रसंग**– व्याख्या हेतु प्रस्तुत पद्य–भाग भक्तिकालीन, राम काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। गरुड़ जब राम के विषय में संदेहयुक्त होते हैं तब वे काकभुशुण्डि के पास जाते हैं, काक उनके संदेह को दूर कर देते हैं और राम के महत्व को भली-भाँति स्पष्ट कर देते हैं, उनसे संतुष्ट होकर गरुड़ काकभुशुण्डि से कहते हैं–

**व्याख्या**– हे काकभुशुण्डि ! आप तो सर्वज्ञ हैं अर्थात् सब कुछ जानने वाले हैं, परम तत्व के ज्ञाता हैं तथा मायाजनित अज्ञान से परे हैं, माया का आप पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। आप उत्तम बुद्धि वाले, सुशील तथा सरल आचरण से युक्त हैं। ज्ञान, वैराग्य और विज्ञान तीनों आपके हृदय में निवास करते हैं और इन सबसे बढ़कर बात यह है कि आप श्री रघुनाथ के प्रिय दास अर्थात् भक्त हैं। परन्तु मेरी समझ में यह नहीं आया कि आपने किस कारण यह कौए का शरीर प्राप्त किया है ? हे तात ! इस बात को मुझे पूरी तरह समझाकर कहिए। हे स्वामी ! रामचरित सुंदर मानस मानसरोवर है। हे आकाशगामी काकभुशुण्डि तुमने इसे कहाँ से प्राप्त किया ? मुझे विस्तारपूर्वक समझाकर बताइए। हे नाथ ! मैंने शिवजी से यह भी सुना है कि महाप्रलय आने पर भी आपका विनाश संभव नहीं है। मैं यह भी जानता हूँ कि भगवान शिवजी कभी भी असत्य नहीं कहते हैं। यह भी मेरे मन में संदेह हो गया है। वास्तव में हे नाथ ! संसार में चर-अचर, जीव, सर्प, मानव, देवता सभी काल द्वारा कवलित हो जाते हैं अर्थात् काल सभी का विनाश करता है। काल अनन्त ब्रह्मांडों का भी नष्ट करने वाला है। काल इतना भारी है कि उसका उल्लंघन करना कठिन है।

हे प्रभु ! यह ऐसा भयंकर काल आपको तनिक भी प्रभावित नहीं करता इसका क्या कारण है ? कृपा करके मुझसे कहें कि यह आपके ज्ञान का प्रभाव है या योग बल का ? हे प्रभु ! आपके आश्रम में प्रवेश करते ही मेरे मन का मोह एवं भ्रम समाप्त हो गया। हे नाथ ! प्रेम भाव से युक्त होकर इसका कारण भी बताने की कृपा करें।

**काव्य-सौंदर्य**–

1. यहाँ माया के वशीभूत हुए मन की संशयमयी स्थिति का वर्णन किया गया है। 'शिव कभी मिथ्यावचन नहीं कहते' के मूल में शैव और वैष्णवों में समन्वय की भावना भी दृष्टव्य है।
2. यहाँ परोक्ष रूप से जीव पर ईश्वरीय अनुकम्पा और उसकी महिमा को मुखरता प्रदान की गई है।
3. गरुड़ का आश्चर्य अभिव्यक्त हुआ है कि काकभुशुण्डि ने यह अविनाशी शरीर कैसे प्राप्त किया ?
4. भक्ति भावना प्रतिपादित की गई है।

5. 'रामचरित सर' में रूपक अलंकार है।
6. 'ज्ञान प्रभाव कि जोग बल' में संदेह अलंकार है।
7. 'तम' अज्ञान का प्रतीक है।
8. आरम्भ की आठ पंक्तियों में चौपाई छंद प्रयुक्त हुआ है।
9. 'तुम्हहि न ..... जोग बल' में दोहा छंद है।
10. 'प्रभु तब ..... अनुराग' में सोरठा छंद है।

**15.** **चौ.– गरुड़ गिरा सुनि हरषेउ कागा। बोलेउ उमा परम अनुरागा।।**
**धन्य–धन्य तव मति उरगारी। प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी।।**
**सुनि तव प्रस्न सप्रेम सुहाई। बहुत जनम कै सुधि मोहि आई।।**
**सब निज कथा कहउँ मैं गाई। तात सुनहु सादर मन लाई।।**
**जप तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिवेक जोग बिग्याना।।**
**सब कर–फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा।।**
**एहिं तन राम भगति मैं पाई। ताते मोहि ममता अधिकाई।।**
**जेहिं तें कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई।।**

**सो.– पन्नगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन कहहिं।**
**अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज परम हित।।**
**पाट कीट तें होइ, तेहि तें पाटंबर रुचिर।**
**कृमि पालइ सबु कोइ, परम अपावन प्रान सम।।**

**शब्दार्थ– गिरा** = वाणी। **कागा** = काकभुशुण्डि। **उमा** = पार्वती। **मति** = बुद्धि। **उरगारी** = सर्पों का शत्रु गरुड़। **मोहि** = मुझे। **सुहाई** = अच्छे लगे। **कै** = की। **सुधि** = स्मृति, याद। **मन लाई** = मन लगाकर। **मख** = यज्ञ। **सम** = मन को वश में रखना। **दम** = इन्द्रियों को वश में करना। **दाना** = दान। **विरति** = वैराग्य। **विवेक** = अच्छे बुरे का ज्ञान। **विग्याना** = तत्वज्ञान। **तेहि बिनु** = उनके बिना। **छेमा** = कल्याण, क्षेम। **ऐहिं तन** = इसी शरीर से। **ताते** = इसी कारण। **मोहि** = मुझे। **जिहितैं** = जिससे। **तेहि** = उसी से। **पन्नगिरि** = सर्पों का शत्रु गरुड़। **असि** = इस प्रकार की। **श्रुति संमत** = शास्त्र द्वारा सहमति। **सन** = से। **पाट** = कपड़ा। **कीट** = कीड़े। **पाटंवर** = रेशमी वस्त्र। **रुचिर** = सुन्दर। **कृमि** = कीड़े। **अपावन** = अपवित्र।

**प्रसंग**– प्रस्तुत व्याख्या हेतु पद्य–खण्ड राम भक्ति के उपदेशक, प्रबंधकार कविवर 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। शिवजी रामकथा पार्वती को सुना रहे थे। इसी कथा को काकभुशुण्डि गरुड़ को सुना रहे हैं। अतः जब गरुड़ काकभुशुण्डि से प्रश्न करते हैं काकभुशुण्डि उनक प्रश्नों का उत्तर देने को तत्पर हैं।

**व्याख्या**– शिवजी पार्वती से कहते हैं कि हे उमे ! खगराज गरुड़ की इस प्रकार की वाणी को सुनकर काकभुशुण्डि अत्यन्त प्रसन्न हुए और अत्यन्त प्रेम से अभिभूत हुई वाणी में बोल उठे कि हे सर्पों के शत्रु गरुड़ ! तुम्हारी बुद्धि धन्य है, परम धन्य है। तुम्हारे द्वारा किए गए सभी प्रश्न मुझे अत्यधिक प्रिय लगे। तुम्हारे प्रेमयुक्त इन प्रश्नों को सुनकर मुझे बहुत से जन्मों की स्मृति एक साथ हो आई है। अतः मैं अपनी सारी कथा तुम्हें विस्तारपूर्वक सुनाता हूँ, हे तात ! मन लगाकर आदर भाव से यह सब सुनें। जप, तप, यज्ञ, शमन, इन्द्रिय, निग्रह, व्रत-उपवास, दान-पुण्य, वैराग्य, विवेक, योग-साधना और ज्ञान-विज्ञान आदि इन सभी कार्यों और ज्ञान आदि सभी का फल श्री रघुपति के चरणों में प्रेमाभक्ति उत्पन्न करना मात्र ही है, बिना इसके किसी भी प्राणी के लिए कल्याण प्राप्त कर पाना संभव नहीं। इसी काक देह में मैंने श्री राम की अनन्य भक्ति को प्राप्त किया था। अतः उसी से मुझमें इस शरीर के प्रति अगाध ममत्व-भाव विद्यमान है। जिस वस्तु से किसी स्वार्थ की सिद्धि होती हो उसके प्रति सभी के हृदय में ममत्व भाव का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक ही है।

आगे पक्षीराज गरुड़ की शंका का समाधान करते हुए काक शरीर के प्रति अपनी ममता का कारण बताते हुए काकभुशुण्डि जी कहते हैं कि हे खगेश ! अत्यधिक नीच अथवा तुच्छ पर भी प्रेमभाव रखना चाहिए। यदि उससे हमारा परम हित होता हो। यह नीति वेद-शास्त्र सम्मत है एवं सज्जनों ने भी इसका अनुमोदन किया है। जैसे कीड़े से रेशम बनता है और उस रेशम से अत्यन्त मूल्यवान एवं सुंदर रेशमी वस्त्रों का निर्माण होंता है, इसलिए उस तुच्छ एवं अपवित्र कीड़े को भी सब प्राणों के तुल्य सुरक्षा से पालते

हैं। इसी प्रकार मैं भी इस काक शरीर से इसलिए प्रेम करता हूँ क्योंकि इसी के माध्यम से मुझे श्री राम की मूल्यवान भक्ति प्राप्त हुई है। भाव यह है कि मनुष्य को नीच होते हुए भी हितकारी वस्तुओं से ही प्रेम करना चाहिए।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. यहाँ कवि ने अपने आराध्य देव श्री राम के चरणों में प्रेमाभक्ति के प्राप्त करने को ही सर्वोपरि माना है तथा जप, तप, यज्ञ, दान-पुण्य, वैराग्य, विवेक और ज्ञान-विज्ञान आदि सभी कर्मों एवं ज्ञान को प्रभु की भक्ति को प्राप्त करने का साधन मात्र ही ठहराया है।
2. भक्ति भावना प्रतिपादित की गई है।
3. गरुड़ के मन में प्रश्नों का उठना स्वाभाविक है, जिनका उत्तर काकभुशुण्डि देने वाले हैं।
4. कीड़ों से रेशमी वस्त्रों का उत्पादन होता है, यह सत्य है।
5. अंतिम चार पंक्तियों में अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग हुआ है।
6. तत्सम शब्दावली के साथ अवधी भाषा का रूप निखर कर सामने आया है।
7. चौपाई छंद प्रथम आठ पंक्तियों में हैं।
8. अंतिम चार पंक्तियों में दो सोरठे हैं अतः सोरठा छंद प्रयुक्त हुआ है।

**16.** **चौ.– स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम वचन राम पद नेहा।।**
**सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघु धीरा।।**
**राम विमुख लहि विधि सम देही। कवि कोविद न प्रसंसहिं तेही।।**
**राम भगति एहिं तन उर जामी। ताते मोहिं परम प्रिय स्वामी।।**
**तजउँ न तन निज इच्छा मरना। तन बिनु वेद भजन नहिं वरना।।**
**प्रथम मोहँ मोहि बहुत विगोवा। राम विमुख सुख कबहुँ न सोवा।।**
**नाना जनम कर्म पुनि नाना। किए जोग जप तप मख दाना।।**
**कवन जोनि जनमेउ जहँ नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं।।**
**देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं।।**
**सुधि मोहि नाथ जनम बहु केरी। सिव प्रसाद मति मोहँ न घेरी।।**
**दो.– प्रथम जनम के चरित अब कहउँ सुनहु विहगेस।**
**सुनि प्रभु पद रति उपजइ जातें मिटहिं कलेस।।**
**पूरुब कल्प एक प्रभु जुग कलिजुग मल मूल।।**
**नर अरु नारि अधर्म रत सकल निगम प्रतिकूल।।**

**शब्दार्थ**— **साँच** = सत्य। **एहा** = यह। **क्रम** = कर्म। **नेहा** = स्नेह। **सोई** = वह। **पावन** = पवित्र। **सुभग** = सुन्दर। **तनु** = शरीर। **विमुख** = विपरीत। **विधि** = विधाता, ब्रह्मा। **देही** = प्राणी। **कोविद** = बुद्धिमान। **प्रसंसहि** = प्रशंसा करते हैं। **तेही** = उसी का।**एहिं तन** = इस शरीर। **उर जामी** = हृदय में उत्पन्न हुई। **ताते** = इसलिए। **तजऊँ** = छोड़ना। **तन** = शरीर। **मोह** = माया। **विगोवा** = बिगाड़ा। **सोवा** = सोया। **नाना जनम** = अनेक जन्म। **जोग** = योग-साधना। **मख** = यज्ञ। **कवन** = कौन सी। **जोनि** = योनि, शरीर। **जहँ नाही** = जहाँ नहीं। **खगेस** = गरुड़। **भ्रमि** = भ्रमण करना, भटकना। **अबहिं की नाईं** = इस समय के समान। **सुधि** = स्मृति। **केरी** = की। **मति** = बुद्धि। **चरित** = कथा। **विहगेस** = पक्षीराज गरुड़। **रति** = प्रेम। **कलेस** = कष्ट। **पूरुब** = पूर्व। **कलियुग** = कलयुग। **मलमूल** = पापों की जड़। **अरु** = और। **रत** = लवलीन। **निगम** = शास्त्र। **प्रतिकूल** = विरुद्ध।

**प्रसंग**— व्याख्या हेतु प्रस्तुत पद्य–भाग हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में रामभक्ति काव्यधारा के प्रसिद्ध कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। गरुड़ ने जब काकभुशुण्डि से पूछा कि तुमने राम की भक्ति को पाने के बाद भी यह कौए का शरीर धारण क्यों किया ? तब इसका उत्तर देते हुए काकभुशुण्डि कहते हैं–

**व्याख्या**— मनुष्य के हित अथवा सच्चे स्वार्थ की व्याख्या करते हुए काकभुशुण्डि कहते हैं कि जीव का सच्चा स्वार्थ इसी

में है कि वह मन, वचन एवं कर्म से राम के चरण कमलों की स्नेह पूर्वक आराधना करता रहे। वही शरीर सबसे सुंदर, आकर्षक एवं पवित्र है। जिसके माध्यम से श्री रामचंद्र जी का भजन संभव हो सके। ब्रह्मा के समान सुंदर शरीर पाकर भी यदि जीव श्री राम की भक्ति से विमुख रहता है, तो सुंदर होते हुए भी उस शरीर की कवि एवं ज्ञानीजन प्रशंसा नहीं करते। भाव यह है कि महत्वपूर्ण वस्तु शरीर का सौंदर्य नहीं है, अपितु हृदय के भाव हैं। क्योंकि मुझे कौए के इस तुच्छ शरीर के माध्यम से ही श्री राम की भक्ति प्राप्त हुई है। इसलिए यह शरीर मुझे (अन्य शरीरों की अपेक्षा) अत्यधिक प्रिय है। मेरी मृत्यु मेरी इच्छा पर निर्भर है, अर्थात् इच्छा होने पर मैं अपने शरीर को त्याग सकता हूँ इस पर भी मैं इसका त्याग नहीं करता। वेद कहते हैं कि शरीर के बिना भगवान् का भजन (भक्ति) संभव नहीं है। इसलिए प्रभु की भक्ति करने के कारण ही मैं यह शरीर धारण किए हुए हूँ। राम से विमुख होकर कभी कोई सुख से नहीं सो सकता। राम भजन से रहित मुझ पर भी मोह ने अपना दुष्प्रभाव डाला। अनेक योनियों में जन्म लेकर मन के भ्रम को दूर करने के लिए मैंने अनेक प्रकार के योग, जप, तप, यज्ञ और दान आदि कर्म किए। हे खगराज ! ऐसी कौन-सी योनि है जिसमें मैंने जन्म न लिया हो ? इस प्रकार मैं जग में विभिन्न रूपों को धारण कर घूमता रहा। हे गरुड़ ! सभी प्रकार के कर्म भी मैंने किए किंतु जितना सुख मुझे इस कौए के रूप में मिला उतना किसी अन्य जन्म में नहीं। और हे नाथ ! मुझे अनेक जन्मों की कथाएँ भी याद हैं, क्योंकि शिवजी की कृपा से मेरी बुद्धि मोह-ग्रसित नहीं हुई, वह अकुंठित है।

अपने पिछले जन्मों की कथा सुनाते हुए काकभुशुण्डि कहते हैं, हे खगराज ! अब मैं आपको अपने पिछले जन्म की कथा सुनाता हूँ। आप सुनिए। उस कथा को सुनकर श्री राम के चरण कमलों में प्रेम उत्पन्न होता है एवं सारे दुःख क्लेश समाप्त हो जाते हैं। पहले समय के एक कल्प की बात है। जब कलियुग था जो पापों का मूल कारण था जिसमें नर और नारी अधर्म का सेवन करते थे अर्थात् अधर्म, अनाचार के पथ पर चलते थे, उनका आचरण वेदों के विपरीत था।

**काव्य-सौंदर्य**--

1. प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने इस तथ्य के प्रतिपादन की चेष्टा की है कि इस जीवन की सबसे सार्थक वस्तु रामभक्ति है और वह जब तक नहीं मिल जाती, तब तक जीव अनेक योनियों में भटकता हुआ मोह ग्रस्त होकर कष्ट पाता रहता है।
2. कवि का कहना है कि राम भक्ति की प्राप्ति के लिए मनुष्य शरीर ही आवश्यक नहीं, ईश्वर अपने भक्तों अथवा सच्चे साधकों पर किसी भी रूप में कृपादृष्टि कर देता है।
3. ऐसा भी माना जाता है कि सृष्टि में चारों युग पुनः लौटकर आते हैं इन चारों युगों को एक कल्प कहते हैं।
4. काकभुशुण्डि द्वारा पूर्व जन्म की कथा सुनाई गई है।
5. 'कवन जोनि जनमेहुँ जहँ' नाहीं' में वक्रोक्ति अलंकार है।
6. 'भ्रामि-भ्रानि' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
7. तत्सम शब्दों के बाहुल्य से अवधी भाषा सुन्दर बन गई है।
8. चौपाई और दोहा छंद का प्रयोग है।

**17.** **चौ.– तेहिं कलिजुग कोसलपुर जाई। जन्मत भयउँ सूद्र तनु पाई।।**
**सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निंदक अभिमानी।।**
**धन मद मत्त परम बाचाला। उग्रबुद्धि उर दंभ बिसाला।।**
**जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी।।**
**अब जाना मैं अवध प्रभावा। निगमागम पुरान अस गावा।।**
**कवनेहुँ जन्म अवध दस जोइ। राम परायन सो परि होई।।**
**अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहिं रामु धनुपानी।।**
**सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परावन सब नर नारी।।**
**दो.– कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ।**
**दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु ग्रंथ।**
**भए लोग सब मोह बस लोभ ग्रसे सुभ कर्म।**
**सुनु हरियान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म।।**

**शब्दार्थ**– **तेहिं** = उस। **कोसलपुर** = अयोध्यापुरी। **जाई** = उत्पन्न हुआ। **जन्मत** = पैदा होते ही। **तनु पाई** = शरीर

प्राप्त किया। **क्रम** = कर्म। **अरु** = और। **आन** = अन्य, दूसरे। **निंदक** = निंदा करने वाला। **मत्त** = मतवाला। **बाचाला** = उल्टासीधा बोलने वाला। **उग्रबुद्धि** = तेज बुद्धि वाला। **दंभ बिसाला** = बहुत बड़े अहंकार वाला। **रजधानी** = राजधानी। **तव** = आपकी। **निगमागम** = वेद आदि। **अस** = इस प्रकार। **कवनेहुँ** = किसी। **जोई** = जो व्यक्ति। **परि होई** = हो जाता है। **रामपरायण** = राममय। **धनुपानी** = हाथ में धनुष रखने वाले। **उरगारी** = पक्षीराज गरुड़। **कलिमल** = कलियुग का दोष। **ग्रसे** = नष्ट कर दिये। **लुप्त भए** = समाप्त हो गये। **दंभिन्ह** = अहंकार। **निज मति** = अपनी बुद्धि। **कल्पिकरि** = कल्पना करके। **हरियान** = भगवान् हरि के वाहन, गरुड़। **ग्यान–निधि** = ज्ञान के खजाने, गरुड़। **कछुक** = कुछ, अल्प, थोड़ा-सा।

**प्रसंग**– प्रस्तुत व्याख्या हेतु पद्य–खण्ड हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के श्रेष्ठ कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। काकभुशुण्डि खगराज गरुड़ के प्रश्नों का उत्तर देते हुए अपने पूर्व जन्म का वृतान्त सुनाकर उन्हें बता रहे हैं कि पूर्व कल्प में जब कलियुग था तब सभी अधर्म का आचरण करते थे उसी की बात है –

**व्याख्या**– काकभुशुण्डि कहते हैं उस समय कलियुग में मेरा जन्म अयोध्या नगरी में हुआ था। वहाँ मैंने एक शूद्र के रूप में शरीर प्राप्त किया अर्थात् मैं जाति से शूद्र था। मैं मन, वचन और कर्म से शिव का सेवक था। शिव के अतिरिक्त, अन्य देवों की निंदा करता था। वहाँ रहते हुए मुझे धन का बड़ा अभिमान था और मैं हमेशा अभिमानवश जीवन जीता था। मतवाला होकर व्यर्थ की बातें करता था। यद्यपि मैं तीव्र बुद्धि वाला था, परन्तु मेरे हृदय में बहुत अधिक घमण्ड था। मैं भगवान् राम की राजधानी (अयोध्या नगरी) में रहता था; फिर भी मैंने किसी प्रकार की महिमा ज्ञात नहीं की। अब मैंने इस जन्म में अयोध्या रहकर अवश्य भगवान् राम के प्रभाव को ज्ञात किया है। वेदों-पुराणों में भी इन तथ्यों को दोहराया गया है। यहाँ तक वेदों-पुराणों में भी श्री राम की महिमा का बखान है। उनमें लिखा हुआ है कि यदि कोई प्राणी किसी जन्म में अयोध्या जाकर रहने लगता है वह राम-परायण हो जाता है। अर्थात् राम-भक्ति में लीन हो जाता है। अयोध्या का प्रभाव इसी प्रकार है कि उसे हर प्राणी आसानी से समझ एवं जान सकता है। उस समय साधक के हृदय में धनुष धारण करने वाले प्रभु राम की छवि अंकित हो जाती है। हे खगराज ! सर्पों के शत्रु गरुड़! वह कलियुग अत्यन्त कठोर था। उस समय नर-नारी पाप भरा आचरण करते थे।

आगे काकभुशुण्डि कलियुग का पुनः वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस समय कलियुग में इतने पापाचार होते थे कि उनसे अछूता कोई भी प्राणी नहीं था और न ही कोई धर्म स्वयं को अछूता रख सका था। अर्थात् सभी धर्मों में पाप का आचरण होने लगा था। जिसके कारण सभी सद्ग्रन्थ अर्थात् धर्मग्रन्थ लुप्त हो गए। इस युग के पाखण्ड प्रिय प्राणियों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार अपनी कल्पना के माध्यम से विविध प्रकार के पंथ एवं सम्प्रदायों को जन्म दे डाला। इससे सभी प्रजाजन मोह के वशीभूत हो चुके थे तथा अच्छे और शुभ कार्यों को लोभ ने अपने वश में कर लिया था। अर्थात् शुभ कार्यों में भी लोभ होता था। हे हरि के वाहन गरुड़ ! हे ज्ञान के सागर ! आप कलियुग के धर्म को सुनिए, जिसका मैं अब आपके समक्ष वर्णन करता हूँ। कृपा ध्यानपूर्वक सुनिए।

**काव्य-सौंदर्य**–

1. कवि काकभुशुण्डि के माध्यम से इस विचार को व्यक्त करना चाहता है कि शिव इत्यादि किसी अन्य देव का भक्त होने पर भी जीव को राम की भक्ति के बिना मुक्ति अथवा शांति नहीं मिलती। इसे तुलसीदास जी का समन्वयवाद कह सकते हैं।
2. राम की धनुधारी मूर्ति का ही गोस्वामी जी ने यहाँ पक्ष लिया है। वास्तव में वे राम के लोक रक्षक रूप के पूजक थे। अन्यत्र भी उन्होंने कहा है–

   "तुलसी मस्तक तब नवै धनुष बान लो हाथ।"
3. काकभुशुण्डि अपने उस जीवन के विषय में बताता है जब कलियुग में वह पैदा हुआ था और उसके कुप्रभाव से ग्रसित था।
4. राम की भक्ति को व्यक्त किया गया है।
5. 'ग्यान-निधि' में रूपक अलंकार है।
6. तत्सम शब्दावली का सुंदर प्रयोग किया गया है।
7. अवधी भाषा का सुंदर प्रयोग है।
8. प्रथम आठ पंक्तियों में चौपाई छंद है जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ होती हैं।
9. अंतिम चार पंक्तियों में दोहा छंद है।

**18.** **चौ.— बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति विरोध रत सब नर नारी।।**
**द्विज श्रुति बेचक भूत प्रजासन। कोउ नहिं माग निगम अनुसासन।।**
**मारग सोइ जा कहुँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।।**
**मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहँ संत–कहइ सब कोई।।**
**सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बढ़ आचारी।।**
**जो कह झूँठ मसखरी जाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना।।**
**निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो विरागी।।**
**जाकें नख अरु जटा विसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला।।**
**दो.— असुभ वेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।**
**तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं।।**
**सो.— जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।**
**मन क्रम वचन लबार तेइ वकता कलिकाल महुँ।।**

**शब्दार्थ— बरन** = चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। **आश्रम** = चार आश्रम—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, बानप्रस्थ, सन्यास। **चारी** = आचरण करने वाली। **श्रुति–विरोध** = वेद के प्रतिकूल। **रत** = लगे हुए। **द्विज** = ब्राह्मण। **बेचक** = बेचने वाले। **भूप** = राजा। **प्रजासन** = प्रजा का भक्षक। **निगम अनुशासन** = शास्त्रों के नियम या आदेश। **जा कहुँ** = जिसको। **जोइ भावा** = जो अच्छा लगता था। **गाल बजाना** = व्यर्थ की बातें करना। **मिथ्यारंभ** = झूठा आडम्बर। **दंभ रत** = अहंकार में लीन। **ता कहँ** = उसको। **सयान** = बुद्धिमान्। **परधन हारी** = दूसरे का धन को हरण करने वाला। **सो** = वह। **बढ़ आचारी** = अच्छे आचरण वाला। **मसखरी** = हँसी-मजाक। **गुनवंत** = गुणवान्। **बखाना** = कहा गया। **निराचार** = कुमार्ग-गामी। **त्यागी** = छोड़ने वाला। **नख** = नाखून। **बिसाला** = बड़ी-बड़ी। **तापस** = तपस्वी। **भूषण** = अलंकार। **भच्छाभच्छ** = खाने योग्य और न खाने योग्य। **तेइ** = वे ही। **माहि** = में। **अपकारी** = अशुभ करने वाले। **चार** = आचरण। **तिन्ह कर** = वे ही। **क्रम** = कर्म। **लबार** = व्यर्थ की बातें कहने वाला। **वक्ता** = अच्छा भाषण देने वाला। **महुँ** = में।

**प्रसंग**— प्रस्तुत पद्यांश भारतीय संस्कृति और धर्म के ज्ञात रामभक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। गरुड़ के प्रश्नों का उत्तर देते हुए काकभुशुण्डि अपने पूर्व जन्म की कथा सुनाते हुए पूर्व कल्प के कलियुग के अधार्मिक आचरण के विषय में बता रहे हैं—

**व्याख्या**— कलियुग के धर्म पर विचार प्रकट करते हुए काकभुशुण्डि बोले कि इस युग में वर्ण एवं आश्रम धर्मों की मान्यता समाप्त हो गई तथा सभी नर-नारियाँ वेदों का विरोध करने पर तुल गए अर्थात् वेदों में बताए गए मार्ग के विरुद्ध आचरण करने लगे। ब्राह्मण लोगों ने वेदों को केवल जीविका आधार बना लिया, राजा भी प्रजा का शोषण करने की भावना से युक्त हो गए। इस युग में कोई भी प्राणी वेदों की आज्ञा का पालन अर्थात् वेदों द्वारा बताए गए मार्ग का अनुसरण नहीं करता। इस युग में जो मार्ग जिसे अच्छा लगता है वही उसके लिए सन्मार्ग बन जाता है, जो प्राणी अधिक वाचाल अर्थात् आवश्यकता से अधिक बोलने वाला हो वही पण्डित हो गया। जो मिथ्या आरम्भ अर्थात् आडम्बर रचने में निपुण तथा दंभ में लीन रहने वाला हो उसे सभी प्राणी संत कहने लगे। जो दूसरों के धन का हरण करने में कुशल हो उसे परम् चतुर तथा जो मिथ्या दंभ में लीन रहने वाला हो उसे अत्यन्त आचारवान समझा जाने लगा। यही नहीं, कलियुग में मिथ्या भाषण करने वाला विनोदी स्वभाव का प्राणी अत्यधिक गुणों से सम्पन्न व्यक्ति माना जाने लगा। इस युग में आचरणहीन तथा वेदों द्वारा बताए गए मार्ग के विरुद्ध आचरण करने वाले प्राणी ही परम् ज्ञानी तथा वैराग्यवान समझे जाते हैं। यहाँ जिसने भी बड़े-बड़े नाखूनों एवं लम्बी-लम्बी जटाओं को धारण कर लिया, बस वही प्रसिद्ध तपस्वी कहलाने का अधिकारी बन गया।

पुनः कलियुग के प्राणियों के लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए काकभुशुण्डि गरुड़ से कहते हैं कि इस युग में जो प्राणी अशुभ तथा अटपटे वेश तथा आभूषण धारण करे और भक्ष्य तथा अभक्ष्य (माँस, मछली और मदिरा) आदि सभी का भक्षण करता फिरे वही सिद्ध और वही योगी कहलाता है तथा कलियुग में पूजा जाता है। जिन मनुष्यों का आचरण केवल दूसरे मनुष्यों का अपकार अर्थात् अहित करना मात्र ही हो यहाँ केवल वही मनुष्य गौरव प्राप्त करने में सफल होते हैं तथा केवल वही मनुष्य इस युग में सम्मान के योग्य समझे जाते हैं। इतना ही नहीं, जो प्राणी मन, वचन और कर्म से मिथ्या भाषण ही को अपनाए रहते हैं वे ही यहाँ सर्वश्रेष्ठ वक्ता के रूप में जाने जाते हैं।

**काव्य-सौंदर्य—**

1. कहने का आवश्यकता नहीं होनी चाहिए कि अकबर के शासन काल में हुए धार्मिक एवं नैतिक पतन एव तत्कालीन समाज की उच्छंखृलता को तुलसी सरीखे कवियों ने वेद के विरुद्ध आचरण कहकर पुकारा और यह इस प्रकार के वेद विरुद्ध आचरण के प्रति उनका आक्रोश ही है जो यत्र-तत्र उनके काव्य में भी समाहित हो गया है। अकबर के शासन में भी ऐसा ही वातावरण था आज के युग और उसके प्राणियों पर भी यह तथ्य बिल्कुल खरा उतरता है।
2. प्राचीन काल में चारवर्ण — ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे तथा चार ही आश्रम थे — ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ और सन्यास।
3. 'गाल बजाना' मुहावरे का प्रयोग सटीक जान पड़ता है।
4. तत्सम शब्दावली है।
5. अवधी भाषा का सुंदर प्रयोग हुआ है।
6. चौपाई छंद प्रथम आठ पंक्तियों में हैं।
7. शेष दो-दो पंक्तियों में दोहा और सोरठा छंद विद्यमान हैं।

**19. चौ.— नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं।।**
**सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना।।**
**सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी।।**
**गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी।।**
**सौभागिनी बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नवीना।।**
**गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा।।**
**हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई।।**
**मातु पिता बालकन्हि बौलावहिं। उरद भरै सोई धर्म सिखावहिं।**
**दो.— ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।**
**कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्रगुर घात।।**
**बादहिं शूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।**
**जानइ ब्रह्म सो विप्रवर आँखि देखावहिं डाटि।।**

**शब्दार्थ— बिबस** = अधीन। **सकल** = सभी। **नट** = मदारी, बन्दर का खेल दिखाने वाला। **मर्कट** = बन्दर। **नाई** = समान। **द्विजन्ह** = ब्राह्मणों को। **लेहि कुदाना** = अशुभ दान लेना। **काम** = कुवासना। **रत** = लवलीन। **बिप्र** = ब्राह्मण। **श्रुति** = शास्त्र। **गुन–मंदिर** = गुणों का घर। **भजहिं** = सेवन करती है। **अभागी** = भाग्यहीन। **सौभागिनी** = सुहागिन। **बिधवन्ह** = विधवाएँ। **बधिर** = बहरा। **लेखा** = सम्बन्ध। **हरइ** = हरण करता है। **घोर नरक** = भयकर नरक। **महुँ** = में। **बालकन्हि** = बालकों को, सन्तानों को। **उदर** = पेट। **सोइ** = वही। **कहहिं न** = नहीं कहते हैं। **घात** = विनाश, हत्या। **वादहिं** = झगड़ा, विवाद। **द्विजन्ह सन** = ब्राह्मणों से। **घाटि** = कम। **जानइ** = जानते हैं। **आँखि दिखावहिं** = आँख दिखाते हैं, डराते हैं। **डाटि** = डाँटते हैं।

**प्रसंग—** प्रस्तुत पद्य भाग हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन सगुण काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। गरुड़ अपनी शंकाओं का समाधान करने हेतु काकभुशुण्डि के पास आया है और काकभुशुण्डि उनकी शंकाओं का समाधान करता हुआ अपनी पूर्व जन्म की कहानी सुनाता है और कहता है कि एक बार उसने कलियुग में शूद्र योनि में अयोध्या में जन्म लिया था। कलियुग का वर्णन करते हुए काकभुशुण्डि गरुड़ से कहते हैं—

**व्याख्या—** हे खगराज ! कलियुग में सभी पुरुष कामान्ध होकर तथा नारी के वशीभूत होकर उसके संकेत पर उसी प्रकार नाचा करते हैं जिस प्रकार कोई बंदर नट के संकेत पर विविध प्रकार की क्रीड़ाएँ किया करता है। इस युग में शूद्र ब्राह्मणों को उपदश दिया करते हैं तथा जनेऊ धारण करके अनुचित रूप से दान ग्रहण करने का कार्य किया करते हैं। समाज के सभी पुरुष काम, क्रोध और लोभ आदि में लीन रहकर देवतागण, ब्राह्मण समाज, वेद और संतजनों का विरोध किया करते हैं। इस युग की अभागिनी

स्त्रियाँ भी गुणों की खान स्वरूप अपने सुंदर पति का त्याग करके पर पुरुषों की संगति करती हैं। ऐसा कार्य करके वे खुश रहती हैं। यहाँ सौभाग्यवती स्त्रियों को तो आभूषणों से रहित देखा जाता है अर्थात् उन्हें तो आभूषण उपलब्ध नहीं हो पाते, जबकि विधवा स्त्रियों को नित्य नवीन शृंगार से युक्त देखा जाता है। यहाँ गुरु और शिष्य में भी बहरे और अंधे का-सा व्यवहार देखने को मिलता है। एक (गुरु) को दिखलाई नहीं पड़ता अर्थात् वह ज्ञान दृष्टि से शून्य है तो दूसरे (शिष्य) को गुरु द्वारा दिए गए उपदेश सुनाई ही नहीं पड़ते। अर्थात् गुरु के पास ज्ञान की दृष्टि नहीं और शिष्य गुरु के ज्ञान को लेना ही नहीं चाहता। गुरु का काम शिष्य का धन हरण करना है, उसके शोक को दूर करना नहीं है। ऐसा कार्य करने वाला (शिष्य के मन की जिज्ञासा को शांत करना अपितु उसके धन को हड़पना) गुरु घोर नरक में जाता है। इस युग में माता-पिता भी गुरु की भाँति अपनी सन्तानों को बुलाकर उसी धर्म की शिक्षा देते हैं जो धर्म उनकी उदरपूर्ति (पेट भरने) का साधन हो।

पुनः काकभुशुण्डि गरुड़ से कहते हैं — हे खगराज ! कलियुग में स्त्री-पुरुषों में परस्पर ब्रह्म ज्ञान के बिना कोई दूसरी बात सुनने में ही नहीं आती अर्थात् सभी स्त्रियाँ और पुरुष अपने को परम् ज्ञानी सिद्ध करने का प्रयास किया करते हैं, जबकि सच तो यह है कि कौड़ी के लाभ में पड़कर अर्थात् बहुत थोड़े लाभ के लिए भी ये लोग ब्राह्मण और गुरु की हत्या करने तक को तैयार हो जाते हैं। यहाँ तो शूद्र भी ब्राह्मणों से तर्क-वितर्क किया करते हैं कि बताओ हम लोग तुमसे किस अर्थ में निम्न हैं ? ऐसे पुरुष ब्राह्मणों की नवीन व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहते हैं — जो ब्राह्मण को जानने वाला है वही ब्राह्मण है। (हम ब्रह्म को जानते हैं अतः हम भी ब्राह्मण ही हुए) ऐसा कहकर वे ब्राह्मणों को डाँटते-डपटते हुए आँखें दिखलाया करते हैं।

**काव्य-सौंदर्य—**

1. अकबर के शासन काल में आदर्श की अपेक्षा यथार्थ दृष्टिकोण को अधिक बल मिला जिसका परिणाम यह हुआ कि धर्म और धर्म-ग्रन्थों में जनसाधारण की कोई आस्था नहीं रही। दूसरी ओर नैतिक मूल्यों का विकास न हो पाने के कारण अनैतिकता का भी बोलबाला हो गया। अकबर के शासन काल की ही बात क्यों, आज भी तो हम सभी कुछ प्रत्यक्ष देखते तथा अनुभव करते हैं। आज के युग के युवक और युवतियों को बंधन स्वीकार नहीं। वे सभी मर्यादाओं का उल्लंघन करके उन्मुक्त प्रेम में विश्वास करने लगे हैं।
2. अकबर के समय में ब्रह्म ज्ञान का विषय जनसाधारण के लिए उस प्रकार चर्चा का विषय था जिस प्रकार आज के समय में राजनीति की बातों का। शासन की बागडोर तो ब्राह्मण और क्षत्रियों से भिन्न मुगल शासकों ने ले ही ली थी। अतः अवसर देखकर तथाकथित शूद्रों ने भी ब्राह्मण समाज के अधिकारों को चुनौती दे डाली।
3. काकभुशुण्डि कलियुगी आचरण को सर्वथा औचित्यपूर्ण मानता है।
4. 'कौड़ी लागि लोभ', 'आँखि देखावहिं डाटि' आदि सुंदर मुहावरों का प्रयोग किया गया है।
5. 'गुरु-शिष्य बधिर अंध का लेखा' में उपमा अलंकार है।
6. 'हम तुम ते कछु घाट' में वक्रोक्ति अलंकार है।
7. तत्सम शब्दावली का प्रयोग है।
8. अवधी भाषा का सुंदर प्रयोग है।
9. चौपाई और दोहा छंद का सुंदर प्रयोग है।

**20.** **चौ.— पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने।।**
**तेइ अभेदवादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर।।**
**आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं। जे कहुँ सत मारग प्रतिपालहिं।।**
**कल्प कल्प भरि एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका।।**
**जे वरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलयारा।।**
**नारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाई होहिं सन्यासी।।**
**ते विप्रन्ह सन आपु पुजावहि। उभय लोक निज हाथ नसावहिं।।**
**विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृषली स्वामी।।**
**सूद्र करहि जप तप व्रत नाना। बैठि वरासन कहहि पुराना।।**
**सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न वरनि अनीति अपारा।।**

**दो.— भए वरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग।**
**करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक वियोग।।**
**श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत विरति विवेक।**
**तहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक।।**

**शब्दार्थ**— **पर त्रिय** = दूसरे की स्त्री। **लंपट** = कुव्यसनी। **सयाने** = चतुर। लपटाने भरे हुए। **तेइ** = वे। **अभेदवादी** = ब्रह्म व जीव में भेद न मानने वाले। **आपु गये** = स्वयं नष्ट हो गये। **अरु** = और। **तिन्हहू घालहिं** = उन्हें भी नष्ट करते हैं। **सत मारग** = सत्य का रास्ता। **प्रतिपालहि** = अपनाते हैं। **कल्प** = एक हजार युग का एक कल्प। **करि तरका** = तर्क करके। **परहिं जे** = जा पड़ते हैं। **दूषहि** = दूषित। **वरनाधम** = निम्न वर्ण के। **तेलि** = तेल निकालने वाला। **कुम्हारा** = मिट्टी के बरतन बनाने वाला। **स्वपच** = चाण्डाल। **किरात** = भील। **नारि मुई** = पत्नी के मरने पर। **नासी** = नष्ट हुई। **मूड मुड़ाई** = सिर गंजा करके। **विप्रन्ह सन** = ब्राह्मणों से। **आपु पुजावहि** = अपनी पूजा कराते हैं। **उभय** = दोनों। **निज हाथ नसावहिं** = स्वयं अपने आप नष्ट कर देते हैं। **विप्र** = ब्राह्मण। **निरच्छर** = निरक्षर, अनपढ़। **लोलुप** = लोभी। **निराचार** = दुराचारी। **सठ** = दुष्ट। **वृषली** = निम्न जाति की व्याभिचारिणी को अपनाने वाले। **नाना** = अनेक। **वरासन** = ऊँचे आसन। **कल्पित** इच्छानुसार बनाए गये। **अचारा** = आचरण। **वरन संकर** = वर्णों का परस्पर मिलना। **भिन्तेतु** = मर्यादाहीन। **रुज** = रोग। **श्रुति सम्मत** = शास्त्र द्वारा मान्य। **संजुत** = युक्त सहित। **पंथ** = मार्ग, मत। **कल्पहिं** = कल्पना करते हैं।

**प्रसंग**— प्रस्तुत पद्य—खण्ड भारतीय धर्म व संस्कृति के ज्ञाता तथा रामभक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवि तुलसीदास द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। गरुड़ के प्रश्नों का उत्तर देते हुए काकभुशुण्डि अपने पूर्व जन्म की कथा कहता है और बताता है कि जब किसी भव में वह कलियुग में शूद्र पैदा हुआ था। कलिकाल के प्रभाव का उल्लेख करते हुए काकभुशुण्डि कहते हैं—

**व्याख्या**— हे खगराज ! इस युग में मैंने विचित्र प्रकार का चरित्र देखा। यहाँ जो मनुष्य पराई स्त्रियों मे आसक्त बने रहते हैं, कपटपूर्ण आचरण करने में अत्यन्त चतुर हैं तथा मोह, द्रोह और ममता में सदैव लीन बने रहते हैं, वे ही मनुष्य अद्वैतवादी अर्थात् ब्रह्मा और जीव में अभेद न मानने वाले तथा अत्यन्त ज्ञानवान कहे जाते हैं। ऐसे मनुष्य स्वयं तो पतित होते ही हैं, दूसरे सदमार्ग पर चलने वाले प्राणियों को भी पतन के मार्ग की ओर अग्रसर कर देते हैं। ऐसे पुरुष विविध प्रकार के कुतर्क करके वेद की निंदा किया करते हैं, परिणामतः ऐसे प्राणी एक-एक कल्प तक घोर नर्क की यातनाएँ भोगा करते हैं। इस युग में तेली, कुम्हार, चाण्डाल, किरात कोल तथा कलवार अर्थात् मदिरा बेचने वाले आदि निम्न वर्ग के लोग पत्नि की मृत्यु होने अथवा घर की सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर सिर मुँडवाकर सन्यासी बन बैठते हैं। इस प्रकार के निम्न कोटि के पुरुषों में ऐसे मनुष्य भी पाये जाते हैं जो ब्राह्मणों से अपनी पूजा करवाया करते हैं और इस प्रकार अपने ही हाथों अपने दोनों लोक-इहलोक और परलोक को नष्ट कर बैठते हैं। इस युग के ब्राह्मण भी अनपढ़, लोभी, कामुक, आचरणहीन, मूर्ख तथा नीची जाति की व्याभिचारिणी स्त्रियों के स्वामी होते हैं। यहाँ शूद्र जाति के मनुष्य जप, तप और व्रत आदि करते हुए व्यास गद्दी पर आसीन होकर पुराण आदि की कथाएँ कहा करते हैं। इस कलियुग के अन्य मनुष्य भी मनमाना और इस प्रकार का अनैतिक आचरण किया करते हैं कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

काकभुशुण्डि आगे गरुड़ से कहते हैं कि कलियुग में सभी प्राणी वर्ग एवं वर्ण-शुद्धता का त्याग करके वर्ण संकर बन बैठे हैं। वे किसी भी मर्यादा का पालन नहीं करते तथा इस प्रकार के भयंकर पापकर्म किया करते हैं जिससे उन्हें निरन्तर ही दुःख, भय, रोग, शोक और प्रियजनों का वियोग सहन करना पड़ता है। यहाँ के मनुष्य वेदों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग, जिससे वैराग्य भावना एवं विवेकशीलता का उदय होता है, का अनुसरण न करके मोह के वशीभूत होकर नित्य नए-नए पंथों की कल्पना किया करते हैं।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. यहाँ कवि ने अपने समय के समाज में फैली अनैतिकता और बाह्याडम्बरों को ही काव्यबद्ध किया है। तुलसी का सम्पूर्ण साहित्य इस बात का साक्षी है कि उन्हें परम्परा से चली आ रही भारतीय संस्कृति की अवहेलना कभी सहन नहीं हुई यूँ तो अन्य संत कवियों ने भी समय-समय पर इस ओर इंगित करके अपने-अपने समय के समाज को सचेष्ट किया तथापि महाकवि तुलसी के मन में संस्कृति-विरोधी समाज के प्रति आक्रोश की मात्रा गहराई तक बैठ गई थी। सिर मुँडाने मात्र का आडम्बर रचकर स्वयं को सन्यासी कहलाने वालों को तो कबीर ने भी क्षमा नहीं किया था-

**"कैसौं कहा बिगाड़िया जो मूंडै सौ बार।**
**मन कौं काहे न मँडिए जामैं विषै विकार।।"**

2. तुलसी के युग में इस्लाम के प्रभाव के कारण वर्ण जाति आदि के बंधन शिथिल पड़ गए थे, वहाँ महाकवि ने उसी ओर इंगित करते हुए तत्कालीन समाज को वर्ण-संकर की संज्ञा दे दी।
3. 'कल्प-कल्प', 'एक-एक' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
4. तत्सम शब्दावली का सुंदर प्रयोग हुआ है।
5. अवधी भाषा का प्रयोग सुंदर है।
6. प्रथम आठ पंक्तियों में चौपाई छंद है।
7. अन्तिम पंक्तियों में दोहा छंद का प्रयोग है।

**21.** **चौ.– बहु दाम सँवारहिं धाम जती। विषया हरि लीन्हि न रहि विरती।।**
**तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही।।**
**कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निवेरि गती।।**
**सतु मानहिं मातु पितु तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं।।**
**ससुरारि पियारि लगी जबतें। रिपुरुप कुटुम्ब भए तब तैं।।**
**नृप पाप परायन धर्म नही। करि दंड विडंब प्रजा नितहीं।।**
**धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उधार तपी।।**
**नहिं मान पुरान न वेदहि जौ। हरि सेवक संत सही कलि सो।।**
**कवि वृन्द उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक व्रात न कोपि गुनी।।**
**कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुःखी सब लोग मरै।।**
**दो.– सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाखंड।**
**मान मोह मारादि मद व्यापि रहे ब्रह्मण्ड।।**
**तामस धर्म करहिं नर जप तप व्रत मख दान।**
**देव न बरसहिं धरनी बए न जामहिं धान।।**

**शब्दार्थ**– **बहु दाम** = बहुत सी धन सम्पत्ति से। **सँवरहि** = सजाते हैं। **धाम** = घर। **जती** = सन्यासी। **विषया हरि** = विषयों ने हरण कर लिया है। **विरती** = वैराग्य। **कल्पहि** = कल्पना करते हैं। **पंथ** = मत, मार्ग। **तपसी** = तपस्या करने वाले। **धनवंत** = धनवान्। **गृही** = गृहस्थी। **कलि कौतुक** = कलियुग की लीला। **कुलवंती** = कुलीना नारी। **निकारहीं** = निकाल देते हैं। **नारि सती** = पतिव्रता स्त्री। **आनहि** = अन्य, दूसरी। **चेरि** = दासी। **निवेरि** = छोड़कर। **सुत** = पुत्र। **अबलानन** = पत्नी का मुँह। **ससुरारि पिआरि** = ससुराल वाले प्रिय। **रिपुरुष** = शत्रु रूप। **नृप** = राजा। **परायन** = लगे हुए। **विडम्ब** = विडम्बना, बुरी दशा। **नितहीं** = सदा। **मलीन** = तुच्छ। **अपी** = भी। **द्विज** = ब्राह्मण। **चिन्ह जनेउ** = जनेऊ से पहिचाने जाते हैं। **उधार** = नग्न, वस्त्र रहित। **तपी** = तपस्या करने वाले। **वेदहि** = वेदों का। **कविवृन्द** = कवि समूह। **दुनी** = संसार। **दूषक** = दोष बताने वाले। **कोपि** = कोई भी। **दुकाल** = अकाल। **परै** = पड़ता है। **खगेस** = पक्षीराज गरुड़। **हठ** = दुरागृह। **पाखंड** = पाखंड। **मारादि** = काम, क्रोध आदि। **व्यापि रहे** = फैल गये। **तामस धर्म** = तम गुण से युक्त धर्म। **मख** = यज्ञ। **देव** = इन्द्र। **धरमी** = भूमि। **बए** = बोने पर। **न जामहि धान** = अन्न की पैदावार नहीं होती।

**प्रसंग**– प्रस्तुत पद्य भाग भक्तिकालीन रामभक्ति काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। गरुड़ के प्रश्नों के उत्तर देने के लिए काकभुशुण्डि को अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाना पड़ता है। उसमें वे बताते हैं कि जब वह अयोध्या में एक शूद्र योनि में उत्पन्न हुए थे, तब कलियुग था।

**व्याख्या**– काकभुशुण्डि कलियुग के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इस युग में योगी-सन्यासियों ने बहुत-सा धन एकत्र करके बड़े-बड़े भवनों का निर्माण कर रखा है। उनका रहा-सहा वैराग्य भी विषयों में आसक्ति बने रहने के कारण समाप्त हो गया। इस युग में तपस्वी कहलाने वाले तो अपार धन के स्वामी बने बैठे हैं, जबकि गृहस्थी लोग यहाँ अत्यन्त निर्धन एवं दरिद्र हैं। हे खगराज ! इस कलिकाल की विचित्रताएँ तो बस कही नहीं जा सकती हैं अर्थात् इनका वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ के मनुष्य कुलवंती एवं सती नारियों को तो घर से बाहर निकाल देते हैं तथा अपनी सद्गति को नष्ट करके दासियें को अंदर ले आते हैं। इस कलियुग में पुत्र भी माता-पिता के प्रति तब तक ही श्रद्धा भाव अर्थात् सम्मान रखता है जब तक वह अपनी पत्नि का मुख नहीं देख लेता

अर्थात् विवाहित नहीं हो जाता। जैसे ही कलियुगी पुत्रों का विवाह हो जाता है, इन्हें बस अपनी ससुराल ही प्रिय लगने लगती है तथा कुटुम्बीजन शत्रु के समान प्रतीत होने लगते हैं। यहाँ पर प्रजापति भी निरन्तर पापाचार में लीन बने रहते हैं, धर्म-कर्म को त्यागकर तथा अपनी प्रजा को अकारण ही दण्डित करते रहकर वे निरन्तर उसकी दुर्दशा किया करते हैं। इस कलियुग में धनी लोग मलिन अर्थात् नीची जाति के होने पर भी अत्यन्त कुलीन समझे जाते हैं, यहाँ ब्राह्मण का लक्षण जनेऊ धारण करना तथा तपस्वी का वस्त्रहीन रहना नाम मात्र ही रह गया है। इस युग में तो जो मनुष्य न वेद को माने और न पुराण को, बस वही श्री हरि का भक्त तथा सच्चा संत कहलाने का अधिकारी बन जाता है। इस कलियुग में तो कवियों के तो समूह के समूह मिल जाते हैं परन्तु कोई उदार अर्थात इन कवियों को आश्रय प्रदान करने वाला नहीं दिख पड़ता। यहाँ गुणों में भी दोष ढूँढ़ निकालने वाले तो बहूत से मिल जाते हैं पर सच्चे अर्थों में गुणों का सम्मान करने वाला कोई नहीं मिल पाता। हे खगराज ! इस कलियुग में बार-बार अकाल की स्थिति उत्पन्न होती है जिसके फलस्वरूप सभी मनुष्य अन्न के अभाव में अकालग्रस्त होकर अपने प्राणों का त्याग करते हैं।

काकभुशुण्डि पुनः कहने लगे कि हे खगराज ! सुनिए, कलियुग के आने पर यहाँ के छल-कपट, हठ अर्थात दुराग्रह दम्भ द्वेष, पाखण्ड, मान, मोह और काम आदि का मद सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो जाता है। यहाँ के मनुष्यों का धर्म भी तामसी वृत्ति से युक्त है। इन मनुष्यों के जप, तप, व्रत, यज्ञ और दान आदि सभी कर्मों के मूल में तामसी वृत्ति ही विद्यमान रहती है। इस युग में देवता अर्थात् इन्द्र जल ही नहीं बरसाते तथा धरती पर बोया हुआ धान उगता ही नहीं।

**काव्य-सौंदर्य–**

1. महाकवि तुलसीदास ने तो केवल अपने ही युग के अनैतिकता से भरे समाज का अंकन किया था, उन्हें क्या मालूम कि आज का पाठक भी उनके काव्य का रसास्वादन करते समय यही आभास करेगा कि मानो तुलसी आज के समय का चित्र बरसों पहले उतारकर समाज को सौंप गए थे। कहने का अभिप्राय यह है कि अकबरकालीन समाज के वातावरण तो अनैतिकता से युक्त था ही, आज के समाज का स्तर भी कथित समाज के स्तर से ऊँचा नहीं है।
2. यहाँ महाकवि तुलसीदास धार्मिक भावनाओं से इतने अधिक अभिभूत हो उठे हैं कि उन्होंने प्राकृतिक विपदाओं के मूलभूत कारण भी समाज के अनैतिक एवं वेद विरुद्ध आचरण को मान लिया है।
3. 'ससुगरि ..... तबतें' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
4. तत्सम शब्दावली के साथ अवधी भाषा का सुंदर प्रयोग है।
5. प्रथम दस पंक्तियों में तोटंक छंद है। जिसके प्रत्येक चरण में चार सम होते हैं।
6. अन्तिम चार पंक्तियों में दो दोहे हैं।

**22.** **चौ.– अबला कच भूषन भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा।।**
**सुख चाहहिं मूढ़ न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता।।**
**नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान विरोध अकारनहीं।।**
**लघु जीवन संबतु पंच दसा। कलपांत न नास गुमानु असा।।**
**कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत कौ अनुजा तनुजा।।**
**नहिं तोष विचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मंगता।।**
**इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता विगता।।**
**सब लोग वियोग विसोक हए। बरनाश्रम धर्म अचार गए।।**
**दम दान दया नहि जानपनी। जड़ता परपंचनताति घनी।।**
**तनु पोषक नारि नरा सगरे। परनिंदक जे जग मो बगरे।।**
**दो.– सुनु ब्यालारि काल कलि मल अबगुन आगार।**
**गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास निस्तार।।**
**कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग।**
**जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग।।**

**शब्दार्थ–** **अबला** = नारी। **कच** = बाल। **भूरि** = बहुत। **छुधा** = भूख। **बहुधा** = बहुत प्रकार। **मूढ** = मूर्ख। **रता** = लवलीन। **मति थोरि** = बुद्धि कम। **भोग** = सुख। **अकारण ही** = बिना कारण के ही। **लघु** = थोड़ा। **संवतु** = वर्ष। **कलपांत**

= कल्प के अन्त तक। **गुमानु** = घमण्ड। **असा** = ऐसा। **बिहाल** = बेहाल। **अनुजा** = छोटी बहिन। **तनुजा** = बेटी। **तोष** = सन्तोष। **मंगता** = माँगने वाले। **इरिषा** = ईर्ष्या। **परुषाच्छर** = कठोर वचन। **समता** = शान्ति की भावना। **विगता** = चली गयी। **विसोक** = विशेष शोक। **हए** = मर रहे हैं। **अचार गये** = आचरण समाप्त हो गया। **दम** = इन्द्रियों को वश में रखना। **जानपनी** = समझदारी। **जड़ता** = मूर्खता। **परपंचनताति** = दूसरों को धोखा देना। **घनी** = अधिक। **तनु पोषक** = शरीर का पोषण करने वाले। **सगरे** = समस्त। **परनिंदक** = दूसरे की निंदा करने वाले। **मो** = में। **बगरे** = व्याप्त हैं, फैले हुए हैं। **व्यालारि** = गरुड़। **मल** = पाप। **अवगुन** = दोष। **आगार** = घर, स्थान। **प्रयास** = प्रयत्न। **निस्तार** = छुटकारा, कल्याण, बन्धन करना। **कृतजुग** = सतयुग। **मख** = यज्ञ। **अरु** = और।

**प्रसंग**— प्रस्तुत पद्य व्याख्या हेतु हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में सगुण काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित संसार प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। इसमें काकभुशुण्डि खगराज गरुड़ के मन की शंकाओं का समाधान प्रस्तुत करता हुआ अपने पूर्वजन्म की कथा सुनाता हुआ कह रहा है कि पूर्व जन्म में जब कलियुग था तब उसका जन्म एक शूद्र योनि में हुआ था, उस समय का वातावरण व अधार्मिक का व्याख्यान प्रस्तुत करता हुआ काकभुशुण्डि कहता है—

**व्याख्या**— कलियुग में केश-सज्जा एवं आभूषणों की भूख प्रत्येक नारी में पाई जाती है, कहने का अभिप्राय यह है कि इस युग की नारियों में केश-सज्जा एवं आभूषणों के प्रति विशेष मोह पाया जाता है। वे धन लोभी होती हैं तथा विविध प्रकार की (आभूषणों आदि की) ममता (मोह) के विद्यमान रहने के कारण सदैव दुःखी रहती हैं। यहाँ की मूर्ख नारियाँ धर्म में लीन न रहकर भी सुख की अभिलाषा किया करती हैं। ये नारियाँ अल्प एवं कठोर बुद्धि की स्वामिनियाँ होती हैं जिनमें कोमलता का नाम लेशमात्र भी नहीं होता। इस युग में पुरुष सदैव रोग से पीड़ित रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप वे किसी सच्चे सुख भोग में असमर्थ रहते हैं। असंयमित रूप से जीवन व्यतीत करते रहने के कारण इनका जीवनकाल पाँच-दर्स वर्ष का अर्थात् अल्प ही होता है, परन्तु इनमें अभिमान की मात्रा इतनी अधिक होती है अर्थात् यह ऐसा अभिमान किया करते हैं मानो कल्पांत अर्थात् प्रलय होने तक भी इनके जीवन का नाश नहीं होगा। कलियुग में तो यहाँ के स्त्री-पुरुषों का नैतिक स्तर इतना अधिक अस्त-व्यस्त हो गया है कि कोई वहाँ बहन-बेटी का विचार भी नहीं करता। यहाँ के लोगों में न तो संतोष है, न विवेक और न स्वभावगत शीतलता ही। जिसे भी देखो, ऊँची जाति का हो या नीची जाति का, सभी भिक्षा माँगने वाले बन गए हैं। यहाँ के प्राणियों में सर्वत्र ईर्ष्या, कठोर वचन तथा लोभमयी प्रवृत्तियों का ही बोलबाला है सभी के प्रति समता की भावना इस युग के प्राणियों में समाप्त हो चुकी है। यहाँ तो अब सभी लोग वियोग और शोक में इतने आतुर बने रहते हैं कि वर्ण एवं आश्रम धर्म का आचरण भी उनमें शेष नहीं रहता। कलियुग में प्राणियों में इन्द्रिय दमन, दान, दया और बुद्धिमता का नितान्त अभाव है, इसके विपरीत धूर्तता तथा दूसरों को ठगने की भावना यहाँ के प्राणियों में खूब पाई जाती है। यहाँ तो स्त्री हो या पुरुष सभी अपने शरीर के पोषण में व्यस्त दिखाई पड़ते हैं। सम्पूर्ण जगत् में ऐसे ही लोग भरे पड़े हैं जो दिन-रात दूसरों की निंदा में ही लीन रहते हैं।

पुनः काकभुशुण्डि कहते हैं कि हे सर्पों के शत्रु गरुड़ ! सुनों ! यद्यपि कलियुग पापों एवं अवगुणों का भण्डार है तथापि इस युग का सबसे बड़ा गुण यह है कि इसमें कोई चाहे तो बिना विशेष परिश्रम किए इस भव-बंधन से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। जो दशा सतयुग, त्रेता युग तथा द्वापर युग में पूजा करने, यज्ञ करने तथा योग साधना करने से होती है। वही स्थिति (गति) कलियुग में भगवान् के नाम के आधार पर प्राप्त की जाती है।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. यह सत्य है कि अकबर का शासनकाल नैतिकता के दृष्टिकोण से अत्यन्त निम्न कोटि का शासनकाल रहा, पर कवि के कथन— 'नहिं मानत क्वौं अनुजा तनुजा' से लगता है कि कवि ने उस समय की अनैतिकता का चित्र अति रंजितता के साथ प्रस्तुत किया है। 'जिहि की बिटिया सुंदर देखी, तिहि पर धाई धरे हथियार' इतना तो मुगल शासकों के लिए प्रसिद्ध है ही, इसके प्रमाण भी मिलते हैं, अतः केवल इतने सत्य को स्वीकार करना ही पर्याप्त होगा।
2. अपने समाज में फैली अनैतिकता एवं जन-जीवन की व्यस्तता को लक्ष्य करके महाकवि यहाँ उदार हो गये हैं कि केवल राम का नाम स्मरण करने वाले को भी 'राम-भक्त' स्वीकार किया जा रहा है।
3. 'मल अवगुन आगार' में रूपक अलंकार है।
4. 'बिन प्रयास विस्तार' में विरोधाभास अलंकार है।
5. तत्सम शब्दों का सुंदर प्रयोग हुआ है।
6. अवधी भाषा का सुंदर प्रयोग हुआ है।

7. प्रथम दस पंक्तियों में तोटंक छंद है। जिसके प्रत्येक चरण में चार सगण होते हैं।

8. अन्तिम दो पक्तियों में दोहा छंद है।

**23.** चौ.– **कृत्जुग सब जोगी विग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी।।**
**त्रेताँ विविध जग्य नर करहीं। प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं।।**
**द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा।।**
**कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा।।**
**कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना।।**
**सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि।।**
**सोइ भव तर कछु संसय नाहीं। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं।।**
**कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पापा।।**
दो.– **कलिजुग सब जुग आन नहिं जौं नर कर विस्वास।**
**गाइ राम गुन गन विमल भव तर बिनहिं प्रयास।।**
**प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान।**
**जेन केन विधि दीन्हें दान करइ कल्यान।।**

**शब्दार्थ**– **कृतजुग** = सतयुग। **विग्यानी** = तत्त्वज्ञानी। **तरहिं भव** = संसार से पार हो जाते हैं। **त्रेताँ** = त्रेता युग में **विविध जग्य** = अनेक प्रकार के यज्ञ। **समर्पि** = समर्पण करके। **गुनगाहा** = गुणगान करना। **भव थाहा** = संसार की गहनता, थाह **जोग** = योग साधना। **जग्य** = यज्ञ। **अधार** = आधार, सहारा। **भरोस** = विश्वास। **तजि** = छोड़कर। **गुन–ग्रामहि** = गुण समूह को। **प्रगट** = प्रत्यक्ष। **माहीं** = में। **पुनीत** = पवित्र। **मानस** = मानसिक। आन नहिं = दूसरा नहीं। **विमल** = निर्मल। **बिनहिं प्रयास** = बिना परिश्रम। **पद** = चरण। **महुँ** = में। **जेन केन विधि** = जिस किसी प्रकार से।

**प्रसंग**– व्याख्या हेतु प्रस्तावित पद्य–खण्ड हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में सगुण काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित संसार प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। काकभुशुण्डि गरुड के प्रश्नों के उत्तर देते हुए चारों युगों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं–

**व्याख्या**– हे खगराज ! चार युग होते हैं। जिनमें सतयुग प्रथम होता है। इस युग में सभी प्राणी योगी एवं अत्यन्त ज्ञानवान होते हैं। इस युग के प्राणी प्रभु का स्मरण करते रहकर भव-बंधन से मुक्त हो जाते हैं। त्रेता में मनुष्य विविध प्रकार के यज्ञ किया करते हैं। यह सृष्टि का दूसरा युग है। इसमें सभी अपने कर्मों को ईश्वर को समर्पित करके संसार के बंधन से छुटकारा प्राप्त कर लेते हैं। सृष्टि का तीसरा युग है द्वापर। इसमें मनुष्य श्री राम के चरणों की पूजा करके ही संसार-सागर से पार उतरते हैं इस युग के मनुष्यों के पास इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। सृष्टि का चतुर्थ युग कलियुग है। इस युग में संसार के प्राणी केवल श्री हरि के गुण-समूहों का गायन करने मात्र से ही भवसागर की थाह पा जाते हैं अर्थात् उद्धार प्राप्त कर लेते हैं। कलियुग में यहाँ के प्राणियों के लिए न तो किसी योग साधना की आवश्यकता है न किसी यज्ञ की और न ही किसी प्रकार का ज्ञान-विज्ञान ही यहाँ आवश्यक है। यहाँ तो बस श्री राम के गुणों के गायन को आधार बना लेने मात्र से काम चल जाते हैं। अतः जो प्राणी यहाँ अन्य सभी शक्तियों का भरोसा छोड़कर श्री राम का भजन करता है तथा अत्यन्त प्रेमभाव से उनके गुण समूहों का गान करता है वह संसार-सागर से पार पा जाता है इसमें कोई संदेह नहीं है। कलियुग में श्री राम के नाम का प्रताप केवल इसी से प्रगट हो जाता है। इस कलियुग का एक सबसे बड़ा एवं पवित्र प्रताप और भी और वह यह कि यहाँ मन में संकल्प किए हुए शुभ कर्मों का पुण्य तो प्राप्त हो जाता है किन्तु पाप-कर्मों के संकल्प का परिणाम पाप नहीं होता।

काकभुशुण्डि कहते हैं कि यदि मानव पूर्णतः विश्वास करें तो यह निश्चित है कि कलियुग के समान कोई दूसरा युग नहीं है अर्थात् यह चारों युगों में महत्वपूर्ण है। राम के निर्मल गुणों के बार-बार कथन करके मानव बिना प्रयत्न के ही संसार से पार होने में सक्षम है। शास्त्रों में धर्म के चार पद (चरण) कहे गये हैं – सत्य, दया, तप, दान। कलियुग में इन चारों में से एक दान ही प्रमुख माना गया है। यदि दान किसी न किसी प्रकार से किया जाता है तो वह दान कल्याण प्रदान करने वाला कहा गया है।

**काव्य-सौंदर्य**–

1. प्रस्तुत पद्य भाग से प्रतीत होता है कि जैसे कवि कलियुग के प्राणियों के समक्ष हार मानकर उनसे समझौता करने पर

उतर आया है। कुछ लोग चाहें तो इसे कवि की उदारता भी कह सकते हैं। यह समझौता हो या कवि की उदारता, इसने जन-साधारण पर उल्टा ही प्रभाव डाला जिससे धर्म की उपेक्षा और अधिक बलवती हो गई।

2. शास्त्र सम्मत चार युगों का विवेचन किया गया है तथा उनके कल्याण के उपायों पर भी प्रकाश डाला गया है।
3. कलियुग में भगवान का गुणगान व दान ये दो ही प्रमुख माने गये हैं जो कल्याण के साधन हैं।
4. तत्सम शब्दों का सुंदर प्रयोग हुआ है।
5. अवधी भाषा का शुद्ध प्रयोग हुआ है।
6. 'तर बिनहिं प्रयास' में विरोधाभास अलंकार है।
7. चौपाई छंद प्रथम आठ पंक्तियों में है।
8. अन्तिम चार पंक्तियों में दोहा छंद है।

**24.** **चौ.— नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदयँ राम माया के प्रेरे।।**
**सुद्ध तत्व समता विग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना।।**
**सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब विधि सुख त्रेता कर धर्मा।।**
**बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस।।**
**तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा।।**
**बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं।।**
**काल धर्म नहिं व्यापहिं ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही।।**
**नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न व्यापइ माया।।**
**दो.— हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहि।**
**भजिअ राम तजि काम सब अस विचारि मन माहिं।।**
**तेहिं कलिकाल बरष बहु बसेउँ अवध बिहगेस।**
**परेउ दुकाल विपति बस मैं गयउँ विदेस।।**

**शब्दार्थ**— **नित** = सदा। **सब केरे** = सभी के। **प्रेरे** = प्रेरित हुए। **समता** = समानता की भावना। **कृत** = सतयुग। **रति कर्मा** = कार्यों से प्रेम। **कर** = का। **बहुरज** = रज गुण की प्रधानता। **स्वल्प** = कम, थोड़ा। **मानस** = मन में। **विरोध** = वैर-भाव। **बुध** = ज्ञानवान्। **जुगधर्म** = युग का धर्म। **तजि** = छोड़ देते हैं। **व्यापहिं** = प्रभाव होना। **जाही** = जिसे। **नट कृत** = नट के द्वारा प्रदर्शित। **बिकट–कपट** = भयंकर माया जाल। **खगराया** = पक्षीराज गरुड़। **नट–सेवकहि** = नट के सेवक पर। **कृत** = किए गये। **न जाहि** = नहीं दूर होते।**तजि काम** = कामनाओं को छोड़कर। **अस** = इस प्रकार। **परेउ** = पड़ गया। **दुकाल** = अकाल। **गयउँ** = चला गया।

**प्रसंग**— व्याख्या हेतु प्रस्तावित पद्य–खण्ड हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन रामभक्ति काव्यधारा के प्रतिनिधि एवं श्रेष्ठ कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित संसार प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। गरुड़ से अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्त सुनाकर चारों युगों की विशेषताओं का वर्णन करता हुआ काकभुशुण्डि कहता है–

**व्याख्या**— कवि काकभुशुण्डि के माध्यम से कहते हैं — प्रत्येक युग के अपने-अपने धर्म होते हैं। भगवान् राम की माया से प्रेरित होकर वे सभी के हृदयों में रहते हैं। सतयुग का प्रभाव है—शुद्ध सात्विक गुणों का रहना, विशेष ज्ञान होना, समता भाव रखना, मन में सदा प्रसन्न रहना, इत्यादि। त्रेता युग के धर्म हैं—सत्व गुण की प्रधानता होने पर भी रजोगुण का अस्तित्व रहना, कर्मों के प्रति प्रेम, सभी तरह से सुख इत्यादि। द्वापर युग के धर्म हैं—रज गुण की अधिकता तथा कुछ सत्व गुण और तमो गुण का कुछ भाग हो, मन में प्रसन्नता होने पर भी अंतरंग में भय बना रहे। कलियुग का प्रभाव है—तामस गुण बहुत हो, रजोगुण कम हो, चारों ओर वैरभाव रहे। ज्ञानीजन इन चारों युगों के प्रभाव को अपने मन में जानते हैं, वे अधर्म का मार्ग छोड़कर धर्म के मार्ग में स्नेह रखते हैं। परन्तु जिसका राम के चरणों में सदा प्रेम रहता है उस पर काल धर्म का प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् कोई भी हानि नहीं होती है। जिस प्रकार जादूगर कपट-मार्ग अपनाकर जादू दिखाता है जिसका प्रभाव दर्शकों पर आश्चर्यजनक होता है, परन्तु नट के सेवक के लिए यह सामान्य है, मायाजाल नहीं है। कहने का अभिप्राय यह है कि इस नट की भाँति श्री राम भी बहुत बड़े नटराज हैं जो बैठे-बैठे सारे ब्रह्माण्ड को नचाया करते हैं परन्तु उनके भक्त एवं सेवकों पर उनकी माया का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि वे प्रभु के रूप और उनकी माया के प्रभाव को भली-भाँति जानते हैं।

काकभुशुण्डि गरुड़ से बोले कि श्री राम की माया से उत्पन्न गुण और दोषों का प्रभाव बिना उनके भजन के नहीं जाता अतः हृदय में ऐसा विचार करके तथा सभी कामनाओं का त्याग करके सदैव श्री राम का ही भजन करना चाहिए। हे खगराज ! इस कलियुग में कई वर्षों तक मैंने अयोध्या में निवास किया। एक बार वहाँ अत्यन्त भयंकर अकाल पड़ा तो विपत्ति का मारा हुआ मैं भी अयोध्या को छोड़कर विदेश चला गया।

**काव्य-सौंदर्य–**

1. यहाँ युग धर्मों का उल्लेख साँख्य के प्रकृति गुणों पर आधारित है। नट के रूपक द्वारा राम की माया के प्रभाव का वर्णन भी यहाँ अत्यन्त प्रभावकारी बन पड़ा है।
2. चार युगों की विशेषताएँ बताई गई हैं साथ में अधर्म को छोड़कर धर्म का मार्ग अपनाने पर प्रकाश डाला गया है।
3. तत्सम शब्दों का सुंदर प्रयोग किया गया है।
4. 'काल धर्म ..... माया' में उदाहरण अलंकार है।
5. अवधी भाषा का प्रयोग किया गया है।
6. चौपाई और दोहा छंद का प्रयोग किया गया है।

**25.** **चौ.– गयउँ उजेनी सुनु उरगारी। दीन मलीन दरिद्र दुखारी।।**
**गएँ काल कछु संपत्ति पाई। तहँ पुनि करउँ संभु सेवकाई।।**
**विप्र ऐक वैदिक सिव पूजा। करइ सदा तेहि काजु न दूजा।।**
**परम साधु परमारथ विदक। संभु उपासक नहिं हरि निंदक।।**
**तेहि सेवउँ में कपट समेता। द्विज दयाल अति नीति निकेता।।**
**वाहिज नम्र देखि मोहि साईं। विप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं।।**
**संभु मंत्र मोहि द्विजवर दीन्हा। सुभ उपदेस विविध विधि कीन्हा।।**
**जपउँ मंत्र सिव मंदिर जाई। हृदयँ दंभ अहमिति अधिकाई।।**
**दो.– मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह।**
**हरि जन द्विज जरउँ करउँ विष्नु कर द्रोह।।**
**सो.– गुर नित मोहि प्रबोध दुखित देखि आचरन मम।**
**मोहि उपजइ अति क्रोध दंभिहि नीति की भावई।।**

**शब्दार्थ–** **उरगारी** = गरुड़। **मलीन** = पापी। **दुखारी** = दुःखी, व्याकुल। **गएँ काल** = कुछ समय बीता। **कछु** कुछ। **तहँ** = वहाँ। **पुनि** = फिर। **सेवकाई** = सेवा करना। **विप्र** = ब्राह्मण। **तेहि** = उसकी। **काजु न दूजा** = अन्य काम नहीं था। **विंदक** = ज्ञाता। **नंदक** = निन्दा करने वाला। **कपट समेता** = छल कपट मन में रखकर। **नीति–निकेता** = नीति का मन्दिर। **वाहिज** = व्यवहार से। **साईं** = स्वामी। **मोहि** = मुझे। **पुत्र की नाईं** = पुत्र के समान। **दीन्हा** = दिया। **अहमिति अधिकाई** = बहुत अधिक अहंकार। **खल** = दुष्ट। **मल** = पापी। **संकुल मति** = संकुचित विचार। **बस मोह** = मोह के वशीभूत। **हरिजन** = हरि के भक्त। **जरेउँ** = जलता था। **करउँ** = करता था। **प्रबोध** = समझाना। **आचरन मम** = मेरा व्यवहार। **उपजइ** = पैदा होता था। **दंभिहि** = अहंकारी से। **कि** = क्या। **भावई** = अच्छी लगती है।

**प्रसंग–** व्याख्या हेतु प्रस्तावित पद्य–खण्ड राम भक्ति काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। पक्षियों के स्वामी गरुड़ के प्रश्नों का उत्तर देते हुए काकभुशुण्डि ने अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाया और बताया कि पूर्वजन्म के एक कल्प में वह शूद्र की योनि में जन्मे थे। कलियुग के प्रभाव के कारण वहाँ अकाल फैल गया था। अपने पूर्व जन्म की कथा कहता हुआ काकभुशुण्डि कहता है–

***व्याख्या–*** अपने बीते हुए जीवन की एक घटना का उल्लेख करते हुए काकभुशुण्डि कहने लगे कि – हे सर्पों के शत्रु गरुड़ सुनें ! अयोध्या में अकाल की स्थिति के उत्पन्न होने पर मैं अत्यन्त व्याकुल, उदास, दरिद्र और दुःखी होकर भटकता हुआ उज्जैन जा पहुँचा। वहाँ कुछ साल तक रहकर तथा कुछ सम्पत्ति एकत्रित करके मैं वहीं भगवान् शंकर की आराधना करने लगा। वहीं एक ब्राह्मण वैदिक-रीति से सदैव भगवान् शिव की उपासना किया करते थे, उन्हें भगवान् शिव की इस उपासना के अतिरिक्त और कोई भी दूसरा कार्य न था। वे परम साधु भगवान् और परमार्थ के ज्ञाता अर्थात् ब्रह्म के रहस्य को जानने वाले थे। यद्यपि वे केवल भगवान

शिव के ही उपासक थे तथापि उन्होंने कभी भी भूल से भी श्री हरि की निंदा नहीं की। मैं इन्हीं दयालु एवं नीतिज्ञ ब्राह्मण की छल-कपट से मुक्त सेवा करता रहा। हे स्वामी ! बाहर से अत्यन्त विनम्र देखकर वे ब्राह्मण मुझे अपने पुत्र के समान मानकर पढ़ाने लगे। उन्होंने मुझे शिव-मंत्र प्रदान किया तथा अनेक प्रकार के कल्याणकारी उपदेश भी दिए। मैं शिव मंदिर में जाकर ब्राह्मण द्वारा दिए गए मंत्र का जाप करता था, मेरे मन में दंभ और अहंकार की भावना समाहित हो गई।

काकभुशुण्डि कहता है कि मैं इतना दुष्ट, संकुचित विचार वाला, नीच जाति का था कि मोह के वशीभूत होकर मैं जब हरि के उपासकों व ब्राह्मणों को देखा तो जल उठा अर्थात् मुझमें ईर्ष्या पैदा हो गई और विष्णु भगवान से द्रोह करने लगा। मेरे इस व्यवहार को देखकर गुरुजी मुझे बहुत समझाते थे तथा कभी-कभी मेरे इस प्रकार के व्यवहार को देखकर उन्हें दुःख भी होता था। परन्तु मेरे अन्दर उनके उपदेशों से क्रोध ही पैदा होता था, क्योंकि घमण्डी को कभी भी नीति अच्छी नहीं लगती।

***काव्य-सौंदर्य–***

1. माया, मोह और अहंकार सज्जन पुरुषों को भी पथभ्रष्ट कर डालते हैं, यहाँ यही ध्वनित है।
2. काकभुशुण्डि द्वारा अपने पूर्व जन्म की कथा सुनाई गई है।
3. यहाँ काकभुशुण्डि की भक्ति भावना प्रदर्शित हुई है।
4. तत्सम शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
5. अन्तिम पक्तियों में अर्थान्तरन्यास अलंकार है।
6. प्रथम आठ पंक्तियों में चौपाई छंद है।
7. अन्तिम पंक्तियों में दोहा और सोरठा छंद का प्रयोग हुआ है।

**26.** **चौ.– एक बार गुर लीन्ह बोलाई। मोहि नीति बहु भाँति सिखाई।।**
**सिव सेवा कर फल सुत सोई। अविरल भगति राम पद होई।।**
**रामहि भजहिं तात सिव धाता। नर पावँर कै केतिक बाता।।**
**जासु चरन अज सिव अनुरागी। तासु द्रोहँ सुख चहसि अभागी।।**
**हर कहुँ हरि सेवक गुर कहेऊ। सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ।।**
**अधम जाति मैं विद्या पाएँ। भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ।।**
**मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुर कर द्रोह करउँ दिनु राती।।**
**अति दयाल गुर स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा।।**
**जेहि ते नीच बड़ाई पावा। सो प्रथमहि हति ताहि नसावा।।**
**धूम अनल संभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई।।**
**रज मग परी निरादर रहई। सब कर पद प्रहार नित सहई।।**
**मरुत उड़ाव प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई।।**
**सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुध नहिं करहिं अधम कर संगा।।**
**कवि कोबिद गावहिं असि नीति। खन सन कलह न भर नहिं प्रीति।।**
**उदासीन निज रहिअ गोसाईं। खल परिहरिअ स्वान की नाई।।**
**मैं खल हृदयँ कपट कुटिलाई। गुर हित कहइ न मोह सोहाई।।**
**दो.– एक बार ही मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम।**
**गुरु आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम।।**
**सो दयाल नहिं कहेउ कछु मन न रोष लवलेस।**
**अति अघ गुर अपमानता सहि नहि सके महेस।।**

**शब्दार्थ– बोलाई** = बुलाया। सिखाई = शिक्षा दी। **कर** = का। **अविरल** = निरन्तर। **धाता** = ब्रह्मा। **नर पाँवर** = नीच मनुष्य। **केतिक** = कितनी, क्या ? **अज** = ब्रह्मा। **अभागी** = अभागे। **खगनाथ** = गरुड़। **दहेऊ** = क्रोधित हुआ। **अधम** = नीच। **भयऊँ** = हो जाता है। **अहि** = सर्प। **कुटिल** = कठोर। **स्वल्प** = बहुत थोड़ा। **सुबोध** = सुज्ञान। **बड़ाई** = बड़प्पन। **नसावा** =

नष्ट करता है। **धूम** = धुआँ। **अनल** = अग्नि। **संभव** = उत्पन्न। **घन पदवी पाई** =बादल बनकर। **रज मग** = मार्ग की धूलि। **परी** = पड़ी रहती है। **निरादर बहई** = अपमान सहन करती है। **पद–प्रहार** = पैरों की ठोकर। **मरुत** = वायु। **तेहि मरहि** = उसी में मर जातीं हैं। **नृप** = राजा। **किरीटन्हि** = मुकुट। **खगपति** = गरुड़। **धुध** = बुद्धिमान। **अधम** = नीच। **कोबिद** = बुद्धिमान। **असि** = इस प्रकार की। **खल सन कलह** = दुष्ट से झगड़ा। **उदासीन** = मध्यस्थ। **खल** = दुष्ट। **परिहरि** = छोड़ दे। **स्वान की नाई** = कुत्ते के समान। **सोहाई** = अच्छी न लगती थी। **उर** = हृदय। **रोष** = क्रोध। **लवलेस** = थोड़ा सा। **अघ** = पाप। **अपमानता** = अपमान करना। **महेस** = शिव।

**प्रसंग**– व्याख्या हेतु प्रस्तावित पद्य–खण्ड हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में रामभक्ति काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि के रूप में ख्याति प्राप्त, संसार को 'रामचरितमानस' जैसा महाकाव्य प्रदान करने वाले 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित है। यह पद्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड का अंश है। इसमें बताया गया है कि काकभुशुण्डि अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाकर गरुड़ के प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करता है और अपनी शिक्षा-दीक्षा के विषय में बताता है। काकभुशुण्डि कहता है कि मुझे सज्जन तथा ज्ञानी गुरु ने शिक्षा प्रदान की और पुत्र के समान मेरा पालन किया, परन्तु मुझे अहंकार सदा दुःखी करता रहा। गुरु जी मुझे बार-बार समझाते परन्तु मेरा दंभ कम नहीं हुआ।

**व्याख्या**– काकभुशुण्डि खगराज गरुड़ से कहने लगे कि हे खगराज गरुड़ ! एक बार गुरुजी ने मुझे अपने पास बुलाया और बड़े स्नेह के साथ मुझे नीतिपूर्वक अधर्म के मार्ग का त्याग करने के लिए अनेक प्रकार के शिक्षाप्रद उपदेश दिए। उन्होंने कहा कि हे पुत्र ! शिवजी की सेवा करने का यही फल है कि श्रीराम के चरणों में निरन्तर भक्ति उत्पन्न हो। राम की भक्ति का बहुत प्रभाव है। उनकी भक्ति तो स्वयं भगवान शिव और ब्रह्म भी किया करते हैं फिर अधम मनुष्य या नीच मनुष्य तो भला किस गिनती में ? हे भाग्यहीन ! जिस राम के चरणों में ब्रह्मा और शिव स्नेह रखते हैं उन्हीं के प्रति विद्रोह करके क्या तू सुख पाने की कामना कर सकता है ? जब मेरे गुरु ने शिव को भी राम की सेवा करने वाला कहा तो हे खगराज ! यह सुनते ही मेरा हृदय क्रोध से जल उठा, मुझे बहुत क्रोध आया। मैं नीच जाति का तो था ही अतः विद्या पाकर मैं [illegible] मदान्ध हो उठा जैसे दूध पिलाने से सर्प मोटा और विषैला हो जाया करता है। मैं स्वभाव से अत्यन्त अभिमानी, कुटिल और नीच जाति का होने के कारण दिन-रात अर्थात् निरन्तर गुरु के प्रति द्रोह भावना रखता था, लेकिन वे इतने दयालु स्वभाव के थे कि उन्हें तनिक भी क्रोध नहीं आता था। मेरे बार-बार क्रोध करने पर भी वे मुझे उत्तम ज्ञान की शिक्षा ही दिया करते थे। काकभुशुण्डि बोले कि हे खगराज ! आप तो जानते हैं कि नीच मनुष्य का स्वभाव ही कुछ ऐसा होता है। वह जिससे भी बड़ाई प्राप्त करता है सर्वप्रथम उसी को मारकर उसी का नाश किया करता है। हे गरुड़ सुनिए, जिस प्रकार आग से उठा हुआ धुआँ जब मेघ मे परिवर्तित हो जाता है तो वर्षा के रूप में जल बरसाकर सबसे पहले वह उसी अग्नि को बुझा देता है जिससे उसकी उत्पत्ति संभव हुई थी। धूल सदा रास्ते में पड़ी रहती है। सभी के पैरों के प्रहार सहन करती है। परन्तु जब हवा उसी धूल को ऊँचाई की ओर ले उड़ती है तो सबसे पहले वह धूल उसी हवा में भरकर उसे धुँधला कर देती है और फिर राजाओं की आँखों और उनके मुकुटों पर गिरकर उन्हें मलिन कर देती है या उन पर जम जाती है। हे पक्षीराज गरुड़ ! धूल की इसी तुच्छता के कारण बुद्धिमान नीच व्यक्तियों की संगति नहीं करते। पण्डित और बुद्धिमान इसी प्रकार की नीति कहते हैं – दुष्ट से न झगड़ा करना अच्छा है और न प्रेम करना अच्छा है। हे गोसाँई ! ऐसे दुष्ट से तो हमेशा दूर रहना ही अच्छा है। दुष्ट व्यक्ति को कुत्ते के समान छोड़ देना चाहिए। काकभुशुण्डि कहता है एक तो मैं वैसे ही दुष्ट था दूसरे मेरा हृदय भी अत्यन्त कठोर एवं कुटिलता से युक्त था। अतः गुरु यद्यपि सदैव मेरे ही कल्याण की बात कहा करते थे तथापि वह मुझे कभी भली प्रतीत नहीं होती थी और मैं हमेशा उनकी बातों का निरादर करता था।

आगे काकभुशुण्डि अपने जीवन की किसी घटना का उल्लेख करते हुए कहते हैं, हे खगराज! एक बार की बात है मैं शिव मंदिर में बैठा हुआ भगवान शिव के नाम का जाप कर रहा था वहाँ मेरे गुरु आ पहुँचे। मैंने अपने अभिमानी स्वभाव के कारण उठकर उन्हें प्रणाम तक भी नहीं किया। गुरु अत्यन्त दयावान थे, उन्होंने मुझसे कुछ भी नहीं कहा और न ही उनके हृदय में तनिक भी क्रोध उत्पन्न हुआ। गुरु का अपमान बहुत बड़ा पाप होता है, इसी कारण शिवजी मेरे द्वारा किया गया गुरुजी का अपमान सहन नहीं कर पाए।

**काव्य-सौंदर्य**–

1. ऐसा लगता है कि तुलसी के शिव को भी रामभक्त कहने पर शैव सम्प्रदाय के अनुयायियों ने उनका विरोध किया होगा उसी को यहाँ काकभुशुण्डि के माध्यम से ध्वनित कर दिया गया है।
2. तुलसी समन्वयवादी थे उनका सारा काव्य इसी समन्वय ही की चेष्टा से ओत-प्रोत दिखाई पड़ता है। तुलसी ने शैव और वैष्णव सम्प्रदाय में भी समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया जिसके कारण उन्हें पर्याप्त विरोध का सामना भी

करना पड़ा। जिन शैव सम्प्रदाय के अनुयायियों ने महाकवि का विरोध किया लगता है उन्हीं में से किसी का प्रतिनिधित्व यहाँ काकभुशुण्डि कर रहे हैं।

3. काकभुशुण्डि ने अपने पूर्वजन्म की कहानी सुनाई और बताया है कि उन्हें अहंकार हो गया था, जो उसके लिए शोभनीय नहीं है।
4. अलंकार — 'नर पाँवर कै केतिक बाता' में वक्रोक्ति अलंकार है।
   'भयउं जथा अहि दूध पिआएं' में उपमा अलंकार है।
   'दयाल' में परिकशंकुर अलंकार है।
   'खल परिहरिस्वान की नाई' में उपमा अलंकार है।
   'जेहि ..... पाई' में दृष्टान्त अलंकार है।
5. 'बुध नहिं करहिं अधम कर संगा' तथा 'खल सन कलह न नहिं प्रीति' में सूक्तियाँ हैं।
6. तत्सम शब्दावली का प्रयोग है।
7. अवधी भाषा का सुंदर प्रयोग है।

**27.** चौ.– **मंदिर माझ भई नभवानी। रे हतभाग्य अग्य अभिमानी।।**
**जदपि तव गुर के नहि क्रोधा। अति कृपाल चित सम्यक् बोधा।।**
**तदपि साप सठ दैहउँ तोही। नीति विरोध सोहाइ न मोही।।**
**जी नहिं दंड करी खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा।।**
**जे सठ गुर सम इरिषा करहीं। रौरव नरक कोटि जुग परहीं।।**
**त्रिजग जोनि पुनि धरहिं सरीरा। अयुत जन्म भरि पावहि पीरा।।**
**बैठ रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति व्यापी।।**
**महा बिटप कोटर महुँ जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई।**
दो.– **हाहाकार कीन्ह गुर दारुर सुनि सिव साप।**
**कंपित मोहि विलोकि अति उर उपजा परिपाप।।**
**करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सम्मुख कर जोरि।**
**विनय करत गदगद स्वर समुझि घोर गति मोरि।।**

**शब्दार्थ**— **मंदिर माझ** = मंदिर के मध्य में से। **नभवानी** = आकाशवाणी। **रे हतभाग्य !** = हे दुर्भाग्यशालिन्। **अज्ञ** = अज्ञानी। **सम्यक् बोध** = सच्चा ज्ञान। **सठ** = मूर्ख। **सोहाइ न मोहि** = मुझे रुचिकर नहीं है। **खल** = दुःख। **तोरा** = तेरा। **श्रुतिमारग** = शास्त्र का मार्ग। **मोरा** = मेरा। **सन** = से। **कोटि जुग परहीं** = करोड़ों युगों तक पड़े रहोगे। **त्रिजग** = तिर्यञ्च। **पुनि** = फिर, तत्पश्चात्। **अयुत** = दश हजार। **पीरा** = पीड़ा। **रहेसि** = रहा। **सर्प** = साँप। **खल** = दुष्ट। **मल** = पाप। **व्यापी** = भर गयी। **महा विटप** = विशाल वृक्ष। **महुँ** = में। **अधमाधम** = नीच से भी नीच। **अधगति** = तुच्छ गति। **दारुण** = कठोर। **विलोकि** = देखकर। **उर** = हृदय। **परिताप** = संताप, दुःख। **कर जोरि** = हाथ जोड़कर। **गद्‌गद् स्वर** = काँपते हुए स्वर से। **घोर गति मोर** = मेरी तुच्छतम गति।

**प्रसंग**— व्याख्येय पद्य–खण्ड रामभक्ति काव्य–परम्परा के सर्वश्रेष्ठ व लोकप्रिय कविवर 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा प्रणीत महाकाव्य व धर्मकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। काकभुशुण्डि गरुड़ को अपने पूर्वजन्मों की कथा कहता है कि एक जन्म में वह अहंकारी शिवोपासक हो गया था। गुरु के समझाने पर भी नहीं मानता था। एक बार वह शिव के मन्दिर में बैठा था। गुरु के आने पर भी उसने गुरु का अभिवादन नहीं किया। सज्जन गुरु जी ने दया के कारण उसे कुछ नहीं कहा, परन्तु शिवजी शान्त नहीं रह सके।

**व्याख्या**— काकभुशुण्डि गरुड़ से कहने लगे — हे खगराज ! उसी समय मन्दिर में आकाशवाणी हुई — हे दुर्भाग्यशाली ! अज्ञानी अहंकार ! यद्यपि तुम्हारे गुरु को तनिक भी क्रोध नहीं आया, क्योंकि वे अत्यन्त कृपालु हैं, तुम पर दया एवं कृपा करने वाले हैं। वे सरल स्वभावी और ज्ञानवान हैं तो भी हे मूर्ख ! मैं तुझे शाप देता हूँ क्योंकि नीति का विरोध मुझे रुचिकर नहीं है। हे दुष्ट

! यदि मैंने तुम्हें शाप नहीं दिया तो शास्त्रों का मार्ग भ्रष्ट हो जाएगा। तुमने गुरु का अपमान किया है। गुरु पूज्य होता है अपमान के योग्य नहीं होता। जो मूर्ख अपने गुरु से इस प्रकार ईर्ष्या करता है, अपमान करता है। वह करोड़ों युगों तक घोर नरक का अधिकारी बने रहते हैं और फिर वहाँ से निकलकर तिर्यक अर्थात् पशु-पक्षियों आदि की योनियों में जन्म पाकर दस हजार जन्मों तक विविध प्रकार की यातनाएँ भोगा करते हैं। काकभुशुण्डि कहते हैं कि इसके पश्चात् भगवान शिव ने मुझे शाप देते हुए कहा कि - हे पापी ! तेरी बुद्धि इतने अधिक पाप से ढकी हुई है कि तू अपने गुरु के समक्ष अजगर की भाँति बैठा रहा। अतः हे दुष्ट ! तू तत्काल ही सर्प योनि को प्राप्त करो। और हे महानीच ! पापी! तुम्हारी बुद्धि पाप से भर गई है। तुम सर्प बनकर किसी विशाल वृक्ष की खोखल (कोटर) में जाकर रहो। हे नीच से भी नीच अब तुम इस नीच योनि को प्राप्त करो।

काकभुशुण्डि बोले कि मेरे लिए भगवान् शिव के ऐसे भयंकर शाप को सुनकर वे दयालु गुरु हाहाकार करने लगे। उनके हृदय में बड़ा दुःख हुआ। इस भयंकर शाप के भय से मुझे काँपता देखकर गुरुजी का हृदय अंदर से द्रवित हो उठा। उनके मन में मेरे लिए प्रेम का सागर हिलोरें लेने लगा। इसके बाद वे दयावान गुरु शिव को दण्डवत प्रणाम करके प्रेमपूर्वक उनके समक्ष हाथ जोड़कर तथा मेरे भयंकर दण्ड का विचार करके गद्‌गद् स्वरों में भरकर विनती करने लगे।

**काव्य-सौंदर्य–**

1. यहाँ गुरु को ईश्वर के समान स्थान प्रदान किया गया है, जिसके अपमान से स्वयं भगवान भी अप्रसन्न हो जाते हैं।
2. रौरव नामक नरक सबसे अधिक दुःखदायक होता है।
3. गुरु अपने बुरे शिष्य के लिए भी सदैव मंगल कामना ही किया करते हैं।
4. 'बैठि रहेसि अजगर इव पापी' में उपमा अलंकार है।
5. तत्सम शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
6. अवधी भाषा का सुंदर प्रयोग है।
7. चौपाई और दोहा छंद का सुंदर प्रयोग है।

**28.** **चौ.– नमामीशमीशान निर्वाणरूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।**
**निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदकाशमाकाशवासं भजेऽहं।।**
**निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।**
**करालं महाकातकालं कृपालं। गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।**
**तुषाराद्रि संकास गोरं गभीरं। मनोभूत कोटि प्रभा श्रीशरीरं।**
**स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा। लसद्‌भालबालेन्दु कंठे भुजंगा।।**
**चलत्कुंडलं भ्रूसुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं।**
**मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि।।**
**प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानुकोटिप्रकाशं।।**
**त्रयः शूल निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यं।।**
**कलातीत कल्याण कल्पान्तकारी। सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी।।**
**चिदानदं संदोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी।।**
**न यावद् उमानाथ पादारविन्दं। भजंतीह लोके परे वा नराणां।।**
**न तावत्सुखं शान्ति सन्तापनाशं। प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासं।।**
**न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं।।**
**जरा जन्म दुःखौघ तातप्यमानं। प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो।।**
**श्लोक– रुद्राष्टकमिदं प्रोक्त विप्रेण हरतोषये।**
**ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषाँ शम्भूः प्रसीदति।।**

**दो – सुनि बिनती सर्वग्य सिव देखि विप्र अनुरागु।**
**पुनि मंदिर नभबानी भइ द्विजवर विर मांगु।।**
**जौं प्रसन्न प्रभु मा पर नाथ दीन पर नेहु।**
**निज पद भगति देइ प्रभु पुनि दूसर वर देहु।।**
**तब माया बस जीव जड़ संतत फिरइ भुलान।**
**तेहि पर क्रोध न करिए प्रभु कृपासिंधु भगवान।।**
**संकर दीनदयाल अब एहि पर होहु कृपाल।**
**साप अनुग्रह होइ जेहिं नाथ थोरेहीं काल।।**

**शब्दार्थ**– **नमामि** = नमस्कार करता हूँ। **ईशं** = भगवान् की। **निर्माण रूपं** = मोक्ष स्वरूप। **आकाशवासं** = आकाश रूपी कपड़े को धारण करने वाले, नग्न, दिगम्बर। **गिरा** = वाणी। **गोतीतम्** = वाणी से परे। **करालं** = भयंकर। **गुणागार** = गुणों के घर। **तुषाद्रि** = हिमालय। **संकाशगौरं** = समान गौर वर्ण के। **मनोभूत** = काम देव रूप। **कोटि** = करोड़ों। **स्फुरन्–मौलि** = मस्तक पर विद्यमान। **कल्लोलिनी** = नदी। **चारु** = सुन्दर। **लसद्** = शोभायमान। **भाल बालेन्दु** = माथे पर चन्द्रकला। **भुजंगा** = सर्प। **चलत्** = हिलते हुए। **प्रसन्नाननं** = प्रसन्न, मुख वाले। **मृगाधीशचर्माम्बर** = सिंह चर्म रूपी वस्त्र धारण करने वाले। **परेशं** = परमेश्वर। **अजं** = अजन्मा। **भानु कोटि प्रकाशं** = सौ सूर्य के समान प्रभा वाले। **निर्मूलनं** = दुखों को नष्ट करने वाले। **भावगम्यं** = भावों के द्वारा ज्ञात। **पुरारी** = त्रिपुर के शत्रु। **प्रसीद** = प्रसन्न हो जाइए। **मन्मथारी** = कामदेव के शत्रु। **यावद्** = जब तक। **पादारविन्दम्** = चरण कमलों को। **इह लोके परे वा** = इस लोक और परलोक में। **दुःखौघ तातप्यमानं** = दुःख समूह से सन्तप्त। **पाहि** = रक्षा करो। **नभवानी** = आकाशवाणी। **प्रसीदति** = प्रसन्न हो जाते हैं। **निजपद** = अपने चरण। **संतत** = सदा। **अनुग्रह होई** = कृपा होवे। **थोरेहीं काल** = कम समय के लिए।

**प्रसंग**– प्रस्तुत प्रस्तावित व्याख्येय पद्य–खण्ड हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन रामभक्ति काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। इसमें बताया गया है कि जब भगवान् शिव काकभुशुण्डि पर क्रोधित होकर गुरु के अपमान करने के कारण भयंकर शाप देते हैं तभी गुरु अपने शिष्य के प्रति दया भावना से भरकर भगवान् शिव से प्रार्थना करते हैं जिससे शिष्य को शाप की घोर यातना सहन न करनी पड़े। वे प्रार्थना करते हुए कहते हैं–

**व्याख्या**– गुरु भगवान् शिव से प्रार्थना करते हुए कहते हैं – हे ईशान दिशा के ईश्वर, हे मोक्ष के साक्षी स्वरूप, विभु, व्यापक, ब्रह्म और वेद-मूर्ति शिव ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। हे आत्मरूप, माया के सब गुणों से अछूते, भेदरहित, इच्छारहित, चेतन आकाश रूप वाले, आकाश ही जिनका वस्त्र है, हे ऐसे शिव मैं आपकी शरण में हूँ। हे निराकार, ओंकार के आधार, तुरीय अर्थात् तीनों गुणों से प्रभावित न होने वाले, वाणी और इन्द्रियों की पहुँच से परे, कैलाशपति, विकराल महाकाल के भी काल, कृपा के भण्डार, गुणों के भण्डार तथा संसार से दूर रहने वाले हे शिव ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। जो हिमालय के समान गौरवर्ण वाले, गंभीर, करोड़ों कामदेवों के समान सौंदर्य और शोभा से भरे हुए शरीर वाले हे शिव ! जिनके सिर पर सुंदरता से युक्त गंगा कलकल करती हुई लहरा रही है, जिनके मस्तक पर बालचन्द्र अर्थात् द्वितीया का चंद्र तथा कण्ठ में सर्प शोभा दे रहा है। जिनके कानों में कुण्डल अपनी चंचलता के साथ विद्यमान है, जिनकी भौंहे तथा नेत्र अत्यन्त विशाल हैं जिनके मुख पर सदैव ही प्रसन्नता विद्यमान रहती है जो नीलकण्ठ और दयालु हैं, जो सिंह की खाल ओढ़े रहते हैं और मुण्डों की माला धारण करते हैं तथा सबके स्वामी हैं ऐसे प्रिय शिव का मैं भजन करता हूँ, जो प्रचंड, श्रेष्ठ, तेजस्वी शक्ति के स्वामी अखण्ड और अजन्मा हैं, जिनका प्रकाश करोड़ों सूर्यों के समान हैं जो दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों पापों का जड़ सहित नष्ट कर डालते हैं, जो हाथ में त्रिशूल धारण किए रहते हैं तथा जो केवल सच्चे भाव से ही प्राप्त हो पाते हैं, ऐसे भवानीपति शंकर को मैं नमस्कार करता हूँ। सब कलाओं से अछूते, कल्याण रूप वाले, कल्प का अंत कर पाने में समर्थ, सज्जनों को सदैव आनंद प्रदान करने वाले, त्रिपुर के शत्रु, सच्चिदानन्दधन, सारा मोह दूर करने वाले, कामदेव के शत्रु, हे प्रभु ! आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। हे पार्वती के पति, जब तक मनुष्य आपके चरण कमलों का भजन नहीं करते तब तक न तो उन्हें इस लोक में सुख एवं शांति मिल पाती है न परलोक में और न उनके पाप ही दूर हो पाते हैं। अतः हे समस्त जीवों के हृदयों में निवास करने वाले हे प्रभो ! आप प्रसन्न हो जाइए। मैं न तो योग जानता हूँ, न जप और न पूजा ही। मैं तो है शिव ! सदैव आपको ही प्रणाम करता रहता हूँ। अतः हे शिव बुढ़ापे तथा बार-बार जन्म लेने के दुःखों की बाढ़ से संतप्त मुझे अपनी शरण में आए हुए को बचा लीजिए। हे ईश्वर, हे शिव शंभु ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

काकभुशुण्डि अपने गुरु द्वारा की गई भगवान शिव की स्तुति का महत्व बताते हुए कहते हैं कि हे पक्षीराज ! भगवान शंकर को प्रसन्न करने के लिए जो स्तुति गुरु जी ने की है इसका पाठ यदि मनुष्य भक्तिपूर्वक करे तो भगवान् उस पर सदैव प्रसन्न रहते हैं।

काकभुशुण्डि कहते हैं कि गुरु द्वारा की गई स्तुति को सुनकर तथा ब्राह्मण गुरु का विशेष प्रेम देखकर भगवान शिव प्रसन्न हो गए। तभी मंदिर में एक बार पुनः आकाशवाणी हुई कि हे द्विजश्रेष्ठ ! हे ब्राह्मण ! आप पर मैं प्रसन्न हूँ। आप चाहे जो वरदान माँगें। इस आकाशवाणी को सुनकर गुरु बोले हे प्रभु ! यदि आप मुझ दीन पर प्रसन्न हैं और आपका मुझ दीन पर अपार स्नेह है तो पहले वरदान के रूप में आप मुझे अपने चरणों की भक्ति प्रदान करके एक दूसरा वरदान भी दें — हे प्रभो ! आपकी माया के वशीभूत होकर यह मूर्ख प्राणी संसार में निरन्तर भ्रम में पड़कर भ्रमण करता रहता है। हे कृपा के सागर भगवान शिव ! आप उन पर क्रोध न करें। हे दीनों पर दया करने वाले शंकर भगवान् ! इस मेरे सेवक पर भी कृपा करें कि कुछ ही समय में आपके द्वारा दिए गए शाप से इसे मुक्ति मिल जाए। पुनः इसे आपकी कृपा प्राप्त हो जाए।

**काव्य-सौंदर्य—**

1. यहाँ शिव के रूप ही का गायन किया गया है।
2. यह स्तुति स्रोत की परम्परा में ही है। अतः संस्कृत का प्रयोग किया गया है। बौद्धों द्वारा प्रयोग की जाने वाली संस्कृत के समान यहाँ की व्याकरण का पालन शिथिलता से हुआ है।
3. गुरु अपने शिष्य के प्रति हमेशा दयावान होता है। शिष्य के लिए ही गुरु ने भगवान् शिव से प्रार्थना की जिससे शाप ग्रस्त शिष्य शीघ्र शाप मुक्त हो सके।
4. स्तुति में भगवान् शिव का गुणगान व क्षमाभाव है।
5. 'गुणागारं', 'पादारनिन्द' में रूपक अलंकार है।
6. प्रथम अठारह पंक्तियों में संस्कृत का सुंदर प्रयोग हुआ है। शेष आठ पंक्तियों में अवधी भाषा का उत्कृष्ट रूप प्रयुक्त हुआ है।
7. अन्तिम आठ पंक्तियों में दोहा छंद है।

**29.** **चौ.— एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना।।**
**विप्र गिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु इति भइ नभबानी।।**
**जदपि कीन्ह एहिं दारुन पापा। मैं पुनि दीन्हि कोप करि सापा।।**
**तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहउँ एहि पर कृपा विसेषी।**
**छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी।।**
**मोर श्राप द्विज व्यर्थ न जाइहि। जन्म सहस अवस्य यह पाइहि।।**
**जनमत मरत दुसह दुख होई। एहि स्वल्पउ नहिं व्यापिहि सोई।।**
**कवनेउँ जन्म मिटिहिं नहिं ग्याना। सुनहि सूद्र मम वचन प्रवाना।।**
**रघुपति पुरीं जन्म तब भयऊ। पुनि ते मम सेवाँ मन दयऊ।।**
**पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरें। राम भगति उपजिहि उर तोरें।।**
**सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरितोषण व्रत द्विज सेवकाई।।**
**अब जनि करहि विप्र अपमाना। जानेसु संत अनंत समाना।।**
**इंद्र कुलिस मम सूल विसाला। कालदँड हरि चक्र कराला।।**
**जो इन्ह कर मारा नहिं मरई। बिप्र द्रोह पावक सो जरई।।**
**अस विवेक राखेहु मन माहीं। तुम्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।**
**औरउ एक आंसिषा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी।।**
**दो.— सुनि सिव वचन हरषि गुर एवमस्तु इति भाषि।**
**मोहि प्रबोधि गयउ गृह संभु चरन उर राखि।।**

**प्रेरित काल विंधि गिरि जाइ भयउँ मैं ब्याल।**
**पुनि प्रयास बिनु सो तनु तजेउँ गएँ कछु काल।।**
**जोइ तनु धरउँ तजउँ पुनि अनायास हरिजान।**
**जिमि नूतन पट पहिरह नर परिहरइ पुरान।**
**सिव राखी श्रुति नीति अरु मैं नहिं पावा क्लेस।।**
**एहि विधि धरेउ विखधि तनु ग्यान न गयउ खगेस।।**

**शब्दार्थ**— **ऐहि कर** = इसका। **गिरा** = वाणी। **परहित सानी** = परोपकार से भरी हुई। **एवमस्तु** = ऐसा ही हो। **नभवानी** = आकाशवाणी। **दारुन्ह** = भयंकर। **कोप करि सापा** = क्रोध करके शाप दिया। **खरारी** = राक्षसों के शत्रु राम। **पाइहि** = प्राप्त करेगा। **जनमत–मरत** = जन्म लेने पर व मरने पर। **दुसह दुख** = असहनीय कष्ट। **स्वल्पउ** = थोड़ा–सा भी। **व्यापिहि सोई** = वह प्रभाव दिखाएगा। **कवनेऊँ** = किसी भी। **प्रवाना** = प्रामाणिक। **रघुपति** = सेवा में। **मनदयउँ** = मन लगाया है। **पुरी प्रभाव** = अयोध्या का प्रभाव। **अनुग्रह मोरे** = मेरी दया। **उत तोरे** = तेरे हृदय में। **हरितोषण** = भगवान् को प्रसन्न करने वाला। **कुलिस** = वज्र। **कराला** = भयंकर। **इन कर मारा** = इनके मारने से। **पावक** = अग्नि। **तुम कहँ** = तुम्हारे लिए। **आसिषा** = आशीर्वाद। **अप्रतिहत गति** = बिना रुकावट के गति। **भाषि** = कहा। **प्रबोधि** = समझाकर। **संभुचरण** = शिव के पैरों में। **प्रेरित काल** = समय की प्रेरणा प्राप्त करके। **विंधि गिरि** = विन्ध्याचल। **व्याल** = साँप। **प्रयास बिनु** = बिना परिश्रम के। **तनु तजेउँ** = शरीर छोड़ता था। **अनायास** = बिना कष्ट के। **जिमि** = जैसे। **पट** = कपड़ा। **पहिरह** = पहिनता है। **परिहरइ पुरान** = पुराने छोड़ देता है। **विविधि** = अनेक। **खगेश** = गरुड़।

**प्रसंग**— प्रस्तुत व्याख्या हेतु पद्य–खण्ड हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में रामभक्ति काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि के रूप विख्यात 'तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से अवतरित किया गया है। इसमें बताया गया है कि जिस समय (पूर्वजन्म) काकभुशुण्डि ने अपने गुरु का अपमान किया और गुरु के अपमान से भगवान् शिव रुष्ट हो गए, फलस्वरूप उन्हें शाप दिया। स्वयं गुरु अपने शिष्य के इस शाप से व्यथित हो उठे, उन्होंने अपने शिष्य को शापमुक्त करवाने के लिए भगवान् शिव से अनुनय विनय किया और कहा कि हे भगवान् शिव आप मुझ पर कृपा कीजिए, मेरे शिष्य का शाप शीघ्र समाप्त हो जाए।

**व्याख्या**— काकभुशुण्डि, खगराज गरुड़ से भगवान् शिव द्वारा दिए गए शाप एवं तदन्तर उनके गुरु द्वारा की गई शिव स्तुत का वृत्तान्त कहते हुए बोले कि इसके पश्चात् भगवान शिव के सामने यह प्रार्थना की कि हे कृपा के भण्डार, अब आप वही उपाय करें जिससे इसका परम् कल्याण हो अर्थात् यह मुक्ति को प्राप्त हो। ब्राह्मण के इन वचनों को सुनकर भगवान् शिव परोपकार की भावना से भर गए। पुनः आकाशवाणी हुई 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो)। यद्यपि इसने भयंकर पापकर्म किया है। इसी कारण मैंने क्रोधित होकर इसे शाप दिया है। हे ब्राह्मण ! मैंने तुम्हारी सज्जनता देखी है। इसी आधार पर मैं इस पर विशेष कृपा करूँगा। जो क्षमाशील तथा परोपकारी ब्राह्मण होते हैं वे भी मुझे उतने ही प्रिय हैं जितने खरदूषण के शत्रु राम। परन्तु फिर भी मेरे द्वारा दिया गया शाप निरर्थक नहीं होगा। अतः इसे एक हजार जन्म अवश्य ही लेने पड़ेंगे। इतना अवश्य है कि जन्म लेने और मृत्यु को प्राप्त करने में जो असहनीय कष्ट होता है उसका थोड़ा-सा भी दुःख यह नहीं भोगेगा। इसके अतिरिक्त इसका ज्ञान किसी भी जन्म में समाप्त नहीं होगा। मेरे वचन अत्यन्त प्रामाणिक हैं। हे शूद्र ! इसका अवश्य ध्यान रखना। काकभुशुण्डि शिव द्वारा की गई आकाशवाणी का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि इसके बाद भगवान् शिव ने मुझे संबोधित करते हुए कहा कि पहली बात तो यह है कि तुम्हारा जन्म रामचंद्र की नगरी अयोध्या में हुआ था। दूसरी बात यह है कि तुमने मेरी भक्ति में मन लगाया है। अयोध्या के प्रभाव तथा मेरी कृपा से तेरे हृदय में राम की भक्ति जागृत होगी। तुम मेरे सत्य वचनों पर ध्यान दो--यदि श्री हरि को प्रसन्न रखना चाहते हो तो अब भी ब्राह्मणों की सेवा का व्रत धारण कर लो। अब कभी भूले से भी ब्राह्मणों का अपमान मत करना तथा सभी संतपुरुषों को सदैव अनन्त भगवान् के समान समझना। जो प्राणी इन्द्र के वज्र, मेरे विशाल त्रिशूल, काल के दण्ड और भगवान् विष्णु के चक्र से भी नहीं मारा जाता है वह ब्राह्मण की द्रोह रूपी अग्नि से जलकर नष्ट हो जाता है। अर्थात् ब्राह्मण से विरोध रखने के कारण परिणामतः वह नष्ट हो जाता है। अतः हे प्राणी ! यह ज्ञान अर्थात् विवेक अपने मन में धारण करो। इसके पश्चात् ही संसार में तुम्हारे लिए कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रहेगा। अर्थात् संसार का प्रत्येक पदार्थ तुम्हें सहज ही उपलब्ध हो जाएगा। मेरा एक आशीर्वाद और भी है और वह यह कि तुम्हारी गति सर्वत्र अबाध ही होगी।

काकभुशुण्डि बोले कि आकाशवाणी के माध्यम से भगवान् शिव के वचनों को सुनकर गुरु अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा 'एवमस्तु'

(ऐसा ही हो) कहकर मुझे अनेक प्रकार से समझा-बुझाकर शिव चरणों को अपने हृदय पर धारण करके अपने निवास स्थान की ओर चले गए। इसके पश्चात् काल की प्रेरणा से मैं विन्ध्याचल पर जाकर सर्प हो गया। फिर मैंने भगवान् शिव के वरदान स्वरूप कुछ समय सर्प योनि में व्यतीत करके बिना किसी कष्ट के वह सर्प शरीर छोड़ दिया। हे हरिवाहन गरुड़ ! फिर मैंने जो भी शरीर धारण किया उसे मैंने पुनः सरलतापूर्वक त्याग दिया। अर्थात् मैं जो भी शरीर धारण करता मैं उसे आसानी से छोड़ देता था। मैंने उन शरीरों को उसी प्रकार त्याग दिया, जिस तरह कोई मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नए वस्त्र धारण कर लेता है। वैसे ही मैं नए शरीर को धारण करता था। एक ओर शिवजी ने वेद मर्यादा की रक्षा की और मुझे शाप प्रदान किया तथा मैंने भी बिना किसी कष्ट के अनेक शरीर धारण किए और उन्हें छोड़ता चला गया। हे गरुड़ ! मेरे द्वारा इस प्रकार अनेक शरीर धारण करने के बाद भी मेरा ज्ञान नष्ट नहीं हो पाया।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. काकभुशुण्डि द्वारा पूर्वजन्म के विषय में वृत्तान्त सुनाया गया है।
2. भगवान् शिव द्वारा दिए गए शाप से काकभुशुण्डि की मुक्ति का वर्णन है।
3. रामभक्ति की महिमा का बखान किया गया है।
4. 'कृपानिधाना', द्रोह-पावक में रूपक अलंकार है।
5. 'ते द्विज मोह प्रिय जया खरारी' में उपमा अलंकार है।
6. 'जोई ..... पुरान' में उदाहरण अलंकार है।
7. 'जिमि नूतन पट ..... परिहरइ पुरान' में उदाहरण अलंकार प्रयुक्त हुआ है। इसी पंक्ति से मिलता-जुलता भाव श्रीधर पाठक की पंक्तियों में भी दृष्टान्त है—

   "मृत्यु एक सरिता है,
   जिसमें श्रम से कातर, जीव नहाकर,
   नूतन वस्त्र धारण करता है, काया रूपी वस्त्र बहाकर।"
8. प्रथम सोलह पंक्तियों में चौपाई छंद है।
9. अंतिम पंक्तियों में दोहा छंद प्रयुक्त हुआ है।

**30.** चौ.– **त्रिजग देव नर जोई तनु धरऊँ। तहँ तहँ भजत अनुसरऊँ।।**
**एक सूल मोहि बिसर न काऊ। गुर कर कोमल सील सुभाऊ।।**
**चरम देह द्विज कै मैं पाई। सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई।।**
**खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला। करउँ सकल रघुनायक लीला।।**
**प्रौढ़ भएँ मोहि पिता पढ़ावा। समझउँ सुनउँ गुनउँ नहि भावा।।**
**मन ते सकल वासना भागी। केवल राम चरन लय लागी।।**
**कहु खगेस अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहिं त्यागी।।**
**प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई। हारेउ पिता पढ़ाई पढ़ाई।।**
**भए कालवस जब पितु माता। मैं बन गयउँ भजन जनत्राता।।**
**जहँ जहँ बिपिन मुनीस्वर पावऊँ। आश्रम जाइ जाइ सिरू नावउँ।।**
**बूझउँ तिन्हहि राम गुन गाहा। कहहिं सुनउँ हरषित खगनाहा।।**
**सुनत फिरउँ हरि गुन अनुवादा। अव्याहत गति संभु प्रसादा।।**
**छूटी त्रिविधि ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी।।**
**राम चरन वारिज जब देखों। तब निज जन्म सफल करि लेखों।।**
**जेहि पूँछउँ सोइ मुनि अस कहई। ईस्वर सर्व भूतमय अहई।।**
**निर्गुन मत नहिं मोहि सोहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई।**

**दो.— गुर के वचन सुरति करि राम चरन मनु लाग।**
**रघुपति जस गावत फिरउँ छन छन नव अनुराग।।**
**मेरु सिखर बट छायाँ मुनि लोमस आसीन।**
**देखि चरन सिरु नायउँ वचन कहेउँ अति दीन।।**
**सुनि मम वचन बिनीत मृदु मुनि कृपाल खगराज।**
**मोहि सादर पूछँत भए द्विज आयहू केहि काज।।**
**तब मैं कहा कृपानिधि तुम्ह सर्बग्य सुजान।**
**सगुन ब्रह्म अवराधन मोहि कहहु भगवान।।**

**शब्दार्थ**— **त्रिजग** = तिर्यञ्च, पशु-पक्षी आदि। **तनु** = शरीर। **तहँ** = वहाँ। **सूल** = वेदना। **बिसर न काउ** = कभी नहीं भूल सका। **गुर कर** = गुरुजी का। **चरम** = अन्तिम। **देह** = शरीर। **मीला** = मिलकर। **लीला** = क्रीड़ा आचरण। **प्रौढ़ भए** = बड़ा होने पर। **नहिं भावा** = अच्छा नहीं लगा। **बासना** = संस्कार, विचार। **लय लागी** = प्रेम लगा रहा। **खगेस** = गरुड़। **कवन अभागी** = कौन दुर्भाग्यवान्। **खरी** = गदही। **सुरधेनुहि** = कामधेनु। **मगन** = लवलीन। **हारेउ** = दुःखी हो गए। **भए कालवश** = मृत्यु को प्राप्त हुए। **जनत्राता** = भक्तों का रक्षक। **विपिन** = वन। **मुनीस्वर** = श्रेष्ठ मुनि। **तिन्हहि** = उनसे। **गुनगाहा** = गुन गाथा। **खगगाहा** = गरुड़। **अनुवादा** = गुणगान। **अव्याहत** = बिना बाधा के। **संभु प्रसादा** = शिवजी की कृपा से। **त्रिविध ईषना** = तीन एषणा—धन, पुत्र, मन की इच्छा। **उर** = हृदय। **लालसा** = इच्छा। **चरन वारिज** = चरण कमल। **अस कहई** = इस प्रकार कहा। **सर्व भूतमय** = सभी प्राणियों में व्याप्त। **रति** = प्रेम। **जस** = कीर्ति। **छन** = प्रत्येक समय। **मेरु सिखर** = सुमेरु पर्वत की चोटी पर। **आसीन** = विराजमान। **मम वचन** = मेरी बातें। **खगराज** = गरुड़। **आयहु केहि काज** = किस काम आए हो। **सर्वग्य** = सभी कुछ ज्ञाता। **अवराधन** = आराधना।

**प्रसंग**— प्रस्तुत व्याख्येय अंश हिन्दी साहित्यकार के सूर्य रामभक्ति काव्यधारा के श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित संसार प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। इसमें बताया गया है कि काकभुशुण्डि अपने पूर्व जन्म में भगवान् शिव से शाप प्राप्त करता है जिसके कारण उसे अनेक योनियों में भटकना पड़ता है। परन्तु भगवान् शिव की विशेष कृपा के कारण उसे जन्म-मरण की यातनाएँ सहन नहीं करनी पड़ती। वह अपनी इच्छा से जन्म ग्रहण करता और पुनः उसे आसानी से त्याग देता। क्योंकि शाप वश उसे एक हज़ार योनियों को भोगना था। अतः अपने जीवन में भोगे गए समय का वर्णन करता हुआ काकभुशुण्डि कहता है—

**व्याख्या**— काकभुशुण्डि गरुड़ को सम्बोधित करता हुआ कहता है, हे गरुड़ ! मैं तीनों लोकों में देवता अथवा मनुष्य आदि का जो भी शरीर धारण करता था वहीं अर्थात् उसी शरीर को पाकर मैं निरन्तर श्रीराम के भजन करता रहता था, अर्थात् मैंने किसी जन्म में भी राम को विस्मृत नहीं किया, हमेशा मैंने उनकी भक्ति की। परन्तु इतना होने पर भी मेरे मन में एक पीड़ा हमेशा बनी रहती थी और वह यह थी कि मैंने उस गुरु का अपमान किया था जो स्वभाव से अत्यन्त कोमल एवं सुशील थे। मेरा मन बार-बार उन्हें स्मरण करता था। (अर्थात् मेरे मन के किसी कोने में केवल यही था कि मैंने गलत किया था) इस प्रकार अनेक योनियों में भटकता हुआ अंत में मैंने ब्राह्मण शरीर प्राप्त किया जो वेद और पुराणों के अनुसार देवताओं को भी सुगमता से प्राप्त नहीं होता। उस ब्राह्मण शरीर को पाकर मैं बालकों के साथ घुल-मिलकर खेला करता था और खेल में उन सभी के साथ श्रीराम की लीला किया करता था। जब मैं बड़ा हुआ तो पिताजी ने मुझे पढ़ने भेज दिया। मैं पाठशाला में सब कुछ समझता, सोचता तथा विचार करता था तथापि मुझे यह सब ज़रा भी अच्छा नहीं लगता था। अर्थात् मेरा मन पढ़ाई में बिल्कुल नहीं लग रहा था। मुझे पढ़ाई अच्छी नहीं लगती थी। मेरे मन की सभी बुरी वासनाएँ दूर हो गईं। मेरा मन केवल राम के चरणों में लीन हो गया। मेरा ध्यान निरन्तर राम की ओर लगा रहने लगा। हे गरुड़ ! मुझे बताइए कि ऐसा कौन अभागा होगा जो कामधेनु का त्याग करके गधी की सेवा करेगा ? अर्थात् कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जो गधी की सेवा की अपेक्षा कामधेनु की सेवा नहीं करेगा। अतः प्रभु के प्रेम में मग्न होने पर मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। कोई भी शिक्षा अच्छी नहीं लगती थी, जबकि दूसरी ओर पिताजी मुझे पढ़ाते-पढ़ाते थक गये थे। कुछ समय पश्चात् जब मेरे माता-पिता स्वर्गवासी हो गए तब मैं वन में जाकर भगवान् राम की भक्ति करने लगा। वन में रहकर मुझे जहाँ भी ऋषियों, मुनियों का पता चलता, मैं वहीं उनके आश्रम में जाकर उन्हें प्रणाम करता उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करता था। हे गरुड़ इस प्रकार मुनियों के आश्रमों में जाकर भी उनसे राम से सम्बन्धित बातें करता तथा उनके विषय में जानकारी प्राप्त करता था। वे खुशी के साथ राम की कथाएँ कहते तथा खुशी के साथ हर्षित मन से मैं वे कथाएँ सुनता था। इस प्रकार भगवान् राम के

गुणों को सुनता हुआ मैं यहाँ-वहाँ भ्रमण करने लगा। मुझ पर शिव कृपा थी इसलिए बिना किसी बाधा के मैं आसानी से यहाँ-वहाँ विचरण करता था। निरन्तर श्री राम कथा को कहने, सुनने से मेरे मन की तीनों एषनाएँ (इच्छाएँ) समाप्त हो गई। मुझे न अब मान की कामना थी, न धन की और न मुझे पुत्र की कामना थी। अब ये एषनाएँ मुझे विचलित नहीं करती थी। बस केवल एक ही कामना मेरे मन में बनी रहती थी कि मेरा मन हमेशा श्री राम के चरणों में लगा रहे। मेरा ध्यान हमेशा उन्हीं श्री राम की ओर रहे। उनकी ही मैं भक्ति करता रहूँ। तभी मैं अपना जन्म सफल समझूँगा। तभी मेरे जीवन की सार्थकता है। मैं जिससे भी पूछता वह मुनि यही कहता था कि ईश्वर सभी प्राणियों में है। वे सर्वभूत सत्य है। सृष्टि के कण-कण में व्याप्त हैं। प्रत्येक जीव में ईश्वर का अंश समाहित है। उनका यह निर्गुण मत मुझे अच्छा नहीं लगता था, क्योंकि मेरे मन में सगुण ईश्वर के प्रति प्रेम अधिक रहता था।

आगे काकभुशुण्डि पुनः कहने लगे – हे गरुड़ ! इस प्रकार गुरु के वचनों का स्मरण करके मेरा हृदय श्री राम के चरणों में ही लगा रहा। मैं श्री राम के गुणों का गायन करता हुआ घूमता रहा; जिससे प्रत्येक क्षण मेरे मन में नया-नया अनुराग प्राप्त हुआ अर्थात् नित्य प्रति श्री राम के प्रति मेरे मन में प्रेम उत्पन्न होता चला गया। एक दिन जब मैंने सुमेरू पर्वत की चोटी पर एक वट वृक्ष की छाया में लोमश ऋषि को बैठे हुए देखा तो मैंने उनके समीप जाकर उनके चरणों में मस्तक झुकाया और अत्यन्त कोमल वचन कहने लगा। हे गरुड़ मेरे विनय युक्त कोमल और मृदुल वचनों को सुनकर कृपालु स्वभाव वाले लोमश ऋषि ने अत्यन्त आदरभाव से भरकर पूछा कि हे ब्राह्मण ! आप किस कार्य से यहाँ पधारे हैं ? आपके आने का क्या प्रयोजन है ? तब मैंने उत्तर दिया कि हे सर्वज्ञ ! हे सुन्दर ज्ञान से युक्त कृपा भण्डार ! हे भगवान् ! मुझे भगवान् के सगुण रूप के विषय में बताएँ कि मैं सगुण रूप की उपासना कैसे करूँ ?

**काव्य-सौंदर्य–**

1. यहाँ भी मानसकार ने निर्गुण की अपेक्षा सगुण की श्रेष्ठता का निरूपण करने का प्रयास किया है।
2. काकभुशुण्डि की विनम्रता प्रदर्शित हुई है, साथ ही में उसकी सगुण भक्ति के प्रति आकर्षण दिखाया गया है।
3. ईश्वर के निर्गुण रूप का वर्णन भी किया गया है।
4. ईश्वर सर्वशक्तिमान है। सृष्टि के प्रत्येक कण में समाए हुए है।
5. 'चरण वारिज' में रूपक अलंकार है।
6. 'कहु खगेस अस कवन अभागी' में वक्रोक्ति अलंकार है।
7. 'पढ़ाई-पढ़ाई'; 'छन-छन' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
8. आरम्भिक सोलह पंक्तियों में चौपाई छंद है। चौपाई वहाँ होता है जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ हो।
9. अन्तिम आठ पंक्तियों में चार दोहे हैं। दोहा छंद भी प्रयुक्त हुआ है। दोहे छंद के प्रत्येक विषम चरण में तेरह मात्राएं और सम चरण में ग्यारह मात्राएँ होती हैं।
10. तत्सम शब्दों की बहुलता है।
11. अवधी भाषा का सुंदर प्रयोग हुआ है।

**31. चौ.– तब मुनीस रघुपति गुन गाथा कहे कछुक सादर खगनाथा।।**
**ब्रह्मग्यान रत मुनि विग्यानी। मोहि परम अधिकारी जानी।।**
**लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा।।**
**अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा।।**
**मन गोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवधि सुख रासी।।**
**सो तैं ताहि तोहि–नहिं भेदा। बारि बीचि इव गावहिं वेदा।।**
**विविध भाँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदयँ न आवा।।**
**पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहहु मुनीसा।।**
**राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना।।**
**सोइ उपदेश कहहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया।।**
**भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहउँ निर्गुन उपदेसा।।**
**मुनि पुनि कहि हरिकथा अनूपा। खंड़ि सगुन मत अगुन निरूपा।।**

**तब मैं निर्गुन मत कर दूरी। सगुन निरूपउँ करि हठ भूरी।।**
**उत्तर प्रतिउत्तर मैं कीन्हा। मुनि तन भए क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ।।**
**सुनु प्रभु बहुत अवग्या किएँ। उपज क्रोध ग्यानिन्ह के हिएँ।।**
**अति संघरषन जौं कर कोई। अनल प्रगट चंदन ते होई।।**
**दो.— बारंबार सकोप मुनि करइ निरूपन ग्यान।**
**मैं अपने मन बैठ तब करउँ विविध अनुमान।।**
**क्रोध कि द्वैतबुधि बिनु द्वैत कि बिनु अग्यान।**
**मायाबस परि छिनन जड़ जीव कि ईस समान।।**

**शब्दार्थ**— **मुनीस** = लोमश मुनि। **कछुक** = थोड़ा सा। **खगनाथा** = गरुड़। **ब्रह्मग्यान रत** = ब्रह्मज्ञान में लवलीन। **विग्यानी** = तत्वज्ञानी। **जानी** = जानकार। **अज** = जन्म रहित। **अद्वैत** = एक। **अगुन** = निर्गुण। **हृदयेशा** = अन्तरंग ज्ञाता। **अकल** = बुद्धि द्वारा अगम्य। **अनीह** = इच्छा रहित। **अनुभव गम्य** = अनुभव द्वारा ज्ञात। **अनूपा** = उपमा रहित। **गोतीत** = इन्द्रियों से परे। **अमल** = निर्मल। **निरवधि** = सीमारहित, असीम। **सुख रासी** = सुख समूह। **ताहि** = तू ही है, तत्त्वमसि। **वारि वीचि** = जल और तरंग। **मम हृदय** = मेरे हृदय में। **नाइ पद सीसा** = मस्तक चरणों में झुकाया, नमस्कार किया। **मम मन मीना** = मेरा मन मछली के समान है। **किमि विलगाय** = क्यों अलग हो सकता है ? **प्रवीना** = सुबुद्ध। **करि दया** = दया करें। **निज** = अपने। **नयनन्हि** = नेत्रों से। **विलोकि** = देखा। **सुनिहउँ** = सुनूँगा। **अनूपा** = अनुपम। **खंडि** = खण्डन किया, निराकरण किया। **निरुपहुँ** = कहा, निरूपण किया। **हठ भूरी** = बहुत आग्रह। **उत्तर–प्रति उत्तर** = वाद-विवाद। **चिन्हा** = चिह्न, क्षण। **उपज** = उत्पन्न हो गया। **संघरषन** = संघर्ष, रगड़। **अनल** = अग्नि। **सकोप** = क्रोध के साथ। **मायावस** = माया के अधीन। **परि छिन्न** = व्याप्त। **ईस** = भगवान्।

**प्रसंग**— प्रस्तुत पद्यांश रामभक्ति काव्य के शिरोमणि कविरत्न 'तुलसीदास' द्वारा विरचित भारतीय जनमानस के लोकप्रिय महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। काकभुशुण्डि अपने पूर्ववर्ती जन्म की कथा गरुड़ के समक्ष कर रहे हैं तथा बता रहे हैं कि बाद में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर रामभक्ति को प्राप्त करने के लिए इधर-उधर भटकते रहे। बाद में वे सुमेरु पर्वत के शिखर पर लोमश मुनिवर के पास गये और रामकथा को जानने की अभिलाषा व्यक्त की।

**व्याख्या**— काकभुशुण्डि कहने लगे कि हे गरुड़ ! मेरे निवेदन पर मुनीश्वर लोमश ने श्री राम के गुणों से सम्बन्धित कुछ कथाएँ अत्यन्त आदरपूर्वक कहीं। इसके पश्चात् ब्रह्मज्ञान में लीन रहने वाले वे परम् ज्ञानी मुनि मुझे ब्रह्मज्ञान का परम् अधिकारी पात्र समझ बैठे। ऐसा विचारकर वे ब्रह्म का उपदेश देते हुए कहने लगे कि वह अजन्मा है, अद्वैत है, निर्गुण तथा हृदय का स्वामी अर्थात् अन्तर्यामी है, वह सभी कलाओं से रहित, इच्छाहीन, नाम एवं रूप से परे, केवल अनुभव द्वारा जानने योग्य, अखण्ड तथा अनुपम है। इतना ही नहीं, वह मन तथा इन्द्रियों से परे, निर्मल, अमर, निर्विकार, सीमा रहित तथा सुखों की राशि है। उसके विषय में यही कहा जाता है — 'तुम ही हो' तुम ही हो (तत्वमसि)। जिस प्रकार जल और जल की लहरों में कोई अन्तर नहीं, नाम ही अलग-अलग हैं उसी प्रकार जीव और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। ऐसा वेद कहते हैं। इस प्रकार मुनिवर लोमश ऋषि ने मुझे निर्गुण के विषय में अनेक जानकारी प्रदान की और मुझे समझाया, परन्तु मुनि द्वारा अनेक प्रकार से समझाने पर भी निर्गुण मत के प्रति मेरे मन में कोई आस्था उत्पन्न न हो सकी। फिर मैंने उनके चरणों में सिर नवाकर कहा कि हे मुनीवर ! आप मुझे सगुण ब्रह्म की उपासना के विषय में बताएँ। काकभुशुण्डि आगे कहने लगे हे खगराज ! मैंने लोमश मुनि से कहा कि हे मुनिवर ! मेरा मन तो मछली के समान है जो श्री राम की भक्ति रूपी जल में निवास करती है। अतः हे प्रवीण ! आप ही बताएँ कि वह किस प्रकार उससे अलग हो सकती है ? ऐसा विचार कर आप मुझे वही उपदेश देने की कृपा करें जिससे मैं अपने नेत्रों से श्री राम को देख सकूँ। हे ऋषिश्वर ! मैं सर्वप्रथम अयोध्यापति श्री राम को देखकर नेत्रों की तृप्ति चाहता हूँ। उसके पश्चात् ही आपके द्वारा कहे गए निर्गुण भगवान् के उपदेश सुन सकूँगा। इसके पश्चात् मुनि ने एक बार फिर श्रीराम की अनुपम कथा सुनाकर, सगुण मत का खण्डन करते हुए निर्गुण ब्रह्म का निरूपण किया। इस पर मैंने भी निर्गुण मत का विरोध करते हुए अत्यन्त हठपूर्वक सगुण ब्रह्म को निरूपित किया अर्थात् सगुणोपासना में ही अपनी आस्था प्रकट की। मैंने मुनिवर से इस विषय पर (निर्गुण-सगुण) पर्याप्त वाद-विवाद किया। इससे मुनि लोमश के शरीर में क्रोध के चिह्न दिखाई देने लगे। अर्थात् वाद-विवाद से उन्हें क्रोध आने लगा। हे प्रभु ! (गरुड़) बहुत अधिक अपमान या उपेक्षा होने पर ज्ञानियों के हृदय में भी क्रोध उत्पन्न हो जाता है क्योंकि कोई लकड़ी यदि चंदन की हो तो उसके रगड़ने से भी अग्नि उत्पन्न हो आती है (यह स्वाभाविक है)।

काकभुशुण्डि पुनः कहते हैं – लोमश मुनिवर को बार-बार क्रोध आने लगा और वे ज्ञान (निर्गुण) का बखान करते रहे तब मैं बैठा-बैठा विविध प्रकार के अनुमान करने लगा। मैं सोचने लगा कि क्या द्वैत भाव के बिना क्रोध संभव है और क्या अज्ञानता के अभाव में द्वैतभाव उत्पन्न हो सकता है ? मैंने विचार किया कि माया के वशीभूत रहने वाले जड़-चेतन, ईश्वर की व्यापकता की समता नहीं कर सकते, यदि वे ऐसा कर पाने में समर्थ होते तो मुनि लोमश के हृदय में क्रोध क्यों उत्पन्न होता ? तात्पर्य यह है कि जीव और ईश्वर एक नहीं हो सकते।

**काव्य-सौंदर्य–**

1. यहाँ लोमश मुनि तथा काकभुशुण्डि के बीच निर्गुण और सगुण ब्रह्म के निरूपण को लेकर चल रहा विवाद पाठकों के हृदय में उत्सुकता का संचार कर देता है। मुनि लोमश के क्रोध के कारण हुए शारीरिक परिवर्तन से आगे आने वाली किसी अप्रिय घटना का संकेत मिल जाता है। पाठक यहाँ सोच बैठता है कहीं ऐसा तो नहीं कि ब्राह्मण देह से काक-शरीर काकभुशुण्डि को लोमश मुनि के शाप से ही प्राप्त हुआ हो।
2. काकभुशुण्डि द्वारा अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाया गया है, जिसमें बताया गया है कि अनेक युगों तक उसके मन में राम भक्ति की प्यास जाग्रत रही।
3. निर्गुण पर सगुण की विजय को व्यक्त किया गया है।
4. **अलंकार** – I. 'सौं तें ..... वेदा' में उपमा अलंकार है।
   II. 'रामभगति जल' में रूपक अलंकार है।
   III. 'बारि बीचि इव' में उपमा अलंकार है।
   IV. 'मम मन मीना' में उपमा और अनुप्रास अलंकार है।
   V. 'सुमु ..... तोहि' में उदाहरण अलंकार है।
   VI. 'सुन प्रभु ..... चंदन ते होई में' निदर्शना अलंकार है।
   VII. क्रोध कि ..... समान' में वक्रोक्ति अलंकार है।
5. अवधी भाषा तत्सम शब्दावली के कारण अत्यन्त उत्कृष्ट बन पड़ी है।
6. प्रथम सोलह पंक्तियों में चौपाई छंद है।
7. अन्तिम चार पंक्तियों में दोहा छंद है।

**32.** **चौ.– कबहुँ कि दुख सब कर हित ताके। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाके।।**
**परद्रोही की होहि निसंका। कामी मुनि कि रहहि अकलंका।।**
**बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हें। कर्म कि होहिं स्वरूपहि चीन्हें।।**
**काहू सुमति कि खल सँग जामी। सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी।।**
**भव कि परहिं परमात्मा विंदक। सुखी कि होहिं कबहूँ हरि निंदक।।**
**राजु कि रहइ नीति बिनु जानें। अघ कि रहहिं हरिचरित बखानें।।**
**पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावइ कोई।।**
**लाभु कि हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना।।**
**हानि कि जग एहि सम कछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई।।**
**अघ कि पिसुनता सम कछु आना। धर्म कि दया सरिस हरिजाना।।**
**एहि विधि अमिति जुगुति मन गुनऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनऊँ।।**
**पुनि–पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा। तब मुनि बोलेउ वचन सकोपा।।**
**मूढ़ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रति उत्तर बहु आनसि।।**
**सत्य वचन विस्वास न करही। वायस इव सबही ते डरही।।**
**सठ स्वपच्छ तव हृदयँ विसाला। सपदि होहि पच्छी चंडाला।।**
**लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई। नहिं कछु भय न दीनता आई।।**

**दो.— तुरत भयउँ मैं काग तब पुनि मुनि पद सिरु नाइ।**
**सुमिरि राम रघुवंस मनि हरषित चलेउँ उड़ाइ।।**
**उमा जे राम चरन रात विगत काम मद क्रोध।**
**निज प्रभुमय देखहिं जगत के हि सन करहिं विरोध।।**

**शब्दार्थ— कबहुँ कि** = क्या कभी। **कर** = का। **ताके** = उसके। **तेहि कि** = क्या जिसके। **परसमनि** = पारसमणि। **परद्रोही** = दूसरे से ईर्ष्या करने वाला। **कामी** = कामवासना से भरा। **अकलंका** = कलंक रहित। **अनहित** = अहित, बुरा। **स्वरूपहिं चीन्हें** = भगवान् का सच्चा स्वरूप ज्ञात कर लेने पर। **सुमति** = सद्बुद्धि। **खल** = दुष्ट। **जामी** = उत्पन्न हुई है। **परत्रिय गामी** = दूसरे की नारी का सेवन करने वाला। **भव कि परहिं** = जन्म के चक्कर में क्या पड़ सकता है ? **बिंदक** = ज्ञाता। **निंदक** = निंदा करने वाला। **राजु किरहे** = क्या राज्य रह सकता है ? **अघ** = पाप। **पावन जस** = पवित्र कीर्ति। **अजस** = अपयश, निंदा। **श्रुति** = शास्त्र। **पुराना** = पुराण। **एहि सम** = इसके समान। **नर तनु पाई** = मानव का शरीर प्राप्त करके भी। **पिसुनता** = चुगलखोरी। **सम** = समान। **कछु आना** = कुछ अन्य। **सरिस** = समान। **मिति** = अनेक। **जुगुति** = युक्तियाँ। **पुनि–पुनि** = बार-बार। **पच्छ** = पक्ष। **रोपा** = प्रस्तुत किया। **सकोपा** = क्रोध में भरकर। **मूढ़** = मूर्ख। **सिख देउँ** = शिक्षा देता है। **न मानसि** = नहीं मानता है। **उत्तर प्रति उत्तर** = वाद-विवाद। **वायस** = कौआ। **सठ** = मूर्ख। **स्वपच्छ** = अपना मत। **सपदि** = शीघ्र। **पच्छी चाण्डाल** = चाण्डाल पक्षी, कौआ। **सीस चढ़ाई** = सम्मानपूर्वक स्वीकार किया। **तुरत** = शीघ्र। **सुमिरि** = स्मरण करके। **उमा** = पार्वती। **रत** = लवलीन। **विगत** = रहित। **केहि सन** = किसके साथ ?

**प्रसंग**— प्रस्तुत पद्य–खण्ड रामभक्ति के प्रमुखतम कवि लोकनायक 'तुलसीदास' कृत जन–जनमानस के श्रद्धेय काव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। अपने पूर्व जन्म में काकभुशुण्डि ब्राह्मण योनि प्राप्त करके लोमश ऋषि के पास रामभक्ति ज्ञात करना चाहता है, परन्तु वे उसे निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देते हैं। अतः वह वाद-विवाद करके निर्गुण पर सगुण की विजय प्रस्तुत करता हुआ कहता है—

**व्याख्या**— काकभुशुण्डि गरुड़ से कहता है— हे खगराज ! मैं विचार करने लगा कि सबका हित चाहने वाला भी क्या कभी दुःखी रह सकता है ? जो पारसमणि जैसी बहुमूल्य वस्तु का स्वामी है क्या उसके पास भी कभी दरिद्रता फटक सकती है ? अन्य प्राणियों के प्रति द्रोह भावना रखने वाला भी क्या कभी निर्भय होकर विचरण कर सकता है ? काम-वासना में लिप्त मनुष्य क्या कलंक रहित हो सकता है ? अर्थात् ये सभी असम्भव है। ब्राह्मणों का अहित करने वाला क्या कभी वंश को सुरक्षित रख सकता है ? स्वरूप की पहचान अर्थात् आत्मज्ञान को प्राप्त कर लेने पर भी क्या कभी कर्मों के प्रति आसक्ति का भाव बना रह सकता है ? दुष्ट जनों की संगति से क्या कभी सुबुद्धि प्राप्त की जा सकती है ? पराई स्त्री से सम्पर्क रखने वाला पुरुष क्या कभी उत्तम गति प्राप्त कर सकता है ? परमेश्वर का साक्षात्कार करने वाला जीव भी क्या कभी सांसारिक आवागमन के चक्र में पड़ सकता है ? भगवान् की निंदा करने वाला जीव क्या कभी सुखी रह सकता है ? क्या नीति को न जानने वाला राज्य कर सकता है ? क्या भगवान् राम के चरित्र का वर्णन करने वाला कभी पापी हो सकता है ? अर्थात् ये सम्भव नहीं हैं। क्या कभी बिना पुण्य कार्य किए पवित्र यश की प्राप्ति सम्भव है ? पाप किए बिना कोई अपयश (निंदा) प्राप्त कर सकता है ? जिसकी महिमा को शास्त्र, सज्जन व पुराण आदि कहते हैं उस भगवान् की भक्ति के समान क्या और कोई लाभ सम्भव है? अर्थात् नहीं है। काकभुशुण्डि कहते हैं, हे भाई ! संसार में इसके समान और कोई क्षति सम्भव नहीं है कि मनुष्य का शरीर प्राप्त करके भी राम का भजन (भक्ति) नहीं किया। अर्थात् मानव जीवन की सार्थकता राम की भक्ति करने में है। दूसरों के साथ छल, कपट पूर्ण आचरण करने अथवा चुगलखोरी से भी बड़ा कोई दूसरा पाप कर्म है ? यही नहीं दया के समान भी क्या कोई दूसरा धर्म कार्य हो सकता है ? हे पक्षीराज गरुड़ ! मैं इसी प्रकार अनेक युक्तियों पर अपने मन में विचार करता रहा? मैंने मुनि लोमश के उपदेश को आदर सहित सुनने की चेष्टा ही नहीं की तथा रह-रहकर सगुण भक्ति के सिद्धान्त को ही निरूपित करने का प्रयास करता रहा। इस पर मुनि क्रोधित हो उठे और क्रोध से भरकर बोले — हे मूर्ख ! मैंने तुम्हें उच्च कोटि की शिक्षा प्रदान की, किन्तु तुमने उसे स्वीकार नहीं किया, अर्थात् उसे समझने का प्रयास नहीं किया, बल्कि बार-बार विवाद करते रहे हो। क्या तुम्हें मेरी सत्य बातों पर विश्वास नहीं है ? इसी कारण तू कौए के समान सभी से डरता है। हे मूर्ख ! तेरे मन में अपने पक्ष के समर्थन में बहुत बड़ा आग्रह है। मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि तुम शीघ्र ही चाण्डाल पक्षी (कौआ) काग बन जाओ। काकभुशुण्डि कहता है कि मैंने उस शाप को आदरपूर्वक स्वीकार कर लिया। इसके कारण उस समय मेरे मन में न तो किसी प्रकार का भय उत्पन्न हुआ और न किसी प्रकार की दीनता का भाव जागृत हुआ।

काकभुशुण्डि बोले कि हे गरुड़ ! मुनि के शाप के प्रभाव से मैं तुरन्त काक हो गया, इसके पश्चात् मैंने मुनि के चरणों में शीश झुकाया तथा रघुवंश के शिरोमणि भगवान् राम का स्मरण किया तथा बहुत प्रसन्न होकर मैं वहाँ से उड़ गया। शिव पार्वती से कहते हैं कि हे उमा ! जो प्राणी काम, क्रोध, मद, लोभ आदि का परित्याग करके सदैव श्री राम के चरणों में लगे रहते हैं वे तो सारे संसार को राममय हुआ देखते हैं अर्थात् ऐसे व्यक्ति जो अपनी भक्ति राम के चरणों में अर्पित करते हैं उन्हें सम्पूर्ण संसार राममय नज़र आता है, उनके मन में किसी प्रकार का कोई भ्रम नहीं रहता और वे किसी से भी विरोध नहीं करते अर्थात् वे किसी से भी शत्रुता नहीं रखते।

**काव्य-सौंदर्य–**

1. इन पंक्तियों में कवि ने रामभक्तों तथा राम के भजनों से विमुख रहने वाले प्राणियों के द्वारा भोगे जाने वाले सुखों तथा सांसारिक यातनाओं की ओर संकेत करक जनसाधारण को श्री राम की भक्ति की ओर उन्मुख करने का प्रयास किया है।
2. सगुण भक्ति के पक्षधर होने के कारण काकभुशुण्डि को पूर्वजन्म में लोमश ऋषि का शाप प्राप्त हुआ, इसका उल्लेख किया गया है।
3. निर्गुण भक्ति पर सगुण भक्ति की विजय को दिखाया गया है।
4. समस्त पदावली में वक्रोक्ति अलंकार है।
5. 'बायस इव सबही ते उरहीं' में उपमा अलंकार है।
6. 'लीन्ह आप मैं सीस चढ़ाई' में मुहावरे का सुंदर प्रयोग है।
7. तत्सम शब्दों का बाहुल्य सम्पूर्ण पद्य में है।
8. अवधी भाषा का सुंदर रूप प्रयुक्त हुआ है।
9. प्रथम सोलह पंक्तियों में चौपाई छंद है।
10. अन्तिम चार पंक्तियों में दोहा छंद है।

**33.** **चौ.– सुनु खगेस नहिं कछु रिषि दूषन। उर प्रेरक रघुबंस विभूषन।।**
**कृपासिंधु मुनि मति करि भोरी। लीन्ही प्रेम परिच्छा मोरी।।**
**मन वच क्रम मोहि निज जन जाना। मुनि मति पुनि फेरी भगवाना।।**
**रिषी मम महत सीलता देखी। राम चरन विस्वास विसेषी।।**
**अति विसमय पुनि–पुनि पछिताई। सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई।।**
**मम परितोष विविध विधि कीन्हा। हरषित राममंत्र तब दीन्हा।।**
**बालकरूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना।।**
**सुंदर सुखद मोहि अति भावा। सो प्रथमहिं मैं तुम्हहि सुनावा।।**
**मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरितमानस तब भाषा।।**
**सादर मोहि यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सुराई।।**
**रामचरित सर गुप्त सुहावा। संभू प्रसाद तात मैं पावा।।**
**तोहि निज भगत राम कर जानी। ताते मैं सब कहेउँ बखानी।।**
**राम भगति जिन्ह के उर नाहीं। कबहुं न तात कहिअ तिन्ह पाहीं।।**
**मुनि मोहि विविधि भाँति समुझाया। मैं सप्रेम मुनि पद सिरु नावा।।**
**निज कर कमल परसि मम सीसा। हरषित आसिष दीन्ह मुनीसा।।**
**राम भगति अविरल उर तोरें। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे।।**
**दो.– सदा राम प्रिय होहु तुम्ह सुभ गुन भवन अमान।**
**कामरूप इच्छा मरन ग्यान विराग निधान।।**
**जेहिं आश्रम तुम्ह बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवंत।**
**ब्यापिहि तहँ न अविद्या जोजन एक प्रजंत।।**

**शब्दार्थ**— **खगेस** = पक्षीराज गरुड़। **दूषन** = दोष। **उर प्रेरक** = हृदय को प्रेरणा देने वाले। **मति** = बुद्धि। **भोरी** = भुलावा। **प्रेम परिच्छा** = प्रेम की परीक्षा। **मोरी** = मेरी। **क्रम** = कर्म। **निज जन** = अपना भक्त। **पुनि** = फिर। **फेरी** = बदल दी, परिवर्तित कर दी। **शीलता** = शान्त स्वभाव। **महत** = बहुत अधिक। **विसेषी** = विशेष रूप से। **विसमय** = आश्चर्य। **पुनि–पुनि** = बार-बार। **लीन्ह बोलाई** = बुला लिया। **परितोष** = शान्त्वना। **विविध विधि** = अनेक प्रकार से। **कर** = का। **अति भावा** = बहुत अच्छा लगा। **प्रथमहि** = पहले। **तहँ राखा** = वहीं रखा। **भाषा** = सुनाया। **गिरा** = वाणी। **सुहाई** = सुन्दर प्रतीत हुई। **सर** = मानस। **गुप्त** = रहस्यमय। **संभू प्रसाद** = शिवजी की कृपा से। **बखानी** = कही है। **निज** = अपने। **कर–कमल** = हाथ रूपी कमल से। **परसि मम** = मुझे स्पर्श किया। **आसिष** = आशीर्वाद। **अविरल** = निरन्तर। **उर** = हृदय में। **प्रसाद** = कृपा। **गुन–भवन** = गुण के घर। **अमान** = निराभिमानी। **कामरूप** = इच्छा के अनुसार। **इच्छा मरन** = इच्छा के अनुरूप मृत्यु प्राप्त करना। **विराग** = वैराग्य। **निधान** = खजाना। **बसव** = रहोगे। **व्यापहि तहँ न** = वहाँ नहीं रहेगा। **अविद्या** = अज्ञान। **जोजन** = योजन। **प्रजंत** = पर्यन्त।

**प्रसंग**— व्याख्येय पद्य–भाग भक्तिकालीन रामभक्ति काव्यधारा के सूर्य के प्रतिनिधि कवि, महाकाव्यकार व समाज सुधारक 'तुलसीदास' द्वारा रचित विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। काकभुशुण्डि ने गरुड़ को अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाया है जिसमें वे ब्राह्मण से काक बनें। वे महर्षि लोमश का शाप आदरपूर्वक स्वीकार कर लेते हैं उसके मन में किसी प्रकार का क्रोध उत्पन्न नहीं होता। अपितु प्रसन्न मन से काक शरीर को धारण कर लेते हैं।

**व्याख्या**— काकभुशुण्डि बोले कि हे गरुड़ ! इसमें उन लोमश मुनि का कोई दोष नहीं था। क्योंकि रघुकुल शिरोमणि श्री राम की हृदय से प्रेरणा यही थी। कृपा के समुद्र भगवान् राम ने इस समय मुनि लोमश की बुद्धि को भुलावा दिया था और मेरी प्रीति की परीक्षा ली थी। (मैं परीक्षा में सफल था) प्रभु राम ने देखा कि मैं मन से, वचन से और कर्म से उन्हीं का दास हूँ, सेवक हूँ। तत्पश्चात् भगवान् राम ने मुनि की बुद्धि को पलट दिया। मुनि ने जब मेरी सहनशीलता और श्री राम के चरणों में मेरा विशेष प्रेम देखा और अपने मन में मनन किया कि इसमें न तो शाप के प्रति क्रोध है, न अविनय है। जब उन्होंने यह जान लिया कि श्री राम के चरणों में मेरा परम् विश्वास है जो अचल है। उन्होंने मेरे ऐसे व्यवहार पर आश्चर्य किया और बार-बार पछताने लगे कि मैंने यह शाप क्यों दिया ? फिर मुनि ने अत्यन्त आदरभाव से मुझे अपने समीप बुलाया। उन्होंने अनेक प्रकार से मुझे संतोष प्रदान करने का अर्थात् सान्त्वना देने का प्रयास किया। इतना ही नहीं उन्होंने हर्षित मन से श्री राम की भक्ति का मंत्र भी दे दिया। उन्होंने मुझे बालक के रूप में भगवान् राम का ध्यान करने का मंत्र दिया और उन्होंने कृपा करके मुझे यह भी कहा — "मैं तुम्हें इस प्रकार के ध्यान की विधि पहले ही बता चुका हूँ। यह ध्यान बहुत ही सुंदर है, और सुख देने वाला है।" इससे मेरे मन को सुख मिला अर्थात् मुझे संतोष मिला। इतना ही नहीं मुनिवर ने (स्नेहपूर्वक) मुझे कुछ समय तक अपने पास रखा और अत्यन्त सुंदर वाणी से मुझे उन्होंने भगवान् राम की कथा 'रामचरितमानस' का परिचय देते हुए पूर्ण आदर सहित सुनाई। फिर मुनि ने अत्यन्त मधुर वाणी में बताया — हे तात! यह 'रामचरितमानस' अत्यधिक सुंदर और गुप्त है। इसका रहस्य मैंने शिव की असीम कृपा से प्राप्त किया था; तुम्हें श्री राम का अनन्य सेवक जानकर ही मैंने तुम्हारे सामने यह कथा विस्तारपूर्वक सुनाई है। अतः हे तात ! जिस प्राणी के हृदय में श्री राम की भक्ति न हो उसके समक्ष इस कथा का वर्णन कदापि न करना। इस प्रकार मुनि ने अनेक प्रकार से इस 'रामचरितमानस' के विषय में समझाया। अर्थात् ज्ञान प्रदान किया, तब मैंने अत्यन्त प्रेम से मुनि के चरणों में अपना मस्तक झुका दिया। उन्हीं मुनि ने अपने हस्तकमल को मेरे मस्तक पर रखकर बहुत प्रसन्नता के साथ मुझे आशीर्वाद दिया। उन्होंने यह भी कहा कि तुम्हारे अंदर राम की भक्ति निरन्तर रहेगी तथा मेरी कृपा से यह भक्ति और भी दृढ़ हो जाएगी।

उन्होंने मुझे आशीर्वाद देते हुए कहा कि तुम सदा राम के प्रिय भक्त बने रहो तथा कल्याणकारी, गुणों का घर, मानरहित, इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति से सम्पन्न, इच्छानुसार जीवन एवं मृत्यु को प्राप्त करने में समर्थ तथा ज्ञान और वैराग्य के भण्डार बने रहोगे। तुम्हारे पास अविद्या अस्तित्व भी नहीं रहेगा।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. मुनि के शाप का प्रभाव वर्णित है।
2. मुनि द्वारा काक को रामभक्ति का उपदेश और मंत्र देने का वर्णन है।
3. काक की विनय भावना एवं धैर्यशीलता अभिव्यक्त हुई है।
4. सगुण भक्ति का प्रभाव एवं उसकी महत्ता पर प्रकाश डाला गया है।

5. 'विविधि विधि' में रूपक अलंकार है।
6. 'कृपा-सिंधु', 'कर-कमल', 'गुण-भवन' में रूपक अलंकार है।
7. तत्सम शब्दों का बाहुल्य है।
8. अवधी भाषा का सुंदर प्रयोग है।
9. चौपाई छंद प्रस्तुत पद्य की आरम्भिक सोलह पंक्तियों में प्रयुक्त हुआ है।
10. पद्य की अन्तिम चार पंक्तियों में दोहा छंद विद्यमान है।

**34.** **चौ.— काल कर्म गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुम्हहि न व्यापिहि काऊ।।**
**राम रहस्य ललित विधि नाना। गुप्त प्रगट इतिहास पुराना।।**
**बिनु श्रम तुम्ह जानब सब सोऊ। नित नव नेह राम पद होऊ।।**
**जो इच्छा करिहहु मन माही। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।।**
**सुनि मुनि आसिष सुनु मतिधीरा। ब्रह्मगिरा भई गगन गँभीरा।।**
**एवमस्तु तव वच मुनि ग्यानी। यह मम भगत कर्म मन बानी।।**
**सुनि नभगिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब संसय गयऊ।।**
**करि विनती मुनि आयसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिरु नाई।।**
**हरष सहित एहिं आश्रम आउँ। प्रभु प्रसाद दुर्लभ वर पायऊँ।।**
**इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा।।**
**करउँ सदा रघुपति गुन गाना। सादर सुनहिं विहंग सुजाना।।**
**जब जब अवधपुरीं रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज सरीरा।।**
**तब तब जाइ राम पुर रहऊँ। सिसुलीला विलोकि सुख लहऊँ।।**
**पुनि उर राखि राम सिसरूपा। निज आश्रम आवउँ खगभूपा।।**
**कथा सकल मैं तुम्हहि सुनाई। काग देह जेहिं कारन पाई।।**
**कहिउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी।।**
**दो.— ताते यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेह।**
**निज प्रभु दरसन पायउँ नए सकल संदेह।।**
**भगति प्रच्छ हठ करि रहेउ दीन्हि महारिषि साप।**
**मुनि दुर्लभ वर पायउँ देखहु भजन प्रताप।।**

**शब्दार्थ**— **न व्यापिहि** = प्रभाव नहीं होना। **ललित** = सुंदर। **गुप्त** = अलक्षित। **प्रगट** = लक्षित ज्ञात। **नेह** = स्नेह। **आसिष** = आशीर्वाद। **गगन** = आकाश। **एवमस्तु** = ऐसा ही हो। **तव वच** = तुम्हारा कथन। **मम** = मेरा **नभगिरा** = आकाशवाणी। **प्रेम मगन** = प्रेम में लिप्त। **आयसु** = आज्ञा। **पद–सरोज** = चरण कमल। **प्रसाद** = कृपा। **खग ईसा** = पक्षीराज गरुड़। **विहंग** = पक्षी। **सुजाना** = बुद्धिमान्। **विलोकि** = देखकर। **खगभूपा** = पक्षीराज। **काग देहि** = कौए का शरीर। **ताते** = इसी कारण। **तन** = शरीर। **पच्छ** = पक्ष।

**प्रसंग**— प्रस्तुत प्रस्तावित पद्य–खण्ड राम भक्तिकालीन काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि, सगुण भक्तिधारा के श्रेष्ठ कवि समाज सुधारक 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। इसमें बताया गया है कि जब लोमश ऋषि के शाप से ब्राह्मण से काकभुशुण्डि काक बन जाता है तब भी वह रामभक्ति नहीं छोड़ता और न ही वह नम्रता तथा विनय भावना का ही त्याग करता है। इस प्रकार अडिग विश्वास एवं अपने गुणों पर दृढ़ रहने के कारण लोमश ऋषि काकभुशुण्डि पर खुश हो जाते हैं और उससे कहते हैं—

**व्याख्या**— काकभुशुण्डि गरुड़ को बताते हुए कहते हैं, हे गरुड़ ! लोमश मुनि मुझ पर प्रसन्न थे तब उन्होंने कहा अर्थात आशीर्वाद दिया, हे काकभुशुण्डि काल (समय), कर्म (कार्य) स्वभाव आदि के गुण, दोष तथा दुःख तुम्हें प्रभावित नहीं करेंगे अर्थात तुम्हारे ऊपर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। राम की भक्ति का रहस्य बहुत ही सुंदर है जो इतिहास और पुराणों में लक्षित (प्रकट

और अलक्षित (गुप्त) है अर्थात् वह दिखाई भी पड़ता है और अज्ञात भी है। हे काकभुशुण्डि ! तुम उसे बिना किए ही जान जाओगे। तुम्हारा राम के चरणों में सदा नया-नया प्रेम बना रहेगा। तुम अपने मन में जो भी इच्छा करोगे वह भगवान् राम की कृपा से पूरी हो जाएगी, कुछ भी तुम्हें दुर्लभ नहीं होगा। काकभुशुण्डि अपनी यह कथा गरुड़ को सुनाते हुए कहते हैं – हे धीर बुद्धि से युक्त गरुड़! सुनिए ! मुनि का इस प्रकार का आशीर्वाद सुनकर आकाश में ब्रह्म वाणी गूँज उठी कि हे ज्ञानी मुनि, आपके वचन ऐसे ही हों अर्थात् सत्य हों, क्योंकि मेरा यह भक्त मन, वचन एवं कर्म से मेरी ही भक्ति करने वाला है। इस आकाशवाणी (ब्रह्मवाणी) को सुनकर मुझे अपार हर्ष हुआ। मेरे सारे शोक एवं संदेह मिट गए और मैं प्रभु के प्रेम में मग्न हो गया। तभी मैंने मुनिवर से विनती की और उनके चरणों में नमस्कार करके, उन्हीं की आज्ञा लेकर प्रसन्न मन होकर अपने आश्रम आ गया। मैंने प्रभु श्री राम की कृपा से अत्यन्त दुर्लभ वरदान को प्राप्त किया। हे पक्षीराज ! मुझे इस आश्रम में निवास करते हुए सत्ताईस कल्पों का समय हो गया है। यहाँ रहकर मैं हमेशा भगवान् राम के गुणों का गायन किया करता हूँ। इन गुणों एवं भजनों को यहाँ के सभी पक्षीगण अत्यन्त आदर भाव से सुनते हैं, जब कभी भगवान् राम अयोध्या में भक्तों के हित के लिए शरीर धारण करते हैं तो मैं अयोध्या जाकर रहता हूँ और उनकी शैशवकालीन लीलाओं को देखकर अपने हृदय में असीम सुख की अनुभूति किया करता हूँ। फिर हे गरुड़ ! श्री राम के बालरूप को हृदय में धारण करके मैं अपने आश्रम में लौट आता हूँ। मैंने आपको वह सारी कथा कह सुनाई जिसके कारण मुझे काक शरीर की प्राप्ति हुई। हे तात ! मैंने केवल आपके प्रश्नों के उत्तर ही दिए हैं, वस्तुतः श्री राम की भक्ति की महिमा तो अत्यन्त प्रबल है।

काकभुशुण्डि पुनः बोले कि हे तात ! मुझे यह काक शरीर अत्यधिक प्रिय है क्योंकि इसी शरीर से मैंने श्री राम के चरणों की भक्ति प्राप्त की थी। इसी शरीर को पाकर ही मैंने अपने प्रभु के दर्शन किए तथा मेरे मन के सारे संदेह दूर हो गए। मैं अपने आग्रह भक्ति पक्ष पर हठपूर्वक दृढ़ बना रहा तो मुनि ने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया, परन्तु उसका परिणाम यह हुआ कि मुझे यह वरदान प्राप्त हुआ जो मुनियों को भी दुर्लभ है।

**काव्य-सौंदर्य–**

1. काकभुशुण्डि पर मुनि के शाप का प्रभाव वर्णित है।
2. शाप पाकर भी काक की खुशी प्रदर्शित हुई है। यह तथ्य इस ओर संकेत करता है कि गुरुजनों के प्रति कभी भी क्रोधित नहीं होना चाहिए। गुरु जो भी हमें प्रदान करें चाहे वह शाप ही क्यों न हो सहर्ष स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि इसमें ही मनुष्य की भलाई है।
3. गरुड़ की सभी शंकाओं को दूर किया गया है।
4. रामभक्ति का प्रबल समर्थन किया गया है।
5. सगुण भक्ति की ओर संकेत है।
6. काकभुशुण्डि को काक शरीर में रहते हुए सत्ताईस कल्पों का वर्णन किया गया है।
7. इस स्थान पर महाकवि ने काकभुशुण्डि और पक्षीराज गरुड़ के बीच अब तक हुई वार्ता का सारांश काव्यबद्ध किया है।
8. 'पद-सरोज' में रूपक अलंकार है।
9. 'पुनि-पुनि' में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
10. तत्सम शब्दावली का प्रयोग है।
11. अवधी भाषा का सुंदर प्रयोग हुआ है।
12. प्रथम सोलह पंक्तियों में चौपाई छंद प्रयुक्त हुआ है।
13. अन्तिम चार पंक्तियों में दोहा छंद है।

**35.** चौ.– **जे असि भगति जानि परिहरहीं। केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं।।**
**ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी।।**
**सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। वे सुख चाहहिं आन उपाई।।**
**ते सठ महासिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी।।**
**सुनि भसुंडि के वचन भवानी। बोलेउ गरुड़ हरषि मृदु बानी।।**
**तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं। संसय सोक मोह भ्रम नाहीं।।**

**सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा। तुम्हरी कृपाँ लहेउँ विश्रामा।।**
**एक बात प्रभु पूँछउँ तोही। कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही।।**
**कहहिं संत मुनि वेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ग्यान समाना।।**
**सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाई। नहिं आदरेहु भगति की नाई।।**
**ग्यानहि भगतिहिं अंतर केता। सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता।।**
**सुनि उरगारि वचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना।।**
**भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।।**
**नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु विहंगवर।।**
**ग्यान विराग जोग विग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना।।**
**पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबखा अबल सहज जड़ जाती।।**
**दो.— पुरुष त्यागि सक नारिहि जो विरक्त मति धीर।**
**न तु कामी विषयाबस विमुख जो पद रघुवीर।।**
**सो.— सोउ मुनि ग्याननिधान मृगनयनी विधु मुख निरखि।**
**विवस होइ हरिजान नारि बिष्नु माया प्रगट।।**

**शब्दार्थ— असि** = ऐसी। **जानि** = ज्ञात करके। **परिहरहीं** = छोड़ देते हैं। **जड़** = मूर्ख। **पय लागि** = दूध के लिए। **खगपति** = गरुड़। **विहाई** = छोड़कर। **आन उपाई** = अन्य उपाय। **सठ** = मूर्ख। **तरनी** = नौका। **मृदुवानी** = कोमल वचन। **पुनीत** = पवित्र। **गुन ग्रामा** = गुणों का समूह। **विश्रामा** = शान्ति। **बुझाइ** = समझाकर। **सन्** = से। **नाईं** = समान। **केता** = कितना। **निकेता** = घर। **उरगारि** = सर्प-शत्रु गरुड़। **सुजाना** = बुद्धिमान्। **भव संभव** = संसार से उत्पन्न। **खेद** = कष्ट। **विहँगवर** = पक्षीराज। **हरिजाना** = गरुड़। **अबला अबल** = अबला (माया) बलहीन है। **जड़ जाती** = जन्म से मूर्ख है। **ग्याननिधान** = ज्ञान के खजाने। **मृगनयनी** = हिरण के समान बड़े नेत्र वाली। **विधुमुख** = चन्द्रमा रूपी मुख। **निरखि** = देखकर। **विवस** = पराधीन। **प्रकट** = प्रत्यक्ष।

**प्रसंग**— व्याख्येय पद्य–खण्ड हिन्दी साहित्यकाल के सूर्य, भक्तिकालीन राम काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। काकभुशुण्डि अपने कौए के शरीर को पाकर बड़ा प्रसन्न है, क्योंकि उसे इसी शरीर में राम की भक्ति की प्राप्ति हुई थी, इसलिए अपने इसी रूप को सफल एवं साथक मानता है और गरुड़ से कहता है—

**व्याख्या**— काकभुशुण्डि कहने लगे कि — हे गरुड़ ! जो मनुष्य भक्ति की ऐसी महिमा को जानने पर भी उसका परित्याग करते हैं तथा ज्ञान प्राप्ति के लिए परिश्रम करते हैं उन मंद बुद्धि वाले प्राणियों का आचरण ऐसा ही है, मानो कोई घर में बंधी हुई कामधेनु गाय को छोड़कर,दूध के लिए ऑक के पौधे की खोज कर रहा हो। भाव यह है कि ऑक के पौधे का दूध निरर्थक है अनिष्ट करने वाला है, जबकि कामधेनु का दूध मनोकामनाओं को पूरा करने वाला है। हे गरुड़ ! जो भगवान् की भक्ति को छोड़कर अन्य उपायों द्वारा सुख प्राप्त करने की कामना करते हैं, वे मूर्ख हैं। वे बिना नौका के महान् समुद्र को पार करना चाहते हैं- यह उनका मूर्खतापूर्ण कार्य है। (शिवजी कहते हैं) हे पार्वती ! काकभुशुण्डि के इस प्रकार के वचनों को सुनकर गरुड़ अत्यन्त प्रसन्न हुए और कोमल वचन कहने लगे—आपकी बातें सुनकर प्रभु की कृपा से मेरे सभी संदेह, शोक, मोह और भ्रम आदि दूर हो गये हैं। मैंने तुम्हारी दया से राम के गुणों को सुन लिया है। अब ही मुझे शान्ति प्राप्त हो सकी है। हे कृपा के समुद्र काकभुशुण्डि ! मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ। आप मुझे अच्छी प्रकार समझाकर कहें। प्रायः सन्त, वेद, पुराण, मुनि कहते हैं कि राम प्राप्ति के समान कुछ भी दुर्लभ नहीं है। उसी ज्ञान के विषय में लोमश मुनि ने आपसे कहा था, परन्तु भक्ति के समान उसका सम्मान नहीं किया था। हे कृपालु ! बताइए कि ज्ञान और भक्ति में कितना अन्तर है ? गरुड़ के प्रश्न को सुनकर काकभुशुण्डि को बहुत आनन्द हुआ। अतः ज्ञानी काकभुशुण्डि ने आदर पूर्वक इस प्रकार उत्तर दिया—यद्यपि भक्त और ज्ञान में कुछ भी भेद नहीं है दोनों ही संसार से उत्पन्न कष्ट को दूर करने वाले हैं। फिर भी, हे स्वामी ! ऋषि मुनियों ने इसमें कुछ अन्तर बताया है। अतः हे पक्षीराज ! आप ध्यानपूर्वक सुनें ज्ञान, वैराग्य, योग तथा विज्ञान इन सभी को पुरुषों की श्रेणी में रखा गया है। पुरुष सब प्रकार से प्रबल तथा प्रतापी होता है और इसके विपरीत नारी स्वभाव से ही दुर्बल तथा जाति अर्थात् जन्म से ही जड़ अर्थात् मूर्ख कही गई है।

स्त्री का त्याग केवल वे ही पुरुष कर पाते हैं जिनका हृदय वैराग्य और धैर्यशीलता से युक्त हो। विषय-वासनाओं में लिप्त और श्री राम के चरणों में प्रेम न करने वाले कामी पुरुष स्त्री का त्याग कभी नहीं कर पाते। काकभुशुण्डि कहते हैं, हे गरुड़ ! बड़े-बड़े ज्ञानवान् मुनि भी सुलोचनी स्त्रियों का चंद्रमुख देखकर उनके वशीभूत हो जाते हैं। हे गरुड़ ! नारी तो साक्षात् विष्णु की ही माया का व्यक्त रूप है।

**काव्य-सौंदर्य**–

1. भगवान् श्री राम की महिमा का बखान किया गया है।
2. नारी को माया के रूप में वर्णित किया गया है।
3. रामभक्त मनुष्य ही स्वयं को विषय-वासनाओं से अलग रख सकता है।
4. 'जे असि ..... पय लागी' में उदाहरण अलंकार है।
5. 'सुनु खगेस ..... जड़ करनी' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
6. 'कृपानिधि', 'ग्यान विधान', 'विधुमुख' में रूपक अलंकार है।
7. 'मृगनयनी' में उपमा अलंकार है।
8. तत्सम शब्दों का बाहुल्य है।
9. अवधी भाषा का सुंदर रूप प्रयुक्त हुआ है।
10. प्रथम सोलह पंक्तियों में चौपाई छंद है।
11. अन्तिम दो पंक्तियों में सोरठा छंद है।
12. अन्तिम दो पंक्तियों से ऊपर की दो पंक्तियों में दोहा छंद है।

**36.** **चौ.– इहाँ न पच्छपात कछु राखउँ। वेद पुरान संत मत भाषउँ।।**
**मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।।**
**माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि वर्ग जानइ सब कोऊ।।**
**पुनि रघुवीरहि भगति पियारी। माया खलु नर्तकी विचारी।।**
**भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।।**
**राम भगति निरुपम निरुपायी। वसइ जासु उर सदा अबाधी।।**
**तेहि विलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई।।**
**अस विचारि जे मुनि विग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुख खानी।।**
**दो.– यह रहस्य रघुनाथ कर वेगि न जानइ कोइ।**
**जो जानइ रघुपति कृपाँ सपनेहुँ मोह न होइ।।**
**औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सुप्रवीन।**
**जो सुनि होइ राम पद प्रीति सदा अविछीन।।**

**शब्दार्थ**– **पच्छपात** = पक्षपात। **कछु राखउँ** = कुछ भी रहेगा। **भावउँ** = कहा गया है। **मोह न** = मोहित नहीं होती। **पन्नगारि** = सर्पों के शत्रु गरुड़। **अनूपा** = अनुपम। **नारि वर्ग** = नारी के रूप में। **जानइ** = जानते हैं। **नर्तकी** = नाचने वाली। **सानुकूल** = अनुरूप चलने वाले। **तातें** = इसलिए। **तेहि** = उससे। **निरुपम** = उपमा रहित, असामान्य। **निरुपाधी** = उपाधि रहित, दोष रहित। **जासु** = जिसके। **अबाधी** = निरन्तर। **तेहि बिलोक** = उन्हें देखकर। **सकुचाई** = संकुचित होती है। **प्रभुताई** = प्रभुता शक्ति दिखाना। **अस** = इस प्रकार। **जाचहिं** = माँगते हैं। **कर** = का। **वेगि** = शीघ्र। **मोह** = माया। **सुप्रवीन** = चतुर। **अविछीन** = निरन्तर।

**प्रसंग**– प्रस्तुत पद्य–खण्ड हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन रामभक्त व महान् कविवर 'तुलसीदास' द्वारा विरचित भारतीय धर्म और संस्कृति के महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। काकभुशुण्डि गरुड़ को भक्ति व ज्ञान का अन्तर बताते समय माया और भक्ति की भिन्नता पर प्रकाश डालते हुए कहता है–

**व्याख्या**– काकभुशुण्डि ने गरुड़ से कहा कि यहाँ मैं कोई पक्षपात की भावना न रखकर, वेद, पुराण तथा संतजनों द्वारा

बताए गए तथ्य को ही प्रकट कर रहा हूँ। हे गरुड़ देखों, कितनी विचित्र बात है कि कोई भी नारी किसी दूसरी नारी क रूप पर मोहित नहीं होती। भक्ति और माया दोनों ही नारी रूप हैं। इनके विषय में लोगों की यही नीति और रीति रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि भक्ति और नीति इन दोनों को नारी वर्ग में रखा गया है। इन दोनों में भी भक्ति श्री राम को अत्यधिक प्रिय है। माया बचारी तो बस उन्हें प्रसन्न रखने वाली नटीं अर्थात् नर्तकी के समान ही है। भगवान् राम सदैव भक्ति के अनुकूल रहते हैं अर्थात् भक्ति पर सदा कृपालु रहते हैं। अतः माया सदैव भक्ति से डरी हुई रहती है। अतः भगवान् श्री राम की यह उपमा एवं उपाधि से रहित भक्ति जिस मनुष्य के हृदय में भी अबाध रूप से रहती है, उसे देखकर माया भी सकुचा जाती है। उस पर कोई बस नहीं चल पाता अथात उसकी कोई प्रभुता नहीं चल पाती। मन में ऐसा विचार कर ज्ञानी पुरुष एवं मुनिगण आदि भगवान् से सदैव इन सब सुखों की खान रूपी भक्ति की याचना किया करते हैं।

श्री राम के इस गुप्त रहस्य को कोई जल्दी से नहीं ज्ञात कर सकता, परन्तु राम की कृपा से जो इस रहस्य का ज्ञात कर लेता है उसे कभी स्वप्न में भी माया व्याप्त नहीं होती। हे चतुर गरुड़! ज्ञान और भक्ति का एक और भेद भी मैं तुम्हें बताता हूँ सुनो ! जिसे सुनकर राम के चरणों में दृढ़ भक्ति एवं प्रेम उत्पन्न होता है और निरन्तर उनके चरणों में प्रेम बना रहता है।

**काव्य-सौंदर्य–**

1. भक्ति और माया के भेद का वर्णन किया गया है।
2. माया भक्ति से हमेशा भयभीत रहती है।
3. माया को एक नर्तकी व भक्ति को राम के अनुकूल चलने वाली कहा है।
4. माया का मानवीकरण किया गया है।
5. ज्ञान और भक्ति का अन्तर भी बताया गया है।
6. तत्सम शब्दों का बाहुल्य है।
7. भाषा अवधी है।
8. चौपाई छंद का प्रयोग पद्य की आरम्भिक आठ पंक्तियों में हुआ है।
9. अन्तिम पंक्तियों में दोहा छंद है।
10. गरुड़ की शंकाओं का समाधान किया गया है।

**37.** **चौ.– सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जाइ बखानी।।**
**ईस्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।**
**सो मायाबस भयउ गोसाई। बँध्यो कीर मरकट की नाई।।**
**जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छटत कठिनई।।**
**तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी।।**
**श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई।।**
**जीव हृदयँ तम मोह विसेषी। ग्रंथि छूट किमि परइ न देखी।।**
**अस संजोग ईस जब करई। तबहुँ कदाचित सो निरुअरई।।**
**सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरि कृपा हृदयँ बस आई।।**
**जप तप व्रत जम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धर्म अचारा।।**
**तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई।।**
**नोइ निवृत्ति पात्र बिसवासा। निर्मल मन अहीर निज दासा।।**
**परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई।।**
**तोष मरुत तब छमाँ जुड़ावै। धृति सम जावनु देइ जमावै।।**
**मुदिताँ मथै विचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी।।**
**तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता। विमल विराग सुभग सुपुनीता।।**

**दो.— जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।**
**बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ।।**
**तब विग्यान रुपिनी बुद्धि विसद घृत पाइ।**
**चित्त दिआ भरि धरै दृढ़ समता दिअटि बनाइ।।**
**तीन अवस्था तीन गुन तेहि कपास तें काढ़ि।**
**तूल तुरीय सँवारि पुनि बीती करै सुगाढ़ि।।**
**सो.— एहि विधि लेसै दीप तेज रासि विग्यानमय।**
**जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब।।**

**शब्दार्थ**— **औरउ** = और। **अविछीन** = दृढ़, अटूट। **अकथ** = जिसे कहा नहीं जा सकता। **अमल** = पाप रहित। **सहज** = स्वभाव से। **कीर** = तोता। **मरकट** = बन्दर। **नाई** = समान।**ग्रंथि** = गाँठ। **परि गई** = पड़ गई। **मृषा** = असत्य। **अरुझाई** = उलझता है। **तम मोह** = मोह रूपी अंधकार। **किमि** = कैसे। **अस** = ऐसा। **निरुअरई** = छूट पाती है। **धेनु** = गाय। **बस आई** = आकर रहने लगे। **अपारा** = अनेक। **अचारा** = आचरण। **तेइ तृन** = वे तिनके। **भाव वच्छ** = भाव रूपी बछड़ा। **पेन्हाई** = पोषण करे। **नोई** = पैर बाँधने की रस्सी। **अहीर** = दूध दुहने वाला। **पय** = दूध। **अवटै** = गर्म करे, औटावे। **अकाम** = निष्काम। **तोष मरुत** = संतोष रूपी वायु। **जुड़ावे** = ठण्डा करे। **सम** = मन को वश में करना। **जावनु** = दूध जमाने के लिए खट्टा पदार्थ। **मथै** = बिलौना, मथना। **मथानी** = दही मथने वाली। **अधार** = दीवार आदि आधार। **रजु** = रस्सी। **नवनीता** = मक्खन। **सुपुनीता** = अत्यत्न पवित्र। **सिरावै** = ठण्डा करे। **जरि जाइ** = जल जावे। **विसद** = पवित्र। **दिया** = दीपक। **दिअटि** = दीपक रखने की वस्तु। **तूल** = रुई। **सुगढ़ि** = मज़बूत। **लेसै** = जलावे। **जातहिं** = जाते ही। **जरहिं** = जल जावे। **सलभ** = पतंगे।

**प्रसंग**— प्रस्तुत व्याख्येय पद्य–खण्ड हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में सगुण भक्ति काव्यधारा के अर्न्तगत रामभक्ति परम्परा के प्रतिनिधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित संसार प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। इसमें बताया गया है कि काकभुशुण्डि पूर्व जन्म में ब्राह्मण वेश में काक होने का शाप ग्रहण करता है। शापवश वह काक बन जाता है। काकभुशुण्डि गरुड़ के प्रश्नों का उत्तर देता हुआ ज्ञान और भक्ति के अन्तर को स्पष्ट करता हुआ कहता है—

**व्याख्या**— हे गरुड़ ! कृपया सुनिए। अब मैं आपके समक्ष वह अकथनीय कथा कहता हूँ, जिसे केवल समझा जा सकता है; इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यह जीव ईश्वर का ही अंश है। अतः यह भी अविनाशी, चेतन, निर्मल तथा स्वभाव से ही सुखों का भण्डार है। हे गोसाईं ! ईश्वर का अंश रूप यह जीव माया के वशीभूत होकर तोते एवं बन्दर की भाँति स्वयं अपने आप में ही बँध जाता है और इस प्रकार जड़ और चेतन अर्थात् जीव तथा ईश्वर में भेद रूपी गाँठ पड़ जाती है। यद्यपि यह भेद झूठा है फिर भी इससे छुटकारा पाना कठिन होता है। जब से ईश्वर एवं जीव में भेदरूपी यह गाँठ पड़ी है, जीव संसारी अर्थात् जीवन-मरण के चक्र में पड़ने वाला बन गया है, अब न तो यह गाँठ ही खुलती है और न यह जीव ही जीवन में सुखी हो पाता है। यद्यपि वेद एवं पुराणों ने इस ग्रंथि में मुक्ति पाने के अनेकानेक उपाए बताए हैं फिर भी जीव एवं ईश्वर के बीच पड़ी हुई यह ग्रंथि सुलझने के स्थान पर और अधिक उलझती चली जा रही है। सच तो यह है कि जीव का हृदय एक विशिष्ट अंधकार से व्याप्त है, जिसके कारण उसे वह ग्रंथि दिखाई ही नहीं पड़ती फिर भला उस ग्रंथि का खुलना संभव हो भी तो कैसे ? यदि ईश्वर कभी ऐसा संयोग उपस्थित कर भी दें कि वह गाँठ सुगमता से दिखाई पड़ सके तब भी वह अत्यन्त कठिनता से सुलझ सकती है। माया के प्रभाव के कारण हृदय में स्थित अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट करने तथा ईश्वर और जीव के बीच पड़ी भेद रूपी ग्रंथि को सुलझाने का उपाय बताते हुए काकभुशुण्डि कहते हैं कि श्रीराम की कृपा से सतोगुणी श्रद्धा रूपी सुंदर गाय रूपी घर में आ बसे, जप, तप, व्रत, यम और नियम आदि असंख्यों साधन तथा वेदों में वर्णित जितने भी शुभ धर्म एवं आचरण हैं। उन्हीं साधनों एवं धर्माचरणों का घास के रूप में सेवन करते हुए सात्विक श्रद्धारूपी यह गाय पुष्टता को प्राप्त हो, आस्तिक भावरूपी छोटा बछड़ा आकर उसे पेन्हावे अर्थात् पौंसे। सांसारिक विषय-वासनाओं से अनासक्ति रूपी रस्सी से सात्विक श्रद्धा रूपी गाय को संयमित किया जाए। ईश्वर के प्रति विश्वास का भाव ही दूध दुहने का पात्र अर्थात् बरतन हो तथा स्वयं अपना दास अर्थात् अपने ही वश में हुआ निर्मल तथा स्वच्छ मन दूध दुहने वाला ग्वाला हो। हे भाई ! इस प्रकार धर्माचरण में प्रवृत्त सात्विक श्रद्धा रूपी गाय से परम् धर्म से युक्त दूध दुहकर उसे निष्काम भाव की अग्नि पर भली प्रकार से औटाया जाए। कहने का भाव यह है कि प्राणी निष्काम भाव से अपने धर्म को अधिकाधिक शुद्धि प्रदान करें, फिर संतोष रूपी पवन से क्षमा ही उस परम् धर्ममय दूध को ठण्डा करे। उसके पश्चात् धीरता रूपी बाला उस दूध राम

रूपी जामन (जमाने के लिए दही) लगाकर उसे जमावे। कहने का अभिप्राय यह है कि प्राणी का धर्म, क्षमा, धैर्य, संतोष और शमन से भी युक्त हो। प्रसन्नतारूपी हाँडी में तत्व विचार रूपी मथनी से दम अर्थात् इन्द्रिय दमन रूपी बीठे (आधार) पर रखकर मधुर वाणी की नेती अर्थात् रस्सी से मथकर निर्मल एवं पवित्र वैराग्य रूपी मक्खन निकाला जाए।

काकभुशुण्डि इसी संदर्भ में गरुड़ से कहते हैं—प्रसन्नतारूपी हाँडी से वैराग्य रूपी मक्खन निकालकर, योगरूपी अग्नि में अपने सारे शुभ एवं अशुभ कर्मों का ईंधन जलाकर तदुपरान्त इस वैराग्य रूपी मक्खन को उस अग्नि पर रखकर पिघला लिया जाए। फिर इस मक्खन से ममत्व भाव रूपी मल (मट्ठा) के जल जाने अर्थात् नष्ट हो जाने पर निश्चयात्मिका बुद्धि रूपी पँखे की सहायता से ज्ञान रूपी घी को शीतल कर लिया जाए। इसके बाद विज्ञान रूपिणी बुद्धि, ज्ञान का वह निर्मल घी लेकर उसके चित्त रूपी दीए को भर ले, फिर समत्व-भाव की दीवट बनाकर उस पर ज्ञान रूपी घी से भरे चित्त रूपी दीए को दृढ़ता से जमाकर रख दे। इसके पश्चात् जीवात्मा, तीनों अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति) तथा तीनों गुनों (सत्व, रज तथा तम) की कपास से तुरीयावस्था रूपी रुई को लेकर तथा भली प्रकार से सँवारकर उससे एक सुंदर तथा कड़ी बाती तैयार करें। इस प्रकार जब जीव, तेज की राशि से इस विज्ञानमय दीपक को प्रज्ज्वलित करेगा तब उसके समीप जाते ही काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि पतंगे जलकर भस्म हो जाएंगे।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. प्रथम चौपाई में महाकवि ने जीव ही के अंश रूप में स्वीकार कर उसे ईश्वर की ही भाँति शुद्ध एवं मुक्त आत्मा घोषित किया है जो बाद को माया के वशीभूत होकर अज्ञानरूपी अंधकार से मुक्त हो जाता है। माया के प्रभाव के कारण जीव अपने आप में बँधकर स्वयं एवं ईश्वर में भेद रूपी ग्रंथि को जन्म दे बैठता। जिसे महाकवि ने तोते एवं बन्दर के उदाहरण द्वारा दूसरी चौपाई में स्पष्ट किया है। तोता सेमल के पुष्प की ओर आकर्षित होकर मीठ फल की आशा में दिन-रात उसी में अपना चित्त लगाए रहता है; फिर जब वह उसके फल का रसास्वादन करने के उद्देश्य से उसमें चोंच मारता है तो उस फल को स्वादरहित पाता है। इतना ही नहीं उस फूल से निकलकर रुई के गुच्छों का उड़ता देख बेचारा तोता निराशा के कारण मूर्छित हो जाता है। ऐसा ही हाल बेचारे बन्दर का होता है, मदारी के हाथ में पड़ जाए तो उसे मुसीबतें उठानी पड़ती हैं।
2. जीव माया के वशीभूत होकर संसार में भ्रमण कर रहा है। काकभुशुण्डि उससे छूटने के उपाय बताता है।
3. 'बँध्यों कीर मरकट की नाई' में उपमा अलंकार है।
4. 'जड़ चेतनहि ..... छूटत कठिनाई' में रुपकातिश्योक्ति अलंकार है।
5. 'ग्रंथि का उपमेय' यहाँ अकथित है।
6. पाँचवी चौपाई से आगे तक चलने वाले सांगरूपक की योजना की गई है जो विभिन्न बिम्बों तथा क्रियाओं द्वारा अध्यात्म क्षेत्र में प्रयुक्त प्रस्तुतों को ग्राह्य बनाने में पूर्णतया सफल है। इस सांगरूपक में स्थान-स्थान पर प्रयुक्त हुए बोली के शब्दों का प्रयोग भी दिखाया गया है।
7. महाकवि ने वैराग्य से आगे आत्मसाक्षात्कार तक की अवस्था का वर्णन किया है।
8. तीन अवस्थाएँ हैं—जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति।
9. तीन गुण होते हैं—सत्व, रज एवं तम।
10. तत्सम शब्दावली की योजना है।
11. प्रस्तुत पद्य की मूल भाषा अवधी है।
12. पद्य की प्रथम सोलह पंक्तियों में चौपाई छंद है।
13. पद्य की अन्तिम छह पंक्तियों में दोहा छंद है।

**38. चौ.— सोहमस्मि इति वृत्ति अंखडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा।।**
**आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा।।**
**प्रबल अविद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटइ अपारा।।**
**तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा। उर गृह बैठि ग्रंथि निरुआरा।।**
**छोरन ग्रंथि पाव जौं सोई। तब यह नीव कृतारथ होई।।**
**छोरत ग्रंथि जानि खगराया। विघ्न अनेक करइ तब माया।।**

**रिद्धि सिद्धि प्रेरइ बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहिं आई।।**
**कल बल छल करि जाहिं समीपा। अंचल वात बुझावहिं दीपा।।**
**होइ बुद्धि जौं परम सयानी। तिन्ह मन चितवन अनहित जानी।।**
**जौं तेहि विघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी।।**
**इंद्री द्वार झरोखा नाना। तहँ सहँ सुर बैठे करि थाना।।**
**आवत देखहिं विषय बयारी। ते हठि देहि कपाट उघारी।।**
**जब सो प्रभंजन उर गृहँ जाई। तबहिं दीप विग्यान बुझाई।।**
**ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि विकल भइ विषय बतासा।।**
**इंद्रिन्ह सुरन्ह न ग्यान सोहाई। विषय भोग पर प्रीति सदाई।।**
**विषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि विधि दीप को बार बहोरी।।**
**दो.— तब फिरि जब विविधि विधि पावइ संसृति क्लेस।**
**हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ विहगेस।।**
**कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन विवेक।**
**होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक।।**

**शब्दार्थ— सोहमस्मि** = मैं वही हूँ। **सिखा** = लौ। **कर** = का। **तम** = अंधकार।**अपारा** = अधिक। **उर गृहँ** = हृदय रूपी घर। **ग्रंथि** = गाँठ। **छोरन** = खोलना।**खगराया** = पक्षीराज गरुड़। **कल** = कला। **बात** = हवा। **सयानी** = समझदार। **तिन्ह तन वितवन** = उनकी ओर नहीं देखती। **बहोरि** = फिर। **उपाधी** = बाधा। **नाना** = अनेक। **करि थाना** = स्थान बनाकर। **विषय–बयारि** = विषय रूपी हवा। **हठि देहिं** = आग्रहपूर्वक। **कपाट** = किवाड़। **उघारि** = खोलना। **प्रभंजन** = तेज हवा, आँधी। **उर** = हृदय। **छूटि** = खुलती। **बिकल** = व्याकुल। **विषय बतासा** = विषय रूपी वायु। **सुरन्ह** = देवता। **कृत** = किए गये। **भोरी** = भ्रम में पड़ी हुई। **बहोरी** = फिर। **संसृति क्लेस** = संसार के जन्म मरण के दुख। **दुस्तर** = कठिन। **तरि न जाय** = पार नहीं किया जा सकता। **विहगेस** = पक्षीराज। **विवेक** = ज्ञान। **घुनाच्छर न्याय** = अनायास, अचानक। **प्रत्यूह** = अनेक विघ्न।

**प्रसंग**— प्रस्तुत पद्य खण्ड हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन रामभक्त काव्यधारा के प्रति-निधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। काकभुशुण्डि गरुड़ को भक्ति और ज्ञान का अन्तर बताते हुए ज्ञान का कठिन मार्ग बता रहे हैं—

**व्याख्या**— काकभुशुण्डि गरुड़ से कहते हैं—हे गरुड़! जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। दोनों पर्यायवाची हैं। 'सोहमस्मि' अथवा 'अंहब्रह्मास्मि' अर्थात् 'वह मैं ही हूँ' अथवा 'मैं ही वह हूँ।' इस प्रकार जो अखण्ड आकार की चित्तवृत्ति होती है। वह उस प्रज्ज्वलित दीपक की लौ है। इस दीपक से जब आत्मा के अनुभव रूपी सुख का प्रकाश चारों ओर फैलता है, तब संसार के मूल में जो भेद (जीव और परमात्मा का अन्तर) रूपी भ्रम नष्ट हो जाता है। उस समय अविद्या का जो प्रबल प्रभाव है उसके मोह आदि परिवार को जो अमिट अंधकार व्याप्त है वह अंधकार अर्थात् अविद्या नष्ट हो जाती है। तब वह ज्ञान-विज्ञान रूपिणी बुद्धि आत्मानुभव के प्रकाश में, हृदय रूपी घर में बैठकर उस जड़-चेतन के भेद की ग्रंथि को सुलझाने में प्रयत्नशील हो जाती है। यदि ज्ञान-विज्ञान से युक्त बुद्धि जड़-चेतन के भेदरूपी उस ग्रंथि को सुलझाने में सफल हो जाती है तो जीव का यह जीवन सफल मनोरथ अर्थात् कृतार्थ है, परन्तु हे पक्षीराज गरुड़ ! जैसे ही माया को ज्ञान होता है कि ग्रंथि खोली जा रही है, वैसे ही वह अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित करती है। ऐसे में माया अनेक प्रकार की ऋद्धि-सिद्धियों को प्रेरित करके उनके माध्यम से बुद्धि को ललचाने का प्रयास करती है। ये ऋद्धि-सिद्धियाँ कला, शक्ति अथवा छल-कपट से उस ज्ञान दीपक के समीप जा पहुँचती हैं तथा अपने आँचल की हवा से उसे बुझा देती हैं। काकभुशुण्डि कहते हैं कि यदि ज्ञान-विज्ञान रूपी वह बुद्धि अत्यधिक चतुर हो तो वह इन ऋद्धि-सिद्धियों को अहित करने वाली जानकर इनकी ओर देखती भी नहीं, अतः बुद्धि यदि इन मायावी ऋद्धि-सिद्धियों के प्रलोभन में नहीं फँसती तो फिर देवतागण अनेक प्रकार के विघ्न उपस्थित कर देते हैं। हृदय रूपी घर में, इन्द्रियों के द्वार रूपी अनेकों दरवाज़े व झरोखे हैं जिन पर विभिन्न देवता अपना-अपना स्थान बनाकर बैठ गए हैं। ये देवगण ज्यों ही विषम-वासनाओं रूपी पवन तेजी से चलती है तो हृदय के दरवाज़े बलपूर्वक खुल जाते हैं। तभी वह तेज वायु (विषय) हृदय रूपी घर में प्रवेश करके दीपक को बुझा देती है। अतः गाँठ भी नहीं खुलती और ज्ञान का प्रकाश भी समाप्त हो जाता है। परिणामस्वरूप बुद्धि अत्यन्त व्याकुल हो जाती है

और विषय रूपी हवा चलती रहती है। इस स्थिति में इन्द्रियों और उनके देवताओं को ज्ञान अच्छा नहीं लगता, क्योंकि वे विषय वासनाओं से प्रेम करके लिप्त हो जाते हैं। यह विषय रूपी वायु से बुद्धि भी भ्रम में पड़ जाती है। अतः तब ज्ञान रूपी दीपक को फिर कौन जला सकता है ? भाव यह है कि इस दशा में ज्ञान भी समाप्त हो जाता है।

काकभुशुण्डि कहते हैं कि इस प्रकार ज्ञान-दीपक के बुझ जाने पर जीवात्मा फिर से जीवन-मरण के विविध सांसारिक कष्टों को भोगने लगती है। हे गरुड़ ! श्री राम की माया अत्यन्त कठिन है जिससे बचना बहुत मुश्किल है। इसी कारण ज्ञान के विषय में कुछ कह पाना बड़ा कठिन है, इसका समझना तथा इसकी साधना करना भी अत्यन्त कठिन कार्य है। यदि घुनाक्षर मात्र से ज्ञान प्राप्ति हो जाए तो उसकी रक्षा करने में अनेक बाधाएँ आती हैं।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. काकभुशुण्डि ने भक्ति के विषय में बताने से पूर्व ज्ञान के विषय में अपने विचार प्रस्तुत किए है।
2. ज्ञान और भक्ति में भेद है। इसे समझना कठिन कार्य है।
3. यहाँ कवि ने ज्ञान के विषय में अब तक चली कथा का सार प्रस्तुत किया है 'विवेक' शब्द का प्रयोग इस स्थान पर ब्रह्म ज्ञान को ध्वनित करता है। घुन के खाने अथवा उसके चलने से बने हुए चिह्नों की अस्पष्टता को ही अक्षर मानकर उसके अर्थ निकालने का प्रयत्न करना, घुणाक्षर न्याय कहलाता है।
4. ज्ञान का मार्ग बड़ा कठिन है।
5. 'सोह मस्मि ..... अनेक' में साँगरूपक अलंकार है।
6. 'तेहि विधि दीप को बार बहोरी' में वक्रोक्ति अलंकार है।
7. अवधी भाषा का सुंदर प्रयोग है।
8. तत्सम शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
9. पद्य की आरम्भिक सोलह पंक्तियों में चौपाई छंद है।
10. पद्य की अन्तिम चार पंक्तियों में दोहा छंद का प्रयोग किया गया है।

**39.** चौ.— **ग्यान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा।।**
**जो निर्विघ्न पंथ निर्बहई। सो कैबल्य परम पद लहई।।**
**अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम वद।।**
**राम भजत सोई मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआई।।**
**जिमि चल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई।।**
**तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति विहाई।।**
**अस विचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने।।**
**भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति सूल अविद्या नासा।।**
**भोजन करिअ तृपति हित लागी। जिमि सो असन पचवै जठरागी।।**
**असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई।।**
दो.— **सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।**
**भजहु राम पद पंकज अस सिद्धाँत विचारि।।**
**जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।**
**अस समर्थ रघुनायकहिं भजहिं जीव ते धन्य।।**

**शब्दार्थ**— **ग्यान पंथ** = ज्ञान का मार्ग। **कृपान कै धारा** = तलवार की धार। **परत** = गिरने में। **हहि नहि बारा** = देर नहीं लगती। **खगेश** = पक्षीराज। **निर्वहई** = निर्वाह करते हैं। **कैवल्य** = मुक्ति। **वद** = कहते हैं। **अनइच्छित** = बिना इच्छा के। **बरिआई** = बलपूर्वक आती हैं। **जिमि** = जैसे। **रहि न सकाई** = नहीं रह सकता है। **खगराई** = पक्षीराज गरुड़ **रहि न सकई** = नहीं रह सकता है। **विहाई** = छोड़कर। **अस** = इस प्रकार। **सयाने** = बुद्धिमान्। **बिनु जतन** = बिना प्रयत्न के। **संसृति** = संसार जहाँ जन्म-मरण है। **नासा** = नष्ट हो जाती है। **तृपनि हित** = सन्तुष्टि के लिए। **जिमि** = जैसे

**असन** = भोजन। **पचवै** = पचाती है। **जठरागी** = पेट की अग्नि। **को अस मूठ** = कौन ऐसा मूर्ख है। **सेव्य** = स्वामी। **सेवक** = दास, सेवा करने वाला। **भव** = संसार। **तरिअ** = पार होना। **उरगारि** = गरुड़। **पद–पंकज** = चरण कमल। **जड़** = अचेतन। **चैतन्य** = चेतन। **अस समर्थ** = इतने शक्तिशाली। **भजहि** = भक्ति करते हैं।

**प्रसंग**— प्रस्तुत पद्य खण्ड हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन में रामभक्ति काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। इसमें काकभुशुण्डि पक्षीराज गरुड़ के प्रश्नों का उत्तर देते हुए तथा ज्ञान व भक्ति के अन्तर को समझाते हुए कहते हैं–

**व्याख्या**— हे पक्षीराज गरुड़ ! ज्ञान के मार्ग पर चलना तो तलवार की धार पर चलने के समान है। अर्थात् जिस प्रकार तलवार की धार पर चला नहीं जा सकता। उसी प्रकार ज्ञान के मार्ग पर नहीं चला जा सकता। जैसे तलवार की धार पर चलने वाला कभी भी गिर सकता है, ठीक उसी तरह से ज्ञान के मार्ग पर चलने वाला भी गिर सकता है। जो मानव इस ज्ञान के मार्ग पर बिना किसी बाधा के चल देता है और पार कर जाता है, वही केवल परम् पद अर्थात् मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। संत, पुराण, वेद तथा तन्त्र आदि सभी शास्त्रों का यही मत है कि कैवल्य अर्थात् परम् पद की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, किन्तु हे गोसाईं ! श्री राम का भजन करने मात्र से ही दुर्लभ मुक्ति बिना इच्छा किए ही प्राप्त हो जाती है। अर्थात् राम की भक्ति में वह मुक्ति स्वतः प्राप्त हो जाती है। जैसे चाहे करोड़ों उपाय किए जाए, परन्तु जल बिना आधार (पृथ्वी) के कहीं अन्यत्र नहीं टिक सकता, ठीक उसी प्रकार मोक्ष का सुख भी भगवान् की भक्ति को अन्यत्र नहीं रह सकता। हे पक्षीराज ! मन में ऐसा विचार करके ही चतुर भक्त राम की भक्ति करते हैं। उन्हें भक्ति का इतना अधिक लोभ रहता है कि उनके समक्ष वे मुक्ति का भी अपमान कर देते हैं। श्री राम की भक्ति द्वारा बिना किसी साधना अथवा परिश्रम के ही जन्म-मरण अर्थात् सांसारिक आवागमन के चक्र में डालने वाली अविद्या अर्थात् अज्ञान का नाश हो जाता है। जिस प्रकार भोजन केवल तृप्ति के लिए किया जाता है, परन्तु भोजन को पेट की आग आसानी से अपने आप पचा देती है, ठीक उसी प्रकार से श्री राम की भक्ति भी हृदय को तृप्ति प्रदान करने के साथ-साथ सुगमता से अर्थात् स्वाभाविक रूप से सुख प्रदान करने वाली है। ऐसा कौन मूर्ख होगा जिसे भक्ति अच्छी न लगती हो अर्थात् राम भक्ति सभी को प्रिय लगती है।

काकभुशुण्डि पुनः कहते हैं – हे सर्पों के शत्रु गरुड़ ! सेवक तथा सेव्य (अर्थात् मैं सेवक हूँ तथा भगवान् मेरे स्वामी हैं, जिनकी मुझे सेवा करनी है) भाव के बिना भव सागर से पार पाना कदापि सम्भव नहीं है, अर्थात् जब तक भक्त स्वयं को सेवक और राम को स्वामी (सेव्य) नहीं समझता है, तब तक वह संसार से पार नहीं हो सकता। इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखकर श्री राम के चरण-कमलों का भजन करना चाहिए। जो ईश्वर जड़ पदार्थों को चेतना से युक्त तथा चेतन पदार्थों को जड़ता से युक्त कर देने में समर्थ हैं, ऐसे स्वामी सर्वशक्ति सम्पन्न श्री राम का भजन करने वाला प्राणी धन्य है।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. ज्ञानमार्ग कठिन है जबकि भक्ति मार्ग सरल है। इसी प्रकार भक्त या साधक के लिए ज्ञान पाना कठिन है, अपितु श्री राम की भक्ति करना सरल है।
2. ज्ञान पर भक्ति की विजय दिखाई गई है।
3. 'ग्यान पथ कृपान के धारा' में उपमा अलंकार है।
4. 'जिमि थल ..... विहाई तथा भगति करत ..... जठरागी' में उदाहरण अलंकार है।
5. पद-पंकज में रूपक अलंकार है।
6. 'जो चेतन ..... चैतन्य' में रूपक अलंकार है।
7. तत्सम शब्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
8. अवधी भाषा का सुन्दर प्रयोग है।
9. आरम्भिक दस पंक्तियों में चौपाई छंद हैं।
10. अन्तिम चार पंक्तियों में दोहा छंद हैं।

**40.** चौ.– **कहेउँ ग्यान सिद्धाँत बुझाई। सुनहु भगतिं कै प्रभुताई।।**
**राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड़ जाके उर अन्तर।।**
**परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिया घृत बाती।।**
**मोह दरिद्र निकट नहीं आवा। लोभ बात, नहिं ताहि बुझावा।।**

**प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई।।**
**खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं।।**
**गरल सुधासम अरि हित कोई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई।।**
**ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी।।**
**राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें।।**
**चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं।।**
**सो मन जदपि प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई।।**
**सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हतभाग्य देहिं मटमेरे।।**
**पावन पर्बत वेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना।।**
**मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी।।**
**भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी।।**
**मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा।।**
**राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि सत समीरा।।**
**सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहूँ पाई।।**
**अस बिचारि जोइ कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा।।**
**दो.— ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं।**
**कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं।।**
**बिरति चर्म असि ग्यान मद लाभ मोह रिपु मारि।**
**जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि।।**

**शब्दार्थ**— **मनि** = चिन्तामणि। **प्रभुताई** = महिमा। **जाके उर** = जिसके हृदय में। **घृत** = घी। **निकट** = पास। **बात** = वायु। **ताहि** = उसे। **प्रबल** = शक्तिशाली। **तम** = अंधकार। **सलभ समुदाई** = पतंगों का समूह। **खल** = दुष्ट। **उर माहि** = हृदय में। **गरल** = विष। **सुधामय** = अमृत युक्त। **अरि** = शत्रु। **हित** = मित्र। **व्यापहि** = प्रभाव दिखाना। **बस** = आधीन। **दुखारी** = दुख दायक। **लवलेस** = थोड़ा सा। **ताके** = उसके। **सुजतन** = अच्छे प्रयत्न से। **प्रगट** = प्रत्यक्ष। **कोउ लहई** = कोई प्राप्त कर सकता। **सुगम उपाय** = सरल ढंग। **हतभाग** = दुर्भाग्यशाली। **देहि मटमेर** ठुकरा देते हैं। **पावन** = पवित्र। **रुचिराकर** = सुन्दर पर्वत। **नाना** = अनेक। **मर्मी** = रहस्य को जानने वाले। **सुमति** = सुबुद्धि। **कुदारी** = कुदाल। **बिराग** = वैराग्य। **उरगारी** = गरुड़। **सुख खानि** = सुख की खान। **कर** = का। **घन** = बादल **तरु** = वृक्ष। **समीरा** = वायु। **काहू** = कोई। **पयोनिधि** = समुद्र। **मन्दर** = मन्दराचल। **सुधा** = अमृत। **काढ़हि** = निकालते हैं। **चर्म** = ढाल। **असि** = तलवार। **रिपु** = शत्रु। **मारि** = मारकर। **खगेश** = पक्षीराज गरुड़।

**प्रसंग**— प्रस्तुत पद्य खण्ड हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन रामभक्त कवियों में शिरोमणि, विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य प्रदान करने वाले विख्यात कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा रचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। काकभुशुण्डि ज्ञान और भक्ति में अन्तर बताते हुए भक्ति अर्थात् रामभक्ति की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं—

**व्याख्या**— हे गरुड़ ! अब तक मैंने आपको जो बातें कही हैं वे सब ज्ञान के सिद्धान्त पर आधारित हैं। ज्ञान के सिद्धान्त को समझाकर ही मैंने अब तक सब बातें बताई हैं। अब भक्ति रूपी मणि के महत्व या महिमा को आप सुनिए। हे गरुड़ ! श्री राम की भक्ति यह सुंदर चिंतामणि जिसके हृदय में भी निवास करती है, वहाँ दिन-रात स्वयं ही परम् प्रकाश रूप बना रहता है। इस प्रकाश करने के लिए दीया, घी, अथवा बाती की कोई आवश्यकता शेष नहीं रहती। उस प्राणी के स्वयं ही प्रकाश रूप हो जाने से न तो मोह रूपी दरिद्रता उसके समीप आ पाती है और न ही लोभ रूपी पवन उस प्राणी के हृदय में स्थित मणिमय दीपक को बुझा ही पाती है। इस भक्ति रूपी मणिमय आलोक में जीव के हृदय में स्थित अविद्या अर्थात् अज्ञान का अंधकार तिरोहित हो जाता है, मद आदिपतंगों का समूह इस मणि के आलोक के सम्मुख हार जाता है। जिस जीव के हृदय में भी श्री राम की यह भक्ति आ बसती है, काम, क्रोध और लोभ आदि दुष्ट उसके समीप भी नहीं आ पाते। इसी भक्ति रूपी मणि के पा जाने पर भक्त के लिए विष भी अमृत के समान हो जाता है, शत्रु भी मित्र बन जाते हैं। इस मणि को प्राप्त किए बिना कोई भी प्राणी सुख प्राप्त नहीं कर पाता

इस मणि के प्रभाव से प्राणी को वे बड़े-बड़े मानसिक रोग भी व्याप्त नहीं होते जिनके वशीभूत हुए सब जीव अत्यधिक यातना भोग रहे हैं। श्री राम भक्ति रूपी यह मणि जिसके भी हृदय में बसती है, उसे स्वप्न में भी थोड़े से दुःख नहीं होते। संसार में वे ही व्यक्ति सर्वाधिक चतुर हैं। जो उस भक्ति रूपी मणि को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। संसार में वह मणि प्रत्यक्ष है, परन्तु भगवान् श्रीराम की कृपा के बिना उसे कोई प्राप्त नहीं कर सकता। इस भक्ति रूपी मणि को प्राप्त करने के उपाय बहुत सुगम हैं, परन्तु जो दुर्भाग्यशाली होते हैं वे उन उपायों को ठुकरा देते हैं। हे गरुड़ ! वेद एवं पुराण आदि पवित्र पर्वत रूप हैं, जिनमें श्री राम की कथाओं के रूप में अनेक सुन्दर खाने विद्यमान हैं। संत पुरुष इन खानों के रहस्य को जानने वाले हैं, जो सुंदर बुद्धि रूपी कुदाल से खोदकर तथा अपने ज्ञान और वैराग्य रूपी नेत्रों से भली-भाँति परखकर श्री राम भक्ति रूपी चिंतामणि को इन खानों में ढूँढ निकालते हैं। काकभुशुण्डि पक्षीराज गरुड़ से बोले कि जो जीव श्री राम के प्रति अनन्य प्रेम भाव रखकर इस भक्ति रूपी चिंतामणि को खोजने का प्रयास करते हैं वे सब सुखों की राशि रूपी इस चिंतामणि को प्राप्त कर लेते हैं। हे प्रभु ! मेरा तो विश्वास यह है कि श्री राम के भक्त अर्थात् संतजन श्रीराम से भी बढ़कर हैं। श्री राम समुद्र हैं तो धैर्यशील संतजन मेघ (बादलों) के समान हैं जो सर्वत्र श्री राम की भक्ति रूपरी जल की वर्षा करते रहते हैं। यदि श्रीराम के चंदन के वृक्ष हैं तो संतजन उस मलय पवन के समान हैं जो उनकी भक्ति महिमा की भीनी-भीनी सुगन्ध को सर्वत्र विकीर्ण कर देती है। कहने का अभिप्राय यह है कि संतजन सर्वत्र श्री राम की यशमयी गाथा का प्रचार-प्रसार कर देते हैं। चाहे कितनी भी साधनाएँ की जायें सभी का लक्ष्य सुख प्रदान करने वाली श्री राम भक्ति को पाना ही होता है, इस श्रीराम भक्ति को संतजनों (सज्जनों की संगति) के बिना कोई भी नहीं पा सकता। काकभुशुण्डि कहते हैं कि हे पक्षीराज गरुड़ ! मन में ऐसा विचार कर जो जीव संतजनों की संगति किया करते हैं, उन्हें श्री राम की भक्ति आसानी से प्राप्त हो जाती है।

काकभुशुण्डि कहते हैं कि ब्रह्म अर्थात् वेद सागर के समान हैं। ज्ञान मंदराचल है तथा संतजन वे देवतागण हैं जो उस वेद रूपी सागर को मथकर रामकथा रूपी वह अमृत निकाला करते हैं जो भक्ति रूपी माधुर्य से युक्त होता है। हे गरुड़ ! आप विचार करके देखिए कि वैराग्य रूपी ढाल तथा ज्ञान रूपी तलवार से अपनी रक्षा करते हुए मद, लोभ और मोह आदि शत्रुओं का नाश करके विजय के रूप में हरि भक्ति ही प्राप्त होती है।

**काव्य-सौंदर्य–**

1. भक्ति और ज्ञान में अन्तर बताया गया है।
2. भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ बताया गया है।
3. रामभक्ति को अभिव्यक्त किया गया है।
4. **अलंकार–** I. 'भगति मणि', 'भगति चिंतामणि', 'लोभ बात', 'अविान्तम' में रूपक अलंकार है।
   II. 'गरल सुधा सम अरि हित होई' में उपमा अलंकार है।
   III. 'पावन पर्वत ..... विचारि' में सांगरूपक अलंकार है।
5. तत्सम शब्दों की सुन्दर योजना की गई है।
6. अवधी भाषा का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
7. प्रथम बीस पंक्तियों में चौपाई छंद है।
8. अन्तिम चार पंक्तियों में दोहा छंद है।

**41.** चौ.– **पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जौं कृपालु मोहि ऊपर भाऊ।।**
**नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी।।**
**प्रथमहिं कहहु नाथ मतिधीरा। सब ते दुर्लभ कवन सरीरा।।**
**बढ़ दुख कवन सुख भारी। सोउ संछेपहिं कहहु बिचारी।।**
**संत असंत मरम तुम्ह जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाउ बखाउहु।।**
**कवन पुन्य श्रुति विदित विसाला। कहहू कवन अघ परम कराला।।**
**मानस रोग कहहू समुझाई। तुम्ह सर्वग्य कृपा अधिकाई।।**
**तात सुनहू सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहउँ यह नीती।।**
**नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही।।**
**नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान विराग भगति सुभ देनी।।**

सो तनु धीर हरि भजहिं न जे नर। होहिं विषय रत मंद मंद तर।।
काँच किरिच बदलें ते लेहीं। कर ते डारि परस मनि देहीं।।
नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं। संत मिलन सम सुख जग नाहीं।।
पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया।।
संत सहहिं दुख पर हित लागी। पर दुख हेतु असंत अभागी।।
भूर्ज तरु सन संत कृपाला। पर हित निति सह वियति बिसाला।।
सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाइ विपति सहि मरई।।
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी।।
पर संपदा विनासि नसाहीं। जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं।।
दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू।।
संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी।।
परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गरीसा।।
हर गुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तन सोई।।
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जन जनमइ बायस सरीर धरि।।
सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहिं ते प्रानी।।
होहिं उलूक संत निंदा रत। मोह निसा प्रिय ग्यान भानुगत।।
सब कै निंदा जे जड़ करहीं। ते जमगादुर होइ अवतरहीं।
सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा।।
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला। तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहू सूला।।
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।।
प्रीति करहिं जौं तोनिउ भाई। उपजइ सन्यपात दुखदाई।।
विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना।।
ममता दादु कंडु इरषाई। हरष विषाद गरह बहुताई।।
पर सुख देखि जराने सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलाई।।
अहंकार अति दुखद डमरुआ। दंभ कपट मद मान नेहरुआ।।
तृस्ना उदरबुद्धि अति भारी। त्रिबिधि ऐषना तरुन तिजारी।।
जुग-बिधि ज्वर मत्सर अविवेका। कहँ लगि कहाँ कुरोग अनेका।।
दो.— एक व्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु व्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहूँ सो किमि लहै समाधि।।
नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान।।

**शब्दार्थ**— **पुनि** = फिर। **खगराऊ** = पक्षीराज गरुड़। **निज** = अपना। **सप्त प्रश्न** = सात सवाल। **बखानी** = बखान करा **कवन** = कौन–सा। **बड़** = बड़ा। **सहज सुभाव** = सरल स्वभाव। **श्रुति** = शास्त्र, वेद। **अघ** = पाप। **परम कराला** = बहुत कठो या भयंकर। **सर्वग्य** = सभी कुछ जानने वाले। **देही** = प्राणी। **जाचत** = याचना करते हैं, चाहते हैं। **तेही** = उसे ही। **अपवर्ग** मोक्ष। **नसेनी** = सीढ़ी। **विराग** = वैराग्य। **तनुधरि** = शरीर धारण करके। **कर तें डारि** = हाथ से गिरा देते हैं। **परसमणि** पारसमणि जो दुखहारक व सुखकारक होती है। **मंद मंद तर** = तुच्छ से भी अधिक तुच्छ। **काँच किरिच** = काँच का टुकड़ा ज निरर्थक होता है। **जगमाहीं** = संसार में। **सम** = समान। **काया** = शरीर। **खगराया** = पक्षीराज गरुड़। **पर हित लागी** = दूसर पर उपकार के लिए। **अभागी** = अभागे, मंदभाग्य वाले। **भूर्ज** = भोज। **तरु** = वृक्ष। **नित** = सदा। **पर बंधन** = दूसरो का बाँधना **खत** = दुःख। **अपकारी** = बुरा करने वाला। **अहि** = सर्प। **मूषक** = चूहा। **विनासि** = नष्ट करते हैं। **नसाहीं** = अपने आप नष्ट

हो जाते हैं। **जिमि** = जैसे। **ससिहित** = खेती के लिए। **हिम उपल** = ओले। **बिलाही** = नष्ट कर देते हैं। **आरति** = कष्ट। **उधम ग्रह** = नीच ग्रह। **संतत** = लगातार। **जिमि** = जैसे। **इन्दु** = चन्द्रमा। **तमारि** = सूर्य। **श्रुति विदित** = वेदों में कहा गया। **अन्ह** = पाप। **गरीसा** = बड़ा। **निंदक** = निन्दा करने वाला। **दादुर** = मेंढक। **द्विज** = ब्राह्मण। **वायस** = कौआ। **उलूक** = उल्लू। **रत** = लगे हुए। **भानुगत** = सूर्य छिप गया। **जड़** = मूर्ख। **अवतरहीं** = जन्म लेते हैं। **व्याधिन्ह** = बीमारियाँ। **उपजहिं** = पैदा होते हैं। **सूला** = कष्ट। **वात** = वायु रोग। **कफ** = कफ रोग। **जारा** = जलाता है। **तीनिउ** = तीनों—वात, पित्त, कफ। **सन्यपात** = सन्निपात रोग। **नाना** = अनेक। **को जाना** = कौन जान सकता है। **कंडु** = खाज। **विषाद** = कष्ट। **गरह** = गले का रोग। **जरनि** = जलता है। **छई** = क्षय नामक रोग। **कुटिलई** = कटुता। **डमरुआ** = गाँठ का रोग। **नहरुआ** = नसों का रोग। **उदरवृद्धि** = पेट का रोग, जलोदर। **त्रिविध** = तीन प्रकार की। **ऐषणा** = प्रबल इच्छाएँ। **जुग—विधि** = दो प्रकार के। **कुरोग** = भयंकर। **असाधि** = असाध्य, जिन्हें दूर करना कठिन है। **किमि** = कैसे। **समाधि** = शान्ति और सुख। **नेम** = नियम। **आचार** = सद् आचरण। **भेषज** = दवाई। **कोटिन्ह** = करोड़ों हैं। **हरिजान** = हरियान, गरुड़।

**प्रसंग**— प्रस्तुत पद्य—खण्ड रामभक्त शिरोमणि व रामसाहित्य के अग्रदूत कविवर 'तुलसीदास' द्वारा विरचित भारतीय धर्मग्रन्थ व जनमानस के काव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। गरुड़ ने काकभुशुण्डि से राम की भक्ति सम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछे जिनका समाधान काकभुशुण्डि ने उदाहरण देकर सप्रमाण समझाकर कहा था जिनसे गरुड़ सन्तुष्ट हो गये। परन्तु अभी भी गरुड़ के मन में कुछ जिज्ञासाएँ हैं। अतः उनको शान्त करने के लिए गरुड़ कहते हैं—

**व्याख्या**— काकभुशुण्डि के वचनों को सुनकर पक्षीराज गरुड़ प्रेम पूर्वक वचनों में बोले— हे कृपालु ! यदि आप मुझ पर प्रेमभाव रखते हैं तो मुझे अपना सेवक जानकर मेरे सात प्रश्नों के उत्तर देने की कृपा करें। हे नाथ ! हे धैर्य बुद्धिवाले काकभुशुण्डि ! मेरा प्रथम प्रश्न है—(1) संसार में सबसे दुर्लभ कौन-सा शरीर है ? (2) दूसरा प्रश्न है—संसार में सबसे बड़ा दुःख कौन-सा है ? (3) तीसरा प्रश्न है—सबसे बड़ा सुख क्या है ? आप सोच-विचार कर उत्तर दीजिए। (4) चौथा प्रश्न है—संत और असंत का भेद क्या है ? इससे आप भली-भाँति परिचित हैं, अतः उनके सहज स्वभाव के लक्षणों का भी वर्णन करें। (5) पाँचवा प्रश्न है—संसार में सबसे पुण्य क्या है जो शास्त्रों में प्रसिद्ध है ? (6) सबसे भयंकर पाप कौन-सा है ? कृपया आप मुझे बताइए। (7) मानस-रोग क्या है ? मुझे समझाकर कहें। हे काकभुशुण्डि ! आप सर्वत्र हैं तथा आपकी मेरे ऊपर सदा कृपा भी रही है। पक्षीराज गरुड़ के विनय वचनों को सुनकर काकभुशुण्डि ने उत्तर दिया कि हे तात ! मैं इस सारी नीति का वर्णन संक्षेप में करता हूँ आप अत्यन्त आदर एवं प्रेम-भाव के साथ इसे सुनें। (1) (प्रथम प्रश्न का उत्तर है—) मानव शरीर के समान संसार में कोई शरीर दुर्लभ नहीं है। संसार में चर-अचर सभी प्राणी इस शरीर को माँगते हैं। यही मनुष्य शरीर नरक, स्वर्ग तथा मुक्ति तक ले जाने वाली सीढ़ी है तथा यही ज्ञान, वैराग्य और पवित्र भक्ति को देने वाली है। इस प्रकार के मानव शरीर को धारण करके भी जो मनुष्य राम का भजन नहीं करते तथा निम्न से निम्नतर संसार के विषयों में लवलीन रहते हैं वे मानो अपने हाथों से पारसमणि को फैंक देते हैं तथा उसके स्थान पर काँच का तुच्छ टुकड़ा ले लेते हैं। (2) (द्वितीय प्रश्न का उत्तर है—) दरिद्रता के समान कोई दुःख इस संसार में नहीं है। (3) (तृतीय प्रश्न का उत्तर है—) संतों के समागम के समान काई भी सुख इस जगत् में नहीं है। हे पक्षीराज गरुड़ ! संतजन, मन, वचन व शरीर तीनों से दूसरों के उपकार में लगे रहते हैं। (4) (चतुर्थ प्रश्न का उत्तर है—) संतों का स्वभाव है—परोपकार करना। वे दूसरों के लिए कष्ट सहन करते हैं तथा असंत अभाग्यपूर्ण हैं। जो दूसरों को दुःख देते हैं। संत कृपा करने वाले हैं वे मन, वचन तथा शरीर से दूसरों का उपकार करते हैं—यह उनका स्वभाव है। संत इतने कृपालु होते हैं कि भोज के वृक्ष की तरह पर उपकार के लिए बड़ी से बड़ी विपत्ति सहन करते हैं। असंत या दुष्ट जन (जिसकी रस्सी बनती है) के समान होते हैं जो दूसरों को बंधन में डालते हैं। इसके लिए वे अपनी खाल भी खिंचवा लेते हैं और विपत्ति सहन करते-करते मर तक जाते हैं। हे पक्षीराज गरुड़! दुष्टों या असन्तों का यह स्वभाव है कि वे बिना किसी स्वार्थ के भी दूसरों का अपकार (अनिष्ट) करते हैं। जैसे असंत प्रवृत्ति (स्वभाव) वाले साँप और चूहे दूसरे की सम्पत्ति को हानि पहुँचाया करते हैं, यद्यपि ऐसा करने में उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं होते, परन्तु स्वभाववश वे ऐसा करते हैं। इतना ही नहीं, वे दूसरों की सम्पत्ति को नष्ट करके स्वयं भी ठीक उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार खेती नष्ट करके ओले स्वयं भी नष्ट (गल) हो जाते हैं। दुष्ट या असन्त की उत्पत्ति संसार के लिए उसी प्रकार दुःखदायक होती है। जैसे दुष्ट ग्रह केतु के उदय होने पर संसार को कष्ट उठाना पड़ता है। दूसरी ओर, सज्जनों की उन्नति सभी को उसी प्रकार सुखदायक होती है। जैसे सूर्य और चंद्रमा का उदय सभी के लिए सुखदायक होता है। (5) (पाँचवें प्रश्न का उत्तर है—) वेदों में अहिंसा ही सबसे बड़ा धर्म या पुण्य माना गया है। (6) (छठे प्रश्न का उत्तर है—) दूसरों की निंदा के समान कोई बड़ा पाप नहीं है। निंदा करने वाला व्यक्ति अनेक पापों का भागी होता है तथा हजार जन्मों तक वह मेढ़क के शरीर को बार-बार प्राप्त करता है। ब्राह्मण की निंदा करने वाला अनेक नरकों की यातना भोगकर पुनः इस संसार में कौए का शरीर ग्रहण करता है। जो अहंकारी पुरुष देवताओं एवं वेदों की निंदा करता है वह भयंकर नरक को भोगता है। संत पुरुषों की निंदा में लगा हुआ व्यक्ति उल्लू का शरीर

प्राप्त करता है। ऐसे पुरुषों को मोहरूपी रात्रि प्रिय होती है, एवं ज्ञान रूपी सूर्य उनके लिए अस्त रहता है। भाव यह है कि ऐसा निंदा करने वाला व्यक्ति अज्ञान से घिरा रहता है एवं ज्ञान का प्रकाश उसके निकट कोई महत्व नहीं रखता, जिस प्रकार उल्लू को केवल रात्रि का अंधकार अच्छा लगता है, सूर्य का प्रकाश उसकी आँखों को ज्योति-रहित कर देता है। जो जड़-बुद्धि अर्थात मूर्ख व्यक्ति सबकी निंदा करते हैं, वे इस संसार में चमगादड़ बनकर जन्म लेते हैं। पक्षीराज के अन्तिम प्रश्न पर विचार करते हुए काकभुशुण्डि जी कहते हैं कि हे खगराज ! अब आप उन मानस रोगों को सुनिए जो सभी को कष्ट पहुँचाते हैं। (7) (साँतवें प्रश्न का उत्तर है –) हे तात ! मानस रोग मोह अथवा अज्ञान है। वस्तुतः यही व्याधियों का मूल है। मोहजन्य समस्त व्याधियाँ अन्य अनेक दुःखों को जन्म देती हैं। काम नामक मनोविकार वायु है, लोभ अत्यधिक बढ़ा हुआ कफ है एवं क्रोध ही मानों पित्त है जो बढ़ जाने पर निरन्तर छाती में जलन उत्पन्न करता है। भाव यह है कि जिस प्रकार काम लोभ एवं क्रोध नामक मनोविकार भी मानसिक सुख-शांति को नष्ट कर देते हैं। काम, क्रोध एवं लोभ तीनों भाई के समान हैं, यदि ये आपस में प्रेम करें अर्थात् एक दूसरे के सहायक हो जायें तो मस्तिष्क को विकृत करने वाला दुःखदाई रोग हो जाता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार शरीर को संतुलित करने वाले तीनों तत्व वात पित्त, कफ ! विकृत हो जाने पर सन्निपात नामक रोग को जन्म देते हैं। इसके अतिरिक्त, विभिन्न विषयों से उत्पन्न होने वाली जो वासनाएँ अथवा इच्छाएँ हैं, वे दुर्गम हैं। अत्यधिक कठिनताओं से ही पूर्ण हो सकती हैं अतएव कष्टदायक रोग के समान हैं। वे संख्या में इतनी अधिक हैं कि उनके नाम बताना कठिन है। इन मनोरथों अथवा मानसिक रोगों में से कुछ अत्यन्त भयंकर हैं, जैसे - ममता - दाद है। ईर्ष्या—खुजली है। हर्ष और दुःख—ये गले के बढ़े हुए रोग हैं। दूसरे के सुखों को देखकर हृदय में जो जलन होती है—वह क्षय रोग है। दुष्टता एवं मन की कटुता ये ही कोढ़ हैं। अहंकार अत्यन्त कष्टदायक गाँठ का रोग है। दम्भ, कपट, मद मान—नसों के रोग हैं। तृष्णा बहुत व्यापक जलोदर (उदरवृद्धि) रोग है। तीन प्रकार की इच्छाएँ—लोकेषणा, पुत्रेषणा और वित्तेषणा—तिजारी नामक ज्वर के समान हैं। मत्सर एवं अविवेक भी दो विभिन्न ज्वर हैं। ये दुष्ट रोग तो और भी अनेक हैं, इनका वर्णन कहाँ तक किया जा सकता है ? अर्थात् संसार में इतने अधिक रोग हैं, जिनका वर्णन करना शायद संभव नहीं।

इन रोगों की भयंकरता इतनी अधिक है कि एक ही रोग के अधीन मनुष्य मर जाता है, फिर भी ससार मे असंख्य रोग हैं जो निरन्तर जीवों को पीड़ा देते रहते हैं। इनकी (असाध्य रोगों) चिकित्सा संभव नहीं है। इस असहनीय दशा में मानव कैसे समाधि (सुख एवं शान्ति) प्राप्त कर सकता है ? इन रोगों की चिकित्सा के लिए नियम, धर्म, सदाचार, तपस्या, ज्ञान, यज्ञ, जप, दान इत्यादि करोड़ों औषधियाँ हैं, किन्तु हे गरुड़ जी ! इस प्रकार की किसी भी चिकित्सा से ये रोग दूर नहीं हो पाते। क्योंकि मनुष्य इन औषधियों के विषय में जानते ही नहीं हैं।

**काव्य-सौंदर्य–**

1. गरुड़ के सात प्रश्नों का उत्तर काकभुशुण्डि द्वारा प्रमाण सहित दिया गया है। ये सभी बातें मनुष्य के लिए जानना आवश्यक है।
2. कवि ने विभिन्न मानस रोगों को स्पष्ट करने के लिए शारीरिक रोगों का आश्रय लिया है। मानसिक रोगों की भयंकरता शारीरिक रोगों के कष्टों के माध्यम से बताई है।
3. अलंकार— I. 'काँच ..... देही' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।
   II. 'भूर्ज तरु सम संत' में उपमा अलंकार है।
   III. 'सन इव खल ..... गरीसा' में उपमा अलंकार है।
   IV. 'मोह निशा', 'ग्यान-मानु' कामवात ..... तिजारी में रूपक अलंकार है।
   V. 'सूल नाम को जाना', 'किमि लैह समाधि' में वक्रोक्ति अलंकार है।
4. तत्सम शब्दों के सुन्दर प्रयोग से भाषा में बड़ा निखार आया है।
5. अवधी भाषा के प्राँजल शब्दों का प्रयोग किया गया है।
6. अन्तिम चार पंक्तियों को छोड़कर शेष पद्य में चौपाई छंद है।
7. अन्तिम पंक्तियों में दोहा छंद प्रयुक्त हुआ है।

**42. चौ.– एहि विधि सकल जीव जग रोगी। सोक हरष भय प्रीति वियोगी।।**
**मानस रोग कछुक मैं गाए। हहिं सब के लखि बिरलेन्ह पाए।।**
**जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी।।**
**विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहू हृदयँ का नर बापुरे।।**

**राम कृपा नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संयोगा।।**
**सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा।।**
**रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी।।**
**एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं ते जतन कोटि नहिं जाहीं।।**
**जानिअ तब मन बिरुज गोसांई। तब उर बल बिराग अधिकाई।।**
**सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई।।**
**बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई।।**
**सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद।।**
**सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा।।**
**श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं।।**
**कमठ पीठ जामहिं बरु बारा। बंध्या सुत बरु काहुहि मारा।।**
**फूलहिं नभ बरु बहुबिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला।।**
**तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहिं सस सीस बिषाना।।**
**अंधकारु बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै।।**
**हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई।।**
**दो.— बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।**
**बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल।।**
**मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।।**
**अस बिचारि तजि संसय रामहि भजहिं प्रवीन।।**
**श्लोक— बिनिश्चितं वँदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।**
**हरिं नरा मजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते।।**

**शब्दार्थ— एहि बिधि** = इस प्रकार। **बिरलेन्ह** = बहुत कम। **छीजहिं** = कम हो जाते हैं। **परितापी** = दूसरों को कष्ट देने वाले। **कुपथ्य** = परहेज। **बापुरे** = बेचारे। **सन्जीवनी मूरी** = ऐसी बूटी जो मृत को जीवित कर देती है। **अनूपान** = दवाई के साथ पी जाने वाला पेय पदार्थ। **नाहि ते** = नहीं तो। **कोटि जतन** = करोड़ों प्रयत्न। **बिरुज** = नीरोग। **सुमति** = सद्बुधि।
**छुधा** = भूखा। **उर छाई** = हृदय पर व्याप्त होना। **अज** = ब्रह्मा। **बिसारद** = प्रवीण। **पद— पंकज** = चरण कमल। **नेहा** = प्रेम। **जामहि बरु बारा** = बाल भले ही उत्पन्न हो जाएँ। **कमठ** = कछुआ। **बंध्या सुत** = बाँझ नारी का बेटा। **बरु** = भले ही। **सस** = खरगोश। **बिषाना** = सींग। **रबिहि** = सूर्य के। **हिम** = बर्फ। **अनल** = अग्नि। **बारि मथें** = पानी को मथने से। **घृत** = घी। **सिकता** = बालू। **अपेल** = अटल, अमिट। **मसकहि** = मच्छर। **बिरंचि** = ब्रह्मा। **अजहि** = ब्रह्मा से।

**प्रसंग—** प्रस्तुत व्याख्येय अंश हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में रामभक्ति काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि के रूप में विख्यात 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। गरुड़ के मन की शंकाओं का समाधान तथा उनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए काकभुशुण्डि कहते हैं—

**व्याख्या—** हे खगराज ! इस प्रकार संसार के सभी प्राणी रोगग्रस्त हैं। जो भी शोक, प्रसन्नता, भय, प्रेम, वियोग से दुःखी आदि अनेक मानस रोग हैं जिनमें से मैंने कुछ का ही वर्णन किया है। ये सभी को प्राप्त हैं, परन्तु इनके ज्ञाता बहुत कम हैं। इनको ज्ञात कर लेने पर कुछ पाप क्षीण (नष्ट) हो जाते हैं, परन्तु इन रोगों का पूर्णतया विनाश नहीं होता अर्थात् ये रोग कुछ-न-कुछ सीमा तक शेष रह जाते हैं। विषय भोग रूपी कुपथ्य मिल जाने पर ये रोग मुनियों तक के हृदय में भी अंकुरित हो जाते हैं फिर बेचारे सामान्य मनुष्य की तो बात ही क्या है ? भाव यह है कि मुनि-ज्ञानीजन अत्यधिक संयम-नियम से रहते हैं जिससे सांसारिक विषय वासनाओं की ओर आकर्षित न हो सकें, किन्तु ये विभिन्न विषय वासनाएँ थोड़ा-सा भी छिद्र पाकर उन मुनि जनों के हृदय में प्रवेश कर जाती हैं और इन मानस रोगों को जन्म देती हैं। दूसरी ओर साधारणजन, जो निरन्तर इन विषयों-विकारों के मध्य रहा है, स्वतः ही इन मानस रोगों का निवास स्थान बन जाता है। इन रोगों का पूर्णतया विनाश तो तभी हो सकता है, जब राम की कृपा से इस

प्रकार का संयोग बन जाए कि मनुष्य को सद्गुरु रूपी वैद्य मिले, उसके वचनों में पूर्ण विश्वास करके, रोग का परहेज अथवा संयम को अपनाकर वह विषयों की कामना न करें अर्थात् स्वयं को विषय-भोग से दूर रखे। जीव के हृदय में राम की भक्ति हो क्योंकि वह संजीवनी बूटी के समान है। श्रद्धा से भरी हुई बुद्धि ही अनुपान या औषधि है (दवा के साथ लिया गया पानी आदि) यदि इस प्रकार का संयोग पूर्ण हो जाए तो भले ही यह असाध्य रोग नष्ट हो सकते हैं, अन्यथा करोड़ों प्रयास करने पर भी इनका अन्त सम्भव नहीं है। हे गोसाईं ! मन की निरोगता तभी जाननी चाहिए, जब मानव के हृदय में वैराग्य की भावना बढ़ती चली जाए। सुन्दर बुद्धि की भूख निरन्तर नए-नए रूप में बढ़ती रहे एवं विषयों के प्रति आशा रूपी दुर्बलता समाप्त हो जाए। इस प्रकार जब मनुष्य का मन पूर्णतः निरोग हो जाता है एवं वह ज्ञान के स्वच्छ एवं पवित्र जल में स्नान कर लेता है, तब उसके हृदय में राम की भक्ति छा जाती है। भाव यह है कि मानसिक रोगों से स्वतन्त्र पवित्र हृदय में ही राम की भक्ति का प्रवेश हो सकता है, अन्यथा रामभक्ति की प्राप्ति सम्भव नहीं। शिव, ब्रह्मा, शुकदेव, नारद एवं सनकादि मुनि जो कि ब्रह्म ज्ञान के विचार में अत्यधिक निपुण हैं उन सबकी मान्यता भी यही है कि श्री राम के कमल रूपी चरणों में स्नेह रखना चाहिए। अर्थात् उनके चरणकमल में ही प्रेम रखना चाहिए। वेद पुराण आदि सभी ग्रन्थ यही एक बात कहते हैं कि भगवान् राम की भक्ति के बिना सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। कछुए की कठोर पीठ पर बाल भले ही उग आएँ, बन्ध्या (बाँझ) नारी का पुत्र भले ही किसी को मार डाले। आकाश रूपी वृक्ष पर भले ही अनेक फूल आ जाएँ परन्तु कोई भी जीव राम के विपरीत होकर कभी भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता। भाव यह है कि संसार की असम्भव बातें भले ही सम्भव हो जाएँ, तो भी राम की भक्ति ही सुख का आधार है, अन्य कुछ नहीं है। जीव को राम की भक्ति की ओर उन्मुख करते हुए काकभुशुण्डि पुनः कहते हैं— हे खगराज ! मृग तृष्णा के जल को पीने से भले ही प्यास बुझ जाए। खरगोश के सिर पर चाहे सींग निकल आएँ, अन्धकार भले ही सूर्य को नष्ट कर दे। अर्थात् ये असम्भव बातें भले ही सम्भव हो जाएँ, किन्तु यह निश्चित है कि राम से विमुख होने पर किसी को भी सुख की उपलब्धि सम्भव नही है। बर्फ से अग्नि भले ही उत्पन्न हो जाए अर्थात् असम्भव सम्भव हो जाए किन्तु राम से विमुख रहकर कोई भी प्राणी सुख प्राप्त कर ले यह किसी भी शर्त पर सम्भव नहीं है। पुनः राम की भक्ति पर बल देते हुए काकभुशुण्डि कहते हैं कि चाहे जल को मथकर कोई घी प्राप्त कर ले, बालू को कोल्हू मे पेरने से भले ही तेल निकल आए, अर्थात् ये सभी असम्भव वस्तुएँ सम्भव हो जाएँ, परन्तु भगवान् की भक्ति के बिना संसार से पार नहीं हो सकता यह सिद्धान्त तो अटल है। प्रभु अपार शक्ति सम्पन्न हैं। वे मच्छर जैसे छोटे एवं तुच्छ जीव को ब्रह्म के समान समर्थ बना सकते हैं एवं ब्रह्म (जैसे समर्थ) को मच्छर से भी तुच्छ बना सकते हैं। राम की ऐसी महिमा का लक्ष्य करके चतुर एवं बुद्धिमान पुरुष सब संदेहों को त्यागकर राम का ही स्मरण करते हैं। हे गरुड़ ! मैं आपको निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि मेरे ये वचन झूठ भी नहीं हैं जो मानव भगवान् की भक्ति करते हैं, वे घोर समुद्र को भी पार करने में समर्थ हो जाते हैं।

**काव्य-सौंदर्य—**

1. राम की भक्ति की महत्ता प्रतिपादित की गई है।
2. अनेक उदाहरणों से कवि ने राम की भक्ति की ओर उन्मुख करने के लिए लोगों को प्रेरित किया है।
3. राम भजन के अतिरिक्त संसार में कोई भी अन्य उपाय नहीं है कि भव सागर से पार उतरा जा सकता है।
4. योगी-ज्ञानी और सामान्य मनुष्य के अन्तर को भी स्पष्ट किया गया है।
5. तुलसीदास जी ने भी संसार के कष्टों से छुटकारा एवं राम की भक्ति प्राप्त करने के लिए सद्गुरु के महत्व को असंदेह माना है, कबीर जी ने भी यही कहा है—

   ''चौंसठ दीवा जोइ करि, चौदह चंदा मांहि।
   तिहि घर किसकौं चादनौं जिहि घर सतगुरु नाहिं।।''

6. **अलंकार—** I. 'विषय कुपथ्य', 'सद्गुरु वैद', 'भक्ति-संजीवन', 'सुमुति छुधा', 'पद पंकज', 'पान जल' में रूपक अलंकार का पारम्परिक प्रयोग हुआ है।

   II. 'मसकहि ..... हीन' में विरोधाभास अलकार है।

   III. 'हृदय का नर बापुरे' में वक्रोक्ति अलंकार है।

   IV. 'बारे माथिं ..... अपेल' में निदर्शना अलंकार है।

7. कछुए की पीठ के बाल, बाँझ का पुत्र, आकाश का फूल, मृग तृष्णा के जल से प्यास शांत होना, खरगोश के सींग अन्धकार द्वारा सूर्य के प्रकाश को नष्ट करना, बर्फ से आग उत्पन्न होना आदि सभी सम्भव कार्य हैं।
8. सम्पूर्ण पद्यांश में तत्सम शब्दावली है।

9. अन्तिम श्लोक संस्कृत भाषा में है।

10. सम्पूर्ण पद्य में अवधी भाषा का शुद्ध रूप प्रयुक्त हुआ है।

11. प्रारम्भिक बीस पंक्तियों में चौपाई छंद है। जिसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएँ हैं।

12. इसके पश्चात् चार पंक्तियों में दोहा छंद है।

13. अन्तिम दो पंक्तियों में अनुष्टुप छंद है।

**43.** चौ.– **कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा। व्यास समास स्वमति अनुरूपा।।**
**श्रुति सिद्धान्त इहइ उरगारी। राम भजिअ सब काज बिसारी।।**
**प्रभु रघुपति तजि सेइअ काही। मोहि से सठ पर ममता जाही।।**
**तुम्ह विग्यानरूप नहिं मोहा। नाथ कीन्हि मो पर अति छोहा।।**
**पूँछिहु राम कथा अति पावनि। सुक सनकादि संभु मन भावनि।।**
**सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा।।**
**देखु गरुड़ निज हृदयँ बिचारी। मैं रघुवीर भजन अधिकारी।।**
**सकुनाधम सब भाँति अपावन। प्रभु मोहि कीन्ह विदित जग पावन।।**
दो.– **आज धन्य मैं धन्य अति जद्यपि सब विधि हीन।**
**निज जन जानि राम मोहि संत समागम दीन।।**
**नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ।**
**चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ।।**

**शब्दार्थ**– **हरि चरित** = राम जीवन। **अनूपा** = अनुपम। **ब्यास** = विस्तार। **समास** = संक्षेप। **स्वमति अनुरूपा** = अपनी बुद्धि के अनुसार। **श्रुति** = शास्त्र। **उरगारी** = गरुड़। **काज बिसारी** = कार्यों को भूलाकर। **सेइअ काही** = किसका सेवन किया जाए ? **मोहि से सठ** = मुझ जैसे मूर्ख। **ममता** = स्नेह। **अति पावनि** = अत्यन्त पवित्र। **संभु** = शिव। **मन भावनि** = मन को अच्छी लगने वाली। **निमिष दण्ड** = पलक झपकने मात्र। **सकुनाधम** = तुच्छ पच्छीं, कौआ। **अपावन** = अपवित्र। **विदित** = प्रसिद्ध। **पावन** = पवित्र। **हीन** = तुच्छ। **संत समागम** = सज्जनों की संगति। **कछु गोय** = कुछ छिपाकर। **सिंधु** = समुद्र। **थाह** = गहराई, गहनता।

**प्रसंग**– प्रस्तावित व्याख्येय अंश रामभक्त शिरोमणि, विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य प्रदान करने वाले, सगुणभक्ति के अनन्य उपासक, दास्यभक्ति को स्वीकारने वाले प्रसिद्ध कवि 'तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड से उद्धृत है। गरुड़ के प्रश्नों का उत्तर देते हुए काकभुशुण्डि राम की महिमा बताते हैं और कहते हैं उनकी (राम) भक्ति के अतिरिक्त ऐसा कोई उपाय नहीं है जिससे संसार से पार जाया जा सकता है–

**व्याख्या**– हे नाथ गरुड़ ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार राम के चरित्र को कहा है जो स्वयं में अनुपम एवं अद्वितीय है। कहीं पर मैंने उसमें विस्तार किया है तो कहीं उसे संक्षेप में कहा है। परन्तु सब कुछ अर्थात् जितना भी कहा है वह सब मेरी बुद्धि के अनुसार है। हे गरुड़ ! वेद-शास्त्रों का भी यही सिद्धान्त है–सभी सांसारिक कार्यों को त्यागकर राम की भक्ति करनी चाहिए। प्रभु राम को छोड़कर अन्य का सेवन कैसे किया जाए ? उन राम की मुझ जैसे मूर्ख पर भी ममता है। ऐसे कृपालु राम को छोड़कर और किसकी सेवा अथवा भजन किया जाए। अर्थात् भजने योग्य तो वही एकमात्र राम हैं जो छोटे से छोटे प्राणी से भी स्नेह करते हैं। हे स्वामी ! आप तो विज्ञान रूप हैं, ज्ञानवान होने के कारण आपको मोह-भ्रम ग्रसित नहीं कर सकते (अर्थात् आपने मोह की बात कही थी, वह झूठ है) वस्तुतः आप तो मुझ पर कृपा करने के लिए ही यहाँ आए हैं। आपकी मुझ पर अत्यधिक अनुकम्पा है। इसीलिए आपने शुकदेव, सनकादि मुनियों एवं शिव को अच्छी लगने वाली उनकी प्रिय अत्यन्त पवित्र यह राम कथा मुझसे सुनी है। सज्जनों की संगति भले ही एक पल भर की हो, उसका एक बार भी प्राप्त होना बहुत कठिन है। हे गरुड़ ! आप अपने हृदय में विचार करके देखिए, क्या मैं (कौआ) भी राम के भजन का अधिकारी हूँ ? मैं तो पक्षियों से भी तुच्छ हूँ, सभी तरह अपवित्र हूँ। फिर भी राम ने मुझे इतना पवित्र कर दिया है कि संसार मेरी पवित्रता को जानता है।

काकभुशुण्डि पुनः कहता है कि आज मैं धन्य हूँ। यद्यपि सभी तरह से तुच्छ हूँ, फिर भी बहुत धन्य हूँ। राम ने मुझे अपना जन (अपना भक्त) जानकर मुझे (आप जैसे) संतों की संगति प्रदान की है। हे नाथ ! हे गरुड़ ! मैंने जो कुछ कहा अपनी बुद्धि के अनुसार ही कहा है, कुछ भी नहीं छिपाया है। राम का चरित्र समुद्र के समान है। क्या कोई उसकी थाह (महत्ता) प्राप्त कर सकता है अर्थात् नहीं।

**काव्य-सौंदर्य–**

1. राम की भक्ति की महत्ता प्रतिपादित की गई है।
2. संसार से पार जाने का एकमात्र मार्ग राम भक्ति ही है।
3. काकभुशुण्डि ने स्वयं को तुच्छ कहा है।
4. रामभक्ति पाकर काकभुशुण्डि स्वयं को धन्य मानता है।
5. 'चरित सिंधु' में उपमा अलंकार है।
6. 'मैं रघुबीर भजन अधिकारी', 'थाह कि पावइ कोय' में वक्रोक्ति अलंकार है।
7. तत्सम शब्दों के सुन्दर व सटीक प्रयोग से भाषा के सौंदर्य में वृद्धि हुई है।
8. सम्पूर्ण पद्य में अवधी भाषा का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
9. आरम्भिक आठ पंक्तियों में चौपाई छंद है।
10. अन्तिम चार पंक्तियों में दो दोहे हैं। अतः दोहा छंद प्रयुक्त किया गया है।

**45.** **चौ.– मैं कृतकृत्य भयउँ तब बानी। सुनि रघुवीर भगति रस सानी।।**
**राम चरन नूनत रति भई। माया जनित विपति सब गई।।**
**मोह जलधि बोहित तुम्ह भए। मो कहँ नाथ विविध सुख दए।।**
**मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। वंदउँ तव पद बारहिं बारा।।**
**पूरन काम राम अनुरागी। तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी।।**
**संत विटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी।।**
**संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह परि कहै न जाना।।**
**निज परिताप द्रवइ नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता।।**
**जीवन जन्म सुफल मम भयऊ। तव प्रसाद संसय सब गयऊ।।**
**जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहइ विहंगवर।।**
**दो.– तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर।**
**गयउ गरुड़ बैकुंठ तब हृदयं राखि रघुवीर।।**
**गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।**
**बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं वेद पुरान।।**

**शब्दार्थ**– **कृतकृत्य** = पूर्ण कर्त्तव्य वाला, धन्य। **तव बानी** = आपके वचन। **रससानी** = आनन्द से भरी हुई। **नूतन रति** = नया प्रेम। **जनित** = उत्पन्न। **जलधि** = समुद्र। **बोहित** = जहाज। **विविध** = अनेक। **मोपहि** = मुझसे। **प्रति उपकार** = उपकार का बदला। **तव पद** = तुम्हारे चरण। **सम** = समान। **बड़भागी** = बड़े भाग्य वाला। **विटप** = वृक्ष। **सरिता** = नदी। **गिरि** = पर्वत। **धरनी** = भूमि। **पर हित** = परोपकार। **नवनीत** = मक्खन। **परि कहै न जाना** = इसको कहकर भी इसके रहस्य को जान नहीं किया। **निज परिपात** = अपने संताप, अपनी गर्मी। **द्रवइ** = पिघलता है। **सुपुनीता** = अत्यन्त पवित्र। **मम** = मेरा। **तव प्रसाद** = आपकी कृपा। **निज किंकर** = अपना दास। **विहंगवर** = पक्षीराज। **तासु** = उनके। **मतिधीर** = धैर्य बुद्धि वाले। **गिरिजा** = पार्वती। **कछु आन** = अन्य कुछ।

**प्रसंग**– प्रस्तुत प्रस्तावित व्याख्येय अंश भक्तिकालीन रामभक्ति काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। काकभुशुण्डि के मन में राम के प्रति अटूट व अगाध भक्ति को देखकर पक्षीराज गरुड़ बहुत प्रसन्न हुए तथा काकभुशुण्डि से कहने लगे–

**व्याख्या**– काकभुशुण्डि के मंगलकारी वचनों को सुनकर खगराज कहने लगे–मैं आपकी मधुर वाणी को सुनकर कृतकृत्य अर्थात् धन्य हो गया हूँ। आपकी वाणी भगवान् राम की भक्ति के रस से भरी हुई है। अब मेरा प्रेम राम के चरणों में सर्वथा नया हो गया है। अर्थात् मेरे मन में भी भगवान् राम के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया है। मेरे अन्दर जो माया के कारण विपत्ति पैदा हो गई थी वह भी समाप्त हो गई है। मैं मोह-माया रूपी समुद्र में डूब रहा था। लेकिन आपने भगवान् राम की भक्ति महिमा बताकर मेर

लिए जहाज का कार्य किया है। अर्थात् मुझे माया रूपी सागर में डूबने से बचा लिया है। हे स्वामी (काकभुशुण्डि) ! आपने मुझे बहुत सुख दिया है। मैं इन उपकारों का बदला नहीं चुका सकता। मैं आपके चरणों की बार-बार वंदना करता हूँ अर्थात् आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। आपने अपने सभी कार्य (कर्त्तव्य) पूर्ण कर लिए हैं। आपका श्री राम के चरण-कमलों में अपार स्नेह है। हे तात ! तुम्हारे समान इस संसार में सौभाग्यशाली और कोई नहीं है। सज्जन, वृक्ष, नदी, पर्वत और भूमि—ये पाँचों सभी जनों के उपकार के लिए होते हैं अर्थात् ये पाँचों सदा सृष्टि का कल्याण करते हैं, स्वयं का स्वार्थ पूरा नहीं करते। सज्जनों (संतों) का हृदय नवनीत (मक्खन) के समान कोमल होता है। यह बात कविगण भी कहते हैं, परन्तु उन कवियों ने इसका मूल तत्व नहीं ज्ञात किया, जिनका वर्णन इस प्रकार है—मक्खन तो अपने आप गर्मी प्राप्त करके पिघलता है, परन्तु सज्जन (संत) पुरुष तो इतने पवित्र होते हैं कि दूसरों के कष्टों को देखकर पिघल जाते हैं। आज मैं स्वयं का जीवन सफल एवं धन्य समझ पा रहा हूँ, क्योंकि मैंने आपसे राम कथा सुनी है। हे काकभुशुण्डि ! तुम्हारी इस कृपा से मेरे मन के सभी संदेह एवं शंकाओं का समाधान हो गया है। अब आप मुझे अपना सेवक समझो। अर्थात् अब मैं आपकी शरण में हूँ, आपका दास हूँ। यह कथा स्वयं भगवान् शिव ने उमा (पार्वती) को सुनाई थी अब वही कथा काकभुशुण्डि ने गरुड़ को सुनाई है।

श्री राम कथा सुनाने वाले काकभुशुण्डि के चरणों में प्रेम के साथ शीश झुकाकर तथा अपने हृदय में राम को याद करके धैर्य सहित गरुड़ वहाँ से अपने धाम बैकुण्ठ चले गए। शिव पार्वती से कहते हैं—कि हे उमे ! संतों की संगति के समान कोई दूसरा लाभ सम्भव नहीं हो सकता। वह भगवान् श्री राम की दया के बिना सम्भव नहीं है। ऐसी ही बातों का अनुमोदन वेद और पुराण करते हैं।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. काकभुशुण्डि के प्रेमपूर्वक वचनों एवं रामभक्ति की महिमा को सुनकर गरुड़ प्रसन्न हो जाते हैं।
2. कहा जाता है कि – सज्जन पुरुषों या सत्संग का एक पल भी यदि मिल जाए तो कई जन्म सफल हो जाते हैं। उसी तथ्य की ओर गरुड़ का संकेत है कि आपके द्वारा सुनाई कथा से मेरे सब संताप (कष्ट) आदि मिट गए हैं।
3. रामभक्ति की महत्ता प्रतिपादित की गई है।
4. **अलंकार**– I. 'मोह जलधि' में रूपक अलंकार है।
   II. 'बोहित तुम भए' में उपमा अलंकार है।
   III. 'संत हृदय नवनीत समाना' में पूर्णोपमा अलंकार है।
   IV. 'संत हृदय ..... सुपुनीता' में काव्यलिंग अलंकार है।
5. सम्पूर्ण पद में तत्सम शब्दावली का सुंदर प्रयोग किया गया है।
6. अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है।
7. प्रथम आठ पंक्तियों में चौपाई छंद है।
8. अन्तिम चार पंक्तियों में दोहा छंद है।

**46.** **चौ.– कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत श्रवन छूटहिं भव पासा।।**
**प्रनत कल्पतरु करुना पुंजा। उपजइ प्रीति राम पद कंजा।।**
**मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई।।**
**तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग विराग ग्यान निपुनाई।।**
**नाना कर्म धर्म व्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना।।**
**भूत दया द्विज गुर सेवकाई। विद्या विनय विवेक बड़ाई।।**
**जहँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।।**
**सो रघुनाथ भगति श्रुति गाई। राम कृपाँ काहूँ एक पाई।।**
**दो.– मुनि दुर्लभ हरि भगति पावहिं बिनाहिं प्रयास।**
**जे यह कथा निरन्तर सुनहिं मानि विस्वास।।**

**शब्दार्थ**– **परम पुनीत** = अत्यन्त पवित्र। **श्रवन** = कान। **भव पासा** = संसार के बन्धन। **प्रनत** = शरणागत। **कल्पतरु** = वह वृक्ष जो मनमानी वस्तु प्रदान करे। **करुना पुंज** = दया का समूह। **कंजा** = कमल। **क्रम** = कर्म, शरीर। **जनित** = उत्पन्न। **अघ** = पाप। **तीर्थाटन** = तीर्थों की यात्राएँ। **विराग** = वैराग्य। **निपुनाई** = चतुरता। **नाना**

= अनेक। **दम** = इन्द्रियों को वश में करना। **मख** = यज्ञ। **भूत दया** = जीवों पर दया करना। **द्विज** = ब्राह्मण। **विवेक** = कर्त्तव्य व अकर्त्तव्य का ज्ञान। **कर** = का। **भवानी** = पार्वती। **श्रुति** = शास्त्र। **काहूँ एक** = किसी बिरले ने। **बिनाहिं प्रयास** = बिना प्रयास के। **विस्वास** = श्रद्धा।

**प्रसंग**— प्रस्तुत प्रस्तावित पद्य खण्ड भारतीय धर्म एवं संस्कृति के ज्ञाता तथा रामभक्ति काव्यधारा के प्रमुख कवि 'तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। जिस समय गरुड़ अपने मन की सभी शंकाओं का समाधान पाकर और रामभक्ति कीकथा सुनकर काकभुशुण्डि के पास से चले जाते हैं, उस समय शिव पार्वती से कहने लगे।

**व्याख्या**— हे उमें ! मैंने तुम्हारे सामने राम के विषय में परम् पवित्र ऐतिहासिक तथ्य को रखा है अर्थात् मैंने तुम्हें राम की पवित्र भक्ति के विषय में तथ्य उपस्थित किए हैं। जिसे सुनकर संसार के बंधनों से आसानी से छूटा जा सकता है, अर्थात् यदि कोई मनुष्य रामभक्ति से सम्बन्धित कथा या भजन सुनता है तो उसका जीवन सफल हो जाता है। जो व्यक्ति राम की शरण में जाते हैं उनके लिए रामभक्ति कल्पवृक्ष के समान हैं, क्योंकि राम दया के समूह हैं। इस कथा को सुनकर राम के चरण-कमल में प्रेम उत्पन्न होता है। जो व्यक्ति राम की इस कथा को मन लगाकर कानों से सुनते हैं, वे मन, वचन तथा कर्म से होने वाले सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं। वेदों में अनेक प्रकार के साधन बताए गए हैं, जिनसे राम भक्ति प्राप्त हो सकती है। ये साधन इस प्रकार हैं कर्म धर्म, व्रत, दान, संयम, दम (इन्द्रियों पर निग्रह), जप, तप, अनेक प्रकार के यज्ञ, प्राणियों पर दया, ब्राह्मण व गुरु की सेवा, वैद्या विनय और विवेक की बड़ाई आदि। हे पार्वती ! इन सभी का फल राम की भक्ति प्रदान करने वाला है। परन्तु फिर भी हे पार्वती ! राम की भक्ति शास्त्रों में बताई गई है, वह केवल राम की कृपा से ही किसी बिरले ने ही प्राप्त की है अर्थात् कोई-कोई ऐसा भक्त को प्राप्त कर पाता है। सभी के लिए यह रामभक्ति प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

क्योंकि रामभक्ति मुनियों के लिए भी दुर्लभ है। फिर भी जो इस कथा को निरन्तर सुनते रहते हैं, विश्वास करते हैं मान करते हैं, वे बिना किसी परिश्रम के उस भक्ति को प्राप्त कर लेते हैं।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. रामभक्ति पाना बड़ा कठिन है, परन्तु श्रद्धालुजन इसे आसानी से प्राप्त कर लेते हैं।
2. वेदों एवं शास्त्रों में भक्ति के अनेक साधन बताए गए हैं।
3. **अलंकार**— I. 'प्रनत कल्पतरु' में उपमा अलंकार है।
   II. 'पद-कंजा' में रूपक अलंकार है।
   III. 'मुनि ..... प्रयास' में विरोधाभास अलंकार है।
   IV. मुनि ..... विस्वास' में काव्यलिंग अलंकार है।
4. तत्सम शब्दों की सुन्दर योजना है।
5. अवधी भाषा का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
6. प्रथम आठ पंक्तियों में चौपाई छंद प्रयुक्त हुआ है।
7. अन्तिम दो पंक्तियों में दोहा छंद है।

**47. चौ.— सोई सर्वग्य गुनी सोई ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।**
**धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता।।**
**नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धान्त नींक तेहिं जाना।।**
**सोइ कवि कोविद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा।।**
**धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिव्रत अनुसरी।।**
**धन्य तो भूपु नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई।।**
**सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी।।**
**धन्य धरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा।**
**दो.— सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।**
**श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज विनीत।।**

**शब्दार्थ**— **सर्वग्य** = सभी को जानने वाला। **महि मंडित** = भूमि पर अलंकृत। **दाता** = दानशील। **त्राता** = रक्षक। **जाकर** = जिसका। **मन राता** = मन लवलीन है। **सयाना** = बुद्धिमान्। **श्रुति** = शास्त्रों का। **तेहि** = उसी ने। **सोइ** = वही। **कोविद** = बुद्धिवाला। **रनधीरा** = युद्धवीर। **छल छाड़ि** = छल कपट दूर करके। **सुरसुरी** = गंगा नदी।**अनुसरी** = अनुसरण करने वाले। **भूपु** = राजा। **नीति जा करई** = जो न्याय करता है। **निज धर्म** = अपना धर्म। **टरई** = दूर नहीं होता है। **प्रथम गति** = दान देना। **पुण्य रत** = पुण्य को प्राप्त करने में लवलीन। **मति** = बुद्धि। **पाकी** = परिपक्व, गहन। **घरी** = घड़ी, समय। **अभंगा** = निरन्तर। **उमा** = पार्वती। **श्री रघुवीर परायण** = राम में भक्ति रखने वाला। **जेहि** = जो। **उपज** = पैदा होते हैं।

**प्रसंग**— प्रस्तुत व्याख्येय अंश राम भक्तिकालीन सगुण काव्यधारा के प्रतिनिधि सर्वश्रेष्ठ कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। शिव भगवान् पार्वती से रामभक्ति की महिमा का बखान करते हुए कहते हैं—

**व्याख्या**— हे उमा ! जिन व्यक्तियों का मन भगवान् राम के चरणों में प्रेमपूर्वक लगा हुआ है, वही सर्वज्ञाता है, वही सच्चे अर्थों में गुणी है, वही ज्ञानवान् है, वही पृथ्वी पर सुशोभित है, वही पण्डित है, वही दान देने वाला है, वही धर्म करने वाला है और वही कुल की रक्षा करने वाला है, अर्थात् राम भक्त ही सब कुछ हैं। उससे हटकर कुछ नहीं। उसकी महत्ता सर्वोपरि है। जो व्यक्ति जीवन में छल-कपट छोड़कर भगवान् राम की भक्ति करता है वही नीति में चतुर कहलाता है, वही अत्यन्त बुद्धिमान है। उसी ने शास्त्रों के सिद्धान्तों को ठीक प्रकार से जाना है। अर्थात् उनमें निहित ज्ञान को समझा है। वही कवि है, वही ज्ञानी है और वही युद्ध में वीर है। वह प्रदेश धन्य है जिस प्रदेश में गंगा बहती है। वह स्त्री धन्य है जो पतिव्रत धर्म का पालन करती है। वह राजा धन्य है जो न्यायपूर्वक राज्य करता है। वह ब्राह्मण धन्य है जो अपने धर्म से कभी पतित नहीं होता अर्थात् निरन्तर धर्म का पालन करता है। वह धन धन्य है जिसकी प्रथम गति होती है अर्थात् जिसे दान में दिया जाता है। वही बुद्धि परिपक्व एवं गहन है तथा वही बुद्धि धन्य है जो पुण्य की प्राप्ति के लिए सदा प्रयासरत है। वह समय धन्य है जो सत्संग में व्यतीत होता है। वह जन्म धन्य है जिससे ब्राह्मण की अखण्ड रूप से भक्ति रहती है।

पुनः शिव पार्वती से कहते हैं — हे पार्वती ! मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुनो। वही वंश भी धन्य है, वही संसार में पूजनीय है, वही परम् पवित्र है। जिस वंश में वे पुरुष पैदा होते हैं जो भगवान् राम की भक्ति में सदा लीन रहते हैं, जिनका तन, मन, धन सब राम की भक्ति में लगा रहता है। ऐसे व्यक्ति ही धन्य हैं, ऐसे व्यक्तियों का वंश धन्य है।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. इन पंक्तियों में भगवान् शिव के द्वारा पार्वती को रामभक्ति की महत्ता बताई गई है।
2. रामभक्त जन चाहे वह कोई भी क्यों न हो, श्रेष्ठ है।
3. 'सोई ..... रघुबीरा' में दीपक अलंकार है।
4. धन की प्रथम गति होती है — दान।
5. सम्पूर्ण पद्य खण्ड में तत्सम शब्दावली का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
6. अवधी भाषा का सुन्दर प्रयोग पद्य का सौन्दर्य है।
7. प्रथम आठ पंक्तियों में चौपाई छंद है।
8. अन्तिम पंक्तियों में दोहा छंद है।

**48.** **चौ.— मति अनुरूप कथा मैं भाषी। जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी।।**
**तव मन प्रीति देखि अधिकाई। तब मैं रघुपति कथा सुनाई।।**
**यह न कहिअ सठहि हठसीलहि। जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि।।**
**कहिअ न लोभिहि क्रोधिहिं कामिहि। जो न भजइ सचराचर स्वामिहि।।**
**द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ।।**
**राम कथा के तेह अधिकारी। जिन्ह कें सत संगति अति प्यारी।।**
**गुर पद प्रीति नीति रत छेई। द्विज सेवक अधिकारी तेई।।**
**जा कहँ सह विसेष सुखदाई। जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई।।**
**दो.— राम चरन रति जो चह अथवा पर निर्वान।**
**भाव सहित सो यह कथा करउ श्रवन पुट पान।।**

**शब्दार्थ**— **मति अनुरूप** = बुद्धि के अनुसार। **भाषी** = कही है। **गुप्त कर राखी** = छिपा कर रखा। **तव मन** = तुम्हारे हृदय में। **सठहिं** = मूर्खों को। **हठसीलहिं** = हठ करने वालों को। **हरि लीलहिं** = राम की कथा को। **लोभहिं** = लोभ करने वालों को। **क्रोधिहिं** = क्रोध करने वालों को। **कामिहि** = काम वासना से युक्त जनों को। **स्वामिहि** = स्वामी को, राम को **सचराचर** = चर और अचर प्राणियों के। **सुरपति** = इन्द्र। **सरिस** = समान। **नृप** = राजा। **तेइ** = वे। **नीति इत** = न्याय में लगे हुए **द्विज–सेवक** = ब्राह्मणों की सेवा करने वाले। **ता कहँ** = उसके लिए। **रति** = प्रेम। **पद निर्वान** = मोक्ष का पद, मुक्ति। **करउ** = करे। **श्रवण** = कान। **पान** = पीना।

**प्रसंग**— प्रस्तुत पद्य–खण्ड रामभक्तिकालीन सगुण काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि भारतीय संस्कृति एवं धर्म का प्रतिस्थापन करने वाले श्रेष्ठ कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' द्वारा विरचित विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से उद्धृत है। भगवान् शिव अपनी अर्धांगनी पार्वती से बातचीत कर रहे हैं। भगवान् शिव पार्वती को रामभक्ति के महत्व बताते हैं। साथ ही काकभुशुण्डि द्वारा प्रदान की गई रामभक्ति की महिमा का भी बखान करते हैं। यह रामभक्ति गरुड़ के लिए कही गई थी।

**व्याख्या**— भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं — हे पार्वती ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् राम की कथा को तुम्हें कह है। यद्यपि इससे पहले मैंने इस कथा को तुमसे छिपा कर रखा था। परन्तु जब मैंने देखा कि तुम्हारी रामभक्ति के प्रति बहुत अधिक प्रीति है तो मैंने इस राम कथा को सुना दिया। वस्तुतः यह कथा उससे नहीं कहनी चाहिए जो मूर्ख हो, जो स्वभाव से ही हठ करता हो अर्थात् जिद करता हो। जो मानव राम की कथा को मन लगाकर सुनने का इच्छुक नहीं हो, कामी हो, क्रोध करने वाला हो, लोभ करने वाला हो—इन्हें राम की कथा नहीं सुनानी चाहिए। जो चर और अचर के स्वामी (ईश्वर) राम का भजन न करता हो उसे भी यह कथा नहीं सुनानी चाहिए। जो ब्राह्मणों से द्रोह करता हो उसे भी यह कथा कभी नहीं सुनानी चाहिए, भले ही वह इतना समृद्ध राजा हो कि इन्द्र की समानता करता हो। सत्य यह है कि राम की कथा के सुनने के वे ही अधिकारी हैं जिन्हें सत्संगति अत्यन्त प्रिय है। जिनका गुरु के चरणों में प्रेम है, जो नीति के ज्ञाता हैं तथा जो ब्राह्मणों की सेवा करते हैं वे व्यक्ति ही राम की कथा सुनने के अधिकारी हैं। उन्हें ही यह कथा विशेष रूप से सुख देने वाली है जिन्हें भगवान् राम सदा ही प्राणों के समान प्रिय रहे हैं। भाव यह है कि जिनकी राम के चरणों में प्रीति रही है वे ही रामकथा सुनने के अधिकारी हैं।

शिव पुनः कहते हैं — जो मानव राम के चरणों में प्रेम चाहता है अथवा मुक्ति या मोक्ष की कामना करता है या भगवान् राम के चरणों की भक्ति चाहता है तथा जो अपने कान रूपी पुट (दोने) से राम की कथा को भावभक्ति के साथ सेवन करना चाहता है वही वास्तव में इस कथा को सुनने का अधिकारी है। अन्य कोई और नहीं।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. रामभक्ति की कथा सुनने का अधिकारी कौन है और कौन नहीं ? इस विषय का विवेचन किया गया है।
2. रामभक्ति की महिमा वर्णित है।
3. 'सुरपति सरिस होई नृप' में उपमा अलंकार है।
4. 'श्रवण-पुट' में रूपक अलंकार है।
5. तत्सम शब्दों का प्रयोग है।
6. अवधी भाषा का मूल प्रयोग है।
7. चौपाई छंद प्रस्तुत पद्य की प्रथम आठ पंक्तियों में व्यवहृत हुआ है। चौपाई छंद के प्रत्येक चरण में सालह मात्राएँ होती हैं।
8. अन्त की दो पंक्तियों में दोहा छंद है। दोहा छंद के प्रत्येक विषम चरण में तेरह मात्राएँ व सम चरण मे ग्यारह मात्राएँ होती हैं।

**49.** **चौ.– राम कथा गिरजा मैं बरनी। कलिमल समनि मनोमन हरनी।।**
**संसृति रोग संजीवन मूरी। राम कथा गावहिं श्रुति सूरी।।**
**एहि महै रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना।।**
**अति हरि कृपा जाहि पर होई। पाउँ देइ एहिं मारग सोई।।**
**मन कामना सिद्धि नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा।।**
**कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं। ते गोपद इव भवनिधि तरहीं।।**
**सुनि सब कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सुहाई।।**

**नाथ कृपाँ मम गत संदेहा। राम चरन उपजेउ नव नेहा।।**

**दो.– मैं कृतकृत्य भवउँ अब तब प्रसाद बिस्वेस।**

**उपजी राम भगति दृढ़ बीतें सकल कलेस।।**

**शब्दार्थ**– **गिरजा** = पार्वती। **कलिमल** = कलियुग की पाप। **समनि** = नष्ट करने वाली। **मनोमल** = मन विकारों को। **हरनी** = दूर करने वाली। **संसृति रोग** = संसार के रोग, जन्म-मरण आदि। **संजीवन मूरी** = संजीविनी बूटी। **श्रुति** = वेद, शास्त्र। **सूरी** = विद्वान्। **एहि मंह** = इस कथा में। **रुचिर** = सुन्दर। **सप्त सोपाना** = सात सीढ़ियाँ। **केर पंथाना** = प्राप्ति के मार्ग हैं। **जाहि पर** = जिस पर। **पाउँ देइ** = पैर रखता है, आगे बढ़ता है। **एहि** = इस। **सोई** = वह। **तजि** = छोड़कर। **अनुमोदन करहीं** = प्रशंसा करते हैं। **गोपद** = गाय पैर। **इव** = समान। **भवनिधि** = संसार रूपी समुद्र। **गिरा** = वाणी। **सुहाई** = सुन्दर। **मम** = मेरा। **गत** = दूर हो गया। **नव** = नूतन। **नेहा** = स्नेह। **कृतकृत्य भवउँ** = कृतार्थ हो गया। **तब प्रसाद** = आपकी कृपा से। **विश्वेस** = विश्व के ईश्वर, शिवजी। **सकल कलेस** = सभी सुख।

**प्रसंग**– प्रस्तुत पद्यावतरण हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में सगुण भक्ति काव्यधारा के प्रतिनिधि के रूप में प्रतिष्ठित 'तुलसीदास' द्वारा विरचित महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' से अवतरित है। भगवान् शिव पार्वती से रामकथा के विषय में अनेक तथ्यों का उल्लेख करते हुए कहते हैं–

**व्याख्या**– हे उमें ! मैंने इस प्रकार राम की कथा का पूर्णतः वर्णन किया है। यह कथा कलियुग के समस्त पापों का विनाश करने वाली है तथा मन के सभी विकारों को सर्वथा मिटाने वाली है। यही रामकथा संसार के जन्म-मरण आदि रोगों के लिए संजीवनी बूटी के समान है अर्थात् संसार के सभी रोगों का विनाश करने वाली है। राम की कथा को शास्त्र और विज्ञान सदा गाते रहते हैं। इस राम की कथा की सात सीढ़ियाँ हैं अर्थात् 'रामचरितमानस' में सात अध्याय या काण्ड हैं ये ही राम की भक्ति प्राप्त करने के मार्ग हैं। अर्थात् इस प्रकार की भक्ति तभी प्राप्त हो सकती है जब भक्तजन अपना सर्वस्व त्यागकर मात्र राम के चरणों में अपना ध्यान रखें। इस भक्ति मार्ग पर केवल वे ही व्यक्ति कदम बढ़ाते हैं जिनके ऊपर भगवान् राम की असीम कृपा होती है। जो व्यक्ति मन में छल-कपट त्यागकर इस कथा का गायन करते हैं वे ही अपने मन की इच्छा को पूरी करते हैं, जो इस कथा को कहते हैं, जो इस कथा को सुनते हैं और इस कथा को स्वीकारते हैं (अनुमोदन करते हैं) अर्थात् प्रशंसा करते हैं वे इस संसार रूपी सागर को उसी प्रकार पार कर जाते हैं जैसे गाय के खुर से बने हुए छोटे से पानी भरे गड्ढे को सरसता से पार कर जाते हैं। (याज्ञवल्क कहते हैं–) पार्वती ने जब इस कथा को सुना तो उन्हें यह कथा बड़ी प्रिय लगी। अतः वे बहुत सुन्दर वाणी में बोली – हे स्वामी ! आपकी कृपा से मेरा सारा संदेह दूर हो गया है तथा भगवान् राम के चरणों में मेरा नया प्रेम उत्पन्न हो गया है।

हे विश्व के ईश्वर शिव ! आपकी विशेष कृपा से मैं धन्य हो गई हूँ। अर्थात् आपने मुझ पर बड़ी कृपा की जो राम कथा की महत्ता मुझे सुनाई है। अब मेरे हृदय में रामभक्ति दृढ़ता से उत्पन्न हो गई है तथा मेरे सभी दुःख पूरी तरह नष्ट हो चुके हैं। अब मुझे किसी भी प्रकार के दुःखों की अनुभूति नहीं होगी।

**काव्य-सौंदर्य**–

1. शिव द्वारा रामकथा सुनकर पार्वती स्वयं को धन्य मानती है।
2. रामभक्ति की महिमा प्रतिपादित हुई है।
3. 'संसृति रोग संजीवन मूरी' में उपमा अलंकार है।
4. 'भवनिधि' में रूपक अलंकार है।
5. 'ते गोपद इव भवनिधि तरइ' में उपमा अलंकार है।
6. तत्सम शब्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
7. अवधी भाषा का प्रयोग है।
8. चौपाई छंद आरम्भिक आठ पंक्तियों में है।
9. अन्तिम दो पंक्तियों में दोहा छंद है।

**50.** **चौ.– यह सुभ संभु उमा संवादा। सुख संपादन समन बिषादा।।**

**भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा।।**

**राम उपासक जे जग माहीं। एहि सम प्रिय तिन्ह के कछु नाहीं।।**

**रघुपति कृपा जथापति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा।।**

**एहिं कलि काल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा।।**

**रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ सम गुन ग्रामहि।**

**जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कवि श्रुति संत पुराना।।**

**ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई।।**

**छं.— पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।**
**गनिका अजामिल व्याध गीध गजादि खल तारे घना।।**
**आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।**
**कहि नाम बारक तपि पावन होहिं राम नमामि तें।।**
**रघुबंस भूषण चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।**
**कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं।।**
**सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै।**
**दारुन सविद्या पंच जनित विकार श्रीरघुवर हरै।।**
**सुन्दर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।**
**सो एक राम अकाम हित निर्वानप्रद सम आन को।।**
**जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।**
**पायो परम विश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।**

**दो.— मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुवीर।**
**अस विचारि रघुवंस मनि हरहु विषम भव भीर।।**
**कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।**
**तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम।।**

**शब्दार्थ**— **शंभु** = शिव। **उमा** = पार्वती। **संपादन** = देने वाला। **समन** = शान्त करने वाला। **भव भंजन** = संसार पापों का विनाशक। **गंजन** = नष्ट करने वाला। **जथामति** = बुद्धि के अनुसार। **पावन** = पवित्र। **सुहावा** = अच्छा लगा। **कलि** युग। **जोग जग्य** = योग साधना और यज्ञ। **सुमिरिअ** = स्मरण करो। **गुनग्रामहि** = गुणों का समूह। **पतित** = पापी। **बड़** = महान् आदत। **श्रुति** = शास्त्र। **तजि** = छोड़कर। **कुटिलाई** = कुटिलता। **केहि** = किसने। **सठ** = मूर्ख। **खल** = दुष्ट **घना** = बहुत से पार कर दिए। **स्वपच** = चाण्डाल। **अघरूप जे** = जो पाप रूप है। **बारक** = बार। **कलिमल** = कलयुग के **मनोमल** = मन की विकृति। **रामधाम** = मुक्ति। **सिधावहीं** = प्राप्त करते हैं। **सत** = सात। **उर धरै** = हृदय में धारण करे = ज्ञानी। **अकाम** = निष्काम। **निर्वानपद** = मुक्ति। **सम आनको** = और अन्य कौन है। **लवलेस** = थोड़ा सा। **मतिमंद** = तुच्छ बुद्धि **विश्रामु** = सुख और शांति। **मो सम** = मेरे समान। **अस विचारि** = ऐसा विचार करके। **हरहु** = दूर करो। **विषम** = भयकर। **भव भीर** = संसार की पीड़ा। **कामिहि** = कामवासना से परे व्यक्ति की। **जिमि** = जैसे। **दाम** = धन। **तिमि** = वैसे ही। **मोहि** = मुझे

**प्रसंग**— प्रस्तुत पद्य—खण्ड हिन्दी साहित्य के मध्यकाल में सगुण भक्तिधारा के प्रतिनिधि कवि 'तुलसीदास' द्वारा रचित भारतीय धर्म एवं संस्कृति का परिचय देने वाले महाकाव्य 'रामचरितमानस' के 'उत्तरकाण्ड' का अंतिम पद है। इस अन्तिम पद में कवि रामभक्ति की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं—

**व्याख्या**— तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रस्तुत कथा शिव पार्वती का मंगलकारी वार्तालाप है जो कि सुख उत्पन्न करने वाली है तथा सभी कष्टों एवं अमंगल को नष्ट करने वाला है। संसार के जन्म-मरण सम्बन्धी दुःखों को मिटाने वाला है। सभी संदेहों को भी विनिष्ट करने वाला है। यह राम-भक्तों के मन को प्रसन्नचित्त करने वाला है तथा सज्जनों के लिए अत्यन्त प्रियकर है। इस संसार में जितने भी रामभक्त हैं अर्थात् राम की भक्ति करने वाले हैं उन्हें रामकथा के अतिरिक्त कुछ भी प्रिय नहीं है। उन्हे रामकथा प्रिय है। तुलसीदास कहते हैं कि मैंने भी भगवान् राम की कृपा से यह सम्पूर्ण कथा अपनी बुद्धि से प्रस्तुत की है तथा मुझे राम का चरित्र बहुत अधिक सुन्दर प्रतीत होता है। इस कलियुग में अन्य कोई भी साधन नहीं है जो कल्याणकारी हो। योग-साधना, तप, व्रत, पूजन आदि कोई भी ऐसा साधन नहीं है जो कल्याणकारी हो। केवल भगवान् राम का स्मरण करना, उनके गुणों का गान करना, निरन्तर राम के गुणों के समूहों को बार-बार सुनना ही कल्याण करने वाला है। राम की बहुत ही कल्याणकारी आदत है कि अपने अपवित्र भक्तों को वे पवित्र कर देते हैं। इस बात का गुणगान कवि, शास्त्र, संत तथा पुराण भी गा-गाकर करते हैं। तुलसीदास कहते हैं—हे मन ! कुटिलता का त्याग करो और उन्हीं राम का भजन करो अर्थात् राम की भक्ति करो। राम का भजन करने से किसने सुगति प्राप्त नहीं की ? अर्थात् जो भक्त निरन्तर राम का भजन करते हैं उन्हें अवश्य मुक्ति मिलती है। तुलसीदास

अपने मन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—हे मूर्ख मेरे मन ! मेरी बात को ध्यानपूर्वक सुन ! संसार में ऐसा कौन है जिसने अपवित्रों को पवित्र करने वाले राम का भजन करके परम गति (मुक्ति) प्राप्त नहीं की हो अर्थात् राम को भजने से सभी को सद्गति मिलती है। राम की भक्ति की महिमा अपरम्पार है, उन्होंने वेश्या, अजामिल, व्याध, गीध, हाथी आदि अनेक पापियों का उद्धार किया है (क्योंकि इन्होंने राम का भजन किया था) आभीर (अहीर) भवन, किरात (भील) खस, चाण्डाल आदि जो अत्यन्त पाप करने वाले थे वे भी जिनका एक बार नाम लेते हैं तो पवित्र हो जाते हैं। कवि कहते हैं कि मैं ऐसे राम के चरणों में नमस्कार करता हूँ। जो प्राणी रघुकुल के आभूषण राम के जीवन की कथा कहते हैं, सुनते हैं व गाते हैं वे ही इस कलियुग के पापों को व मन की विकृति को दूर कर देते हैं और बिना परिश्रम के ही उत्तम धाम अर्थात् स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। यहाँ तक कि जो मानव पाँच-सात चौपाइयों को मनोरम जानकर अपने हृदय से सच्चे मन में धारण करते हैं भगवान् राम उनकी पाँच प्रकार की कठोर अविद्या से उत्पन्न होने वाले मानसिक व शारीरिक विकारों को दूर कर देते हैं। भगवान् राम सुन्दर हैं, ज्ञानी हैं तथा कृपा के भण्डार हैं अर्थात् सभी पर दया दिखाने वाले हैं। वे अनाथों से भी प्रेम करते हैं। वे ही एक मात्र इन गुणों से भरे हुए हैं। वे निष्काम भाव से दूसरों का हित करते हैं। उनके समान मोक्ष (मुक्ति) प्रदान करने वाला कोई नहीं हो सकता। जिनकी थोड़ी-सी कृपा से तुच्छ बुद्धि वाले तुलसीदास ने भी सुख और शांति को प्राप्त कर लिया था उन भगवान् राम के समान कोई भी नहीं है।

तुलसीदास कहते हैं कि मेरे समान कोई भी दीन नहीं है अर्थात् मेरे समान इस संसार में कोई भी असहाय नहीं है और हे राम ! आपके समान कोई भी दीनों का हितकारी नहीं है। अर्थात् आप ही असहायों की सहायता करने वाले हैं। यही मन में विचार करके, हे रघुकुल के शिरोमणि ! मेरी संसार की विषम पीड़ा को शांत करो, मिटाओ। जिस प्रकार कामी को स्त्री अति प्यारी होती है। लोभ करने वाले को धन प्रिय होता है उसी प्रकार हे राम मुझ (तुलसीदास) को आप अत्यन्त प्रिय हैं।

**काव्य-सौंदर्य**—

1. राम की भक्ति की महिमा प्रस्तुत की गई है।
2. तुलसीदास स्वयं को तुच्छ एवं दीन-हीन बताते हैं।
3. तुलसीदास में ज्ञान की उत्पत्ति केवल भगवान् राम के अनुग्रह के कारण हुई है।
4. तुलसीदास की भक्ति भावना अभिव्यक्त हुई है।
5. 'राम भजे गति केहि नहीं पाई' में वक्रोक्ति अलंकार है।
6. 'पाई ..... मना', 'रघुवंश.....गावहिं' 'सो एक .....को' में वक्रोक्ति अलंकार है।
7. 'कामहि ..... राम' में उपमा अलंकार है।
8. तत्सम शब्दावली का सुन्दर प्रयोग है।
9. अवधी भाषा प्रयुक्त हुई है।
10. चौपाई छंद प्रथम आठ पंक्तियों में हैं।
11. अन्तिम चार पंक्तियों में दोहा छंद हैं।

## (खण्ड - क)

### आलोचना

1. बिहारी का जीवन परिचय
2. बिहारी का प्रकृति वर्णन
3. बिहारी की भाषा
4. बिहारी की अलंकार योजना
5. बिहारी की युगीन परिस्थितियाँ
6. बिहारी की भक्ति–भावना
7. बिहारी की बहुज्ञता
8. सतसैया के दोहरे ज्यौं नावक के तीर।
   देखने में छोटे लगे धाव करे गम्भीर।।
9. सतसई परम्परा में बिहारी सतसई का स्थान
10. बिहारी का संयोग श्रृंगार
11. बिहारी का वियोग श्रृंगार
12. बिहारी की समास--शक्ति/समाहार शक्ति

## (खण्ड - ख)

### व्याख्या

# खण्ड (क) : आलोचना

# अध्याय – 1

# बिहारी का जीवन परिचय

## स्रोत

साधारणतः प्राचीन भारतीय साहित्यकारों की रुचि आदिकाल से आत्मप्रदर्शन के प्रतिकुल रही है। यही कारण है कि उन्होंने कभी अपनी रचनाओं में अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय में स्पष्ट रूप से कुछ भी नही लिखा। इससे उनके जीवन परिचय में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हुई हैं। अन्तःसाक्ष्य के अभाव में प्रायः बहिः साक्ष्य के आधार पर ही संतोष करना पड़ा है। प्राचीन भारतीय लेखकों की प्रामाणिक जीवनी तैयार करने में ठोस प्रमाणों पर कम एवं अटकल अथवा अनुमान से अधिक काम लेना पड़ा है। महाकवि बिहारी लाल भी इस विषय में अपवाद नहीं हैं।

बिहारी का जीवन–परिचय प्राप्त करने में उनकी एकमात्र ज्ञात एवं लोकप्रिय रचना 'बिहारी सतसई' से विशेष सहायता नहीं मिलती। उसमें केवल कवि ने 'सतसई' की रचना महाराज जय सिंह के आदेशानुसार रचने की बात अन्तिम दोहे में अवश्य कही है–

**"हुकुम पाई जयसाहि कौ हरि राधिका प्रसाद। करी बिहारी सतसई भरी अनेक सवाद॥**

इसके अतिरिक्त कुछ दोहों में कवि के जीवन–सम्बन्धी कुछ संकेत अप्रत्यक्ष रूप से मिलते हैं, अपने बारे में स्पष्टोक्तियाँ कवि ने नहीं लिखी हैं। अतएव बिहारी का जीवन–परिचय पाने में अधिकतर सहायता 'अन्तः साक्ष्य' से न मिलकर 'बहिः साक्ष्य' से ही लेनी पड़ती है, जिसके अन्तर्गत सतसई की विभिन्न टीकाएँ, बिहारी से सम्बन्धित कुछ स्फुट दोहे, बिहारी का दोहाबद्ध जीवनवृत तथा कवि के कथित वंशज एवं विविध शोधकर्ता विद्वानों के विचार आदि आते हैं। इस विषय में संगृहीत सम्पूर्ण सामग्री का संक्षेप से विवेचन निम्नलिखित है –

## जन्म

बिहारी का जो दोहाबद्ध जीवन चरित्र पं० अम्बिकादत व्यास रचित 'बिहारी–सतसई' के आरम्भ से जुड़ा हुआ है, उसके अनुसार बिहारी का जंन्म संवत् 1652 में कार्तिक शुक्ला अष्टमी, बुधवार को श्रवण नक्षत्र में हुआ माना जाता है। यह दोहा स्वयं बिहारी रचित दिखाया गया है, परन्तु वास्तव में यह किसी अन्य कवि की रचना है, क्योंकि इस 'जीवनवृत्त' में कवि का मृत्यु संवत् भी दिखाया गया है। अतः यह 'जीवन–चरित' नहीं हो सकता।

इस दोहे में वर्णित तिथि, वार आदि की प्रामाणिकता भी ज्योतिष के अनुसार सिद्ध नहीं होती, परन्तु संवत् के विषय में रत्नाकर जी तथा अन्य इतिहासकार पूर्णतया आश्वस्त हैं।

## जन्म–स्थान

बिहारी का जन्म कहाँ हुआ, इस विषय में तीन मत हैं– (1) राधाचरण गोस्वामी बिहारी का जन्म स्थान मथुरा को मानते हैं। (2) मिश्र बन्धुओं ने बसुआ गोविन्दपुर को ही बिहारी का जन्म स्थान माना है। (3) तीसरा और बहुसम्मत मत बिहारी को ग्वालियर में उत्पन्न मानता है। इस विषय में निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है :

**"जनम ग्वालियर जानियै, खण्ड बुंदेले बाल। तरुनाई आई सुघर, मथुरा बसि सुसराल॥"**

इसे भी बिहारी रचित बतलाया जाता है। परन्तु यह दोहा भी बिहारी से परिचित किसी अन्य का लिखा जान पड़ता है। इससे कवि का मथुरा में निवास तो ज्ञात होता है, जन्म स्थान नहीं। अतः मिश्र–बन्धुओं द्वारा 'बसुआ गोविन्दपुर' में बिहारी का जन्म विद्वानों को अधिक मान्य नहीं है। वास्तव में उक्त गाँव बिहारी के भांजे प्रसिद्ध कवि कुलपति मिश्र को मिला था, बिहारी को नहीं। 'सतसई' में ग्राम–जीवन के प्रति बिहारी की उपेक्षा भी यही सिद्ध करती है। दोहाबद्ध जीवन वृतों तथा अन्य स्रोतों एवं किवंदंतियों से भी यही प्रकट होता है कि बिहारी का जन्म ग्वालियर में हुआ था। उसका बाल्यकाल बुंदेलखण्ड तथा तरुणावस्था अपनी ससुराल मथुरा में व्यतीत हुई थी।

## पिता

बिहारी के पिता का नाम केशवराय था। इस प्रसंग में 'सतसई' का यह दोहा उल्लेखनीय है –

**"प्रगट भए द्विजराज कुल, सुबस बसे ब्रज आइ। मेरे हरौ कलेश सब, केसव केसवराइ।।"**

श्लेष अलंकार–युक्त इस दोहे में बिहारी कवि ने अपने पिता और भगवान कृष्ण से कलेशनाथ की प्रार्थना की है। इस दोहे से श्रीकृष्ण संबंधी अर्थ के साथ–साथ बिहारी के पिता का ब्राह्मण–कुलोत्पन्न होना तथा ब्रज (मथुरा) में आगमन का भी पता चलता है। जो जनश्रुति तथा अन्य प्रमाणों से भी पुष्ट है।

इस दोहे की टीका करते हुए 'बिहारी सतसई' के प्रथम टीकाकार कृष्ण कवि (जिसे बिहारी का पुत्र भी कहा जाता है) ने भी 'केसव केसवराइ' शब्दों का अर्थ यूँ स्पष्ट किया है– "केसोराइ जो मेरो पिता और केसोराय जो श्रीकृष्ण जू। इसी प्रकार सतसई की एक टीका 'अनवर चन्द्रिका' में भी स्पष्ट लिखा है– "केशवराइ बिहारी के बाप कौ नाम है।" इस दोहे का उक्त अर्थ अन्य टीकाओं– जैसे रस चन्द्रिका, लाल चन्द्रिका, हरि प्रकाश की टीका आदि में भी समान रूप से पाया जाता है अतः बिहारी के पिता 'केशवराय' के होने में कोई भी संदेह नहीं है।

## केशव–पुत्र–संबंधी–विवाद

उक्त दोहे में बिहारी के पिता का नाम 'केशवराय' प्रतीत होता है। इसलिए कुछ विद्वान बिहारी को रीतिकाल के प्रसिद्ध आचार्य कवि केशवदास का पुत्र मानते हैं। इस विषय में विद्वानों के तर्कों का सारांश इस प्रकार है –

(i) सर्वप्रथम बाबू राधाकृष्ण ने उक्त दोहे के आधार पर केशवदास को ही बिहारी का पिता घोषित किया क्योंकि आचार्य केशव भी श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल से थे।

(ii) केशव भी अन्तिम दिनों में बुन्देलखण्ड छोड़कर अपनी इच्छा से किसी तीर्थ–स्थान (गंगातट) पर आ गए थे इसका संकेत उनकी 'विज्ञान–गीता' से मिलता है। 'कविप्रिया' के अनुसार केशव के पूर्वजों का सम्बन्ध भी मथुरा से था।

(iii) जन्म सम्बंधी दोहे के अनुसार (जन्म ग्वालियर जानिए) बिहारी का जन्म ग्वालियर में, बाल्यकाल बुन्देलखण्ड में तथा यौवन मथुरा में बीता था। इस प्रकार बिहारी और केशवदास दोनों के जीवन की परिस्थितियों में मेल भी है केशवदास के सभी पूर्वज ग्वालियर–नरेश के आश्रित थे। केशव के पिता और स्वयं केशव का जीवनकाल अधिकाश बुन्देलखण्ड में ओड़छा नरेश के पास बीता था। अतः बिहारी के जन्म तथा बाल्यकाल का सम्बन्ध भी ग्वालियर एव बुन्देलखण्ड से क्रमशः जुड़ जाता है।

(iv) बिहारी के भांजे कुलपति मिश्र कवि ने 'संग्राम–सार' के आरम्भ में कविवर 'केशवराय' को अपना नाना बताकर वन्दना की है। इसी प्रकार दूसरी पुस्तक 'जुवती तरंगिनी' में भी उसने 'केशवराय' के पश्चात् अपने मामा बिहारी की भी वन्दना की है। इससे प्रतीत होता है कि बिहारी के पिता 'केशवराय' अवश्य श्रेष्ठ और प्रसिद्ध कवि होंगे अन्यथा कुलपति मिश्र बिहारी के साथ–साथ अपने नाना की वन्दना न करते, क्योंकि ग्रन्थारम्भ के रूप में पिता की वन्दना तो समझ में आ सकती है, नाना की नहीं। 'बिहारी की वाग्विभूति' की भूमिका में पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी इस बात को स्वीकार किया है।

अब रहा नाम का झगड़ा, तो सारे मध्ययुग के हिन्दी साहित्य में 'आचार्य केशवदास' को छोड़ कोई भी कवि उक्त का नाम नहीं हुआ। अतः बिहारी के पिता के रूप में आचार्य केशवदास को ही स्वीकार किया जा सकता है।

(v) 'मिश्रबंधु विनोद' में 'केशव पुत्रवधु' नाम की कवयित्री का उल्लेख है। निःसंदेह किसी के नाम से कोई पुत्रवधु तभी प्रसिद्ध हो सकती है, जब वह स्वयं कोई प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित व्यक्ति हो। अतः 'केशव' की प्रसिद्धि आचार्य केशवदास के पक्ष में ही जाती है। इधर 'केशव की पुत्रवधु' के रूप में बिहारी की पत्नी का भी कवयित्री होना बिहारी के एक दोहाबद्ध जीवन चरित से प्रकट होता है।

उधर असनी के ठाकुर कवि ने अपने आश्रयदाता देवकीनन्दन के नाम पर 'सतसैया वर्णार्थ' नामक टीका में बिहारी का जीवन वृत लिखते हुए बिहारी की पत्नी को ही 'बिहारी सतसई' का रचयिता माना है।

उक्त कथावृत से बिहारी की पत्नी और 'केशव पुत्रवधु' के कवयित्री होने की बात में पूर्ण सगति बैठ जाती है

(vi) मूल दोहे में बिहारी के पिता का नाम 'केशवराय' लिखा है। आचार्य केशव का प्रचलित नाम केशवदास था। किन्तु वे कभी–कभी अपना नाम 'केशवराय' और 'केशव–केशवराम' भी लिखा करते थे। जैसे –

**– तिनके केशवराय सुत भाषा कवि मतिमन्द। – विज्ञान गीता**

**– केशव केशवराम मनौ**

**– कमलासन के सिर ऊपर सौ है। – रामचन्द्रिका**

इस प्रकार नाम की असंगति भी दूर हो जाती है।

(vii) 'बिहारी सतसई' के निम्नलिखित दोहे से नरहरिदास का बिहारी के गुरू होने का संकेत मिलता है –

**"जम करि मूंह तर हरि परयौ, इहि धर हरि चित लाउ। विषय तृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुन गाउ॥"**

स्वामी नरहरिदास की गद्दी ओरछे के निकट गुढां ग्राम में थी। उधर केशवदास का ओरछा–नरेश इन्द्रजीत सिंह के आश्रय में रहना सर्वविदित है तथा इन्द्रजीत सिंह का नरहरिदास के पास दर्शनार्थ आने जाने की जनश्रुति भी प्रसिद्ध है। बिहारी के पिता भी स्वामी नरहरिदास के शिष्य थे, इस बात की सूचना भी मिलती है। अतः दोनों महाकवियों के संबंध की कल्पना तर्कसंगत लगती हैं।

(viii) केशवदास का जीवन काल संवत् 1312 से 1674 तक माना जाता है। तथा बिहारी लाल का समय संवत् 1652 से 1720 के लगभग है। इस प्रकार कुछ अंश तक दोनों के पिता पुत्र–सम्बन्ध की सम्भावना निराधार नहीं कही जा सकती। इन तर्कों के अतिरिक्त डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त ने बिहारी के कथित वंशजों से प्राप्त वंशवृक्ष से भी केशव को बिहारी का पिता सिद्ध करने का यत्न किया है। इस प्रसंग में इन्होंने केशव की प्रसिद्ध शिष्या 'प्रवीणराय' का नामोल्लेख भी बिहारी के दोहों के आधार पर कल्पित कर रखा है। जो अनावश्यक रूप से खींचातानी सी लगती है। किन्तु इससे तथा बिहारी की भाषा में कुछ बुंदेलखण्डी शब्दों के आने जाने से बिहारी को बुंदेलखण्ड का निवासी (तथा ओरछा के रहने वाले आचार्य केशव का पुत्र) सिद्ध करने का यत्न किया है। इस प्रसंग में इन्होंने केशव की प्रसिद्ध शिष्या 'प्रवीणराय' का नामोल्लेख भी बिहारी के दो दोहों के आधार पर कल्पित कर लिया है। जो अनावश्यक रूप से खींचातानी सी लगती है। किन्तु इससे तथा बिहारी की भाषा में कुछ बुंदेलखण्डी शब्दों के आ जाने से बिहारी को बुंदेलखण्ड का निवासी तथा (ओरछा के रहने वाले आचार्य केशव का पुत्र) सिद्ध करने की बात तो सिद्ध नहीं हो जाती।

## अन्य मत

वास्तव में बिहारी के पिता का नाम केशवराय था ही, इस विषय में तो किसी संदेह का अवकाश नहीं है। यह भी सिद्ध है कि 'केशवराय' 'कविवर' और ब्राह्मण भी थे। अब प्रश्न केवल इतना है कि उक्त केशवराय तथा आचार्य केशवदास एक ही व्यक्ति थे अथवा बिहारी के पिता केशवराय कोई अन्य व्यक्ति थे।

(क) 'बिहारी–सतसई' की प्रामाणिक टीका 'बिहारी रत्नाकर' के लेखक और ब्रजभाषा के मर्मज्ञ विद्वान तथा कवि रत्नाकर जी आचार्य केशव तथा बिहारीलाल के संपर्क को स्वीकार करते हुए भी उनके पिता–पुत्र न मानकर गुरु–शिष्य मानते हैं। बिहारीलाल के बाल्यावस्था में ही ग्वालियर छोड़कर पिता के साथ बुंदेलखण्ड में स्वामी नरहरिदास के पास जाकर रहने की कथा प्रसिद्ध है। वहाँ ओरछा के नरेश इन्द्रजीत सिंह के आश्रित आचार्य केशवदास से बिहारी ने काव्यशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की होगी, क्योंकि 'बिहारी सतसई' पर केशव के प्रभाव की स्पष्ट छाप दिखलाई देती है।

(ख) पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का मत है कि 'यदि बिहारी के पिता प्रसिद्ध कवि केशवदास होते, तो यह बात परम्परा में अवश्य प्रसिद्ध होती है।' डॉ० रामसागर त्रिपाठी ने भी अपने शोध–प्रबन्ध में इसी मत का समर्थन किया है।

(ग) नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तथा डॉ० नगेन्द्र द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास' (रीतिकाल) में भी यही निष्कर्ष निकाला गया है–'अतः संक्षेप में यह निर्णय ही विद्वानों को मान्य रहा है कि प्रसिद्ध कवि केशवदास बिहारी के पिता नहीं थे, अपितु जो कोई भी इनके पिता थे, उनका नाम केशवराय था और वे भी कविता करते थे।'

(घ) पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने ब्रजरत्नदास से प्राप्त एक हस्तलिखित पोथी में 'केशव केशवराय' नामक एक कवि के चार छन्दों को उद्धृत किया है, जिसका उल्लेख अब तक किसी इतिहास–ग्रन्थ में नहीं

था। उस पोथी में 'केशव–केशवराय' का समय नहीं दिया गया। परन्तु उनके अतिरिक्त जिन अन्य नौ कवियों की रचनाएँ उसमें संगृहीत हैं, उनमें प्रायः सभी कवियों का समय संवत् 1850 के आसपास बैठता है। यह समय बिहारीलाल के जन्म समय से कुछ पूर्व का है। इसी अनुमान पर पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कहना है –

'अनुमान की कच्ची जोड़ाई से खड़े किए गये इन महल का लेखा यदि ज्यों–का–त्यों मान लिया जाए, तो फिर यह कल्पना बड़े मज़े में की जा सकती है कि संभवतः बिहारी के पिता ये ही 'केशव केशवराय' रहे होंगे'।

## निष्कर्ष

उक्त वाद–विवाद से पता चलता है कि बिहारी के पिता विषयक विवाद में अकाट्य प्रमाणों का अभाव है। शोधकर्ताओं में सर्वसम्मत निर्णय नहीं हो सकता। 'अन्तः साक्ष्य' के आधार पर केशवदास को बिहारी का पिता सिद्ध करना कुछ बौद्धिक व्यायाम–सा लगता है। 'बहिः साक्ष्य का अधिकांश भी संदिग्ध है। अतः बिना किसी ठोस और अकाट्य प्रमाण एवं तर्क के बिहारी का पितृ–सम्बन्ध आचार्य केशव से जोड़ना उचित नहीं लगता। उनके पिता 'केशवराय' अथवा 'केशव केशवराय' नाम के कविवर अवश्य थे, जो निश्चय ही प्रसिद्ध आचार्य–कवि केशवदास से भिन्न व्यक्ति ही थे।

## कुल जाति

उपर्युक्त जन्म संबंधी दोहे से बिहारी का ब्राह्मण–कुलोत्पन्न होना सिद्ध ही है, परन्तु ग्रियर्सन महोदय ने दोहे में 'केशवराइ' शब्द देखकर उन्हें भाट मान लिया है। राधाचरण गोस्वामी का भी यही मत है। परन्तु 'राय' शब्द से भाटकुल का संकेत भ्रामक है। आचार्य केशवदास सनाढ्य ब्राह्मण थे, परन्तु उन्होंने 'विज्ञान गीता' और 'रामचन्द्रिका' में अपने को 'केशवराय' लिखा है। वास्तव में कविवर बिहारी धौम्य गोत्रीय सोती घरबारी माथुर चौबे थे। (मिश्रबंधु कृष्ण– कवि को बिहारी का पुत्र मानने से बिहारी का कुल 'ककोर' सिद्ध करते हैं, क्योंकि कृष्णकवि ककोर–कुलोत्पन्न थे। पर ककोर वंशी तो मिश्रकुल से विवाह सम्बन्ध नहीं करते, जबकि बिहारी की बहिन मिश्रकुल में ब्याही गई थी। अतः उक्त तर्क उचित नहीं है, इसके अतिरिक्त पं० गौरीशंकर द्विवेदी बिहारी को चौबे नहीं मानते। उनके अनुसार बिहारी का विवाह चौबेकुल में हुआ था। परन्तु अन्य कोई भी विद्वान इस मत से सहमत नहीं है।

बिहारी का एक भाई और एक बहिन भी थे। जिसका विवाह वृन्दावन आकर परशुराम मिश्र से हुआ था। कुलपति मिश्र कवि बिहारी की इसी बहिन के पुत्र थे। कहते हैं कि बिहारी की अपनी कोई संतान नहीं थी। अतः उन्होंने अपने भतीजे निरंजन को गोद ले लिया था। इस विषय में रत्नाकर जी का कहना है कि "संभवतः निरंजन का नाम 'निरंजन कृष्ण' रहा होगा क्योंकि बिहारी के वंशजों में 'कृष्ण' शब्द बराबर नाम के अन्त में मिलता है। इस प्रकार के नाम प्रायः खंडित होकर आधे–आधे भी पुकारे जाते हैं। इसलिए कोई उन्हें 'निरंजन' कहता होगा और कोई 'कृष्ण'। अतः ये दोनों नाम एक ही व्यक्ति के हैं। इस अटकल का कारण यह जनश्रुति है, जिसके अनुसार 'सतसई' के प्रथम टीकाकार कृष्ण कवि बिहारी के पुत्र माने जाते हैं। परन्तु यह तथ्य प्रमाणित नहीं है, क्योंकि स्वयं कृष्ण ने इसका उल्लेख नहीं किया। यदि बिहारी उसके पिता होते तो कृष्ण कवि अपने सुप्रसिद्ध पिता का स्मरण अवश्य करता।

## बाल्यकाल

कहते हैं बिहारी के पिता पुत्रजन्म के 7-8 वर्ष के पश्चात् ही ग्वालियर छोड़कर ओड़छे (बुन्देलखण्ड) चले गये। ओड़छे के पास गुढौ नाम गाँव में महात्मा नरहरिदास रहते थे। ये हरिदास–संप्रदाय के अनुयायी थे (इस सम्प्रदाय का प्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थ है–'निजमत सिद्धान्त' और कुछ समय पश्चात् (1374-75) में वे अपने गुरू के पास वृन्दावन में चले गए थे जहाँ पर संवत 1683 में वे गुरू की गद्दी के अधिकारी हुए। उक्त पुस्तक में महात्मा नरहरिदास के शिष्यों में केशवराय का भी नाम आता है, जिससे यह जनश्रुति प्रसिद्ध है कि बिहारी के पिता इन्हीं के शिष्य हो गये थे और बिहारी की शिक्षा–दीक्षा भी इनके ही पास होती रही थी। बिहारी ने यहाँ रहकर संस्कृत एवं प्राकृत का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। ओड़छा–नरेश इन्द्रजीत सिंह भी महात्मा जी के पास आया करते थे। उसी संदर्भ में आचार्य केशव का भी बिहारी से सम्पर्क होना संगत लगता है। कहते हैं काव्य तथा काव्यशास्त्र का अध्ययन बिहारी ने आचार्य केशवदास द्वारा किया था। 'सतसई' में केशव का प्रभाव इन्द्रजीत सिंह के पूर्वज मधुकर शाह तथा वेश्या प्रवीणराय के उल्लेख से भी बिहारी और

ओड़छा दरबार का सम्बन्ध तथा इसी माध्यम से ओड़छा नरेश के आश्रित केशवदास का सम्पर्क अनुमानित हो जाता है। संवत् 1663-64 में मुगल शासक की सहायता से वीरसिंह देव ने ओड़छा के तत्कालीन राजा रामसिंह को पराजित कर दिया। संभवतः इस राजनीतिक परिवर्तन से प्रभावित होकर केशवदा सभी निराश–मन गंगा तट पर चले गये। इधर बिहारी के पिता भी ओड़छे से वृन्दावन चले गए–जैसा कि जन्म संबंधी दोहे में संकेत है।

वैष्णव आचार्यों के पास रहकर वृन्दावन में बिहारी ने साहित्य, दर्शन, भक्ति एवं संगीत विद्या का भी अध्ययन किया। इसी समय इनकी बहन का तथा फिर स्वयं इनका अपना विवाह भी एक माथुर ब्राह्मण के घर हो गया। विवाह के पश्चात् बिहारी सुसराल में ही रहने लगे। सतसई के निम्न दोहे में कदाचित् कवि अनुभूत तथ्य की सूचना दे रहा है।

**"आवत जात न जानिये, तेजहिं तजि सियरानु। घरहं जंवाई लौ घट्यो, खरौ पूस–दिन मानु"॥**

## दिशा परिवर्तन

'बिहारी बिहार' से सम्बन्धित बिहारी के जीवन–वृत के अनुसार लगभग संवत् 1675 में सम्राट जहाँगीर के साथ युवराज शाहजहाँ भी वृन्दावन आया। शाहजहाँ महात्मा नरहरिदास का दर्शन करने भी गया। वहाँ महात्मा जी ने अपने होनहार शिष्य बिहारीलाल की काव्य प्रतिभा की प्रशंसा की। प्रसन्न होकर शाहजहाँ ने बिहारी को आगरा चलने को कहा। इस विषय में निम्न दोहा द्रष्टव्य है–

**"श्री नरहरि नरनाह कौ, दीनी बाँह गहाइ। सुगुन आगरैं, रहत आइ सुखु पाइ"॥**

राजदरबार में बिहारी ने फारसी कविता का भी गंभीरतापूर्वक मनन किया, जिसके कारण 'सतसई' में उक्ति चमत्कार तथा रूप वर्णन एवं विरह–वर्णन की ऊहोक्तियों का सूत्रपात हुआ। वहीं प्रसिद्ध कवि रहीम खानखाना से भी बिहारी की भेंट हुई। बिहारी ने उनकी प्रशंसा में दोहे सुनाए, जिनसे प्रसन्न होकर दानवीर कवि रहीम ने बिहारी को बहुत पुरस्कार दिया। संवत् 1677 में जब शाहजहाँ के पुत्र का जन्मोत्सव था, तो देश के बड़े–बड़े राजा–महाराजा भी उस अवसर पर आए थे। बिहारी की कविता सुनकर उन्होंने कवि की प्रशंसा की तथा उसकी वार्षिक–वृत्ति भी बाँध दी। राजदरबार में रहते हुए बिहारी को मुगल शासन की विलासिता तथा समृद्ध नागरिक जीवन का भी अनेकशः अनुभव प्राप्त हुआ, जिसका प्रतिबिम्ब 'सतसई' में स्पष्ट है।

## सतसई रचना

कुछ समय पश्चात जब शाहजहाँ और जहाँगीर में 'मन–मुटाव आरम्भ हुआ, तो बिहारी लाल भी आगरा से निकल आए। लगभग दस वर्ष तक बिहारी विभिन्न राजाओं के पास जा–जाकर अपनी वार्षिक वृति लेते रहे। संवत् 1692 में जब वे इसी क्रम में आमेर के महाराजा मिर्जा जयसिंह के द्वार गये, तो पता चला कि महाराज अल्पवयस्का नवविवाहिता पत्नी के साथ भोग–विलास में मग्न हैं। राज–काज में उदासीन रहने के कारण महाराजा के विषय में सभी मंत्री और राज–परिवार भी चिंतित थे। कहते हैं किसी प्रकार बिहारी ने निम्नलिखित सुप्रसिद्ध दोहा महाराज के अन्तःपूर में पहुंचाया–

**"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल। अली! कली हीं सो बंध्यो, आगै कौन हवाल॥"**

इस व्यंग्यपूर्ण अन्योक्ति का यथोचित प्रभाव महाराज पर पड़ा। वे कर्तव्य की ओर सचेत हुए। बिहारी की प्रतिभा से प्रसन्न होकर उसे पुरस्कार दिया तथा इसी प्रकार बिहारी ने 'बिहारी सतसई' की अपूर्व रचना की, जिसमें रत्नाकर जी के अनुसार 723 दोहे संगृहित हैं।

इस घटना से प्रसन्न होकर प्रधान महारानी अनन्त कुमारी (चौहानी रानी) ने 'काली पहाड़ी' नामक गाँव बिहारीलाल को पुरस्कार में दे दिया। कुछ समय पश्चात् चौहानी महारानी से रामसिंह नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस शुभ अवसर पर हुए महोत्सव में बिहारी ने जयसिंह तथा महारानी की प्रशंसा में दोहे रचे। इनमें कुछ तो 'सतसई' में संगृहीत हैं और कुछ संदिग्ध बताए जाते हैं। 'बिहारी बिहार' में जुड़े दोहाबद्ध जीवनवृत के अनुसार 'सतसई' की रचना केवल दो महीने में समाप्त हो गई। कृष्णलाल की टीका में 'सतसई' की समाप्ति संवत् 1719 में लिखी है –

**"संवत ग्रह ससि जलधि धिति, छठि तिथि वासर चंद। चैत मास पख कृष्ण में, पूरन आनन्द कन्द"॥**

परन्तु श्री रत्नाकर जी तथा दूसरे विद्वान इसे 'बिहारी सतसई' का नहीं अपितु कृष्णलाल की टीका का समाप्ति काल स्वीकार करते हैं। 'सतसई' का समाप्ति–विषयक एक अनुमान यह

भी है कि संवत् 1704 में शाहजहाँ ने महाराज जयसिंह और औरंगजेब को बलख पर चढ़ाई करने भेजा था। विजयी होकर लौटने पर उनका सुन्दर स्वागत हुआ था। संभवतः इसी को लक्ष्य करके बिहारी ने जयसिंह की प्रशंसा में कुछ दोहे रचे थे, जो 'सतसई' के अन्त में मिलते हैं। जैसे –

**"घर घर तुरकिनी हिंदुनी, देति असीस सराहि। पतिनु राखि चादर, चुरी तैं राखी जयसाहि।।"**

अतः संभवतः 'सतसई' की समाप्ति संवत् 1704 में हुई होगी। रत्नाकर जी इसी मत के हैं। जनश्रुति के अनुसार चौहानी रानी ने अपने पुत्र रामसिंह का विद्यारम्भ संस्कार बिहारी द्वारा कराया, जिनके निमित बिहारी ने अपने रचित पाँच सौ दोहा तथा कुछ अन्य कवियों के दोहों का एक संग्रह पाठ्यपुस्तक के रूप में किया। अब तक प्राप्त प्रतियों में 'बिहारी सतसई' की उक्त प्रति ही सबसे प्राचीन प्रति मानी जाती है। यह जयपुर को राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है। आमेर के राजकवि के रूप में बिहारी ने श्रृंगार रस की अमर कृति 'सतसई' में रसिक–जीवन का मार्मिक शैली से चित्रण किया। प्राय: 0, 10 अथवा 20, 20 श्रृंगार रस के दोहों के बाद एक भक्ति या नीति का भी जोड़ दिया।

## मृत्यु

जनश्रुति के अनुसार बिहारी की मृत्यु संवत् 1720 में ब्रज में हुई। इस विषय में निश्चित प्रमाण नहीं मिलता। कुछ विद्वान संवत् 1621 चैत्र मास, शुक्ल पक्ष, सप्तमी, सोमवार को बिहारी की मृत्यु मानते हैं।

## रसिक व्यक्तित्व

बिहारी अपने युग के लोकप्रिय कवि थे। इनका जीवनकाल बुंदेलखण्ड, मथुरा, आगरा तथा जयपुर में बीता था। ओड़छा निवास में बिहारी ने केशवदास से काव्यशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। केशव की 'रसिक प्रिया' एवं 'कवि प्रिया' का विशेष प्रभाव बिहारी के दोहों में स्पष्ट देखा जा सकता है। रसिकता एवं नागरिकता का गुण बिहारी के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है। ओड़छा के राजा इन्द्रजीत की सभा, आगरे में मुगलों का वैभव–विलास तथा जयपुर में रसिक जयसिंह महाराज का सम्पर्क बिहारी के लिए विशेष प्रेरणादायक रहा होगा। निम्नलिखित दोहा बिहारी के जीवन–दर्शन का प्रतीक–सा लगता है

**"तंत्री नाद, कवित रस, सरस राग, रति रंग। अनबूड़े बूड़े, तरे जो बूड़े सब अंग।।"**

परन्तु डॉ० हरवंशलाल का मत है कि "कली–कली का रस लेने वाले उथली प्रेम भावना बिहारी को पसन्द नहीं थी। बिहारी ने प्रेम को पयोधि माना है, जिसमें गंभीरता भी होती है और मर्यादा में रहने की प्रवृत्ति भी।

सामंती वातावरण तथा विलासमय वैभव का अनुभव होने से बिहारी नागरिक जीवन के अत्यन्त प्रेमी थे। फारसी कविता के प्रभाव से उनके काव्य में प्रदर्शन अथवा उक्ति वैचित्र्य का चमत्कार भी प्रधान हो गया था। तत्कालीन लोकरुचि का उन्होंने देखा और परखा था। संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य का भी गंभीर मनन किया था। ज्योतिष, वैधक आदि के ज्ञान से उनके विविध विद्याध्यन तथा व्यापक पांडित्य का पता चलता है। मानव–प्रकृति का सूक्ष्म तथा मनौवैज्ञानिक निरीक्षण करने की भी उनमें अद्‌भुत शक्ति थी। प्रेम के क्षेत्र में उनकी चुटीली और सरस उक्तियाँ इसका प्रमाण हैं। स्वभाव से वह बड़े ही हसमुख रंगीन तथा जिंदादिल रसिक व्यक्ति थे। यह बात उनकी 'सतसई' को पढ़ने से स्पष्ट हो जाती है।

## जातीय भावना

यद्यपि वे राजदरबार के कवि थे, तथापि उनका अपना विशेष व्यक्तित्व सदैव अक्षुण्ण रहा। वे चारण तथा अन्य आश्रित कवियों के समान चाटुकार नहीं थे। बिहारी की कुछ अपनी विशिष्ट राजनीतिक मान्यताएँ थीं, जिन्हें उन्होंने अन्योक्ति की व्यजनापूर्ण शैली से व्यक्त किया। राजाश्रित होते हुए भी उन्होंने अपने स्वतंत्र चिन्तन को कभी नहीं दबाया।

निःसंदेह बिहारी के आश्रयदाता एक श्रेष्ठ और सफल सेनापति, गुणग्राही, दानवीर और वैभव–विलास के रसिक परन्तु स्वाभिमानी राजपूत वीर थे। उन पर मुगल साम्राज्य को अत्यधिक भरोसा था। शाहजहाँ ने इसी वीर सेनापति को लेकर बलख में घिरे औरंगजेब की सेनाओं की रक्षा की थी। औरंगजेब ने भी इस प्रखर राजनीतिज्ञ और साहसी योद्धा को दक्षिण के विद्रोह को दबाने का महत्वपूर्ण काम सौंपा था। छत्रसाल महाराज की मुगल सम्राट के साथ संधि कराने वाला भी यही जयसिंह था। छत्रपति शिवाजी को समझा बुझाकर औरंगजेब की राजसभा में लाने वाला भी यही वीर था।

परन्तु बिहारी की जातीय भावना से प्रेरित होकर अपने आश्रयदाता द्वारा मुगल साम्राज्य की सुरक्षा के लिए अपनी जाति के महान वीरों के साथ संघर्ष को प्रशंसा की दृष्टि से नहीं देखते थे। ऐसा करने में बिहारी को जयसिंह के व्यर्थ परिश्रम द्वारा, विदेशी साम्राज्य को लाभ और अपनी जाति को अक्षय हानि पहुँचाने की चिन्ता खाए जा रही थी। तभी तो उन्होंने निम्नलिखित अन्योक्ति द्वारा मानो जयसिंह को स्पष्ट चेतावनी दी थी –

**"स्वारथु, सुकृत न, श्रम वृथा, देखि विहंग विचारि। बाज आए पानि परि, तू पंथीनु न मारि।।"**

बाज जैसे वीर पक्षी के बहाने बिहारी ने जयसिंह को सचेत किया था कि अपनी जाति के वीरों को पराए (विदेशी) लोगों के बहकाने में आकर मारने से कोई लाभ न होगा, कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होगा, अपितु देशद्रोह का पाप लगेगा।

रीतिकाल में आश्रयदाता की अतिश्योक्तिपूर्ण प्रशंसा प्रत्येक कवि ने लिखी है। क्या यह आश्चर्य नहीं कि अतिश्योक्ति अलंकार का प्रयोग करने वाला बिहारी जैसा कवि जयसिंह की प्रशंसा में असंभावित कृपणता से काम ले? सात सौ से अधिक दोहों में ही बिहारी ने अपने आश्रयदाता का वर्णन किया है, जो मात्रा की दृष्टि से अत्यन्त स्वल्प है। उसमें भी बिहारी ने जयसिंह की दानशीलता और वीरता जैसे सर्वविदित गुणों की महिमा गाई है और वह भी मर्यादित स्वर के साथ। जैसे –

**"रहति न रन जयसाहि–मुख, लखि लाखनु की फौज। जाँचि निराखरऊ चलै, लै लाखनु की मौज।।"**

(अथवा)

**"घर घर तुरकिनी हिंदूनी, देती असीस सरहि। पतिनु राखि चादर–चुरी, तैं राखी जयसाहिं।।"**

बलख–अभियान के समय वीर जयसिंह ने असंख्य हिन्दू और तूर्क सिपाहियों के प्राणों की रक्षा की थी, जिसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करने वाली पत्नियों के आशीर्वाद न केवल उचित, अपितु मनौवैज्ञानिक दृष्टि से आवश्यक भी ठहराये जाएंगे।

इसी अवसर पर बिहारी ने जयसिंह की वीरता का वर्णन साभिप्राय किया है–

**"साभां सेन सयान की, सबै साहि कै साथ। बाहुबली जय साहिं जू, फते तिहारे हाथ।।"**

इस दोहे से स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि यदि जयसिंह बलवान योद्धा मुगल सम्राट का साथ न दे, तो उसे कभी विजय नहीं मिल सकती।

इस प्रकार अवांतर रूप से यह सिद्ध हो जाता है कि बिहारी में जातीय–भावना भी कूट–कूटकर भरी हुई थी। वे केवल शृंगार की कामुक कविता ही नहीं करते थे, बल्कि अपनी कविता से जातीय–हित की साधना के लिए भी तत्पर रहने वाले निर्भीक, स्वतन्त्रचेता महाकवि थे। वे रीतिकाल के अन्य कवियों के समान चाटुकार और भाट श्रेणी के कवि नहीं थे।

## पुनश्च

बिहारी की निरीक्षण शक्ति व्यापक थी। नीति संबंधी सूक्तियों में उनकी व्यवहार–कुशलता तथा लोकशास्त्र का अथाह ज्ञान झलकता है। इसी प्रकार भक्ति और धर्म के आडम्बर पर चोट करके बिहारी ने आध्यात्मिक जीवन की श्रेष्ठता और साथ ही समन्वय की भावना भी व्यक्त की है। इन्हें संपति का लोभ कभी नहीं रहा और संतोष स्वभाव तथा नम्र प्रकृति होने से उन्हें ईश्वरीय शक्ति पर भी विश्वास था। इसके अतिरिक्त बिहारी ने भ्रमण भी बहुत किया था। अतः देशकाल एवं समाज का अध्ययन उन्हें व्यापक रूप से था। जिसका प्रतिबिम्ब 'सतसई' में स्पष्ट मिलता है। केवल एक रचना मात्र, 700 दोहे लिखकर इस सौभाग्यशाली महाकवि ने जनसाधारण, काव्य मर्मज्ञ, रसिक समुदाय, महात्मा तथा धर्मप्रिय भक्तों एवं राजा महाराजाओं सभी से समान आदर प्राप्त किया।

# अध्याय – 2
# बिहारी का प्रकृति वर्णन

## प्रकृति और हिन्दी कविता

हिन्दी के कवि प्रकृति दर्शन के प्रति कुछ उदासीन से रहे हैं। जहाँ संस्कृत के महाकाव्यकारों ने प्रकृति की रमणीय रंगस्थली में खुलकर विहार किया है और उसके अत्यन्त मनोरम रूप को हृदयस्पर्शी ढंग से चित्रित किया है। वहाँ हिन्दी कवियों ने आलम्बन के रूप में प्रकृति के अतुल सौन्दर्य की ओर प्रायः आँख उठाकर देखा तक नहीं। आधुनिक काल से पूर्व प्रकृति अपने शुद्ध रूप में हिन्दी–काव्य का आलम्बन कभी नहीं रही। उसे शृंगार रस के उद्धीपन रूप में या नारी सौन्दर्य के उपमान रूप में अथवा सुक्ति–काव्य आदि में अप्रस्तुत रूप में ही प्रायः प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी कवि संस्कृत के महाकाव्यों की अपेक्षा श्रृंगारपरक मुक्तकों से अधिक प्रभावित जान पड़ते हैं। उन्होंने रीतिग्रन्थों की परम्परा का अनुकरण करके प्रकृति का 'षड्ऋतु वर्णन' अथवा 'बारहमासा–वर्णन' ही अपनी रचनाओं में समाविष्ट किया है और इस रूढ़िगत वर्णन में भी प्रकृति–वर्णन के प्रति नवीन अथवा मौलिक दृष्टिकोण अपनाने की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। वही घिसे–पिटे उदाहरण, वही परम्परागत उपमाएँ, वही नीति के शुष्क उपदेश और वही विरह जनों को सताने–तड़पाने वाली काल्पनिक कथाएं, बस इसी सीमित क्षेत्र के संकुचित बंधन में जकड़ी प्रकृति छुट–छुट कर किसी प्रकार साँस लेती रही है। रीतिकालीन अन्य कवियों के समान बिहारी भी परम्परा–पालन से बच नहीं पाए। उनकी सतसई में भी रूढ़िगत वर्णनों की ही भरमार दिखाई देती है। परन्तु कहीं–कहीं बिहारी की विद्रोहिणी काव्य–प्रतिभा परम्परा की श्रृंखलाओं को तोड़कर स्वतंत्र वातावरण में विहार करने को बाहर निकल आई है। काव्य–शास्त्र की बँधी लकीर पर चलते–चलते भी बिहारी की चंचल दृष्टि इधर–उधर खुले सौन्दर्य के प्रति भी झांक लेती है। बिहारी की कल्पना परंपरा के पिंजरे में बंदिनी होकर भी अवसर मिलते ही उन्मुक्त आकाश की ओर उड़ने को आतुर हो उठती है। यही कारण है कि 'बिहारी–सतसई' में प्रकृति का केवल उद्दीपन और आलकारिक रूप ही नहीं मिलता, उसका आलम्बनगत सौन्दर्य भी कुछ–न–कुछ देखने को मिल ही जाता है।

## प्रकृति और बिहारी

बिहारी के प्रकृति–वर्णन को विवेचन की दृष्टि से पाँच भागों में बाँटा जा सकता है–

(क) आलम्बन रूप (ख) मानवीकरण रूप (ग) उद्धीपन रूप (घ) अलंकार रूप और (ड़) सूक्ति रूप में।

अब बिहारी–सतसई के आधार पर प्रकृति के प्रत्येक रूप की झलक प्रस्तुत की जाती है।

## (क) आलम्बन रूप में प्रकृति

प्रकृति को ही लक्ष्य बनाकर वस्तुगत रूप से उसके सौन्दर्य का निरूपण करना ही वास्तव में लक्ष्य शुद्ध प्रकृति–वर्णन कहलाता है। इस वर्णन में प्रकृति स्वयं कवि का आलम्बन या आधार रहती है। कवि सीधा प्रकृति के सम्पर्क में आता है और प्रकृति–सुन्दरी अपना घूंघट हटाकर समस्त शोभा का भंडार कवि के सामने खोलकर रख देती है। आलम्बन प्रकृति–वर्णन में यद्यपि कालीदास और सेनापति जैसी अनुरागिणी दृष्टि बिहारी के पास नहीं है, फिर भी लीक से कुछ हटकर चलने की दृष्टि से बिहारी का प्रयास अवश्य प्रशंसनीय कहा जा सकता है। प्रकृति को आलम्बन मानकर भले ही बिहारी में उसके संश्लिष्ट रूप का बिम्बग्रहण उतना स्नष्ट न हो, परन्तु इस दिशा में बिहारी की मौलिक प्रतिभा ने बढ़ने का साहस तो किया ही है, कुछ उदाहरण देखिए

**"छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधुरी गंध। ठौर ठौर झौंरत झपत झौंर झौंर मधु–अंध"।।**

इस दोहे में बसंतऋतु के समय मधुर–रस पीकर मस्ती से झूमते हुए भ्रमरों के झूंडों की कल्पना कितनी सुन्दर और स्वाभाविक है। रूप, रस, गंध, स्पर्श का समन्वित रूप एकत्र देखने को मिलता है। इसी तरह बसंत कालीन मंथरगीत से चलती वायु मस्त हाथी की चाल चलती हुई कितनी प्यारी लगती है, इसका वर्णन भी कवि ने रूपक शैली में किया है –

**"रनित भृंग–घंटावली, झरित दान मधुनीर। मन्द–मन्द आवतु चल्यौ, कुंजरू कुंज समीर"।।**

इसमें नाद सौन्दर्य ने अरूप वायु का साकार और सजीव चलचित्र खींचकर रख दिया है। ऐसे वर्णनों में कवि का उद्देश्य केवल प्रकृति के विभिन्न रूपों की सरस झांकी उपस्थित करना है। इनमें प्रकृति ही कवि का प्रस्तुत विषय है, उसका अभीष्ट वक्तव्य है, उसके नेत्रों का आलम्बन है।

शरत सुन्दरी का आकर्षण रूप भी कवि को मोहित करता है, तो वह अलंकृत शैली में उसकी भी जीती–जागती तस्वीर उतार लेता है –

**"अरुन सरोरुह कर चरन, दृग खंजन, मुख चन्द। सभै आव सुन्दरि सरद, काहि न करहि आनन्द"।।**

परम्परागत उपमानों की भूमिका में भी बिहारी ने शरद् ऋतु का बड़ा ही मोहक और मूर्त–वर्णन किया है। एक अन्य दोहे में बिहारी ने शरद् ऋतु को वीर–विजेता सम्राट का रूपक प्रदान किया है।

षड्ऋतु वर्णन की प्राचीन परिपाटी को निभाते हुए भी बिहारी ने निरपेक्ष रूप में अर्थात् विशुद्ध आलम्बन रूप में प्रकृति का निरूपण करके एक नयी राह दिखलाई है। बसंत तथा शरद्–ऋतु के समान बिहारी ने अन्य ऋतुओं का भी निरपेक्ष–वर्णन किया है। ग्रीष्म ऋतु में जेठ की दोपहरी के समय छाया का नाम भी कहीं नहीं होता। विशेष रूप से राजस्थान में (जहाँ कवि की स्थिति है) तो ऐसी सम्भावना अकल्पनीय भी नहीं कही जा सकती। ऐसी दशा में कवि ने कवित्वपूर्ण ढंग से क्या खूब कहा है –

**"बैठि रही अति सघन वन, पैठि सदन तन मांह। देखि दुपहरी जेठ की, छांहौ चाहति छांह"।।**

ग्रीष्म के अत्यधिक ताप का भी कवि ने वर्णन किया है, जिसमें गर्मी के कारण व्याकुल साँप और मयूर तथा मृग और बाघ जैसे विरोधी जीवों को भी एकत्र बैठे दिखलाया है –

**"कहलाने एकल बसत, अहि सयूर मृग बाघ। जगतु तपोवन सौ कियो, दीरघ–दाघ निदाघ"।।**

गर्मी की अधिकता के कारण मृग को बाघ से डरकर भागने का होश नहीं रहा और बाघ को उसे खाने की लालसा नहीं रही। अतिरंजित होते हुए भी कवि का मूल आशय स्वाभाविक और अनुभवसिद्ध है।

इसी प्रकार वर्षाकाल में काले–काले मेघों से दिन में भी अंधेरा होने लगता है, जिसे बिहारी ने अपनी स्वभावगत अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन शैली में यहाँ तक कह डाला कि केवल चकवा–चकवी के मिलने और बिछुड़ने से ही लोगों को क्रमशः दिन और रात की स्थिति मालूम पड़ती है। माघ के महीने में सूर्य का ताप भी बहुत कम हो जाता है, जिस पर कवि उसकी तुलना चन्द्रमा से करके चकोरी के लिए भ्रान्ति उत्पन्न कर देता है। निःसंदेह ऐसे वर्णन ऊहोक्तियों के कारण प्रभावशाली नहीं बन सके। आलंकारिक चमत्कार से भाव का प्रभाव दब ही जाता है। परन्तु इन वर्णनों में बिहारी ने प्र कृति को ही आलम्बन मानकर जो साहसिक पग उठाया है, वह अवश्य सराहनीय है।

इस प्रकृति–वर्णन में बिहारी ने ससुराल में कदाचित् 'घर जमाई' बनकर रहने के व्यक्तिगत अनुभव का भी अप्रस्तुत–योजना के रूप में संकेत किया है –

**"आवत जात न जानियत, तेजहिं तजि सियरानु। घरहिं जवांई लौं घट्यो, खरौ पूस दिनमानु"।।**

इस प्रकार सिद्ध होता है कि बिहारी ने प्रकृति का आलम्बनगत वर्णन भी किया है। चाहे कहीं–कहीं इसमें अत्युक्ति का आलंकारिक चमत्कार भाव सौन्दर्य का बाधक सिद्ध हुआ है, फिर भी बिहारी ने प्रकृति के निरपेक्ष निरूपण के कुछ बड़े सुन्दर उदाहरण भी दिये हैं।

## (ख) मानवीकरण रूप में प्रकृति

जड़–प्रकृति में चेतन शक्ति का आभास पाकर उसका सजीव एवं मूर्त रूप में वर्णन करने की शैली मूलरूप में वैदिक साहित्य में भी परिलक्षित होती है। परन्तु आधुनिक काव्य में 'मानवीकरण' के नाम से इस शैली का सन्निवेश हिन्दी–काव्य में पश्चिमी साहित्य के प्रभाव के कारण ही हुआ। छायावादी कविता इस प्रकार की शैली का श्रेष्ठ उदाहरण है। बिहारी ने भी अपने ढंग से रीतिकाल में ही प्रकृति के मानवीकरण के कुछ सरस उदाहरण दिये हैं। 'शरतसुन्दरी' की झलक आप ऊपर देख चुके हैं। बसंतकालीन मन्द–मन्द बहते हुए पवन के अत्यन्त संवेदनशील और मार्मिक दो चित्र देखिए –

**"चुवतु स्वेद मकरन्द कन, तरु तरु पर बिरमाइ। आवत दच्छिन देस तें, थक्यो बटोही बाइ॥**

**लपटी पुहप–पराग–पट, सनी स्वेद मकरन्द। आवति नारि नवोढ लौं, सुखद वायु गति मन्द"॥**

पहले दोहे में पुल्लिंग वायु की कल्पना एक थके–हारे, पसीने से नहाए, वृक्षों के नीचे रूक– रूककर विश्राम करने वाले पथिक के रूप में की गई है। यह कल्पना इतनी मर्मस्पर्शी है कि इसकी चर्चा 'इम्पीरियल गजटियर' तक में भी की गई है। दूसरे दोहे में वायु का प्रयोग स्त्रीलिंग में करके बिहारी ने उसे एक सर्वांग सुन्दरी नव–विवाहिता पद्मनी स्त्री के रूप में चित्रित किया है।

रूप और रस से पूर्ण बिहारी की ये कतित्वपूर्ण कल्पनाएँ उसकी अद्भुत चित्र शैली की परिचायक हैं। मानवीकरण में केवल प्रकृति को रूपक अलंकार का उदाहरण नहीं बनाया जाता, अपितु उनमें मानवीय भावों, संवेदनाओं और कोमल अनुभूतियों की अभिव्यंजना का आरोप भी किया जाता है। प्रसिद्ध छायावादी कवि पन्त की 'छाया' और निराला की 'जुही की कली' इसका प्रमाण है। बिहारी ने भी कुछ–कुछ इसी ढंग पर ग्रीष्मऋतु को ऋतुराज बसंत के विरह में आहें भरते हुए प्रस्तुत किया है –

**"नाहिंन ए पावक प्रबल, लुवैं चलैं चहूँ पास। मानहु बिरह बसंत कै, ग्रीष्म लेत उसास"॥**

इसी प्रकार अपह्नुति अलंकार के उदाहरण में बिहारी ने एक चमत्कारक कल्पना प्रस्तुत की है –

**"जोन्ह नहीं, यह तमु वहै, किए जु जगत निकेतु। होत उदै ससि के भयौ, मानहु ससहर सेतु"॥**

अर्थात् यह चांदनी नहीं है, अपितु चन्द्रमा के उदय होने पर अंधकार का रंग भय के मारे सफेद हो गया है। क्या खूब की सूझ है? (विद्यापति ने भी सघःस्नाता के प्रसंग में बालों से टपकती हुई बून्दों को लक्ष्य करके कल्पना की थी कि मुखरूपी चन्द्रमा को देखकर अंधकार मानों आँसू बहा रहा है।)

उक्त उदाहरण यद्यपि प्रकृति के निरपेक्ष वर्णन से ही सम्बन्धित है, फिर भी इनमें कवि की मर्मस्पर्शी कल्पना, भावनात्मक आरोप तथा आलंकारिक चमत्कार का सौंदर्य ही विशेष महत्व रखता है।

## (ग) उद्दीपन रूप में प्रकृति

हिन्दी कवियों में, विशेष रूप से रीतिकालीन कवियों में, प्रकृति का अधिकांश वर्णन 'उद्दीपन' के रूप में ही किया गया है। लक्षण–ग्रन्थों में 'नायिका भेद' शृंगार–रस का एक महत्वपूर्ण अंग है। उसी के अन्तर्गत जहाँ नायिकाओं के भेद–उपभेद तथा नखशिख का विस्तारपूर्वक निरूपण मिलता है, वहाँ नायिका या नायक के मन में उठे रतिभाव को और अधिक भड़काने के लिए आचार्यों ने प्रकृति के उत्तेजक सौन्दर्य का भी वर्णन किया है। संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं में प्रकृति–भाव को उद्दीप्त करने में सहायक सिद्ध होती है। संयोग दशा में प्रकृति के जो उपकरण सुखदायक तथा आनन्दातिरेक में सहायक पहुँचाते हैं, वियोगदशा में वही दुःखदायक बनकर विरहीजनों को तरह–तरह से उत्तेजित करते हैं। हिन्दी में प्रकृति का उद्दीपन रूप 'षड़ऋतु वर्णन' और 'बारहमासा वर्णन' के अन्तर्गत आता है। बिहारी ने 'षड़ऋतु' वर्णन ही किया है। उसमें भी अधिकतर वसंत एवं वर्षा ऋतुओं को ही महत्व दिया गया है। शेष ऋतुएँ केवल परम्परा को पूर्ण करने के लिए 'बिहारी सतसई' में स्थान पा सकी हैं। 'बारहमासा' का वर्णन सामान्य रूप से विरह के लिए तथा 'षडऋतु' का वर्णन सयोग दशा में किया जाता है। बिहारी ने 'षड़ऋतु' वर्णन संयोग तथा विप्रलम्भ शृंगार दोनों की दृष्टि से किया है।

(i) **बसन्त ऋतु** : बसन्त का अनन्त सौन्दर्य संयोग शृंगार के लिए उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करता है। इस ऋतु में फाग का त्यौहार तो मस्ती और मनोरंजन का पर्यायवाची माना जाता है। गुलाल से भरी मुट्ठी के साथ ही रसिकजन लोक–लाज को भी छोड़ देते हैं। बिहारी ने फाग का सचमुच ही रसमय वर्णन किया है। मधुर छेड़–छाड़ के साथ नायिका की शरारत तो देखिए कि बेचारा नायक भी उसके बाँझपन और चंचलता से पराजित हो गया

**"पीठि दिये ही नैक मुरि, कर घूंघट–पटु टारि। भरि गुलाल की मूठि सौं, गई मूठि–सी मारि"॥**

किन्तु वियोग दशा में वही बसंत सारे हास–विलास का मानो अंत कर देता है। कोयल की मीठी कूक भी परदेसी नायक का सुख लुटने वाली डाकू बन जाती है। पलाश के लाल–लाल फूल उसे दावाग्नि जैसे प्रतीत होते हैं। चैत और तो और चैत महीने की शीतल चाँदनी भी विरह के मारों को अचेत किये जाती है –

**"भौ यह ऐसौई समौ, जहा सुखद दुखु देत। चैत चाँद की चाँदनी, डारति किए अचेत"।।**

कितनी विचित्र है? जो बसन्त संयोग अवस्था में रति–रंग को दुगुना कर रहा था, अब वही वियोगियों को दण्ड देने के लिए कामदेव के बाणों की वर्षा कर रहा है –

**"दिसि–दिसि कुसुमिक देखियत, उपवन विपिन समाज। मनहुँ वियोगिनु कौ कियौ, सर पंजर रितुराज"।।**

अतः संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं में बिहारी ने बसन्त ऋतु का वर्णन उद्दीपन के रूप में ही किया है।

**वर्षा ऋतु** : वर्षा काल में काली–काली घटाओं को आकाश में उमड़ता देखकर प्रेमीजनों के मन भी उत्साह से उमड़ने लगते हैं। बेचारे सन्यास लिये हुए मुनियों का मन भी सुन्दर नारियों के लिए ललचाने लगता है –

**"तिय–तरसौं है मुनि किए, करि सरसौ है नेह। घर परसो हैं हवैं रहे, झर बरसौं हैं मेह"।।**

ऐसे मादक समय में भला तरुण हृदयों की क्या दशा होगी, जब बूढ़ों पर जवानी का रंग छा जाता है। भला यह भी कोई रूठने का अवसर है? वर्षा में दूसरी गाँठ चाहे कितनी पक्की हो जाए, परन्तु 'मान की गाँठ' तो तुरन्त खुल जाती है। वर्षा की फुहार में प्रेम से मतवाली स्त्रियाँ हिण्डोले झूलती हैं। बिहारी ने भी उसकी रंगीन झाँकी प्रस्तुत की है –

**"हेरि हिण्डोरे गगन तैं, परी परी सी टूटि। धरी धाय पिय बीच ही, करी खरी रस लूटि"।।**

परन्तु वर्षा का यह उल्लासमय वातावरण विरह में काटने को दौड़ता है। मल्लिका के फूलों से होकर आने वाली सोंधी–सोंधी गन्ध लिए वर्षाकालीन वायु का शीतल स्पर्श वियोगीजन के लिए झूलसा देने वाली ज्वाला बन जाता है। काले मेघों को आकाश में देखकर वियोगिनी को ऐसा लगता है –

**"धुरवा होहिं न अलि उठै, धुंआ धरनि चहुँ कोद। जारत आवत जगत कौ, पावस प्रथम पयोद"।।**

पावस ऋतु विरहीजनों के लिए पावस नहीं रह जाती, अपितु 'पावक अग्नि' बन जाती है। उसका 'स' अक्षर प्रिय के वियोग में 'क' अक्षर का रूप धारण कर लेता है। तभी तो उसकी फुहार चिनगारी–सी जलाती है। बिजली अग्निशिखा–सी लगती है और मेघमाला उस 'पावक' का काला धूँआ मात्र प्रतीत होती है।

बिहारी ने वर्षा ऋतु का विशेष रूप से विप्रलंभ शृंगार में अधिक वर्णन किया है। यह वर्णन कहीं–कहीं अतिरंजित भी हो गया है किन्तु कवि परम्परा की सीमा का अतिक्रमण कहीं नहीं होने दिया। विरहिणी यदि वर्षाकाल में रात को चमकने वाले जुगनू देखकर अंगारे बरसने की कल्पना करती है। तो यह भ्रांति उसके विरहजन्य उन्माद की ही सूचक बन जाती है। वास्तव में वर्षा ऋतु में कालिदास और तुलसीदास जैसे महाकवियों ने भी अपने नायकों को अधीरता और मोहदशा का संवेदनात्मक चित्रण किया है। बिहारी के निम्न दोहे में भी नायिका की तीव्र अनुभूति, उसके हृदय की परवशता और गहन वेदना को कलात्मक ढंग से व्यंजित किया गया है –

**"कौन सुनै, कासों कहौं, सुरति बिसारी नाह। बदाबदी ज्यौं लेत हैं, ये बदरा बदराह"।।**

इस प्रकार बिहारी ने वर्षाऋतु का वर्णन भी संयोग–वियोग दोनों के संदर्भ में ही किया है।

**हेमन्त–ऋतु** : हेमन्त–ऋतु यौवन का सुख लुटने वाली ऋतु मानी जाती है। बिहारी ने भी हेमन्त की लम्बी रातों को केवल चकवा–चकवी के लिए तो कष्टकर बताया है, शेष जगत के लिए उसे आनन्ददायक ही माना है –

**"ज्यौं–ज्यौं बढ़ति विभावरी, त्यौं त्यौं बढ़त अनन्त। ओक–ओक सब लोक सुख, कोक–शोक हेमन्त"।।**

आगमन के महीने में बिहारी का कथन है कि उसने सारे जग को काम–वासना के अधीन कर दिया है। बड़े–बड़े अजेय जितेन्द्रियों को भी पराजित कर दिया है। कामदेव को अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए कुसुम बाणों के हाथ में लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी। एक अन्य दोहे में बिहारी ने हेमन्त के अत्यन्त प्रभाव का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया है –

**"मिलि बिहरत, बिछुरत भरत, दम्पति अति रतिलीन, नूतन विधि हेमन्त सबु, जगतु जुराफा कीन"।।**

**अन्य ऋतुएँ** : बिहारी ने बसन्त और वर्षा के अतिरिक्त शेष ऋतुओं का संक्षिप्त वर्णन ही किया है। ग्रीष्म ऋतु में जल–विहार करती हुई नायिका के अनुपम लावव्य और चंचल चेष्टाओं की झलक दिखाई गई है। शरद् ऋतु में शरत्पूर्णिमा के निर्मल और मनमोहक वातावरण में प्रिय–मिलन की प्रेरणा का सुन्दर संकेत है।

ये दोनों ऋतुएँ संयोग–शृंगार के उद्दीपन विभाव का ही प्रायः अंग बनकर आई है। आलम्बन रूप में भी बिहारी ने इन दोनों ऋतुओं का हृदयग्रही वर्णन किया है। परन्तु रतिरंग की दलदल में फंस जाने के कारण प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर बिहारी का ध्यान अधिक नहीं गया। कदाचित् प्रकृति की ओर देखने पर न तो रीतिकालीन कवि की विशेष रुचि थी, न अवसर और न आवश्यकता। संयोग में वैसे भी ध्यान प्रियजन तक ही सीमित रहता है, प्रकृति की ओर कम ही जाता है। रहा वियोग वर्णन, उसमें चमत्कार तथा ऊहोक्तियाँ आड़े आ गई।

शिशिर ऋतु का वर्णन बिहारी ने अत्यन्त उत्तेजक रूप से किया है। शीतकाल में बेचारी गर्मी ठण्ड से घबराकर स्त्रियों के स्तनों में जा छिपी है। इस कल्पना को अधिक सार्थक करते हुए बिहारी ने शिशिर से काँपते हुए लोगों को सुन्दर उपचार भी बता दिया है –

**"तपन–तेज तपु–तांप तपि, अतुल तुलाई मांह। सिसिर–सीतु क्यौं हुँ न कटै, बिनु लपटै तियनाह"।।**

शीतकाल की प्रिय–मिलन की अनिवार्यता को अनुभव करती हुई जब एक विरहिणी परदेश जाने को तैयार अपने पति की निष्ठुरता बिहारी के सामने रखती है तो ऊहोक्ति वर्णन सिद्धहस्त रसिक कवि जो उपाय उस दुखिनी बाला को बताते हैं, उसे देखकर सचमुच रोना आता है (विरहिणी की व्याकुलता पर नहीं, अपितु कवि की भद्दी कल्पना पर

**"पुस मास सुनि सखिन मुख, साईं चलत सवार। लैकर वीन प्रवीन तिय, गायौ राग मलार"।।**

विदेश जाने से पति को रोकने के लिए नायिका ने वीणा उठाई और मल्हार राग छोड़ दिया, ताकि वर्षा हो जाने से नायक शीतनिवारण हेतु घर पर ही रुक जाए। वाह! बिहारी की बलिहारी।

प्रकृति का उद्दीपन रूप से वर्णन पहले ही कुछ अस्वाभाविक था। उस पर ऐसे अत्युक्तिपूर्ण वर्णनों से और भी कृत्रिमता का आवरण छा गया है।

**पुनश्च** : यद्यपि षड्–ऋतु वर्णन के रूप में बिहारी ने काव्य–शास्त्र की लकीर पर चलते हुए प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रित किया है, तथापि बिहारी की स्वतंत्रता–प्रिय रुचि ने कभी–कभी लकीर से हटकर अपनी प्रतिभा को विहार करने की भी छूट दे दी है। नामोल्लेख के साथ ऋतुओं या महीनों का निरूपण सयोग अथवा वियोग पक्ष में 'सतसई' में अनेक बार हुआ है, किन्तु बिहारी ने कभी कभी अन्य प्राकृतिक दृश्यों को भी 'उद्दीपन विभाव' के रूप में स्थान दिया है। उदाहरण के लिए सारी रात प्रियतम की प्रतीक्षा करते–करते वियोगिनी की निराशा प्रभातकाल के वर्णन में स्पष्टतः उभर आई है –

**"नभशाली, चाली निशा, चटकाली धुनि कीन। रति पाली आली अनत, आए बनमाली न"।।**

कितना सुन्दर वर्णन है। भावपक्ष और कलापक्ष दोनों दृष्टियों से यह दोहा उत्कृष्ट काव्य का उदाहरण हो सकता है। निःसंदेह प्रकृति–वर्णन इसमें गौण है। मुख्य रूप से नायिका की निराशा, भय, आशंका, ईर्ष्या, विवशता, उत्सुकता आदि कितनी भावनाओं का सबल–चित्र चित्रमयी भाषा में खींचकर रख दिया गया है।

इसी प्रकार एक दूसरा मर्मस्पर्शी उदाहरण प्रस्तुत है, जिसमें गोपियाँ श्याम के विरह में उन–उन प्राकृतिक स्थानों का स्मरण करके विभोर हो रही है, जहाँ किसी समय प्रिय–मिलन का सुख लुटा करती थी।

**"सघन कुंज, छाया सुखद, शीतल सुखद समीर। मनु हवैं जात अजौं वहै, उहि जमुना के तीर"।।**

## (घ) अलंकार रूप में प्रकृति

अप्रस्तुत्–योजना के रूप में प्रकृति का उपयोग काव्य की सामान्य तथा सर्वमान्य परम्परा है। उपमान के रूप में प्रकृति के बड़े ही सुन्दर दृश्यों की कल्पना बिहारी ने की है। कुछ उदाहरण देखिए –

**"चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट पर झीन। मानहु सुर–सरिता बिमल, जल उछरत जग मीन।।**

**लसत सेत सारी ढप्यौ, तरल तर्यौना कान। पर्यौ मनौ सूरसरि सलिल, रवि प्रतिबिंब विहान"।।**

उक्त दोहों में उत्प्रेक्षा अलंकार का उपकरण बनाकर प्रकृति ने रूप–वर्णन को सजीव एवं प्रभावोत्पादक बना दिया है।

(ii) रूपक अलंकार में प्रकृति का अप्रस्तुत विधान निम्नलिखित दोहे में दर्शनीय है –

**"बढ़त बढ़त संपति–सलिल, मन–सरोजु बढ़ि जाइ। घटत घटत सु न फिरि घटै, बरु समुल कुम्हि लाह"।।**

(iii) उपमा का सौन्दर्य भी प्रकृति के उपकरणों के साथ देखिए–

**"फूली फाली फूल–सी, फिरति जू विमल विकास। मोर तरैयां होहु ते, चलत तोहि पिय–पास"।।**

अथवा

**पावक झर–सी झमकि कै गई झरोखा झाँकि"।।**

(iv) व्यतिक अलंकार का उदाहरण लीजिए –

**"सोहति धोती सेत में, कनक–बरन–तन बाल। सारद–बारद–बीजूरी–भा रद कीजति लाल"।।**

## (ड़) सूक्ति रूप में प्रकृति

अप्रस्तुत योजना के अन्तर्गत कवियों ने कभी–कभी नीति तथा लोक व्यवहार संबंधी कुछ जीवनोपयोगी कथनों को प्रकृति के माध्यम से प्रस्तुत किया है। ऐसे वर्णनों में प्रकृति प्रस्तुत अथवा प्रधान विषय नहीं रहती, वह अप्रस्तुत अथवा गौण बन जाती है। तुलसीदास का वर्षा–वर्णन तथा शरद–वर्णन इसी ढंग का है। आलंकारिक भाषा में इस शैली को 'अन्योक्ति' कहा जाता है। बिहारी हिन्दी के एक सफल सूक्तिकार माने जाते हैं। सूक्तियों में नीति कथन को चमत्कारपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। बिहारी ने अनेक सूक्तियों में प्रकृति के अर्थपूर्ण उपकरणों का उपयोग करके अपने वक्तव्य को अत्यन्त प्रभावशाली बना दिया है। 'बिहारी–सतसई' का मूल गायत्री मंत्र ही इसका प्रमाण है, जिसकी नींव पर 700 दोहों का विशाल आयोजन किया गया है।

(i) **"नहिं पराग नहि मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल। अली कली ही सौ बंध्यौ, आगै कौन हवाल"।।**
इसी प्रकार के कुछ उपयोगी, तथ्यपूर्ण, नीति वचनों को अन्योक्ति अलंकार में देखिए –

(ii) **नहिं पावस ऋतुराज यह, तजि तरुवर चित भूल। अपतु भए बिनु पाइ हैं, क्यों नव–दल फल–फूल"।।**
अर्थात् बिना कुछ स्वत्व गवाएँ संसार में लाभ की आशा नहीं रखनी चाहिए। यह तथ्य ही यहाँ अभीष्ट है।

(iii) जिसका कोई सहायक नहीं होता, उसका भगवान होता है, इस तथ्य की प्रकृति की अप्रस्तुत योजना में देखिए –

**"जाकै एकाएक हूँ, जग व्यौसाइ न कोइ। सो निदाघ फूलै–फलै, आकु डह डहौ होइ"।**

(iv) इसी प्रकार औरंगजेब के इशारे पर शिवाजी के साथ संघर्ष करने को तैयार अपने आश्रयदाता जयसिंह महाराज को समझाने के लिए एक बार फिर बिहारी ने प्रकृति का सहारा लिया –

**"स्वारथु सुकृतु न श्रम वृथा, देखि विहंग बिचारि। बाज पराए पानि पर, तू पंछीनू न मारि"।।**

(v) आशावादी मनुष्य बुरे दिनों में भी निराश नहीं होता और अपने प्रिय स्थान को नहीं छोड़ता। उसी का दिग्दर्शन प्रस्तुत दोहे में है –

**"इहीं आस अटक्यौ रहतु, अलि गुलाब के मूल। हवै हैं फेरि बसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल"।।**

## निष्कर्ष

इस प्रकार बिहारी का प्रकृति–वर्णन बहुमुखी है। उसमें प्रकृति की आलम्बन रूप में ग्रहण किया गया है और उद्दीप्त रूप में भी। बिहारी की प्रकृति अलंकारों का भी आधार बनी है और नीति–कथनों का माध्यम भी। इसके साथ ही जड़ प्रकृति को मानवीकरण की शैली में सजीव, मूर्त और स्पन्दनशील बनाकर बिहारी ने अपनी मौलिक कल्पना का सौन्दर्य तथा अनुभूति की सुक्ष्मता भी प्रदर्शित की है। इस बीच बिहारी ने परम्परा का निर्वाह भी किया है। षड़–ऋतु वर्णन की परिपाटी निभाई है और अवसर मिलने पर अपनी स्वतंत्र तथा मौलिक प्रतिभा का चमत्कार दिखलाने में भी संकोच नहीं किया। कहीं–कहीं परम्परा–पालन में अत्युक्ति, आलंकारिक शैली और ऊहोक्ति का विकृत रूप भी झलक उठा है, फिर भी बिहारी में अपने युग की प्रचलित सभी काव्य–शैलियों के अनुसरण की जो विशेषता पाई जाती है, उसका सफल प्रदर्शन बिहारी के प्रकृति वर्णन में हुआ है।

# अध्याय – 3
# बिहारी की भाषा

काव्य के दो पक्ष होते हैं– (1) भावपक्ष और (2) कलापक्ष। भावपक्ष को काव्य की आत्मा और कलापक्ष को उसके शरीर समझा जाता है। भावपक्ष को अनुभूतिपक्ष तथा कलापक्ष को अभिव्यक्ति पक्ष भी कहते हैं। जिस प्रकार आत्मा की स्थिति शरीर के बिना संभव नहीं होती और शरीर भी बिना आत्मा के मृत तथा व्यर्थ होता है, उसी प्रकार भावपक्ष और कलापक्ष भी काव्य में अन्योन्याश्रित होते हैं। दोनों पक्ष परस्पर सापेक्ष होते हैं। जिस काव्य में भावनानुभूति तो मार्मिक है, परन्तु तदनुकूल समर्थ भाषा नहीं है, जो उन भावों को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त कर सके, वह काव्य उत्कृष्ट नहीं हो सकता। इसी प्रकार जिस काव्य में कवि अभिव्यक्ति को ही प्रमुखता प्रदान करता है, भाषा को अलंकृत बनाने में ही सारी शक्ति लगा देता है और अपने भाव क्षेत्र को उपेक्षित रहने देता है, उस कवि का काव्य भी चमत्कारक शब्द–जाल बनकर रह जाता है। अतः एक सफल और श्रेष्ठ कवि अपने काव्य में अनुभूति तथा अभिव्यक्ति, भाव और भाषा, शब्द और अर्थ, आत्मा और शरीर दोनों को उचित महत्व देकर ही अपने उद्देश्य को पूर्ण करता है। बिहारी का काव्य भाव तथा कला पक्ष दोनों पक्षों की दृष्टि से सफल और श्रेष्ठ काव्य है, इस विषय में सभी विद्वान प्रायः सहमत हैं। आचार्य शुक्ल के शब्दों में "जिस कवि में कल्पना की समाहार–शक्ति के साथ भाषा की समास शक्ति जितनी अधिक होगी, उतना ही वह मुक्तक की रचना में सफल होगा। यह क्षमता बिहारी में पूर्ण रूप से वर्तमान थी।"

*बिहारी की भाषा–संबंधी प्रमुख विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार है –*

## 1. शब्दकोष

मुख्यतः बिहारी का शब्दकोष ब्रजभाषा के रसीले शब्दों से ही सम्पन्न है। परन्तु सूरदास की चलती भाषा को बिहारी ने साहित्यिक सिंहासन पर बिठा दिया है। अपनी बहुज्ञता के कारण बिहारी ने ब्रजभाषा के कोष को अन्य स्त्रोतों से भी समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया है। ग्रहणशीलता भाषा और काव्य के लिए वरदान सिद्ध होती है। अतः मधुकरी वृति के द्वारा बिहारी ने भी विभिन्न भाषाओं से ब्रजभाषा के सौन्दर्य को चार चाँद लगा दिए हैं।

बिहारी ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का पर्याप्त अध्ययन किया था। 'बिहारी–सतसई' के अनेक दोहों में इन भाषाओं के अमर काव्यों की छाया भी स्पष्ट झलकती है। अतः उक्त भाषाओं के शब्द रत्नों को भी अपने काव्यकोष के लिए कृतज्ञतापूर्वक ग्रहण किया। भारतीय–भाषाओं के अतिरिक्त बिहारी ने राजभाषा फारसी के भी अनेक प्रचलित शब्दों को अपने काव्य में उचित स्थान दिया। परन्तु अधिक संख्या संस्कृत के तत्सम शब्दों की ही रही। काज्जल, अद्वैतता, द्वैज, सुधादीधिति, निदाघ, श्रमस्वेद प्रथम पयोद आदि असंख्य तत्सम् शब्दों की सहायता से ही बिहारी ने 'भाषा की समास–शक्ति' का गुण अधिमत किया। संस्कृत–तत्सम् शब्दों की समस्त पदावली के समुचित प्रयोग से बिहारी ने दोहे जैसे छोटे छन्दों में भावों का विस्तार 'गागर में सागर' के समान बन्द करके रख दिया। अर्ध–तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग भी यथास्थान करने में बिहारी पीछे नहीं रहे। फारसी तत्कालीन शासकों की भाषा थी। मुगलदरबार के सम्पर्क तथा फारसी काव्य की चमत्कार–प्रियता ने भी बिहारी को अवश्य आकर्षित किया होगा। अतः 'सतसई' में उर्दू–फारसी शब्दो का व्यवहार भी पर्याप्त देखने को मिलता है। खुमा नेजा, शिकार, निसान, सबीह, निवाजिकै, हजाफा, कबूल, जोर, बदराह जैसे अनेक शब्द इसके प्रमाण हैं। उक्त भाषाओं के साथ–साथ बिहारी की भाषा में 'पूरबी' अर्थात् अवधी भाषा तथा बुन्देली भाषा की छाया भी पड़ी। ब्रज और खड़ी बोली को 'पश्चिमी' तथा अवधी को 'पूर्वी' भाषा कहा जाता है। दोनों भाषाओं में व्याकरण सम्बन्धी कुछ विभिन्नताएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। उदाहरणार्थ, पश्चिमी भाषा की प्रवृति दीर्घान्त है और अवधी भाषा की प्रकृति लघ्वन्त। 'बिहारी सतसई' की कान लीन आदि प्रयोग तथा लखाइ, समुझाइ, झमुहाइ आदि क्रियावद पूर्वी प्रभाव को परिलक्षित करते हैं। इसी प्रकार पश्चिमी भाषाओं में संकोच की प्रवृति पाई जाती है, जबकि अवधी में विस्तार की। बिहारी के 'लजियात' आदि शब्द कदाचित् पूर्वी प्रभाव के कारण ही आए हैं। जेहि, केहि, जैसे अवधी भाषा के शब्द भी बिहारी ने स्वीकार किए हैं। 'खण्ड बुन्देल बाल

के अनुसार बिहारी का बाल्यकाल बुन्देलखण्ड में बिता था। क्रियाओं में भी लिंग–वचन–पुरुष का रूप अवधी में परिवर्तित होता है, ब्रजभाषा में नहीं। परन्तु बिहारी ने 'चितगई' और 'लखी' जैसे प्रयोग द्वारा अवधी भाषा की प्रकृति को ही सूचित किया है। 'इहाँ' भी अवधी का रूप है, ब्रजभाषा में ह्यां का व्यवहार होता है। अवधी के अतिरिक्त बुंदेली भाषा के शब्द भी बिहारी ने स्वीकार किए हैं। 'खण्ड बुन्देले बाल' के अनुसार बिहारी का बाल्यकाल बुंदेलखण्ड में बिता था। आचार्य केशव के साथ भी बिहारी का पिता या गुरु का संबंध स्थापित किया जाता है, अतः 'सतसई' में बुन्देली–भाषा का यंत्किचित प्रभाव अकल्पित नहीं कहा जा सकता। बुन्देली का एक विशिष्ट अध्याय 'स्यौं' 'साथ' के अर्थ में बिहारी ने अनेक बार प्रयुक्त किया है –

**"चिलक चिकनई चटक स्यौं, लफति सटक लौं आइ। नारि सलौनी सांवरी, नागिनी लौं डसि जाइ"॥**

देखिबी, लखिबी, पाइबी आदि क्रियापद तथा गीधे, बीधे आदि ठेठ बुन्देलखण्डी प्रयोग भी हैं –

**"कौन भाँति रहि हैं विरद, अब देखिबी मुरारि। बीधे मोंसों आइकै, गीधे गीधहिं तारि"॥**

इस प्रकार लगता है कि बिहारी ने ब्रजभाषा के भण्डार को संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों के साथ–साथ देसी और विदेशी भाषाओं के शब्दों से भी समृद्ध किया है। पुरानी परम्परा से प्रचलित तथा लोक–प्रसिद्ध ग्राम्य शब्दों को भी लेने से संकोच नहीं किया। इससे ब्रजभाषा की श्री वृद्धि ही हुई। बिहारी ने अपने शक–सागर में अवधी, बुन्देली, खड़ी बोली आदि की धाराओं से प्रवाहित होकर आए जिन शब्दों को अपनाया, उसे ब्रजभाषा की मूल–प्रकृति को विकृत नहीं होने दिया। ब्रजभाषा के संस्कार में सहायक रूप होने के कारण ही बिहारी ने यह ऋण स्वीकार किया अपनी पैतृक–सम्पत्ति का दिवालिया निकालकर उसने भीख में कुछ नहीं लिया।

पूर्वी प्रभाव ग्रहण करके भी बिहारी ने ब्रजभाषा के विशिष्ट अस्तित्व को सदैव अलुष्ण रखा। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कहना है कि – "उन्होंने पूर्वी अर्थ में किसी पश्चिमी शब्द का व्यवहार नहीं किया"।

शब्दों का रूप भले ही पूर्वी हो गया हो, प्रयोग भी पूर्वी आ गए हों। उदाहरण के लिए उन्होंने 'सुधर' शब्द लिया है, जिसका अर्थ पश्चिम में 'चतुर' और पूर्व में 'सुन्दर' होता है। बिहारी ने सदा पश्चिमी भाषा वाला अर्थ ही लिया है, पूर्वी भाषा का नहीं जैसे –

**सब अंग करि राखी सुधर, नाइक नेह सिखाइ। रसजुत लेति अनन्त गति, पुतरी पातुर राइ॥**

अतः यह निश्चयात्मक रूप से यह कहा जा सकता है कि बिहारी की ब्रजभाषा उक्त प्रभावों से संयुक्त होकर विकृत और विपन्न नहीं अपितु समृद्ध और सम्पन्न ही हुई। रीतिकाल में बिहारी जैसी आदर्श भाषा लिखने वाला अन्य कोई भी रीति कवि नहीं हुआ है। तभी तो किसी ने लिखा है –

**"ब्रजभाषा बरनी सबै, कविवर बुद्धि विशाल। सबकी भूसन सतसई, रची बिहारी लाल॥"**

## 2. व्यवस्थित भाषा

रीतिकाल में काव्य की भाषा ब्रजभाषा थी। अवधी भाषा की परम्परा 'पद्मावत' और 'रामचरित मानस' जैसे उत्कृष्ट महाकाव्यों की रचनाओं के होते हुए भी हिन्दी काव्य में आगे की न चल सकी। स्वयं तुलसीदास ने भी 'विनय–पत्रिका' को ब्रजभाषा में ही लिखना पसन्द किया। इसी से ब्रजभाषा की लोकप्रियता और व्यापक प्रभावशाली होने का प्रमाण मिलता है। मध्य प्रदेश की केन्द्रिय भाषा होने के कारण भी इसका प्रचार केवल ब्रजमण्डल तक ही सीमित न था, अपितु बुन्देलखण्ड, राजस्थान और पूर्वी पंजाब तक फैला हुआ था। राजस्थान की 'पिंगल' भाषा प्राचीन भाषा का ही साहित्यिक रूप था। परन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी भाषा की व्यवस्था की ओर किसी ने भी विशेष ध्यान न दिया। फलतः ब्रजभाषा का कोई निश्चित और परिनिष्ठत ढांचा तैयार न हो सका। बड़े–बड़े कवियों की भाषा में मिलावट देखी गई। देव और भूषण जैसे महान कवियों ने भी भाषा के तोड़ने–मोड़ने में कोई संकोच नहीं किया। सर्वप्रथम बिहारी ने ही इस महत्वपूर्ण प्रश्न को अपने हाथ में लेकर उसका एक निश्चित समाधान प्रस्तुत किया। बिहारी ने एक शुद्ध और साहित्यिक ब्रजभाषा को अपने काव्य का आधार दिया। डॉ० रामसागर त्रिपाठी के मतानुसार भी बिहारी से पहले किसी कवि की भाषा इतनी परिमार्जित और सुगठित नहीं मिलती "बिहारी" ने भी प्रथम बार भाषा में एकरूपता लाने की चेष्ठा की और इसका प्रभाव परवर्ती काव्यगत पर पड़ा। जिससे बाद के कवि घनानन्द इत्यादि अधिक परिष्कृत भाषा में लिखने में समर्थ हो सके। यही बिहारी की भाषा विषयक सफलता है। "वास्तव में ब्रजभाषा की व्यवस्था का कारण बिहारी के पूर्ववर्ती कवियों की असमर्थता नहीं थी, अपितु व्याकरण के प्रति उपेक्षा और अरुचि थी।

एक ही शब्द को एक ही विभक्ति में अनेक रूप से लिख देना उनके लिए साधारण बात थी। अन्त्यानुप्रास के [illegible] का गुरु या दीर्घ वर्ण का ह्रस्व कर देना उनके बाएं हाथ का काम था। कृदन्त और क्रियापदों का भी मनमाना प्रयोग चलता था। एक–एक कारक के अनेक विकल्प थे, जिन्हें मनमाने ढंग से व्यवहृत किया जाता था। परन्तु बिहारी ने काव्य [illegible] में इस धाँधली और अराजकता को रोकने का साहसिक कार्य किया। 'वह पहले कवि थे, जिन्होंने विभक्ति के परिनिष्ठित रूपों का सतसई में प्रयोग किया।' उदाहरण के लिए अकारांत शब्दों के बहुवचन बनाने के लिए 'न', 'नि' और [illegible] प्रत्यय की विविधता को देखकर बिहारी ने इनमें से केवल एक 'नु' रूप को ही अपना लिया। जैसे पलनु, दृगनु, चरबनु, मुकुतनु आदि का प्रयोग 'बिहारी–सतसई' में सर्वत्र इसका एक–सा मिलता है। इसी प्रकार एक वचन के लिए बिहारी ने विभक्ति को चुन लिया। छंदानुरोध के कारण बिहारी ने अन्तिम शब्द को ही दीर्घ से ह्रस्व या ह्रस्व से दीर्घ करने की स्वतंत्रता का लाभ नहीं उठाया। परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि बिहारी की भाषा सर्वथा दोषमुक्त है।

(i) 'स्मर' को 'समर', 'कै कै' के स्थान 'क कै' तथा 'ज्यौं–त्यौं' के लिए जज्यौं–तत्यौं आदि शब्दों का प्रयोग बिहारी ने किए हैं।

(ii) इसी प्रकार क्रियापदों में "कियौ, लियौ, दियौ," जैसे रूप लिखकर भी बिहारी ने कभी–कभी 'किय' 'लिय' 'दिय' जैसे अप्रस्तुत रूप भी प्रस्तुत किए हैं। जैसे 'मनु ससि सेखर की अकस किय सेखर सतचंद'।

(iii) ब्रजभाषा में 'चितवना' क्रिया का भूतकालिक रूप 'चितयौ' बनता है, जो ब्रजभाषा की प्रकृत विशेषता के कारण स्त्रीलिंग और पुल्लिंग में एक समान ही रहता है। परन्तु बिहारी ने स्त्रीलिंग के साथ 'चितई' का प्रयोग किया है, जो अवधी भाषा की प्रकृति के अनुकूल तो है, पर ब्रजभाषा के नहीं। ऐसे ही 'लखी' क्रिया–पद का प्रयोग भी है।

(iv) बिहारी ने कभी–कभी लिंग के विषय में भी गड़बड़ी कर दी है। उदाहरण के लिए 'वायु' शब्द संस्कृत भाषा में पुल्लिंग होता है, पर हिन्दी में उसका व्यवहार स्त्रीलिंग में किया जाता है। बिहारी ने दो पृथक स्थानों पर वायु शब्द के भिन्न–भिन्न लिंगों में प्रस्तुत किया है, जो विचित्र लगता है। देखिए –

**"चुषतु स्वेद मकरन्द कन, तरु तरुशर विरमाइ। वायु आवतु दच्छिन देश तैं, थक्यौ बटोही जाइ"।।**

इस दोहे में वायु शब्द पुल्लिंग है। परन्तु

**"लपटी पुहुष पराग–पट, सनी स्वेद मकरन्द। आवति नारी नवौढ लौं, सुखद वायु गति मंद"।।**

इस दोहे में वायु शब्द स्त्रीलिंग है।

इसी प्रकार 'उसास' शब्द (जो श्वास शब्द का विकार है) का प्रयोग भी पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों रूपों में मिलता है। उसास जैसे प्रचलित स्त्रीलिंग शब्द को भी बिहारी ने पुल्लिंग के समान प्रयुक्त किया है।

उक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि बिहारी की भाषा में भी कहीं–कहीं त्रुटियाँ अवश्य दृष्टिगोचर होती हैं, तथापि ऐसे स्खलन आटे में नमक के समान ही है। मुख्य रूप से कवि का झुकाव भाषा परिमार्जन की ओर ही रहा है। संक्रोन शब्द को 'संक्रान्ति' से निकला मानकर बिहारी की भाषा को बदनाम करने का युग बताया गया है, क्योंकि आधुनिक शोधकर्ताओं ने सिद्ध कर दिया है कि संक्रमण से संक्रोन तथा स्वर्ण–जाति (सोन जुही नहीं) से सोनजाय शब्द के [illegible]– प्रयोग भाषा विज्ञान के नियमानुकूल ही है। इसी प्रकार समुझाइ, दिखाइ, बसाइ आदि पूर्वकालिक क्रियाओं का रूप ब्रजभाषा में स्वरांत न होकर व्यंजनांत (समुझाय, दिखाय, बसाय आदि है) ही प्रचलित है, परन्तु इसे अवधी भाषा का प्रभाव कहा जा सकता है। वैसे प्राचीन प्राकृत और अपभ्रंश काव्य में इकारान्त प्रयोग ही सर्वत्र मिलते हैं। अतः आचार्य शुक्ल के शब्दों में 'बिहारी' की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य रचना व्यवस्थित है और रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है। यह बात बहुत कम कवियों में पाई जाती है। ब्रजभाषा के कवियों में शब्दों को तोड़–मरोडकर विकृत करने की आदत बहुतों में पाई जाती है। बिहारी की भाषा इस दोष से बहुत कुछ मुक्त है।

## 3. समास शक्ति

आचार्य शुक्ल ने सफल मुक्तककार के लिए भाषा की समास–शक्ति को अनिवार्य बताया है और इस तथ्य की भी पुष्टि की है कि यह गुण बिहारी में पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। दोहे जैसे छोटे छन्द में बिहारी ने भाव–गम्भीर्य और अर्थ विस्तार

को इसी समास शक्ति के बल पर ही समाहित किया है। इस उद्देश्य के लिए बिहारी को संस्कृत भाषा का सहारा लेना पड़ा है। संस्कृत की तत्सम् शब्दावली का जैसा उपयुक्त समस्त प्रयोग बिहारी ने किया है, उसे देखकर तो लगता है कि वे 'संस्कृत–काव्यशास्त्र के ही नहीं, व्याकरण के भी अच्छे विद्वान थे। ब्रजभाषा की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए बिहारी ने छोटे–छोटे समास ही रचे थे, ताकि अर्थ में व्याघात न आने पाए। परन्तु जहाँ बड़े–लम्बे समासों की रचना भी की गई है, वहाँ भी अर्थ की किलष्टता नहीं होने पाई। इससे बिहारी की काव्य–कुशलता और भाषा पर असाधारण अधिकार का प्रमाण मिलता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

(i) **"रनित–भृंग–घंटावली, भरति दान–मधुनीर। मंद मंद आवत चल्यौ, कुंजर–कुंज समीर"॥**

(iii) **चौका चकमनि–चौंधमैं परति चौंधि सी डीठि**

इन दोहों में लघु–समास–रचना का सौंदर्य है। निम्न पंक्तियों में समास–रचना पर्याप्त विस्तृत है –

(i) **"समरस–समर–संकोच बस–बिबस न ठिक ठहराइ। फिरि–फिरि उझकति, फिरि दुरति, दुरि दुरि उझकती आइ"।।**

और इसी प्रकार के दो और समस्त–पद देखिए, जो दोहे की पूरी पंक्ति तक फैले हुए हैं –

(ii) **"विकसित–नव–मल्ली–कुसुम–निकसित–परिमल पाइ। परसि पजारति विरहि–हिय, वरसि रहे की बाइ"॥**

(iii) **"चलित–ललित श्रम–स्वेद–कन कलित अरुण मुखतैं न। बन–विहार–थाकी–तरुनि–खरे थकाए नैन"॥**

उक्त समस्त–वाक्य–रचनाओं का आयाम देखकर दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। साधारणतया लम्बे समास वाली वाक्य–रचना को काव्य–रचना में एक दोष माना जाता है। विशेष रूप से ब्रजभाषा तो समास–बहुला भी नहीं है। उसमें लम्बे–लम्बे समास जंचते भी नहीं। यह तो बिहारी का काव्य– कौशल है कि उसने दोष को भी गुण बना दिया है। लम्बे–लम्बे समासों की रचना करके भी अर्थ–सौन्दर्य और भाव–गाम्भीर्य में तनिक भी कमी नहीं आने दी। कला की दृष्टि से यह बहुत बड़ी उपलब्धि हैं। समास के अतिरिक्त वाक्य–रचना में अन्वय–दोष की भी सदा संभावना बनी रहती हैं, जिसके कारण अर्थ–बोध में बाधा उत्पन्न हो जाती है। बिहारी के कुछ दोहों में निःसंदेह कर्ता और क्रिया का अन्तर कही–कहीं बहुत बढ़ गया है, जिसके कारण अन्वय लगाने में सचमुच कठिनाई होती है। परन्तु यह भी बिहारी की काव्य–कला का अद्‌भुत का कारण चमत्कार ही है कि अन्वय की कठिनाई आवार्थ की अभिव्यक्ति में क्लिष्टता नहीं बनती। दोहे का अर्थ सरलता से समझ में आ जाता है। अतः ऐसी अवस्था में बिहारी पर 'अन्वय दोष' का आरोप कुछ अर्थ नहीं रखता। निम्नलिखित दोहे इस बात को स्पष्ट कर देंगे–

**"आज कछु औरे भए, छए नए ठिक ठैन। चित के हित के चुगल ए नित के होहिं न नैन"॥**

इस दोहे में 'कजरारे' विशेषण 'नैन' से हटकर कुछ अन्तर पर अवस्थित है। अतः व्याकरण की दृष्टि से ऐसा अनुचित होते हुए भी अर्थ–व्यंजना की महत्ता के कारण 'अन्वय दोष' की आपत्ति उपेक्षणीय है। अस्तु,

भाषा की 'समास–शक्ति' के प्रसंग में बिहारी को शिल्प–निपुणता तो सिद्ध है ही, उसके साथ 'कल्पना की समाहार–शक्ति भी सम्बद्ध है, जिसके अनुसार बिहारी नपे–तुले शब्दों में बहुत–कुछ कह डाला है। सागर के गागर में बन्द करके रख दिया है। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने ठीक ही लिखा है– "बिहारी ने अपनी समास–पद्धति के अनुकूल अपनी भाषा भी बहुत चुस्त रखी है। थोड़े में अधिक कहने की जैसी शक्ति इस प्रकार के मुक्तकार में होनी चाहिए, वह बिहारी में भरपूर है। इतनी ठोस या प्रौढ भाषा लिखने वाला हिन्दी में दूसरा कवि नहीं हुआ। निश्चय ही बिहारी की यह समास–शक्ति हिन्दी साहित्य में उनकी अपनी मौलिक विशेषता है, जिसके बल पर वह हिन्दी के श्रेष्ठ मुक्तकार माने जाते हैं।

उदाहरण के लिए निम्नलिखित दोहे बिहारी की भाषा–सम्बन्धी समास–शक्ति और कल्पना की समाहार–शक्ति का समन्वित प्रमाण है –

(i) **"मैं मिसहा सोयौ समुझि मुंह चूम्यौ ढिंग जाइ। हस्यौ, खिसानो गल गह्‌यौ, रही गरै लिपटाइ"॥**

(ii) **"कहत, नटत, रीझत, खिझत, खिलत, मिलत, लजियात। भरै भौन मैं करत हैं, नैनन ही सौं बात"॥**

प्रथम दोहे में एक पूरी प्रेम कहानी का विस्तार समाया हुआ है। और एक–एक शब्द कहानी के पूरे दृश्य को अनावृत करता हुआ पाठक के सामने चल– चित्र का गतिशील अंग बन गया है। दूसरे दोहे में भी नायिका और नायक की मौन भाषा में मान, मनुहार और प्यार की तकरार का रंगमंचीय नाटक ही प्रस्तुत कर दिया गया है। यह सब–कुछ बिहारी ने गिने–चुने

शब्दों के जादू से ही कर दिखाया है और ऐसा करने में उसकी एकमात्र सहायक समर्थ भाषा है, जिसमें [illegible] तथा समास–शक्ति का चमत्कारी प्रभाव विद्यमान है। जिस भाषा में न तो न्यूनपदत्व की शिकायत है और न अधिकपद का आरोप। ससीम में असीम की झलक दिखलाने की विचित्र शक्ति बिहारी की भाषा में ही है।

## 4. अभिव्यंजना

'बिहारी–सतसई' मूलतः ध्वनिकाव्य है। अतः बिहारी की भाषा में व्यंजकता का प्रभावशाली गुण अनिवार्य रूप से [illegible] शब्द तीन प्रकार के होते हैं– (1) वाचक, (2) लक्षक, (3) व्यंजक बिहारी ने व्यंजक शब्दों की सहायता से [illegible] के उत्कृष्ट काव्य का उदाहरण प्रस्तुत किया है। भाषा की अभिव्यंजकता के कारण ही 'बिहारी–सतसई' के अनेक [illegible] तथा व्याख्याकारों ने एक–एक दोहे के अनेक अर्थ निकाले हैं। पन्द्रह–बीस अलंकार केवल एक दोहे में दिखला दिए हैं। वस्तुतः वस्तु, रस और अलंकार तीनों प्रकार की ध्वनियों की अद्भुत शक्ति के कारण ही बिहारी का काव्य अनेक [illegible] वस्तुतः भावाभिव्यक्ति में भाषा का सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। भाव का प्रभाव नष्ट हो जाता है, यदि इसको वहिका भाषा कमज़ोर हो। बिहारी का भाव–जगत जितना सम्पन्न है, उसका भाषा–जगत भी उतना ही समृद्ध है। व्यंजना शक्ति के अद्भुत गुण के द्वारा ही बिहारी ने अपनी सुन्दर कल्पनाओं और व्यापक अनुभूतियों के मोती थोड़े–से–थोड़े शब्दों में [illegible] रख दिए हैं। कुछ उदाहरण देखिए –

(i) **"घनि यह द्वैज, जहाँ लख्यौ, तज्यौ दृगनु दुख–देदु। तुम भागनु पूरब उयौ अहो! अपूरब चंदु"॥**

इसमें केवल 'अपूर्व' शब्द कहकर बिहारी के अनेक व्यंग्य अर्थ प्रकट कर दिए हैं कि

(ii) द्वितिया तिथि को नायक का मुख रूपी पूर्ण चन्द्रमा उदय हो रहा है।

(iii) चन्द्रमा साधारणतया पश्चिम दिशा से उदय होता है, पर नायक का घर पूर्व दिशा में होने से वह चन्द्रमा पूर्व में [illegible]

(iv) सामान्यतः चन्द्रमा वियोगिनी को कष्टकर होता है, पर यह अपूर्व मुखचन्द्र तो संतापहारी है। ऐसे असंख्य दोहे [illegible] उठाकर उद्धृत किए जा सकते हैं, जिनमें भाषा की अभिव्यंजना–शक्ति से बिहारी ने छोटे से दोहे में भावों का [illegible] पारावार भरकर रख दिया है। एक और दोहा देखिए –

(v) **नैक हंसौहों बानि तजि, लख्यौ परत मुँह नीठि। चौका–चमकनि–चौंध में, परति चौंधि सी डीठि"।**

इसमें सखी का व्यंग्यार्थ नायक के प्रति तो यह है कि नायिका का तो मुस्कराने का स्वभाव ही है, तुम पर स्त्री [illegible] के कारण संकोच को दूर कर लो, उधर नायिका को समझाती है कि नायक के नेत्र किसी अपराध के कारण सदोष [illegible] लज्जित नहीं हैं, वे तो तुम्हारी हंसी की चमचमाहट के कारण चुँधिया रहे हैं। इस प्रकार दोनों को मान और संकोच [illegible] कर मधुर मिलन के लिए उत्साहित करने की व्यंजना इस दोहे में की गई है। ऐसी चुस्त काव्य–रचना व्यंजक शब्द योजना व्यवस्थित भाषा का संयुक्त और समन्वित रूप 'सतसई' के किसी भी दोहे को उठाकर देखा जा सकता है। ध्वनि काव्य की रचना में कवि की शब्द का चयन बड़ी सतर्कता के साथ करना पड़ता है। बिहारी ने मूलभाव को अभिव्यक्त करने वाले [illegible] शब्दों को दोहे के छोटे से चौखटे में जड़ दिया है। जो अपनी व्यंजक–शक्ति से मुक्तक के सम्पूर्ण प्रसंग का उद्घाटन कर देते हैं। उदाहरणार्थ, बिहारी की नायिका के मन में नायक का सपत्नी की पारी में परनारी–विहार सुनकर क्या प्रतिक्रिया हुई, उसको कवि ने केवल रस, अनरस, रिस, रली और रीझ और खीज जैसे अकेले व्यंजक शब्दों की योजना से ही साकार बनाकर रख दिया है। किसी दूसरे स्थान पर नायक को रतिसुख की प्रेरणा देते हुए सखी ने यमुना किनारे वाली [illegible] में एक–एक शब्द से जो ध्वनि अर्थ की 3 व्यंजना की है, वह बड़ी ही मार्मिक और कला–पक्ष की दृष्टि से आश्चर्यजनक है। कहीं बिहारी ने श्लेष अलंकार की सहायता ली है और गोरस बेचने वाली नायिका की व्यंजनापूर्ण भाषा द्वारा गोरस बेचने वाले नायक को मधुर निमंत्रण भी दिला दिया है। इसी प्रकार भाषा की व्यंजकता उस समय तो सचमुच हृदय ग्राही हो जाती है। जब कवि अपनी अनुपम सुन्दरी नायिका के चित्र बनाने वाले विश्व के गर्वीले चित्रकारों की असफलता का वर्णन करता है। बिहारी ने केवल चित्रकारों की असफलता की सूचना 'कूर' शब्द से दी है, परन्तु सुझावपूर्ण भाषा की व्यंजक शक्ति द्रष्टव्य है, जल पं० पद्मसिंह शर्मा तथा अन्य व्याख्याकारों ने 'चित्र क्यों न बन सका' संबंधी अनेक कारणों को खोजने में कमाल कर दिया है। ऐसी प्रभावशाली और चुटीली भाषा लिखने वाला कवि हिन्दी में कदाचित् ही मिले, जिसके एक–एक शब्द में व्यंग्यार्थ की बहुमुखी झांकी और भाषा की समास–शक्ति विद्यमान हो। तभी तो यह प्रसिद्ध दोहा बिहारी की भाषा–शक्ति का जयघोष करता है–

**"सतसैया के दोहरे, ज्यों नाविक तीर। देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर"।।**

## 5. माधुर्य गुण

पंडितराज जगन्नाथ ने काव्य की परिभाषा में "रमणीयार्थ के प्रतिपादक शब्द" को महत्व दिया है। अर्थ की रमणीयता में भाषा विशेष सहायक होती हैं। बिहारी की भाषा शब्द–सौन्दर्य और अर्थ–सौन्दर्य का अद्‌भुत सम्मिश्रण है। नायिका की वयः संधि के समान शब्द और अर्थ भी परस्पर धुल–मिल गए हैं। धूप–छाँह अथवा ताफ्ता रंग के कपड़े के समान दोनों में व्यवधान मिट–सा गया है। यही शब्द और अर्थ की एकता बिहारी की महान् सफलता है।

'बिहारी–सतसई' की भाषा माधुर्य–गुण–सम्पन्न है। गुण तीन प्रकार के माने जाते हैं– (1) माधुर्य (2) ओज (3) प्रसाद। माधुर्य–गुण में कोमलकांत पदावली रहती है, जिससे हृदय द्रवित हो उठता है, रस में भीग जाता है। शृंगार, करुण, शांत रस आदि में माधुर्य गुण प्रधान रहता है। ओजस्वी शब्दावली द्वारा उतेजित भावनाओं की अभिव्यक्ति ओजगुण द्वारा होती है। यह गुण वीर, रौद्र, भयानक आदि कठोर रसों में मुख्य रूप से रहता है। प्रसाद गुण में अवस्थानुसार दोनों गुणों का समावेश सम्भव है। परन्तु इसकी प्रधान विशेष शीघ्र अर्थ–बोध है। सूखी लकड़ी में जैसे आग बहुत फैलकर जल उठती है, उसी प्रकार जिस रचना को पढ़ते ही सारा भाव तुरन्त स्पष्ट हो जाए, वह प्रसाद–गुण वाली रचना मानी जाती है।

बिहारी–सतसई में माधुर्य तथा प्रसाद गुणों का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप में दृष्टिगोचर होता है। अलंकारों के समान गुण काव्य के शरीर को सजाने वाले धर्म में नहीं हैं–अर्थात् गुणों का संबंध केवल शब्द–शृंगार नहीं है। वे काव्य की आत्मा रस के उपकारक धर्म माने गए हैं, इस कारण अलंकारों की अपेक्षा गुणों का महत्व अधिक है। माधुर्य गुण उपयुक्त शब्द–योजना द्वारा उपयुक्त काव्य के रसोद्रेक में सहायता पहुँचाने का काम करते हैं। 'बिहारी–सतसई' शृंगार रस प्रधान रचना है। अतः इसमें माधुर्य और प्रसाद गुण की प्रधानता है। विद्यापति की कीमत–कांत पदावली तथा भावार्थ को एकदम अभिव्यक्ति कर देने की विशेषता 'सतसई' में सर्वत्र देखने को मिलती है। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं–"भाषा की रमणीयता का विन्यास, शब्दों का चयन, अनुप्रास का विधान, 'बिहारी सतसई' की विशेषता है।" कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं –

(i) **"रनित भृंग घंटावली, झरति दान मद नीर। मंद मंद आवंत चलयौ, कुँजर कुँज समीर"।।**

इस दोहे में गले में घंटा बाँधे, मस्ताना चाल चलते हुए हाथी और उसके समान रस–भीनी, मंद–मंद बहने वाली शीतल वायु की मधुर झंकार कितनी साफ सुनाई देती है। माधुर्य गुण की कर्ण मधुर शब्दावली में काजल रहित परन्तु सुन्दर नयनों की झाँकी भी देखिए –

(ii) **"रस सिंगार मंजन किए, कंजनु, मंजनु दैन। अँजनु रँजन हुँ बिना, कंजन गँजनु नैन"।।**

मधुर वर्णों की झंकृति सौम्य, सुन्दर नयनों के समान ही सहृदय–हृदय को बरबस अपनी और खींच लेती है। बिहारी की भाषा सर्वत्र भावानुगामिनी बनकर काव्यार्थ की साधिका है। इसका एक प्रमाण देखिए –

**"कँज नयनि मँजनु किए, बैठ ब्यौरति बार। कच अँगुरिनी बिच दीठि करि, चितवति नँदकुमार"।।**

शब्दचित्र और भावचित्र दोनों की आश्चर्यजनक संधि इस दोहे की असाधारण विशेषता है। भाषा की इस जादूभरी शक्ति को देखकर ही मिश्र बंधुओं ने लिखा था –

"बिहारी की भाषा बड़ी मनोहर है। इनके सभी शब्दों में झलझलाहट, जगमगाहट तथा चमकीलापन मिलता है। ऐसे शब्दों का चयन करते हैं कि दोहा चमक–सा उठता है। भाषा भावों के अनुसार ही परिवर्तित होती है।" इस प्रसंग में झीने वस्त्र में से झिलमिलाता और जगमगाता हुआ नायिका का सर्वांग–सुन्दर शरीर यौवन के उद्‌दीप्त रंगों में उभरता हुआ भी देख लीजिए –

**"झीवैं पट मैं झुलमुली, झलकति ओर अपार। सुरतरू की मनु सिंधु मैं, लसति सपल्लव डार"।।**

कितना रमणीय अर्थ है और कितनी रमणीय शब्दावली। 'सपल्लव डार' से नायिका के चरण, हाथ, होंठ आदि अन्य कोमल और ललित अंगों का भी समावेश संकेत द्वारा दिखा दिया है।

पोप ने लिखा है –

The sound must seem an echo to the sense.

बिहारी ने उक्त उक्ति को चरितार्थ कर लिया है। अलंकारों के अनावश्यक आधात से भाषा का परिष्कार करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ी और सीधी– सादी किन्तु समर्थ और सशक्त भाषा के माध्यम से भाव प्रभावपूर्ण ढंग से है। निम्नलिखित दोहा इसका प्रमाण है –

**"कौन सुनै का सौं कहौं, सुरति बिसारी नाह। बदावदी जिय लेत हैं, ए बदरा बदराह"।।**

इसमें अलंकार स्वतः और अनायास आकर माधुर्य–गुण तथा विरह–भावना का अभिन्न अंग बन गया है। सार्थक शब्द–योजना ने वेदना की अभिव्यक्ति को अत्यधिक प्रेषणीय बना दिया है। आडम्बर विहीन भावोचित कल्पना प्रवण, ऐसी रसशक्ति, सरल और सशक्त भाषा से 'बिहारी–सतसई' सहृदय जनों का कंठहार बन गई। पं० पद्मसिंह शर्मा ठीक ही कहते हैं –

"बिहारी–सतसई' की भाषा सर्वश्रेष्ठ परम रसीली है। उसे छोड़कर जो दूसरी भाषा पढ़ते हैं, उनसे सहृदयता मानो कोसों दूर कहती है –

**"जीभ निबौरी क्यौं लगै, बौरि चाखि अंगूर"।**

## 6. चित्र–योजना

बिहारी की भाषा चित्रमयी है। जो काम चित्रकार अपनी तूलिका से लेता है, वही काम बिहारी ने अपनी शब्द–योजना से लिया है। चित्रकार तो स्थिर चित्र ही चित्रित करता है, पर बिहारी के विचित्र चित्र तो चलचित्र के समान चंचल और सजीव भी हैं। शब्दों के माध्यम से किसी अमूर्तभाव को मूर्त बनाकर प्रस्तुत कर देने में ही कवि की सफलता का रहस्य छिपा है। बिहारी ने न जाने कितने ही आकर्षण चित्रों, मुद्राओं, हाव–भावों, अनुभावों आदि को आकार ही नहीं, प्राणदान भी दिया है। बिहारी का 'रूप–वर्णन' तथा 'अनुभाव–चित्रण' इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। 'उपयुक्त शब्द चयन' इस चित्रांकन का मूलाधार होता है। बिहारी ने शब्द–प्रयोग में बड़ी सावधानी और सूझ–बूझ से काम लिया है। दोहे की सीमा को ध्यान में रखते हुए बिहारी ने ऐसे संक्षिप्त और सार्थक शब्द चुने हैं, जिन्होंने दीप–शिखा के समान अर्थ के प्रकाश से स्वयं को तथा पाठक को आलोकित कर दिया है। उदाहरण के लिए बिहारी द्वारा प्रयुक्त विशेषणों को ही लीजिए, जो संक्षिप्त किन्तु सटीक चित्रांकन के लिए कहीं तो 'अनियारे–नयन' लिखा है और कहीं पर 'अलसौहैं नैन' कहीं 'ललचौ ही चखनि' का प्रयोग है। इन दोहों में 'निगोड़े नैन', 'अहेरी नैन', और 'लड़ैते नैन' के विशेषण देकर बिहारी ने स्थिति और प्रसंग के अनुसार नयनों की विविध विशेषताओं और प्रभावों का यथार्थ शब्द–चित्र उतार दिया है। प्रत्येक विशेषण अपना विशिष्ट अर्थ–सौन्दर्य रखता है, जिसे दूसरा पर्यायवाची शब्द व्यक्त नहीं कर सकता। शब्दों के साथ–साथ। वर्ण–योजना भी भाषा को चित्रात्मक बनाने में सहायक सिद्ध हुई है।

**(क) रूप–चित्र :** सर्वप्रथम हाव–भाव तथा अनुभावों के रूप में कुछ मोहक रेखाचित्रों का उदाहरण लीजिए –

**"बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय। सौंह करै भौहनि हँसै, दैन कहै, नटि जाय"।।**

इस दोहे की दूसरी पंक्ति में नायिका (राधा) के चार दृश्यों के साथ चलचित्र की गति की तरह क्रमशः उभर आया है। नायक के मुरली माँगने पर सौगन्ध उठाना, फिर नायक के निराश होकर लौटने की स्थिति में भौंहों में भृकुटि तान (इतने में नायक के रूक जाने पुनः अनुरोध करने सम्बन्धी अवर्णित, परन्तु कल्पना द्वारा संभव रेखाचित्रों के पश्चात मुरली देने को सहमति प्रकट करना तथा फिर अकस्मात् मुकर जाने की मुद्राएँ जहाँ मनमोहक हैं, वहाँ इन सभी चित्रों का एक पंक्ति में समा जाना भी कम आश्चर्यजनक नहीं है। ऐसे सुन्दर चित्रात्मक वर्णन बिहारी सतसई में यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं, प्रत्येक का उदाहरण देना यहाँ सम्भव नहीं है। केवल कुछ नमूने प्रस्तुत हैं –

(i) **"नासा मोरि नचाय दृग, करी ककी की सौंह। काँटे सी कसकति हिए, बहै कटीली भौंह"।**

इसी प्रसंग में संयोग शृंगार के भी कुछ दोहे बड़े रसपूर्ण बन पड़े हैं। स्नान करती हुई एक नवयुवती का चित्रांकन देखिए –

(iii) **"सुनि पग धुनि चितई इतै, न्हाति दियै ही पीठि। चकी, झुकि, सकुचि डरी, हँसी, लजी सी दीठि"।।**

कितना नयनाभिराम चलचित्र है। नायक को अकस्मात् आया देख, नायिका ने पीठ दिए ही मुड़कर ज्यों ही देखा तो

आश्चर्य में डूब गई, फिर झूकी, ताकि उसके उरोज दिखाई न दे जाएं, फिर (गीले–वस्त्रों को यथास्थान लपेटकर) सिमट गई, साथ ही कुछ भयभीत भी हुई कि कहीं और तो किसी ने उसे नायक की उपस्थिति में नहाते हुए नहीं देख लिया। अन्त में नायक को अपनी ओर ललचाई दृष्टि देखता हुआ पाकर लजा भी गई और उसी लजीली दृष्टि में मुस्कराकर अपने प्रेम–प्रदर्शन का भी सांकेतिक हाव दिखला गई। इस दोहे में सारी दृश्यावली केवल एक ही पंक्ति में प्रकट कर दी गई है। सद्यःस्नाता, जुड़े बाँधने वाली आदि अनेक नायिकाओं के रूप–चित्र भी बिहारी की भाषा–शक्ति के अकाट्य–प्रमाण हैं। बिहारी के चित्रों में केवल रूप ही नहीं, शब्द, रस, गंध, स्पर्श के समन्वित उदाहरण भी प्रकृति वर्णन में मिल जाते हैं। जहाँ कुंज का समीर घंटा बाँधे हाथी की तरह चलता हुआ और रसालवन में रस, सुगंध से मतवाले भँवरों का झूमता हुआ झुण्ड चित्रमयी भाषा में अंकित किया गया है।

**(ख) वर्ण चित्र** : बिहारी की भाषा ने रंगीन चित्रों की भी सृष्टि की है। वर्ण–बोध का प्रथम प्रमाण तो 'बिहारी–सतसई' प्रथम दोहे से ही मिल जाता है, जहाँ राधा के देह की सुनहरी कांति वर्ण–चित्र प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। रंगों के मिश्रण का एक और चित्र लीजिए –

**"अधर धरत हरि के परत, ओठ डीठि पर ज्योति। हरि बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष छवि होत"।।**

हरे रंग की बाँसुरी, लाल रंग के होठ, श्याम वर्ण दृष्टि और पीताम्बर के पीले रंग द्वारा मिलकर इन्द्रधनुषी छटा का अवलोकन काव्य को टैक्नीकलर रूप प्रदान करता है। परन्तु इस स्थुल वर्णन की अपेक्षा वर्णों की सूक्ष्म संधि, जो वयःसंधि में ताफ्ता रंग बनकर झलकती है अथवा यौवन के सुनहरी रंग के प्रभाव से नायिका की लाल रंग वाली चोली की तरह दोरंगी दिखाई देती है, भी उल्लेखनीय है। क्रमशः अनुरूप और विरोधी वर्णयोजना के दो सजीव चित्र द्रष्टव्य हैं –

(i) **"सहज सेत पच तोरिया, पहिरे अति छवि होति। जल चादर के दीपलौं, जगमगाति तन जोति"।।**

(ii) **छायो छबीलो मुख लसै, नीले आचर चीर। मनो कलानिधि झलमले, कालिंदी के नीर"।।**

इस प्रकार बिहारी ने प्राजल भाषा के आधार पर वस्तु और भाव दोनों के सादे तथा रंगीन दोनों प्रकार के चलचित्रों का निर्माण किया है। अपनी उर्वरा कल्पना शक्ति का सहारा लेकर भाषा के चुने हुए वर्णों की सहायता से बिहारी ने अपनी लेखनी को चित्रकार का जो कठिन काम सौंपा था, उसे उसने बड़ी निपुणता और सफलता के साथ पूर्ण किया है। इसी अद्‌भुत विशेषता को ध्यान में रखकर ही पं० विश्वनाथ मिश्र ने लिखा है कि बिहारी की "भाषा इतनी गठी हुई, समर्थ और सशक्त है कि केवल वही उनकी साहित्यिक योग्यता का परिचय देने के लिए पर्याप्त है।"

## 7. लाक्षणिकता

लाक्षणिकता भाषा का श्रेष्ठ गुण माना जाता है। कवि अपने वक्तव्य को सीधे रूप में न कहकर अर्थात् उसे वाच्य न बनाकर चमत्कारक शैली से, कुछ भिन्न व्यक्त करता है। साधारण शब्दार्थ से भिन्न नवीन अर्थ की अभिव्यक्ति करने की शैली को लाक्षणिक शैली कहते हैं। मुहावरे और लोकोक्तियों का समावेश भी लाक्षणिक शब्द में हो जाता है, क्योंकि काव्यशास्त्र की परिभाषा में इन्हें रुढ–लाक्षण्य का उदाहरण ही माना जाता है।

बिहारी की वक्र कथनशैली और लाक्षणिक शब्दावली प्रसिद्ध है। बात को प्रभावशाली बनाने तथा उसे कलात्मक के रंग में रंगने के लिए बिहारी ने इस शैली को अपनाया है। एक उदाहरण लीजिए –

**"दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरति चतुर चित प्रीति। परति गांठि दुरजन हियै, दई नई यह रीति"।।**

इसमें आँख के उलझने, कुटुम्ब के टूटने, प्रीति के जुड़ने तथा हृदय में गांठ पड़ने की चर्चा की गई है। वास्तव में आँख, कुटुम्ब आदि पदार्थ नुक्त चेष्टाएँ स्वयं करने में असमर्थ है। उलझना धागे का गुण हो सकता है, आँख का नहीं। इसी प्रकार कुटुम्ब टूटने का भाव भी घर की दीवारों का गिरना नहीं है, अपितु प्रेमियों का घर छोड़कर भाग जाना है। गाँठ पड़ने की क्रिया भी मन जैसे अमूर्त (या भौतिक रूप में होने पर भी) होने से संभव नहीं। इन शब्दों का साधारण वाच्य अर्थ गृहीत नहीं होता। अतः इनसे निकलने वाले नवीन भावार्थ को ही लक्ष्यार्थ कहते हैं, जो काव्य में चमत्कार भर देता है।

इसी प्रकार बिहारी ने अनेक स्थानों पर प्रायः लाक्षणिक शब्दों का ही प्रयोग किया है –

**(क) छाति फाटी जाति सुनि टारी और उसास। (ख) जा तन की छाँई परै, श्याम हरित दुति होइ।।**

**(ग) सूधे पांय न परत है, सोभा ही कैभार। (घ) लगा लगी लोयन करैं, नाहक मन बाँध जाय।।**

**(ड़) कहा लड़ैते दृग करै, परे लाल बेहाल।। (च) आपु दियौ मनु फेरि लै, पलटैं दीनि पीठि।**
**कौन चाल यह रावरी, लाल लुकावत डीठि।। (छ) रहै गुनी ह्वै गर–परयौ, शल न मुकता हारु।**

**(ज) नैननु कै मग जलु बहै, हियौ पसीजि पसीजि।।**

बिहारी ने भाषा को चुस्त तथा प्रभावोत्पादक बनाने के लिए मुहावरों का बड़ा ही सुन्दर उपयोग किया है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ भाषा की प्रौढ़ता और प्राजंलता को उसी प्रकार बढ़ा देती है।।" 'बिहारी–सतसई' में मुहावरेदार भाषा तथा लाक्षणिक प्रयोगों के अन्य उदाहरण प्रस्तुत हैं –

**"कै छिगुनी पहुँचौ गिलत, अति दीनता दिखाई। बलि बावन की व्यौंतु सुनि बलि को तुम्हैं पत्याह।।**
**हरि की जतु तुमसो यहै, बिनती बार हजार। जिहि तिहि भाँति डयौ रहौं, परयौं रहो दरबार।।**
**मूंह चड़ाए ऊँ रहै, परयौ पीठ कचमाऊ। रहै गरैं परि राखिवौ, तऊ हियै पर हारु"।।**

उक्त दोहे के चारों चरणों में ही मुहावरे की बहार दर्शनीय है। फिर भी, भावार्थ में कृत्रिमता नहीं आने पाई। इसी विशेषता को लक्ष्य करके बाबू राधाकृष्ण दास ने कहा था, "मुहावरे और उत्प्रेक्षा के तो बिहारीलाल बादशाह थे। हिन्दी में ऐसी बोलचाल और ऐसे गठे हुए वाक्य किसी की कविता में नहीं पाते।"

कुछ सुन्दर लोकोक्तियों का प्रयोग भी कवि ने किया, देखिए –

**"तो रस राच्यौ आन बस, कहौ कुटिल मति कुर। जीभ निबौरी क्यों लगै, बौरि चाखि अंगूर।।**
**बहकि न इहि बहिनाचुली, जब तब बीर बिनास। बचै न बड़ी सबील हूँ, चील घोंसला मांसु।।**
**समै–पलट पलटै प्रकृति, को न तजै निजचाल। भौ अकरुन करुनाकरौ, इहिं कपूर कलिकाल।।**

## 8. दोहा–छन्द

बिहारी ने अपने काव्य में अभिव्यक्ति का माध्यम दोहा को बनाया है। कुछ स्थानों पर 'सोरठा' भी मिलता है। जो दोहे का प्रतिरूप माना जाता है–'दोहा उलटे सोरठा'। चौबीस मात्रा का यह छोटा–सा छन्द अपभ्रंश काव्य का अत्यन्त प्रिय और प्रतिनिधि छन्द माना है। 'गाथा' या 'गाहा' कहने से ही जिस प्रकार 'प्राकृत' का बोध हो जाता है, उसी प्रकार 'दूहा' कहने से अपभ्रंश रचना का ज्ञान होता है।

दोहे में 'गागर–में–सागर' भरने की अभूतपूर्व क्षमता पाई जाती है। रहीम ने इसकी तुलना नट के क्रीड़ा–लाघव से दी है –

**"दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं। ज्यौं रहीम नट कुण्डली–सिमिर कूदि चलि जाहिं"।।**

बिहारी दोहा–रचना के क्षेत्र में हिन्दी साहित्य में अद्वितीय कवि माने जाते हैं। भाषा और भाव दोनों दृष्टि से बिहारी ने अपने दोहों को काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण बना दिया है। छोटे–से आकार में विविध हाव–भावों, अनुभावों तथा लम्बे–लम्बे प्रसंगों को यूँ समेट कर रख दिया है, जैसे पं० पद्मसिंह शर्मा के शब्दों में शिवजी ने गंगा के अनन्त प्रवाह को अपनी जटा में बांध रखा था।

दोहे की रचना यद्यपि अनपढ़ संत–कवियों ने भी की है, जिससे लगता है, इस छन्द का शिल्प बड़ा ही सरल होगा परन्तु द्विकल, त्रिकल आदि की सूक्ष्मता को देखते हुए शुद्ध रूप से दोहा छन्द की कल्पना सन्त–कवियों में नहीं मिलती। पिंगल के नियमानुसार दोहे को प्राकृत रूप में रखकर बिहारी ने अभूतपूर्व सफलता पाई है। सफल दोहे की रचना में पूर्ण सतर्कता और काव्य–प्रतिभा की जो अपेक्षा रहती है, बिहारी में वह पूर्ण रूप से विद्यमान थी। वियोगी हरि के शब्दों में 'इनका एक एक दोहा टकसाली और अनमोल रत्न है। ये रत्न क्षीर–सागर के रत्नों से कहीं अधिक चोखे और अनोखे हैं।

इस छोटे आकार वाले छन्द में प्रायः न्यून–पदत्व, कथित–पदत्व, तथा अधिक–पदत्व जैसे काव्य दोषों की सम्भावना बनी रहती है। भाव की अपूर्णता का भय भी रहता है, परन्तु 'बिहारी–सतसई' को उठाकर देखने से एक भी दोहा ऐसा नहीं मिलता, जिससे न्यून–पदत्व का दोष पाया जाता हो, कथित पदत्व तथा अधिक पदत्व तथा का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अमरुक कवि के शार्दूल छन्द जैसे विशाल और व्यापक क्षेत्र में सामने वाले भाव–विस्तार को बिहारी ने दोहे जैसे संक्षिप्त छन्द में जिस कुशलता और प्रवीणता से भर दिया है, उसे देखकर सचमुच आश्चर्य होता है। 'शून्य दास गृह विलोक्य' के प्रसिद्ध श्लोक पर आधारित यह दोहा इसका प्रमाण है –

**"मैं मिसहा सोयौ समुझि, मुंह चूम्यौ ढिंग जाइ।**
**हंस्यौ खिसानी गल गह्यौ, रही गरै लपटाइ"।।**

'इम्पीरियल गजेटियर' में बिहारी ने दोहों की इसी अद्‌भुत विशेषता की शंका इन शब्दों में की गई है –

"Never the less each is a compete picture in itself, a minature description of mood or a phase of Nature, in which every touch of the brush is exactly the needed one and not one is super fluous."

इसमें संदेह नहीं कि बिहारी का प्रत्येक दोहा मुक्तक का सम्पूर्ण वैभव सम्पन्न स्वतः पर्यवसित श्रेष्ठ उदाहरण है। भाषा की समासशक्ति, कल्पना की समाहार शक्ति, कसावट और मुहावरों से सज्जित चुस्त काव्य रचना, चित्र योजना, भावाभिव्यंजना तथा अप्रस्तुत विधान सभी का सौन्दर्य सिमिट कर बिहारी के जैसे दोहे लध्वाकार छन्द में आ गया है। जिसके कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को निर्णय देना पड़ा–कि मुक्तक रचना में जो गुण होना चाहिए, वह बिहारी में अपने चरम उत्कर्ष को पहुँचा हुआ है।"

# अध्याय – 4
# बिहारी की अलंकार योजना

## दृष्टिकोण

बिहारी की भाषा अलंकृत है, यद्यपि वह अलंकारवादी कवि नहीं हैं। बिहारी रसवादी अथवा वस्तुतः ध्वनिवादी कवि ही हैं। ध्वनि–सम्प्रदाय से पूर्व संस्कृत के काव्य–शास्त्र में अलंकार सम्प्रदाय का बहुत प्रचार था। रस–सम्प्रदाय के पश्चात् प्रभाव की दृष्टि से अलंकार सम्प्रदाय का ही स्थान था। भामहं, दण्डी और रुद्रह इस सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य थे। उस समय काव्य की आत्मा रस को न मानकर अलंकार को ही मान लिया गया था। अलंकार काव्य के लिए अनिवार्य बन गए थे–

**"काव्य ग्राह्ममलंकारात्।" "सौन्दर्य मलंकारः।"**

आचार्य अलंकार को सौन्दर्य का साधक अंग न मानकर सौन्दर्य ही मान बैठे थे। यद्यपि आचार्य मम्मट ने रस–सिद्धान्त का समर्थन करते हुए कहीं–कहीं अलंकार–विहीन काव्य की भी सता स्वीकार की थी और पंडित विश्वनाथ ने तो 'रस को ही काव्य की आत्मा' घोषित किया था तथापि जयदेव जैसे आचार्य उनके विचार का उपहास करते हुए अग्नि और ऊष्णता के समान काव्य और अलंकार को अभिन्न मानते थे।

'हिन्दी रीतिशास्त्र के प्रथम प्रतिष्ठित आचार्य केशव पर संस्कृत के इन उत्तरकालीन अलंकारवादियों का ही मुख्यतः प्रभाव पड़ा था, जिसके फलस्वरूप उन्होंने 'कवि–प्रिया' में कविता–कामिनी की शोभा के लिए अलंकार को अनिवार्य सिद्ध कर दिया। यद्यपि रीतिकालीन आचार्यों ने अपने रीति, ग्रन्थों में केशवदास के अलंकार सम्बन्धी दृष्टिकोण का अनुसरण नहीं किया, परन्तु रीतिकाव्य में अवश्य उसे क्रियान्वित करके दिखा दिया। रीतिकालीन कवियों की रचनाएँ अलंकारों के बोझ से दबी हुई है। 'बिहारी–सतसई' यद्यपि अलंकार–ग्रन्थ अथवा रीति–ग्रन्थ नहीं है, फिर भी 'बिहारी का ऐसा कोई दोहा नहीं जिसमें चमत्कार विद्यमान न हो और ऐसे अलंकार भी बहुत कम मिलेंगे, जिसका उदाहरण 'बिहारी–सतसई' में न मिल जाए। ऐसे आलोचकों और टीकाकारों ने तो 'बिहारी–सतसई' के एक–एक दोहे में अनेकों अलंकार खोज निकाले हैं।

वास्तव में बिहारी की रूचि अनावश्यक अलंकरण की ओर कम पाई जाती है। लक्ष्य–ग्रन्थ होने के कारण 'बिहारी सतसई' में अलंकार संबंधी बिहारी का दृष्टिकोण नायिका के रूप–वर्णन संबंधी दोहों से ही अनुमानित हो सकता है, जिसमें अलंकारों के प्रति बिहारी का अधिक मोह नहीं पाया जाता। वे सहज–सौन्दर्य को ही अधिक महत्व प्रदान करते प्रतीत होते हैं। नायिका से अलंकार न पहनने का अनुरोध करते हुए उसकी सुन्दर देह पर अलंकारों की उपमा बिहारी ने 'दरपन के से मोरचो' से दी है। दूसरे स्थान पर उन्होंने कविता–कामिनी के कोमल शरीर के लिए अलंकारों का बोझ उठाना असहाय बतलाया है। इससे स्पष्ट होता है कि बिहारी–सौन्दर्य के प्रसाधन को अधिक महत्वपूर्ण नहीं समझते। फिर भी उनकी कविता अलंकार विहीन नहीं हैं, अपितु प्रायः प्रत्येक दोहे में कोई–न–कोई अलंकार अवश्य विद्यमान है। इसका कारण केवल इतना है कि वे रसवादी अथवा ध्वनिवादी आचार्यों के समान अलंकार को काव्य की आत्मा न मानकर उसके सौन्दर्य का प्रसाधन अथवा 'शोभातिशायी' उपकरण मानते हैं। अलंकारों का महत्व काव्य के लिए उतना है, जितना शरीर के लिए आभूषणों का। यदि आभूषणों से सारे शरीर को लाद दिया जाए, तो उसका सहज सौन्दर्य भी दिखाई नहीं पड़ेगा। यदि अंग–अंगभूषण पहनाने के लिए बेध दिए जाएं, तो शरीर लहूलुहान हो जायेगा, तब सौन्दर्य कहाँ रहेगा? अतः आभूषण उसी अवस्था में आभूषण कहलाने के अधिकारी हैं, यदि वे शरीर को विभुषित करने में सहायता पहुँचाते हैं, अन्यथा वे भूषण नहीं दूषण कहे जाऐंगे।

बिहारी ने अलंकार अथवा आभूषणों को रूप–सज्जा का साधन ही बनाया है, उसे साध्य नहीं कहा जा सका। उनकी दृष्टि का लक्ष्य नायिका का रूप–लावव्य ही है, उसके पहने हुए भूषण नहीं। बिहारी तो भूषणों को 'पायदान' ही समझते हैं, जिन पर पांव पोंछकर दृष्टि नायिका के शारीरिक सौन्दर्य पर पड़ती है।

निश्चय ही अलंकार काव्य का अंग है, वे स्वयं अंगी नहीं। सौन्दर्य को बढ़ाने वाले प्रसाधन हैं, स्वयं सौन्दर्य नहीं। शरीर के आभूषण हैं, उसकी आत्मा नहीं। जैसे आभूषणों के बिना भी शरीर का सहज सौन्दर्य तो स्थिर रहता ही है, उसी प्रकार अलंकारों के बिना भी काव्य का सौन्दर्य बना रह सकता है यदि शरीर निष्प्राण हो, तो उसे चाहे कितने ही आभूषणों से सजा दिया

जाए, उसकी शोभा नहीं रहती, ठीक वैसे ही काव्य की आत्मा (रस) का अभाव है, तो अलंकारों का सारा चमत्कार व्यर्थ सिद्ध होगा। अतः आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा, शब्द अर्थ को उसका शरीर तथा अलंकारों को उसकी शोभा बढ़ाने वाली उपकरण ही माना है। यद्यपि सहज–सौन्दर्य को किसी भूषण की अपेक्षा तो नहीं रहती, पर यदि सुन्दर शरीर पर उपयुक्त भूषण सजा दिया जाएं तो 'सोने पर सुहागे' वाली कहावत के समान उसका सौन्दर्य कुछ अवश्य बढ़ जाता है। अतः अलंकार काव्य के लिए होते हैं, काव्य अलंकारों के लिए नहीं होता। इसके अतिरिक्त, कवि काव्य को सरस ही नहीं प्रभावशाली भी बनाना चाहता है और उक्ति में चमत्कार तथा प्रभाव लाने के लिए अलंकार विधान अथवा अप्रस्तुत–योजना का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। फिर अलंकार की योजना काव्य के कलापक्ष के ही भीतर आती हैं और कलापक्ष काव्य में अनिवार्य नहीं तो आवश्यक अवश्य है।

बिहारी ने इस विषय में पूरी सावधानी बरती है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में भी बिहारी उन कवियों में से थे जिन्हें आजकल 'सजग कलाकार' या 'कान्शस आर्टिस्ट' कहते हैं। बिहारी ने अलंकारों का प्रयोग उचित रूप से किया है और रसभंग कहीं नहीं होने दिया। उन्होंने अपनी नायिका के समान कविताकामिनी को भी अलंकारों के बोझ से अनावश्यक रूप में नहीं लादा, उसके सहज–सौन्दर्य की पूर्ण रक्षा करते उसकी सौन्दर्य–वृद्धि में सहायक होने की अवस्था में ही अलंकारों का प्रयोग किया है।

## अलंकार–प्रधान

अलंकार प्रधानतया दो प्रकार के होते हैं–

(क) शब्दालंकार (ख) अर्थालंकार

**(क) शब्दालंकार :** शब्दालंकार में शब्द का सौन्दर्य मुख्य होता है। भाषा चमत्कार पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। कवि विशिष्ट पद–रचना और वर्ण–विन्यास में ही विशेष प्रयत्नशील रहता है जिससे अर्थ गौण और कभी–कभी नष्ट हो जाता है। शब्दालंकार की योजना में कवि का सतर्क होना अधिक आवश्यक है, अन्यथा शब्दालंकार युक्त होने पर भी अर्थहीन होने के कारण काव्य का मूल्य घट जाता है। कोरी शब्द झंकृति कानों को अधिक संगीत न दे पाए हृदय को रस में में नहीं डूबो सकती। जिस शब्दालंकार के अर्थ का गौरव बना रहता है, वही शब्दालंकार काव्य की शोभा बढ़ा सकते हैं। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों "बिहारी ने अर्थ की रमणीयता का ध्यान बराबर रखा है। इसलिए उनके शब्दालंकार रसोद्रेक के सहायक होकर ही आते हैं। परवर्ती काल के कम कवियों में यह गुण पाया जाता है।" कुछ उदाहरण लीजिए–

**अनुप्रास :** वर्ण सौम्य को 'अनुप्रास' कहते हैं। वर्ण–सौन्दर्य में ध्वनि–सौन्दर्य भी देखिए –

**(i) "रनित भृंग घंटावली, झरति दान मधु नीरू। मंद मंद आवतु चल्यौ, कुंजरू–कुंज–समीरू"।।**

इस दोहे में मुख्य अलंकार अनुप्रास है। किन्तु शब्द माधुर्य, संगीत लहरी और उपयुक्त पदावली ने मस्त हाथी का ध्वनिचित्र उपस्थित कर दिया है। मंद समीर का अर्थ भी अधिक मूर्त हो गया है। इसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द का अद्भुत समन्वय हो गया है –

**(ii) "रस सिंगार–मंजनु किए, कंचन मंजनु दैन। अंजनु–रंजन हूँ बिना, खंजनु–गंजनु नैन"।।**

विशुद्ध अनुप्रास की दृष्टि से उक्त दोहा भी सुन्दर बन पडा है। नेत्र का वस्तुगत वर्णन सरल और स्पष्ट है। अर्थबोध में कहीं बाधा नहीं पड़ती। पदलालित्य दर्शनीय है।

(iii) शब्द–रमणीयता के साथ–साथ जहाँ अर्थ–रमणीयता का भी संतुलन रहता है, वह काव्य उत्तम कहा जाता है। निम्नलिखित दोहे में बिहारी ने अनुप्रास का विलास दिखाते हुए उदास–नायिका का विरह–विकास भी व्यक्त किया है –

**"नभ लाली चाली निसा, चटकाली धुनि कीन। रति पाती आली अनत, आए बनमाली न"।।**

इस दोहे में छः बार 'आली' की आवृति होते हुए भी नायिका की निराशा, आशंका, ईर्ष्या, प्रतीक्षा, वेदना आदि कितने ही भावों की अनुभूति कवि ने युगपत् करा दी है। शब्द और अर्थ का यह समन्वय बिहारी की आश्चर्यजनक काव्यकुशलता है।

वस्तुतः 'बिहारी–सतसई' में अनुप्रास की छटा प्रायः सर्वत्र देखने को मिलती है। कदाचित ही कोई दोहा ऐसा बचा हो, जिसमें बिहारी ने अनुप्रास की थोड़ी बहुत झलक न दिखलाई हो। अनुप्रास के प्रति इतना मोह होते हुए भी अर्थ क्लिष्टता या अर्थ हीनता का दोष कहीं नहीं आने पाया, जिसकी सम्भावना प्रायः और सर्वत्र रहती है।

(iv) अनुप्रास का एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है, जिसमें शब्द–सौन्दर्य और अर्थ–सौन्दर्य का सुन्दर संगम तो हुआ ही है, कवि ने महाप्राण जैसे उपयुक्त वर्णों की आवृति में भी आशातीत सफलता प्राप्त की है और सशक्त तथा उपयुक्त पदावली ने दृश्य को नाटकीय ढंग से मूर्तिमान और भासमान बना दिया है–

(v) **"सटपटाति सैं ससिमुखी, मुख घूंघट–यदु ढांकि। पावक–सर सी झमकि कै, गति झरोखा झांकि"।।**

झरोखा में से क्षणिक झलक दिखाने वाली यह झाँकी कितनी मनोहर है। इसी प्रकार महाप्राण वर्णों की सहायता से गर्म तवे पर पड़ी बूँद का ध्वनिचित्र भी भावचित्र के अन्तर्गत अवलोकन कीजिए–

(vi) **"पलनु प्रगटि बरुनीनि बढि, नहीं कपोल ठहरात। अंसुवा परि छतिया छिनकु, घनघनाइ छिपि जाता"।।**

यहाँ छकार की आवृति ने अर्थ को ध्वनि दे दी है।

**यमक** : समान आकार वाले भिन्नार्थक या निरर्थक शब्दों की आवृति को 'यमक' कहते हैं। अनुप्रास की अपेक्षा यमक–अलंकार योजना में बिहारी को कुछ कम सफलता मिली है। अधिकतर केवल शब्दालंकार ही देखने को मिलता है, अर्थ गौण तथा प्रभावहीन हो गया है। जैसे –

(i) **"तो पर वारौं उरबसी, सुनि राधिके सुजान। तू मोहन के उरबसी, ह्वै उरबसी समान"।।**

इसमें 'उर्वशी' शब्द की वृथा आवृति के अर्थ–सौन्दर्य कुछ भी नहीं। अलंकार–शास्त्र की दृष्टि से भी तीन पदों में 'यमक' की योजना है। पर दूसरे चरण में उसका अभाव दोषपूर्ण है। इसी प्रकार –

(ii) **"पलसो हैं पगि पीक रंग, छल सोहैं सब वैन। बल सोहैं कल कीजियत, ए अलसौहैं नैन"।।**

इसमें 'लसौ है' निरर्थक शब्द का यमक है, जो रूप तथा भाव को प्रभावशाली बनाने में सहायक सिद्ध नहीं हुआ।

(iii) **"बर जीते सर मैंन के, ऐसे देखे मैं न। हरनी के नैनान तैं, हरि नीके ये नैन"।।**

इस दोहे में यद्यपि 'व्यतिरेक' अलंकार गौण रूप से परिलक्षित है कि हरिणी के नयन तो शिकारी के तीर का निशाना बन सकते हैं, परन्तु नायिका के नयनों ने तो कामदेव के पंचबाणों को भी जीत लिया है। फिर भी मुख्य अलंकार यहाँ 'यमक' ही है और 'मैन' तथा 'नीके' शब्दों की आवृति ही काव्य चमत्कार का प्रदर्शन करती है।

इस प्रकार जहाँ कवि की दृष्टि यमक को साधन बनाकर उक्ति–चमत्कार को महत्व देती है। वहाँ अवश्य उसे सफलता मिली है। उदाहरण के लिए बिहारी की प्रसिद्ध सूक्ति देखिए –

(iv) **"कनक कनक तैं सौ गुनौ, मादकता अधिकाय। उहि खाए बौराए जग, इहिं पाए बौराए"।।**

इसी प्रकार –

(v) **"जब जब वे सुधि कीजियै, तब–तब सब सुधि जाहि। आँखिनु आँखि लगी रहैं, आँखै लागति नाँहि"।।**

पहले दोहे में 'काव्यलिंग' तथा दूसरे में विरोधाभास की संसृष्टि में शब्दालंकार में भी अर्थ–चमत्कार भर दिया है। अनुप्रास के पश्चात् शब्दालंकारों में 'यमक' ही बिहारी का सर्वाधिक प्रिय अलंकार है।

'यमक' का एक और सुन्दर तथा भावपूर्ण उदाहरण है।

(vi) **"लाज गहौ बेकाज कत, छेरि रहे घर जाहि। गोरसु चाहत फिरत हौ, गोरस चाहत नाहि"।।**

**शब्द–श्लेष** : 'श्लेष' में अनेकार्थक शब्दों का प्रयोग होता है। 'श्लेष' की गणना 'उभयालंकार' में की जाती है, क्योंकि 'श्लेष' शब्द में भी होता है और 'अर्थ' में भाव। शब्दगत 'श्लेष' की योजना में प्रायः भाव निष्प्रभाव होकर रह जाता है। बिहारी को भी जहाँ कही सायास और जानबूझकर शब्दों का तमाशा दिखाने की धुन सवार हुई है, वहाँ गुड़–गोबर बन गया है, परन्तु जहाँ श्लेष अर्थ–बोध तथा भाव–सौन्दर्य का वाहक बन कर आया है, वहाँ 'शब्दश्लेष' भी खूब चमका है। दोनों प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत हैं –

(i) **"अजौं तर्‌यौना ही रह्यौ, श्रुति सेवन इक अंग। नाक–वास बेसरि लह्यौ, बसि मुकतनु कै संग"।।**

इसमें 'तरयौना' अर्थात् कान के भूषण का सौन्दर्य बिल्कुल पीछे चला गया है और मोक्ष, सत्संगति आदि की चर्चा भर आई है। शिल्प की दृष्टि से इसे अवश्य सफलता का नाम दिया जा सकता है, किन्तु अलंकार के मूल प्रयोजन की दृष्टि से ऐसे मिथ्या शब्दालंकार से काव्यार्थ की सिद्धि नहीं होती। इसी प्रकार राधा और कृष्ण का गाय को बहिन तथा बैल को भाई बनाने की कल्पना भी अच्छी नहीं कही जा सकती। परन्तु जहाँ अर्थ को चमत्कारयुक्त बनाने में बिहारी ने 'शब्द–श्लेष' की सहायता ली है, वहाँ उन्हें पूरी सफलता प्राप्त हुई है। जैसे –

(ii) **"ए री यह तेरी दई, क्यौं हूँ प्रकृति न जाइ। नेह भरै हिय राखिए, तउ रखियै लखाइ"।।**

(iii) **"मोहूँ दीजै मोषू ज्यौं, अनेक अघमनु दियौ। जौ बांधै ही तोषू, तो बांधौ अपनै गुननु"।।**

पहले दोहे में 'विरोधाभास' के द्वारा 'नेह' शब्द तथा दूसरे दोहे में 'भक्ति भावना' की व्यंजना में 'गुननु' शब्द का श्लेष अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध हुआ। इस प्रकार कुछ गिनी–चुनी उक्तियों को छोड़कर बिहारी के अलंकार सर्वत्र भाव को तीव्रता प्रदान करते हैं।

**(ख) अर्थालंकार** : शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का विशेष महत्व है। शब्दगत सौन्दर्य अधिकतर भाषा के प्रसाधन है, परन्तु अर्थ–सौन्दर्य तो काव्यरस से सीधा संबंध रखता है। अग्निपुराण में तो सरस्वती को अर्थालंकारों से हीना विधवा तक कहा गया है।

'बिहारी सतसई' में भी अर्थालंकारों की बहार देखने योग्य है। यद्यपि फारसी–काव्य–शैली के प्रभाव के कारण बिहारी ने अतिश्योक्ति अथवा अत्युक्ति अलंकार को बहुत दूर तक घसीटा है एवं ऊहोक्तियों के कारण आलोचकों का निशाना भी बनना पड़ा है। तथापि सामान्यतः "उन्होंने अलंकारों को प्रायः साधन रूप में ही स्वीकार किया है और अप्रस्तुत विधान करते समय चमत्कार की अपेक्षा रूप, गुण भाव, एवं वस्तु का ही अधिक ध्यान रखा है।" कुछ उदाहरण लीजिए

**उपमा** : अर्थालंकार कई प्रकार के होते हैं–साम्यमूलक, वैषम्यमूलक श्रृंखलामूलक, न्याय– मूलक आदि। उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा आदि 'साम्यमूलक' अलंकार माने जाते हैं, क्योंकि उनका आधार 'साम्य' या 'समता होता है। जब गुण अथवा धर्म की समता के कारण जब उपमेय और उपमान के साथ सामान्य धर्म और तुलनावाचक शब्द का भी स्पष्ट उल्लेख हो, तो वह 'पूर्णोपमा' कहलाती है, यदि इनमें से किसी का अभाव हो, तो उसे 'लुप्तोपमा' कहते हैं।

कालिदास के समान बिहारी का भी 'उपमा' प्रिय अलंकार है। इसका प्रयोग 'सतसई' में सैंकड़ों बार हुआ है। नमूना देखिए –

(i) **"हरि–छवि–जल तैं परे, तब तैं घिनु बिछुरैन। भरत, ढरत, बूडत, तरत, रहत घरी लौं नैन"।।**

इसमें नयन (उपमेय), घड़ी (उपमान), भरत ढरत (सामान्य धर्म) तथा 'लौं' (वाचक शब्द) के उल्लेख के कारण पूर्णोपमा अलंकार है। इसी प्रकार –

**"जल चादर के दीप लौं, जगमगाति तन–ज्योति।"** तथा **"नारि सलोनि सांवरी, नागिन लौं डसि जाइ।"**

आदि में भी 'पूर्णोपमा' के सारे उपादान विद्यमान है।

(ii) **'लुप्तोपमा' का उदाहरण देखिए–**

**"चढी अटा निरखति घटा, बिज्जु छटा–सी नारि"।।**

इसमें नारी (उपमेय) बिजली की छटा (उपमान) तथा 'सी' (वाचक शब्द) का तो स्पष्ट उल्लेख है, परन्तु सामान्य धर्म (गौर–वर्ण सुन्दर) लुप्त है। रूपवर्णन संबंधी दोहों में विशेष रूप से उपमा अलंकार का सौन्दर्य दर्शनीय है।

**रूपक** : प्रस्तुत उपमेय पर अप्रस्तुत उपमान के अभिन्न आरोप को 'रूपक' कहते हैं। उपमा के समान रूपक का प्रयोग भी बिहारी ने बहुत किया है। दोहे जैसे छोटे छन्द में सांग रूपक का निर्वाह सचमुच आश्चर्यजनक है, परन्तु भाषा की समास–शक्ति के आधार पर बिहारी ने अनेक सांग–रूपक भी रचे हैं। कुछ उदाहरण देखिए –

(i) **"खौरि पनिच भृकुटि धनुष, बधिकु समरु, तजि कानि। हनतु तरुन मृग, तिलक सर, सुरकभाल भरि तानि"।।**

इसमें धनुष का सभी अंगों सहित रूपक कवि की निपुणता का प्रमाण है। शरत् सुन्दरी की छवि भी निहारिए –

(ii) **"अरुन सरोरुह करचन, दृग खंजन मुखचन्द।समय आइ सुन्दरि शरद, काहि न करत अनन्द"।।**

**उत्प्रेक्षा** : प्रस्तुत उपमेय में अप्रस्तुत उपमान की सम्भावना को उत्प्रेक्षा कहते हैं। 'बिहारी–सतसई' में इस साम्यमूलक अलंकार का प्रयोग बहुत ही अधिक किया गया है। बिहारी की अप्रस्तुत–योजना की दृष्टि से भी यह अलंकार विशेष उल्लेखनीय है। 'रूपवर्णन' में से एक उदाहरण प्रस्तुत है–

(i) **"चमचमात च ंचल नयन, बिच घुंघट पर झीन। मानहु सुरसरिता विमल जल, उछरत जग मीन"।।**

श्वेत झीने वस्त्र में चंचल झिलमिलाते नेत्रों के विषय में गंगाजल में उछलती हुई दो मछलियों की कल्पना से दृश्य मूर्त होकर सामने आ जाता है। इसी प्रकार नीले आंचल में छिपे मुख का बिम्ब यमुना जल में लहराते चन्द्र की मधुर कल्पना से स्पष्ट उभर आता है। एक दूसरी उत्प्रेक्षा प्रस्तुत है –

(ii) **"लसतु सेत सारी ढक्यौ, तरल तरयौना कान। पर्‌यौ मनो सुरसरि सलिल, रवि प्रतिबिम्ब विहान"।।**

कितनी सुन्दर और रंगीन कवि कल्पना है। रूप और रंग का कितना भव्य मिश्रण है। बिहारी का रूप–वर्णन इन अलंकारों से कितना जगमगा उठा है, यह सिद्ध करता है कि बिहारी ने अलंकार प्रयोग से कितनी सतर्कता एवं सूझबूझ से काम लिया है।

परन्तु जहाँ शास्त्रज्ञान का प्रदर्शन प्रधान लक्ष बन गया है, वहाँ बिहारी जैसे रससिद्ध कवि की बुरी तरह मात खा गए हैं। अत्यन्त रसग्राही, मर्मस्पर्शी, चित्रोपम, रमणीय उत्प्रेक्षाओं के जादूगर कवि की निम्नलिखित उत्प्रेक्षा कितनी प्रभावशून्य और पंगु बन गई है, यह तथ्य व्याख्या का ऋणी नहीं है –

(iii) **"भाल लाल बेंदी ललन, आखत रहे विराजि।इन्दुसला कुज में बसी, मनौ राहु भय भाजि"।।**

यहाँ मस्तक में बिन्दी का अक्षत सहित रूप ज्योतिषशास्त्र के निर्जीव उपमाने से उभर ही नहीं होता, शोभा–वृद्धि की बात तो दूर रही। ऐसी अलंकार–योजना या अप्रस्तुत विधान बिम्ब–ग्रहण में भी समर्थ नहीं होता। परन्तु परम्परा से मुक्त होकर बिहारी ने जब स्वतंत्र और मौलिक प्रतिभा का उपयोग किया है, वहाँ अलंकार सचमुच ही सरस्वती के कंठहार बन गए है। एक ऐसी ही सुन्दर उत्प्रेक्षा का उदाहरण लीजिए –

(iv) **"सोहत ओढै पीत पटु, स्याम सलौने गात। मनो नील मनि सैल पर, आतप पर्‌यौ प्रभात"।।**

कवि–कल्पित होते हुए भी यह उत्प्रेक्षा कितनी सहज संभाव्य लगती है।

## प्रतिवस्तुपमा

जब प्रस्तुत (उपमेय) तथा अप्रस्तुत 'उपमान' के सादृश्य का वर्णन करते हुए एक ही सामान्य धर्म को भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा सूचित किया जाता है, वहाँ 'प्रतिवस्तुपमा' अलंकार होता है। उदाहरण लीजिए–

**"चटक न छांडत घटत हूँ, सज्जन नेह गंभीरु। फीक्यो परै न बरु घटै, रंग्यौ चोल रंग चीरु"।।**

इस दोहे में 'चटक न छोड़ना' तथा 'फीका न पड़ना' वास्तव में एक साधारण धर्म है जिसे दो भिन्न शब्दों द्वारा व्यक्त किया है।

## दीपक

जब कुछ प्रस्तुत तथा कुछ अप्रस्तुत पदार्थों का एक ही साधारण धर्म के साथ वर्णन हो, वहाँ 'दीपक' अलंकार होता है। बिहारी के निम्नलिखित दोहे में तंत्रीनाद, कवित रस और रतिरंग जैसे अप्रस्तुत एवं प्रस्तुत विषयों का सामान्य धर्म दूसरी पंक्ति में एक समान प्रदर्शित किया गया है –

**"तंत्री नाद कवित रस, सरस राग रति–रंग। अनबूड़े बुड़े तरे, जो बूड़े सब अंग"।।**

## अपह्नुति

उपमेय की शोभा का अतिशय वर्णन के उद्देश्य से जब उसका निषेध करके उसमें अप्रस्तुत उपमान का आरोप कर दिया जाये, तो उसे 'अपह्नुति' कहते हैं। जैसे –

**"जोन्ह नहीं, यह तुम वहै, किए जु जगत निकेतु। होत उदै ससि कै भयौ, मानहु ससहरि सेतु"।।**

अथवा –

**"धुरवा होहि न अलि, उठै धुवां धरनि चहुँ कोद। जारत आवत जगत कौ, पावस प्रथम पयोद"।।**

दोनों दोहे कोरी कवि कल्पना के कारण चमत्कार–विधायक तो कहे जा सकते हैं, परन्तु बिहारी की भावपूर्ण अर्थालंकार योजना के सफल उदाहरण नहीं बन सकते।

## असंगति

अलंकार जब कवि के मूलभाव को अधिक प्रभावशाली और रमणीय बनाकर चमत्कार दिखाता है, वही उसकी सार्थकता है। ऐसे कुछ उदाहरण विरोधमूलक अलंकारों में प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं। 'असंगति' अलंकार का निम्न दोहा दृष्टव्य है

**"दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति। परत गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति"।।**

कारण और कार्य के भिन्न–भिन्न स्थानों में होने से 'असंगति' अलंकार होता है। उक्त दोहे में उलझता (कारण) आँख में विद्यमान है, परन्तु टूटना (कार्य) परिवार में दिखाया गयो है। परन्तु इस 'असंगति' को बिहारी ने केवल कथन शैली की विचित्रता तक सीमित नहीं रखा, अपितु उसके द्वारा प्रेम की यथार्थ परिस्थितियों का चमत्कारक ढंग से वर्णन कर दिया है जिससे काव्यार्थ रमणीय होकर रस्वादन का विषय हो गया है। बिहारी के अर्थालंकारों की यही उपलब्धि है। असंगति की एक और झलक देखिए –

**"लगा लगी लोइन करैं, नाहक मनु बंधि जांहि"।**

## विरोधाभास

विरोधाभास में प्रत्यक्ष रूप से विरोध प्रतीत होता है, परन्तु वस्तुतः उसमें विरोध नहीं होता। बिहारी ने इस अलंकार द्वारा बड़ी ही मार्मिक ऊक्तियाँ कही हैं। केवल दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं –

(i) **"या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोई। ज्यौं–ज्यौं बूड़ै स्याम–रंग, त्यौं–त्यौं उज्जवल होइ"।।**

(ii) **"या के मन और कछू, लागी बिरह बलाइ। पजरै नीर गुलाब कै, पिय की बात बुझाइ"।।**

श्लेष अलंकार की सहायता से दोनों दोहों में बिहारी ने अर्थ–चमत्कार पैदा कर दिया है। 'श्याम' और 'बात' उस शब्द में शब्द–श्लेष तथा 'उज्जवल' तथा 'पजरै' जैसे शब्दों में 'अर्थ–श्लेष' ने कवि के भाव–सौन्दर्य को बढ़ाने में पूर्ण सहयोग दिया है। इस प्रकार का शब्दालंकार और अर्थालंकार का अद्‌भुत सहयोग अत्यन्त दुर्लभ है।

## अप्रस्तुत–प्रशंसा

इसे 'अन्योक्ति' अलंकार भी कहते हैं। इसमें अप्रस्तुत कथन द्वारा प्रस्तुत विषय का बोध कराया जाता है। सूक्ति काव्य में बिहारी ने इस अलंकार का पर्याप्त प्रयोग किया है। 'सतसई' का आधारस्वरूप दोहा अन्योक्ति ही था। इसी प्रकार औरंगजेब के संकेत पर महाराजा जयसिंह को शिवाजी के साथ लड़ने को उद्यत देखकर बिहारी का लिखा हुआ निम्नलिखित मर्मस्पर्शी दोहा भी 'अप्रस्तुत प्रशंसा' अलंकार का उदाहरण है –

(i) **"स्वारथु, सुकृत न, श्रम वृथा, देखि विहग विचारि। बाज पराए पानि परि, तू, पंछीनि न मारि"।।**

एक अन्य 'अन्योक्ति' प्रस्तुत है –

(ii) **"करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि। रे गन्धी मति अन्ध तू, अतर दिखावत काहि"।।**

## समासोक्ति

श्लिष्ट लक्षणों के द्वारा जब प्रस्तुत से अप्रस्तुत का संकेत मिल जाए, वहाँ 'समासोक्ति' अलंकार होता है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत का निर्णय प्रसंग से किया जाता है। निम्नलिखित दोहे में भ्रमर तथा कुसुम का संयुक्त प्रेम–प्रसंग प्रस्तुत है, उसे कामलोगी सुन्दर नायिका के प्रति नायक के प्रणय–व्यवहार वाला अप्रस्तुत अर्थ भी स्पष्ट ध्वनित हो जाता है–

**"सरस कुसुम मंडरातु अलि, न झुकि झपटि लपटातु। दरसत अति सुकारु तनु, परसत मन न पत्यातु"।।**

## विभावना

कारण के न रहने पर भी कार्य के होने पर 'विभावना' अलंकार होता है। इसका एक अतीव सुन्दर और मनोवैज्ञानिक उदाहरण बिहारी ने विप्रलम्भ शृंगार में दिया है –

**"मृग नैनी दृग की फरक, उर उछाह, तन–फूल। बिन ही पिया–आगम, उमंगि पलटन लगी दुकुल"।।**

कितनी स्वाभाविक स्थिति है। बाँई आँख के फड़कते ही प्रिय–आगमन की सूचना समझ मुग्धा नायिका प्रिय के बिना आए पहले ही उसके स्वागत में साज सजाने लगी। ऐसी हृदयग्राही अनुभूतियों के प्रकाशन में जब अलंकार सहायक होते हैं, तभी वे *रसोपकारक कहलाते हैं।*

## विशेषोक्ति

कारण के विद्यमान रहने पर भी जब कार्य न हों, वहाँ 'विशेषोक्ति' अलंकार माना जाता है। विरहाग्नि की विचित्र वेदना का वर्णन बिहारी ने इस अलंकार की सहायता से किया है –

**"लाल तुम्हारे विरह की, अगनि अनूप अपार। सरसै बरसै नीर हूँ, झरहूँ मिटै न झर"।।**

परन्तु परम्परागत विरह की यह अभिव्यक्ति विभावना जैसा भाव–सौन्दर्य नहीं उत्पन्न कर सकी।

## व्यतिरेक

उपमान की अपेक्षा उपमेय को अधिक प्रभावशाली सिद्ध करने में जहाँ कारण भी साथ प्रस्तुत किया जाए, उसे 'व्यतिरेक' अलंकार कहते हैं। रूप की मदिरा का अद्भुत प्रभाव इस अलंकार के ब्याज से कवि ने बड़े ही चमत्कारी ढंग से वर्णित किया है –

**"डर न टरै, नींद न परै, हरै न काल विपाकु। घिनकु छाकि उछकै न फिरि, खरी विषमु छवि छाकु"।।**

साधारण मदिरा का प्रभाव डर से, नींद आने से अथवा समय गुजारने से कम हो जाता है, जिसे स्थिर रखने के लिए बार–बार पीने की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु रूप की मदिरा तो तनिक–सी एक बार पी लेने पर किसी भी प्रकार से नहीं उतरती। यहीं उसकी असाधारण विशेषता है।

## काव्यलिंग

समर्थन करने योग्य किसी बात को युक्तियुक्त शैली से प्रमाणित कर देने को 'काव्यलिंग' अलंकार कहते हैं। 'कनक–कनक ते सौगुनी' वाला बिहारी का प्रसिद्ध दोहा इसी अलंकार का उदाहरण है। जिसमें सोने में धतूरे से भी अधिक नशा होने की बात का समर्थन यह तर्क देकर किया गया है कि धतूर को खाने के पश्चात् ही नशा चढ़ता है, परन्तु सोने का प्राप्त करते ही मनुष्य नशे में चूर हो जाता है।

इसी प्रकार 'बिहारी–सतसई' से अनेक अलंकारों के सुन्दर उदाहरण ढूँढ़े जा सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि बिहारी ने भी 'सतसई' में परम्परा को निभाने का अवश्य प्रयत्न किया है। भले ही बिहारी का लक्ष्य केवल रीति–ग्रन्थों में आए अलंकारों का उदाहरण देना नहीं था, फिर भी उस पर काव्य शास्त्रीय– परम्परा का प्रभाव अवश्य पड़ा था। यही कारण है कि 'सतसई' में 'नायिका–भेद' और 'अलंकारों' के प्रायः सभी उदाहरण ढूँढ लेना कुछ कठिन नहीं।

परन्तु बिहारी एक प्रतिभाशाली महाकवि थे। उनकी मौलिक कल्पना शक्ति बड़ी अद्भुत थी। जहाँ उन्होंने परम्परा की लीक का अन्धानुकरण किया। वहाँ डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'परम्परा के भार ने उनकी भाषा को उनके द्वारा कल्पित उस नायिका की भाँति ही 'सुधो पाँय' पर सकने के अयोग्य बना दिया। जो अपनी शोभा के भार से ही लड़खड़ा उठी थी।' परन्तु 'जहाँ उन्हें परम्परा के भीतर ही उन्मुक्त क्षेत्र मिला, उन्होंने अपनी काव्य–मर्मज्ञता का अच्छा परिचय दिया।

एक और बिहारी ने अनुप्रास और यमक जैसे विशुद्ध शब्दालंकारों उपयुक्त रीति से प्रयोग करके काव्यार्थ की वृद्धि में चार चाँद लगा दिए हैं, जो साधारणतः रीति–काव्य की दुर्लभ उपलब्धि कही जा सकती है, तो दूसरी और बिहारी ने 'मुद्रा' जैसे अर्थालंकार के उदाहरण में विभिन्न फूलों की नामावली देकर काव्य की आत्मा को ढाँप दिया है–

**"कत लपटइयतु मो गरैं, सो न जुही निसि सैन। जिहिं चंपक–बरनी किए, गुल्लाला–रंग नैन"।।**

इस दोहे में मोगरा, सोनजुही, चंपक और गुल्लाला ही नहीं, लपटैया (इश्कपेंचा), निसिसैन (कमल), बरनी (वर्षा) और नैन (पंचनयना) जैसे अन्य फूलों की वंशावली का पता भी दे दिया है।

## अप्रस्तुत–विधान

अर्थ या भाव को रमणीय तथा प्रभावशाली बनाने के लिए अलंकार योजना के अन्तर्गत कवि अप्रस्तुत–विधान करते आए हैं। मुख्य या अभीष्ट विषय–वस्तु को प्रस्तुत तथा उसका अतिशय वर्णन करने के लिए उपमान विषय को अप्रस्तुत कहा जाता है। अप्रस्तुत का विधान प्रस्तुत अर्थ के रूप, गुण तथा प्रभाव को बढ़ाने के निमित्त होता है। ऐसा प्रायः साम्यमूलक अलंकारों की सहायता से किया जाता है। बिहारी के अप्रस्तुत–विधान में उपमा, रूपक तथा सबसे अधिक उत्प्रेक्षा अलंकार का उपयोग हुआ है। समोसेक्ति तथा अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार भी इस विषय में उल्लेखनीय है

उपमा तथा रूपक अलंकार में प्रायः एक प्रस्तुत के लिए एक अप्रस्तुत का विधान किया जाता है। ऐसा करते समय प्रस्तुत और अप्रस्तुत में रूप–साम्य अथवा धर्म–साम्य का ध्यान रहता है। जिस अप्रस्तुत में दोनों गुण विद्यमान होंगे वह काव्यार्थ का अधिक साधक सिद्ध होगा। बिम्ब ग्रहण में भी उसे अधिक सफलता मिलेगी। पूर्णोपमा तथा रूपक के उदाहरणों से उक्त काव्य प्रमाणित हो जाता है। मालोपमा तथा साँग रूपक के उदाहरणों में अप्रस्तुत योजना एकांकी न होकर संपूर्ण परिस्थिति की परिचायक भी होती है। परन्तु उत्प्रेक्षा आदि अन्य अलंकारों में संपूर्ण परिस्थिति का चित्र–अंकित करने के लिए अप्रस्तुत विधान की अधिक सुविधा रहती है। बिहारी ने रूप–सादृश्य के लिए प्रायः उपमा का तथा धर्म–सादृश्य के लिए उत्प्रेक्षा अलंकार का ही अधिक प्रयोग हुआ है।

उत्प्रेक्षा तथा अन्य अलंकारों में अप्रस्तुत की योजना करते समय उनका सहज–संभाव्य होना बहुत आवश्यक है। कोरे कल्पित अप्रस्तुतों में भी अकल्पनीय कल्पना अर्थबोध में ही नहीं, बिम्ब ग्रहण में बाधक बनती है। बिहारी ने प्राय ऐसे अप्रस्तुत चुने हैं, जिनकी संभावना अथवा कल्पना सहज में की जाती है तथा उसमें प्रस्तुत की रमणीयता और प्रभाव को बढ़ाने की पूर्ण क्षमता पाई जाती है। अलंकारों के उदाहरणों में पूर्णोपमा, उत्प्रेक्षा आदि में सम्बन्धित दोहे इस विषय में उद्धृत किए जा सकते हैं। जैसे– 'पूर्णोपमा' में प्रिय के रूप अनवरत जुड़े रहने वाले नयनों के लिए जल–घड़ी का उपमान नया होते हुए भी सार्थक और समर्थ है। इसी प्रकार 'जल चादर के दीप' जैसे अप्रस्तुत द्वारा बिहारी ने पतली और झीनी साड़ी में से झिलमिलाते हुए नायिका के सुनहरे शरीर की कांति को बड़ी ही सजीवता के साथ दृश्य बना दिया है। 'पावक झर' की उपमा भी बड़ी सुहानी है, जिसमें रूप और गति दोनों की व्यंजना होती हैं।

इसी प्रकार उत्प्रेक्षा के उदाहरणों में सर्वांगीण–सौन्दर्य का दृश्य अधिक उभरा है। व्यापक आयाम के कारण बिहारी ने नायिका की दीप्ति और अंग लावव्य के लिए बड़े ही सुन्दर अप्रस्तुत जुटाए हैं। मुख और नेत्रों के लिए चन्द्र तथा मछलियों की उपमा तो परम्परागत हैं, किन्तु श्वेत साड़ी के पारदर्शक वस्त्र में से दिखाई देने वाले चंचल 'तरयौना' का समन्वित रूप नायिका के शारीरिक सौन्दर्य की पृष्ठभूमि से मिलकर गंगाजल में प्रतिफलित प्रातःकालीन सूर्य के प्रतिबिम्ब के अप्रस्तुत द्वारा निखरकर मन को आकर्षित करता है।

बिहारी ने अप्रस्तुत–विधान में बड़ी सावधानी से काम लिया है। उन्होंने अपने प्रकृति से तो लिए ही हैं, लोक व्यवहार तथा पौराणिक कथाओं एवं कभी कभी ज्योतिष आदि शास्त्रों से भी प्राप्त किए हैं। परन्तु उनकी योजना में जहाँ बिहारी ने पाण्डित्य अथवा पांडित्य प्रदर्शन या केवल चमत्कार की प्रधानता दे दी है। वहाँ उन्हें बुरी तरह मुंह की खानी पड़ी है किन्तु जहाँ उन्होंने प्रस्तुत विषय की रमणीयता को उभारना चाहा है, वहाँ उनके अप्रस्तुत विधान में आशातीत प्रभाव पैदा हो गया है बिहारी के अप्रस्तुतों का चुनाव कितना उपयुक्त है, इसके अनेक उदाहरण तो अलंकार–योजना में दिए जा चुके हैं, कुछ अन्य उदाहरण भी देखिए –

वयः संधि के ताफ्ता (धूप–छाहीं) कपड़े के द्वारा शैशव और यौवन के संयुक्त प्रभाव को बिहारी ने मूर्तिमान बना दिया है

**"छुटीन सिसुता की झलक, झलक्यौ जो बनु अंग। दीपती देह दुहून मिलि, विपति ताफ्ता रंग"।।**

इसी प्रकार अनेक सुन्दर सखियों में बैठी नायिका का विशिष्ट रूप बिहारी ने 'फानूस' अप्रस्तुत द्वारा पृथक दिखलाया है

**"बाल छबीली वियन मैं, बैठी आप छिपाइ। अरगट ही फानूस सी, परगट होत लखाइ"।।**

उक्त दोनों अप्रस्तुत बिहारी की मौलिक कल्पना तथा सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति के जीते जागते उदाहरण हैं। नारी के लिए 'दीप शिखा' तथा 'छाया गृहिणी' जैसे अप्रस्तुत भी अपने मूल अर्थ की व्यंजना में बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। 'दीपशिखा' का प्रयोग यद्यपि नया नहीं है, परन्तु देह की कांति के लिए बड़ा ही सटीक और उपयुक्त लगता है। इसी प्रकार रामायणकालीन राक्षसों

के आधार पर चुना हुआ 'छाया–ग्राहिणी' का अप्रस्तुत विधान भी वैराग्य–भावना में नारी के मोहक और आकर्षक प्रभाव को बढ़ा– चढ़ाकर वर्णित करने के लिए बहुत ही उचित और सशक्त लगता है। बिहारी ने 'दूर्योधन' तथा 'पाँचाली' को भी अप्रस्तुत के रूप में चित्रित किया है, जो अर्थ कल्पना में चाहे सहायक हुए हों, किन्तु भाव को मूर्त तथा अधिक प्रभावशाली बनाने में समर्थ नहीं हो सके। वहाँ चमत्कार अधिक मुख्य हो गया है। परन्तु, काव्यशास्त्र में से लिया निम्नलिखित अप्रस्तुत अपने ढंग का सुन्दर और निराला उपमान है, जिसने नायिका के निरन्तर उदीयमान उरोजों को उभार के रख दिया है –

**"दुरत न कुच बिच कंचुकी, चुपरी सारी सेत। कवि आंकनु के अर्थ लौं, प्रगट दिखाई देत"।।**

ऐसे सटीक और सार्थक प्रस्तुत बिहारी के काव्य–सौन्दर्य की अक्षय–निधि हैं। संकोच और उत्सुकता के समान आकर्ष और प्रभाव को नष्ट करने के लिए 'फिरकी' या 'नट के बटा' की कल्पना भी बड़ी युक्ति और अर्थग्राहक लगती है। परन्तु कोरे चमत्कार अथवा केशवदास के समान थोड़े पांडित्य प्रदर्शन की लालसा में बिहारी ने जो अप्रस्तुत ज्योतिष, वैद्यक अथवा वेदान्त आदि से लिए हैं, उनसे रूप–सौन्दर्य की वृद्धि, नहीं आएगा की तो बात ही क्या, उलटे मूलार्थ की भी हानि हुई है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दोहा देखिए –

**"मंगल–बिनु सुरंग, मुख ससि, केसरि आड़ गुरु। इक नारी लहि संगु, रसमय किय॰ लोचन जगत"।।**

यहाँ बिन्दी और केसर के तिलक से सुशोभित नारी के मुखचन्द्र की सुन्दर कल्पना से सचमुच रसिकों के नेत्रों को रसमय किया जा सकता था, किन्तु बिहारी को ज्योतिष के आकाश से तारे तोड़ लाने की ऐसी सूझी, कि बेचारी धरती की नायिका का रूप दृष्टि से ओझल ही हो गया है। मंगल और बृहस्पति के अप्रस्तुत रंग–योजना के लिए उपमान पूर्णतया असमर्थ सिद्ध हुए।

इसी प्रकार नायिका की पतली कमर के लिए निराकार ब्रह्म की उपमा खोज लाना तो तमाशा बन गया है। इसमें कटि जैसे स्त्रीलिंग प्रस्तुत के लिए ब्रह्म जैसा पुल्लिंग अप्रस्तुत विधान अलंकारगत दोष भी माना जाता है। ऐसी चमत्कार विधायिनी योजना से यही सिद्ध होता है कि "हिन्दी साहित्य शास्त्र एक और संस्कृत की पुरानी परम्परा से निस्यूत हुआ है और दूसरी और फारसी की चमत्कारवादी प्रवृति का भी इस पर प्रभाव पड़ा।"

बिहारी के अप्रस्तुत–विधान से मूर्त तथा अमूर्त दोनों प्रकार के अप्रस्तुत प्रयुक्त हुए हैं। तरुणी–कूचों के लिए अमूर्त काव्यार्थ का तथा कमर के लिए 'निराकार ब्रह्म' का प्रयोग किया गया है। कहीं–कहीं अमूर्त प्रस्तुत करने के लिए मूर्त अप्रस्तुत का भी विधान मिलता है। जैसे अगोचर लज्जा के लिए लगाम का तथा दृष्टि के लिए रस्सी का प्रयोग किया गया है। कहीं–कहीं प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों ही अमूर्त हैं, जैसे –

**"चुनरी स्याम सतार नथ, मुँह ससि की उनहारि। नेह दवावत नींद लौं, निरखि निसा सी नारि"।।**

इस दोहे में स्नेह की उपमा नींद से दी गई है।

इस प्रकार बिहारी की अलंकार योजना अथवा अप्रस्तुत विधान में परम्परागत तथा ऊहोक्तियों के चमत्कार–प्रधान अप्रस्तुतों को छोड़ प्रायः सर्वत्र शब्द–अर्थ की रमणीयता का पूरा पूरा ध्यान रखा गया है। बिहारी के अलंकार उनकी कविता–कामिनी के सहज–सौन्दर्य का कहीं भी आवरण नहीं बनने पाए। रसोद्रेक तथा भावोद्रेक में उनसे सदा सहायता ही मिली है।

डॉ० हरवंशलाले शर्मा के शब्दों में 'बिहारी के चमत्कार और रसका जैसा समन्वय किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। शैली की दृष्टि से उन्हें रीतिकाल का कालिदास भी कहा जा सकता है।

# अध्याय – 5
# बिहारी की युगीन परिस्थितियाँ

बिहारी के जन्म के समय कैसी परिस्थितियाँ थीं? 'बिहारी सतसई' के आधार पर तर्क–संगत उत्तर दें।

साहित्य की महता की एक प्रमुख कसौटी यह होती है कि उसमें जीवन किस सीमा तक सिमट सका है अथवा यूँ कहें कि कवि कितनी सच्चाई और ईमानदारी के साथ अपने युगीन जीवन को व्यक्त करने में सफल हो सका है। इस सम्बन्ध में पहली बात तो यह है कि कवि भी पहले एक व्यक्ति होता है, बाद में कवि। इसका अर्थ यह है कि कवि जिस समाज और वातावरण के भीतर जन्म लेता है, बड़ा होता है–उस समाज और वातावरण से वह पूरी तरह प्रभावित होता है। निस्सदेह कतिपय महान कवि इससे भी एक पग आगे बढ़ जाते हैं और वे अपने युग की दिशा को ही नया बोध और नया स्वर प्रदान करते हैं इस पर भी इस बात से इन्कार नहीं किया सकता कि ऐसे महान और युग–प्रवर्तक कवि समाज से अछूते रह कर काव्य का सृजन नहीं करते। इस स्थिति का विश्लेषण करते हुए एक विद्वान आलोचक कहते हैं कि "यह सत्य है कि युग प्रवर्तक कवि समाज की धारा में न बहकर उसे अपनी इच्छा के अनुसार मोड़ लिया करते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वे समाज से वे प्रभावित ही नहीं होते अथवा उससे सम्पृक्त ही नहीं रहते, इसके विपरीत वे उस धारा का आयाम, गभीरता, गति आदि का पूरा–पूरा ज्ञान रखते हैं। अपनी शक्ति और साधन का निरीक्षण करते हैं और तब धीरे–धीरे धैर्य के साथ उस ओर अग्रसर होते हैं। यह बहुत बड़ी बात है, तभी तो तुलसी, सूर और भारतेन्दु विरले ही होते हैं।" कवि बिहारी की गणना निश्चय ही ऐसे युग प्रवर्तक कवियों में तो नहीं की जा सकती किन्तु उन कवियों का भी युगीन महत्व होता है जो अपने युग को पूरी ईमानदारी के साथ व्यक्त कर सकते हैं। और बिहारी की गणना ऐसे ही कवियों में की जा सकती है। रीतिकालीन साहित्य में बिहारी ऐसे एकमात्र कवि हैं जिन्होंने अपने युग की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का वर्णन पूरी निष्ठा और सच्चाई के साथ किया है। इस दृष्टि से बिहारी को तुलसी, सूर जैसे लोकनायक कवियों की श्रेणी में भले ही न रखा जा सके, तो भी वे इस दृष्टि से महाकवि कहलाने के अधिकारी अवश्य हैं कि उन्होंने अपने दोहों में अपने युग के भले बुरे सुन्दर–असुन्दर–सभी प्रकार के चित्रों को स्थान दिया है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में "जो कवि जीवन का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकता है। वह चाहे लोकनायक हो या न हो, साहित्य के क्षेत्र में नूतन पथ प्रशस्त करे या न करे, महान अवश्य होता है। बिहारी ऐसे ही महाकवि थे। वे अपने युग में व्याप्त थे और युग उनमें व्याप्त था।" बिहारी के युग की परिस्थितियों का अध्ययन तीन स्पष्ट दिशाओं में किया जा सकता है–राजनीतिक परिस्थितियों, सामाजिक परिस्थितियों तथा धार्मिक परिस्थितियों इस प्रकार के चित्रण को लोक–चित्रण अथवा युग–चित्रण भी कहा जा सकता है।

## (क) राजनीतिक परिस्थितियाँ

बिहारी के समय में भारतवर्ष पर पूरी तरह मुगल शासकों का अधिपत्य स्थापित हो चुका था। अधिकॉश हिन्दू राजाओं ने मुगल शासकों का आधिपत्य स्वीकार कर लिया था और इस कारण उनके समक्ष राष्ट्रीय उन्नति अथवा राष्ट्रीय भावना जैसा कोई भी प्रश्न उपस्थित नहीं था। राजपूतों के स्पष्टतः दो वर्ग बने हुए थे–एक तो वह वर्ग था जो मुगल शासकों को ही अपना शासक मानता था और उनके इंगितों पर नाचता था, दूसरा वर्ग वह था जो अब भी अपनी स्वतंत्र सत्ता बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील था। बिहारी की दृष्टि में मुगलशासकों के इंगितों पर नाचने वाले हिन्दू राजागण और स्वार्थी और निन्दनीय थे। एक दोहे में इसी भाव को बिहारी ने इस प्रकार व्यक्त किया है –

**"स्वारथु, सुकृतु, न श्रमु वृथा, देखि बिहंग विचारि। बाज, पराए पानि परि, तूं पच्छीनु न मारि"॥**

कवि ने अन्योक्ति के माध्यम से उन राजपूतों की भर्त्सना की है जोकि केवल दूसरों के हितों के लिए स्वय अपने ही भाइयों के प्राण लेने में संकोच नहीं करते। कवि ने ऐसे स्वार्थान्ध राजपूतों को सजग किया है और उन्हें उनके वास्तविक कर्तव्य का बोध कराया है। बिहारी के युग में दुहरी शासन–पद्धति थी। मुगलशासक दिल्ली में बैठकर इतने बडे भूभाग का शासन नहीं कर सकते थे। सारा देश छोटे–छोटे सूबों में बँटा हुआ था। इन सूबों का शासन सूबेदारों के हाथों में होता था। सूबेदारों की नियुक्ति सम्राट स्वयं किया करते थे। दूसरे शब्दों में ये सूबेदार मुगल–सम्राट के प्रतिनिधि होते थे और इनका कार्य अपने

सूबे का केवल प्रशासनिक नियंत्रण रखना ही नहीं था अपितु ये सूबे की सेना के सेनापति का कार्य भी करते थे। शासन और सेना– दोनों का प्रमुख होने के कारण सूबेदार में बहुत शक्ति निहित रहती थी। अतः स्वभावतः ऐसे महत्वपूर्ण पदों पर सम्राट अपने नितान्त विश्वासपात्र और निकट व्यक्तियों की नियुक्ति किया करता था। सामान्य जनता इस दुहरी शासन–पद्धति में पिसी जा रही थी। बिहारी ने जनता की इस दूर्दशा का वर्णन इस प्रकार किया है –

**"दुसल–दुराज प्रजानु कौं, क्यों न बड़े दुख–दुंदु। अधिक अंधेरौं जग करत, मिलि मावस रवि–चन्दु"।।**

समुचे राजनीतिक–तंत्र में घोर भ्रष्टाचार और अनियमतताओं का बोलबाला था। देश के सर्वोच्च पदों पर जो नियुक्तियाँ होती थी वे सम्राट की कृपा जहाँ साधारण व्यक्ति को सर्वोच्च पद पर बैठा सकती थी, वहाँ सम्राट का कोप सर्वोच्च पद पर आसीन अधिकारियों को क्षण भर में पद रहित भी कर सकता था। अतः जब कभी सम्राट देश के किसी नए भाग को अपने अधिकार में कर लेता था, तो वहाँ के महत्वपूर्ण पदों पर नितान्त विश्वासपात्र और निकट व्यक्तियों की नियुक्तियाँ की जाती थी। कवि बिहारी ने इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है –

**"अपने अंग के जानि कै, जोबन–नृपति प्रवीन। स्तन, मन, नैन, नितम्ब कौ, बड़ों इजाफा कीन"।।**

*उत्तराधिकार का प्रश्न तलवार के बल पर तय किया जाता था। वस्तुतः इतिहास के सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि* "मुसलमानी शासन का इतिहास बादशाह और सरदारों की शक्ति के संघर्ष का इतिहास है जिसमें बादशाह की व्यक्तिगत योग्यता तथा शक्ति के ऊपर बहुत कुछ निर्भर होता था। जब कभी केन्द्रीय शासन में निर्बलता आई, तभी प्रभावशाली प्रान्तीय शासक अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर देते थे किन्तु युद्ध में हारने पर उन्हें प्रायः प्राणों से हाथ धोना पड़ता था। कवि बिहारी ने अपने जीवनकाल में चार मुगल–सम्राटों का शासनकाल देखा था। उनके बालपन के सात–आठ वर्ष तो अकबर महान् के युग में बीते थे। और उनका यौवन जहाँगीर के शासनकाल में बीता था। यौवन का उतरार्द्ध अर्थात् अन्तिम छः–सात वर्ष औरंगजेब के शासनकाल में बीता था। इस प्रकार बिहारी ने अपनी ही आँखों से अनेक मुगल सम्राटों का उत्थान और पतन देखा था। इस संबंध में विशेष बात यह है कि शासक के बदलने के साथ ही शासन–व्यवस्था भी बदल जाती थी। जो भी शासक राज सिंहासन का अधिकारी होता था, वह अपने विवेक और इच्छा के अनुसार शासन चलाता था। कवि बिहारी ने शासन व्यवस्था में होने वाले ऐसे परिवर्तनों का वर्णन इस प्रकार किया है –

**"नव नागरि तन–मुलुक लहि, जोबन–आमिर–जौर। घटि बढि तै बढि घटि रकम, करी और की और"।।**

कवि ने उपरोक्त दोहे में मुग्धा नायिका के माध्यम से शासन–व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों का प्रभावशाली वर्णन किया है। राजनीतिक दृष्टि से बिहारी का युग बहुत ही उथल–पुथल वाला युग कहा जा सकता है क्योंकि मुगल–शासकों के समक्ष अनेक प्रकार की समस्याएँ उपस्थित रहती थी और उनकी दृष्टि में अधिकाँश समस्याओं का समाधान केवल शक्ति के बल पर किया जा सकता था। परिणामतः आए दिन मार–काट और युद्ध होते रहते थे। सम्राट को एक तो सूबेदारों से ही भय बना रहता था, दूसरे कतिपय स्वाभिमानी राजपूत ऐसे भी थे जो किसी भी स्थिति में मुगल शासकों का आधिपत्य स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। ऐसी स्थिति में सम्राटों को शक्ति–प्रयोग का आश्रय लेना पड़ता था। कभी–कभी चतुर और नीतिज्ञ सम्राट भेदनीति का प्रयोग भी करते थे और जब वह नीति सफल नहीं हो पाती थी तो सन्धि–प्रस्ताव भेजे जाते थे–और जब संधि–प्रस्ताव भी निष्फल रह जाते थे तो छल–छद्म का प्रयोग करके शत्रु को विजित करने का प्रयत्न किया जाता था। बिहारी ने इस भाव का वर्णन एक मानवती नायिका के माध्यम से निम्न प्रकार से किया है –

**"क्यौं हूँ सहवात न लगै, थाके भेद–उपाइ। हठ–दृढगढ–गढबै सुचलि, लीजै सुरंग लगाइ"।।**

## (ख) सामाजिक परिस्थितियाँ

रीतिकालीन कवि बिहारी ने केवल अपने युग की राजनीतिक परिस्थितियों का ही वर्णन नहीं किया है अपितु अपने युग के सामाजिक जीवन का भी प्रभावशाली चित्रण किया है। बिहारी के युग में मुसलमानी शासन था और इस शासन के अन्तर्गत राज्य के सर्वोच्च पदों पर सम्पन्न और धनी व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती थी। समूची शासन व्यवस्था में विलासमयता का वातावरण छाया हुआ था। सम्राट को तो अपने रंगमहलों से अवकाश नहीं मिलता था और सरदार भी उसके पदचिह्नों पर चले रहे थे। उस युग में एक विचित्र नियम यह था कि सरदारों एवं सामन्तों का संपूर्ण धन और सम्पति उनकी मृत्यु के पश्चात् राजकोष में जमा हो जाती थी। इस नियम का एक प्रभाव यह हुआ कि सूबेदार, सरदार तथा सामन्त लोग अपनी सारी सम्पति और धन का उपभोग अपने जीवनकाल में ही करने को आतुर रहते थे। इस प्रकार मुगल सम्राटों का शासन सुरा और सुन्दरी में डूबा हुआ था। कवि पद्माकर ने बिहारी के युग की सामाजिक दशा का चित्रण इस प्रकार किया है –

"गुलगुली गिल में गलीचा है, गुनीजन हैं, चाँदनी है चिक हैं चिरागन की माला हैं;
कहै पद्माकर त्यों गजकगिजा है सजी, सेज है सुराही है सुरा और प्याला है;
शिशिर के पाला को न व्याप्त कसाला तिन्हें, जिनके अधीन सौ उदित मसाला है।
ताम तुक डाला है विनोद के रसाला हैं, सुबाला हैं, दुशाला हैं, बिशाला चित्रशाला हैं"।।

बिहारी के युग में सामन्त वर्ग और निम्न वर्ग के आर्थिक स्तरों में अत्यधिक अन्तर था। उच्च मध्यवर्ग के अन्तर्गत व्यापारी, साहूकार और राजकीय कर्मचारी आते थे जो अपनी आर्थिक स्थिति के अनुरूप विलासमयता का जीवन बिताते थे। इसके ठीक विपरीत निम्न वर्ग भी था जोकि आर्थिक दृष्टि से सर्वाधिक सम्पन्न और दयनीय था। सच्चाई तो यह है कि समाज का यह उच्च वर्ग इसी निम्न वर्ग के बल पर ऐश्वर्यमय जीवन बिताता था। उच्च मध्यवर्ग तथा निम्न वर्ग के मध्य के इस अन्तर की चर्चा करते हुए एक महान् इतिहास वेता कहते हैं कि "आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से सारा समाज दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—एक उत्पादक वर्ग और दूसरा उपभोक्ता वर्ग। उत्पादक वर्ग में कृषक और मजदूर थे जो शासन और युद्ध के झंझट से बिलकुल अलग रहकर खेती, व्यापार आदि कार्य करते थे, सरकार को कर देते थे और इसके बदले में बाहरी तथा भीतरी उपद्रवों से त्राण पाते थे। उपभोक्ता वर्ग सम्राट के परिवार और दरबारियों से लेकर उनके नौकर चाकर और दासों तक फैला हुआ था। यह वर्ग राज्य की शक्ति था इसलिए उत्पादक वर्ग पर इसका पूरा प्रभुत्व था - सामाजिक स्थिति भी स्वभावतः इनकी इच्छा थी। इन दोनों के बीच बहुत बड़ा अन्तर था—शासक और शासित—शोषक और शोषित का।" सामान्य व्यक्ति हर दृष्टि से पिछड़ा हुआ था क्योंकि उन दिनों शिक्षा के प्रसार का कोई प्रश्न नहीं था। स्वभावतः जनसाधारण में विभिन्न प्रकार के अन्धविश्वास व्याप्त थे। कर्मकाण्ड के प्रति लोगों में बहुत आस्था थी। विभिन्न प्रकार की कामनाओं की पूर्ति के लिए यज्ञ आदि का आयोजन किया जाता था। बिहारी ने इस स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है

**"होमति सुखु, करि कामना तुमहिं मिलन की, लाल। ज्वालामुखी सी जरति लखि, लगनि—अगनि की ज्वाल"।।**

जन—जन में विभिन्न प्रकार के बाह्यडम्बरों का बोलबाला था। ईश्वर, उपासना और भक्ति के क्षेत्र में पुनः नाना प्रकार की कर्मकाण्डी प्रवृतियाँ कार्यरत थी। अनपढ़ और भोली—भाली जनता को ठगने के लिए पाखण्डी साधुओं और भक्तों की भरमार थी। ये साधु माथे पर तिलक लगाकर तथा हाथ में राम— नाम की माला धारण किये रहते थे और इस तरह साधारण जनता को धोखा देते रहते थे। बिहारी ने ऐसे पाखण्डी साधुओं को समझाते हुए कहा है —

**"जपमाला छापै, तिलक, सरै न एकौ कामु। मन—काँचे नाचे वृथा, साँचै राँचै रामु"।।**

प्रस्तुत दोहे में कवि ने सच्चे मन से की गई भक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध की है। शासन—व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार का प्रभाव जनसाधारण पर भी पड़ रहा था। लोगों के जीवन में सिद्धान्तों और नियमों का कोई स्थान नहीं रह गया था। सभी लोग अपने स्वार्थों की सिद्धि में लगे हुए थे। कहते कुछ थे, करते कुछ थे। जिन लोगों के हाथों में शासन की बागडोर थी उनमें भी चरित्र और निष्ठा का अभाव बना हुआ था जिसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है —

**"पर—तिय—दोषु पुरान सुनि, लखि मुलकी सुखदानि। कसु करि राखी मिश्रहुं, मुंह—आई मुसकानि"।।**

जन साधारण में जादु—टोनों के प्रति अत्यधिक आस्था बनी हुई थी। कवि ने इस स्थिति का वर्णन निम्न दोहे में किया है

**"टुनहाई सब टोल मैं, रही ज सौति कहाई। सुतैं ऐंचि त्यौ आपु त्यों वारी अदोखिल आइ"।**

लोगों में यह विश्वास भी बना हुआ था कि यदि टोना करने वाला व्यक्ति किसी प्रकार की भूल कर देता है तो टोने का दुष्प्रभाव स्वयं उसी पर पड़ता है। कवि ने इस भाव का वर्णन इस प्रकार किया है —

**"साजे मोहन मोह कौ, मोहीं करत कुचैन। कहा करौं उलटे परे टोने लोने नैन"।।**

बिहारी के समय में विभिन्न प्रकार की भक्ति और साधना पद्धतियाँ प्रचलित थी। सभी लोग अपनी—अपनी पद्धति को श्रेष्ठता सिद्ध करने में लगे हुए थे। उस युग में मलंग फकीर भी हुआ करते थे। जिनकी साधना—पद्धति भारतीय हठयोगियों से बहुत मेल खाती थी। कवि ने अपने एक दोहे में इन मलंग फकीरों की साधना—पद्धति का भी उल्लेख किया है

**"कौड़ा आँसू बूँद, कसि साँकर बरूनी सजल। कीने बदन निमूंद, दृग मलिंग डारे रहत"।।**

मुसलमानों में विचित्र प्रकार के शोक प्रचलित थे जिसका मूल कारण यही था कि लोगों के समक्ष किसी भी प्रकार के उच्चादर्श और मूल्य नहीं थे। शासन के सर्वोच्च स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार का प्रभाव यह पड़ रहा था कि जनसाधारण भी जीवन के उच्चादर्शों और जीवन के मूल्यों को विस्मृत कर चुका था। वे लोग पतंगबाजी और कबूतरबाजी जैसे शौक किया करते थे।

कवि ने जनसाधारण के इन शौकों का वर्णन इस प्रकार किया है :

**"उड़ति गुड़ी लखि ललन की, अंगना अंगना माँह। बौरी लों दौरी फिरति, घुवति छबीली छाँह॥ तथा**
**ऊँचै चितै सराहियतु गिरह कबूतरू लेत। झलकति दृग, मुलकित बदनु, तनु पुलकित किहिं हेतु"॥**

कवि ने तत्कालीन नारी समाज का भी प्रभावशाली वर्णन किया है। तत्कालीन नारी समाज स्पष्टतः दो वर्गों में बंटा हुआ – उच्च अथवा सम्पन्न नारी वर्ग और निम्न अथवा साधारण नारी वर्ग। उच्च–नारी वर्ग में आभूषणों और विभिन्न प्रकार के अंग रागों का अत्यधिक प्रचलन था। इस वर्ग की नारियाँ मूल्यवान आभूषण और चटकीले वस्त्रों का बहुत प्रयोग किया करती थी। इस कवि ने इस उच्च–नारी–वर्ग के विलासमय जीवन की झाँकी इस प्रकार प्रस्तुत की है :

**"जटित नीलमनि जगमगति, सील सुहाई नाक। मनौ आली चम्पक कली, बसि रसु लेत निसांक॥**
**इहिं दृवैहो मोती सुगंथ तूं, नथ, गरबि निसांक। जिहि पहिरै जग–हग ग्रसति, लसति हँसति सी नांक॥**
**सोहत अंगुठा पाइ के, अनवटु जर्‌यौ जराई। जीत्यौ तरिवन–दुति, सुढ़रि पर्‌यौ तरनि मनु पाइ॥"**

इस वर्ग की नारियाँ विभिन्न अंग रागों, महावर मेहन्दी आदि का भी बहुत प्रयोग किया करती थी। इन सम्पन्न नारियों की वेश–भूषा भी मूल्यवान होती थी। मूल बात यह है कि घनी और सम्पन्न परिवारों की महिलाएं अपने वैभव का प्रदर्शन मूल्यवान और जड़ाऊ आभूषण एवम् महंगी वेश–भूषा के माध्यम से किया करती थी। इस प्रवृति के मूल में स्पष्टतः दो कारण हो सकते हैं – एक तो तत्कालीन विलासमय जीवन और दूसरा विद्या का अभाव। कवि बिहारी ने महिलाओं के इस सम्पन्न वर्ग का चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

**"जरीकोर गोरे बदन, बढ़ी खरी छबि देखु। लसति मनो बिजुरी लिए, सारद–ससि–परिबेखु॥**
**दुरत न कुच बिच कंचुकी चुपरी सारी सेत। कवि आँकुन के अर्थ लौं, प्रगटि दिखाई देत॥**
**चुनरी स्याम सतार नभ, मुंह ससि की उनहारि। नेहु दबावतु नींद लौं, निरखि निसा सी नारि॥"**

मध्यवर्गीय परिवारों में देवर–भाभी की छेड़छाड़ की सुदीर्घ परम्परा विद्यमान है जो कि भारत के गाँवों में आज भी देखी जा सकती है। इस प्रकार के प्रसंगों में प्रायः दो प्रकार की स्थितियाँ होती हैं – एक तो वह जबकि भाभी ही देवर के प्रति आसक्त हो जाती है और दूसरी वह जबकि देवर अपनी भाभी के प्रति अनुरक्त हो जाता है। कवि बिहारी ने इन दोनों स्थितियों का प्रभावशाली वर्णन किया है।

**"और सबै हरषी हंसति, गावति भरी उघाह। तू ही बहू बिलखीं फिरै, क्यों देर के ब्याह"॥**

इस दोहे में देवर के विवाह के अवसर पर भाभी बिलख रही है क्योंकि उसे यह पता है कि विवाहोपरान्त देवर उसके सास केलि नहीं कर सकेगा। दूसरे प्रकार का वर्णन इस प्रकार है –

**"देवर–फुल–हने जु, सुसु उठे हरषि अंग फूलि। हंसी करति औषधि सखिनु, देह ददोरनु भूलि"॥**

कवि ने तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त सम्मिलित परिवार प्रणाली का भी चित्रण किया है। सम्मिलित परिवारों में भाभी की स्थिति बहुत दयनीय होती है क्योंकि देवर उसके साथ छेड़छाड़ करता है और वह उसके विरुद्ध शिकायत भी नहीं कर सकती क्योंकि शिकायत करने पर घर में कलह हो जाने की आशंका रहती है। बिहारी ने लोकजीवन को खुली आँखों से देखा था अतः उनकी सूक्ष्म दृष्टि से लोकजीवन का कोई भी पक्ष अनदेखा नहीं रह सकता था। बिहारी ने ऐसी ही एक भाभी की दयनीय स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है –

**"कहति न देवर की कुबत, कुल–तिय कलह डराति। पंजरगत मंजार–ढिंग, सुक ज्यौं सूकति जाति"॥**

बिहारी ने हिन्दू परिवारों में प्रचलित रूढ़ियों परम्पराओं का भी सजीव वर्णन किया है। उदाहरण के लिए यह दोहा देखिए – जिसमें कवि ने नवविवाहिता के पहली बार ससुराल जाने पर 'मुँह दिखाई' की परम्परा का वर्णन किया है –

**"मानहु मुंह बिखरावनी, दुलहिनी करि अनुरागु। सासु सदनु मनुललनहूँ, सौतिनु दियौ सुहागु"।।**

कवि ने हिन्दुओं के अनेक पर्वों–त्यौहारों आदि का भी वर्णन किया है। इस प्रकार के वर्णनों में होली, तीज, दशहरा आदि सम्बन्धी वर्णन बहुत रुचि–पूर्ण बन पड़े हैं। तथापि होली अथवा फाग के वर्णन में कवि का मन सबसे अधिक रमा है। होली राग–रंग का त्यौहार होता है, गुलाल और रंग की पिचकारियों में नायिका का तन–मन भीग जाता है। कवि बिहारी ने होली के त्यौहार का अत्यन्त सजीव वर्णन किया है –

**"जज्यौं उझकि झाँपति बदनु, झुकति बिहंसि सतराइ। तत्यौं गुलाल–मुठी झुटी, झझकावत प्यौ जाइ।।**
**दियौ जु पिय लखि चखनु मैं, खेलत फाग–खियालु। बाढत हूं अति पीर सुन, काढत बनतु गुलालु।।**
**छुटत मुठिनु संग ही छुटी, लोकलाज, फुल–चाल। लगे दुहुनु इक बेर ही चल चित नैन गुलाल"।।**

कवि बिहारी की एक अन्यतम विशेषता यह भी है कि उन्होंने केवल सामन्तों और सम्पन्न लोगों के ऐवर्श्यमय जीवन का ही वर्णन नहीं किया है अपितु कहीं–कहीं अत्यन्त सामान्य स्तर के लोगों के जीवन की झाँकी भी प्रस्तुत की है। दूसरे शब्दों में बिहारी ने केवल सुरा और सुन्दरी की रंगीन कथाओं का ही वर्णन नहीं किया है, उन्होंने हुक्का पीने वाले ग्रामीण का तथा चरखा कातने वाली ग्राम्या का भी वर्णन किया है। इस दृष्टि से बिहारी के निम्न दो दोहे देखिए –

**"ज्यौं कर त्यौ चिकुटी चलति, ज्यौं चिकुटी, त्यौं नारि। छवि सौं गति सीलै चलति, चातुर का नहारि।।**
**तथा– ऊँचै, हाँसी भरी दृग भौंहनु की चाल। मो मनु कहा न पीलियौ, पियत तमाकू लाल।।"**

## (ग) धार्मिक परिस्थितियाँ

बिहारी के युग में धर्म की स्थिति भी राजनीति की तरह ही अस्थिर और अप्रत्याशित थी। धर्म के प्रति बिहारी का दृष्टिकोण आद्योपान्त उदार रहा है। इस दृष्टि से उनका यह दोहा देखिए –

**"अपनैं अपनैं मत लगे, बादि मचावत सोरु। ज्यौं त्यौं सबकौं सेइबौ, एकै नन्द किसोरु"।।**

बिहारी ने कबीर की भान्ति ही भक्ति के क्षेत्र में प्रचलित बाह्यडम्बरों की घोर निन्दा की है –

**"जप–माला छापैं तिलक, सरै न एकौ कामु। मन काँचै नाचैं बृथा, साँचै राँचै राम"।।**

बिहारी ने मन की सच्चाई पर बहुत बल दिया है। धर्म के क्षेत्र में बिहारी की उदारता का परिचय इस बात से भी मिलता है कि वे राम और कृष्ण में कोई भेद स्वीकार नहीं करते और कदाचित् इसी कारण कहीं राम का और कहीं कृष्ण का नाम लेते हैं। उन्होंने राधा–प्रधान भक्ति का भी चित्रण किया है –

**"मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि साइ। जातन की झाँई परत, स्यामु हरित–दुति होइ।।"**
**तथा–"तजि तीरथ, हरि–राधिका–तन–दुति करि अनिरागु। जिहिं ब्रज–केलि–निकुंज–मग, पग पग होतु प्रयागु।।"**

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि "बिहारी सतसई" में लोकचित्रण पर्याप्त मात्रा में हुआ है। जिस प्रकार कोई जागरुक कवि अपने युग से विलग नहीं रह सकता, उसी प्रकार बिहारी के लिए भी युग–जीवन से उदासीन रहना असम्भव ही था। रीतिकाल की कविता में जो विशुद्ध रूप से सामन्तीय तथा काव्य परम्परा के धरातल पर पल्लवित और पुष्पित हुई थी, लोकजीवन का चित्रण बिहारी की कवि–प्रतिभा और काव्यकला की सम्पूर्णता का उद्घोषक है।

# अध्याय – 6
# बिहारी की भक्ति–भावना

'बिहारी की भक्ति–भावना' का निरूपण करते हुए बताइए कि उनकी भक्ति कहाँ तक हार्दिक अथवा सच्ची है?

रीतिकाल के अधिकाँश कवियों ने शृंगार परक उक्तियों के वर्णन के साथ–साथ भक्ति और नीति विषयक भावनाओं को भी व्यक्त किया है। इस स्थिति के मूल में तत्कालीन युगीन परिस्थितियाँ थीं। रीतिकाल के जन्म की परिस्थितियों में तत्कालीन कृष्णभक्ति साहित्य का बहुत योगदान रहता है। कृष्णभक्त कवियों ने भगवान् श्रीकृष्ण को अन्तरंग सखा, रासलीला करने वाले नटनागर के रूप में चित्रित किया था। इस प्रकार कृष्णभक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के माध्यम लौकिक शृंगार युक्त विविध प्रकार की शृंगार लीलाओं का चित्रण किया है। इसी कृष्ण भक्ति शाखा का पर्यावसान रीतिकालीन काव्यधारा में हुआ और इस संबंध में एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि परिवर्तन बहुत ही शीघ्रता के साथ हुआ। परिणाम यह हुआ कि "शताब्दियों से बहकर आती हुई उस धारा का प्रवाह यद्यपि छिन्न–भिन्न हो गया था किन्तु फिर भी कहीं–कहीं पर वह रस अब भी भरा हुआ था जिसमें रीतिकालीन शृंगार रस धारा बड़े वेग से आकर मिली। इस प्रकार मिल–जुलकर जो कुछ बना उसमें भक्ति रस की क्षीण सी रेखा कहीं–कहीं दीख ही जाती थी? लौकिक वासना की वायु में श्वास लेने वाले इन कवियों को जब भक्ति रस–सिक्त मंद समीरण छूता हुआ निकल जाता है तो वे क्षण के लिए 'राधिका कन्हाई सुमिरन के बहाने' में इतने तल्लीन हो जाते कि अपने अंगीकृत सूत्र का उन्हें ध्यान तक न रहता।" इस प्रकार रीति काल के ये शृंगारी कवि भक्ति का राग अवश्य अलापते थे। किन्तु शीघ्र ही वे अपने स्वाभाविक स्वर में बोलने लगते थे। रीतिकालीन शृंगारी कवियों की भक्तिभावना ठीक वैसी ही थी जैसे कि कोई व्यक्ति विविध प्रकार के लौकिक कष्टों से त्रस्त होकर क्षण भर के लिए ईश्वर नाम का स्मरण करता है और कष्टों के निवारण होते ही पुनः अपनी स्वाभाविक भावभूमि पर उतर आता है। रीतिकालीन कवियों की भक्ति भावना का विश्लेषण करते हुए डॉ० नगेन्द्र कहते हैं "वास्तव में यह भक्ति भी उनकी शृंगारिकता की एक अंग थी। जीवन की अतिशय रसिकता से जब ये लोग घबरा उठते होंगे तो राधा–कृष्ण का यही अनुराग उनके धर्मभीरु मन को आश्वासन देता होगा। इस प्रकार रीतिकालीन भक्ति एक और तो सामाजिक कवच और दूसरी और मानसिक शरणभूमि के रूप में इनकी रक्षा करती थी। तभी तो ये किसी न किसी तरह उसका आँचल पकड़े हुए थे। रीतिकाल का कोई भी कवि भक्ति भावना से हीन नहीं है–हो ही नहीं सकता था–क्योंकि भक्ति उसके लिए एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी। भौतिक रस की उपासना करते हुए भी उनके विलास–जर्जर मन में इतना नैतिक बल नहीं था कि भक्ति रस में अनास्था प्रकट करते या उसका सैद्धान्तिक निषेध करते। इसीलिए रीतिकाल के सामाजिक जीवन और काव्य में भक्ति का आभास अनिवार्यतः वर्तमान है और नायक–नायिका के लिए बार–बार 'हरि' और 'राधिका' शब्दों का प्रयोग किया गया है।" बिहारी की भक्ति–भावना का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने एक बहुश्रुत और अध्यवसायी कवि की तरह भक्ति परम्पराओं से बहुत कुछ ग्रहण किया है। बिहारी की भक्ति–भावना पर विचार करते समय निम्नलिखित महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी उक्तियों का विवेचन अपेक्षित है–ईश्वर का स्वरूप, माधुर्य भाव, संख्य भाव, दीनता को प्रकट करना, नाम की महिमा, आत्म समर्पण, आत्मनिवेदन, सत्संगति की महिमा, स्त्री जाति की निन्दा तथा बाह्यडम्बरों की निन्दा।

## (क) ईश्वर का स्वरूप

बिहारी राम और श्रीकृष्ण में किसी प्रकार का भेद नहीं स्वीकार करते थे। कहीं तो बिहारी एकै नन्दकिसोर की उपासना करते हुए दीखते हैं –

**"अपने अपने मत लगै, वादि मचावत सोर। ज्यौं त्यौं सबकौं सेइबौ, एकै नन्दकिसोर"।।**

और कहीं वे श्रीराम की भक्ति में लीन दीखते हैं–

**"यह बरिया नहिं और की, तू करिया वह सोधि। पाहन नाव चढाइ जिहिं कीने पार पयोधि"।।**

इन दोहों के आधार पर बिहारी को कृष्णभक्त अथवा रामभक्त मान लेना निश्चय ही भ्रामक होगा। वस्तु स्थिति यह है कि "राम और कृष्ण में ये लोग कोई नहीं समझते थे। भगवान की एक सामान्य भावना लेकर दी अपनी उक्तियाँ गठा करते थे।

यही कारण है कि राम की लीला कृष्ण के नाम पर और कृष्ण की लीला राम के नाम पर कह देते थे।" बिहारी के निम्न दोहे में यही धारणा व्यक्त हुई है–

**"कौन भाँति रहि है बिरदु अब देखिबौ मुरारि। बीधे मोसौं आइकैं गीधे गीधहि तारि"।।**

भगवान के निर्गुण और सगुण रूपों के संबंध में बिहारी की धारणा इसी प्रकार की रही है। निर्गुण और सगुण के बीच वे किसी प्रकार का भेद नहीं मानते। उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखिए जिसमें उन्होंने भगवान के सगुण स्वरूप की वन्दना की है –

**"मोहूँ दीजै मोषु, ज्यौं अनेक अधमनु दियौ। जो बाँधे ही तोषु, तो बाँधो अपने गुननु"।।**

इसी प्रकार उन्होंने भगवान के निर्गुण स्वरूप का वर्णन भी किया है –

**"दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन विस्तारन काल। प्रगटत निर्गुण निकट रहि, चंग रंग भूपाल"।।**

निर्गुण ब्रह्म को यह सर्वव्यापक मानते हैं। ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप के साथ ही उसकी सर्वव्यापकता का भाव भी सिमटा हुआ है। बिहारी ने निर्गुण ब्रह्म की सर्वव्यापकता का वर्णन इस प्रकार किया है–

**"मैं समुझयौ निरधार, यह जगु काँचो कांच सौ। एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियतु जहाँ"।।**

निर्गुण ब्रह्म का यह स्वरूप अखिल सृष्टि में प्रतिबिम्बित होता है। यही निर्गुण ब्रह्म भक्त के मन में बसा होता है। इस दृष्टि से बिहारी का यह दोहा देखिए –

**"मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ। बसतु सु चित–अन्तर, तऊ प्रतिबिंम्बितु जग होइ"।।**

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि "बिहारी के ईश्वर के स्वरूप का वर्णन पूर्ववर्ती सगुण काव्य परम्परा के अनुसार ही किया है। इस वर्णन में दार्शनिक का चिन्तन भी है, भक्त की सहजानुभूतियाँ भी हैं और चमत्कार प्रधान युग के मुक्तककार कवि की चमत्कारिक उक्तियाँ भी हैं।"

## (ख) माधुर्य भाव

कृष्ण भक्त कवियों की भक्तिपरक रचनाओं में माधुर्य भाव की बहुलता रहती है और उनकी यह प्रवृति रीतिकाल की भक्तिपरक रचनाओं में भी बराबर मिलती है। भक्ति के क्षेत्र में शृंगार और प्रेम के बाहुल्य से माधुर्य भाव की उत्पति होती है। इस प्रकार से मधुर भक्ति में लौकिक शृंगार के प्रायः सभी पक्षों का समावेश हो जाता है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में, "जिस भक्त कवि का शृंगार, लौकिक दृष्टि से जितना घोर होता है वह भक्त उतना ही अधिक अपने आराध्य के समीप माना जाता है। कृष्ण काव्य में कृष्ण की अनेक स्थूल रति क्रीड़ाओं का वर्णन होने का यही कारण है।" बिहारी मूलतः शृंगारी कवि हैं अतः उनकी भक्तिपरक उक्तियों में माधुर्य भाव की बहुलता नितान्त स्वाभाविक है। बिहारी ने अनेक दोहों में राधा और कृष्ण के मध्य लौकिक शृंगार के अत्यन्त सजीले चित्र प्रस्तुत किए हैं। उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखिए जिसमें राधा और कृष्ण को विपरीत रति का सुख भोगते हुए दिखाया गया है –

**"राधा हरि, हरि राधिका बनि आए संकेत। दम्पति रति–विपरीत–सुखु, सहज सुरत हूँ लेत।।"**

श्रीकृष्ण राधा के प्रति बहुत आसक्ति रखते हैं। राधा की सखियाँ राधा को श्रीकृष्ण की आसक्ति से अवगत करा रही हैं –

**"तो पर वारौं उरबसी, सुनि, राधिके सुजान। तू मोहन कैं उरबसी ह्वै उरबसी समान"।।**

राधा और कृष्ण का यह प्रेम एक तरफा नहीं है। जिस प्रकार श्रीकृष्ण के मन में राधा के प्रति अत्यधिक आसक्ति है उसी प्रकार राधा भी श्रीकृष्ण को बहुत गहरा प्रेम करती है। राधा के इस अनुराग का वर्णन करते हुए बिहारी कहते हैं –

**"स्याम–सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा तीरु। अँसुवनु करति तरौंस कौ, खिनकु खरौहों नीरु"।।**

बिहारी के कृष्ण भक्ति संबंधी दोहों पर भक्तिकाल की कृष्ण भक्ति शाखा के विभिन्न सम्प्रदायों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा को सर्वोपरि माना गया है। और उसके समक्ष श्रीकृष्ण की स्थिति आराधक उपासक से अधिक नहीं है। श्रीहितहरिवंश में श्रीकृष्ण को राधा के चरणों में लौटने वाले आराधक की तरह व्यक्त किया गया है –

**"रसधन मोहन मूर्ति विचित्र केलि महोत्सववोल्लसितमै। राधा चरण विलोडित रुचिर शिखंड हरिबंदै"।।**

इन पंक्तियों के संदर्भ में बिहारी का निम्नलिखित दोहा दृष्टव्य है –

**"मोर चन्द्रिका स्याम–सिर, चढि कत करति गुमानु। लखिबी पाइनु पर लुठति, सुनियतु राधा–मानु"।।**

यही नहीं, बिहारी ने राधा को अपार सौन्दर्य और भक्तों को उनके पापों से मुक्ति दिलाने वाली महान् शक्ति के रूप में भी चित्रित किया है। इस प्रकार के चित्रण में कवि ने राधा में लौकिक सौन्दर्य और अलौकिक शक्ति का सम्मिश्रण प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से 'बिहारी सतसई' का सबसे पहला दोहा देखिए –

**"मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ। जा तन की झांई परै, स्यामु हरित–दुति होइ"।।**

बिहारी सतसई में मधुर भक्ति के अन्तर्गत राधा–कृष्ण के लौकिक प्रेम के विविध पक्षों का सजीव वर्णन किया गया है। बिहारी के अनेक शृंगारपरक दोहे किसी न किसी रूप से राधा–कृष्ण के परस्पर प्रेम–संबंधों को ही व्यक्त करते हैं। राधा कृष्ण के इन प्रेम –संबंधों में संयोग की सुखमय घड़ियाँ भी हैं और वियोगजन्य पीड़ा भी। बिहारी ने राधा– कृष्ण प्रेम के इन दोनों पक्षों का सजीव चित्रण किया है। संयोग अथवा मिलन के क्षणों के वर्णन में कवि का मन स्वभावतः अधिक रमा है। इस दृष्टि से बिहारी के निम्न दोहे देखिए जिन में संयोग शृंगार की विभिन्न क्रीड़ाओं का भावपूर्ण चित्रण किया गया है –

**"दोऊ चोर महीचनी, खेलु न खेलि अघात। डरत हियैं लपटाइ कै, छुवत हियैं लपटात।।**

**चमक तमक हांसी, ससक, मसक, झपट, लपटानि। एजिहिं रति, सो रति मुकति, और मुकति अतिहानि।।**

**बरसत लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ। सौंह करैं भौं हनु हंसै, दैन कहैं नटि जाइ।।"**

इसी प्रसंग में बिहारी ने राधा के नखशिख सौन्दर्य का भी वर्णन किया है। अंकुरित यौवना नायिका के सौन्दर्य का वर्णन देखिए –

**"अपने अंग के जानिकै, जोबन–नृपति प्रवीन। स्तन, मन, नैन, नितम्ब कौ, बड़ौ इजाफा कीन"।।**

बिहारी ने राधा–कृष्ण के प्रेम–प्रसंग के वर्णन में संयोग के साथ–साथ विरह–जन्य पीड़ा का भी वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि बिहारी को जो सफलता संयोग–वर्णन में मिल पाई है, वह वियोग–वर्णनों में नहीं मिल सकी है। अनेक स्थलों पर इस प्रकार के वियोग–वर्णनों में ऊहात्मक पद्धति का अत्यधिक प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए निम्न दोहा देखिए –

**"आड़े दै आले बसन, जाड़े हूँ की रीति। साहसु कर, स्नेह–बस, सखी सबैं ढिंग जाति।।"**

अर्थात् विरहिणी नायिका की सखियाँ सर्दियों की ऋतु में भी गीले वस्त्र पहन उसके निकट जाती है क्योंकि उन्हें यह आशंका है कि विरहिणी के निकट जाने से उसकी विरह की आग उन्हें भी जला देगी। ऐसी विरहिणी के लिए तो मर जाना ही श्रेयस्कर है। एक ऐसी ही विरहिणी की सखी श्रीकृष्ण से कहती है कि –

**"कहा कहौं बाकी दसा, हरि प्राननु के ईस। विरह–ज्वाल जरिबो लख मरिबो भई असीम"।।**

## (ग) सख्य भाव

हिन्दी के विभिन्न भावों में सख्य–भाव का अपना विशिष्ट स्थान है। हिन्दी के भक्तिकाल में विशेष भाव से कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं में इसी सख्य–भाव की बहुलता है। सख्य–भाव की एक विशेषता यह होती है कि कवि अथवा भक्त अपने आराध्य के प्रति अपेक्षा तथा अधिक अधिकारपूर्ण ढंग से कह सुन सकता है। इस दृष्टि से कृष्ण भक्त कवियों की उपालम्भपूर्ण उक्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखय है। बिहारी के निम्न दोहे में इसी प्रकार की उपालम्भपूर्ण शैली का प्रयोग किया गया है –

**"बन्धु भए का दीन के, को तार्‌यो रघुराय। तूठे तूठे फिरत हौं, झूठे बिरद कहाय"।।**

इसी प्रकार बिहारी का निम्न दोहा भी देखिए जिसमें कवि ने भगवान की कृपा से ही आकांक्षा की है। जिस भक्त पर ईश्वर की कृपा हो जाती है, उसे संसार के सारे सुख मिल जाते हैं। बिहारी के अन्य दोहों में इसी प्रकार के भाव को व्यक्त किया गया है।

## (घ) दीनता का प्रकाशन

भक्ति के क्षेत्र में दीनता का प्रकाशन ईश्वर की कृपा प्राप्त करने हेतु किया जाता है। दीनता का प्रकाशन इसलिए किया जाता है कि आराध्य अथवा उपासक को भक्त के दैन्य पर दया आ जाए और वह भक्त को पापों से मुक्ति दिला सके। हिन्दी के भक्ति साहित्य में महाकवि तुलसी और सूरदास आदि ने अपनी रचनाओं से दैन्य भाव की सजीव अभिव्यक्ति की है। इस दृष्टि से बिहारी ने भी इसी परम्परा का अनुसरण करते हुए कहा है –

**"कीजै चित सोई, तरे जिहि पतितनु के साथ। मेरे गुन–औगुन गननु, गनौ न, गोपीनाथ"।।**

इस संबंध में बिहारी का निम्न दोहा भी उल्लेख्य है जिसमें उन्होंने ईश्वर की पापोद्धारक क्षमता को चुनौती दी है

**"कौन भाँति रहि है बिरदु, अब देखिबी मुरारि। बीधे मोसौ आइकै, गीधे गीधहिं तारि"।।**

बिहारी के उक्त दोहे के संदर्भ में सूर का निम्न पद द्रष्टव्य है–

**"हरि हों सब पति तनको राउ। को करि सकै बराबरि मेरी, सोधौ मोहि बताउ।।**
**व्याध गीध अरु पतित पूतना तिन में बढि जौ और। तिनमें अजामील गनिका अति उनमें मैं सिरमौर।।**
**जहँ तहँ सुनियत यहँ बड़ाई, मो समान नहि आन। अब जो आजु–काल के राजा तिनमें मैं सुलतान।।**
**अब लौ तो तुझ बिरद बुलायो भई न मोसौं भेंट। तजौ बिरद कै मोहि उबारौ, 'सूर', गही कसि फेंट।।"**

## (ड़) नाम–महिमा

हिन्दी साहित्य में भक्ति काव्य में भगवान के नाम–स्मरण का बहुत अधिक महत्व माना गया है। नाम–स्मरण की यह प्रवृति मध्य–युगीन कवियों में भी मिलती है। उदाहरण के लिए कृष्णभक्त कवि सूरदास की निम्न पंक्तियाँ देखिए-

**'को न तर्‌यौ हरि नाम लियै। सुआ पठावति गनिका तारी, व्याध तरो सर घात किए।**
**प्रभु ते जन जन तैं प्रभु दरतत, जाकी जैसी प्रीत हिए।।**

नाम–स्मरण की प्रवृति का अनुसरण रीतिकालीन काव्य में भी हुआ है। रीतिकाल के श्रृंगारी कवि बिहारी इसी नाम स्मरण की महता का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि –

**"पतवारी माला पकरि, और न कछु उपाउ। तरि संसार–पयोधि को, हरि–नावैं करि नाउ"।।**

## (च) आत्म–समर्पण

भक्ति पद्धति की पहली शर्त आत्मसमर्पण की होती है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में, 'आत्मसमर्पण के द्वारा भक्त अपने आराध्य के प्रति अपनी आस्था ही व्यक्त नहीं करता वरन् उसे अपने ऊपर दया करने को भी विवश करता है। यही कारण है कि भक्तिमार्ग में इस भावना का बहुत ही महत्व है।" आत्मसमर्पण की यह प्रवृति भक्तिकालीन साहित्य में बराबर मिलती है। बिहारी सतसई में भी आत्मसमर्पण की इस प्रवृति के दर्शन होते हैं। बिहारी के निम्न दोहे में इसी प्रकार के आत्मसमर्पण की भावना व्यक्त हुई है –

**"दीरघ साँस न लेहु दुख, सुख साई हि न भूलि। दई दई क्यों करतु है, दई दई सू कबूलि"।।**

भगवान के भक्त का एकमात्र सुख भगवान की कृपा है। उसे सांसारिक वैभव–विलास की कोई कामना नहीं रहती, जीवन के भौतिक सुखों की भी कोई आकांक्षा नहीं रहती, उसे तो केवल आराध्य की कृपा चाहिए। भक्त की स्थायी सम्पति श्रीकृष्ण ही है

**"कोऊ कोटिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार। मो सम्पति जदुपति सदा, विपति–विदारन हार।।"**

## (छ) आत्म निवेदन

आराध्य को प्रसन्न करने के लिए भक्त भगवान के साथ अपने दैन्य का वर्णन करता है। और अपने उद्धार की प्रार्थना करता है। भक्तिकालीन कवियों ने अपनी रचनाओं में इसी प्रकार के भाव व्यक्त किए हैं। उदाहरण के लिए तुलसी की निम्न पंक्तियाँ देखिए –

**"जो पै जिय धरिहौ अवगुन जन के। तो क्यौं कटत सुवृत नखते, मोयैं बिपुल वृन्द अघ वन के।।"**

सूरदास की निम्न पंक्तिया भी द्रष्टव्य हैं –

**"प्रभु ! मोर गुन अवगुन न विचारौ। कीजै लाज सरन आए की, रविसुत त्रास निवारो"।।** तथा–

**"प्रभु ! मोरे अवगुन चित न धरो। समदरसी है नाम तिहारो, चाहो तो पार करो"।।**

'बिहारी सतसई' में भी इसी प्रकार के आत्मनिवेदन का भाव मिलता है। इस दृष्टि से बिहारी का निम्न दोहा दर्शनी

**"हरि की जति, विनती यहै, तुम सौं बार हजार। जिहिं तिहिं भाँति डरयौ रह्यौ, परयौ रहौं दरबार"।।**

अर्थात् हे हरि, मैंने तो हजारों बार तुमसे यही प्रार्थना की है कि मैं चाहे जिस अवस्था में रहूँ, तुम्हारे ही दरबार में लुढ़कता–पुढ़कता रहूँ। इस प्रकार बिहारी ने कई दोहों में अपने आराध्य के प्रति इस प्रकार का आत्मनिवेदन किया है।

## (ज) सत्संगति की महिमा

भक्ति के मार्ग में सत्संगति की अपार महिमा होती है। भगवान की प्राप्ति के विभिन्न साधनों में सत्संगति भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सत्संगति का आश्य है–श्रेष्ठ जनों की संगति। भक्ति साहित्य में सत्संगति का संजीव वर्णन किया गया है। सन्त कबीर कहते हैं–

**"संगीत कीजै साधु की, हरै और की व्याध। ओधी संगति क्रूर की, आठों पहर उपाध"।।**

बिहारी भी सत्संगति की महत्ता स्वीकार करते हैं। यही सत्संगति मनुष्य को ऊँचा उठाती है और कुसंगति उसे नीचे गिरा देती है। बिहारी ने निम्न दोहे में इसी प्रकार का भाव व्यक्त किया है –

**"संगति सुमति न पा वहि, परै कुमति कै धन्ध। राखौ मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगन्ध"।।**

इसी प्रकार बिहारी का निम्न दोहा देखिए जिसमें पुनः सत्संगति की महिना का वर्णन किया है –

**"अजौं तर्यौना ही रहौ, श्रुति सेवत इक रंग। नाक बाँस बेसरि लह्यौ, बसि मुकुतनु के संग"।।**

प्रस्तुत दोहे में कर्ण फूलों को कानों का साहचर्य प्राप्त हुआ और बेसर मुक्ताओं को नाक का। परिणाम यह हुआ कि बेसर मुक्ताओं की अपेक्षातया अधिक ऊँचा स्थान (नाक का) प्राप्त हो गया जबकि कर्णफूल केवल कान में ही धारण किए जा सके।

## (झ) स्त्री–निन्दा

भक्ति के क्षेत्र में सबसे बड़ी बाधा स्त्री होती है। स्वभावतः सभी भक्त कवियों ने मुक्तकंठ से स्त्री जाति की निन्दा की है। किसी ने उसे 'महाठगिनी' कहा तो किसी ने माया की प्रतिकृति कहा। बिहारी ने अधिकांशतः नारी के सौन्दर्य के रूपहले चित्र खींचे हैं किन्तु कतिपय स्थलों पर उन्होंने स्त्री को भगवान् की भक्ति की सबसे बड़ी बाधा स्वीकार किया है। इस दृष्टि से बिहारी का निम्न दोहा देखिए–

**"या भव–पारावार को, उलंघि पार को जाइ। तिय छवि–छाया–ग्राहिनी, ग्रहै बीच ही आइ"।।**

## (ञ) बाह्यडम्बरों का विरोध

हिन्दी के भक्ति साहित्य में और विशेष रूप से सन्त साहित्य में बाह्यडम्बरों का तीव्र विरोध होता रहा है। क्योंकि इन बाह्यडम्बरों के कारण भक्ति के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के पापाचारों और कुकृत्यों का जन्म हुआ है। यही कारण है कि भक्ति की शुद्धता के लिए मन की शुद्धता परमावश्यक होती है। जब तक मन विभिन्न प्रकार के कर्मकाण्डी कृत्यों में खोया रहता है तब तक भगवान की प्राप्ति संभव नहीं हो सकती। बिहारी ने भी इस प्रकार के बाह्यडम्बरों का तीव्र विरोध किया है। एक स्थल पर तीर्थ–यात्रा का विरोध करते हुए बिहारी कहते हैं कि –

**"तजि तीरथ हरि राधिका–तन–दूति करि अनुरागु। जिहिं ब्रज–केलि–निकुंज–मग, पग पग होत प्रयागु"।।**

इसी प्रकार बिहारी का निम्न दोहा भी देखिए जिसमें उन्होंने माला जपने, तिलक लगाने जैसे आडम्बरपूर्ण कृत्यों की निस्सारता सिद्ध की है –

**"जप–माला, छापे, तिलक, सरै न एकौ कामु। मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचे रामु"।।**

अर्थात् जब से सच्चे मन से भगवान का भजन नहीं किया जाता तब तक भगवान प्रसन्न नहीं होते। भगवान तो उसी भक्त पर प्रसन्न होते हैं जो सच्चे मन से ईश–स्तुति करता है। बिहारी के मतानुसार में बाह्यडम्बर भक्ति के पावन–मार्ग में बाधक सिद्ध होते हैं। जिस हृदय में छल–कपट है, बाह्यडम्बरों के प्रति आस्था है, उस हृदय में भगवान् का वास संभव नहीं हो सकता। प्रस्तुत दोहे में यही भाव व्यक्त हुआ है –

**"तौ लगु या मन सदन मैं, हरि आवे किहिं बार। बिकट जटे जौ लगु निपट, खुटै न कपट कपाट"।।**

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बिहारी का मुख्य प्रतिपाद्य तो शृंगार रस ही था। और भक्ति अथवा नीति संबंधी उनकी उक्तियाँ केवल औपचारिकता की पूर्ति की तरह समझी जा सकती हैं। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में, "भक्ति रस में निमग्न होने का वातावरण न तो कवियों के लिए ही था और न श्रोताओं के लिए ही। इस काल मे कवि की काव्य–रचना का, विशेषतः मुक्तकार का मुख्य उद्देश्य अपना पांडित्य प्रदर्शित करना और उसके द्वारा श्रोताओं को चमत्कृत करना था। इसी साधना के लिए इन्होंने जिस प्रकार शृंगारेतर विषयों की गिनी–चुनी उक्तियाँ कही हैं उसी प्रकार भक्तिभाव के भी छींटे यत्र तत्र लगा दिए हैं।" कदाचित् इसी कारण बिहारी के भक्तिपरक दोहों में भी भगवान् के प्रति वह लगन, वह दीवानगी नहीं दीखती जो कि सूर, मीरा आदि भक्त कवियों में मिलती है। उन्होंने भक्ति को केवल सामान्य रूप में ही स्वीकार किया है।

# अध्याय – 7
# बिहारी की बहुज्ञता

बिहारी के दोहों के आधार पर उनकी बहुज्ञता का परिचय दीजिए।

भारतीय साहित्य में कवि के लिए क्रान्तिदर्शन और मेधावी जैसे विशेषणों का प्रयोग होता रहा है। यजुर्वेद के एक मन्त्र के अनुसार कवि को ईश्वर का विशेषण माना गया है –

**"कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थात्। व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समास्यः"।।**

व्याकरण की दृष्टि से कवि का अर्थ मेधावी के पर्यायवाची शब्दों के रूप में दिया गया है। निरुक्त के रचयिता यास्क के अनुसार –

**"कविः क्रान्तदर्शनोभवति कवतेर्वा"।।**

क्रान्तदर्शन का अर्थ है – क्रान्त = व्याप्त, दर्शन = ज्ञान वाला। अमरकोष के अनुसार –

**"विद्वान विपश्चिदोषज्ञः सन् सुधीः को विदोबुधः। धीरी मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः"।।**

अमरकोषकार के अनुसार कवि का प्रयोग पण्डित के अर्थ में किया गया है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि "प्रारम्भ में किसी कार्य विशेष के संपादन की निपुणता जो उस क्षेत्र में ज्ञानाधिक्य की जननी कही जा सकती है 'कवि' शब्द से अभिप्रेत थी। कालान्तर में यह शब्द भी योग तप आदि के समान भाषा–विज्ञान के विशेषीकरण के नियमानुसार विशेषपरक हो गया और सामान्य विद्वान का अर्थबोध न करके शब्दार्थ–योजना–निपुण के अर्थ में व्यवहृत होने लगा। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि शब्द के अन्तर्गत सामान्यः निपुणता, प्रतिभा, बहुज्ञता, क्षमता तथा विद्वान आदि विविध गुणों का समावेश हो जाता है।

आचार्य मम्मट ने काव्य हेतुओं का विवेचन करते हुए कहा है –

**"शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्य वेक्षणात्। काव्यजशिक्षयाभ्यासं इतिह हेतुस्तदुद्भवे"।।**

मम्मट आगे चल कर यह भी कहते हैं कि 'शक्तिः कवित्वरूपः संस्कार–विशेषः, यां बिना काव्यं न प्रसरेत् प्रसृत वा उपहसनीय स्यात्। लोकस्य स्था रजङ् गभात्मकलोवृतस्य शास्त्राणं छन्दो व्याकरणाभिधान–कोषकला–चतुर्वर्मगजतु रगरवङ् गादिलक्षणग्रन्थाना काव्यानां च महाकवि संबन्धिनाम्। आदि ग्रहणादिति हासादीनां च विभर्शनाद् व्युत्पतिः। काव्यं कुतुविचारयितुं च ये जना जानन्ति तदुपदेशेन करणे योजने च पौनः पुन्येन प्रवृत्तिरति त्रयः समुदिता न तु व्यस्तास्तस्य काव्यस्योद्भवे निर्माणे समुल्लास ० हतुर्न ते हे तवः"।

अर्थात् कविता करने की बीज रूप शक्ति के अभाव में काव्य का सृजन हो ही नहीं सकता। काव्य की उत्पति क हेतु स्थावर जंगम लोक का वृत, छन्द, व्याकरण, अभिधान कोष, विविध प्रकार की कलाएँ, चतुर्वर्गों का सम्यक् ज्ञान, गज, अश्व खड्ग आदि संबंधी लक्षण ग्रन्थों का परायण महाकवियों की कृतियों का अध्ययन तथरा काव्य की सृष्टि करने वाले एव काव्यमम्ज्ञा द्वारा मार्गदर्शन के साथ निरन्तर अभ्यास–ये सभी तत्व समवेत रूप में काव्य हेतु होते हैं, अलग अलग नहीं। उपयुक्त विवेचन के आधार पर कवि को अनेक शास्त्रों का ज्ञाता होना चाहिए। वस्तुतः यह आवश्यक नहीं है कि कवि को उपरोक्त सभी शास्त्रों का गहन ज्ञान हो। आवश्यकता केवल इस बात की है कि कवि को इन विभिन्न शास्त्रों आदि का सामान्य ज्ञान अवश्य होना चाहिए जिससे कि किसी विषय अथवा शास्त्र का प्रसंग उपस्थित होने पर कोई प्रतिकूल कथन न कहा जाए। कविता विशुद्ध रूप से हृदय की वस्तु है, मस्तिष्क की नहीं। कविता के क्षेत्र में बुद्धि को केवल उसी सीमा तक प्रवेश मिल सकता है जहाँ तक वह भावों के उत्कर्ष की साधक सिद्ध होती है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में "शास्त्रीय ज्ञान अथवा लाकिक बहुलता का उपयोग भाव तक पहुंचाने के लिए शार्टकट बताने वाले रूप में ही होना चाहिए। ऐसा प्रसग आने पर जहा इसके बिना वर्ण्यविषय तक सहृदयों की पहुँच हो ही न सके, मोटी–मोटी, सामान्य और सन्तुलित बातें रखी जा सकती हैं। काव्य की रचना किसी शास्त्र विशेष के विद्वानों अथवा बहुश्रुत पण्डितों के लिए ही नहीं की जाती, उसका उद्देश्य सहृदयता का एक निश्चित सामान्य स्टैण्डर्ड को दृष्टिकोण में रखकर तदनुकुल ही अपने ज्ञान या विज्ञान का भावसाधना के लिए उपयोग

करने वाला कला–कार ही सुकवि कहलाता है।" संस्कृत के पिछले खेमे के कवियों में पण्डिती की वाह–वाह लूटने के लिए पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृति अवश्य मिलती है किन्तु हिन्दी का यह युग दूसरा ही था। हिन्दी के कवियों के समक्ष सहृदय–समाज की वाह–वाह लूटने का प्रश्न था, अतः स्वभावतः उन्होंने पांडित्य प्रदर्शन के करतबों में कोई रुचि नहीं ली। सूर, तुलसी, मीरा आदि की लोकप्रियता का रहस्य ही यह है कि इन सभी कवियों ने सहृदय–समाज के लिए काव्य सृजन किया था, पंडितों के लिए नहीं। हिन्दी के केवल केशव ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने घोर–संस्कृतनिष्ठ, शब्दावली और कल्पना के चमत्कार का प्रदर्शन किया और इसके लिए उन्हें 'कठिन काव्य का प्रेत' की उपाधि भी ढोनी पड़ी। इस संबंध में आलोचकों की एक विचित्र प्रवृति के दर्शन भी होते हैं–एक और तो ऐसे कवि हैं जो कि अवसर मिलते ही अपनी विद्वता और पांडित्य का प्रदर्शन करने से नहीं चूकते, दूसरी और आलोचकों की भी कमी नहीं है, जोकि किसी कवि की रचना में आयुर्वेद के चार शब्दों को ढूँढ कर उसे आयुर्वेद की संज्ञा देने में एक क्षण का विलम्ब नहीं करते। होता यह है कि कवि की रचनाओं में किसी शास्त्र विशेष की दो–चार स्थूल–सी बातें मिलीं और उस कवि को उस शास्त्र का महान ज्ञाता मान लिया गया। उदाहरण के लिए बिहारी के निम्न दोहे देखिए जिनके आधार पर लोगों ने बिहारी को महान् आयुर्वेदज्ञ मान लिया है –

**"बहु धनु लै अहसानु कै पारौ देत सराहि। बैध–बधू हंसि भेद सौ, रही नाह मूंह चाहि।।**

**मैं लखि नारी ज्ञान करि, राख्यौ निरधारु यह। वह ई रोगु–निदानु, वहै बैध औषधि वहै।।**

**यह बिनसत नग राखि कै, जगत बड़ौ जस लेहु। जरी विषम जुर जाइये, आय सुदरमन देहु।।**

उपर्युक्त दोहों में आयुर्वेदशास्त्र से संबंधित पाँच शब्दों का प्रयोग किया गया है। पारौ अर्थात् पारद भस्म, नारी ज्ञानु अर्थात् नाड़ी विलान, रोगु निदानु अर्थात् रोग–निदान, विषम–जुर अर्थात् विषम ज्वर और सुदरसन अर्थात् सुदर्शन। निश्चय ही ये पाँचों शब्द ऐसे हैं जिनसे कोई भी सामान्य ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भली भाँति परिचित होगा। यदि किसी भी कवि को आयुर्वेदज्ञ अथवा गणितज्ञ अथवा ज्योतिषविद् मकानने का यही आधार है, तो कवि, कवि न रह कर वैद्य, गणितज्ञ और ज्योतिषी कहलाएँगे। कवि रत्नाकर ने भी "सुदरसन" का प्रयोग किया है, तो उन्हें भी वैधराज मान लिया जाए। ठीक इसी आधार पर बिहारी को, उनके कुछ दोहों के आधार पर गणितज्ञ की गौरवपूर्ण पदवी से विभूषित किया गया है। यह अवलोकनीय है कि निम्न दोहों में गणित शास्त्र की कौन–सी बारीकियाँ दी हुई हैं –

**"कहत सबै, बैंदी दियै आँक दसगुनौ होतु। तिय लिलार बैंदी दियैं अगिनितु बढत उदोतु।।**

**कुटिल अलक छुटि परत मुख, बठिगौ इतौ उदोतु। बंक बिहारी देत ज्यौं दाम रूपैया होतु।।"**

उपर्युक्त दोनों दोहों में गणित शास्त्र की दो बातें कही गई हैं–पहली बात तो यह है कि किसी अंक के साथ शून्य लगा देने से संख्या दस–गुनी हो जाती है और दूसरी यह है कि किसी अंक के दाई और बंक बिहारी देने से रकम का द्योतन होता है। इस संबंध में एक विद्वान आलोचक ने ठीक ही कहा है कि "गाँव का मामूली–सा बनिया भी इस बात को जानता है कि रूपया सूचक अंक एक तिरछी पाई खींच कर उसके अन्दर की (बायीं) और रखा जाता है और दाम सूचक दायीं और पर बेचारे की गणितज्ञता कोई नहीं मानता, परन्तु बिहारी को जिन्होंने दोहे में यह भी नहीं बताया कि बंक बिहारी दायीं और देने से दाम रूपया होता है या बायीं और, अनेक आलोचक, 'रामानुजम्' मान बैठे हैं।" इसी प्रकार बिहारी के ज्योतिष ज्ञान की बात ली जाती है। इस संबंध में बिहारी के निम्न पाँच दोहे द्रष्टव्य है –

**(i) "पत्रा ही तिथि पाइयै वा घर कै चहुँ पास। नित प्रति पून्यौई रहे आनन–ओप–उजास।।**

**(ii) चित पितु मारक लोग गनि, भयौ भयै सुत–सोनु। फिरि दुलस्यौ जिय जोइसी, समझै जारज जोगु।।**

**(iii) भाल लाल बेदी ललन, आखत रहे बिराणि। इन्दुकला कुज में बसी, मनौ राहु भय भाणि।।**

**(iv) तिय–तिथि तरन–किसोर–वय पुष्पकाल–सम दोनु। काहू पुन्यन पाइयतु, वैस–सन्धि–संकोनु।।**

**(v) सनि कज्जल, चख–झख लगन उवज्यौ सुदिन सनेहु। क्यों न नृपति है भोगवै, लहिं सुदेसु सबु देहु।।**

उपरोक्त पाँच दोहों में से पहले तीन दोहों में पत्रा, तिथि, पूर्णिमा, मारक, जारजयोग, राहु आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है जोकि निश्चय ही ज्योतिष के विशिष्ट ज्ञान का परिचायक नहीं है। इन शब्दों का प्रयोग सामान्य ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी प्रायः करता रहता है। पाँचवें अर्थात् अन्तिम दोहे में अवश्य ही ज्योतिष–शास्त्र की बात का वर्णन है जोकि सामान्य व्यक्ति नहीं कर सकता। इस दोहे पर जातक–संग्रह के निम्न श्लोक का सुस्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है –

**"तुला को दण्डमीनस्थो, लग्नस्तोऽपि शनैश्चरः। करोति नृपतेर्जन्म, वंशे च नृपतेर्भवेत।।**

अर्थात् जिस बालक के जन्म लग्न में तुला, धनु और मीन के शनि स्थित होते हैं, वह बात राजवंश में जन्म लेता है। इसी प्रकार बिहारी के निम्न दोहे में पुनः उनका ज्योतिष–ज्ञान परिलक्षित होता है। बिहारी के इस दोहे का विवेचन करने से पूर्व निम्न श्लोक देखिए–

**"एक नाड़ीसमारुढौ चन्द्रमाधरणीसुतौ। यदि तत्र भवेज्जीवस्त दैकार्णपिता मही"।।**

अर्थात् जब चन्द्रमा, मंगल और बृहस्पति, एक ही नाड़ी पर स्थित होते हैं तो इतनी वर्षा होती है कि पृथ्वी ही समुद्र का रूप धारण कर लेती है। इस श्लोक के सन्दर्भ में बिहारी का निम्न दोहा देखिए –

**"मंगल बिन्दु सुरंगु, मुख ससि केसरि–आड़ गुरू। इक नारी लहि संगु, रसमय किय लोचन जगत"।।**

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बिहारी को गणित और आयुर्वेद का भले ही विशिष्ट ज्ञान न हो किन्तु ज्योतिष का उन्हें निश्चय ही अच्छा ज्ञान था। कतिपय आलोचकों ने बिहारी के कुछ दोहों के आधार पर उन्हें पौराणिक भी घोषित कर दिया है। इस दृष्टि से इन आलोचकों ने बिहारी के निम्न दोहों को आधार माना होगा–

**"पिय बिछुरन कौ दुसह दुख, हरषु जात प्यौसार। दुरजोधन लौं देखियत, तजत प्रान इहिबार।।**
**मोर मुकुट की चन्द्रकनि, यों राजत नन्द नन्द। मनु ससि–सेखर की अकस किय सेखर सतचन्द।।**
**रह्यौ ऐचि अन्त न लहै, अवधि दुसासन वीर। आली बाढत बिरह ज्यों पंचाली के वीर।।**
**विरह–विद्या जल परस बिन, बसियत मो–मन तात। कछु जानत जल–थंभ–निधि, दुरजोधन लौं लात।।**
**बसि संकोच–दस–बदन बस, साँच दिखावत बाल। सिय लौं सोधति तिय तनहिं, लगनि अगनि की ज्वाल।।**
**प्रलय करन बरसन लगे जुरि जलधार एक साथ। सुरपति–गर्व हरयौ हरषि गिरिधर, गिरिधर हाथ।।**
**यों दल काठे बलख तैं तूं जयसाह भुआल। अदर–अधासुर के परे ज्यौ हरि गाय–गुवाल।।**
**छवैं छिंगुनी पहुँचौ गिलत, अति दीनता दिखाय। बलि बामन को ब्यौंत सुनि, को बलि तुम्हैं पत्याय"।।**

उपर्युक्त दोहे में भारतीय पुराणों के अनेकानेक प्रसंगों का उल्लेख है किन्तु ये सारे प्रसंग ऐसे हैं जोकि किसी भी भारतीय के लिए नितान्त अपरिचित नहीं कहे जा सकते। इस प्रकार के प्रकारण जनजीवन में इतने घुलमिल जाते है कि सामान्य व्यक्ति के लिए वे अजाने नहीं रह जाते। अतः इस आधार पर बिहारी को पौराणिक कवि मान लेना उनके प्रति अन्याय कहा जायेगा। वस्तुतः इस प्रकार के प्रसंग बिहारी के दोहों में ही नहीं अनेक अन्य भक्त कवियों की रचनाओं में सहज उपलब्ध हैं किन्तु ऐसी रचनाओं को लेकर ही उन कवियों का नामकरण नहीं कर दिया जाता।

एक बात और, यदि बिहारी को आयुर्वेद–शास्त्र संबंधी कतिपय दोहों को लेकर उन्हें आयुर्वेदज्ञ माना जाता है और गणित की कुछ एकदम सीधी सादी बातों का उल्लेख करने पर उन्हें गणितज्ञ का स्थान दे दिया जाता है तो उनके निम्न दोहे के बल पर उन्हें एक महान् और कुशल बधिक मानने की बात पर भी विचार किया जाना आवश्यक होगा –

**"खौरि पनिच, भृकुटि धनुष, बधिकु–समरु तजि कानि। हनत तरुन मृग, तिलक–सर, सुरक भाल भरि तानि"।।**

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बिहारी को अनेक शास्त्रों, विद्याओं आदि का सामान्य ज्ञान अवश्य था। इस संबंध में आचार्य मम्मट के काव्य हेतु संबंधी विवेचन को ध्यान में रखना होगा। आचार्य मम्मट के अनुसार शास्त्रज्ञान से अधिक महत्व लोकज्ञान का है। वस्तुतः सभी शास्त्रों, विद्याओं आदि के ज्ञान से कहीं अधिक उपयोगी लोक–ज्ञान है। जिस कवि ने संसार को खुली आँखों से देखा और परखा है, उसकी कविता में जीवन का सार सहज ही समाहित हो जाता है। बिहारी की सफलता का रहस्य उनकी बहुज्ञता नहीं बल्कि उनकी यह सूक्ष्म दृष्टि है जिससे उन्होंने अपने युग के लोकजीवन की सभी बारीकियों को देखा और पूरी ईमानदारी से व्यक्त किया। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में "लोक के भीतर आँख खोलकर चलने और विभिन्न प्रकार के परिपक्व अनुभव प्राप्त करने में बहुज्ञता का अधिकाँश पेट भरा जाता है। जब कवि अपने इस ज्ञान और अनुभव के भण्डार को शब्द की सुन्दर मंजूषाओं में भर कर संसार के सामने देखता है, वह मानो उसकी कच्ची वस्तु से पक्का माल तैयार कर उसे देता है, लोक की वस्तु जनता जनार्दन को ही समर्पित कर देता है।" बिहारी की लोक पर्यवेक्षण की सीमाएँ निश्चय ही संकुचित थी और इस प्रकार स्वभावतः उनके अनुभव का दायरा भी सीमित था, तथापि इन सीमाओं के भीतर कुछ भी ऐसा नहीं था जो उनकी सूक्ष्म–दृष्टि से बचा रहा हो। उनकी सतसई में उनका युग पूरी समग्रता के साथ चित्रित किया है। सामाजिक परिस्थितियों के अन्तर्गत तत्कालीन समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार के धार्मिक विश्वासों तथा अंधविश्वासों आदि का चित्रण किया है। उस युग में प्रचलित तीज–त्यौहारों का भी सजीव वर्णन किया गया है। बिहारी ने होली, तीज, दशहरा, गणेशपूजन तथा संक्रान्ति आदि विभिन्न पर्वो का सजीव वर्णन किया है। इसी प्रकार तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के अन्तर्गत मुगल शासकों की आपसी दलबन्दी, सुलतानों और अमीरों के संघर्ष, दुहरे शासन की चक्की में पिसती हुई निरीह जनता की असहायावस्था का मार्मिक वर्णन किया गया है। बिहारी ने यत्र–तत्र नीति और भक्ति विषयक दोहों की रचना भी की है। तथापि इन सबके मूल में उनकी पर्यवेक्षण क्षमता का ही महत्व है, उनकी बहुज्ञता का नहीं, उनके नीति विषयक दोहे अधिकांशतः उनके व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियों के परिचायक हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बिहारी का निरीक्षण–क्षेत्र व्यापक था किन्तु उन्हें किसी शास्त्र अथवा विद्या का महान् विद्वान मान लेना उनके प्रति अन्याय करना होगा। उनके दोहों की सफलता और लोकप्रियता के मूल में उनकी बहुज्ञता नहीं, उनकी पर्यवेक्षण दृष्टि है। एक विद्वान् आलोचक के शब्दों में, "जन–जीवन से अनेक प्रचलित बातों को उठाकर उन्होंने अपने काव्य में यथावसर गूँथ दिया है। जो भी वस्तु उनकी दृष्टि में आई, जिस किसी का निरीक्षण उन्होंने किया उसकी तह तक पहुँच जाने की उनमें विलक्षण शक्ति थी।" उनमें विलक्षण शक्ति थी।"

# अध्याय – 8
# सतसैया की दोहे.....

**सतसैया के दोहरे ज्यौं नावक के तीर। देखने में छोंटे लगै धाव करे गम्भीर।।**

इस दोहे के आधार पर बिहारी कवि की अर्थ गम्भीरता, भावविवशता एवं सुगठित पदावली की व्याख्या कीजिए।

काव्य का मूल तत्व भाव है। जिस कविता में भावों का सौन्दर्य नहीं, वह केवल शब्द चमत्कार ही उत्पन्न कर सकती है, अन्तर्मन का स्पर्श नहीं कर सकती। भाव–सौन्दर्य का सीधा संबंध काव्य के भावपक्ष से होता है। काव्य शास्त्र में काव्य को स्थूलतः दो भागों में बाँटा जाता है–भाव पक्ष और कला पक्ष। भाव पक्ष का आशय भाव संयोजना से होता है और कला पक्ष का संबंध अभिव्यंजना से होता है। आदर्श काव्य में कला पक्ष अर्थात् काव्य का बहिरंग उतना ही समृद्ध होता है जितना कि उसका भावपक्ष अर्थात् अन्तरंगा। बिहारी की गणना उन गिन–चुने कवियों में की जाती है जिनके काव्य का बहिरंग और अन्तरंग समान रूप में समृद्ध है। बिहारी–सतसई की एक अन्य विशेषता यह है कि दो–दो पंक्तियों के दोहों में कवि ने अपार भाव–सम्पदा का समावेश कर दिया है। कदाचित् इसी विशेषता को दृष्टिगत रखते हुए किसी आलोचक कवि ने यह कहा भी है कि –

**"सतसैया के दोहरे, ज्यौं नावक के तीर। देखन में छोटे लगैं घाव करैं गम्भीर"।।**

अर्थात् सतसई के दोहे नावक अर्थात् शिकारी के बाणों की तरह हैं जो देखने में बहुत छोटे लगते हैं किन्तु लक्ष्य संधान की कसौटी पर पूरी तरह खरे उतरते हैं। कवि ने 'गागर में सागर' भरने की उक्ति चरितार्थ की है। उनके एक–एक दोहे में भावों की अपरिमित सम्पदा बिखरी पड़ी है। बिहारी की इस भाव संयोजना के प्रमुख आधार हैं–शब्द योजना, क्रियाविदग्धता, वाग्विदग्धता, ध्वनि योजना, मुद्राविधान। इन सभी तत्वों का संक्षिप्तता विवेचन निम्नानुसार है –

## (क) शब्द योजना

शब्द योजना का आशय शब्दों के कुशल प्रयोग से होता है। बिहारी का भाषा पर असाधारण अधिकार था अतः उन्होंने शब्दों का अत्यन्त कुशल प्रयोग करके भावसृष्टि की है। इसी कारण उनके कुछेक दोहे तो ऐसे हैं कि उनके दो–दो अथवा तीन–तीन अर्थ निकाले जा सकते हैं। उदाहरण के लिए बिहारी सतसई का आरम्भिक दोहा देखिए जिसमें कवि ने कतिपय शब्दों का क्लिष्ट प्रयोग तीन प्रकार के अर्थों की सृष्टि की है –

**"मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ। जा तन की झाई परै, स्यामु हरित–दुति होइ।।"**

प्रस्तुत दोहे में झाई, स्यामु और हरित–दुति का प्रयोग श्लिष्टार्थक है और इस आधार पर इस दोहे के निम्नानुसार तीन अर्थ निकाले जा सकते हैं –

(i) कवि कहता है कि जिसके शरीर का प्रतिबिम्ब पड़ने से श्याम वर्ण वाले श्रीकृष्ण हरियाली जैसे वर्ण वाले हो जाते हैं, वही चतुर राधिका मेरी भव बाधाओं का विनाश करे।

(ii) जिसके शरीर की झाँकी श्रीकृष्ण के नेत्रों में पड़ते ही अर्थात् श्रीकृष्ण को उनके दर्शन होते ही वे (श्रीकृष्ण) आनन्दित हो उठते हैं, वही चतुर राधिका मेरे कष्टों का निवारण करे।

(iii) जिनके शरीर का प्रतिबिम्ब हृदय में पड़ने से अथवा हृदय में जिनका ध्यान धारण करते ही श्याम वर्ण वाले पदार्थ जैसे कि पाप, दुख आदि हृत आभा वाले हो जाते हैं अर्थात् अपना दुःखद प्रभाव छोड़ देते हैं, वही चतुर राधिका मेरी सांसरिक बाधाओं का विनाश करे। बिहारी ने अपने दोहों में भाव–संयोजना के निमित्त साभिप्राय विशेष्यों और विशेषणों का प्रयोग भी किया है। उदाहरण के लिए निम्न दोहा देखिए –

**"बड़े कहावत आप सौं, गरुवे गोपीनाथ। तौ बदिहौं, जौ रखिहौं हाथ नुलखि मनु हाथ"।।**

प्रस्तुत दोहे में गोपीनाथ शब्द का प्रयोग अत्यन्त सार्थक है। सखी कहती है कि 'हे नायक, यद्यपि तुम गोपियों के नाथ हो अर्थात् अनेक गोपियों के सौन्दर्य को देख चुके हो, तथापि जिस नायिका के संबंध में मैं कह रही हूँ वह अत्यधिक सुन्दर है और उसके सौन्दर्य के सामने अन्य नायिकाओं का सौन्दर्य फीका दीखता है। हे नायक, जब तुम उसके शरीर के एक ही अंग अर्थात् उसके हाथ देखकर ही अपनी सुधि भूल बैठे हो तो उसके सम्पूर्ण शरीर को देखकर तुम्हारी क्या गति होगी। इस प्रकार बिहारी सतसई में एक समर्थ और समृद्ध शब्द योजना के दर्शन होते हैं।

## (ख) क्रियाविदग्धा

बिहारी ने क्रियाविदग्धा के माध्यम से भी भावों के सौन्दर्य की सृष्टि की है। जब कोई नायिका अथवा नायक अपने भाव को इतनी कुशलता के साथ व्यक्त करते हैं कि वे दो ही समझ सकें तो कार्य की इस कुशलता को क्रियाविदग्धा कहते हैं बिहारी की अनेक नायिकाओं में इस क्रियाविदग्धा के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखिए जिसम ऐसी ही विदग्धता नायिका का चित्रण किया गया है –

**"हरषि न बोली, लखि, ललनु निरखि अमिलु संग साधु।**
**आँखिनु ही मैं हँसिधरयौ, सीस हियै धरि हाथु"।।**

अर्थात् जब नायिका ने नायक को देखा तो वह हर्षित हो उठी किन्तु तभी उसने नायक के साथ कुछ अपरिचित लोगों को देखा अतः वह मुख से कुछ नहीं बोली। आँखों में ही हँसकर उसने अपना हाथ अपने हृदय पर रख लिया। नायिका की इस क्रिया से पुनः पाँच अर्थों का बोध होता है –

(i) हे नायक, तुम मेरे हृदय में बसते हो और जो तुमने मुझसे मिलने के लिए कहा है तो तुम्हारा वह आदेश मुझे अनिवार्य है।

(ii) हे नायक, मैं शिव की सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैं आधी रात को तुमसे निश्चय ही मिलूँगी।

(iii) हे नायक, दोनों पर्वतों के बीच में पड़ने वाले कुंज में मैं कृष्ण पक्ष की द्वितीया को तुमसे मिलूँगी।

(iv) हे नायक, मैं यमुना तट स्थित शिवालय में तुमसे मिलूँगी।

(v) हे नायक, मुझे मिलने की प्रतिज्ञा का स्मरण है और मैं सूर्यास्त के समय अवश्य ही तुमसे मिलूँगी।

## (ग) वाग्विग्धता

वाग्विदग्धता से अभिप्राय वाक्चातर्य से होता है। बिहारी की खंडिता नायिका अपनी वाग्विदग्धता का परिचय देती है और धूर्त नायक की भर्त्सना करती है। उदाहरण के लिए निम्न दोहा देखिए – जिसमें खंडिता नायिका परस्त्री के साथ रति क्रिया करके लौटे हुए नायक की भर्त्सना कर रही है–

**"पलनु पीक, अंजनु अधर, धरे महावरु भाल। आज मिले सु भली करी, भले बने हौ, लाल"।।**

अर्थात् परस्त्री गमन करके लौटे नायक को देखकर खंडिता नायिका कहती है कि "हे नायक तुम्हारे पलकों पर लगे हुए पीक (नायिका के पान से रंग होठों द्वारा नायक की पलकों को चूमने का कारण), अधरों पर लगे हुए काजल (नायक द्वारा नायिका के काजल लगे नेत्रों को चूमने के कारण) से सारी वास्तविकता का पता चल रहा है। तुम इस रूप मे बहुत अच्छे लग रहे हो।" नायिका का कहने का आशय यह है कि "परस्त्री गमन के इन चिह्नों को लेकर मेरे पास आने में तुम्हे तनिक भी संकोच नहीं हुआ।" इस प्रकार नायिका ने अपने वाक्चातुर्य द्वारा नायक की धूर्तता को प्रकट कर दिया है और साथ ही उसकी भर्त्सना भी कर दी है।

## (घ) ध्वनि योजना

काव्य में ध्वनि–योजना का अत्यधिक महत्व होता है। काव्य का वास्तविक सौन्दर्य उसके अभिधार्थ में नहीं, उसके ध्वन्यार्थ में होता है। बिहारी के अनेक दोहों में ऐसे ध्वन्यार्थ का सौन्दर्य देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए निम्न दोहा देखिए जिसमें नायिका प्रत्यक्षतः तो केवल ग्रीष्म के ताप का वर्णन कर रही है किन्तु परोक्षतः वह कुछ और ही कहना चाहती है –

**"बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन–तन माह। देखि दुपहरी जेठ की, छाँहौ चाहति छाँह"।।**

अर्थात् जेठ की दुपहरी में ग्रीष्म की प्रचण्डता इतनी बढ गई कि छाँह भी छाँह की कामना करती है और इसी कारण छाया सघन वनों में अर्थात् घरों में छिपी रहती है। यह तो केवल अभिधार्थ है। वस्तुतः नायक और नायिका ने केलिक्रीडा की और जब उसके उपरान्त नायक जाने को उद्धत हुआ तो नायिका ने ग्रीष्म की प्रचंडता का वर्णन किया और इसी प्रकार परोक्षतः नायक से न जाने का आग्रह किया। इसी प्रसंग में एक और दोहा देखिए –

**"लिखन बैठि जाकी छबी, गहि गहि गरब गरुर। भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर"।।**

अर्थात् अंकुरित यौवना नायिका की एक सखी नायक से कह रही है कि "हे नायक, उस अंकुरित यौवना के सौन्दर्य का यथार्थ चित्र अंकित करने के लिए विभिन्न कलाकार 'गर्व सहित तैयार हुए किन्तु कितने ही चतुर एवं कुशल कलाकार उसे सौन्दर्य के चित्रांकन में असफल हुए और इस कारण हतबुद्धि भी हो गए।" कवि के कहने का आशय यह है कि अंकुरित यौवना के सौन्दर्य का चित्रांकन करने के लिए संसार के सारे चित्रकार असफल रहे और इस असफलता के कारण वे सभी हतबुद्धि हो गए। यह तो केवल अभिधार्थ हुआ। इस दोहे के अनेक ध्वन्यार्थ हो सकते हैं –

1. नायिका के अपार सौन्दर्य को देखकर चित्रकार को स्तम्भ सात्विक हो गया होगा और इस कारण उसके हाथों ने काम करना बन्द कर दिया होगा। यह भी हो सकता है कि किसी को कम्प सात्विक हो गया और हाथों के काँपते रहने के कारण वह उस नायिका के सौन्दर्य का चित्र उतारने में असफल रहा हो। किसी को प्रस्वेद सात्विक हो गया होगा। ऐसी स्थिति में नायिका के चरित्र का अंकन कैसे सम्भव हो पाता। अथवा अश्रु सात्विक हो जाने के कारण चित्रकार को कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा हो।
2. उस नायिका के सौन्दर्य को चित्रित करने में अनेक कठिनाइयाँ थीं। यह संभव है कि उसका रूप लावण्य इतना अधिक आकर्षक हो कि जब चित्रकार की दृष्टि उस पर पड़ती हो वह वहीं चिपकी रह जाती हो और फिर चित्र खींचने की सुधि कैसे रह सकती है।
3. यह भी संभव है कि उस नायिका का सौन्दर्य इतना चित्ताकर्षक और असीमित हो कि उसे सीमित आकार वाले फलक पर अंकित करना संभव ही न हो।
4. यह भी संभव है कि वयःसन्धि अवस्था में होने के कारण नायिका का सौन्दर्य प्रशिक्षण परिवर्तित होता रहता हो। होता यह होगा कि चित्रकार नायिका का एक चित्र तैयार करता होगा और जब इस चित्र का मिलान नायिका से करता होगा तो तब नायिका का सौन्दर्य भी परिवर्तित हो जाता होगा।
5. ऐसा भी संभव है कि नायिका इतनी अधिक सुकुमारी हो कि ज्यों ही चित्रकार उसके सौन्दर्य को चित्रांकन करता होगा, वह स्वतः खिंची चली आती हो।
6. ऐसा भी संभव है कि नायिका के अपार लावण्य को देखकर चित्रकार की आँखें चुंधिया जाती हों और फिर वह नायिका को देख ही नहीं पाएगा तो उसका चित्र कैसे उतार सकेगा।
7. यह भी संभव है कि नायिका के शरीर की कान्ति के कारण उसके अंग दिखाई ही नहीं पड़ते हों।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपरोक्त दोहे के कितने अधिक ध्वन्यार्थ निकल सकते हैं। बिहारी की यह सफलता उनकी मौलिकता की परिचायक है।

## (ङ) मुद्राविधान

नायक और नायिका के विकारों को मुद्राएँ कहा जाता है। शास्त्रीय भाषा में इन कायिक, विकारों को अनुभाव कहा जाता है। उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखिए जिसमें कथावाचक मिश्र जी पुराणों के आधार पर परस्त्रीगमन करने वाले नायक की निन्दा कर रहे हैं किन्तु उनके इस उपदेश को सुनकर उनकी प्रेमिका (जोकि श्रोताओं में से एक थी) मुस्करा पड़ी और उसे देखकर मिश्र जी भी अपनी मुस्कार को बड़ी कठिनाई से रोक पाए –

**"पर–तिय–दोषु पुरानु सुनि, लखि भुलकी सुखदानि। कसु भरि राखी मिश्र हूँ मूँह–आई मुसकानि"।।**

अर्थात् जब नायिका ने कथावाचक मिश्र जी के मुख से परस्त्रीगमन के दोष की बात सुनी तो वह मुस्करा पड़ी क्योंकि उसे यह ज्ञात था कि मिश्र जी केवल उपदेश दे रहे हैं। (वे स्वयं परस्त्रीगमन के अपराधी हैं) और मिश्र जी ने नायिका को मुस्कराते हुए देखा तो वे भी मुस्करा पड़े किन्तु जनता की दृष्टि से बचाने के लिए उन्होंने अपनी मुस्कार पर नियंत्रण रखा।

## (च) अन्योक्ति विधान

अन्योक्ति विधान का आशय प्रस्तुत अर्थ में अप्रस्तुत अर्थ की प्रतीति कराने से होता है। कई बार कवि की किन्हीं रचनाओं

से प्रस्तुत अर्थ के साथ–साथ अप्रस्तुत अर्थ की भी प्रतीत होती है। और उसी को अन्योक्ति विधान कहते हैं। अन्योक्ति विधान की दृष्टि से बिहारी को अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई है। बिहारी को अन्योक्ति अधिकाँशतः उनके व्यक्तिगत जीवन से सम्बद्ध है। जब बिहारी के आश्रयदाता की मृत्यु हो गई तो बिहारी को यथोचित सम्मान नहीं मिला और उसी बात को ध्यान में रखते हुए बिहारी कहते हैं –

**"जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार। अब, अलि रही गुलाब में, अपत, कंटीली डार"।।**

अर्थात् हे भ्रमर, जब तुमने इस गुलाब के पौधे पर सुगन्धितयुक्त गुलाब के फूल देखे थे, वह तो बहार के दिन थे जो अब नहीं रहे। अब तो गुलाब के इस पौधे पर न तो पत्ते रहे हैं और न गुलाब के फूल। केवल काँटों युक्त डालियाँ रह गई हैं। इसी प्रकार बिहारी का निम्न बहुचर्चित दोहा देखिए जिसने महाराणा जयसिंह को उनके कर्तव्य के प्रति सजग कर दिया था

**"नहि परागु, नहिं मधु, नहिं विकासु इहिं काल। अली, कली ही सौं बन्ध्यौ, आगैं कौन हवाल"।।**

अर्थात् हे भ्रमर, अभी तो इस कली में न पराग है, न मधु है और न पूरी तरह विकसित ही हो पाई है। जब अभी से इसके साथ बंधा है तो तब तेरी क्या दशा होगी जबकि यह पूर्णतः विकसित होकर एक सुन्दर फूल का रूप धारण कर लेगी। अन्योक्ति से इसका अर्थ महाराजा जससिंह के संदर्भ में लगाया जाता है। राजा जयसिंह राजकाज को भूलकर अपनी नवपरिणीता के साथ रसविहार में मग्न थे। बिहारी ने विलास और वैभव में डूबे हुए राजा जयसिंह को नई दृष्टि दी, उसके कर्तव्य का बोध कराया। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में, "इस विवेचन से स्पष्ट है कि अनेक प्रकार के आधारों से बिहारी ने अपने दोहों में भाव–गम्भीर्य की संयोजना की है। दोहे जैसे छोटे छन्द में बिहारी ने जितने भाव भर दिए हैं, दूसरे कवि अन्य लम्बे छन्दों को अपनाकर भी वैसी भाव–संयोजना नहीं कर पाये हैं।"

# अध्याय – 9
# सतसई परम्परा में बिहारी सतसई का स्थान

भारतीय साहित्य में सतसई परम्परा का आरम्भ पाँचवीं शताब्दी में कवि हाल द्वारा विरचित गाहा सतसई अर्थात् गाथा सप्तशती से माना जाता है। इस सतसई की लोकप्रियता का परिणाम यह हुआ कि संस्कृत और हिन्दी भाषा के अनेक सतसइयों की रचना संभव हो पाई। 'सतसई' का शाब्दिक अर्थ है—सात सौ छन्दों का संग्रह। फलतः हिन्दी और संस्कृत में इस प्रकार की अनेक सतसइयाँ लिखी गईं। प्रस्तुत संदर्भ में हमारा विवेचन केवल हिन्दी साहित्य की सतसई परम्परा संस्कृत और प्राकृत की सतसई—परम्पराओं से पूरी तरह प्रभावित है। हिन्दी साहित्य में सतसई परम्परा का आरम्भ गोस्वामी तुलसीदास द्वारा विरचित 'तुलसी सतसई' से माना जाता है। 'तुलसी सतसई' की रचना 17वीं में हुई थी। तभी 'रहीम सतसई' का भी प्रणयन हुआ था। तदुपरांत 18वीं शताब्दी में पाँच सतसई लिखी गई—मतिराम सतसई, बिहारी सतसई, रसनिधि सतसई तथा वृन्द सतसई। 19वीं शताब्दी में पुनः दो सतसईयों की रचना हुई—राम सतसई तथा विक्रम सतसई। बीसवीं शताब्दी में वियोगी हरि की 'वीर सतसई' का प्रणयन हुआ। हिन्दी साहित्य की इस सतसई परम्परा का संक्षिप्त विवेचन नीचे किया गया है।

## (क) तुलसी सतसई

'तुलसी सतसई' की रचना महाकवि तुलसीदास ने विक्रमी संवत 1642 में की थी। इस सतसई में कुल मिलाकर 747 दोहे हैं। इस सतसई में सात सर्ग हैं अथवा प्रकरण हैं और यह दोहा संकलन विशुद्ध रूप से एक भक्तिपरक रचना है। कवि तुलसीदास ने प्रस्तुत सतसई के पहले सर्ग में भक्ति पद्धति का निरूपण किया है। इसके अतिरिक्त उपासनापरा—भक्ति, कर्म सिद्धान्त, ज्ञान सिद्धान्त, आत्मबोध संबंधी विवेचन, रामभजन संबंधी दोहे और अन्त में राजनीतिशास्त्र संबंधी कुछ दोहे भी हैं। प्रस्तुत सतसई में कवि ने एक उपदेशक की भूमिका का निर्वाह किया है। दोहामात्रिक छन्द में रचित यह सतसई भक्ति और ज्ञान संबंधी कवि के मौलिक चिन्तन की परिचायक है।

## (ख) रहीम सतसई

कवि रहीम ने भी तुलसी—सतसई की शैली पर एक सतसई की रचना की थी किन्तु अभी तक 'रहीम सतसई' के नाम से कोई दोहा—संकलन देखने में नहीं आया। तथापि कवि रहीम द्वारा विरचित दोहावली अवश्य मिलती है जिसमें केवल 300 दोहे संग्रहीत हैं। इस दोहावली के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि रहीम ने अपने अनुभव के आधार पर जीवन के बहुविध पक्षों का सफल उद्‌घाटन किया है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में तुलसी और रहीम की सतसइयों की परस्पर तुलना करते हुए कहा है कि 'यदि इसी 'दोहवली' को उनकी अपूर्ण सतसई माना जाए, तो जैसाकि अनेक विद्वान स्वीकार करते हैं तो यह कहा जा सकता है कि तुलसी की भाँति रहीम की सतसई भी उपदेश—प्रधान है। रहीम को जीवन के विविध पक्षों का गहरा अनुभव था, इसीलिए उनके दोहों में नीति की जो बातें कही गई हैं, वे व्यावहारिक होने के कारण अत्यन्त प्रभावपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी हैं। यदि इनके वर्ण्य विषयों की तुलसी के वर्ण्य विषयों से तुलना की जाए तो यह निष्कर्ष सहज ही निकल आता है कि तुलसी के वक्तव्य का आधार ज्ञान है और रहीम के वक्तव्य का आधार अनुभव है।"

## (ग) मतिराम सतसई

'मतिराम सतसई' की रचना रीतिकाल के महान् कवि मतिराम के हाथों अठारहवीं शताब्दी में हुई थी। इस सतसई में दोहों की संख्या 703 है और इनमें से अधिकाँश दोहे प्रेम और शृंगार भावना से संबंधित हैं। 'मतिराम सतसई' की एक अन्यतम विशेषता यह है कि इसकी रचना भावों की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति के लिए की गई है। कवि ने अपने अन्तर्मन के भावों को पूरी ईमानदारी और सहजता के साथ व्यक्त किया है। इस कारण प्रस्तुत सतसई में भावों का स्वतः स्फूर्त आवेग और प्रवाह देखने को मिलता है। इसका मुख्य कारण यह था कि सतसई की रचना किसी आश्रयदाता राजा को प्रसन्न करने अथवा किसी अन्य स्वार्थ की पूर्ति के लिए नहीं की गई थी। अतः इस सतसई का कलापक्ष, भावपक्ष की तरह समृद्ध नहीं बन पाया है। प्रस्तुत सतसई में भावों की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति तो मिलती है, कला का उत्कर्ष निश्चय ही नहीं दीख पड़ता। तथापि अनेक दृष्टियों से 'मतिराम सतसई' हिन्दी की सतसई परम्परा में गौरवपूर्ण स्थान रखती है।

## (घ) बिहारी सतसई

'बिहारी सतसई' की रचना 18वीं शताब्दी रीतिकाल के महान् कवि बिहारीलाल के हाथों हुई थी। प्रस्तुत सतसई दोहों की कुल संख्या 713 है और इसकी रचना संवत् 1742 में हुई थी। कवि बिहारी ने सतसई में अपने युग की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का अत्यन्त सजीव वर्णन किया है। इन सभी पक्षों को लेकर कवि ने अपनी गहन एवं सूक्ष्म दृष्टि का परिचय दिया है। उनकी सतसई में यद्यपि प्रेम और श्रृंगार संबंधी दोहों की संख्या सर्वाधिक है तो भी उन्होंने अन्य विषयों के संबंध में भी अपने विचार व्यक्त किए हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि बिहारी अपनी युगीन परिस्थितियों से प्रभावित थे, तो भी यह निर्विवाद है कि उन्होंने आँखें बंद करके परिस्थितियों में बह जाना नहीं सीखा था। बिहारी ने अपने युग के विलासमय वातावरण को आँखें खोल कर देखा था और पूरी ईमानदारी से उसे व्यक्त भी किया है। उनकी विशेषता यह है कि उन्होंने बहाव में बहना नहीं सीखा था, परिस्थितियों का दास बन जाना उनकी प्रवृति में नहीं था, आश्रयदाता राजाओं की 'ठाकुर सुहाती' कहते रहना उनके स्वाभिमानी व्यक्तित्व के प्रतिकूल था। सांसारिक वैभव उनके लिए केवल साधन था साध्य नहीं। यह ठीक है कि जीवन यापन के लिए अर्थ की आवश्यकता रहती है किन्तु बिहारी केवल उसी सीमा तक धन की इच्छा रखते थे जहाँ तक कि मर्यादा बनी रहे और निर्वाह होता रहे। उन्होंने कहा भी है –

**"तौ अनेक औगुन भरिहिं, चाहै याहि बलाय। जौ मति संपतिहू बिना, जदूपति राखे जाइ"।।**

इस प्रकार 'बिहारी सतसई' का भावलोक समृद्ध और बहुरंगी है। इसी प्रकार कलापक्ष की दृष्टि से भी बिहारी सतसई हिन्दी साहित्य की सतसई परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में "जहाँ तक 'बिहारी सतसई' हिन्दी साहित्य की सतसई परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। इस विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि यह सभी प्रकार के काव्यगुणों से मंडित है और हिन्दी साहित्य में इसके साथ समान स्तर पर खड़ी होने वाली और दूसरी सतसई नहीं है।"

## (ड़) रसनिधि सतसई

'रसनिधि सतसई' की रचना पृथ्वीसिंह 'रसनिधि' ने 18वीं शताब्दी में की थी। इस सतसई में मुख्यतः प्रेम और श्रृंगार विषयक दोहे संग्रहीत हैं। कहीं– कहीं कवि रसनिधि ने भक्ति और नीति विषयक दोहों की रचना भी की है। इस सतसई पर बिहारी सतसई का भरा–पूरा प्रभाव देखा जा सकता है, यहाँ तक कि कतिपय दोहों में बिहारी सतसई के दोहों के भावों की पुनरावृति सी दीख पड़ती है।

## (च) वृन्द सतसई

'वृन्द सतसई' की रचना संवत् 1761 में हुई थी। कवि वृन्द विरचित उस सतसई में मुख्यतः नीतिपरक दोहे संग्रहीत हैं। वृन्द की इस सतसई की विशेषता भावों की मार्मिक एवं सशक्त अभिव्यंजना है। कवि ने व्यावहारिक जगत के रुचिपूर्ण दृष्टांतों के माध्यम से नीति की सूक्तियों की रचना की है। लोकप्रियता की दृष्टि से 'वृन्द सतसई' अत्यन्त सफल सतसई मानी जाती है।

## (छ) राम सतसई

'राम सतसई' का रचनाकाल 'संवत् 1860 एवं 1880 के मध्य माना जाता है। 'राम सतसई' वस्तुतः 'श्रृंगार सतसई' के रूप में विख्यात है। इस सतसई की रचना रामसहाय दास के हाथों हुई थी। प्रस्तुत सतसई में अधिकाँशतः श्रृंगारपरक दोहे संग्रहीत हैं। श्रृंगार के अतिरिक्त कवि ने कतिपय अन्य विषयों से संबंधित दोहे भी लिखे हैं।

## (ज) विक्रम सतसई

'विक्रम सतसई' की रचना बुन्देलखण्ड के राजा विक्रमसिंह के हाथों हुई थी। राजा विक्रमसिंह वस्तुतः बुन्देलखण्ड में धरखारी रियासत के शासक थे और इन्होंने संवत् 1839 से संवत् 1886 तक शासन किया था। इस सतसई में भी अधिकांश दोहे श्रृंगार परक हैं। इस सतसई पर भी 'बिहारी सतसई' का भरा–पूरा प्रभाव देखा जा सकता है।

## (झ) वीर सतसई

कवि वियोगी हरि ने सन् 1927 में 'वीर सतसई' की रचना की थी। प्रस्तुत सतसई में श्रृंगार के स्थान पर वीर रस की ही

प्रधानता है। वियोगी हरि ने पूर्ववती शृंगार–प्रधान सतसइयों के स्थान पर वीर रस प्रधान सतसई की रचना करके हिन्दी साहित्य की सतसई परम्परा में एक महत्वपूर्ण मोड़ ला दिया। उपर्युक्त सतसईयों के विवेचन से हिन्दी साहित्य की सतसई परम्परा की कतिपय सामान्य विशेषताएँ उभरती हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया गया है। पहली विशेषता तो यह है कि अधिकाँश सतसईयाँ शृंगार प्रधान हैं। तथापि कुछ सतसई (तुलसी, रहीम तथा वीर सतसई) ऐसी भी हैं जिनमें शृंगार रस का स्पर्श मात्र भी नहीं देखा जा सकता। दूसरी बात यह है कि सभी सतसइयों का नामकरण उनके रचयिताओं के नाम किया गया है। तीसरी बात का संबंध सतसई में दोहों की संख्या से है। सतसई का शाब्दिक अर्थ है सात सौ दोहों अथवा छन्दों का संकलन। हिन्दी की इन विभिन्न सतसईयों में एक भी ऐसी सतसई नहीं है जिसमें दोहों की सं० 700 ही हो। तुलसी सतसई में 747 दोहे हैं तो बिहारी सतसई में 713 दोहे हैं। मतिराम सतसई में दोहों की संख्या 703 हैं तो राम सतसई में यह संख्या 727 और विक्रम सतसई में 742 दोहे हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी की किसी भी सतसई में दोहों की संख्या के संबंध में किसी निश्चित परिपाटी अथवा सिद्धान्त का पालन नहीं किया गया है। सभी सतसईकारों ने अपने–अपने विवेकानुसार दोहों की रचना की है। चौथी बात यह है कि कुछ सतसईयों में दोहों के साथ–साथ सोरठा छन्द का भी प्रयोग किया गया है।

## हिन्दी की सतसई परम्परा में बिहारी सतसई का स्थान

हिन्दी की सतसई परम्परा की उपर्युक्त विशेषताओं पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये सभी विशेषताएँ सतसई के बहिरंग से संबंधित है। साहित्य अथवा काव्य के किसी भी प्रकार अथवा विद्या की तरह सतसई के भी दो पक्ष होते हैं–अन्तरंग और बहिरंग। अन्तरंग का आशय सतसई के भावपक्ष अथवा आन्तरिक प्रवृतियों से है। किसी भी सतसई की सफलता इन्हीं आन्तरिक प्रवृतियों पर निर्भर करती है। सतसई की इन आन्तरिक प्रवृतियों के संबंध में 'गाहा सतसई' के रचयिता कवि हाल ने मौलिक चिन्तन का परिचय दिया है। कवि हाल के अनुसार सतसई के आन्तरिक गुणों के अंतर्गत रमणीयता, अर्थगम्भीर्य, दोषों का अभाव तथा अलंकारों का समुचित निर्वाह आदि गुण आते हैं। उनके मतानुसार इन्हीं आन्तरिक गुणों के बल पर सतसई की सफलता एवं लोकप्रियता निर्भर करती है। इस दृष्टि से हाल की निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेख्य हैं–

**"परिमलणगुहा गुरुआ अलद्धविवरा सलक्खणाहरणा। यणआ कव्वालाव ध्व कस्स हिअए वा लगन्ति।।**
**(परिमलनसुखा गुरुका अलब्धविवराः सलक्षणाभरणाः। स्तनकाः काव्यालापा इव कस्य हृदय न लगन्ति)"।।**

अर्थात् जिस प्रकार मर्दन के फलस्वरूप सुख देने वाले, पुष्प, पीनता के कारण एक दूसरे के साथ सटे हुए, श्रीफल आदि जैसे और तिल आदि के चिह्नों तथा हार आदि धारण किए हुए नारी के कुच चित्तकर्षक होते हैं उसी प्रकार बार–बार पढ़ने से आनन्दित करने वाले, अर्थगौरव से युक्त काव्य–दोषों से हीन, लक्ष्यों और अलंकारों से युक्त काव्य अर्थात् सतसई सफल होती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर सतसई के आंतरिक और बाह्य गुणों का निर्धारण किया जा सकता है – (क) आन्तरिक गुण – (1) विचारित रमणीयता (2) अर्थ गम्भीर्य (3) दोषों का अभाव तथा (4) अलंकारों का समुचित प्रयोग। (ख) बाह्यगुण – (1) सतसई का नामकरण (2) छन्दों की संख्या (3) छन्दों की क्रय योजना (4) प्रमुख वर्ण्य विषय तथा (5) इतर विषय आदि। सतसई के इन बाह्य एवं आन्तरिक गुणों के परिप्रेक्ष्य में बिहारी सतसई का मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है। सर्वप्रथम आन्तरिक गुणों के निर्वाह पर विचार किया जाएगा। आन्तरिक गुणों के अन्तर्गत विचारित रमणीयता का आशय अर्थ की ऐसी रमणीयता से है जिसका आभास ध्यानपूर्वक विचार करने पर होता है। दूसरे शब्दों में अर्थ की जा रमणीयता सतही अथवा प्रत्यक्ष नहीं होती और जिसका उद्घाटन विचार करने पर होता है, उसे विचारित रमणीयता का गण कहा जाता है। जिस दोहे का अर्थ एक बार पढ़ने पर ही स्पष्ट हो जाता है, उसमें कोई आकर्षण नहीं होता। नारी के कुचों का सौन्दर्य उनके ढके रहने पर ही सर्वाधिक वरेण्य है जिसका उद्घाटन ध्यानपूर्वक विचार करने पर ही सम्भव हो पाता है। बिहारी का निम्न दोहा देखिए –

**"दुरत न कुच बिच कंचुकी चुपरी, सारी सेत। कवि आँकनु के अरथ लौं प्रगटि दिखाई देत"।।**

अर्थात् उस नायिका के कुच चोबा आदि के चुपड़ने से तथा सफेद रंग की साड़ी धारण करने पर भी छिपते नहीं हैं। कवियों द्वारा प्रयुक्त अक्षरों की तरह ही नायिका के वे कुच ध्यानपूर्वक देखने पर ही लक्षित हो जाते हैं अर्थात् नायिका के कुचों की प्रतीति उसी प्रकार हो पाती है, जिस प्रकार कि कवि द्वारा प्रयुक्त अक्षरों का अर्थ बहुत चिन्तन और मनन के पश्चात् निकल पाता है। इस प्रकार बिहारी ने प्रस्तुत दोहे में विचारित रमणीयता की परिभाषा स्वयं ही प्रस्तुत कर दी है। 'बिहारी सतसई'

में यह काव्य गुण सर्वाधिक मात्रा में मिलता है। बिहारी के अधिकाँश दोहे ऐसे हैं जिन्हें एक बार पढ़ने से किसी सम्यक् अर्थ की प्रतीति नहीं हो पाती। कहने का आशय यह है कि बिहारी के दोहों के अर्थ अधिकाँशतः गूढ़ हैं जिनकी प्रतीति यूँ ही (बिना प्रयास अथवा चिन्तन के) नहीं हो जाती। इसका कारण यह है कि अर्थ–प्रतीति में जो तारतम्य अपेक्षित होता है, बिहारी के दोहों में वह तारतम्य खोजना पड़ता है, स्वतः नहीं मिल जाता। निश्चय ही यह बिहारी की मौलिक प्रतिभा का परिचायक है। उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखिए –

**"बालमु बारै सौति के, सुनि पर–नारि बिहार। भौ रसु अनरसुरिस रली, रीझि खीझि इक बार"।।**

इस दोहे मे प्रत्यक्षतः जो अर्थ भासित होता है। वह इस प्रकार है–नायिका को जब यह पता लगा कि सपत्नी की बारी वाले दिन नायक किसी अन्य स्त्री के साथ विहार कर रहा है तो उसके मन में सुख दुख, रोष, हास–परिहास, रीझ और खीझ के विरोधी भाव एक साथ उत्पन्न हो गए। प्रस्तुत अर्थ में कोई भी तारतम्य नहीं दीखता, कोई बुद्धि सगत बात सामने नहीं आती। अतः इस दोहे के वास्तविक अर्थ की प्रतीति के लिए यह आवश्यक है कि गूढार्थ का पता लगाया जाए। नायेका को सुख, दुख, रोष, हास–परिहास, रीझ और खीझ–इतने सारे परस्पर विरोधी भावों की अनुभूति क्यों हुई। इस प्रश्न का उत्तर कुछ–कुछ इस प्रकार दिया जा सकता है– (क) नायिका को जब यह पता चला कि सपत्नी की बारे वाले दिन नायक अन्य स्त्री के साथ विहार कर रहा है तो ईर्ष्या के कारण सुख की अनुभूति हुई और (ख) उसे दुख इसलिए हुआ कि सपत्नियों की संख्या में एक और वृद्धि हुई। (ग) रोष इस कारण हुआ कि यदि नायक को सपत्नी के यहाँ न जाकर अन्य केसी स्त्री के साथ ही विहार करना था तो उसी के साथ अर्थात् नायिका के साथ विहार क्यों नहीं किया। (घ) रली अर्थात हास की अनुभूति इसलिए हुई कि सपत्नी नायक को वश में नहीं कर सकी। और इस कारण वह अन्य स्त्री के पास चला गया। (ड़) नायिका को रीझ इसलिए हुई कि कम से कम उसकी बारी वाले दिन नायक ऐसा नहीं करता और अन्ततः (च) खीझ का भाव इसलिए उत्पन्न हुआ कि परस्त्रीगमन की आदत पड़ जाने के बाद संभवतः उसकी बारी वाले दिन भी नायक ऐसा न कर दे। इस विस्तृत और बुद्धिगम्य अर्थ की प्रतीति दोहों में डूबने पर ही हो पाती है। बिहारी सतसई की यह विशेषता अधिकाँश दोहों देखी जा सकती है। इसी विशेषता को विचारित–रमणीययता कहते हैं क्योंकि अर्थ की यह रमणीयता सहज रूप से प्राप्त नहीं हो पाती। चिन्तन–मनन से ही प्राप्त हो पाती है। बिहारी सतसई की यह विशेषता अधिकाँश दोहा में देखा जा सकती है। सतसई के अन्तरंग तत्वों में विचारित रमणीयता के पश्चात् अर्थ गाम्भीर्य का स्थान आता है। अर्थ गाम्भीर्य का आशय अर्थगौरव से है और अर्थगौरव का अर्थ कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थवत्ता की प्रतिष्ठा करना है। अर्थगाम्भीर्य की उत्पति के लिए कविगण अलंकारों का प्रयोग करते हैं, उक्ति वैचित्रम का आश्रय लेते हैं। कभी–कभी कवि विदग्धता, ध्वनि अथवा अनुभावों के बल पर भी अर्थगाम्भीर्य उत्पन्न किया जाता है। वस्तुतः बिहारी सतसई की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता उसका अर्थगाम्भीर्य ही है। कदाचित इसी कारण किसी कवि–आलोचक ने कहा भी है –

**"सतसैया के दोहरे, ज्यौं नावक के तीर। देखन में छोटे लगै, घाव करैं गम्भीर"।।**

उक्त कवि आलोचक के अनुसार बिहारी की विशेषता यही है कि वह दो–दो पंक्तियों के दोहों में अपार अर्थ का प्रतिष्ठा कर देते हैं। उनके अधिकाँश दोहे अर्थगाम्भीर्य की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध कहे जा सकते हैं। बिहारी ने अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक रूप में किया है। उन्होंने अलंकारों का प्रयोग करने के लिए ही अलंकारों का प्रयोग प्रायः नहीं किया है। यही कारण है कि उनके दोहों में प्रयुक्त अलंकार भावों के सहज उत्कर्ष के साध–सिद्ध होते हैं। पांडित्य प्रदर्शन के लिए ही अलंकारों का प्रयोग प्रायः नहीं किया गया है। इस दृष्टि से बिहारी का दृष्टिकोण रसवादी अथवा ध्वनिवादी आचार्यों से बहुत मेल खाता है क्योंकि रसवादी आचार्य भी अलंकारों को साध्य नहीं, साधन मानते हैं। उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखिए –

**"रनितभृंग घंटावली, झरित दान मधु–नीरु। मंद मंद आवतु चल्यौ, कुँजरु कुंज–समीरु"।।**

प्रस्तुत दोहे में कवि ने बसन्त ऋतु के मादक समीर के लिए हाथी का रूपक बाँधा है जोकि निश्चय ही मादकता के भाव की अत्यन्त सफल अभिव्यक्ति हुई है। हाथी की मादकता जगत प्रसिद्ध है और इसी प्रकार वसन्त ऋतु में बहने वाले समीर की मादकता भी सुविदित है। इसी प्रकार अन्योक्ति के माध्यम से कवि बिहारी ने विलासमयता में डूबे हुए राजा जयसिंह को कर्तव्यबोध कराया था। अलंकारों का इतना स्वाभावित और प्रभावोत्पादक प्रयोग रीतिकाल के अन्य कवियों में सहज सुलभ नहीं है, एक और उदाहरण देखिए –

**"नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल। अली कली हीं सौं बंध्यौ, आगे कौन हवाल"।।**

इसी प्रकार एक और दोहा देखिए जिसमें कवि ने प्रर्यायोक्वि और दृष्टान्त अलंकारों का प्रयोग करके भावों का उत्कर्ष दिखाया है। कोई नायक सारी रात पर स्त्रीगमन करके लौटा है और इस कारण उसके ओठों पर काजल और नेत्रों पर पान की पीक के चिह्न अंकित हैं। (परस्त्री के साथ सहवास करने के कारण उस नायिका की आँखों का काजल नायक के होठों पर लग गया है और नायिका के मुँह की पीक नायक के नेत्रों पर अंकित हो गई है)। नायिका नायक की इस धूर्तता को भली भाँति जान गई है और नायक के इस व्यवहार के प्रति उसके मन में रोष भी है। तथापि वह अपने रोष को प्रत्यक्षतः व्यक्त नहीं करती अपितु 'बिहारी की नायिका' की भाँति पर्यायोक्ति और दृष्टान्त अलंकारों के माध्यम से अपने मन के भावों को व्यक्त करती है। संगत दोहा निम्नानुसार है –

**"सोहत संगु समान सौं, यहै कहै सबु लोगु। पीन–पीक ओंठनु बनै, काजर नैननु जोगु"।।**

प्रस्तुत दोहे में नायिका कह रही है कि "पान की पीक ओठों में और काजल नेत्रों में सुशोभित है क्योंकि प्रत्येक वस्तु अथवा पदार्थ समान वस्तु अथवा पदार्थ के साथ ही भला लगता है। सभी लोग इस तथ्य को स्वीकार करते हैं" वस्तुतः नायिका के उक्त वक्तव्य का व्यंग्यार्थ यह है कि पान की पीक ओठों पर और काजल नेत्रों में सुशोभित होता है किन्तु नायक के ओठों पर काजल और नेत्रों परपान की पीक अंकित है जोकि निश्चय ही उसके परस्त्री के साथ सहवास करने का द्योतक है। कई स्थलों पर कवि ने क्रिया विदग्धा का प्रयोग करके अर्थागम्भीर्य की सृष्टि की है। एक प्रकरण देखिए–नायिका गुरुजनों के मध्य बैठी हुई है। अतः नायक प्रत्यक्षतः उससे कुछ नहीं कह सकता। नायक ने कमल को अपने सिर से छुवाया जिसका अर्थ यह हुआ कि उसने नायिका के चरण कमलों का स्पर्श करके अभिसार की प्रार्थना की। (नायक की इस प्रार्थना को या तो नायक समझता था या नायिका) नायक की इस प्रार्थना को हृदयंगम करके नायिका ने अपनी आरसी को सूर्य की और करके अपने हृदय से लगा लिया जिसका अर्थ यह था कि जब सूर्य पहाड़ों के पीछे जाकर छिप जाएगा अर्थात् रात हो जाएगी तब वह (नायिका) नायक से मिलेगी। कवि ने इस भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है –

**"लखि गुरुजन बिच कमल सौ, सीसु छुवायौ स्याम। हरि–सनमुख करि आरसी, हियै लगाई बाम"।।**

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि बिहारी सतसई में विचारित रमणीयता, अर्थगाम्भीर्य, दोषों का अभाव तथा अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। इस प्रकार बिहारी–सतसई में इन अन्तरंग तत्वों का सफल निर्वाह हुआ है।

सतसई के बहिरंग तत्वों का विवेचन पहले किया जा चुका है। 'बिहारी सतसई' का नामकरण भी क़वि के नाम पर किया गया है। 'बिहारी सतसई' में दोहों की संख्या 713 है और इस प्रकार हिन्दी साहित्य की सतसई परम्परा में निर्धारित दोहा–संख्या का निर्वाह बिहारी सतसई में भी हुआ है। 'बिहारी सतसई' में मूल विषय शृंगार है किन्तु इसके अतिरिक्त नीति, भक्ति आदि से संबंधित दोहे भी संग्रहीत है। इस आधार यह कहा जा सकता है कि 'बिहारी सतसई' में सतसई के अन्तरंग और बहिरंग तत्वों का सफल निर्वाह हुआ है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में "कहने का भाव यह है कि अनिवार्य न होते हुए भी बिहारी ने सतसई–साहित्य की बाह्य–प्रवृतियों की संयोजना भी अपनी कृतियों में की है। इस प्रकार 'बिहारी सतसई' में सतसई साहित्य की वे समस्त प्रवृतियाँ संयोजित हैं जो प्राकृत से लेकर हिन्दी तक विकसित हुई है। अतः यह निसंकोच कहा जा सकता है कि सतसई–परम्परा में बिहारी का स्थान एक सफल कवि का स्थान है। इनकी कृति सतसई–साहित्य की सम्पूर्व परम्पराओं एवं प्रवृतियों से सुमण्डित है।" सतसई परम्परा में 'बिहारी सतसई' का स्थान निर्धारित करने के लिए यह देखना आवश्यक है 'बिहारी–सतसई' पर पूर्ववर्ती सतसईकारों का क्या प्रभाव पड़ा है। और 'बिहारी सतसई' के बाद रची गई सतसइयाँ किस सीमा तक बिहारी सतसई से प्रभावित हैं। 'बिहारी सतसई' के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि बिहारी का यह विस्तृत दोहा संकलन पूर्ववर्ती सतसई–कारों से काफी प्रभावित हैं। तो भी 'बिहारी सतसई' की विशेषता यह है कि उसमें पूर्ववर्ती सतसईकारों की भावसम्पदा यथावत् रूप में सुलभ नहीं है। कवि बिहारी ने अपनी मौलिक प्रतिभा का संस्पर्श देकर पूर्ववर्ती सतसईयों के प्रभाव को भी 'अपनापन' प्रदान किया है। इस दृष्टि से प्राकृत भाषा के सतसईकार हाल की 'गाहा सतसई' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दो एक उदाहरण देखने पर स्थिति स्पष्ट हो सकेगी। उदाहरण के लिए कवि हाल की निम्न पंक्तियाँ देखिए –

**"असरिसचिते दिअरे सुद्धमणा बिसमसीले। ण कहइ कुटुम्बविह उणमएण तसुआ आए सोणहा।।**
**(असहशीचिते देवरे शुद्धमनाः प्रियतमें विषमशीले। न कथयति कुटुम्बविघटनमयेन तनुकायते स्नुषा)।।**

अर्थात् यद्यपि देवर का मन पापी है, फिर भी शुद्ध मन वासी गृह–वधु देवर के अवाँछनीय व्यवहार को लेकर अपने पति से किसी प्रकार की शिकायत नहीं करती क्योंकि उसे यह ज्ञात है कि शिकायत करने पर घर का विघटन हो जाने की आशंका हो जाएगी। इस कारण नायिका मन ही मन में दुखी होती जाती है। बिहारी ने इसी भाव को अपने निम्नलिखित दोहे में बाँधा है–

**"कहति न देवर की कुमति, कुल तिय कलह डराति। पंजरगत मंजार ढिंग, सुक लौं सूकति जाति"।।**

प्रस्तुत दोहे में कवि बिहारी ने देवर के व्यवहार से त्रसित नायिका की मनोदशा का अपेक्षतया अधिक स्वाभाविक वर्णन किया है। कवि ने नायिका की उपमा ऐसे तोते से दी है जोकि पिंजड़े में बन्द है और जिसके निकट ही बिल्ली बैठी हुई है। तोता

पिंजड़े से बाहर निकल नहीं सकता और बिल्ली के भय के कारण उसके प्राण स्वतः ही सूखते जाते हैं। इसी प्रकार एक और उदाहरण देखिए जिसमें कवि हाल ने नायिका के नेत्रों की शोभा का वर्णन किया है –

**"अण्णाणें बि होन्ति मुँहे पम्हलघव षाहं दोह कसणाइ। ण अणाइं सुन्दराणं तहविहु दट्ठुँण जाणन्ति।।**
**(अन्यासामपि भवन्ति मुखं पक्ष्यलघवलानि दीर्घकृष्णामि। नयनामि सुन्दरीणा तथापि खलु, द्रष्टुंन जानन्ति)।।**

अर्थात् अन्य स्त्रियों के पास भी सुन्दर पलकों से ढके हुए स्वच्छ और सुन्दर आयत तथा कजरारे नयन होते हैं, फिर भी उनकी दृष्टि नायिका जैसी दृष्टि नहीं होती, अर्थात् नायिका के नेत्रों में जो आकर्षण होता है वह अन्य नायिकाओं के नेत्रों में नहीं देखा जा सकता। हाल की पंक्तियों में कवि बिहारी का निम्न दोहा देखिए –

**"अनियारे दीरघ द्वगनु किती न तरुनि समान। वह चितवनि औरै कछु, जिहिं बस होत सुजान।।**

कहने का आशय यह है कि यद्यपि अनेक तरुणियों के नेत्र विशाल और नुकीले होते हैं, फिर भी जो आकर्षण तथा सम्मोहन शक्ति नायिका की चितवन में है वह अन्य स्त्रियों की चितवन में नहीं है।

'बिहारी सतसई' में संगृहीत दोहों पर कवि हाल की 'गाहा सतसई के अतिरिक्त गोवर्द्धनाचार्य द्वारा विरचित आर्यासप्तशती का भी भरा–पूरा प्रभाव देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए 'आर्यासप्तशती' की निम्न आर्या देखिए–

**"आयासः परिहिंसा वैंतसिक सारमेय तव सारः। त्वामपसार्य विभाज्यः कुरंग एषो धुनैवान्यैः।।**

अर्थात् हे व्याध के कुते। तेरा एकमात्र सार यही है कि तू श्रम तथा अन्य प्राणी की हत्या कर पाया है। तेरे भाग्य में यही फलेगा। तू देखना कि तूझे तो दूर भगा दिया जाएगा। और इस हरिण के शरीर को व्याध के अपने लोग बाँट–बाँट कर खा लेंगे (अर्थात् तुझे कुछ भी प्राप्त नहीं होगा)। गोवर्द्धनाचार्य की उपरोक्त पंक्तियों के संदर्भ में बिहारी का निम्न दोहा देखिए –

**"स्वारथु सुकृतु न श्रमु वृथा, देखि विहंग बिचारि। बाज पराएं पान परि, तू पच्छीनु न मारि"।।**

अर्थात् हे बाज, दूसरों के कारण तू पक्षियों का वध मत कर। ऐसा करने से तेरा अपना कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं होगा और न तुझे किसी पुण्य की ही प्राप्ति होगी। तेरा सारा श्रम भी व्यर्थ जाएगा। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाएगा कि बिहारी ने अपने पूर्ववर्ती सतसईकारों से भाव तो ग्रहण अवश्य किए हैं किन्तु उन भावों को भी अपनी मौलिकता का सस्पर्श देकर एक नवीनता प्रदान की है। दो शब्दों में कहा जा सकता है कि "बिहारी ने अपने पूर्ववर्ती सतसईकारों से जो भी भाव ग्रहण किया उसे अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा से प्रायः अधिक उत्कृष्ट और प्रभावशाली बना दिया है।

'बिहारी सतसई' का सर्वाधिक प्रभाव परवर्ती सतसईकारों पर पड़ा। तथापि इतना निर्विवाद है कि परवर्ती सतसईकार बिहारी के भावों को ग्रहण करके भी बिहारी जैसी बिचारित रमणीयता तथा अर्थगाम्भीय की सृष्टि नहीं कर सके। बिहारी की विशेषता यह है कि वे साधारण से दीखने वाले भावों को अपनी प्रतिभा का संस्पर्श देकर असाधारण रूप और अर्थगौरव प्रदान कर देते हैं। परवर्ती सतसईकारों ने उनके भावों को तो ग्रहण किया है, उनकी प्रतिभा और शब्दों पर उनके असाधारण अधिकार का अनुकरण उनके लिए संभव नहीं हो सका। कदाचित इसी कारण कला और भाव सौन्दर्य, दोनों ही दृष्टियों से हिन्दी की सतसई परम्परा में बिहारी सतसई का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण बन पड़ा है। उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखिए –

**"लाज लगाम न म्रानहीं, नैना मो बस नाहिं। ए मूंह जोर तुरंग ज्यौं, ऐंचत हूँ चलि जाहि"।।**

प्रस्तुत दोहे में नायिका अपने नेत्रों की विदग्धता का वर्णन कर रही है। उसके नेत्र लोकलाज को विस्मृत करके (नायक को निहारने लगते हैं) उसके अपने वश में नहीं रहते। नायक प्रति इतनी आसक्ति और नायिका की एक विवशता का वर्णन निश्चय ही बिहारी की अपनी विशेषता है जिसके दर्शन अन्य कवियों में सहज ही नहीं हो पाते। उपर्युक्त दोहे में वर्णित भाव को मतिराम तथा विक्रम साहि ने इस प्रकार व्यक्त किया है –

**"चपल चलाकिन सौ चलत, गनत न लाज लगाम।**
**रोकै नहिं क्यौं हूँ रहत, दृग–तुरंग गति–बाम (विक्रम साहि)**
**तथा**
**"मानत लाज लगाम नहिं, नैकुन गहरा मरोर।**
**होत लाल लखि बात के, दृग तुरँग मुँहजोर"।। (मतिराम)**

उपर्युक्त दोहों में यद्यपि प्रायशः एक ही भाव का वर्णन किया गया है। तो भी अभिव्यंजना का स्तर निश्चय ही भिन्न भिन्न है। मतिराम की नायिका अपनी विवशता का वर्णन स्वयं न करके अपनी किसी अन्तरंग सखी के माध्यम से कर रही है। दूसरी और बिहारी की नायिका स्वयं ही अपनी मनोदशा का वर्णन कर रही है। दूसरी और भले ही विक्रम साहि की नायिका अपनी विवशता का वर्णन स्वयं कर रही है, तो भी उसके वर्णन में वह स्वाभाविकता, सहजता, प्रभावोत्पादकता नहीं मिलती जोकि बिहारी के दोहों में मिलती है। इस प्रकार एक नहीं, अनेक ऐसे दोहे उद्धृत किए जा सकते हैं जिनमें बिहारी की काव्य प्रतिभा अलग ही दिखाई देती है। भाव–सौन्दर्य और कलात्मकता–दोनों दृष्टियों से बिहारी अपना कोई सानी नहीं रखते हैं। बिहारी ने बहुत सोच–समझ कर प्रत्येक भाव को सजाया–संवारा है। साथ ही अभिव्यक्ति को मर्मस्पर्शी और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए उन्होंने अलंकारों का भी सफल प्रयोग किया है। कदाचित् इसी कारण बिहारी की हिन्दी की सतसई–परम्परा रूपी विशाल आकाश में अकेले चन्द्रमा का स्थान दिया जाता रहा है।

# अध्याय – 10
# बिहारी का संयोग शृंगार

काव्यशास्त्र में शृंगार रस के दो भेद माने गये हैं – (1) संयोग अथवा संभोग शृंगार, (2) वियोग अथवा विप्रलंभ शृंगार। संयोग शृंगार में नायक तथा नायिका के मिलन का वर्णन होता है, जबकि वियोग शृंगार में दोनों के विरह का।

बिहारी के काव्य में संयोग–शृंगार का ही अधिक विस्तार से वर्णन किया है। बिहारी का वियोग–वर्णन उतना महत्वपूर्ण नहीं बन सका। इसका प्रधान कारण यह था कि बिहारी की कविता तत्कालीन मुगल दरबार तथा सामंती युग अथवा समृद्ध नागरिक जीवन के विलासी वातावरण की उपज थी, जिसमें सुख–संभोग की सभी सुविधाएँ उपलब्ध थी। सुरा और सुन्दरी का साम्राज्य सर्वत्र छाया हुआ था। दूतियाँ दो प्रेमीयुगल को मिलाने के लिए मध्यस्थ का काम करती थी। रसिक–समाज की रंगीनियों को चार चाँद लगाने के लिए कविता भी एक प्रमुख साधन थी। अतः उसमें रीतिकालीन हिन्दी कवि फारसी कवियों की तुलना में अपने–अपने ढंग से कला–प्रदर्शन करते थे। अतः बिहारी ने भी उस युग का 'आँखों देखा हाल' अपनी सशक्त लेखनी से जादू भरे शब्दों में लिखा है, जिसे पढ़कर तबियत फड़क उठती है। अतः संयोग–शृंगार के वर्णन में बिहारी को जो अधिक सफलता मिली है, उसका कारण उक्त विलास–वासना का व्यापक वातावरण तथा स्वानुभूतिजन्य कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति ही है।

## लक्षण

शास्त्रीय शब्दावली में विभाव, अनुभव तथा संचारी भावों से पुष्ट होकर रति स्थायी भाव शृंगार–रस में परिणत हो जाता है। विभाव के अन्तर्गत 'आलम्बन' तथा 'उद्धीपन' दोनों का समावेश है। शृंगार रस के आलम्बन नायक या नायिका होते हैं। आलम्बन की चेष्टाएँ रति–स्थायीभाव (और उद्धीप्त होता है) को उद्धीप्त करने के कारण 'उद्धीपन' कहलाती हैं। 'आश्रय' (जिसके मन में रति–स्थायी भाव जागृत और उद्धीप्त होता है) की चेष्टाओं को 'अनुभाव' कहा जाता है।

बिहारी ने आलम्बन–विभाव के अन्तर्गत विशेष रूप से नायिका का रूप वर्णन या नखश्खि वर्णन बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है, जिन्हें देखकर नायक (आश्रय) के मन में वासना रूप से स्थित रति–स्थायी भाव जागृत हो जाता है। 'उद्धीपन विभाव' के रूप में नायिका की चेष्टाओं, भाव, हाव, हेला आदि मुद्राओं का निरूपण तथा षट्–ऋतु–वर्णन आता है, जो नायक के मन में जागृत रति को और अधिक उद्धप्ती कर देता है। अनुभाव वर्णन में आश्रय नायक की मनोदशा का अत्यन्त मार्मिक एवं स्वभाविक चित्र बिहारी ने खींचा है। इस दृष्टि से बिहारी को सबसे अधिक सफलता मिली है। जहाँ अनुभाव के रूप में नायिका की चेष्टाओं का वर्णन किया गया है, वहाँ नायिका को आलम्बन न समझकर 'आश्रय' समझना होगा और उसका प्रियतम नायक वहाँ 'आलम्बन' रहेगा। आश्रय और आलम्बन का ज्ञान स्थिति के अनुसार कर लेना चाहिए।

बिहारी ने संयोग–शृंगार के वर्णन में काव्यशास्त्र की परम्परा का भी पालन किया है तथा अपनी स्वतंत्र एवं मौलिक प्रतिभा का उपयोग भी किया है। अतः संक्षेप में 'सतसई' के आधार पर उसके संयोग–शृंगार की झाँकी प्रस्तुत की जाती है।

**(क) रूप वर्णन** : शृंगार–रस के आलंबन–विभाव के अन्तर्गत बिहारी ने नायिका का रूप वर्णन रीतिग्रन्थों की परम्परानुसार 'नखश्खि वर्णन' के रूप में भी किया गया है तथा कहीं–कहीं फारसी कविता के ढंग पर अतिशयोक्ति पूर्ण ऊहोक्तियाँ भी की गई हैं, जो हास्यास्पद ही लगती है, परन्तु एक सफल तथा श्रेष्ठ कवि होने के नाते बिहारी मौलिक–प्रतिभा के दर्शन भी यत्र–तत्र हो जाते हैं।

**(अ) नख–शिख** : काव्यशास्त्र की रुचि के अनुसार बिहारी ने भी नायिका के विभिन्न शरीरावयवों का पृथक–पृथक चित्रण परम्परागत शैली में अर्थात् नायिका की जो पतली कमर लगी रहने पर भी अनलगी–सी दिखाई है, जो शायद विधाता ने इसके निर्माण से बची हुई अतिरिक्त सामग्री का उपयोग करके नायिका के कुच और नितंब को और अधिक गुरु बना दिया है। बिहारी की कल्पना की ऊंची उड़ान एक कदम और आगे बढ़ती है। उस 'लगी–अनलगी' सी कोटि की सूक्षमता बढ़कर अन्त में निराकार ब्रह्या के समान लुप्त हो जाती है –

**"बुधि अनुमान प्रमाण श्रुति, किए नीठि ठहराइ। सूक्ष्म कटि पर ब्रह्या लौं, अलख लखी नहिं जाइ"।।**

परम्परागत रीतिबद्ध वर्णन तथा फारसी कवियों की 'दूर की कौड़ी फेंकने' की प्रवृति का परिणाम बिहारी की रूप–वर्णन संबंधी

ऊहोक्तियों के रूप में देखा जा सकता है। परन्तु कल्पना सौन्दर्य के कारण उसमें भी नवीनता उत्पन्न कर दी है। काव्य की रीतियों में प्रचलित सुप्रसिद्ध उपमान भी बिहारी ने लिये हैं, परन्तु कहीं–कहीं संश्लिष्ट–चित्रों तथा बिम्ब–चित्रों की योजना ने भी बिहारी के रूपवर्णन को बहुत निखार दिया है। दोनों प्रकार के उदाहरण देखिए –

**नेत्र : "दृगनु लगत, बेधत हियहिं, बिकल करत अंग आन। ए तेरे सब तैं विषय, ईधन बीधन बान"।।**

इस दोहे में नेत्ररूपी बाणों की अद्‌भुत लीला आलंकारिक शैली में व्यक्त की गई है कि वे लगते तो आँखों मे है, पर घायल करते हैं हृदय को और अन्य अंगों को भी व्याकुल कर जाते हैं। कुटिल नेत्रों की इन चतुराई का एक नमूना और लीजिए

**"तिय, कित कमनेती पढ़ी, बिनु जिहिं भौंह कमान। चलचित बेझै चूकनी नहिं, बंक बिलोकनि बान"।।**

कमान चलाने की यह विचित्र विद्या नायिका ने कहाँ से सीख ली, कि वह अपनी तिरछी चितवन का ऐसा तीर चलाती है जो चंचल चित को चीर के रख देता है। एक तो भौंह रूपी धनुष की डोरी नहीं, फिर हृदय रूपी निशाना भी चंचल। परन्तु निपुणता तो देखिए कि तीर चूकने नहीं पाता। बिहारी ने नेत्रों के वर्णन में विशेष रुचि दिखलाई है, क्योंकि इन्हीं साधनों से ही तो उतरने वाले हृदय में उतरते हैं। प्रेम का आधार आकर्षक सौन्दर्य होता है और बिहारी की नायिका के अंग में तो नेत्र–सौन्दर्य का अपना विशिष्ट स्थान है। उसके नेत्र तो अंजन लगाए बिना भी काव्यरुढियों में प्रसिद्ध खजन पक्षी का गर्व चूर करने वाले हैं। घूंघट में चमकते हुए तो वे ऐसे लगते हैं, मानो गंगा के निर्मल–जल में दो चचल मछलियाँ उछल रही हैं। इसी तरह नीले आंचल में नायिका के सुन्दर मुख की छवि यमुना के नील–जल में प्रतिबिंबित चन्द्रमा के समान झिलमिला रही है।

## केश

बिहारी के रूप वर्णन में परम्परा तथा मौलिकता का सुन्दर समन्वय है। एक और साहित्यिक परम्परा में प्रचलित बंध हुए उपमानों के द्वारा नायिका के अंगों का लावण्य अलंकृत शैली में दिखाया जाता है, तो साथ ही कवि अपनी मौलिक सूझ से भी काम लेकर उस घिसी–पिटी वर्णन शैली में नवीन चमत्कार पैदा कर देता है। केशों का वर्णन भी इसी प्रकार किया है

**"कुटिल अलक छुटि परत, मुख बठिगौ इतौ उदोत। बंक बिहारी देत ज्यौं, दाम रूपैया होत"।।**

इस दोहे में गोरे मुख पर बिखरी काली अलक की मुद्रा निःसंदेह प्रेम की प्यासी आँखों के लिए गजब का आकर्षण रखती है, परन्तु मनमोहक छवि को बिहारी ने व्यापारिक दृष्टि देकर रुढि का अनुकरण मात्र ही किया है। परन्तु केशों का सहज सौन्दर्य भी तो दर्शनीय हैं –

**"सहज सचिक्कन, स्यामरुचि, सुचि, सुंगध सुकुमार'। गनतु न मन पथ, अपथ, लखि बिछुरे बार"।।**

इसी प्रकार खुले और बंधे दोनों प्रकार के केश देखने वाले पर क्या प्रभाव डालते हैं, बिहारी ने आलंकारिक चमत्कार के साथ, परन्तु कलात्मक ढंग से उसका वर्णन भी किया है –

**"छुटै छुटावत जगत तैं, सटकारे सुकुमार। मनु बाँधत बेनी बंधे, नील छबीले बार"।।**

## अन्य अंग

बिहारी ने सभी अंगों का वर्णन कहीं–न–कहीं 'संतसई' में कर दिया है। नायिका की नासिका की वेध, चिबुक का गोदन ठोड़ी का गड्ढा, पांव का टखना, हाथ की अंगुली और चरण की अंगूठा, नख की शोभा तथा एड़ी की लालिमा इन सबका समावेश रूप–वर्णन में कर दिया है। यौवनकाल में कुच और कटि की गुरुता और क्षीणता की तुलना बिहारी ने क्रमशः माघ मास में उतरोत्तर बढने वाले दिन तथा छोटी रात से दी है। एक दूसरे दोहे में दोनों के आकार–वैषम्य का रहस्य भी खोल लिया है कि –

**"लगी अनलगी सी जु विधि, करी खरी कटि खीन। किए मनौ वैही कसर, कुच नितम्ब अति मीन"।।**

अर्थात् नायिका की जो पतली कम लगी रहने पर भी अनलगी सी दिखाई देती है, तो शायद विधाता ने इसके निर्माण से बची हुई अतिरिक्त सामग्री का उपयोग करके नायिका के कुच और नितंब को और अधिक गुरु बना दिया है। बिहारी की कल्पना की ऊंची उड़ान एक कदम और आगे बढ़ती है। उस 'लगी–अनलगी' सी कटि की सूक्ष्मता बढ़कर अन्त में निराकार ब्रह्म के समान लुप्त हो जाती है –

**"बुधि अनुमान प्रमाण श्रुति किए नीठि ठहराइ। सूक्ष्म कटि परब्रह्म लौं, अलख लखी नहीं जाइ"।।**

परम्परागत रीतिबद्ध वर्णन तथा फारसी कवियों की 'दूर की कौड़ी फेंकने' की प्रवृति का परिणाम बिहारी की रूप–वर्णन संबंधी ऊहोक्तियों के रूप में देखा जा सकता है। कहीं गुलाब की पंखुड़ी छू जाने से कोमल–चरणों में छाले पड़ जाने की आशंका है तो कहीं चन्द्रमुखी नायिका के प्रकाश से आसपास नित्य ही पूर्णिमा का भ्रम हो जाता है और बेचारे लोगों को तिथि का ज्ञान करने के लिए ज्योतिष जी के पत्रे की सहायता लेनी पड़ती है। वस्तुतः बिहारी ने नख–शिख वर्णन केवल परिपाटी का पालन करने के लिए किया है। चमत्कार और उक्ति–वैचित्र्य के कारण रूप का बिंबग्रहण या संश्लिष्ट चित्र नहीं उभर सका। परन्तु जहाँ–जहाँ बिहारी रीतिबद्ध मार्ग छोड़कर अपनी स्वतंत्र कवि की दृष्टि से नारी–सौन्दर्य का पान किया है, वहाँ उसकी लेखनी ने कमर तोड़ कर रख दी है। सादे और रंगीन दोनों प्रकार के चित्र बिहारी की लेखनी ने बनाए हैं। परन्तु उनके सादे चित्रों में स्वाभाविकता का गहरा रंग भरा है तथा उनके रंगीन चित्रों में कृत्रिम अलंकारों का स्थान सरल कल्पना ने ले लिया है। जो हो, उसकी नायिका रूप का ऐसा सागर है, जहाँ सारा संसार प्यास बुझाने पहुँच जाता है।

**(आ) सौन्दर्य कल्पना :** सौन्दर्य देखने वाले की आँख में रहता है, अतः रुचि–साक्षेप होता है। जहाँ जिसकी जितनी रुचि होती है, उसमें उसे उतना ही अधिक सौन्दर्य दिखाई पड़ता है। बिहारी ने भी कहा है कि हर सुन्दर वस्तु हर किसी को अच्छी नहीं लग सकती। सुन्दर और बड़ी–बड़ी आँखों वाली नायिकाएँ संसार में कितनी हैं, किन्तु वे आँखें कोई और ही होती हैं, जो रसिक प्रेमियों को अपनी और खींच लेती हैं –

**"अनियारे दीरघ दृगनु, किती न तरुनि समान'। वह चितवनि औरे कछु, जिहिं बस होत सेजान"।।**

यह 'अनोखे चितवन' वाली बिहारी की नायिका उन नायिकाओं से भिन्न है, जिनके नेत्रों का वर्णन रुढिबद्ध शैली मैं 'सतसई–कार' ने किया है। इसके अनुपम सौन्दर्य की घटा को काव्य–शास्त्र के लक्षणों में नहीं बाँधा जा सकता। ऐसी नायिका का रूप वर्णन न तो रीतिबद्ध लेखनी ही कर सकती है और न ही विश्व के 'चतुर–चितरे' ही उसको अपनी तुलिका द्वारा चित्रित कर सकते हैं। बिहारी की ऐसी रूपवती नायिका की पहली झलक उस समय दिखाई देती है, जब वह शैशव और यौवन के दोराहे पर खड़ी चकित होकर अपने अंग–परिवर्तन का अनुभव करती है कवि समझ नहीं पाता कि उसकी 'वयः सन्धि' का यथार्थ अंकन करने के लिए कौनसा शब्द लाये, जो नायिका की ठीक–ठीक अवस्था का रूप न्यायपूर्ण ढंग से वर्णित कर सके। आखिर उसे एक उपमा सूझ ही गई –

**"छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जो बनु अंग'। दीपति देह दुहूनू मिलि, दीपति ताफ्ता रंग"।।**

'ताफ्ता' या 'धूप–छाया' के नाम से प्रसिद्ध कपड़े में दो रंगों की सम्मिलत छटा झलकती है, जिसको अलग–अलग नहीं देखा जा सकता। बिहारी को 'इस उपमा से अधिक सुन्दर और सटीक शब्द 'वयः सन्धि' के लिए नहीं मिल सका है इसी प्रकार बिहारी ने एक दूसरे में अपनी कल्पित विशिष्ट नायिका के निर्मल रूप सौन्दर्य को रीतिबद्ध शैली में अंकित होता देखकर अपनी मौलिक प्रतिभा और अनोखी सूझ से यूँ व्यक्त किया है –

**"कहा कुसुम कह कौमुदी, कितक आरसी जोति। जाकी उजराई लखे, आँखि ऊअनी होति"।।**

कितनी सादी और अलंकार–विहिन परन्तु साथ ही सटीक और सुन्दर अभिव्यक्ति है। उसके अद्‌भुत रूप की तुलना कुसुम, चाँदनी और दर्पण भला क्या करेगा। उसके निर्मल सौन्दर्य को देखकर तो देखने वाली आँख भी निर्मल हुई जाती है। कालिदास ने क्षण–क्षण में नवीनता की रमणीयता का लक्षण बताया था। इस कारण रमणीय वस्तु को बार–बार देखने से भी नहीं उकता सकता। बिहारी की नायिका का लावण्य भी ऐसा है, जिसका पान करके नेत्रों की प्यास नहीं बुझती –

**"त्यौं–त्यौं प्यासेई रहत, ज्यौं ज्यौं पियत अघाइ। सगुन सलौन रूप की, जुन चख तृषा बुझाइ"।।**

बिहारी ने प्यास न बुझने का कारण भी संकते द्वारा बता दिया है। नायिका का रूप सलौना (सुन्दर और लवण युक्त अर्थात् नमकीन) है। और लवण अर्थात् नमक प्यास को बढ़ाने वाला माना जाता है। 'लावण्य' ने श्लेष ने रूप–पिपासा का समाधान ही नहीं, कवि की निपुणता का प्रमाण भी प्रस्तुत कर दिया है। रहीम ने अपनी नायिका के अधरों को 'मधुर' तथा नेत्रों को 'सलोना' लिखकर यह व्यक्त किया था कि जैसे मीठा खाने के बाद नमकीन (सलोना), नमकीन के बाद मीठा अच्छा लगता है, उसी प्रकार नायिका के रूप का चिरपान करना संभव है। इसी प्रकार बिहारी की भी सलोनी नायिका मधुर लगती है। परन्तु कवि को उसकी माधुरी का जब विचार आया, तो वह विधाता की कल्पना पर आश्चर्यचकित हो गया, जिसने नायिका

के सलोने शरीर की मधुर बनाने के लिए कितना अधिक माधुर्य जुटाया होगा, क्योंकि सामान्य अवस्था में तो थोड़ा सा मीठा डाल देने से ही वस्तु मधुर बन जाती है। किन्तु जो वस्तु पहले से नमकीन (सलोनी) हो तो उसे मीठा करने में बहुत अधिक 'माधुर्य' डालने की आवश्यकता पड़ती है –

**"रही लुट है लाल हौं, लखि वह बाल अनूप। कितौ मिठास दयौ दई, इतै सलौने रूप"।।**

बिहारी की नायिका पद्मिनी स्त्री है तभी तो उसकी गुलाबी देह के साथ लगी हुई गुलाब की पंखुरी मिलकर एकाकार हो गई है। गुलाब की सुगंध से भी उसके अस्तित्व का पता नहीं चलता, क्योंकि नायिका की देह भी तो उसी के समान सुगंधित कोमल और रंगीन है। इसी प्रकार का अतिरंजित वर्णन बिहारी ने बहुत किया है, परन्तु जैसा रस बिहारी की स्वतन्त्र तथा सादा अभिव्यक्तियों में मिलता है, वैसा अतिरंजित, अलंकृत, चमत्कारपूर्ण तथा उक्ति– वैचित्र्य की असम्भव कल्पनाओं में नहीं। उक्त अतिरंजना की तुलना में निम्न दोहा अपेक्षाकृत अधिक प्रभावोत्पादक है, जिसमें कवि कहता है कि नायिका न तो दुबली–पतली–तन्वंगी, परन्तु अंग–अंग से फूटने वाले सौन्दर्य की लपेटों से उसकी देह भरी–भरी–सी लगती है –

**"अंग–अंग छवि की लपट, उपटति जाति अछेह। खरी पातरीऊ, तऊ लगै भरी सीदेह"।।**

## अलंकार

रूप–वर्णन में अलंकारों की, वेश–भूषा तथा हाव–भाव का वर्णन भी रीतिकाव्य में मिलता है। बिहारी इस दृष्टि से भी केसव से पीछे नहीं रहे। उन्होंने नायिका के लौंग, बेसर, तर्यौना (कर्ण भूषण), नथ, अंगूठी, हार, बिछिया, गले का बर आदि भूषणों तथा मेंहदी, काजल, अंगराग, केसर आदि प्रसाधनों का भी 'सतसई' में यत्रतत्र उल्लेख किया है। परन्तु अधिकॉश वर्णन अतिरंजित और रुढिबद्ध ही है। अलंकारों के मोह से तथा अतिश्योक्ति–पूर्ण चमत्कारक वर्णन शैली से उसमें स्वाभाविक सौन्दर्य प्रतिबिंबित नहीं हो सका। कभी नाइन को नायिका की लाल एड़ी में लगी हुई महावर का भ्रम हो जाता है तो कहीं केवल झूकर ही पहने हुए स्वर्णिम आभूषणों का मान होता है, क्योंकि वे नायिका की सुनहरी देह के रंग में दिखाई ही नहीं देते। चरम सीमा तो वहाँ है, जब बिहारी लिखते हैं कि नायिका के जगमगाते हुए भूषणों से युक्त दीपशिखा–सी देह के कारण रात को प्रकाश के लिये दीपक जलाने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती –

**"अंग अंग नग जगमगत, दीप सिखा सी देह। दिया बढाये हूं रहै, बड़ो उज्यारौ गेह"।।**

एक और काव्यशास्त्र की परम्परा का बन्धन तो दूसरी और फारसी काव्य की उक्ति–वैचित्र्य–प्रधान शैली का प्रभाव, तीसरी और पांडित्य प्रदर्शन का मोह–इन कारणों से बिहारी ने सहज सौन्दर्य को ढक सा दिया है। कहीं गणित की रेखाओं से कभी रूप के दस गुने होने की गणित चर्चा हो रही है तो कहीं बिहारी ज्योतिष–शास्त्र की भूलभुलैया में फंसकर रह गये हैं। परन्तु बिहारी ने सहज सौन्दर्य के प्रति भी अपना दृढ़ विश्वास प्रकट किया है। वे नारी के सुन्दर शरीर पर आभूषणों को 'दर्पण के से मोरचे' कहते हैं और नायिका को सोने के आभूषण न पहनने की प्रेरणा देते हैं। एक दूसरी मनोहर कल्पना में तो बिहारी ने स्पष्ट कर दिया है –

**"मानहु विधि तन अच्छा छवि, स्वच्छ राखिवैं काज। दृग–पग–पोंछन कौ करें, भूषण पायंदाज"।।**

अर्थात् जिस प्रकार किसी मकान की स्वच्छता को सुरक्षित रखने के लिए लोग पायदान द्वार पर रख छोड़ते हैं, वहां प्रवेश करने वाले व्यक्ति अपना पांव साफ करके अन्दर जाते हैं, उसी प्रकार विधाता ने नायिका के अनुपम लावण्य को अक्षत रखने के उद्देश्य से भूषणों को बनाया है, ताकि दर्शकों की मैली आँखें पहले उन पर पड़कर अपना पांव पोंछ लें और तब निर्मल होकर ही नायिका के शारीरिक सौन्दर्य पर जायें, जिससे स्वयं उसकी अलंकार विषयक रुचि का भी सहज में पता चल जाता है। सहज सौन्दर्य में सहायक अलंकार ही सच्चे आभूषण हैं। तभी तो बिहारी की कोमलांगी नायिका तो वस्त्र भी आभूषणों का बोझ सहने में असमर्थ है, क्योंकि उससे तो पहले अपने सौन्दर्य का ही भार नहीं उठाया जाता –

**"भूषन भार सम्भारि है क्यों यह तनु सुकुमार। सूधे पांय न परत है, सोभा ही कै भार"।।**

अतः बिहारी सहज–सौन्दर्य को कृत्रिम प्रसाधनों से विकृत करने के पक्ष में प्रायः नहीं है। वे कहते हैं कि अंगराज का लेपन भी उनकी सुंदरी नायिका की सहज छवि को मलिन कर देता है। वास्तव में आभूषण और दूसरे प्रसाधन सहज सौन्दर्य को बढाने में समर्थ भी नहीं होते। सहज–सुन्दरी नायिका तो उसके बिना और आकर्षक लगती है। इसी सत्य का दिग्दर्शन हुए बिहारी ने यह दोहा रचा है –

**"तन भूषन, अंजन दृगनु, पगनु महावर रंग। नहिं सोभा कौ साजियतु, कहिवै ही कौ अंग"।।**

यही तो स्वाभाविक सौन्दर्य की विशेषता है। शरीर भूषणों से, आँखें अंजन से और पाँव महावर से शोभित नहीं किए जा सकते। ये सारे प्रसाधन तो नाममात्र कहने भर की हैं, क्योंकि बिहारी की उक्त नायिका का शरीर तो इनके बिना भी सुन्दर है। नारी के शारीरिक सौन्दर्य की एक और मोहक झांकी का शब्द–चित्र बिहारी के दोहे में देखिए –

**"सहज सेत पचतोरिया, पहिरत अति छवि होत। जल चादर के दीप लौं, जगमगाति तन ज्योति"।।**

श्वेत साड़ी में लिपटी सुन्दरी की निर्मल कांति कवि की अलंकृत वर्णन शैली से मूर्तिमान होकर आँखों को प्रकाशित कर देती है किसी झरने की पतली जल धारा के पीछे से झिलमिलाते हुए प्रकाश की तरह सुन्दर बारीक साड़ी में लिपटी हुई नायिका की गोरी कांतिमय देह की कल्पना सचमुच बड़ी सुखद और सरस है। इसी वर्ग की एक दूसरी मधुर छवि बिहारी के निम्न दोहे में भी मिलती है –

**"भइ जु तन–छवि तन–बसन मिलि, वरन सकै सुन वैन। आग आटो आँगी दुरी, आंगी आंग दुरै न"।।**

नायिका ने अपने शरीर के सुनहरी रंग के समान रंग वाली अंगिया पहन रखी है, जो तन के साथ मिलकर छिप–सी गई है। यूँ लगता है, नायिका ने अंगिया पहन ही नहीं रखी। इस प्रकार नायिका के अनावृत शारीरिक–सौन्दर्य की झलक भी कवि ने बड़ी चतुराई से दिखलाने की चेष्टा की है।

**(ख) उद्दीपन विभाव** : शृंगार रस के उद्दीपन–विभाव में आलम्बन (नायिका) की चेष्टाओं तथा षट्ऋतुओं का वर्णन आता है। यौवनकाल के आने पर जहाँ नायिका का रूप निखरता है, वहाँ उसके मानसिक और शारीरिक परिवर्तनों की सूचक कुछ–मधुर चेष्टाओं का भी कवियों ने वर्णन किया है, जो आश्रय (नायक) के मन में जागृत रति–भाव को अधिक उद्दीप्त करने में सहायक सिद्ध होती है। काव्यशास्त्र की शब्दावली में नायिका की उन आकर्षक चेष्टाओं एवं मुद्राओं को 'अलंकार' की संज्ञा दी गई है। ये अलंकार दो प्रकार के होते हैं –

(i) 'अयत्नण' अथवा सहज अलंकार। इनकी संख्या सात है।

(ii) यत्नज अलंकारों को हाव भी कहते हैं। इनकी संख्या 18 है। बिहारी ने इन सबके उदाहरण 'सतसई' में दिए हैं। विभिन्न प्रकार की मनमोहक मुद्राओं द्वारा नायिका किस प्रकार नायक को आकर्षित करती है, इसके प्रभावशाली दृश्य बिहारी ने प्रस्तुत किए हैं।

(iii) **हाव–भाव वर्णन** : बिहारी जब लकीर से हटकर चलते हैं, तो नवोन्मेषकारिणी अपनी मौलिक प्रतिभा तथा सूक्ष्म सौन्दर्य दृष्टि और अनुपम निरीक्षण शक्ति का सहज परिचय देते हुए अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्द चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। उदाहरण के लिए बिहारी की एक सद्यःस्नाता का आकर्षक देखिए–

**"विहसंगति सकुचाति सी दिए, कुच आचर बिचबांह। भीजे पट तट कौ चली, न्हाइ सरोवर मांह"।।**

यह कितना सजीव, सचित्र, हृदयग्राही और मौलिक वर्णन है। चित्रकार की तूलिका भी बिहारी की लेखनी के सामने शरमा गई है। ऐसे कितने ही 'भाव– हाव–हेला' के सुन्दर उदाहरण बिहारी ने 'उद्दीपन–विभव' की सीमा में रहते हुए कल्पित किए हैं। बिहारी की एक दूसरी नायिका को जूड़ा बांधते देखकर तो सचमुच मुंह तले अंगुली दबानी पड़ती है –

**"कर समेटि कच, भुज उलटि खरा सीस पटु डारि। काको मन बांधै न ए, जूरो बांधन वारि"।।**

कैसा स्वाभाविक रूप चित्रण किया गया है। एक नहाती हुई अल्हड़ और असावधान सुन्दरी का मानो किसी चतुर छविकार ने छिपकर एक रंगीन फोटो खींच दिया हो। इसी प्रकार कहीं छींके से दही का बर्तन उतारते समय की अद्भुत मुद्रा का उत्तेजक सौन्दर्य सन्यासी आँखों को भी विचलित कर सकता है, तो कहीं किसी नायिका की चंचल भौहों की घातक मुद्रा मधुर दृश्य उपस्थित करती है –

**"नासा मोरि नचाइ जे, कनी कका की सौंह। कांटे सी कसकैति हिय, गड़ी कंटीली भौंह"।।**

इस श्रेणी का एक दूसरा हृदयहारी चित्र भी देखिए –

**"भौंह ऊंचै, आंचरु उलटि, मोरि मोरि मुहुँ मोरि। नीठि–नीठि भीतर गई, दीठि–दीठि सौं जोरि"।।**

इन दोहों में विलास–हाव का बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है। जिसकी उत्तेजक और प्रेरक शक्ति शृंगार–रस के स्थायी भाव को जगाकर उद्दीप्त कर देती हैं। बिहारी की चित्रशाला में रूप–वर्णन के ऐसे अनेक बहुरंगी चित्र टंगे हुए हैं, किस–किस

को प्रस्तुत किया जाए। इन रूप–चित्रों में रीति–बद्धता का घिसा–पिटा वर्णन नहीं और न अतिशयोक्तिपूर्ण, भद्दे और अस्वाभाविक ऊहोक्तियाँ ही हैं। इन हावभाव के भावपूर्ण वर्णनों में कवि की सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक दृष्टि और एक अनुभवी कलाकार की कल्पना–कुशलता का संगम है, जो बिहारी को अपने युग का श्रेष्ठ शृंगारी कवि सिद्ध कर देता है।

बिहारी की नायिकाएँ अपने मादक रूप से, अल्हड़ मुद्राओं तथा चंचल चेष्टाओं से नायक को अभिभूत कर देती हैं कभी कोई शोख–रमणी झरोखे में से भय, लज्जा और संकोच के मिले–जुले भावों से भरी आकर पलक झपकने की देर में अपनी झांकी दिखा जाती है तो कोई चतुर प्रिया सिर ढांपने के बहाने अपनी देह को अधोभाव नायक के सामने अनावृत कर देती है

**"त्रिवली नाभि दिखाई वार, सिर ढकि, सकुचि समाहि। गली अली की ओट कै, चली भली विधि चाहि"।।**

ऐसी चेष्टाए नायक की दृष्टि से उद्दीपन–विभाव कहलाती हैं, परन्तु नायिका की दृष्टि से इन्हें 'अनुभव' के अन्तर्गत ही माना जाएगा। जब हावभाव आदि चेष्टाएँ नायक के मन में रतिभाव को जगाने तथा भड़काने का काम करती है, तो ये 'विभाव' की सूचक होती है। परन्तु जब इन चेष्टाओं से प्रेम करने वाले व्यक्ति की स्वानुभूतियों की अभिव्यंजना होती है, तभी इनको 'अनुभाव' संज्ञा होती है। इसका निर्णय आश्रय और आलम्बन की स्थिति पर ही निर्भर रहता है।

(ii) **षट्ऋतु वर्णन** : संयोग–शृंगार में प्रकृति का वर्णन कवियों ने प्रायः उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत किया है अतः 'बिहारी सतसई' में जहाँ प्र कृति का स्वतंत्र निरूपण मिलता है, वहाँ शृंगार के उद्दीपन रूप में भी बिहारी ने रीतिबद्ध शैली का अनुसरण किया है। प्रकृति के विविध दृश्य नायक–नायिकाओं को विहार, मिलन, केलि–क्रीडा आदि की प्रेरणा देते हैं।

शरद सुन्दरी का उन्मादक चित्र देखिए –

**"अरुन सरोरुह कह चरन, दृग खंजन मुख चंद। समै उभव सुन्दरि सरद, काहि न करहि अनंद"।।**

इसी प्रकार बसन्त ऋतु की मस्तानी वायु तो नवविवाहिता रमणी के समान ही सुखदायक लगती है।

**"लपटी पुहुप–पट, सनी स्वेद मकरन्द। आवति नारि नवोढ लौं, सुखद वायु गतिमन्द"।।**

अगहन के महीने में कामदेव का शासन कितना सुदृढ़ हो जाता है, अपने को अजेय समझने वाले बड़े–बड़े सन्यासी महात्मा भी इससे बच नहीं सकते। युवक–युवतियों के हृदय में रति का संचार करने वाले इस उन्मादक महीने का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

**"कियो सबै जग कामवस, जीते जिते अजेय। कुसूम–सरहि सर धनुष कर, अगहन गहन न देय"।।**

हैमन्त ऋतु भी बिहारी को रति–रंग के लिए भूमिका प्रस्तुत करने वाली दिखाई देती है, जिसमें प्रेमी–युगल रस चूर बेन जीवित रह नहीं सकते –

**"मिलि विहरत बिछुरत मरत, दम्पति अति रति–लीन। नूतन विधि हेमन्त ऋतु, जगत जुराफा कीन"।।**

इस प्रकार बिहारी ने प्रकृति को शृंगार–रस में लीन नायक–नायिकाओं को आमोद–प्रमोद के लिए प्रेरणा देने के लिए प्रयुक्त किया है। जल–क्रीडा आदि के लिए प्रयुक्त किया है। जल–क्रीड़ा आदि के वर्णन भी इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

(ग) **प्रेम–व्यापार वर्णन** : आश्रय की चेष्टाओं को साहित्य शास्त्री 'अनुभाव' कहते हैं। ये सात्विक और कायिक दो प्रकार के होते हैं। आश्रय वह व्यक्ति होता है, जिसके हृदय में स्थायी–भाव का उदय होता है। इस प्रकार परिस्थिति के अनुसार नायक और नायिका आश्रय भी हो सकते हैं और आलम्बन भी। 'बिहारी सतसई' में नायक और नायिका दोनों की आश्रयगत अनुभूतियों का विस्तारपूर्वक निरूपण किया गया है। अनुभाव–वर्णन में बिहारी को जितनी सफलता मिली है, रीतिकाल के किसी अन्य कवि को नहीं मिली, नायकअथवा नायिका की विविध मनोदशाओं तथा कार्य–व्यापारों का चित्रत्मक–शैली में बिहारी ने वर्णन किया है। इस वर्णन में कवि की सूक्ष्म निरीक्षण–शक्ति तथा काव्य कुशलता का परिचय मिलता है। प्रेमानुभूतियों की विभिन्न स्थितियों का अध्ययन 'सतसई' के आधार पर निम्नलिखित है

(i) **मिलन** : यौवन के प्रारम्भ में तरुण और तरुणियों की आँखों में विचित्र चमक आने लगती है। हृदय में किसी को चाहने की लालसा का उदय होता है। मनचाहे प्रिय के रूप में देखने का आकर्षण जाग उठता है और इस प्रकार उपयुक्त अवसर मिलने पर प्रेम का अंकुर मन में फूट पड़ता है। बिहारी का नायक गौएं चराने वन में गया था, वहीं नायिका भी अपनी गौएं लेकर आ गई। बस संयोग से दोनों की आँखें चार हुई और आँख मिलते ही दिल भी मिल गए –

**"उन हरकी हंसि कै इतै, इन सौंपी मुस्काइ। नैन मिलै मन मिलि गए, दौऊ मिलवत गाइ"।।**

"Love at First sight" का कितना अनूठा उदाहरण है।

(ii) **मस्ती** : प्रियतम के प्रथम परिचय के साथ ही नायिका पर रूप का नशा छा जाता है। जिसके फलस्वरूप उसके मन में हलचल मच जाती है। अल्हड़ होने से वह ऐसी चेष्टाएँ भी कर बैठती है, जिससे कि उसकी चंचलता और अनुभव–हीनता टपकती है। जरा देखिए तो –

**"तजी संक सकुचावति न चित, बोलत वाकु–कुवाकु। दिन छिनदा छाकि रहति, घुटतु धिनु छवि–धाकु"।।**

(iii) **अधीरता** : मस्ती भरी अल्हड़ नायिका नायक के दर्शन की प्रबल अभिलाषा के पल भर भी घर में नहीं टिकती। सारा दिन इधर से उधर दौड़ी फिरती है। प्रिय की एक झलक पाने के लिए वह बार–बार अटारी पर चढ़ती–उतरती है, जैसे किसी नट के हाथ की चकई एक क्षण ऊपर और एक क्षण नीचे चक्कर खाती रहती है –

**"झटकि चढति उतरति अटा, नैकु नथाकति देह। भई रहति नट कौ नटा, अटकी नागर–नेह"।।**

उपमा की यथार्थता से अनुरागिणी नायिका की अस्थिर मनोदशा का चित्र उसकी आतुर चेष्टाओं से स्पष्ट ध्वनित हो रहा है।

(iv) **विवशता** : पूर्वानुरागिणी नायिका को लोकलाज का भी बहुत ध्यान आता है। कुल की मर्यादा तथा गुरुजनों का भय नायिका के प्रेम–मार्ग का बाधक है। परन्तु इन बेलगाम नयनों को कौन समझाये, जो मुंहजोर घोड़े के समान रस्सी तुड़ाकर भी प्रिय की और चले जाते हैं। इन्हें यश–अपयश की कोई चिन्ता नहीं है।

"जस अपजस देखत नहीं, देखत सांवल गात"

फिर यदि कोई गुरुजन अथवा सखी रोकती भी है, तो उत्तर यही मिलता है –

***"नैना नैक न मानहिं, कितौ कह्यौ समुझाइ तन–मन हारै हूँ हंसैं, तिनसौं कहा बसाइ"***

प्रेम में कितनी बेबसी है। ऐसी दशा में दूसरा उपाय भी क्या है? मन तो भंवर में फंसी नाव की तरह बार–बार प्रियका ही चक्कर काट रहा है।

(v) **उत्सुकता** : नायिका की अब प्रियदर्शन की उत्सुकता खाए जाती है। वह दिन–रात अवसर ढूँढती रहती है। गुरुजनों से बचकर, सखियों से छुपकर, चोरी–चोरी वह अपने प्रिय की झलक पा लेना चाहती है। कभी हाथ की अंगूठी के नगीने में प्रतिबिम्बित प्रिय की छवि का उसकी और पीठ किए ही चुपके से पान करती रहती है। कभी बाल संवारते हुए अचानक सामने प्रिय के गुजरने पर गुरुजनों के संकोचवश अंगुली से बाल की एक लेट को तनिक सरकाकर उसके मध्य में से प्रिय की झलक पा लेती है –

**"कंच नयनि मंजनु किए, बैठी ब्यौरति बार। कच अंगुरी बिच दीठि दै, चितवति नन्दकुमार"।।**

(vi) **सम्बन्ध भावना** : अनुराग की अवस्था में प्रिय से संबंध रखने वाली हर वस्तु प्यारी लगती है। प्रिय वस्तु के स्पर्श से प्रिय–स्पर्श तक की अनुभूति होने लगती है। बिहारी के अनेक दोहों में मनोवैज्ञानिक अवस्था की अनुभूति होने लगती है। नायक जिस पतंग को उड़ा रहा है, उसकी परछाई नायिका के घर पर भी पड़ रही है और नायिका उन्मादिनी–सी उस परछाई के साथ–साथ भाग रही है तथा उस पतंग की छाया से अपना अंग छुड़वाकर प्रिय–स्पर्श का आनन्द ले रही है –

**"उड़ति गुड़ी लखि लाल की, अपना अंगना मांहि। बोरी लौं दौरि फिरति, छुअत छबीली छांह"।।**

कभी–कभी नायक के शरीर की छाया से भी अपना शरीर–स्पर्श कराने में उसे मुख मिल जाता है। नायक ने नायिका को छल्ला दिया था, जिसे पाकर वह फूली नहीं समाती। देखिए –

**"छला छबीले कौ, नवल नेह लहि नारि चुम्बति चाहति लाइ उर, परिहित धरति उतारि"**

कितना सुन्दर अनुभव वर्णन है। इसी प्रकार चुम्बन के अवसर पर नायिका के अधर पर जो दंत–क्षत लग गया था, उसे स्नेह का स्मारक समझकर मुग्धा–नायिका प्रेम तथा गर्व के साथ कभी तो दर्पण को देखती है, कभी छुपाती है और कभी प्रकट (सखियों को) दिखाती हैं –

**"छिनकु उघारति, धिनु छुवति, सखति छिनकु छिपाइ। सबु दिन पिय खंडित अधर, दरपन देखत जाइ"।।**

(vii) **मोह** : प्रेम में कभी ऐसी अवस्था भी आती है, जब प्रिय का सामना करते ही सारी सुध–बुध जाती रहती है बिहारी ने इसी मोहावस्था का एक अत्यन्त ही मोह का चित्र खींचा है। नायिका खिलोने लिए बैठी थी कि इतने में नायक वहाँ आ गया। नायिका उसे देख मोहित उलटा–पुलटा काम करने लगी –

**"रही दहेड़ी ढिंग धरी, भरी मथनिया वारि फेरति कंरि उलटी रई, नई विलोकन हारि"**

मथनी में जल तो भरा था पर दही डालना भूल गई और चेतना शून्य–सी प्रेम विभोर होकर रई भी उलटी पकड़ कर चलाने लगी।

(viii) **आमोद–प्रमोद** : प्रेम के विकास में नायक–नायिकाओं की संयोग संबंधी विविध प्रेम क्रीड़ाओं का भी बिहारी ने बड़ा रोचक वर्णन किया है रूप की मादिरा पानकर नायिका दिन–रात मस्ती में खोई रहती है

**"डर न टरै नींद न परै, हरैन काल–बिपाकु धिनकु धाकि उधिकै न फिरि, खरौ विषमु छवि–छाकु"**

प्रणय में रूप का नशा कितना तीव्र है जो थोड़ी–सी पी लेने पर ही फिर कभी उतरता नहीं है। दूसरे नशे (भांग, मदिरा आदि के) तो गुरुजनों के डर से तुरन्त दूर हो जाते हैं अथवा नींद आ जाने पर उसका रंग कम हो जाता है, या समय बीत जाने पर उनका प्रभाव नहीं रहता। इसके अतिरिक्त नशा स्थिर रखने के लिए उन्हें बार बार पीने की आवश्यकता भी रहती है। परन्तु प्रियतम के रूप का नशा एक बार और वह भी तनिक–सा पान कर लिया, तो वह फिर वह लोक–लाज के डर से हटता नहीं है, नींद आने का तो प्रश्न ही नहीं उठता है। समय ज्यों–ज्यों बीतता है, यह उलटे बढ़ता ही जाता है। प्रेम को पल्लकित करने के लिए नायक नायिका जल–विहार भी करते हैं, उद्यानों में भी घूमते हैं, बसन्त ऋतु में फाग की विनोद भरी क्रीड़ाओं में भी भाग लेते हैं। इस अवसर पर रंग की पिचकारी लिए या मुट्ठी में गुलाल भरे दोनों प्रेमी एक दूसरे को छेड़ते रहते हैं इसका कारण केवल एक उदाहरण देखिए –

**"ज्यौं उझकि झांपति बदनु, झुकति बिहंसि सतराइ। त्यौं गुलाल मुठी झुठी, झझकावत प्यौ जाइ"**

होली के खेल में नायक को गुलाल भरी मुट्ठी ताने हुए देखकर नायिका आँखों में गुलाल पड़ने के भय से घूघट से मुंह ढांपती है, कुछ चौंककर झुकती है और मुस्कराती भी है नायक उसकी यह मुस्कराहट भरी मुद्रा देखकर इतना मोहित हो गया है कि वह बार–बार इसी रूप को देखने की इच्छा से बिना गुलाल की मुट्ठी तान कर ही उसे झूठ–मूठ डराता है ताकि नायिका फिर–फिर वैसी ही चेष्टाएँ करे। मुट्ठी में गुलाल न भरने का रहस्य रत्नाकर जी बताते हैं कि सुकुमारी नायिका की आँखों में गुलाल पड़ने से वह नायक का मुट्ठी तानना देख न सकेगी और वैसी मनोहर मुद्राएं न बनाएगी, जिनको देखने के लिए नायक यह नाटक रच रहा है। इसी प्रकार कभी नायक जान–बूझकर नायिका को साथ लिए कंकरीली राह पर चलने लगता है, क्योंकि प्रेय को ककर पर कोमल पांव रखते देख जब नायिका भय और आशंका से 'सी', 'सी' शब्द निकालती है तो नायक उस पर रीझकर बार–बार अनजाना बनकर उसी राह पर चलने लगता है, ताकि वह उस मन को लुभाने वाली चेष्टाओं को देख सके। नायक और नायिका एक दूसरे को पान खिलाते समय पुलकित हो उठते हैं। अपने हाथ से अनेच्छुक नायक को पान खिलाते हुए नायिका की मुद्रा को देखिए –

**"हंसि ओठन बिच, करु ऊचै, किए निचौहे नैन। खरैं अरै पिय के प्रिया, लगी बिरी मुख दैन"।।**

कितना स्वाभाविक और हृदयग्राही चित्र है। फिर नायक ने जब उत्तर में अपने हाथ से पान खिलाना चाहा तो क्या हुआ –

**"नाक मोरि नाहीं करै, वारि निहोरै लेइ। छुवत ओठ बिच आंगुरिन, बिरी बदन प्यौ देह"।।**

(ix) **व्यंग्य विनोद** : नायिका का इन्कार, विनय, अनुरोध तथा नायक का बलात् छेड़छाड़ तथा व्यग्य विनोद का भी अपना विशेष महत्व है। प्रेमियों को एक–दूसरे को सताने में भी बड़ा आनन्द आता है। ऐसे अवसरों को खोजकर बिहारी ने बड़े ही रंगीन दृश्य श्रृंगार–रस के रसिकों को दिखाने के लिए 'सतसई' में जुटा रखे हैं एक बार नायिका (राधा) ने नायक (कृष्ण) से बातचीत का आनन्द लूटने की आशा से उसकी मुरली छुपा ली जब कृष्ण

ने पता किया तो साफ अनजानी बैठी रही। नायक ने अनुनय–विनय की, प्यार की सौगन्ध दिलाई तो मुस्करा पड़ी, परन्तु देने का वायदा करके भी फिर मुकर गई –

**"बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय'। सौंह भौंहनि हंसै, दैन कहि नटि जाय"।।**

एक दूसरे दोहे में बिहारी की नायिका नायक की मीठी चुटकी लेती है। नायक उसकी बेनी गूंथ रहा था। परन्तु अंग–स्पर्श से स्वेद सात्विक अनुभाव हो जाने के कारण नायिका के बाल गीले हो गए।

इस पर नायक कहता है –

**"रहौ गुही बेनी लखे, गुहिये के त्यौनार'। लागै नीरे चुचान जे, नीठि सुकाये वार"।।**

अर्थात्–'अब रहने भी दो। देख ली तुम्हारी बेनी गूंथने की कला। इतनी कठिनाई से तो बाल सुखाये थे। तुमने उन्हें फिर गीला कर दिया। छोड़ो, हटो, तुमसे कुछ भी नहीं होगा।'

कितनी मीठी छेड़छाड़ है। ऐसे व्यंग्य–विनोद के मधुर प्रसंग 'बिहारी सतसई' में और भी हैं। देखिए –

एक और अवसर पर नायिका जब गोरस बेचने जा रही थी तो नायक राह रोक कर खड़ा हो गया। दूध–दही तो क्या लेनी थी, नायिका से बात करने बहाना खोजना था। नायिका नायक की इच्छा भाँप कर बोली–

**"लाज गहौ बेकाज कत, छेरि रहे घर जाहिं'। गोरसु चाहत फिरत हौ, गोरसु चाहत नाहिं"।।**

व्यंग्य–विनोद की ऐसी मीठी–मीठी उक्तियाँ बिहारी के शृंगार–रस के वियोग–पक्ष का शृंगार बन गई है।

(x) **प्रसंग कल्पना** : बिहारी ने केवल रीति–ग्रन्थों के आधार पर रुढि–अनुभवों का वर्णन ही नहीं किया, अपितु अपनी मौलिक प्रतिभा से वियोग– शृंगार के विशाल क्षेत्र में से ऐसे नूतन और सरस प्रसंगों की भी कल्पना की है, जिनमें 'गागर में सागर' भरने की कहावत चरितार्थ हो गई है। प्रणय काल के उन सुन्दर खण्ड चित्रों में तरुण–हृदयों की मीठी धड़कनें कोमल अनुभूतियों तो हैं ही कवि की वर्णन–चातुरी तथा अनुपम कल्पना शक्ति का भी इन्द्र–धनुषी रूप होने पर सुहागे का काम करता है। कभी तो बिहारी गुरुजनों से घिरे नायक–नायिकाओं द्वारा प्रेम–प्रार्थना का मनुहार भरा लम्बा वार्तालाप केवल मौन आँखों से ही करा लेते हैं, तो कभी पूरी कहानी ही दो पंक्तियों में कह डाली है –

**"मै मिसिहा सोयौ समुझि, मुंह चूम्यौ ढिंग जाइ'। हंस्यौ खिसानी गल गह्यौ, रही गरै लपटाइ"।**

नायक झूठमूठ रुठने का बहाना बनाकर सोया है। नायिका का मन काबू में नहीं रहता। एकान्त और प्रिय को सोया समझ चुपके–से आती है। धीरे से नायक को ज्यों ही चूमने लगती है कि नायक उसके भोलेपन पर हंस पड़ता है और भागती हुई प्रिया को पकड़कर गले से लगा लेता है। ऐसे ही एक अन्य मधुर प्रसंग की भी कवि ने उद्‌भावना की है। अब की बार नायिका सोने का बहाना किये हुए है। वह नायक को छकाना चाहती है परन्तु चुपके," उपेक्षा भरा प्रियतम ज्यौं ही साथ आकर लेट जाता है, तब उसके मधुर स्पर्श से पुलकित होकर नायिका से नहीं रहा जाता। पर अपनी बात रखने के लिए वह नायक से ऐसे लिपटती है, मानो नायक उसे नींद में ही आलिंगन करता हुआ समझे और फिर उसे जगाकर प्यार से मना लेता है। इस निद्रा–ब्याज के अनेक भावपूर्ण रसिक–प्रसंगों की कल्पना बिहारी ने की है जिनमें प्रेमियों के कायिक अनुभावों का ही नहीं, सात्विक अनुभावों का वर्णन भी हुआ है। दोनों प्रकार के अनुभावों का एक संयुक्त उदाहरण इसी प्रकार के एक दोहे में दर्शनीय है –

**"मुखु उघारे पिउ लखि रहत, रह्यौ न गौ मिस सैन'। फरके ओठ, उठे पुलक, गए उघरि, जुसि नैन"।।**

अनुरागिनी नायिका जान–बूझकर आँखें मूंद कर लेट गई है। मुंह पर कपड़ा भी ओढ़ लिया है। नायक ने आकर उत्सुकता से मूंह खोलकर जो देखा तो सोने का बहाना चल न सका। होंठ फड़क उठे, शरीर रोमांचित हो गया। नयन खुले और प्रिय के नयनों से मिल गये। एक दूसरे अवसर पर नायिका नायक की प्रत्यक्ष उत्प्रेक्षा से चिन्तित थी। एक बार पांव में काँटा चुभा, तो नायक ने आकर निकाला। बड़ी सावधानी और भय–आशंका के मारे उसने कांटा निकाला कि कहीं नायिका को कष्ट न हो। नायक की इस चेष्टा से उसके अपने प्रति गुप्त प्रेम को जान नायिका की जान में जान आ गई –

**"इहि कांटे मो पाइ गड़ि, लीनी मरत जिवाइ'। प्रीति जनावत भीति सौं, मीत जु काद्यौ आइ"।।**

(xi) **स्पर्श–मुख** : संयोग–शृंगार में नायक–नायिकाओं की प्रेमलीलाओं में परस्पर स्पर्श जन्य मुख का भी बिहारी ने निःसंकोच वर्णन किया है। आँख–मिचोली के खेल में एक–दूसरे की आँख बन्द करने का प्रसंग प्रेमियों को बड़ा ही प्रिय होता है। इसी बहाने उन्हें एक दूसरे के मधुरस से पूर्ण अंगों का रोमांचकारी स्पर्श करने का स्वर्ण अवसर जो मिल जाता है देखिए जरा–नायिका की आँखें नायक ने मूँदी हैं, नायिका प्रिय के स्पर्श से यद्यपि उसे पहचान गई है, पर स्पर्श–सुख के लोभ में वह जान–बूझकर अनजान बनी हुई है –

**"प्रीतम दृग–मींचत प्रिया, पानि परस सुखु पाइ जानि पिछाने आजान लौ, नेकु न होति जनाइ"**

इस खेल की आड़ में प्रेमालिंगन भी होते हैं –

**"दोऊ चोर मिहींचनी, खेलु न खेलि अघात दुरत हियै लपटाइ कै, छुवत हियैं लपटात"**

बिहारी के नायक–नायिका केवल खेल में ही मिलन का बहाना नहीं ढूँढते, अपितु आस–पड़ौस में या अपने घर में भी कोई–न–कोई राह निकाल लेते हैं। दूसरे का चुम्बन करना भी बिहारी की तीव्र आँखों ने देखा है

(xii) **अभिसार** : संयोग–शृंगार के अन्तर्गत 'अभिसार' का प्रसंग भी कवि ने रस ले–लेकर चित्रित किया है। रीतिकालीन कवि परकीया नायिका के माध्यम से ही प्रेम की विविध झाँकियाँ दिखाते हैं। अतः बिहारी ने भी नायिका को प्रिय मिलन के लिए अभिसार की कला अच्छी तरह से सिखला दी।

काली रात में कृष्ण–वस्त्र पहनकर तथा शुक्ल–पक्ष में श्वेत वस्त्र पहन लेने से भेद के खुलने की आशंका नहीं रहती। यदि अभिसार से देर को लौटते समय राह में चन्द्रमा निकल भी आया, तो पद्मिनी नायिका के शरीर की सुगन्ध से आकर्षित होकर भ्रमरों ने गली में अंधेरा कर दिया। और नायिका बड़ी सरलता से अपने घर लौट आई। परन्तु जहाँ श्याम–वर्ण नायक और नायिका गौर–वर्ण नायिका साथ–साथ होते हैं तो भी खतरा रहता क्योंकि चांदनी में नायिका लक्षित नहीं होती और काली रात में नायक की शकल छिप जाती है। अतः किसी को भी संदेह उत्पन्न नहीं होता –

**"मिलि परछाहीं जोन्ह सौं, रहे गुहुन के गात हरि राधा इक संग ही, चले चली महं जात"**

(xiii) **कामुकता** : संयोग–शृंगार की चरम–सीमा ऐन्द्रिय–संभोग में गई है। बिहारी ने यद्यपि उस अवस्था का भी शब्द चित्र और ध्वनि–चित्र खींचा है, तथापि उस अवस्था से पूर्व की परिस्थिति तथा नायिका की मनोदशाओं का भी सुन्दर चित्रण किया है। अनुभाव की दृष्टि से ये दृश्य बड़े ही सजीव बन पड़े हैं। निम्नलिखित दोहे में रतिक्रीड़ा के लिए नायक द्वारा स्पर्श करने पर नायिका कृत्रिम क्रोध प्रदर्शित करती हुई 'ना – ना' कहकर भी 'हाँ' का मधुर संकेत दे जाती है –

**"जदपि नाहिं नाहिं नहिं, बदन लगी जक जाति तदपि भौंह हांसी भरिनु, हांसीयै ठहराति"**

इसी प्रकार परस्पर खींचातानी करती हुई, परन्तु अपनी अभिलाषा को भी चेष्टाओं द्वारा ध्वनित करती हुई नायिका को देखिए –

**"भौंहनु त्रासति, मुख नटति आंखिन सौं लपटाति ऐंचि छुड़ावति करुं, इंचि आगे आवति जाति"**

यहाँ रति–सुख की इच्छुक नायिका कभी साँझ आई देख, घर के सारे काम जल्दी–जल्दी निपटाने में लगती है तो कभी समय अधिक बीतता देखकर झूठ–मूठ जम्हाई लेना आरम्भ कर देती है ताकि नींद का समय अधिक होने के कारण पास बैठी सखियाँ चली जाए, तो वह प्रिय मिलन को जा सके। ऐसे अनेक रमणीय–स्थलों की कल्पना बिहारी ने की है।

(xiv) **रसाभास** : बिहारी ने संयोग–शृंगार के अन्तर्गत कहीं–कहीं रसाभास का वर्णन भी कर दिया है। उदाहरण के लिए बच्चे को नायिका की गोद में लेने के बहाने नायम का अपनी अंगुली से उसकी छाती का स्पर्श करना अथवा नायक द्वारा बालक को चूमे होने के कारण ही अपने बालक के होठों का चुम्बन लेकर प्रिय के आधर–स्पर्श की अनुभूति निःसंश्च रस न होकर रसाभास ही कहलायेगी। वात्सल्य जैसी पवित्र भावना में दाम्पत्यरति की

अवतारणा जैसी त्रुटियाँ यद्यपि केशवदास तथा अन्य रीतिकालीन शृंगारी कवियों में भी पाई जाती है, परन्तु ये प्रशंसनीय तथा अनुकरणी नहीं कही जा सकती।

इसी प्रकार बिहारी द्वारा किए गए सुरत, सुरतारम्भ, सुरतान्त तथा विपरीत रति जैसे कामुकतापूर्ण वर्णनों को भी आलोचकों ने अनुचित तथा अश्लील माना है। रस सदा 'व्यंग्य' होता है, उसे 'वाच्य' बनाने की आवश्यकता ही क्या है?

## निष्कर्ष

बिहारी का संयोग–शृंगार युग के विलासी–वातावरण का शब्दमय रंगीन चित्र है, जिसमें कवि की लेखनी ने चित्रकार की तूलिका से काम लेकर जीवन के रसीले प्रसंगों को बड़ी रुचि से और रस ले–लेकर अंकित किया है। इनमें हृदय की कोमल धड़कने प्रेम का मधुर संगीत छेड़ती हैं, नायिका की नयनाभिराम मुद्राएँ हाव–भाव और चेष्टाएँ अपने नायकों को ही नहीं, रसिक पाठकों के हृदय को भी आकर्षित कर लेती हैं। ऐन्द्रिय सुख के स्थूल वर्णनों के साथ–साथ मन की सूक्ष्म अनुभूतियों का भी बिहारी ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। कला का अनुपम सौन्दर्य भावों के रंगों में डूबकर अधिक मनोरम लगता है। संक्षेप में बिहारी के संयोग–शृंगार–वर्णन में यौवन, प्रेम और सौन्दर्य की त्रिवेणी पूरे वेग के साथ बहती है, जिनमें नहाकर काव्य का रसिक उस स्थिति को पहुंच जाता है, जिसे आचार्य शुक्ल हृदय की 'मुक्तावस्था' कहते हैं।

## आर्थिक सूक्ति

**कनक–कनक ते सौगुनी, मादकता अधिकाय' उहि खाय बौराय जग, इहि पाएहि बौराय"।।**

## काम–परक सूक्ति

**"तंत्रीनाद, कवित–रस, सरस राग, रति रंग' अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग"।।**

## अन्योक्ति

**"करि फुलेल कौ आचमन, मीठो कहत सराहि।' रे गन्धी मति–अन्ध तू, अतर दिखावत काहि"।।**

बिहारी की धार्मिक सूक्तियाँ भी अधिक हैं। हाँ 'प्रशस्ति–सूक्तियों की संख्या और विशेषता भी अपेक्षाकृत कम है।

# अध्याय – 11
# बिहारी का वियोग शृंगार

महत्व शृंगार–रस में सामान्यः संयोग को अपेक्षा वियोग को काव्य में अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उसका प्रधान कारण यह है कि प्रेमानुभूतियों की गहरी और व्यापक अनुभूति जैसी वियोगावस्था में होती है, वैसी संयोग में नहीं। किसी संस्कृत के कवि ने भी कहा है कि "संयोग और वियोग में से मुझे प्रिया का विरह अधिक पसन्द है, क्योंकि संयोग अवस्था में तो वह अकेली मेरे सामने होती है, जबकि उसके विरह में मुझे सारा संसार में उसी का रूप दिखाई देता है।"

वस्तुतः वियोगी–हृदय में तप, त्याग, सहनशीलता, सहानुभूति आदि मानव को उदात्त वृतियों की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत अधिक होती है। वेदना मनुष्य को दृष्टि प्रदान करती है। विरह की अग्नि में तपकर ही प्रेम को सुवर्ण कुन्दन बनता है सचमुच वियोग ही तो प्रेम की सच्ची कसौटी है। संयोगावस्था का प्यार आदि वियोग में भी विद्यमान रहे, तभी वह सच्चा प्यार है। प्रेम की अनन्यता की परीक्षा भी वियोग में होती है। वियोग प्रेम का शृंगार है।

काव्य का जन्म भी संसार में वियोग की वेदना से हुआ। क्रौंचपक्षी के मिलन–उत्सव में भंग पड़ने से जब एक की हत्या ब्याध के तीर से हुई तो बाल्मीकि अपनी प्रिया से वियुक्त पक्षी की वेदना की कल्पना करके चीख पड़े और इस प्रकार संस्कृत का पहला श्लोक रचा गया–शोक ही श्लोक बन गया। हिन्दी के स्वनाम धन्य महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त भी तो यही कहते हैं

**वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा मान। उमड़कर आँखों से चुपचाप, वही होंगी कविता अनजान।।**

कालिदास का यक्ष हो, या सूरदास की राधा, तुलसी का राम हो, या जायसी की नागमती, वियोग–शृंगार की अभिव्यक्ति से ही अमर काव्यों के नायक–नायिका बने हैं। भवभूति हो या महादेवी, किसी काल, देश का कोई भी कवि क्यों न हो वियोग की आग को बिना पिये श्रेष्ठ काव्य की रचना नहीं कर सका। सच कहा है – "Our sweetest songs are those that tall of saddest thoughts."

यही कारण है कि संसार के महान् कवियों ने संयोग की अपेक्षा वियोग शृंगार का आधार लेकर ही विश्व–साहित्य की अमर कृतियों की सृष्टि की है। वियोग में ही हृदय का तादात्म्य विश्व के कण–कण से होता है। विरही राम सीता का पता वृक्ष मृग और मधुकर श्रेणी से पूछने लग जाते हैं। कालिदास का यक्ष 'मेघदूत' द्वारा अपना संदेश अलकापुरी में बैठी प्रेयसी तक पहुँचाता है। जायसी की नागमती भंवरे और कौए से विनय करती है। कहने का अभिप्राय यह है कि विरह की अनुभूति मानव–मन की रागात्मिका वृति को विकसित करने का एक बहुत बड़ा निर्मित बन जाती है। प्रेम का शुद्ध स्वरूप संयोग में नहीं, अपितु वियोग से ही व्यापक रूप से प्रकट होती है। इस तथ्य को बिहारी जैसे मूलतः संयोग–शृंगार के कवि भी स्वीकार करते हैं –

**"छतौ नेहु काजर हिये, भई लखाइ न टांकु। बिरह तचें उघर्‌यौ सु अब कैसो आंकु"।।**

सेंहुड़ के दूध से लिखे अक्षर कागज पर सूख जाने के पश्चात् दिखाई नहीं पड़ते। जब आंच से कागज को गर्म किया जाता है, तो प्रकट हो जाते हैं। इसी प्रकार हृदय में विद्यमान प्रेम भी विरह की आंच से तप कर ही प्रकट होता है। अन्तु बिहारी ने अधिकतर संयोग–शृंगार का ही वर्णन किया है। वियोग शृंगार में उसका मन अधिक नहीं रमा, कदाचित युग की मांग भी यही थी। चमत्कार प्रदर्शन और ऊहोक्तियों से बिहारी का वियोग–वर्णन प्रभावशून्य हो गया है, फिर भी उनकी मौलिक प्रतिभा ने कृत्रिमता के घूंघट में से कभी–कभी अपनी रमणीय छवि का प्रदर्शन करा ही दिया है।

## शास्त्रीय–विवेचन

काव्यशास्त्र में शृंगार रस का दूसरा भेद 'विप्रलम्भ शृंगार' अथवा 'वियोग शृंगार है। 'संयोग शृंगार' में नायक का मिलन होता है, जबकि 'विप्रलम्भ शृंगार' में दोनों का विरह। परन्तु काव्य में दोनों की वियोगावस्था में भी दोनों ही रतिस्थायी भाव के परस्पर आलम्बन और आश्रय रहते हैं। 'उद्धीपन विभाव' के अन्तर्गत आलम्बन की चेष्टाओं, गुणों तथा तत्सम्बन्धी वस्तुओं का स्मरण किया जाता है तथा प्रकृति का वर्णन भी जैसे संयोगावस्था में रति को उद्दीप्त करके नायक और नायिका के लिए

उत्तेजक वातावरण तैयार करता है उसी प्रकार काव्य में प्रकृति वर्णन के द्वारा वियोगी प्रियजनों की विरहाग्नि और अधिक बढ़ जाती है। सामान्य रूप से 'षड्ऋतु–वर्णन' संयोग शृंगार में तथा 'बारहमासा वर्णन' विप्रलम्भ शृंगार में हिन्दी कवियों ने वर्णित किया है। बिहारी ने 'षड्ऋतु–वर्णन' तो किया है, परन्तु 'बारहमासा वर्णन' नहीं।

## विप्रलम्भ के भेद

विप्रलम्भ शृंगार के मुख्य चार भेद मान गए हैं –

1. पूर्वराग 2. मान 3. प्रवास 4. करुण

1. प्रिय का गुणगान या दर्शन करने से उसको प्राप्त करने की ज्यादा अभिलाषा मन में उठती है, और लोक–लाज अथवा अन्य किसी करण से प्रिय का संयोग न होने के कारण जो वेदना तड़प और टीस मन में जागती है, उसी अवस्था को 'पूर्वराग' कहते हैं।
2. संयोग हो जाने पर नायक के परस्त्री–विहार के कारण या प्रणय व्यापार की स्वाभाविक प्रक्रिया में जब ईर्ष्यावश बनावटी रोषवश प्रेमी जाते हैं, तो उस अवस्था को 'मान' कहते हैं। यह मान दो प्रकार का होता है– 1. प्रणयमान 2. ईर्ष्यामान। प्रणयमान क्षणभंगुर होने से वियोग की तीव्रता उसमें अनुभव नहीं होती पर जब नायक पर–स्त्रियों से अनुराग करता है या उसके साथ सहवास के चिह्न लेकर नायिका से मिलता है अथवा स्वपन में या असावधानी से पर–स्त्री का नाम ले बैठता है तो 'ईर्ष्यामान' की अवस्था कहलाती है। रीतिग्रन्थों में मानिनी तथा खंडिता–नायिका के कथन इसी के अन्तर्गत है।
3. पति जब किसी कार्यवश परदेश चला जाता है और नायिका उसके वियोग में दुःखी रहती है, तो इस अवस्था को 'प्रवास' कहते हैं।
4. करुण विप्रलंभ में नायक की मृत्यु तो हो जाती है, परन्तु पुर्नजन्म आदि के कारण उससे मिलन की आशा रहती है। जैसे 'कादम्बरी' में पुंडरीक की मृत्यु हो जाने पर भी महाश्वेता आकाश–वाणी सुनकर प्रिय के संयोग की आशा में बंधी रहती है।

उक्त चार अवस्थाओं में कुछ विद्वान 'पूर्व–राग' तथा 'मान' को विप्रलम्भ का भेद नहीं मानते। उनका कहना है कि 'पूर्वराग' में प्रियतम से मिलने की उत्कट अभिलाषा तो रहती है, परन्तु उसमें वियोग की तीव्र अनुभूति नहीं होती। 'पूर्वराग' में आलम्बन (नायक) भी कभी निकट रहता है तो कभी दूर। उसके प्रति आकर्षण और उससे मिलने की तीव्र इच्छा ही 'पूर्वराग' का विषय है, 'जो विप्रलंभ शृंगार' के अनुकूल नहीं पड़ता। अतः पं० विश्वनाथ प्रसाद का मत है, उसे तो विप्रलंभ के भीतर न मानकर संयोग के भीतर हो मानना चाहिए।" उनका कहना है – "मान भी घर के घेरे के भीतर होता है और मान में प्रिय का संयोग भी रहता है, केवल कुछ क्षणों के लिए नायिका प्रियतम से नाराज हो जाती है, जिससे नायक स्वयं या दूती की सहायता से शीघ्र मना भी लेता है। 'प्रणय–मान' में तो नायिका ईर्ष्या–वश भी नहीं रुठती, केवल विनोद के लिए या कृत्रिम रोष प्रकट करने के लिए ही रुठती है। अतः 'मान' एवं 'पूर्वराग', दोनों में वियोग की अपेक्षा संयोग के ही लक्षण अधिक मिलते हैं।"

परन्तु कुछ विद्वान प्राचीन–परम्परा को उचित ठहराते हैं। उनके विचार में 'पूर्वारागिनी' नायिका के मन में नायक को देखकर पूर्वराग उत्पन्न होता है, परन्तु गुरुजनों के बंधन, कुल की मर्यादा, लोक–लाज का भय, भेद खुल जाने की आशंका आदि से उसका मन अत्यन्त व्याकुल रहता है, अतः उसमें संयोग के मुख का अभाव होने से वह 'विप्रलम्भ शृंगार' का ही भेद माना जा सकता है।

इसी प्रकार 'मान' में भी 'प्रणयमान' की अपेक्षा 'ईष्यावमान' को वे वियोग शृंगार के ही अधिक अनुकूल समझते हैं तथा मनोविज्ञान के आधार पर भी उचित मानते हैं। उनके विचार से नायक के व्याभिचारी होने से नायिका को जो असहन पीड़ा होती है तथा 'प्रणय' और 'ईर्ष्यामान' में शारीरिक निकटता रहते हुए भी मन में जो अन्तर पड़ जाता है, उसे दृष्टि में रखते हुए दोनों को (पूर्वराग तथा मान को) 'संयोग–शृंगार' में न रखकर 'वियोग–शृंगार' का भेद मानना ही तर्कसंगत होगा।

परन्तु फिर भी इतना तो स्पष्ट ही है कि 'वियोग शृंगार' की जैसी स्पष्ट और पूर्ण, गहरी और व्यापक अनुभूति 'प्रवास' में होती है, वह न तो 'मान' में सम्भव है और न ही 'पूर्वराग' में 'प्रवास' अवस्था में नायक भौतिक तथा व्यावहारिक रूप से नायिका

की आँखों से दूर रहता है, अतः यथार्थ में विरह की तीव्र अनुभूति इसी दशा में ही हुआ करती है। कवियों ने भी प्राय. इसी के माध्यम से वियोग का वर्णन किया है।

## करुण विप्रलंभ

'करुण' विप्रलंभ को अधिक महत्व नहीं दिया गया। नायक की मृत्यु में देवी तथा अलौकिक शक्ति का हाथ रहने से तथा पुनर्मिलन की मिथ्या कल्पनाओं के कारण इस भेद को 'शृंगार' की अपेक्षा 'करुण रस' के भीतर मानना अधिक युक्तियुक्त है। काव्यशास्त्रों में 'करुणा विप्रलंभ' से उदाहरण प्रायः नहीं मिलते। मरण का वर्णन भारतीय संस्कृति और साहित्य में निषिद्ध माना गया है, किन्तु रत्नाकर जी ने निम्नलिखित दोहे को मरण अवस्था का ही उदाहरण माना है –

**"कहे जु वचन वियोगिनी, विरह विकल विलसाय। किए न केहि अंसुवा सहित, सुवा सु बोल सुनाय।।**

इस दोहे में मरते समय विरहिणी के जो विषादमय निराशा के बोल थे, उन्हें याद करके तोते ने जब दोहराया, तो सुनने वालों के नेत्र सजल उठे।

इस दोहे में यद्यपि रत्नाकर जी मरण का वर्णन परम्परा द्वारा निषिद्ध मानते हैं, तथापि उन्होंने 'बिहारी रत्नाकर' में लिखा है, कि "दोहे को करुण शृंगार का दोहा मानने में कोई बाधा ज्ञात नहीं होती।"

इसी प्रकार 'पूर्वराग' में वर्णित विरह की दस अवस्थाओं में अन्तिम 'मरण' अवस्था के भी उदाहरण 'बिहारी सतसई' में दिये गए हैं

## पूर्वराग

बिहारी ने 'पूर्वराग' का वर्णन बड़ी मार्मिक शैली से किया है और विरहानुभूति के अत्यन्त सुन्दर और मनोवैज्ञानिक उदाहरण दिए हैं, जो उसके प्रवासकालीन अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णनों की तुलना में कहीं अधिक कलात्मक कहे जा सकते हैं। 'पूर्वराग' के अन्तर्गत दस काम–दशाओं (अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथक, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मरण) का भी यथास्थान वर्णन किया है। कुछ उदाहरण लीजिए –

### जड़ता

**"चकी जकी सी हवे रही, बूझै बोलति नीहि। कहूं डीठि लागी लगी कै, काहू की डीठि"।।**

पूर्वानुरागिणी नायिका की मनोदशा का इसमें स्वाभाविक वर्णन है। प्रेम की आग में जली हुई नायिका की सारी चंचलता और आह्लाद समाप्त हो गया है। स्तंभित और जड़ तुल्य वह चुपचाप बैठी अपने प्रिय की चिन्ता में नित्य लीन रहती है। मन के रोगी का अत्यन्त मार्मिक चित्रण बिहारी ने किया है।

### चिन्ता

नायिका नायक को मन दे चुकी। परन्तु गुरुजनों का भय कुल की मर्यादा तथा लोक–लाज की चिन्ता के कारण समस्या खड़ी हो गई है। एक ओर प्रबल अनुराग है, मिलन की तीव्र लालसा है, और दूसरी ओर समाज के कठोर बन्धन हैं। वह दोराहे पर खड़ी व्याकुल हो रही है। उसकी दुविधा और परेशानी को बिहारी ने 'फिरकी' के सार्थक तथा पूर्ण अभिव्यंजक उपमान द्वारा व्यक्त कर दिया है –

**"नई लगनि, कुल की सकुच, विकल भई अकुलाइ। दुहै ओर ऐंची फिरति, फिरकी लौं दिनु जाई"।।**

### उद्वेग

पुर्वानुरागिणी नायिका के मन में जब से प्रेम अंकुरित हुआ है, उसे पलभर भी चैन नहीं आता। उसकी मानसिक शांति भंग हो गई है। वह घर में टिककर बैठ भी नहीं सकती। इधर से उधर और यहाँ से वहाँ प्रेम की ज्वाला में जलती हुई भागी फिरती है। उस दुखियारी की अस्थिर मनोदशा का एक यथार्थ चित्र बिहारी की लेखनी द्वारा चित्रित है –

**"ह्यां तैं ह्यं ह्यं तै इहां, नैको धरत न धीर। निसि दिन डाठी सी फीरति, नाठी गाढी पीर।।"**

### अभिलाषा

प्रेम का पंथ यद्यपि असि की धार जैसा तीखा है, पर मन की विवशता का क्या किया जाए, जो नायक की अभिलाषा में

दिन–रात व्याकुल रहता है। सखियों ने भी समझाया पर प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि स्थिति अब हाथ से निकल चुकी है –

**"कीनै हूँ कटिक जतन, अब कहि काढ़े कौनु। मो मनु मोहन रूप मिली, मैं पानी में कौ लोनु।।"**

कितनी सटीक और सार्थक उपमा द्वारा बिहारी ने पूर्वराग की दृढ़ता और विवशता का मार्मिक ढंग से अंकन किया है।

## व्याधि

प्रेम का रोग संसार में सबसे विचित्र रोग है। इसका उपचार वैद्य के पास नहीं मिलता। सखियाँ नायिका की रोगिणी–अवस्था को देखकर चिंतित है और जानती है कि केवल प्रिय की मीठी वार्ता से ही उसके रोग को शांति मिलेगी –

**"या के मन औरे कछु, लगि विरह की लाइ। पजरै नीर गुलाब कै, पिय की बात बुझाई।।"**

बिहारी ने इस दोहे में विरोधाभास का चमत्कार दिखलाकर प्रेम–रोग का कितना सुन्दर समाधान भी उपस्थित कर दिया है। गुलाब के शीतल जल से तो विरह की आग और भड़क उठती है; जबकि प्रिय का वार्तालाप रूपी पवन उसे बुझा सकता है। कितनी विचित्र है यह आग, जो पानी छिड़कने से तो भड़कती है और पवन चलने से बुझ जाती है। ऐसे विरोधाभास केवल प्रेम के सागर में ही सम्भव है।

एक दूसरे दोहे में बिहारी ने नायिका की विरहजन्य कृशता का जो मर्मस्पर्शी वर्णन किया है, वह प्रवास कालोन सामन्य ऊहोक्तियों के विरोध में निःसंकोच रखा जा सकता है। हाथ से मसले फूल की सजीव उपमा ने तो यथार्थ चित्र ही खड़ा कर दिया है कि विरहिणी नायिका अब अपनी सखियों से भी कठिनता से पहचानी जाती है–

**"कर के भीड़े कुसुम लौं, गई विरह कुम्हिलाइ। सदा समीपिनि सखिनि हूँ, नीढि पिछानी जाइ।।"**

## स्मरण

विरह में प्रिय से संबंधित स्थान भी बड़े प्यारे लगते हैं। इस मनोवैज्ञानिक सत्य को बिहारी ने बड़े ही कलापूर्ण ढंग से निम्न दोहे में व्यक्त किया है –

**"जहाँ जहाँ ठाड़यौं लख्यौ, स्थानु सुभग सिर मौरु। बिन हूँ उन छिनु गहि रहतु, दृगनु अजौ वह ठौर।।"**

कृष्ण को जिन स्थानों पर खड़ा देखा था, उनमें अब कृष्ण के वियोग होने पर भी उसके मधुर स्पर्श के कारण ऐसी रमणीयता उत्पन्न हो गई कि नायिका को वे स्थान प्रिय के उपस्थित न रहने पर भी प्रिय लग रहे हैं।

एक और दोहे में बिहारी ने यमुना के तट पर बैठी अश्रु बहाती राधा की स्मृतिजन्य अवस्था का बड़ा ही मर्मस्पर्शी भावपूर्ण चित्र खींचा है –

**"स्याम सुरति करि राधिका, तकति तरनिजा तीरु। अंसुवनु करति तरौंस कौ, खिनकु खरौ हौ नीरु।।"**

## मरण

साधारणतया मरण दशा का वर्णन काव्य में नहीं पाया जाता। बिहारी सतसई में एक–दो प्रसंग ऐसे आये हैं, जहाँ कवि ने इस कठिन विषय को भी अपनी कुशल लेखनी से अभिव्यक्त कर दिया है। दोनों दोहे यहाँ प्रस्तुत हैं –

**"मरी डरी कि टरी विथा, कहा खरि चलि चाह। रही कराहिं कराहि अति, अब मुंह अहि न आह।।"**

**तथा –"कहा कहौ बाकी दसा, हरि प्रानन के ईस। विरह ज्वाल जरियौ लखि मरियौ भयौ असीस।।"**

इस दोहे में "विरह की ज्वाला में जलने से तो उसका मर जाना ही उसके लिए कल्याणकारी लगता है" कह कर भी चतुर सखी नायक के लिए 'प्रानन के ईस' शब्द का प्रयोग कर रही है, जिससे यह भी ध्वनित हो रहा है कि यदि वह चाहे, तो विरहिणी नायिका के प्राणों की रक्षा (दर्शन देकर) कर सकता है।

**मान**: मान के दो भेद हैं – 1. प्रणय मान 2. ईर्ष्या मान।

1. बिहारी ने प्रायः 'ईर्ष्यामान' का ही वर्णन किया है।

## प्रणय

मान के कुछ दृश्य भी खींचे हैं, परन्तु विद्वानों की दृष्टि में वे 'संयोग–शृंगार' के अन्तर्गत ही संभव है। फिर भी उदाहरण के लिए यह दोहा देखिए –

**"सोवत लखि, मन मानु घरि, ढिग सोयौ प्यौ आइ। रही सुपन की मिलनी मिलि, तिय हिय सों लिपटाइ।।"**

इनमें नायिका प्रणयमान किए हुए थी, परन्तु प्रिय की स्पर्श से पुलकित होकर वह मान छूट गया और उसने नींद में होने का अभिनय करते हुए नायक को हृदय से लगा लिया।

2. ईर्ष्यामान के अनेक प्रसंग 'बिहारी सतसई' में मिलने हैं, विशेष रूप से 'खंडिता' नायिका के उदाहरणों में ईर्ष्या मान की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। कुछ नमूने देखिए –

(i) **डीठि परोसिनी ईठि हे कहे जु गये सयानु। सबै संदेसे कहि कहौ, मुसुकाहट मैं मानु।।**

नायक का अनुचित संबंध पड़ोसिन से था। वह नायिका की हितचिन्तक–सी बनकर कुछ अपने संदेश नायक से कहने के लिए नायिका को समझा गई। नायक के आने पर नायिका ने वे सभी संदेश उसे सुना दिए परन्तु साथ ही व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट से अपना मान भी व्यंथित कर दिया।

(ii) **"पलनु पीक, अंजुन अधर, धरे महावरु भाल।आजु मिले, सु भली करी, भले बने हौ लाल।।"**

रात्री को परस्त्री–विहार कर आने से नायक की दशा बड़ी ही विचित्र थी। उसकी पलकों पर स्त्री के चुबन का निशान पान की पीक से स्पष्ट था। स्वयं उसकी आँखें चूमने से होठों पर अंजन लगा था। सुरत समय स्त्री के पाँव का महावर नायिका के माथे पर विराजमान था। यह करतूत भांप कर मानिनी ने बडे ही व्यंग्यपूर्ण ढग से दोहे की दूसरी पंक्ति पढ़ी।

(iii) **"बाल कहा लाली भई, लोइन कोइनु मांस। लाल तुम्हारे दृगनु की, पर दृगनु में छांह।।"**

परस्त्री विहार में सारी रात जागने के कारण नायक की आँखें लाल हो गई थी। इधर रात भर प्रतीक्षा मे काटने से और नायक के न आने पर रोने के कारण तथा प्रातः नायक का रात्रिगमन देख कुछ रोष के कारण भी नायिका के नयन भी लालिमा लिए हुए थे। डीठ नायक ने चतुर बनकर अपने को निर्दोष जताते हुए सहानुभूतिवश नायिका की लाल आँखो का कारण पूछा तो नायिका ने बड़े व्यंग्यपूर्ण ढंग से उत्तर में सारा रहस्य खोल दिया, साथ ही अपने मान की भी सूचना दे दी। 'ईर्ष्यामान' के ऐसे अनेक उदाहरण आत्म–कथात्मक तथा संवादशैली में 'बिहारी सतसई' में भरे पड़े हैं।

**प्रवास** : बिहारी ने अधिकाँश वर्णन प्रवास–वियोग शृंगार–संबंधी ही किया है, परन्तु यह वर्णन ऊहात्मक शैली अथवा परम्परागत रुढियों के घेरे से बाहर नहीं निकल सका। हृदय की वास्तविक अनुभूतियों को कवि ने वाणी नहीं दी, जिससे बिहारी का यह विरह, वर्णन उपहासस्पद बन कर रह गया है।

**प्रवास** : वियोग के वर्णन में बिहारी ने प्रायः तीन प्रकार की नायिकाओं को आधार बनाया है।

**(क)** **प्रवत्स्यत्पतिका** अर्थात् जिसका पति परदेश जाने वाला हो।

**(ख)** **प्रोषित्पतिका** अर्थात् जिसका पति परदेश में हो।

**(ग)** **आगतपतिका** अर्थात् जिसका पति परदेश से लौट आया हो।

**(क)** **प्रवत्स्यत्पतिका** : कहीं–कहीं बिहारी ने 'प्रवत्स्थत्पतिका' की मनोदशा का निःसन्देह बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। बिहारी के विरह–वर्णन में इस वर्णन को 'अपवाद' ही कहा जाए। उदाहरण लीजिए –

(i) **"ललन चलनु, सुनि पलनु मैं अँसुवा झलके आइ। भई लखाइ न सखिनु हूँ, झूठैं दी जमुहाई।।"**

नायक का विदेश–गमन सुनते ही नायिका की आँखें डबडबा आई। परन्तु, सखियाँ कहीं देख न ले, उसने झूठी जंमाई ले ली। कितना मार्मिक और स्वाभाविक वर्णन है। काश! बिहारी की लेखनी संयोग के समान वियोग में भी मनोवैज्ञानिक दृश्यों की कल्पना चित्रित कर सकती है।

इसी प्रकार दूसरा दोहा लीजिए –

(ii) **"अजौं न आए सहज रंग, विरह दूबरैं गात। अबही कहा चलाहति, ललन चलन की बात।।"**

कितनी मधुर और सहज उक्ति है। नायिका फिर विदेश जाने की तैयारी करने वाले नायक से कहती है अभी–अभी तो तुम विदेश से लौट रहे हो। अभी तो मेरे दुर्बल और तुम्हारी विरहाग्नि से सूखे अगों का अंग भी सामान्य, सहज, स्वाभाविक नहीं हुआ। अभी तो उनकी कृशता भी दूर नहीं हुई और तुम अभी से फिर विदेश जाने की बात चला रहे हो।

इस उक्ति में कितनी सादगी है। अलंकार विहीन इस कथन से नायिका ने मन की सारी भावनाएँ, आकांक्षाएँ, आशंकाएँ और लालसाएँ एक साथ व्यंजित कर दी हैं।

(iii) **"ललन–चलन सुनि चुप रही, बोली आप न ईठि। राख्यौ गाहि गाढ़ैं गरै, मनो गलगली डीठि।।**

नायिका की कितनी उद्‌नात भावना इस दोहे में बिहारी ने व्यक्त की है। नायिका ने जब नायक से चलने की बात सुनी तो उसके समान नायक को भी असह्य वेदना हुई और उसकी भी दृष्टि डबडबा आई। नायिका ने सोचा, यदि वह रो भी पड़ी तो नायक को और अधिक कपट होगा। सो उस दुखियारी ने अपने मन और नेत्रों में उमड़े पीड़ा–प्रवाह को दबा लिया। वह प्रिय–गमन बेला में चुपचाप वेदना की सारी कड़वाहट को पी गई। दुःख की अभिव्यक्ति का एक शब्द भी मुँह से निकला कि कहीं द्रवित नायक का मन और अधिक विचलित न हो जाय। बिहारी की इस नायिका को जायसी की नागमती या सूरदास की राधिका के सामने निःसंकोच भाव से खड़ा किया जा सकता है। पूर्वाग्रह के बिना इस मनोवैज्ञानिक स्थिति का सजीव और स्वाभाविक चित्र खींचने वाले कवि को विरह–वर्णन में असफल कहना न्याय–संगत नहीं प्रतीत होता।

(iv) कभी–कभी बिहारी ने कुछ अतिरंजित वर्णन–शैली भी अपना लिया है जैसे –

**"मिलि चलि, चलि मिलि चलत, आँगन अथयों आनु। भयौ मुहूरत भोर कौ, पौरिहि प्रथसु मिलानु।।"**

स्थिति स्वाभाविक है परन्तु वर्णन अतिरंजित हो गया। नायक को प्रातः काल विदेश को जाना था। नायिका से विदा लेकर चलने को ही था कि प्रेमाधिक्य के कारण मिल–मिलकर चलने और फिर दो कदम चलकर फिर–फिर मिलने में ही इतनी देर हो गई कि आँगन में ही संध्या हो गई।

बिहारी ने मनोवैज्ञानिक स्थिति को उठाया तो है, किसी सीमा तक उसे निभाया भी है। यदि विदाई के अवसर पर संध्या का वाच्यार्थ ग्रहण करके अत्यन्त विलम्ब के व्यंग्यार्थ को स्वीकार किया जाये, तो यह अतिरंजित कल्पना भी मनोवैज्ञानिक की दृष्टि से बड़ी ही भावपूर्ण और मर्मस्पर्शी कही जा सकती है।

**(ख) आगत–पतिका** : प्रवत्स्यत्पतिका नायिका के समान 'आगतपतिका' का चित्रण भी बिहारी ने बड़ी स्वाभाविकता के साथ किया है। लोक में स्त्री की बाईं आँख का फड़कना शुभ सूचक माना जाता है। आज विरहिणी नायिका की बाईं आँख फड़क उठी, तो उसने समझ लिया कि नायक विदेश से लौट रहा है। बस, यह कल्पना करते ही वह नायक के स्वागत के लिए वेष भी सजाने लगी –

(i) **मृगनैनी दृग की फरक, उर उछाह तन फूल। बिन ही पिय आगम उमंगि, पलटन लगी दुकूल।।**

प्रियतम के आये बिना, केवल शकुन से उसका आना परिलक्षित कर नायिका का शृंगार उसकी पति के लिए आतुर मनोदशा का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण है। प्रतीक्षा करने वालों की यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया कवि की सूक्ष्म निरीक्षण–शक्ति तथा गहरी भाषानुभूति का ही परिणाम है।

प्रियतम के आ जाने पर कैसी अद्‌भुत स्थिति पैदा हुई है, इसका आँखों देखा हाल प्रस्तुत है –

(ii) **"बिछुरै जिसे संकाच इहिं, बोलत बनत न बैन। दोऊ दौरि लगे हियैं, कियो लजौ हैं नैन।।**

चिरकाल से प्रतीक्षा करने वालों दो प्रेमियों का यह मधुर–मिलन भला किसके मन को नहीं भाएगा। नायक–नायिका दौड़कर गले मिल रहे हैं। मुँह से वचन तक नहीं निकलता। लज्जा से आँखें झुकी जा रही हैं, क्योंकि बिछुड़ते समय दोनों ने कहा था कि हम वियोग में जीवित नहीं बचेंगे। प्रेम–मनुहार में न जाने कितनी बार ऐसे आश्वासन एक–दूसरे को दिए थे। परन्तु इतनी लम्बी अवधि के पश्चात् भी तो वे जीवित रहे। दोनों एक नहीं अपने आश्वासनों और वचनों को याद करके आज लज्जित है, चुप हैं।

इन दोनों को देखकर भला कैसे कहा जाएगा कि विरह–वर्णन में बिहारी को सफलता नहीं मिली।

(iii) आगतपतिका नायिका की कोमल भावनाओं की झलक एक और स्थान पर भी कवि ने व्यक्त की है, जब वह अपनी बाईं बाँह के फड़कने से पति आगमन की शुभ सूचना का संकेत पाकर प्रसन्न हो जाती है और उसे पुरस्कार के रूप में केवल इतना ही दे सकने का वचन देती है कि जब प्रियतम आया, तो तुमसे ही (अर्थात् केवल बाँह के द्वारा ही। उससे मिलूँगी। दाहिनी भुजा को परे ही रखूँगी।

प्रतीक्षा की स्थिति कितनी विकट होती है, वह अनुभव की वस्तु है। समय की गति प्रतीक्षा में कितनी मन्द हो जाती है; इसकी कल्पना कवियों ने अतिशयोक्ति अलंकार की सहायता से ही प्रायः की है। बिहारी की नायिका को लम्बी प्रतीक्षा के बाद जब यह ज्ञात होता है कि नायक विदेश से लौट आया है, तो मिलन की उत्सुकता विद्युत गति के समान तीव्रगामी हो जाती है। उसके लिए एक पल की और प्रतीक्षा भी प्रलयंकारी सिद्ध होती है। नायक घर पहुँच चुका है और ड्यौढ़ी में गुरुजनों से मिल रहा है। बस इतनी सी देर भी चिर–प्रतीक्षारत नायिका के लिये असह्य हो जाती है। बिहारी के शब्दों में इस स्थिति का अलंकृत परन्तु मनोवैज्ञानिक वर्णन देखिए –

(iv) **"रहे बरोठे में मिलन, पिउ प्रामन के ईस। आवत आवत की भई, विधि की धरी धरीसु।।"**

प्रतीक्षा की एक घड़ी ब्रह्म की घड़ी (असंख्य युगों की अवधि) बन जाती है। यह वर्णन अत्युक्तिपूर्ण होता हुआ भी प्रतीक्षा की आकुलता की ही ध्वस्ति करता है। इसी प्रसंग में परदेश से आने वाले नायक की आतुरता, उत्सुकता और प्रतीक्षा की अन्तिम घड़ी की समाप्ति के समय की अधीरता की ध्वनि भी दर्शनीय है –

**"जदपि तेज रौहाल बल, पलकौं लगी न बार। तौ ग्वैड़ों घर को भयौ पैड़ों कोस हजार।।"**

सचमुच 'बिहारी सतसई' में आगतपतिका, प्रवत्स्यह पतिका तथा पूर्वराग के दोहों में कवि ने वियोग–शृंगार की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति की है।

**(ग) प्रोषित्पतिका** : वियोग का ऊहात्मक वर्णन–'बिहारी सतसई' में वियोग शृंगार की भद्दी तथा ऊहात्मक अभिव्यक्ति 'प्रोषित्पतिका' नायिका के वर्णन में ही अधिकाँश रूप से हुई है; जिसके कारण आलोचकों ने बिहारी को बहुत बदनाम किया है।

विरह का यह अत्युक्तिपूर्ण ऊहात्मक वर्णन तीन प्रकार से मिलता है –

(1) नायिका का विरह संताप (2) प्रकृति का उद्दीपन रूप (3) पत्र या संदेश। सभी प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत हैं

(1) **नायिका का विरह–संताप** : विरह की अग्नि में जलने से नायिका का शरीर तप रहा है। इस स्वाभाविक स्थिति का बिहारी ने आलंकारिक चमत्कार तथा उक्तिवैचित्र्य के फेर में पड़कर बिल्कुल हास्यापद बना दिया है।

**"औंधाई सीसी सुलखि, बिरह–बरति बिललात। विचहीं सूखि गुलाब मौ, छींटों छुई न गात।।"**

उस तप्त शरीर को शीतल करने का उपचार जब गुलाब–जल द्वारा किया गया, तो कुछ बूंदों के छिड़कने से काम बनता न देख सखियों ने पूरी की पूरी शीशी ही उस पर उंडेल दी। परन्तु ताप भी तो कम न था। शायद अग्नि की भट्टी जल रही थी, क्योंकि गुलाब की शीशी का सारा जल शरीर पर गिराने से पहले बीच में ही सूख गया, भाप बनकर उड़ गया। बेचारी नायिका के शरीर तक तो एक बूंद भी नहीं पहुंच पाई।

क्या कहने इस अतिश्योक्ति के। डॉ० संसारचन्द्र के शब्दों में खेद है कि बिहारी के पास ताप मापने का थर्मामीटर नहीं था, नहीं तो डिग्री का पता भी लग जाता। पर प्रश्न हो सकता है कि इतने ताप के पास उपचार करने वाली सखियां कैसे बैठ सकती होंगी? इस प्रश्न के औचित्य का ध्यान रखकर ही कदाचित् बिहारी ने एक और दोहे की रचना की, ताकि आलोचक इसे संभव मान लें।

**"आड़े दै आले वसन, जाड़े हूँ की राति। साहस ककैं सनेहवस, सखी सजै ठिग जाति।।"**

सखियों ने जब अपनी प्रिय सहेली की विरहाग्नि का समाचार सुना, तो जाड़े की ठंडी रात में कमरों के भीतर गर्म वस्त्रों में लिपटी पड़ी थी। किन्तु सखी–स्नेह के कारण उन्हें पूछने जाना ही पड़ा। एक तो जाड़े का मौसम, फिर रात का समय, किन्तु सखियों ने फिर भी सावधानी के लिए पहने हुए वस्त्रों को भी ठंडे पानी से गीला कर लिया, तब जाकर कहीं वे विरह की आग में जलती हुई अपनी प्रिय–सखी के पास जा सकीं।

सचमुच 'महाकवि' की इस 'महासूझ' की प्रशंसा करनी पड़ती है।

जब सर्दियों में यह अवस्था हो, तो ग्रीष्मकालीन में स्थिति कितनी विकट होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है। बिहारी भी इसे भली भाँति समझते हैं और स्थिति को अधिक स्वाभाविक बनाने के लिए ही कदाचित् उन्होंने एक प्रमाण जुटाने की

अत्यन्त आवश्यकता समझी, जो निम्नलिखित दोहे से प्रकट है—

**"सीरैं जतननु सिसिर ऋतु, सहि बिरहिनि—तन—तापु। बसिबै को ग्रीष्म—दिननु, परयौ परोसिनि पापु।।"**

सर्दी की ऋतु में तो गीले वस्त्र पहन—पहन कर पड़ोसिन ने किसी प्रकार नायिका के विरह—ताप के कष्ट को सहन कर ली लिया था। किन्तु ग्रीष्म ऋतु के आने पर तो उस विरहिणी के घर के पास—पास रहना तो मुसीबत हो गया। यह तो पुराने जन्मों के संचित पापों का फल भोगने जैसे प्रतीत हो रहा है।

बिहारी द्वारा यह विरहाग्नि का वर्णन उस समय अतिशयोक्ति की सारी सीमाओं को भी लाँघ जाता है, जब कवि दूर की कौड़ी फैंकने की अकल्पनीय कलाका प्रदर्शन करते हुए लिखता है—

**"सुनत पथिक मुंह माहनिसि, चलति लुवैं उहि गाम। बिन बूझै बिन ही कहैं, जियत बिचारी बाम।।"**

नायक जब नायिका से बिछुड़ कर विदेश चलने लगा था; तो नायिका ने कहा था कि वह उसके बिना जीवित नहीं बचेगी। जब माघ का महीना आया, जो कि प्रेमियों, विशेष रूप से विरहीजनों के लिए असह्य माना जाता है तो परदेसी नायक को बार—बार अपनी प्रिया के जीवन की चिन्ता सताने लगी कि न जाने बेचारी की क्या दशा होगी, वह जीती भी होगी या नहीं आदि—आदि। सौभाग्य वश उसी समय उसके गाँव से एक पथिक आ गया, जिसने एक अद्‌भुत समाचार सुनाया था कि माघ महीने की रातों में भी उस गाँव में गर्म लूएँ चलती हैं। बस इतना सुनते ही उसे विश्वास हो गया कि उसकी नायिका मरी नहीं है, अभी जीवित है। लूओं का चलना उसी के विरह की अतिशय अग्नि से ही संभव हुआ है।

इसी प्रकार के अनेकों दोहे 'बिहारी—सतसई' में ढूँढे जा सकते हैं, जिनमें कवि ने विरहताप का असंभव, प्रस्वाभाविक, असुन्दर और अनुचित वर्णन किया है।

## कृशता

विरहजन्य शारीरिक दुर्बलता स्वाभाविक परिणाम है। बिहारी ने 'पूर्वराग' के व्याधि—प्रसंग में उसका बड़ा ही मार्मिक और स्वाभाविक चित्रण भी किया है।

परन्तु ऊहोक्ति की लिप्सा में बह कर दरबारी फारसी कवियों की विचित्र उक्तियों की प्रतिस्पर्धा में आकर बिहारी ने अतिशयोक्ति की भी टाँग तोड़ दी है। एक उदाहरण लीजिए—

**"इत आवति चलि जाति उत, चली छः सातक हाथ। चढी हिंडौरे सैं रहैं, लगी उसासुन साथ।।"**

नायिका विरह के कारण इतनी अधिक दुर्बल हो गई है कि अपने श्वास—निःश्वास के साथ ही वह छः—सात हाथ इधर से उधर और उधर से इधर आ जा रही है, मानो साँस लेने और निकालने के क्रम से वह किसी हिण्डोले पर झूल रही हो। वाह! नायिका न हुई, घड़ी का पैंडुलम ही हुआ। जो हर समय क्रमानुसार झूलता रहता है। बिहारी को कदाचित् उक्त दोहे से संतोष नहीं हुआ। उन्होंने दूर की एक और कौड़ी फैंकी —

**"करी विरह ऐसी तऊ, गैल न छांडतु नीच। दीनैहु चसमां चखनि, चाहै लहै न मीच।।"**

विरह के अधिक्य से नायिका की दशा म्रियमाण?—सी हो रही है। मृत्यु उसे लेने आती है, परन्तु उसका शरीर अत्यन्त कृशता के कारण उसे दिखाई ही नहीं पड़ता। आँखों पर चश्मा लगाकर भी मौत को वह कृशयाय विरहिणी नजर नहीं आती। अतः वह ले भी जाए तो किसे। शायद यही कारण है कि नायिका अभी जीवित बची है।

क्या कहने—बिहारी ने तो नायिका को खटमल के समान मच्छर ही बना डाला, जो बिस्तर के झाड़ने से ही दिखाई दे सकते हैं, वैसे नहीं।

इसके अतिरिक्त बिहारी ने अश्रुओं की झड़ी का वर्णन किया है तथा उनकी अश्रुधारा से घर—घर और द्वार—द्वार पर कभी न सूखने वाली नदी बहने की कल्पना भी की है। ऐसे वर्णनों से विरह की सच्ची अनुभूतियों का चित्रण नहीं हो पाया। बाहरी नाप—जोख तथा अत्युक्ति के चमत्कार ने सारे वर्णन को 'तमाशा' बना दिया है। रससिद्ध और सिद्धहस्त बिहारी की काव्य—कुशलता तथा मौलिक प्रतिभा यहाँ आकर मानो कुंठित हो गई है। बिहारी की कला—चन्द्रिका को कदाचित ग्रहण लग गया है।

निःसंदेह बिहारी के विरह—वर्णन पर फारसी की दरबारी कविता, रीतिकाव्य की परम्परा तथा चमत्कार प्रिय आलंकारिता का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है; जिससे महाकवि की मौलिक प्रतिभा कुछ अंशों में छिप सी गई है। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के शब्दों

में "बिहारी में जैसी प्रतिभा थी, वह यदि परम्परा के चक्कर में न पड़ती, तो उनका काव्य–गौरव इससे कहीं अधिक हो ता

(2) **प्रकृति का उद्दीपन रूप** : 'संयोग शृंगार' के उद्दीपन–विभाव में प्रकृति--सौन्दर्य प्रेमी--जनों को अधिक आनन्दद यक लगता है, परन्तु वियोग में वही प्रकृति विरहीजनों के लिए दुःखदायी बन जाती है। मनोदशा के परिवर्तन क ा उस परिणाम समझना चाहिए। बसन्त के खिले फूल संयोग में हँसने–हँसाने की प्रेरणा देते प्रतीत होते हैं, परन्तु वियोग में वही वियोगी जनों का उपहास करते दिखाई पड़ते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से भी विरहीमन फूलों का हँसना हुआ देखकर कुढ़ता और कराहता रह जाता है। काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप से वर्णन परम्परा से चला आया है औ बिहारी परम्परा की लक्ष्मण– रेखा को पार करने का साहस बटोर नहीं पाते। फलतः 'बिहारी सतसई' में प्रकृति काव्य–परम्परानुसार 'बारहमासा'का वर्णन नहीं मिलता, तथापि विरह की अवस्था में प्रकृति के उद्दीपन विभाव सम्बन्धी उदाहरण मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए कुछ दोहे प्रस्तुत हैं –

**"दिसि दिसि कुसुमित देखियत, उपवन विपिन समाज। मनहुँ वियोगिनु को कियो, सर पंजर ऋतुराज।।**

इस दोहे में बसन्त ऋतु में फूले कुसुमों को कवि ने वियोगियों को घायल करने वाले काम–बाणों की उपमा दी है। अब वर्षा के बादलों का रूप देखिए–

**"कौन सुनै कासौं कहीं, सुरत बिसरी नाह। बदाबंदी जिस लेत हैं, ये बदरा बढराह।।"**

वर्षा के मेघ देखकर विरहीजन प्रिय–मिलन की उत्कट कामना से पड़प उठते हैं, परंतु प्रिय दर्शन न पाकर उनकी दशा शोचनीय हो जाती है। इसी प्रकार बरसात की रात में चमकते हुए जुगनुओं को देखकर विरह की मारी नायिका साध्वस से घर के भीतर घुस जानेका आग्रह करती है। क्योंकि वह समझती है, कि ये जुगनू नहीं चमक रहे, आकाश से अंगारों की वर्षा हो रही है। ऐसा ही उन्माद अवस्था का उदाहरण और है –

**"धुरवा होहि न लखि उठै, धुआँ धरनि चहुँ कोद। जामत आवत जगत को, पावस प्रथम पयोद।।"**

"यही काली घटा नहीं है, वर्षा का जो पहला बादल संसार को जलता आ रहा है, यह तो उसी आग अंगार का धुआँ है बसन्त और वर्षा ही नहीं, अन्य ऋतुएँ तथा प्रकृति के पदार्थ भी विरही जनों के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं। उनके रंग ही अब बदल गया है। प्रियतम के बिना चन्द्रमा हो या चन्दन, फूलमाला हो या शीतल मंद पवन, सभी शत्रु हो रहे हैं। ये माघ की निर्मल चाँदनी जो कभी चाँदनी जो कभी संयोग के अवसर पर प्रियमिलन के आनन्द को सौगुना बढा देती थी, उसे को देखकर धैर्य छूटा जा रहा है और चेतना लुप्त हो रही है –

**"भो यह ऐसी ई समौ, जहाँ सुखद दुखु देत। चैत चांद की चाँदनी, डारति किए अचेत।।"**

वियोग में चन्द्रमा जैसी सुखद वस्तु भी दुखदायक हो गई। नायिका समझ नहीं पाती कि मैं पागल हूँ, जो मुझे चन्द्रमा मुझे गरम लगता है अथवा सारा गाँव तो नहीं बौरा गया, जो इतना ताप देने वाले चन्द्रमा को शीतल कह रहा है

इस प्रकार बिहारी का प्रकृति–वर्णन कालशास्त्र की परम्परा के अनुसार ही हुआ है, जिसमें परिस्थितिवश ज़रा चमत्कार का रंग भी आ गया है।

(3) **पत्र या संदेश**: बिहारी का 'प्रोषित्पतिका' का वर्णन-प्रायः कटु आलोचना का विषय रहा है, परन्तु इस वर्णन में भी बिहारी ने पत्र–संबंधी कुछ अनूठी कल्पनाओं में विरहिणी का मानसिक स्थिति का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इन वर्णनों में अतिशयोक्ति की सामान्य चाशनी यद्यपि 'अनेक संवाद भरी' रुचि से नहीं बच सकी, तथापि अतिरंजना के पर्दे में से विरह की पीड़ा अपना यथार्थ रूप झलका ही जाती है। इस विषय में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

(i) **"कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात। कहि है सब तेरो हियों, मेरे हिय की बात।।**

नायक विदेश में है। विरह से पीड़ित नायिका बड़ी ही असमंजस में है। वह अपने मन की अभिलाषा कैसे नायक तक पहुंचाए दो ही उपाय हैं– पत्र द्वारा अथवा किसी संदेशवाहक को भेजकर वह अपनी मानसिक व्यथा तथा मधुर–मिलन की अभिलाषा व्यक्त कर सकती है। किन्तु नायिका मुग्धा तथा लजीली है। उसे लोकलाज एवं गुरुजनों का भी ध्यान है। वह मन की बात प्रिय के बिना अन्य किसी से कैसे कह सकेगी? लाज से डूब न जाएगी। सुनने वाला क्या कहेगा? तो क्या पत्र लिखूं। परन्तु पत्र में क्या मन की यथार्थ भावना पूर्ण रूप से उतारी भी जा सकेगी? इसमें उसे संदेह हैं। ऐसी दुविधा में आखिर वह यह

सोचकर संतोष धारण करती है कि प्रिय का हृदय ही उसके हृदय की दशा को ठीक–ठीक जान लेगा, क्योंकि मेरे बिना जो उसकी स्थिति है, मेरी भी अवस्था उसी प्रकार है।

बिहारी ने इस दोहे में प्रणय–वेदना की अनिर्वचनीयता का अत्यन्त ही कलात्मक ढंग से वर्णन किया है। एक दूसरे दोहे में प्रेमियों के अनूठे भावों को कवि ने और भी अनूठे ढंग से प्रदर्शित किया है–

(ii) **"बिरह–बिकल बिनु ही लिखी, पाती दई पठाइ। आँक विहोनीयों सुचित, सूने बांचत जाई।।"**

नायिका विरह की वेदना को पत्र द्वारा पूर्ण व्यक्त नहीं कर सकती थी। अतः बिना कुछ लिखे ही नायक के पास पत्र भेज दिया। उधर नायक की अवस्था भी दर्शनीय है। उस खाली चिट्ठी को, जिसमें एक अक्षर भी नायिका ने नहीं लिखा, एकान्त में बैठ, मन लगाकर पढ़ रहा है। कितनी विचित्र है प्रेम का यह संसार, जहाँ तर्क नहीं, भावुकता का साम्राज्य रहता है। लौकिक नियम नहीं, हृदय के अटूट बन्धन का शासन चलता है। बुद्धिमान, उस नायक को पागल कह सकते हैं, किन्तु पत्र के द्वारा नायिका ने हृदय की जो मूक वेदना नायक तक पहुँचाई है, उसे भी केवल नायक का अनुभूतिशील हृदय ही चुपचाप समझ सकता है। कभी–कभी जिस भाव को शब्द व्यक्त नहीं कर सकते है उसे अर्थपूर्ण मौन बड़ी सफलता और पूर्णता से समझा देता है।

इस शैली का एक और प्रसंग भी है, जिसमें अतिरंजना के साथ कवि ने परम्परा को भी व्यर्थ घसीटने का यत्न किया है –

(iii) **तरझरसी, ऊपर गरी, कज्जल जल घिर काइ। पिय–पाती बिन ही लिखी, बांची बिरह बलाइ।।**

इस दोहे में नायिका की पाती नीचे से जली हुई है और ऊपर से गीली है, क्योंकि पत्र के अधोभाग पर विरहाग्नि से तृप्त नायिका का हाथ पडा था, जिससे उतना भाग जल गया। ऊपर नायिका के सजल नेत्रों से काजल अश्रुधारा बहती रही, जिससे वह भाग गल गया। इस पत्र में भी नायिका शब्द रूप से लिख सकी, तो भी नायक ने पत्र की हालत देखकर नायिका की मनोदशा की सहज में कल्पना कर ली।

इस दोहे की मूल भावना तो पहले जैसे दोहे के समान है, परन्तु पहली पंक्ति में बिहारी ने काव्य की रुढियों का अनुसरण करके उसको प्रभाव शून्य बना दिया है।

(iv) नायक द्वारा भेजी गई चिट्ठी को प्राप्त करके वियोगिनी की जो वर्णनातीत प्रसन्नता होती है, उसका शब्द चित्र बिहारी ने बड़ा ही मार्मिक खींचा है –

**कर लै चूमि चढाइ सिर, उर लगाइ भुज भैंटि। लहि पाती पिय की लखति, बांचति, धरति समेटि।।**

अनुभावों का कितना सजीव और स्वाभाविक चित्रण है। चिर प्रतीक्षा में बैठी नायिका को प्रिय की पाती ज्योंहि मिली, उसने हाथ में लेकर पहले स्नेह से चूम लिया। फिर उसे मस्तक पर चढ़ाकर कृतज्ञता प्रकट की। प्रिय की पाती को प्रिय का रूप ही समझ कर उसे हृदय से लगाकर आलिंगन में बाँध लिया। प्रिय के साथ मधुर–मिलन की मादकता का अनुभव करके नायिका ने फिर उसे स्निग्ध दृष्टि से देखा, ध्यान से पढ़ा और फिर समेट कर उसे सावधानी के साथ सुरक्षित स्थान पर रख दिया। छोटे से दोहे में बिहारी ने हृदय की अनेक कोमल भावनाओं को समेटकर रख दिया है। मुक्तक–काव्य की यह अद्‌भुत कला केवल बिहारी के हिस्से में ही आई है। इस दोहे में नायिका का हर्ष, उत्साह, उत्सकुता, प्रेम आदर, आशंका आदि मूक अनुभूतियाँ वाचाल हो उठी है।

(v) पत्र ही नहीं, बिहारी ने सखी द्वारा भी संदेश लाने का वर्णन किया है। पाती की तरह ही जब सखी नायक का संदेश ले आती है, तो नायिका की आतुरता देखने योग्य है –

**"फिर फिर बूझति कहि कहा, कहौ सांवरे गात। कहा करत, देखे कहाँ, अली चली क्या बात।।"**

इसे पढ़कर सूरदास की उन उत्सुक गोपियों की याद हो आती है जो मथुरा से आए उद्धव को मार्ग में ही घेरकर खड़ी हो जाती हैं और प्रिय के विषय में प्रश्नों की झड़ी लगा देती हैं। उसे कुछ बोलने का अवसर ही नहीं देतीं। आराम से बैठकर कुछ कह सकने का अवकाश भी बेचारे उद्धव को नहीं मिलता। हक्का–बक्का–सा वह विस्मय से उन विरहिणियों को देखता ही रह जाता है।

बिहारी की नायिका भी नायक से मिलकर आते ही सखी पर प्रश्नों की बौछार कर देती है– "प्रिय ने क्या कहा और वह क्या कर रहा था? तुमने उसे कहाँ देखा था? उससे तुम्हारी क्या--क्या बातें हुई थीं? सखी बेचारी खडे--खडे सब उत्तर देती भी है, परन्तु इतनी जल्दी नायिका का अधीर मन भला कैसे संतुष्ट हो सकता है? वह बार--बार फिर वही प्रश्न पूछती चली जाती है।

कितनी विहलता और उत्सकुता का भंडार बिहारी ने कुछ शब्दों में समाविष्ट कर दिया है। विरह--वर्णन म बिहारी के ऐसे भाव–चित्र और शब्द–चित्र निःसंदेह काव्यकला के उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं।

(vi) अन्त में इस प्रसंग में नायक द्वारा भेजी गई वस्तु के प्रति नायिका की प्रतिक्रिया का वर्णन प्रस्तुत है। इस प्रकार के वर्णन में बिहारी ने काव्य परम्परा का ही पालन किया है। और भावभिव्यक्ति की अपेक्षा उक्ति-चमत्कार की अलंकृत शैली को प्रमुखता प्रदान की है–

**"हितु करि तुम पठयौ, लगै वा बिजना की बाद। तली तपति तन की तऊ, चली परवीना न्हाइ।।"**

नायक ने नायिका के विरहताप को शान्त करने के लिए सखी द्वारा एक पंखा भिजवाया था। परन्तु सखी नायक को जाकर बतलाती है– "तुमने तो हित–कामना से उसे पंखा भेजा है, उससे विरह का ताप तो अवश्य घट गया, परन्तु तुम्हारे भेंट की हुई वस्तु होने के कारण पंखे की हवा के स्पर्श से पुलकित होकर वह पसीना–पसीना हो जाती है। इस विरोधाभास का चमत्कार ही दोहे का प्राण है।

## निष्कर्ष

वियोग–श्रृंगार के उक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि 'प्रोषितपतिका' के विरह–संताप संबंधी कथन में बिहारी ने शब्द चमत्कार पर ही अधिक दृष्टि रखी है और हृदय की सच्ची विरहानुभूतियों के साथ खिलवाड किया है। तथापि पूर्वराग, प्रवास के अन्तर्गत प्रवत्स्यत्पतिका तथा आगतपतिका नायिकाओं का वर्णन एवं पत्र--संदेश सम्बन्धी दोहों में जो वेदना, प्रतीक्षा, उत्सुकता आदि अनेक हार्दिक प्रणय–भावनाओं का निरूपण हुआ है, वह न केवल स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक है, अपितु कलात्मक एवं मार्मिक भी है।

उनकी ऊहोक्तियाँ निःसंदेह उपहासास्पद है। कुछ वर्णन अत्युक्ति एवं उक्ति–वैचित्र्य का आडम्बर पूर्ण प्रदर्शन मात्र है। यह सब परम्परा का आग्रह है तथा दरबारी वातावरण की आवश्यकता और चमत्कार–प्रियता का भी उसमें हाथ हो सकता है। किन्तु परम्परा के बंधन में से जब बिहारी को उन्मुक्त क्षेत्र मिला है, उसकी नव–नवोन्मेषशासिनी प्रतिभा ने अपने पंख खोल दिये हैं और कल्पना के आकाश में जाकर वह भावनाओं के सुन्दर सितारे तोड़ लाई है। ऐसे अनेक प्रसंगों में अनुभूति की गहराई के साथ–साथ कला की सादगी और निरीक्षण की सूक्ष्मता के भी दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए परम्परायुक्त कथन के अतिरिक्त विरहानुभूति के मर्मस्पर्शी कुछ और दोहे प्रस्तुत हैं।

(i) प्रेम में एक ऐसी अवस्था भी आ जाती है, जब प्रेमी अपने प्रेम पात्र का प्रतिशत ध्यान करते–करते स्वयं उसका रूप हो जाता है। भक्ति के क्षेत्र की तरह प्रेम के क्षेत्र में भी यह अनुभव बिहारी की लेखनी से नहीं बच सका। प्रेम की इस गहरी अनुभूति का चित्रण करके बिहारी धनानन्द जैसे रीति–मुक्त श्रृंगारी कवियों के ऊँचे स्तर पर पहुंच गये हैं। यह निम्नलिखित दोहे से प्रमाणित हो जाता है, जिसमें विरहिणी नायिका दर्पण देखते समय प्रिय के ध्यान में इतनी डूब गई है कि उसे अपनी सुध–बुध भी नहीं रही। दर्पण में प्रतिबिंबित अपनी छवि को ही प्रियतम का रूप समझकर वह उस पर मोहित हो रही है। कितनी सुन्दर कल्पना है। कितन मधुर भ्रम है और कितनी गहन अनुभूति है। बिहारी ने सचमुच उदात्त प्रेम की चरम सीमा को छू लिया है। दोहा प्रस्तुत है --

**"पिय के ध्यान गही गही रही वही है नारि। आपु आवुही आरसी लखि, रीझत रिझवारि।।"**

(ii) विरह में ही संयोग की अनुभूति का चमत्कार दिखलाने वाला एक और दोहा भी दर्शनीय है -

**"सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर। मनु है जात अजौं वहै, उहि जमना के तीर।।**

विरह की चरम–सीमा पर पहुंच कर वियोगीजन संयोग का आनन्द अनुभव करते हैं। इस मनोवैज्ञानिक समय की अभिव्यक्ति इस दोहे में भी की गई है, जिसमें गोपियों को श्याम के विरह में भी सघन कुंज की छाया सुखद लगती है, यमुना

तट का समीर भी शीतल लगता है, जो साधारणतया वियोगियों के लिए संतापकारी बतलाए जाते हैं।

(iii) बिहारी की एक और विरहिणी का दर्शन कीजिए, जिसकी स्नेहलता बिरह की अग्नि में बिना झुलसे हरी–भरी रहती है –

**"नेक न झुरसी बिरह झर, नेहमता कुम्हिलात। नित नित होत हरी–भरी, खरी झाल रति जाति।।"**

(iv) इसी प्रकार विरह के व्यवधान पर भी मन की अनन्यता का परिचायक यह दोहा नायिका के अटूट स्नेह का प्रतीक है –

**"कहा भयौ जो बिछुरे, मो मन तो मन साथ। उड़ी जाहु कितहू गुड़ी, तऊ उड़ायक हाथ।।"**

इसमें सटीक उपमान का चमत्कार भी दर्शनीय है।

(v) विरोधाभास के आलंकारिक चमत्कार में से प्रेमानुभूति की प्रबल अभिव्यक्ति मेघमाला में से सूर्य के आलोक के समान निम्न दोहे में फूट पड़ी है –

**"जब–जब तै सुधि कीजिए, तब–तब सब सुधि जाहि। आँखिनु आँखि लगी रहै, आँखें लागति नाहि।।"**

(vi) संयोग हो अथवा विभोग, बिहारी ने नारी को ही प्रधान आधार बनाया है। अपवाद रूप में ही सही, निम्न दोहे में नायक (कृष्ण) की विरह दशा का चित्र देखिए, जिसमें सादगी का कलात्मक सौन्दर्य पराकाष्ठा पर पहुंच गया है –

**"कहा लडैते दृग करे, परे लाल बेहाल। कहुँ मुरली, कहुँ पीत पटु, कहुँ मुकुट, बनमाला।।"**

ऐसे अनेक दोहों की सृष्टि करने वाला कवि विरह–वर्णन में कहाँ तक सफल अथवा असफल रहा, इसका निर्णय बुद्धिमान आलोचक ही नहीं, सहृदय पाठक भी सरलतापूर्वक कर सकता है। भावानुभूति के हृदयस्पर्शी मार्मिक स्थलों की संख्या चाहे बहुत अधिक न रही हो, फिर भी उनका अस्तित्व ही कवि के काव्य–क्षमता और मौलिक प्रतिभा का चाक्षुष साथी है।

# अध्याय – 12
# बिहारी की समास–शक्ति/ समाहार शक्ति

रीतिकालीन कवियों में बिहारी अत्यन्त लोकप्रिय कवि है। इनकी जन्मभूमि ग्वालियर मानी जाती है। बिहारी ने निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी स्वामी नरहरिदास से संस्कृत, प्राकृत आदि का अध्ययन किया था। बिहारी के पिता केशवराव ग्वालियर छोड़कर ओरछा चले गये थे तथा कालांतर में ओरछा त्यागकर वृन्दावन में रहने लगे। वृन्दावन में बिहारी ने साहित्य के साथ–साथ संगीत का भी अध्ययन किया। यहीं इनकी भेंट शाहजहाँ से हुई जो इन्हें अपने साथ आगरा ले गये। कालान्तर में बिहारी ने जयपुर नरेश मिर्जा राजा जयसिंह को अपनी कविता के माध्यम से नव विवाहिता रानी रूपासक्ति से मुक्त किया तथा उनके कृपा पात्र बने।

बिहारी की कीर्ति का आधार उनका एकमात्र ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' है जिसमें कुल 713 दोहे संग्रहीत हैं। इस एक ग्रन्थ से बिहारी को जितनी मिली उतना अन्य महाकवियों को अनेकानेक ग्रन्थों का निर्माण करने पर भी नहीं मिल पाई। हिन्दी, शृंगार काव्य में बिहारी सतसई एक आलोक–स्तम्भ है। तुलसी के 'रामचरित मानस' के पश्चात यदि किसी ग्रन्थ पर इतनी अधिक टीकाएँ एवं समीक्षात्मक कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं तो वह 'बिहारी–सतसई' ही है। पं० रत्नाकर जी ने अपनी टीका में 52 टीकाओं का उल्लेख किया है। उनके पश्चात् शताधिक लेखकों समीक्षकों ने बिहारी काव्य पर लिखा है। मुक्त काव्य के कवि में 'कल्पना की समाहार शक्ति' और 'भाषा का समास शक्ति का होना अनिवार्य होता है। समाहार का अर्थ है 'एक स्थान पर इकट्ठा करना, कल्पना का काम ही है विविध पदार्थों के स्वरूपों को इकट्ठा कर एकरूपता प्रदान करना। जो कवि अपनी उर्वर कल्पना शक्ति के द्वारा विविधतापूर्ण तथा सामंजस्यहीन वस्तुओं में जितनी अधिक एक रूपता, आंगिक पूर्णता व सामंजस्यता स्थापित करता है, वह कवि उतना ही समर्थ होता है। 'समाहार शक्ति' के साथ दूसरी महत्वपूर्ण शक्ति है–सामासिकता, सामासिकता का अर्थ है–संक्षेपण, संग्रह या पदार्थों का एक दूसरे में समाविष्ट कर उसे ठोस स्वरूप प्रदान करना। भाषा में सामासिकता का बड़ा ही महत्त्व है। कम से कम शब्दों में अधिकाधिक–भाव व्यंजना करना ही सामासिकता है। बिहारी काव्य में उपरोक्त दोनों गुण अपने पूर्ण उत्कर्ष के साथ प्राप्त होते हैं।

प्रबन्ध काव्य में विस्तार होता है। उनमें क्रमबद्ध कथानक होता है। अतः प्रबन्धाकार का जहाँ भावों को विस्तृत विकास तथा रसोद बोधन का पूर्ण अवकाश प्राप्त होता है वही मुक्तकार यह सारा प्रभाव अपनी छोटी–सी रचना में प्रस्तुत करना पड़ता है। अतः मुक्तकार के लिए यह जरूरी होता है कि भाषा, रचना–कौशल, छन्द, अलंकार–शास्त्र आदि पर उसका पूर्ण अधिकार हो। उसे शब्दों की आत्मा का साक्षात्कार हो जिससे वह ध्वनि, रीति, लक्षणा, व्यंजना आदि के माध्यम से अपेक्षित कलात्मक प्रभाव उत्पन्न कर सके। मुक्तककार अपने खण्ड–दृश्यों में रस की धारा प्रवाहित करे, कलात्मक–कौशल का प्रदर्शन करे तथा वह रचना समर्थ एवं सार्थक हो सकती है। मुक्तक में मनोहारिता चमत्कार पूर्णता, सूक्ष्मता बिलक्षणता और सहज सम्प्रेषणीयता जैसे गुण होने जरुरी हैं। सफल मुक्तक–काव्य के ये समूचे गुण अपने भव्य रूप में बिहारी में विद्यमान हैं। बिहारी का प्रत्येक दोहा एक तराशा हुआ रत्न है जो अपनी बाह्य तथा आन्तरिक विभा से पाठक का हृदय आनन्दलोक से भर देता है। बिहारी ने 'गागर में सागर' भर दिया है, इसी कारण अनेक दोहे 'नावक के तीन' जो देखने में छोटे लगते हैं पर गम्भीर चोट करते हैं

**"सतसैया के दोहरें ज्यों नावक के तीर, देखन में छोटे लगे घाव करे गम्भीर।"**

बिहारी सतसई पर संस्कृत के 'गाथा–सप्तशती' 'आर्यासप्तशती' तथा 'अमरूक–शतक' का प्रभाव है। संस्कृत कवियों के भाव–माधुर्य व कलात्मक–सौन्दर्य ने बिहारी को निश्चित ही प्रभावित किया है।

'बिहारी सतसई' शृंगार रस प्रधान ग्रन्थ है। युगानरूप उसमें शृंगार के अंग–उपाँगों का पूर्ण परिपाक हुआ है। इसमें शान्त वीर एवं हास्य रसों का प्रयोग भी स्थान–स्थान पर हुआ है। लक्षण–लक्षण काव्य की परम्परा से यह मुक्त है, तथापि इसमें

संयोग एवं विप्रलंभ शृंगार का मार्मिक विवेचन, अनुभावों की रमणीय विवृति, प्रेम की विविध दशाएँ, हावों एवं संचारियों का प्रयोग, प्रकृति का मनोहारी चित्रण, जगत एवं जीवन का व्यापक अनुभव, दर्शन शक्ति वैराग्य आदि सभी कुछ अत्यन्त सहज एवं हृदय–स्पर्शी शैली में प्रस्तुत किया गया है।

बिहारी अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि के जागरुक कलाकार थे इन्होंने जीवन व जगत् का बड़ा ही विविधतापूर्ण व व्यापक अनुभव था। वे संस्कृत अपभ्रंश, फारसी, उर्दु, प्राकृत एवं हिन्दी आदि भाषाओं के अच्छे जानकार थे। उनका व्यक्तित्व बहुमुखी था–रस, प्रवणता, गंभीरता, अध्ययन शीलता, विनोद–प्रियता, स्वाभिमान आदि उनके विशिष्ट गुण थे। इन्हें ज्योतिष, वैधक, दर्शन–शास्त्र, राजनीति तथा अन्य ललित कलाओं का अच्छा ज्ञान था। बिहारी बहुश्रुत, बहुज्ञ व कला –मर्मज्ञ थे। इन सारे गुणों ने उनकी कविता को सजाने–संवारने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अतः बिहारी के कृतित्व एवं उनके कलात्मक उत्कर्ष को जानने समझने के लिए उनके व्यक्तित्व का परिचय आवश्यक है।

बिहारी का जीवन उन्मुक्त व रसपूर्ण था। वे जीवन को उसकी समग्रता में स्वीकारने के पक्षपाती थे। वे अपने युग के अत्यन्त प्रतिभाशाली और ईमानदार कवि थे। युगीन परिस्थितियों के अनुरूप उनके सामने उच्च जीवन मूल्यों अथवा नैतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं था। उनके सामने अपने ही युग की परिस्थितियों एवं मानसिकता को व्यक्त करने का प्रश्न था। इसी कारण उनके काव्य में शृंगार, विलासमय चित्रण आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा आदि–आदि बातें मिलती हैं। फिर भी सामग्री के प्रस्तुतीकरण अथवा अभिव्यंजना की नवीनता, कलात्मकता तथा सौन्दर्य प्रधानता के कारण बिहारी का काव्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

शृंगार का वर्णन और अनेक कवियों ने किया है, किन्तु बिहारी के दोहों में शृंगार का जितना स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक मनोरम, सूक्ष्म एवं प्रभावोत्पादक चित्रण मिलता है, वह शायद ही अत्यन्त्र मिल सके। केवल दो पंक्तियों के छोटे से दोहे में उन्होंने शृंगार के गत्यात्मक, रूपहले और सरस चित्र प्रस्तुत किए हैं, वे हिन्दी साहित्य में बेजोड़ हैं। यथा –

**"कहत, नटत, रीझत, खीझत, मिलत, खिलत, लजियात, भरे मौन में करत है, नैन ही सब बात।।"**

भरे समाज में नायक एवं नायिका के बीच में होने वाले 'आँखों–आँखों के बीच के संभाषण को–जिसमें निमंत्रण, असमर्थता, खीज, मान, लाज और अंतलः एक सुखात्मक अनुभूत की चित्रण बिहारी ने किया है, उनकी कलात्मक क्षमता का परिचायक है।

बिहारी के काव्य में भावपक्ष और कलापक्ष का अत्यन्त सुन्दर सामंजस्य व सन्तुलन मिलता है। यही कारण है कि 'वाग्द्वैध्य' तथा 'उक्तिकैचित्र्य' की दृष्टि से बिहारी सतसई की सफलता सर्वाषिदित है। इन विशेषताओं का काव्य में समावेश करने हेतु बिहारी श्लेष, रूपक, उपमा, अनुप्रास आदि अलंकार का बड़ा ही सामर्थ्य पूर्ण प्रयोग करते हैं, यथा –

**"त्यौं–त्यौं त्थासेई रहत, ज्यों–ज्यौं प्रियत आधाई, सगुन सलोने रूप की जनु चख तृषा बुझाई।।"**

इस दोहे में 'सलोने' शब्द में श्लेष के आरोपण से बात में जो विदग्धता आ गई है वह अत्यन्त मनोहारी है। सलोने रूप को जितनी तृप्त होकर नेत्रों से पीते रही उतनी ही वह प्यास बढ़ाती है। सलोने का अर्थ सुन्दर भी है 'नमकीन' भी है।

बिहारी अपने काव्य में अद्भुत चित्रात्मकता की सर्जना करते हैं। वे गत्यात्मक, ध्वन्यात्मक, बिम्बात्मक शब्दों में बिम्बों के माध्यम से ऐसा चित्र उपस्थित कर देते हैं जो भारी स्थिति को पाठक के मनः चक्षु के सामने उपस्थित कर देते हैं यथा –

**"रनित भृंग घंटावला, झरति दान मधूनीरू। मन्द मन्द आवत चल्यो, कुंजरू कुंज समीरू।।"**

वसन्त की मस्त वायु का बिहारी ने इस दोहे में गत्यात्मक शब्द चित्र प्रस्तुत किया है वह बेजोड़ है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "एक सफल मुक्तककार के लिए मुक्तक रचना करने में 'कल्पना की समाहार शक्ति' तथा 'समास–शक्ति' वांछनीय है, मुक्तक रचना में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी में अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचा है, इसमें कोई संदेह नहीं।"

मुक्तककार की कल्पना में जितनी अधिक समाहार शक्ति होगी उसकी कविता भी उतनी ही पूर्ण और पैनी होगी। व्यापक कल्पना सृष्टि के लिए गहन अर्न्तदृष्टि और सीधी सच्चे अनुभूति आवश्यक है। सच्ची अनुभूति को आधार शिला पर ही कल्पना का सुन्दर मनोरम प्रासाद निर्मित हो सकता है। यदि अनुभूति का संस्पर्श न हो तो कल्पना मात्र वायिब उड़ान बनकर रह जाती

है। कहना न होगा, बिहारी की कल्पना उनकी तीव्रानुभूति से मिलकर रससिक्त बन जाती है। वस्तुतः कला सर्जना में कल्पना कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कवि अपनी इन्द्रियों जगत के विविध संवेदन प्राप्त करना है, उन्हीं को अवसर एवं आवश्यकतानुसार गलाकर, घुला मिलाकर सर्वथा नवीन स्वरूप प्रदान करने वाली शक्ति ही कल्पना है। वस्तुतः कलाकार के अन्तःकरण में ऐन्द्रिक जगत् और मनो–जगत् के समन्वय से ही कलाकृति जन्म लेती है। जिस कलाकार में कल्पना की समाहार अर्थात् संग्रहीत करने की शक्ति जितनी अधिक होगी, वह कलाकार इतना ही सफल होगा। एक मुक्तककार के रूप में बिहारी की कल्पना में समाहार शक्ति पूर्णतः विद्यमान और सहज उपलब्ध है वे एक ही दोहे में हृदय के अनेक भाव, अनेक चेष्टाएँ तथा अनेक संचारी भाव व्यक्त करने की क्षमता रखते हैं, तथा –

**"नाउं सुनत ही ह्वै गयो तन और मनु और दबै नहीं चित चढ़ौ रह्यौ अषै चढ़ाए त्यौर।"**

इस दोहे में प्रिय के नामोल्लेख के साथ ही प्रेमिका के तन–मन में प्रसन्नता की अभिव्यक्ति, साथ ही तेवर चढ़ाकर उसकी मानसिक अवस्था को छिपाने का प्रयत्न करना अत्यना सहज रूप में अभिव्यक्त हुआ है।

कवि बिहारी कल्पना की समाहार शक्ति के माध्यम से बहुत से चित्रों को एक ही भाव में गूँथ कर एकाकर दते ह यथा

**"बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाई सौंह कवै, भौंहनु हँसे, दैन कहैं नटि जाई।"**

प्रियतम की बातों को सुनने की लालसा से प्रिया ने उसकी मुरली छिपा ली है। वह सौगन्ध खाती है, भौहा मे हंसती ह देने का वादा करती है और बार–बार नट जाती है।

इन दो पंक्तियों में नायिका की शरारत, चंचलता, प्रिय को चिढ़ाने की भावना, हास्य–विनोद आदि न जाने कितन भाव सहज ही अभिव्यक्त हुए हैं।

कल्पना की समाहार शक्ति के माध्यम से ही बिहारी छोटे–छोटे दोहों में इतनी सारी चेष्टाएँ हाव–भाव सचारी भाव आदि भर देते हैं। कि पाठक के मनःचक्षुकों के सामने एक सलिष्ट ही उपस्थित हो जाता है यथा –

**"मैं मिसहा सोयी समुझि मुँह चुक्यौं टिग जाइ। हस्यौ खिसानी गल गह्यो रही गरै लपटाई।।"**

तथा

**"भूषण भार सभार है, क्यों इहि तनु सुकुमार। सुधे पाइ न घर पैं, सोभा ही कै भार।।"**

बिहारी एक ही दोहे में इतनी सारी क्रिया–प्रतिक्रियाओं यथा कार्य व्यापारी का चित्रण कर देते हैं कि जिसका वर्णन करने के लिए सामान्य कवि को हजारों पंक्तियाँ लिखनी पड़े। उनकी ऊर्वर कल्पना विविध भावों को एक ही स्थान पर ऐसा समाहित कर देती है कि सब कुछ मिलकर एक रूप बन जाता है यथा –

**"खौंरि पनिय, भृकुटि धनुष, बधिकु समझ तजि कानि। इतनु तरुन मृग तिलग सर, सुरल–भाल, भरि तानि।।"**

इसी समाहार शक्ति के विषय में शुक्ल जी ने लिखा है–इसी से वे दोहे जैसे–से छन्द में इतना रस भर सके हैं उनके दोहे क्या हैं– रस के छोटे–छोटे समुद्र हैं।

बिहारी न भाव विदग्धता के साथ क्रिया–विदग्धता को बड़े ही कौशल के साथ चित्रित किया है। क्रिया विदग्धता को बड़े ही कौशल के साथ चित्रित किया है। क्रिया विदग्धा नायिकाएँ अपने प्रियतम से इस कुशलता के साथ बात करती ह कि उनकी चेष्टाओं और हाव–भावों का अर्थ केवल वे ही समझ सकते हैं अन्य नहीं यथा –

**"हरिष न बोली, लखि ललनु निरखि अमिलु संग साथ, आँखिन ही से हंसि धर्‌यो सीस हियै धरि हाथ।"**

"ज्यौं ही नायिका नायक को देखती है वह हर्षित हो उठती है किन्तु जैसे ही उसने देखा कि नायक किन्हीं गुरुजनों के साथ है वह मुख से कुछ न बोली अपनी आँखों ही आँखों में हंसकर उसने अपने हृदय पर हाथ रख लिया। इस प्रकार उसने बिना कुछ कहे ही पाँच प्रकार के अर्थों या भावों का बोध करा दिया। बिहारी इस दोहे में अत्यन्त मोलिक प्रतिभा का परिचय दिया

## सामासिकता

बिहारी की सामासिकता हिन्दी काव्य में प्रसिद्ध है। वे शब्दों के बीच से कारकों, संयोजकों, सहायक–क्रियाओं आदि को हटाकर कम से कम शब्दों के भावों तथा विचारों के ऐसे संश्लिष्ट बिम्बात्मक 'चित्र उपस्थित कर देते हैं कि पाठक चकित रह जाता है यथा –

**"चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट–पट झीन, मानहुं सुसरिता विमलजल उछरत जुग मीन।"**

घूँघट में भी चंचल नयनों की उच्छृंखलता दृश्यमान है मानो नदी के साफ–सुथरे जल में दो मछलियाँ उछल रही हो। उक्त दोहे में सामासिक शैली को देखा जा सकता है। कम से कम शब्दों में एक दीर्घ इतिवृत, विस्तृत प्रसंग एवं सूक्ष्म चितवृत्ति को प्रस्तुत करना बिहारी की समान शक्ति का ही सामर्थ्य है, यथा –

**"दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति, परति, गाँठ दुर्जन हिये, दई, नई यह रीति।"**

एक ओर आँखें जुड़ती हैं तो दूसरी ओर परिवार टूटते हैं और इसका परिणाम होता है– दुर्जन के हृदय में प्रेमियों को देखकर गाँठ पड़ती है।

सामासिकता के साथ–साथ व्यंजना–वैभव कोमलता, सरलता, नाद–सौन्दर्य, चित्रात्मकता आदि बिहारी की भाषा के अन्य महत्वपूर्ण गुण हैं।

बिहारी सतसई का सर्वाधिक चर्चित गुण है उनकी सामासिकता जिसके माध्यम से दोहे–जैसे छोटे–से छन्द में भी कवि ने भावों, विभावों, क्रिया–कलापों और विचारों के संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत किए हैं। इसी सामासिकता के माध्यम से बिहारी ने शृंगार–रस के अनेक संश्लिष्ट–गत्यात्मक चित्र प्रस्तुत किए हैं जिनमें वाग्वैदग्ध्य और कलात्मकता का भी पूरा योग हुआ है। यथा –

**"कर समेटि कच भुज उलटि खंए सीस पट डारि, काकौ मन बाँधे न यह जूरो बाँधानि हारि।"**

बालों को समेटकर जूड़ा बाँधती नायिका की भंगिमा किसका मन हर नहीं लेगी।

इस प्रकार भाव और कला का जो सुन्दर सामंजस्य बिहारी काव्य में मिलता है, वह हिन्दी के मुक्तक काव्य में बेजोड़ है। काव्य लाक्षणिकता, धन्यात्मकता, चित्रात्मकता नाद–सौन्दर्य और अर्थ गाभीर्य जैसे अनेकानेक गुणों का समावेश बिहारी ने अपने काव्य में किया है।

बिहारी ने शृंगार वर्णन एवं विशेष प्रकार की पद्धति पर किया है। जो पाठक या श्रोता इसके प्रसंग से परिचित होता है वही उसका पूरा आनन्द उठा सकता है। डॉ० सुन्दरदास ने 'सतसई सप्तक' की भूमिका में तीन ऐसे अचूक साधनों का उल्लेख किया है जिनमें बिहारी–काव्य में अनूठी ! क्षमता आ गई है। ये हैं– विदग्ध वाणी, प्रत्युत्पन्न मति और अनूठा दृष्टान्त। इन्हीं गुणों के कारण बिहारी ने मुक्तक काव्य को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। दूसरी ओर डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त इन्हीं गुणों के कारण बिहारी काव्य को दुरुह बताते हुए लिखते हैं–"अनेक स्थलों पर से विशेषताएँ काव्य की पोषक होने के कारण स्थान पर बाधक भी सिद्ध होती है। समास शैली के कारण इनमें अनेक स्थानों पर अस्पष्टता, दुरुहता एवं क्लिष्टता आ गई है। बिहारी की भाषा सर्वदा भावों का अनुवर्तन करती चलती है। उनके दोहों में कहीं भी, एक शब्द की फालतू प्रतीत नहीं होता। सारे शब्द जुड़े हुए रत्नों की तरह अपनी–अपनी जगह काव्य–सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं। बिहारी की भाषा के विषय में आचार्य शुक्ल लिखते हैं–"बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूप का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है। यह बात बहुत कम कवियों में पाई जाती है।"

बिहारी की भाषा में कसावट, चुस्ती, सामासिकता आदि ऐसे गुण हैं जिसके माध्यम से वे अपने अभिप्रेत विषय का अत्यन्त क्षमता के साथ सम्प्रेषण कर सकते हैं। इसका कारण है– बिहारी के काव्य का अंतरंग या भावपक्ष जितना समृद्ध है उसका बहिरंग या कलापक्ष भी उतना ही समृद्ध है। प्रत्येक दोहे में कवि ने भावों को अधिकाधिक सौन्दर्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। कवि ने भावाभिव्यंजना हेतु अन्योक्ति, समासोक्ति रूपक आदि का बड़ा ही मनोहारी प्रयोग किया है, यथा –

**"नहिं परागु, नहिं मधुर, नहिं विकासु इहि काल, अली कली ही सौं बन्ध्यौ, आगे कौन हवाल।"**

तथा **"स्वास्न सुकृत व श्रमु, वृथा देखि बिहंग विचारी। बाज पराये पानि परि, तू पंछीनू न मारी।।"**

बिहारी की अनुभूति बड़ी गहन थी। वे बड़ी ही सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि वाले कलाकार थे। वे जानते थे कि कला की साधना के लिए अभ्यास व लगन की आवश्यकता है जो इसमें डूबता है, वही तैर जाता है। अत्यरूप शब्दों में उन्होंने इस गम्भीर भय को जिस ढंग से व्यक्त किया है वह देखते ही बनता है। यथा –

**"तंत्री नाद कवित्त रस सरस राग रति रंग, अन बूड़े बूड़े तरे जो बूड़े सब अंग।"**

यद्यपि बिहारी शृंगार युग की उपज थे पर अन्य शृंगारी कवियों की उपेक्षा बिहारी की स्थिति अपनी कलात्मक मूल्यवत्ता के

कारण निश्चित ही श्रेष्ठ है। बिहारी की कविता का आधार मात्र विलासिता या शृंगार नहीं थे, बल्कि कलाप्रियता एव सौन्दर्य–प्रवणता उनके काव्य के शाश्वत तत्व थे।

बिहारी साहित्य–शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान थे। रस, अलंकार, ध्वनि रीति वक्रोक्ति, औचित्य आदि के साथ–साथ बिहारी का भाषा की क्षमता व शब्द–शक्तियों का पूरा–पूरा ज्ञान था। सच पूछा जाए तो बिहारी ने शब्दों की आत्मा का जो साक्षात्कार किया था वह उनके समकालीन किसी भी कवि ने शायद ही किया हो। शब्द और अर्थ तथा अर्थ छायाओं की गहरी समझ के कारण ही उनके दोहों में कल्पना की समाहार शक्ति व सामासिकता अपनी पूर्ण समता से अभिव्यक्ति पा सकी। यद्यपि बिहारी ने कोई रीति ग्रन्थ नहीं लिखा तथापि उन्होंने रस, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति आदि सिद्धान्तों का अपने दोहों मे जिस क्षमता से उपयोग किया है उससे उनकी कलात्मक क्षमता का पूरा–पूरा परिचय प्राप्त होता है। केवल चमत्कार–प्रदर्शन या कलापक्ष की प्रधानता के बल पर ही उनकी कविता अमर व लोकप्रियता न हो जाती यदि उसका भावपक्ष भी उतना ही समृद्ध न होता। वस्तुतः बिहारी को मानव मन को बड़ा ही गहन अन्तवृतियों यथा हर्ष शोक, प्रेम, शृंगार आदि को उन्होने बड़ी सूक्ष्मता से देखा–परखा था।

दैनंदैन जीवन के सूक्ष्माति सूक्ष्म सत्यों एवं विसंगतियों को उनकी पारदर्शी प्रतिमा का संस्पर्श मिला था। वे अनेक शास्त्रों के ज्ञाता थे–लोक जीवन के दृष्टा थे। ज्योतिष, वैधक पुराण कथाओं आदि का उन्होंने अपने काव्य में पूरे–पूरा प्रयोग किया है। वे अपने युग के सुशिक्षित, सुसंस्कृत, अध्ययनशील एवं जागरूक कवि थे। इसी कारण बिहारी का काव्य रीतिकाल के संकुचित घेरे से निकलकर सर्वकालिक बन गया है। बिहारी एक ऐसे समर्थ कलाकार थे। जिनके काव्य में जीवन और कला भाषा और भाव, विषय व अभिव्यंजना इन सभी तत्वों का मणिकांचन योग हुआ है। बिहारी ने अपनी अद्वितीय कल्पना शक्ति द्वारा विविध विषयों तथा विपरीत तथ्यों को आपस में मिलाकर एकाकार कर दिया है। दूसरी ओर सामासिकता द्वारा कम से कम शब्द में अधिकाधिक भावाभिव्यक्ति की संभावनाओं का समावेश अपने काव्य में किया है। इन दोनों स्थितियो से बिहारी अपने युग में ही नहीं, सारे हिन्दी साहित्य में अद्वितीय हैं।

वर्णमैत्री, अनुप्रास, ध्वन्यात्मकता, चित्रात्मकता शब्द गति, शब्द–शोधन, लथात्मक्ता अनेकार्थता, व्यंजना, रीति आदि के माध्यम से बिहारी ने ब्रजभाषा की अभिव्यंजना, शक्ति को पराकाण्ठा पर पहुँचा दिया है। ब्रजभाषा को सूरदास आदि कवि पहले ही निखार चुके थे पर बिहारी ने अपनी गहरी सूझ–बूझ के माध्यम से इस भाषा में माधुर्य, प्राणलता प्रौढ़ता व अभिव्यजना कौशल का जो समावेश किया वह अद्वितीय था। इस प्रकार बिहारी रीतिकाल के ऐसे समर्थ सजग कलाकार थे जिनका साहित्य परिणाम की दृष्टि से भले ही अल्प हो पर अपनी कलात्मकता एवं गुणवत्ता की दृष्टि से मध्ययुगीन हिन्दी कवि में अग्रगण्य है।

# (खण्ड–ख)

# व्याख्या

## (1)

**मेरी भव–बाधा हरौ, राधा–नागरि सोई। जा तन की झांई परैं, स्यामु हरित–दुति होई॥1॥**

### शब्दार्थ

भव–बाधा–सांसारिक विपत्तियाँ। नागरि–चतुर। सोई–वही। जा–जिसके। तन–शरीर। झाँई:परछाई, झलक, ध्यान आदि। परै–पड़ते ही। स्यामु– 1. श्री कृष्ण 2. श्याम रंग वाले श्री कृष्ण, 3. नाना विघ्न–बाधाएँ, ताप–पाप आदि। हरित– 1. हरे रंग के, 2. प्रसन्न मन, 3. हरण की गई है। दुति–कान्ति, आभा, चमक।

### प्रसंग

प्रस्तुत दोहा कविवर बिहारी द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' से अवतरित किया गया है।

बिहारी रीतिकालीन हिन्दी कविता के प्रसन्न कवि है। मुक्तक काव्य परम्परा में भी वे अगुपांक्तेय हैं। उन्होंने अपने दोहों में *गम्भीर अर्थों का समायोजन किया है।*

कोई भी रचनाकार अपने ग्रन्थ की निर्विहन रचना के लिये ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलाचरण प्रस्तुत करता है। चूँकि यह दोहा 'बिहारी–सतसई' का पहला दोहा है, इसलिए यह मंगलाचरणविषयक धारणा से युक्त है। बिहारी इस दोहे में नागरी राधा की वन्दना करते हुए कहते हैं –

### व्याख्या

प्रस्तुत दोहे के प्रसंगानुसार तीन प्रकार के अर्थ किए जा सकते हैं जो कि निम्नानुसार है। ये तीनों अर्थ झाई, स्यामु और हरित दुति–इन तीन शब्दों के अर्थ वैविध्य के कारण सम्भव हो सकते हैं। इन तीनों शब्दों के तीन–तीन अर्थों का विवेचन ऊपर शब्दार्थ के अन्तर्गत किया जा चुका है। दोहे के तीन अर्थ इस प्रकार किए गए हैं –

(क) जिस चतुर राधिका के शरीर की परछाईं पड़ने से श्याम वर्ण वाले श्री कृष्ण हरे रंग की आभा वाले हो जाते हैं। वहीं राधिका मेरी सांसारिक विघ्न बाधाओं आदि का नाश करें।

(ख) जिस चतुर राधिका के शरीर की झलक (नेत्रों में) पड़ने से श्री कृष्ण प्रसन्न चित्त हो जाते हैं अर्थात् आनन्द विभोर हो जाते हैं वहीं राधिका मेरी सांसारिक विघ्न–बाधाओं का नाश करें।

(ग) जिस चतुर राधिका के रूप का ध्यान पड़ने से (हृदय में) दुःख दारिद्रादिगत द्युति तेजहीन हो जाते हैं, वही राधिका मेरी सांसारिक विघ्न–बाधाओं का नाश करे।

### विशेष

1. यह दोहा मंगलाचरणात्मक है। यह मंगलाचरण के तीन रूपों आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक में से दो रूपों आशीर्वादात्मक तथा वस्तुनिर्देशात्मक से संबंधित है।
2. बिहारी ने 'भव–बाधा' हरौ के द्वारा आशीर्वाद की तथा 'राधा–नागरि' के द्वारा राधा के प्रणयविदग्ध रूप की व्यंजना करके वस्तुनिर्देश को व्यंजित किया है।
3. बिहारी ने राधा–रानी को कृष्ण से अधिक तेजोमयी बताया है और अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा–अनुरक्ति राधा देवी के ही चरणों में अर्पित की है। वास्तव में यह अर्पय राधा बल्लभ सम्प्रदाय की मान्यता से अनुप्रणित है।
4. बिहारी बहुज्ञता का परिचय भी इस दोहे से मिल जाता है। इसमें एक तरफ तो कवि ने अपना रंग विषयक ज्ञान (नीला और रंग मिलने से हरा रंग बनता है) व्यक्त किया है और दूसरी तरफ उसने अपनी वैद्यक जानकारी (हल्दी, नागरमोथा तथा सोमा के लेप से झाँई समाप्त हो जाती है) को भी प्रस्तुत किया है।

5. झांई, स्यामु, हरित–दुति में श्लेष अलंकार है।
6. भाषा में समास शक्ति तथा अर्थ गम्भीरता का समायोग है।
7. मुक्तक शैली का सुन्दर स्वरूप है।
8. दोहा, छन्द का प्रयोग है।
9. ब्रज भाषा का आकर्षक प्रयोग।
10. गम्भीर भावाभिव्यक्ति है ।
11. भावसाम्य :

**अपनय भव बाधा मम राधे। त्वं कुशलासि। हरिरपि दधवि हरिद्द्युतिं मदि माधवमुयमासि। श्रृंगार सप्तशती।**

## (2)

**अपने अंग के जानि कै जोबन–नृपति प्रवीन। स्तन, मन, नैन, नितंब की बड़ौ इजाफा कीन।।२।।**

## शब्दार्थ

अंग = पक्ष, राजा के अपने पक्ष के लोग, मन्त्री सेनापति तथा अन्य राज्याधिकारी। जोबन = नृपति–यौवन रूपी राजा। प्रवीन = कुशल निपुण। स्तन = कुच। नैन = आँख बड़ौ = बहुत। इजाफ़ा = (अरबी भाषा का शब्द) वृद्धि, बढ़ोत्तरी कीन = किया।

## प्रसंग

सतसई के रचनाकार बिहारी ने लिखा है कि नवयौवना मुग्धा नायिका के शारीरिक अंगों के विकास तथा उसके मन में बढ़ते हुए उत्साह को देखकर नायक का मन प्रसन्न हो गया है। नायिका की प्रशंसा करता हुआ वह मन ही मन में कह रहा है

## व्याख्या

कविवर बिहारी कहते हैं कि यौवन रूपी राजा ने नवयौवना मुग्धा के स्तनों, नयनों, मन और नितम्बों को अपने पक्ष के मानकर बहुत वृद्धि कर दी है। अर्थात् यौवन रूपी राजा ने वनयौवना नायिका के स्तनों, नयनों, मन और नितम्बों को अपना सहायक समझकर इन सभी की बहुत वृद्धि कर दी है। जिसके परिणामस्वरूप नायिका के स्तनों में पूरा उभार आ गया है, नयन विशाल (विशाल नेत्र नारी–सौन्दर्य के परिचायक माने जाते हैं) हो गये हैं। मन में यौवन की तरंगें हिलौरे मार रही हैं और नितम्ब पुष्ट एवं मांसल (नारी के मांसल नितंबों की शोभा सर्वविदित है) हो गए हैं।

## विशेष

1. कविवर बिहारी ने नारी–सौन्दर्य का परम्परागत वर्णन किया है। रीतिकालीन काव्य में नख–शिख वर्णन की एक रूढ़ी परंपरा विद्यमान है।
2. कवि ने नायिका की वयः सन्धि का चित्रण किया है। इस उम्र में नायिका के अंग–प्रत्यंग में उभार आता है
3. कवि को राजनीति का भी सम्यक् ज्ञान है और इसी कारण यौवन–रूपी राजा के रूपक का सफल निर्वाह कर पाये है राजा अपने सहायकों को अपना शुभचिंतक मानकर और उनकी सेवा से प्रसन्न होकर उनके वेतन तथा सुविधाओं आदि में वृद्धि कर देता है। प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका के स्तनों, नेत्रों तथा नितंबों आदि को यौवन रूपी राजा के सहायकों के रूप में चित्रित किया है।
4. अलंकार–छेकानुप्रास– 'अपने अंग' तथा 'नैन नितंब' में। तुलयोगिता–दूसरे चरण में।
5. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
6. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम का सुन्दर योग।
7. सूक्ष्म भाव का स्पष्ट चित्रण।
8. आकर्षक गेयता।
9. श्रृंगार रस का परिपाक।
10. दोहा, छन्द का प्रयोग।

11. भाव साम्य की दृष्टि से विद्यापति की निम्न पंक्तियाँ देखिए –

**मदनक भाव पहिल परिचार। भिन जन बेल भिन्न अधिकार।**

**(3)**

**अर तैं टरत न बर–परे, दई मरक मनु मैन। होड़ाहोड़ी बढ़ि चले चितु, चतुराई, नैन।।३।।**

## शब्दार्थ

अर = किसी बात के लिये डट जाना, हइ करना जिद करना। बर = बाल, उमंग, उत्साह से भरा हुआ। परे = भरे हुएं मरक = बढ़ावा, वृद्धि। मनु = मानो। मैन = कामदेव। होड़ाहोड़ी = बराबरी करने की इच्छा। चितु = चित्त। नैन = नयन।

## प्रसंग

कविवर बिहारी श्रृंगार चित्रण में सिद्धहसत है। इस दोहे में नवयौवना मुग्धा नायिका के रूप को देखकर नायक मन ही मन रीझ रहा है और कह रहा है –

## व्याख्या

नवयौवना नायिका के लावण्य पर रीझकर नायक अपने आप से कह रहा है कि यौवन के आगमन के कारण इस नायिका के उमंग से भरे हुए चित्त, चतुराई और नयनों ने अपने–अपने गौरव के लिये हठ ठान ली है और तीनों ही प्रतिद्वन्द्विता की भावना से बढ़ रहे हैं जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों कामदेव ने भी इन्हें प्रोत्साहन दिया हुआ है। कहने का आशय यह है कि यौवन के आगमन के कारण नायिका का चित्त तो उमंगों से भर ही गया है, चतुराई भी बहुत आ गई है तथा नैन भी बहुत विशाल हो गये हैं।

## विशेष

1. यौवन के आगमन के साथ ही नवयौवना के हाव–भाव व्यवहार आदि में किंचित अन्तर आ गया है। उसका मन यौवन के उद्दाम आवेग में डूबा रहता है और वह चतुर भी हो जाता है। कवि ने नारी मनोविज्ञान का गम्भीर चित्रण किया है।
2. नायिका के इस सौन्दर्य वर्णन की वक्ता दूती भी हो सकती है जो कि नायक के समक्ष नायिका के लावण्य का वर्णन करे।
3. श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक।
4. सूक्ष्म भावों का सुन्दर चित्रण।
5. ब्रज भाषा का प्रयोग।
6. प्रसाद–माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
7. दोहा छन्द का अनुप्रयोग।
8. सुन्दर बिम्ब–विधान।
9. अलंकार– वृत्यानुप्रास–'मरक मनु मैन' तथा 'चले चितु चतुराई' में।
   छेकानुप्रास – 'होड़ा होड़ी में। हेतुत्प्रेक्षा – सम्पूर्ण दोहे में। मानवीकरण – सम्पूर्ण दोहे में।
10. भावसाम्य की दृष्टि से विद्यापति की निम्नपंक्तियाँ देखें –

**सैसव–यौवन–दुहूँ मिलि गेल। स्त्रवनक पथ दुहूँ लोचन लेल।।**
**वचनकि चातुरि लहु–लहु हास। सखि पूछव कइसे सुरति बिहार।।**

**(4)**

**और–ओप कनी निकनु गनी धनी सिरताज। मनीं धनीं के नेह की बनीं छनीं पट लाज।।४।।**

## शब्दार्थ

और कुछ और ही। ओप = चमक, आभा। कनीनिकनु = आँख की पुतली। गनी = मानी गई है, गणना की जाती है। धनी = पत्नी।

सिरताज = (फारसी का शब्द) सरताज, शिरोमणि। मनी = मणि, हीरा, धनी = स्वामी, पति। नेह = प्रेम। छनीं = छिपी हुइ। पट = कपड़ा। लाज = लज्जा।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में नवयौवना नायिका की आँखों की पुतलियों का वर्णन किया गया है। नायिका का सखी नायिका की पुतलियों की यौवनोचित शोभा और लज्जा का वर्णन कर रही है। नायिका की सखी नायिका को संबोधित करते हुए मन–भावन रूप में कह रही है।

## व्याख्या

बिहारी लिखते हैं कि नायिका को संबोधित करते हुए एक सखी नायिका से कह रही है कि 'हे सखी, अब यौवनागम के कारण तेरी आँखों की पुतलियों की आभा और ही हो गई है जिसका शुभ परिणाम यह हुआ है कि तू अपनी सपत्नियों में सर्वाधिक प्रमुख हो गई है अर्थात् प्रियतम के अत्यधिक निकट हो गई है। तेरी आँखों की ये पुतलियाँ लज्जा रूपी वस्त्र में छिपी हुई हैं और इसी कारण नायक के स्नेह की मणियां बन गई हैं। आशय यह है कि नायिका की यौवन–दीप्त पुतलियाँ नायक के स्नेह को आकृष्ट करने के लिए लज्जा रूपी आवरण में छिपी हुई मणियों की तरह शोभा पा रही है। यौवन के आगमन के साथ मुग्धा नायिका की पुतलियों में एक विशेष प्रकार की लज्जामिश्रित कान्ति आ जाना स्वाभाविक है। यह मन मोहक चित्रण है।

## विशेष

1. उपरोक्त कथन अन्य सम्भोगदुखिता नायिका का भी हो सकता है, जो कि सपत्नी की लज्जा युक्त पुतलियों को देखकर डाहवश कहती है "तू अपनी लज्जा युक्त पुतलियों के कारण प्रियतम के इतना निकट हो गई है और इस प्रकार सपत्नियों में प्रमुख हो गई है।"
2. यौवनागमन के साथ नारी की पुतलियों में एक विशेष प्रकार की लज्जा का भाव आ जाता है जो कि किसी भी व्यक्ति को आकृष्ट कर लेता है। कवि ने नारी मनोविज्ञान सम्बन्धी ज्ञान का भी परिचय दिया है।
3. मध्यकालीन सामन्तीय प्रथा में बहुपत्नी प्रचलन का चित्रण है।
4. श्रृंगार रस का परिपाक है।
5. दोहा छन्द स्वरूप है।
6. ब्रज भाषा प्रयोग है।
7. अनुपम सौन्दर्य–चित्रण है।
8. प्रसाद–माधुर्य गुण सम्पन्न शैली है।
9. अलंकार–छेकानुप्रास– 'और लोप' में।
   वर्णमैत्री – 'मनीं धनी के नेह की बनीं छनीं' में।
   रूपक – 'पटलाज' में।

(5)

**नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहार। तज्यौ मनौ तारन बिरदु बारक बारनु हारि।।**

## शब्दार्थ

नीकी = भली। दई = दैव अर्थात् ईश्वर। अनाकानी = अनसुनी कर देना। गुहरि = पुकार। तज्यों = छोड़ दिया। मनौ = माना तारन–बिरदु = भक्तों को इस भवसागर से पार लगाने की कीर्ति। बारक = एक बार। बारनु = हाथी। तारि = तार कर अर्थात उद्धार कर।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में एक भक्त भगवान को यह उपालम्भ दे रहा है कि भगवान ने उसका उद्धार नहीं किया। भक्त के मन में विशेष राग है।

## व्याख्या

अपना उद्धार न होने पर भगवान के उपालम्भ देते हुए एक भक्त कहता है कि "हे भगवान्, आपने यह अच्छी रीति शुरू कर दी है कि मेरी सभी प्रार्थनाएँ सुनकर भी अनसुनी कर दी हैं जिसके परिणाम स्वरूप मेरी सभी आर्त–प्रार्थनाएँ प्रभाव–रहित हो गई हैं, अर्थात् अब मेरी आर्त–पुकार का आप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। यह स्थिति देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मानों एक बार हाथी का (ग्राह से) उद्धार कर देने के पश्चात् आपने भक्तों के उद्धार करने की कीर्ति को छोड़ दिया है।" भक्त लगातार ईश्वर भक्ति करके दर्शन चाह रहा है।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने गज–उद्धार की कथा का उल्लेख किया है। इस पौराणिक कथा के अनुसार एक बार ऐरावत हाथी नदी में पानी पीने लगा कि ग्राह ने उसे पकड़ लिया। गज के लिए अपने आप को बचाना सम्भव नहीं रहा। अन्ततः उसने भगवान का स्मरण किया तो भगवान नंगे पाँव आए और उस हाथी को ग्राह के पंजें से मुक्त करा दिया।
2. प्रस्तुत दोहा यह प्रमाणित करता है कि कविवर बिहारी ने अपनी इस सतसई में कवल श्रृंगार परक दोहों की ही सृष्टि नहीं की है अपितु कहीं–कहीं विषयक परिवर्तन भी मिलता है।
3. कवि ने यथा स्थान मुहावरों का सफल प्रयोग करके अभिव्यंजना को सशक्त बनाया है। कवि ने इस दोहे में निम्न मुहावरों का प्रयोग किया है – अनाकनी देना, गुहार का फीका पड़ना आदि।
4. ब्रज भाषा का प्रभावी रूप।
5. दोहा छंद का प्रयोग।
6. भक्ति रस का सुन्दर परिपाक।
7. प्रभावी लयात्मकता।
8. सुन्दर भावाभिव्यंजना।
9. 'लज्यौ मनौ तारन–बिरदु' में उत्प्रेक्षा अलंकार।
10. 'बारक बरनु' में यमक अलंकार।

## (6)

**जोग–जुगति सिखए सबै मनौ महामुनि मैन। चाहत पिय–अद्वैतता काननु सेवत नैन।।**

## शब्दार्थ

जोग = योग, नायक–नायिका का मिलन, चित्तवृत्ति के विरोध से आत्मा और परमात्मा की एकता। जुगति = युक्ति उपाय, प्रियतम के मिलने के उपाय। प्रिय = नायक, परमात्मा। अद्वैतता = अभिन्नता, एक हो जाना। काननु = वन, कान। नैन = नयन, नेत्र तथा योगी।

## प्रसंग

नवयौवना नायिका ने नेत्रों के सौन्दर्य तथा फैलाव को देखकर उसकी सखियाँ परिहास करते हुए कहती हैं

## व्याख्या

प्रस्तुत दोहे में दो अर्थ भासित होते हैं जो कि इस प्रकार हैं –

(क) नायिका को समवयस्क युवतियाँ नायिका के विस्तृत नेत्रों की शोभा का वर्णन करते हुए उसे कहती हैं कि 'हे सखी तेरे इन नेत्रों की कामदेव रूपी महामुनि ने योग क्रिया की सारी युक्तियाँ सिखा ही हैं जिससे की परमात्मा के साथ

तुम्हारी अभिन्नता प्राप्त करने हेतु तुम्हारे ये नेत्र रूपी योगी वन–प्रदेश में तपस्या–रत हो गए हैं।"

(ख) नायिका के विस्तृत नेत्रों की शोभा का वर्णन करते हुए उसकी सखियाँ उससे कहती हैं कि "हे सखी कामदेव रूपी महात्मा ने तेरे इन विस्तृत नेत्रों को प्रियतम से मिलने की सारी युक्तियाँ सिखा दी हैं। तेरे ये नेत्र प्रियतम के दर्शन पाने के हेतु कान तक लंबे हो गए हैं।"

## विशेष

1. कवि ने जोग, प्रिय, काननु और नैन के श्लिष्ट प्रयोग के कारण इस दोहे में दो अर्थों की व्यंजना की है। श्रृंगार और योग संबंधी इन दो परस्पर विरोधी अर्थों की व्यंजना कवि की विलक्षण प्रतिभा की परिचायक है।
2. प्रस्तुत दोहे में कवि ने नारी–मनोविज्ञान का भी परिचय दिया है। समवयस्क युवतियों का परस्पर शिष्ट परिहास इसी प्रकार का होता है।
3. भावसाम्य की दृष्टि से विद्यापति की निम्न पंक्तियाँ देखिए –

   **सैसव जोबन दुहु मिलि गेल। स्त्रबनक पथ दुहु लोचन भेल।।**

4. ब्रज भाषा प्रयोग। 5. दोहा छन्द–प्रयोग 6. श्रृंगार रस परिपाक।
7. सुन्दर गेयता। 8. रूपक – 'महामुनि मैन' में। 9. छेकानुप्रास – 'जोग–जुगति' में।
10. श्लेष – जोग, पिय, काननु तथा नैन में। 11. फलोत्प्रेक्षा – संपूर्ण दोहे में। 12. वृत्यानुप्रास – 'मनौंमहामुनि मन' में

# (7)

**प्रिय बिछुरन कौ दुसहु दुखु, हरषु जात प्यौसार। दुरजोधन लौं देखियति तजत प्रान इहि बार।।**

## शब्दार्थ

पिय = प्रियतम। बिछुरन = अलग होना। दुसहु दुखु = असह्य दुःख। प्यौसार = नैहर। दुरजोधन = धृतराष्ट्र का पुत्र और कौरव पक्ष का नायक। लौं = की तरह। देखयति = दिखाई देती है। इहि बार = इस बार।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में बिहारी ने नैहर जाते समय के दुःख का वर्णन किया है। जब तक नायिका मुग्धा थी, नैहर जाते समय उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता था अब की बार वह मध्यावस्था को पहुँच चुकी है, अतः नैहर जाते समय नायक के वियोग का दुःख भी हो रहा है। कवि ने इस दोहे में नायिका की इस सुख–दुखात्मक मनोदशा का वर्णन किया है। एक सखी दूसरी सखी से कह रही है।

## व्याख्या

नैहर जा रही नायिका को एक ओर तो प्रियतम से विद्रोह का भारी दुःख है और दूसरी ओर नैहर में परिजनों से मिलने का हर्ष भी है। नायिका की यह सुख–दुखात्मक मनोदशा दुर्योधन जैसी है, जिसने की हर्ष और विषाद की द्विविधापूर्ण स्थिति में प्राण त्यागे थे। नायिका की सखी दूसरी सखी से यही कह रही है कि "अबकी बार नैहर जाती हुई नायिका की मनोदशा दुर्योधन की सी लग रही है। जिसने हर्ष और शोक के मिश्रित वातावरण में ण त्यागे थे।" ऐसा मनोविश्लेषण दुर्लभ होता है।

## विशेष

1. उपरोक्त दोहे में महाभारत की एक कथा का उल्लेख है। कथा इस प्रकार है– धृतराष्ट्र के पुत्र और कौरव पक्ष के नायक दुर्योधन को यह वरदान मिला हुआ था कि उसकी मृत्यु सुख–दुःखात्मक स्थिति में होगी। महाभारत के युद्ध में एक बार अश्वत्थामा ने द्रोपदी के पाँचों सुतों को पाण्डव समझकर उनके सिर काट दिए। द्रौपदी के पाँचों पुत्रों की इस हत्या को पाण्डु पुत्रों की हत्यामानकर दुर्योधन अत्यधिक हर्षित हो उठा। तथापि जब उसे यह ज्ञात हुआ कि अश्वत्थामा के पाण्डु–पुत्रों के नहीं द्रोपदी के ही पाँचों पुत्रों के सिर काट डाले हैं तो उसका हर्ष विषाद में बदल गया। इसी द्विविधापूर्ण स्थिति में दुर्योधन की मृत्यु हुई थी।

2. भावसाम्य –

**'आए पिय परदेश तैं, गए सौति के धाम।हरष–विषाद भयो मई, दुरजोधन कैं बाम।।**

3. मिलन–बिरह का मनोहारी चित्रण।
4. ब्रज–भाषा का प्रयोग।
5. मुक्तक शैली।
6. दोहा, छन्द प्रयोग।
7. सरल भाषा का आकर्षक रूप।
8. "दुरजोधन लौं" में उपमा अलंकार।
9. दुसह दुःख में छेकानुप्रास अलंकार।

## (8)

**झीनैं पट मैं झुलमुली झलकति ओप अपार। सुरतरू की मनु सिंधु मैं लसति सपल्लव डार।।**

## शब्दार्थ

झीने = पतले, महीन। पट = वस्त्र। झुलमुली = झिलमिलाती हुई। झलकती = चमकती है। ओप = आभा। अपार = अत्यधिक। सुरतरू = कलपवृक्ष। लसति = शोभित होती है। सपल्लव = पल्लवों कपोलों सहित। डार = वृक्ष की डाली, शाखा।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका के कानों में पहने जाने वाले आभूषण की शोभा का वर्णन किया है। नायिका की दूती नायक के समक्ष इस आभूषण की शोभा का वर्णन कर रही है।

## व्याख्या

नायिका के कानों में सुशोभित आभूषण की शोभा का वर्णन करते हुए उसकी दूती नायक से कहती है कि "नायिका ने कानों में जो झुलमुली धारण कर राखी है, उसकी अपार आभा महीन वस्त्र के भीतर से प्रकाशित हो रही है। जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों समुद्र के भीतर कल्पवृक्ष की पत्तों से युक्त डाल शोभायमान हो रही है।"

## विशेष

1. कई टीकाकारों ने झुलमुली का आशय झुलमुलाती हुई कान्ति से लिया है। टीकाकार रत्नाकर के अनुसार झुलमुली का अर्थ कर्णाभूषण नहीं अपितु नायिका के शरीर की झिलमिलाती हुई कान्ति से है। प्रस्तुत अर्थ में इस दोहे का अर्थ इस प्रकार होगा, नायिका की अपार कान्ति का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि "महीन वस्त्रों में से नायिका के शरीर के सौन्दर्य की अपार कान्ति झलमला रही है जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों समुद्र में कलपवृक्ष की पत्तों से युक्त डाल सुशोभित हो रही हो"। नायिका ने जो महीन वस्त्र धारण कर रखे हैं, वे समुद्र की तरह हैं जिनमें से उसके शरीर के विभिन्न अवयवों की कान्ति (कलपवृक्ष के पत्तों से युक्त शाखा की तरह) उद्भासित हो रही है। 'सपल्लव डार' का आशय नायिका के हाथ, मुख, पाँव, अधर तथा अन्य शरीरांगों से है।
2. प्रस्तुत दोहे में 'रति' नामक स्थायीभाव की सफल पुष्टि की गई है इस दोहे में नायक को आश्रय, नायिका को आलम्बन माना जा सकता है। नायिका के शरीर की शोभा की उद्दीपन और नायक के प्रशंसात्मक कथन को अनुभाव समझा जा सकता है।
3. ब्रज भाषा का प्रयोग। 4. दोहा, छन्द। 5. सुन्दर लयात्मकता।
6. मुक्तक शैली। 7. ध्वन्यात्मकता। 8. अनुप्रास अलंकार।
9. सुरतरू की मनु ....." उत्प्रेक्षालंकार। 10. श्रृंगार रस–परिपाक।

## (9)

**डारे ठोड़ी–गाड़, गहि–नैन–बटोही, मारि। चिलक–चौंध में रूप–ठग, हाँसी–फाँसी डारि।।**

## शब्दार्थ

डारे = डाल दिया है। ठोड़ी–गाड़ = ठोड़ि का गड्ढा। गहि = पकड़ कर। नैन बटोही = नेत्र रूपी पथिक। चिलक = चमक चौंध = जो चमक चलते हुए पथिक की आँखों को अंधा कर देती है, उसे चौंध कहते हैं। रूप ठग = सौंदर्य रूपी ठग। हाँसी–फाँसी = हँसी रूपी फाँसी।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कविवर बिहारी नायिका की ठोड़ी में पड़े हुए गड्ढ़े के सौन्दर्य का वर्णन कर रहे हैं। परकाया नायिका की ठोड़ी में गड्ढ़ा पड़ा हुआ है। जिसे देखकर नायक मन ही मन रीझता है और कहता है।

## व्याख्या

नायिका की ठोड़ी में पड़े हुए गड्ड़े पर रीझते हुए नायक कहता है कि 'हे नायिका, तेरे अपार सौन्दर्य रूपी ठग ने अपनी चमक की चौंध से मेरे नेत्रों रूपी पथिकों को, हँसी रूपी फाँसी का फंदा डालकर अपनी ठोढ़ी में पड़े हुए गड्ढे में डाल दिया है अर्थात् मेरे ये नेत्र तेरी ठोड़ी के गड्ढ़े के प्रति इतने अधिक आकृष्ट हो गए हैं कि वे वहाँ से हटने का नाम ही नहीं ले रहे हैं।" कहने का तात्पर्य यह है कि नायक उस नायिका की ठोड़ी में पड़े हुए गड्ढे और उसकी हँसी के प्रति पूर्णत: समर्पित हो गया है।

## विशेष

1. कवि ने सांगरूपक की सफल योजना की है। प्रस्तुत रूपक में नायिका का सौन्दर्य तो ठग है और उसके सुन्दर शरीर की छवि पथिकों के लिए चौंध बन जाती है। नायिका की सुखद हँसी, फाँसी के फन्दें की तरह है और नायक के नेत्र पथिक हैं जो कि हँसी रूपी फाँसी के फन्दें में पड़कर मर जाते हैं और फिर ठोड़ी रूपी गड्ढे में अकेले छोड़ दिए जाते हैं।
2. भावसाम्य की दृष्टि से बिहारी का ही निम्न दोहा देखिए –

   **कुच–गिरि चढ़ि, अति थकित है, चली डीठ मुँह चाड़। फिरि न टरी, परियै रही, गिरि चिबुक की गाड।**

3. दोहा, छन्द।
4. ब्रज–भाषा प्रयोग।
5. शब्द–चयन उत्तम।
6. श्रृंगार रस परिपाक।
7. भावात्मक गहराई।
8. 'गाड़ गहि' में छेकानुप्रास।
9. 'नैन बटोही' में रूपक।

## (10)

**लाग्यौ सुमनु ह्वै है सफलु, आतप–रोसु निवारि। बारी, बारी आपनी सींचि सुहृदता–बारि।।**

## शब्दार्थ

सुमनु = सुन्दर मन, फूल। ह्वै है = होगा। सफलु = सफलता को प्राप्त होगा, फलों से युक्त होगा। आतप रोसु = कष्टप्रद मान करना, सूर्य के ताप की प्रचण्डता। निवारि = छोड़ दे। बारी = भोली बाला, माली। बारी = पारी प्रस्तुत अर्थ में नायक के आने की पारी, बगीचा। सुहृदयता–बारि = मैत्री पूर्ण कथन, उपयोगी जल।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे का प्रकरण अत्यन्त रूचिकर है। कार्यक्रम के अनुसार नायक को नायिका के पास जाना है, किन्तु परिस्थितिवश वह नियत समय नायिका के पास नहीं पहुँच पाता। परिणाम यह होता है कि नायिका निराश होकर वाटिका में चली जाती है। तभी नायक से अभी मिलकर आई नायिका की एक सखी वहीं वाटिका में पहुँच जाती है जहाँ कि नायिका अपने समवयस्क सखियों के साथ उपस्थित थी। ऐसी स्थिति में नायिका की सखी श्लेष के माध्यम से नायिका को सारी बात कह देती है।

श्लेष में कहे हुए वचन नायिका को सहज ही समझ में आ जाते हैं। तथापि वहाँ उपस्थित उसकी अन्य सखियाँ यह समझती हैं कि नायिका की सखी ये सारे वचन वाटिका में माली को संबोधित करते हुए कह रही है।

## व्याख्या

इस प्रकार इस दोहे के दो अर्थ हो सकते हैं जो कि निम्नानुसार हैं –

(क) नायिका के अर्थ में – नायक के नियत समय पर न पहुँच पाने के कारण रूष्ट हुई नायिका वाटिका में पहुँच जाती है। तभी नायक से मिलकर आयी हुई नायिका की सखी उसे कहती है कि "हे भोली नायिका जिस नायक के प्रति तेरा सुन्दर मन अनुरक्त है सो उसे वांछित फल की प्राप्ति होगी तू अपने नायक के प्रति रोष का भाव छोड़ दे और अपनी पारी को मैत्रीपूर्ण वचनों से सरस कर ले। अभिप्राय यह है कि नायक भी तेरे प्रति पूर्णतः आसक्त है अतः मान का त्याग करके, स्थिति का लाभ उठाकर प्रेम–रस का सुख–भोग।

(ख) माली के अर्थ में – नायिका के समीप अनेक समवयस्क सखियों को उपस्थित देखकर नायिका की सखी माली को संबोधित करते हुए कहती है कि 'हे माली, तेरी वाटिका में जो फूल लगा हुआ है इसमें फल अवश्य ही लगेंगे। तू अपनी वाटिका को सूर्य के ताप से बचा और उपयोगी जल से इसका सिंचन कर।"

## वेशेष

1. प्रस्तुत दोहे में तत्कालीन सामन्ती व्यवस्था में व्याप्त विलासमयता की झाँकी मिलती है। नायक का सम्बन्ध एकाधिक नायिकाओं से होता था।
2. नायिका की सखी की चतुराई देखते ही बनती है क्योंकि प्रत्यक्षतः माली को कहे हुए उसके वचन नायिका के लिए पहेली नहीं थे। इस प्रकार नायिका की सखी वाटिका में उपस्थित अनेक सखियों को धोखा देकर अपना प्रयोजन (नायिका को सन्देश देना) पूरा कर लेती है।
3. ब्रज भाषा का प्रयोग। 4. शृंगार रस का परिपाक। 5. दोहा छन्द–प्रयोग।
6. तद्भव शब्दों का प्रभावी प्रयोग। 7. अलंकार।

(क) छेकानुप्रास – 'सांचि सुहृदता में। (ख) यमक – 'बारी–बारी' में।
(ग) रूपक – 'आतप–रोसु' तथा 'सुहृदयता बारि' में। (घ) श्लेष – सम्पूर्ण दोहे में।

# (11)

**अजौं तर्‌यौना ही रह्यौ श्रुति सेवत इक–रंग। नाक बास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतनु कैं संग।।**

## शब्दार्थ

अजौं = आज तक भी। तर्‌यौना = कानों में पहले जाने वाला एक आभूषण, जो तर न पाया हो अर्थात् जिसका उद्धार न हो सका हो। श्रुति = कान, वेद। इक रंग = एक ही विधि से। नाक = नासिका, स्वर्गलोक बेसरि = नाक में पहले जाने वाला एक आभूषण जिसे नथ भी कहते हैं, खच्चर (प्रस्तुत प्रसंग में इसका आशय लघुता से है अतः यहाँ बेसरि का अर्थ निकृष्ट व्यक्ति होगा)। लह्यौ = प्राप्त कर लिया। मुकुतनु = मोती, जीवन से मुक्त = व्यक्ति।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कविवर बिहारी लाल जी बेसरि नामक नाक के आभूषण की शोभा का वर्णन करते हैं और साथ ही श्लेष के सहारे सत्संग की महिमा का भी वर्णन करते हैं। इस प्रकार इस दोहे के दो अर्थ किए जा सकते हैं – एक तो बेसरि (नाक में पहने जाने वाला आभूषण के पक्ष में और दूसरा (सत्संग के पक्ष में)।

## व्याख्या

प्रस्तुत दोहे के दोनों अर्थ इस प्रकार हैं –

(क) (बेसरि के अर्थों में) कवि कहता है कि नायिका ने अपने कान में जो आभूषण पहन रखा है वह आज तक भी कानों

की सेवा करते रहने पर भी तर नहीं पाया आर्थात् उसने नायिका के कानों की अत्यधिक सेवा की फिर भी उसका उद्धार नहीं हो सका। इसके विपरीत नायिका की नाक के बेसरि नामक अभूषण ने मोतियों के संग रहकर नायिका की नासिका का वास प्राप्त कर लिया अर्थात् यह नाक में धारण किया गया और इस प्रकार उच्च पद का अधिकारी बन गया। (नासिका का स्थान उच्च माना जाता है)।

(ख) (सत्संग के पक्ष में) कवि कहता है कि यद्यपि मनुष्य ने वेदों की बहुत सेवा की फिर भी वह अधम पापी के स्तर से ऊपर नहीं उठ सका। फिर महापापी बेसरि ने जीवन से मुक्त व्यक्तियों अर्थात् संतों के साथ रहकर स्वर्ण का निवास प्राप्त कर लिया अर्थात् गौरव पूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। कवि के अनुसार बेदों से कहीं श्रेयस्कर सत्संगति होती है।

## विशेष

1. मुक्तक रूप। 2. ब्रज भाषा का प्रयोग। 3. भावानुकूल भाषा।
4. दोहा छन्द प्रयोग। 5. अलंकार – (क) सभंग श्लेष–तर्यौना में।
   (ख) श्लेष– श्रुति, नाक, बेसरि तथा मुक्तनु में। (ग) मुद्रालंकार– सम्पूर्ण दोहे में।

# (12)

**जमकरि–मुँह–तरहरि परयौ, इहिं धरहरि चित लाउ। विषय–वृषा परिहारि अजौ नरहरी के गुन गाउ।।**

## शब्दार्थ

जम = यम। करि = हाथी। तरहरि = नीचे। धरहरि = निश्चय। चितलाउ = चित्त को लगा। विषय–वृषा = विषय–वासनाओं की लालसा। परिहरि = त्याग दे। अजौं = अब तो। नरहरि = नृसिंह = भगवान, गुरु नरहरि दास।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में मृत्यु के निकट पहुँचने पर कवि भगवान में लीन हो जाने की प्रार्थना कर रहा है। एक अन्य अर्थ के अनुसार नरहरि का प्रयोग गुरू नरहरिदास के रूप में किया गया है। ऐसा मान लेने पर कहा जाएगा कि मृत्यु के अत्यन्त निकट पहुंचने पर कवि गुरू नरहरि दास के चरणों में लीन हो जाना चाहता है।

## व्याख्या

बिहारी अपने ही मन को संबोधित करते हुए कह रहे हैं कि 'हे मेरे मन, तू अब मृतरूपी हाथी के नीचे आ चुका है अर्थात अब तेरी मृत्यु बहुत निकट है इस निश्चय की ओर प्रवृत्त हो जा। हे मन, मृत्यु के इतने निकट पहुँचने पर अब सभी सामारिक विषय–वासनाओं का त्याग कर दें और भगवान का गुण गाना आरम्भ कर दें। यदि नरहरि का नाम भगवान न लगा कर गुरू नरहरि दास से लगाया जाए तो दोहे की दूसरी पंक्ति का अर्थ इस प्रकार होता "हे मन, अब तू मत्युरूपी हाथी के नीचे आ चुका है अर्थात् अब तेरी मृत्यु में देरी नहीं है। अतः अपने इस अन्तकाल में तो सांसारिक विषय वासनाओं से विमुख होकर गुरू नरहरिदास में चित्त लगा।

## विशेष

1. यह उपदेशात्मक दोहा है जिसमें विषय–वासनाओं को त्यागकर ईश्वर–भक्ति की ओर उन्मुख होने का उपदेश दिया गया है।
2. ब्रज–भाषा का प्रयोग। 3. दोहा, छन्द। 4. संबोधनात्मक शैली।
5. मुक्तक रूप। 6. भावानुकूल भाषा।

# (13)

**तो पर बारौं उरबसी, सुनि राधिका सुजान। तू मोहन कैं उर बसी, है उरबसी समान।।**

## शब्दार्थ

तो = तुम। बारौं = न्यौछार करना। उरबसी = राजा इन्द्र के दरबार की एक अप्सरा। सुनि = सुनों। सुजान = चतुर कें = के। उर = हृदय। बसी = बसी हुई है। है = होकर। उरबसी = गले का एक ऐसा आभूषण जो हृदय पर पड़ा रहता है

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में नायिका की सखी उससे मान त्यागने का अनुरोध कर रही हैं नायिका किन्हीं कारणों से मान किए बैठी है, और अपने प्रियतम की उपेक्षा कर रही है। नायिका की सखी उसे सहज हो कर बात करने के लिए आग्रह कर रही है।

## व्याख्या

बिहारी लिखते हैं कि मानवती नायिका की सखी उसे समझाती हुई कहती है कि, "हे चतुर राधिका, मेरी बात सुन तेरे अपूर्व सौन्दर्य के सामने राजा इन्द्र के पास दरबार की उर्वशी नामक अप्सरा न्यौछावर की जा सकती है अर्थात् इन्द्र की अप्सरा उर्वशी (जिसे सर्वाधिक सुन्दरी और लावण्यमयी माना जाता है) तेरे अनुपम सौन्दर्य के सामने कुछ भी नहीं है। हे राधिके, मेरी इस बात को ध्यानपूर्वक सुन ले कि मोहन के हृदय में तेरा वही स्थान है जो कि हृदय पर पड़े हुए आभूषण का होता है अर्थात् जिस प्रकार हृदय पर धारण किया जाने वाला आभूषण रात–दिन, सोते–जागते, उठते–बैठते हृदय पर पड़ा रहता है, ठीक उसी प्रकार तेरे प्रियतम मोहन को हर घड़ी तेरा ध्यान रहता है। ऐसी स्थिति में तुझे मान छोड़ देना चाहिए।

## विशेष

1. भावसाम्य 'विक्रम सतसई' कवि ने स्वर्ग की अप्सरा मेनका, उर्वशी तथा कामदेव की पत्नी रति के सौदर्य को राधा के अपूर्व सौन्दर्य की तुलना में हेय सिद्ध किया है –

   **कहा मैनका उरबसी, कहा काम की बाम। रहे चित्र कैसे लिखे, लखि राधे घनस्याम।।**

2. अनुपम सौन्दर्य चित्रण। 3. शृंगार रस का परिपाक। 4. ब्रज भाषा का प्रयोग।
5. सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति। 6. बोधगाम्य शब्दावली। 7. सुन्दर लयात्मकता
8. प्रसाद–माधुर्य गुण शैली। 9. अलंकार–'उरबसी–समान' में उपमा अलंकार।
   'उरबसी' में यमक अलंकार। तो पर बारौं उरबसी' में प्रतीप अलंकार।

# (14)

**कौन भाँति हैं बिरदु अब देखिवी, मुरारि। बीधे मोसौं आइ कै गीधे गीधहिं तारि।।**

## शब्दार्थ

कौन भाँति = किसी तरह। रहिहैं = रह पाएगा। बिरदु = यश। देखिवी = देखा जाना है। मुरारि = श्री कृष्ण। बीधे = बिधे हुए अर्थात् भटके हुए। मोसौं = मुझसे। आइके = आकर गीधे = गए अर्थात् आदत बन गई। गीधहि = गिद्ध। यहाँ इसका आशय जटायु से है। जिसका उद्धार श्री राम चन्द्र जी के हाथों हुआ था। तारि = उद्धार।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कविवर बिहारी का भक्त–रूप मुखरित हुआ है। इस विनयपरक दोहे में कवि अपने आपको अधम पापी के रूप में बताता है और पापियों का उद्धार करने वाले भगवान से अपने उद्धार की प्रार्थना करता है। उसकी यह प्रार्थना भगवान के लिए एक चुनौती से कम नहीं दीखती क्योंकि भगवान ने तो पापियों के उद्धार करने की प्रतिज्ञा ले रखी है और कवि रूप में यह पापी भी अधम कोटि का पापी है।

## व्याख्या

भगवान श्री कृष्ण को चुनौती देते हुए भक्त कवि के रूप में कवि बिहारी कहते हैं कि "हे भगवान् श्री कृष्ण अब मुझे यहीं देखना है कि आप अपने यश को किस प्रकार सुरक्षित रख सकेगें। आप को यह यश प्राप्त है कि आप जटायु जैसे अनेक पापियों का उद्धार करते रहे हैं किन्तु अबकी बार आप का वास्ता मुझ जैसे घोर पापी से पड़ा है। अर्थात् अबकी बार मुझसे अटके हो। अतः यह देखा जाना है कि पापियों का उद्धार करने की आपकी कीर्ति अब भी बनी रह सकेगी अथवा नहीं। जटायु तो एक साधारण पापी था। अतः उसका उद्धार करने में आप को विशेष कठिनाई नहीं हुई होगी किन्तु मैं तो अधम पापी हूँ, मेरा उद्धार करना कोई साधारण बात नहीं है।"

## विशेष

1. कवि बिहारी ने प्रस्तुत दोहे में भगवान् को चुनौती देकर अपने अनुकूल बनाने का प्रयास किया है। भगवान की पतितपावनी शक्ति के सम्बन्ध में इस प्रकार की चुनौती कवि के वाग्वैदग्ध्य की प्रतीक है।
2. भावसाम्य – सूरसागर की निम्न पंक्तियाँ

   **अब हौं उधरि नच्यौ चाहत हौं तुम्हें बिरदबिन करिहौं।**

   × × × **आज हौं एक एक करि टरिहौं।**

   **तथा और पतित सब दिवस चारि कै, हौं तो जनमत ही कौ।**

   × × × **प्रभु हौं सब पतितन कौ टीकौ।**
3. प्रस्तुत दोहे में कवि बिहारी ने यह सिद्ध किया है कि वे केवल शृंगार के ही कवि नहीं हैं अपितु उनके मन में भक्त की विह्वलता भी है।
4. यद्यपि जटायु का उद्धार श्री कृष्ण ने नहीं बल्कि त्रेतायुग में श्री राम चन्द्र जी ने किया था। तथापि कवि बिहारी ईश्वर के विभिन्न अवतारों का कोई आधारभूत अन्तर नहीं मानते। कदाचित् इसी कारण प्रस्तुत दोहे उन्होंने श्री रामचन्द्र जी के स्थान पर श्री कृष्ण का नाम लिया है।
5. प्रस्तुत दोहे में शान्त रस की सार्थक अभिव्यक्ति हुई है।
6. आकर्षक लयात्मकता–गेयता।
7. ब्रजभाषा का प्रयोग
8. प्रबल वाक्पटुता।
9. अलंकार–'गीधे गीधहिं' में यमक अलंकार।

   वक्रोक्ति– सम्पूर्ण दोहे में।

   अनुप्रास– सम्पूर्ण दोहे में।

## (15)

**कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात। भरे भौन में करत हैं, नैननु ही सब बात।।**

## शब्दार्थ

नटत = न करना। रीझत = खुश होता है। खिझत = नाराज होती है। मिलत = मेल कर लेते हैं। खिलत = खिल उठते हैं। लजियात = लज्जा आती है। भौन = मकान। नैननु = आँखों

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने ऐसे नायक–नायिका का वर्णन किया है जो कि अनेक लोगों की उपस्थिति में आँखों ही आँखों में सारी बात कर लेते हैं और उनकी यह बात किसी को भी पता नहीं लग पाती। नायक–नायिका की इस चतुराई का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है।

## व्याख्या

घर में लोगों की भीड़ है फिर भी नायक–नायिका द्वारा चुपचाप आपस में बात कर लेने की चतुराई का वर्णन करते हुए एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि "हे सखी, नायक और नायिका लोगों से भरे हुए भवन में आँखों की आँखों में सारी बात कर लेते हैं।" नायक और नायिका के मध्य संकेतात्मक शैली में हुई बातचीत को स्पष्ट करते हुए सखी कहती है कि "जब नायक ने अभिसार के लिए प्रार्थना की (कहत) तो नायिका ने सहज की उस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया (नटत) नायक–नायिका की अस्वीकृति को स्वीकृति मानकर मुग्ध हो जाता है (रीझत) और नायिका जब यह देखती है कि नायक ने उसकी ना का अर्थ हाँ लगाया, तो वह खीझ उठती है। नायिका की यह खीझ किंचित बनावटी है क्यों कि उसका मूल उद्देश नायक का

केवल खिझाना है, नाराज करना नहीं हैं तद्नन्तर दोनों की दृष्टि मिल जाती है (मिलत) और फिर दोनों ही प्रेम के रंग में डूबकर प्रफुल्लित हो जाते हैं (खिलत)। तथापि दोनों को यह भी आशंका है कि कहीं उनके इस प्रणय–व्यापार पर, वहाँ उपस्थित किसी व्यक्ति की दृष्टि न पड़ गई हो अतः स्वभावतः दोनों को लज्जा का भी अनुभव होता है (लजियात)।" इस प्रकार प्रेम की पूरी अभिव्यक्ति हुई है।

## विशेष

1. बिहारी का यह दोहा अपने आप में इस बात का प्रमाण है कि वे दो पंक्तियों के दोहे में कितने सारे भावों को व्यक्त करने में सक्षम हैं। कवि ने इस दोहे में नायक और नायिका के पूरे प्रणय– व्यापार को सफलतापूर्वक बाँध दिया है। कदाचित उनके दोहों की इसी विशेषता को ध्यान में रखते हुए कहा गया है–

   **सतसइया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर। देखन में छोटन लगैं, घाव करें गम्भीर।।**

2. कवि ने नेत्रों की प्रणय–चेष्टाओं का अत्यन्त संजीव वर्णन किया है।
3. ब्रज भाषा का प्रयोग। 4. आकर्षक अभिव्यक्ति। 5. चमत्कारिक रूप।
6. श्रृंगार–रस परिपाक। 7. नूतन शैली प्रयोग 8. दोहा छन्द प्रयोग।
9. अलंकार (क) 'भरे भौन' में छेकानुप्रास अलंकार। (ख) दूसरे चरण में विभावना अलंकार। (ग) सम्पूर्ण देहे में अनुप्रास की छटा।

# (16)

**नहिं परागु नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहि काल। अली कली ही सो बंध्यौ, आगे कौन हवाल।।**

## शब्दार्थ

पराग = पुष्प की रज। मधु = मकरन्द। बिकासु = प्रफुल्लता। इहिं काल = इस समय। अली = भ्रमर। सों = से। बंध्यो = बंधा हुआ। हवाल = दशा, स्थिति।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने किसी अल्पायु नायिका के प्रति आसक्त नायक को भ्रमर के ब्याज से महत्त्वपूर्ण शिक्षा दी है। अन्योक्ति से इस दोहे के दो अर्थ हो सकते हैं। इसमें सुन्दर उद्बोधन है।

## व्याख्या

दो अर्थ इस प्रकार सामने आते हैं --

(क) अविकसित कली के मोहपाश में जकड़े हुए भ्रमर को सम्बोधित करते हुए कवि कहता है कि 'हे भ्रमर, जिस कली के प्रेमपाश में जकड़ा हुआ है उसमें अभी न तो पुष्परज है, न मधुर मकरन्द है और न अभी इसका विकास ही हो पाया है। जब तू अभी से इस अविकसित कली से बँध गया है तो उस समय तेरी क्या दशा होगी जब यह कली विकसित होकर एक सुन्दर पुष्प का रूप धारण कर लेगी।

(ख) अन्योक्ति से इस दोहे का अन्य अर्थ ऐसे नायक को लेकर किया जा सकता है जो कि किसी अल्पवयस्का नायिका के प्रति आसक्त है। ऐसी अल्प वयस्का नायिका के प्रति नायक की आसक्ति को देखकर कवि कहता है कि "हे नायक तू ऐसी अल्प वयस्का नायिका के प्रति आसक्त है जो कि अभी अविकसित कली की तरह है। इस नायिका में न तो नवयौवना का सौन्दर्य प्रस्फुटित हुआ है, न इसमें अभी प्रेम रस का संचार ही हो पाया है और न इसके अंगों– प्रत्यगों का विकास हुआ है। जब तू अभी से इसके प्रति आसक्त है तो उस समय तेरी क्या दशा होगी जब यह अल्प वयस्का यौवन के पूरे सौन्दर्य और आकर्षण से युक्त हो जाएगी अर्थात् वस्तुतः नवयौवना बन जाएगी।"

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहा बिहारी सतसई का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण दोहा है और कतिपय आलोचकों के मत से तो बिहारी की इस सतसई की रचना की मूल प्रेरणा इसी दोहे में निहित है। कहते हैं कि जयपुर के राजा जयसिंह नवौढ़ा रानी के प्रेमपाश

में जकड़े हुए थे और वे राजकाज की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते थे। राज्य पर संकट की घड़ी आई हुई थी किन्तु राजा जयसिंह को अपने रनिवासों से ही अवकाश नहीं मिलता था। जब कविवर बिहारी को राजा जयसिंह की इस स्थिति का ज्ञान हुआ तो उन्हें उपदेश देने की दृष्टि से उन्होंने यह दोहा लिखकर राजा जयसिंह तक पहुँचाया। कहते हैं कि इस दोहे का आशातीत प्रभाव हुआ और नवौढ़ा रानी के प्रेम--पाश में जकड़ा हुआ राजा जयसिंह पुन राजकाज की ओर ध्यान देने लगा। बिहारी के इस दोहे को पढ़कर राजा जयसिंह इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने बिहारी को अनेक स्वर्ण मुद्राएं प्रदान कीं।

2. सुन्दर लयात्मकता।
3. आकर्षक ब्रज भाषा रूप
4. प्रसाद– माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
5. सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति।
6. दोहा, छन्द प्रयोग।
7. अलंकार– 'मधुर– मधु' में छेकानुप्रास अलंकार।
   सम्पूर्ण दोहे में अन्योक्ति अलंकार।

## (17)

**मंगलु बिन्दु सुंरगु, मुख, ससि, केसरि आड़ गुरू। इक नारी लहि संगु, रसमय किए लोचन जगत।।**

## शब्दार्थ

मंगल बिन्दु = रोली की मंगलकारी बिन्दी। सुरंगु = सुन्दर रंग वाला। यहाँ इसका आशय लाल रंग से है। मुख ससि = मुख चन्द्रमा की तरह है। केसरि– आड़–गुरू = केसर का तिरछा लगा हुआ तिलक बृहस्पति है। नारी = स्त्री, बारह राशियों में से एक ,राशि। लहि = लेकर। रसमय = अनुरागपूर्ण, जल से परिपूर्ण। लोचन जगत = नेत्रों रूपी संसार।

## प्रसंग

प्रस्तुत पंक्तियों में नायिका ने माथे पर मंगलकारी बिन्दी और केसर का आड़ा तिलक लगा रखा है। नायिका की इस सौन्दर्य-सज्जा को देखकर नायक उस पर अत्यधिक रीझ गया है। प्रस्तुत सोरठे में वह अपनी इस भावना को नायिका की एक सखी को व्यक्त करता है। प्रस्तुत सोरठे में नारी, रस आदि का श्लिष्ट प्रयोग किया गया है। इस प्रकार इसके दो अर्थ हो सकते हैं। यह बिहारी की अपनी काव्य कला है।

## व्याख्या

(क) नायिका के माथे पर लगी हुई मंगलकारी बिन्दी और केसर के तिलक की शोभा का वर्णन करते हुए नायक नायिका की सखी से कहता है कि "सुन्दर लाल रंग से युक्त बिन्दी रूपी मंगल, मुखरूपी चन्द्रमा तथा केसर के आड़ लगे हुए तिलक रूपी बृहस्पति को एक ही नारी में उपस्थित देखकर नेत्रों रूपी संसार को अनुरागमय बना दिया है। ज्योतिष के अनुसार ऐसा माना जाता है कि जब मंगल चन्द्रमा और बृहस्पति ये तीनों ग्रह एक साथ मिल जाते हैं तो वृष्टि होती है। इसी प्रकार नायिका में ये तीनों ग्रह एक साथ उपस्थित हो गए हैं, अतः लोचन रूपी संसार का प्रेममय हो जाना स्वाभाविक है।"

(ख) प्रस्तुत सारठे का एक अर्थ ज्योतिष–विज्ञान के संदर्भ में भी हो सकता हैं प्रस्तुत नायिका में मंगल (बिंदी) चन्द्रमा मुख तथा बृहस्पति (केसर का तिलक) ये तीनों ग्रह एक साथ मिल गए हैं। ज्योतिष के एक सिद्धान्त के अनुसार जब मंगल चन्द्रमा और बृहस्पति तीनों ग्रह एक ही राशि में स्थित होते हैं तो अत्यधिक वृष्टि का योग होता है।

नायक कहता है कि "इस नायिका रूपी राशि में मंगल, चन्द्रमा और बृहस्पति तीनों ग्रह एक साथ उपस्थित हो गए हैं अतः लोचन रूपी समग्र संसार जलमय हो गया है।"

## विशेष

1. कवि के ज्योतिष संबंधी गहन ज्ञान का परिचय मिलता है।
2. ज्योतिष के अनुसार मंगल का रंग लाल, चन्द्रमा का श्वेत और बृहस्पति का पीला माना जाता है। प्रस्तुत सोरठे में कवि ने इस रंग योजना का सफल निर्वाह किया है। मंगलकारी बिन्दी का रंग लाल है, नायिका के मुख रूप चन्द्रमा का रंग सफेद है और केसर के तिलक का रंग पीला है।
3. ब्रज भाषा का प्रयोग।
4. गम्भीर भावाभिव्यक्ति।
5. आकर्षक बिम्ब विधान।
6. शृंगार रस परिपाक।
7. अलंकार– 'नारी' तथा 'रसमय' में श्लेष अलंकार।
   सम्पूर्ण सोरठे में सांग रूपक।

# (18)

**खेलन सिखये अलि भलैं चतुर अहेरी मार। काानन–चारी नैन–मृग नागर नरनु सिकार।।**

## शब्दार्थ

खेलन सिखए = खेलना सिखा दिया है। अलि = सखी। भलैं = अच्छी प्रकार से। अहेरी = शिकारी। मार = कामदेव। काननचारी = कानों तक दीर्घ (नेत्र), बन में विचरण करने वाले। नैन–मृग = नेत्र रूपी मृग। नागर = नगर के। नरनु = पुरूषों का। सिकार = शिकार।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका के सुदीर्घ नेत्रों की शोभा का वर्णन किया है। नायिका के कानों तक सुदीर्घ नेत्र उसके प्रेमियों को एक शिकारी की तरह आहत कर देते हैं। प्रस्तुत दोहे में नायिका की एक सखी नायिका के नेत्रों की इस विशेष क्षमता का वर्णन कर रही है।

## व्याख्या

बिहारी लिखते हैं कि नायिका के प्रति आसक्त होने वाले लोगों को नायिका की आँखें आहत कर देती हैं। नायिका के नेत्रों की इस क्षमता का वर्णन करते हुए नायिका की एक सखी कहती है कि "हे, सखी कामदेव रूपी चतुर शिकारी ने तेरे कानों तक फैले हुए नेत्रों रूपी मृगों को शिकार करने के के पूरा प्रशिक्षण दे दिया है और इस प्रकार तेरे ये नेत्र नगर निवासियों को बुरी तरह आहत कर देते हैं" कहने का आशय यह है कि वह नायिका अपने सुन्दर और सुदीर्घ नेत्रों से जिस व्यक्ति की ओर देख लेती है, वहीं आहत हो जाता है।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका के नेत्रों की शोभा का अत्यन्त प्रभावोत्पादक वर्णन किया है। व्यवहार में नगरवासी ही आखेट करते हैं। किन्तु प्रस्तुत दोहे में नगरवासी नायिका के नेत्रों रूपी अहेरी के लक्ष्य बन गए हैं। बिहारी का यही वाग्वैदग्ध्य उन्हें अन्य रीतिकालीन कवियों से अलग करता है।
2. शृंगार रस का प्रभावी परिपाक। 3. ब्रज भाषा का प्रयोग।
4. सुन्दर भाव–अभिव्यंजना। 5. संवादात्मक शैली का प्रयोग। 6. भावसाम्य देखिए
   **प्रेम अहेरी की अरे, यह अद्‌भुत गति हेर। कीने दृग–मृग पीत के, मन चीते पर सेर।। (रतनहजारा)**
7. अलंकार– 'नैन मृग' तथा 'चतुर अहेरी मार' में रूपक अलंकार।
   'नागर नरनु' में छेकानुप्रास।

'कानन चारी' में श्लेष अलंकार।

सम्पूर्ण दोहे में सांग रूपक अलंकार।

## (19)

**रससिंगार मंजनु किए, कंजनु भंजनु दैन। अंजनु रंजनु हूँ बिना खंजनु गंजनु नैन।।**

## शब्दार्थ

रस सिंगार–मंजनु किए प्रेम रस में निमाज्जित होकर अथवा श्रृंगार रस के अनुरूप हावभाव में प्रवीण। कंजनु = कमल को। भंजनु दैन = भंग करने वाले, भजन करने वाले। यहाँ इसका अर्थ मान भंग करने वाले हैं। अंजनु = काजल रंजनु बिना = बिना लगाए (काजल ) हुए। खंजनु = खजन नाम पक्षियों को। गंजनु = उपेक्षा, तिरस्कार करने वाले।

## प्रसंग

सुन्दरता की ओर सभी आकर्षित होते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं। प्रस्तुत दोहे में कवि नायिका के नेत्रों के सौन्दर्य का वर्णन कर रहा है। यह वर्णन नायक अथवा नायिका की सखी द्वारा किया जा रहा है।

## व्याख्या

बिहारी ने लिखा है कि नायिका के नेत्रों की शोभा का वर्णन करते हुए नायक अथवा नायिका की सखी कहती है कि "हे नायिका, तेरे ये नेत्र श्रृंगार रस के अनुरूप हावभाव में अत्यधिक दक्ष है और इस कारण अपनी स्निगधता के कारण कमल का मान भी भंग करने वाले सिद्ध हुए हैं अर्थात् तेरे ये नेत्र इतने अधिक स्नेहपूर्ण स्निग्ध और आकर्षक हैं कि इनके समक्ष कमल भी अपने आप को लज्जित पाता है। तेरे ये नेत्र नैसर्गिक एवं स्वाभाविक श्यामलता से परिणूर्ण हैं। और इस कारण बिना काजल लगाए ही खंजन पक्षी का तिरस्कार कर रहे हैं अर्थात् तेरे इन नेत्रों की स्वाभाविक श्यामलता के समक्ष काजल के बिना भी तेरे ये नेत्र खंजन पक्षी को लज्जित कर रहे हैं"

## विशेष

1. कवि ने नायिका के नेत्रों की उपमा खंजन पक्षी से की है। खंजन पक्षी का रंग काला और सफेद होता है और वह नायिका के नेत्रों की तरह ही चंचल–चपल होता है।
2. ब्रज भाषा का प्रयोग। 3. दोहा छंद का प्रयोग। 4. श्रृंगार रस परिपाक।
5. आकर्षक सौन्दर्य चित्रण। 6. सुन्दर अभिव्यक्ति 7. अलंकार–
   सम्पूर्ण दोहे में प्रतीप अलंकार। सम्पूर्ण दोहे में वृत्यानुप्रास अलंकार।

## (20)

**दीरय साँस न लेहि सुख, सुख साईहिं न भूलि। दई दई क्यौं करतु है, दई दई सु कबूलि।।**

## शब्दार्थ

दीरघ = लम्बे। सुख साईहिं = सुख दाता, स्वामी। दई–दई = हा देव, हा देव। दई दर्द = जो ईश्वर ने दे रखा है। सु = उस। कबूलि = स्वीकार करो।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में भक्ति का आकर्षक भाव व्यक्त किया गया है। विपत्ति में पड़े हुए व्यक्ति को उसका गुरू अथवा हितैषी मित्र सांत्वना दे रहा है। साहस से चलने की प्रेरणा है।

## व्याख्या

बिहारी का कथन है कि घोर विपत्तियों में पड़े हुए किसी भक्त अथवा व्यक्ति को सांत्वना देता हुआ उसका गुरू कहता है कि "हे भक्त, दुःख विपत्ति से घिर जाने पर इतने लम्बे–लम्बे साँस मत ले अर्थात् दुःख की घड़ी में इतना व्याकुल मत हो"

और सुख में उस स्वामी को (अर्थात् ईश्वर को) विस्मृत मत कर। विपत्तियों से घिर जाने पर हाय दैव, हाय दैव क्यों कर रहा है? यदि तू सच्चा सुख चाहता है तो जो कुछ ईश्वर ने तुझे दिया है उसे सहर्ष स्वीकार कर और ईश्वर को धन्यवाद दे।"

## विशेष

1. कुछ टीकाकारों ने 'सुख साईहि न भूल' का अर्थ यह भी किया है कि "विपत्तियों से घिर जाने पर न तो तुझे इतने लम्बे साँस लेने चाहिए और न सुखदाता परमेश्वर को ही भूलना चाहिए। हा दैव, हा दैव करने के स्थान पर ईश्वर ने जो कुछ दिया है उसे धन्यवाद सहित स्वीकार करना चाहिए।"
2. गतिशील रहने की प्रेरणा।
3. भावसाम्य की दृष्टि से कबीर का दोहा द्रष्टव्य है–

   **'दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय। जो सुख में सुमिरन करै, दुख काहै को होय।।**
4. ब्रज भाषा का प्रयोग।
5. दोहा छंद का प्रयोग।
6. प्रेरक उद्‌बोधन।
7. सुन्दर भावाभिव्यक्ति
8. सहानुभूति का भाव
9. अलंकार

   (क) 'दई दई' में पुनरूक्ति प्रकाश।

   (ख) दूसरे चरण के उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त 'दई दई' में यमक अलंकार।

## (21)

**बैठि रहि अति सघन बन, पैठि सदन–तन माँह। देखि दुपहरी जेठ की छाँहौं चाहति छाँह।।**

## शब्दार्थ

पैठि = घुस कर। सदन–तन = घर रूपी शरीर। माँह = में। देखि = देखकर। छाँही = छाया। छाँह = आच्छादन।

## प्रसंग

कविवर बिहारी ने प्रस्तुत दोहे में जेठ मास की दुपहरी की प्रचण्डता का प्रभावपूर्ण वर्णन किया है।

## व्याख्या

जेठ की दुपहरी की प्रचण्डता का वर्णन करते हुए कवि कहता है। "इस जेठ की दुपहरी के प्रचण्ड ताप को देखकर वृक्षों आदि की छाया भी छाया चाहती है अर्थात् वृक्षों आदि की छाया भी दिखाई नहीं देती। मानो वह भी सूर्य की प्रचण्डता से बचने के लिए किसी आच्छादन के नीचे जा छिपी हों। यह छाया इस समय अत्यन्त घने जंगल में अथवा घर के शरीर अर्थात् घर के भीतर ही छिपी हुई है। कहने का तात्पर्य यह है कि जेठ मास की ठीक दुपहरी के समय वृक्षों, घरों आदि की छाया अलग दिखाई नहीं देती।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने प्रकृति के सक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है। मध्याह के समय वृक्षों, भवनों आदि की छाया उनसे अलग नहीं दीखती। कदाचित इसी कारण कवि ने कहा है कि जेठ की दुपहरी की प्रचण्डता से बचने के लिए वृक्षों, भवनों की छाया भी छाया की टोह में रहती है।
2. सुन्दर चित्रण शैली।
3. ब्रज भाषा का प्रयोग।

4. प्रसाद– माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
5. सूक्ष्म भावभिव्यक्ति
6. दोहा छंद का प्रयोग।
7. अलंकार–
   (क) स्वाभाविक– सम्पूर्ण दोहे में।
   (ख) 'छाँहौं चाहति छाँह' में अत्युक्ति अलंकार।
   (ग) 'देखि दुपहरि' में छेकानुप्रास अलंकार।
   (घ) 'सदन–तन' में रूपक अलंकार।

## (22)

**हा हा ! बदनु उघारि, दृग सफल करैं सबु कोई। रोज सरोजनु कैं परैं, हँसी ससी की होइ।।**

## शब्दार्थ

हा हा = ब्रजभाषा में प्रयोग किया जाने वाला एक विनय युक्त सम्बोधन। बदन = मुख। उघारि = उघाड़ दे। रोज = रात्रि। सरोजनु = कमलों को। ससी = चन्द्रमा।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में किसी मानवती नायिका की दूती उससे अपना चन्द्रमुख दिखलाने का आग्रह कर रही है। वस्तुतः खण्डिता नायिका ने नायक से रूष्ट होकर घूँघट कर लिया है। उसकी सखी वाक्चातुर्य का परिचय देते हुए उससे घूँघट खोलने का आग्रह कर रही है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नायिका की सखी एक ओर तो नायिका के नेत्रों की शोभा का वर्णन कर रही है और दूसरी ओर नायक की सपत्नी के चन्द्रमुख का उपहास भी कर रही है।

## व्याख्या

नायक से रूष्ट होने के कारण नायिका मुख पर घूँघट डाले हुए है। ऐसी नायिका से उसकी सखी कहती है कि 'हे नायिके ! मैं तेरी हा हा, करती हूँ कि तू अपना घूँघट उठा दे जिससे कि यहाँ उपस्थित हम सभी सखियों के नेत्र तेरे रूप - सौन्दर्य को देखकर सफल हो जाएँ क्यों कि इस प्रकार दो प्रयोजनों की एक साथ सिद्धी हो जाएगी। तेरे मुखचन्द्र को देखकर नायक के नेत्र रूपी कमल विपत्ति में पड़ जाएँगें और जब वह तेरे चन्द्रमा जैसे मुख को देखेगा तो उसे तेरी सपत्नी का चन्द्रमा उपहास का विषय बन जाएगा। इस प्रकार तेरे चन्द्रमा जैसे मुख को देखकर नायक तो तेरे प्रति समर्पित ही हो जाएगा तेरी सपत्नियों का भी खूब उपहास होगा।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने ऐसी खंडिता नायिका का वर्णन किया है जो कि अनुपम सुन्दरी है।
2. कवि ने अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने के लिए मुहावरों का सार्थक प्रयोग भी किया है। 'रोजे पड़ना' फारसी के मुहावरे है जिसका अर्थ विपत्ति में पड़ना होता है।
3. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग। 4. सुन्दर अभिव्यंजना। 5. आकर्षक गेयता
6. इस दोहे में लक्षणा शब्द शक्ति का सुन्दर प्रयोग हुआ है। 7. सरल भाषा का प्रयोग
8. अलंकार 'हा हा' में वीप्सा अलंकार।सम्पूर्ण दोहे में प्रतीप अलंकार।

## (23)

**होमति सुखु, करि कामना, तुमहिं मिलन की, लाल। ज्वालमुखी–सी जरति लखि, लगनि–अगनि की ज्वाल।।**

## शब्दार्थ

होमति = आहुति देती है। सुखु = सुखों की। करि = करके। कामना = इच्छा। मिलन = मिलने की। लाल = नायक। ज्वालमुखी = ज्वालामुखी। जरति = जलता हुआ। लखि = देखकर। लगनि–अगनि = लगन अर्थात् अनुराग की अग्नि। ज्वाल = लपट।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में विरहणी नायिका की वेदना का वर्णन किया गया है। विरहणी नायिका की सखी उसके प्रियतम से उसकी विरह–व्यथा का वर्णन कर रही है।

## व्याख्या

विरहिणी नायिका की सखी उसके प्रियतम (नायक) को सम्बोधित करते हुए कह रही है कि "हे लाल, निरन्तर, तुमसे मिलन की कामना करके वह (नायिका) अपने समस्त सुखों की आहुति देती रहती है। हे लाल, उसे तो केवल तुम्हारी कामना है और तुम्हारे समक्ष वह किसी भी प्रकार के सुख का बलिदान कर सकती है। नायिका प्रेम रूपी अग्नि की ज्वाला की निरन्तरता को देखकर स्वयं ज्वालामुखी की तरह जलती रहती है।'

## विशेष

1. भारतीय धार्मिक व्यवस्था में यज्ञ–हवन आदि की सुदीर्घ परम्परा रही है। यज्ञादि में आहुतियों के लिए भक्तजन श्रेष्ठ वस्तुओं (सामग्री) का प्रयोग करते हैं। प्रस्तुत दोहे में कवि ने इसी भाव का प्रतिपादन किया है।
2. प्रस्तुत दोहे में पूर्वानुरागिनी विरहिणी नायिका का वर्णन किया गया है।
3. प्रस्तुत दोहे में कवि ने वियोग श्रृंगार के अन्तर्गत वर्णित दस दशाओं में से अभिलाषा नामक प्रथम दशा का वर्णन किया है।
4. सरल भाषा का आकर्षक रूप। 5. मुक्तक शैली 6. दोहा छन्द प्रयोग
7. ब्रज भाषा का प्रयोग। 8. सुन्दर गेयता 9. (क) 'ज्वाला मुखी सी' में उपमा अलंकार।
   (ख) 'ज्वाला मुखी' तथा 'ज्वाल' में सभंग अलंकार। (ग) 'लगनि–अगनि' में रूपक अलंकार।
   (घ) सम्पूर्ण दोहे में सम अलंकार।

## (24)

**सायक–सम मायक नयन रँगे त्रिविध रँग गात। झखौ बिलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात।।**

## शब्दार्थ

सायक = सायंकाल। मायक = मायापूर्ण। त्रिबिध = रंग = तीन प्रकार के रंग अर्थात् सफेद, काला और लाल। झखी = इष अर्थात् मछली भी। दुरिजात = छिप जाती है। लखि = देखकर। जलजात = कमंल। लजात = लज्जित होते हैं अर्थात् संकुचित होते हैं।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका के नेत्रों की शोभा का वर्णन किया है। नायिका की दूती ने उसे किसी जलाशय के निकट बिठा दिया है। क्योंकि नायक से मिलन के लिये यही स्थान नियत था। तदनन्तर नायिका की दूती नायक के पास जाकर नायिका के नेत्रों की शोभा का वर्णन कर रही है। इसके अतिरिक्त नायिका की दूती परोक्षतः नायक को यह भी सूचित कर रही है कि नायिका जलाशय के तट पर बैठी है और उसे नायिका से मिलन के लिए वहीं जाना चाहिए।

## व्याख्या

जलाशय अर्थात् मिलन–स्थल पर बैठी हुई नायिका के नेत्रों की शोभा का वर्णन करते हुए नायिका की दूती नायक से कह रही है कि "हे नायक, उस नायिका के नेत्र सायंकाल की तरह मायापूर्ण है और वे त्रिविध रंगों अर्थात् काला, सफेद और

लाल रंगों में रंगे हुए हैं। इन नेत्रों को देखकर जलाशय में खिले हुए कमल लज्जित तथा संकुचित हो जाते हैं और नायिका भी दुःखी होकर जल के भीतर छिप जाती हैं।" इस दोहे से यह स्पष्ट हो जाता है कि नायिका जलाशय के तट पर बैठी हुई है अतः परोक्षतः नायक को मिलन–स्थल का ज्ञान हो जाता है।

## विशेष

1. इस दोहे में दूती द्वारा यह संकेत किया गया है कि सायँ बेला में नायिका सरोवर के तट पर उपस्थित हो यह अर्थ व्यंजित है।
2. नायिका के नेत्रों की सुन्दरता का वर्णन कमलों से किया गया है। लेकिन नायिका के नेत्र इतने सुन्दर हैं कि कमल भी लज्जित हो जाते हैं।
3. नायिका की दूती नायक से कहती है कि "हे नायक नायिका के सुन्दर नेत्र संध्याकाल की तरह मायापूर्ण हैं जिस प्रकार संध्या–समय आकाश में सफेद, काला और लाल ये तीनों रंग दीखते हैं, उसी प्रकार नायिका के नेत्रों में भी ये तीनों रंग देखे जा सकते हैं भावसाम्य की दृष्टि से निम्न दोहा देखिए –

   **अभिय, हलाहल, मदभरे, श्वेत, श्याम, रतनार। जियत, मरत झुकि–झुकि परतु जेहिं चितवति इक बार।।**
4. नेत्रों की सुन्दरता का सुन्दर वर्णन।
5. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
6. दोहा अलंकारों का प्रयोग।
7. सुन्दर गेयता।
8. अलंकार– 'सायक सम मायक नयन' में उपमा अलंकार 'जलजात लजात' में सभंगपद यमक अलंकार। सम्पूर्ण दोहे में व्यतिरेक अलंकार।

## (25)

**कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात। कहिहै सबु तेरौ हियौ मेरे हिय की बात।।**

## शब्दार्थ

कागद = कागज। बनत = बनना। संदेसु = संदेश। कहिहैं = कह देगा। लजात = लज्जित होना। सबु = सब। हियौ = हृदय। हिय = हृदय।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में नायिका पर देश में बैठे हुए प्रियतम को अपनी विरह दशा से अवगत कर रही है। इस प्रयोजन के लिए वह अपने प्रियतम को प्रेम–पत्र लिखती है और उसमें सारी बिरह–व्यथा का वर्णन कर देती है। फिर भी जब उसे सन्तोष नहीं होता तो वह पत्र के अन्त में उक्त दोहा लिख देती है।

## व्याख्या

विरहिणी नायिका अपने प्रियतम को सम्बोधित करते हुए कहती है कि "हे, प्रियतम, मेरे लिए कागज पर अपनी विरह व्यथा लिखकर भेजना कठिन है। क्यों कि मेरी विरह अग्नि की प्रचण्डता ने मुझे पत्र लिखने योग्य नहीं छोडा है। विरहजन्य वेदना कंप और अश्रु आदि के कारण मैं पत्र लिखने में असमर्थ हूँ। यदि मैं किसी सखी अथवा दूती के माध्यम स अपनी विरह व्यथा का सन्देश तुम्हारे पास भिजवाती हूँ तो मुझे लज्जा आती है क्योंकि प्रेम का प्रदर्शन उपहास का कारण होता है मैं यह नहीं चाहती कि मेरी सखी या दूती मेरे प्रेम सम्बन्ध को जान जाए मैं तो अन्ततः यही लिख सकती हूँ कि यदि तू सच्चे मन से सोचेगा तो तेरा हृदय स्वयं मेरे हृदय की सारी बात कह देगा अर्थात् यदि तेरे हृदय में मेरे प्रति प्रेम की वही तीव्र धारा जो कि मेरे हृदय में तेरे प्रति है तो तुझे मेरी विरह–व्यथा को समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी।"

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में प्रेषितपतिका नायिका की विरह व्यथा का वर्णन किया गया है।
2. नायक और नायिका के मध्य तुल्यानुराग का सार्थक निर्वाह हुआ है।

3. बिरह का सुन्दर चित्रण
4. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
5. दोहा छन्द का अनुप्रयोग
6. सूक्ष्म भावों का सुन्दर चित्रण।
7. प्रसाद–माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
8. सुन्दर बिम्ब–विधान
9. सम्पूर्ण पद में विरोधाभास अलंकार।

## (26)

**बंधु भए का दीन के, को तार्‌यौ, रघुराई। तूठे तूठे फिरत हौ झूठे बिरद कहाइ।।**

## शब्दार्थ

बंधु = मित्र। का = किस। को = किसे। तार्‌यौ = उद्धार करना। रघुराई = श्री राम चन्द्र जी। तूठे–तूठे = प्रसन्न होकर। फिरत = घूमता। बिरद = यश। कहाइ = कहलाकर।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में एक भक्त अपने भगवान् के प्रति उपालम्भ दे रहा है कि उन्होंने उसका उद्धार तो किया नहीं अतः उसका यह कहना निराधार है कि वे दीनों के बन्धु और उद्धारक हैं।

## व्याख्या

भगवान श्री राम चन्द्र जी को उपालम्भ देते हुए भक्त कहता है कि "हे भगवान् तुमने दीनों का साथ कब दिया है और किस पापी अथवा पतित व्यक्ति का उद्धार किया है।" कहने का आशय यह है कि यदि श्री रामचन्द्र जी ने दोनों का साथ दिया होता अथवा पतितों का उद्धार किया होता तो वे निश्चय ही उसका भी उद्धार कर देते किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। कदाचित इसी कारण भक्त ऐसे उपालम्भ देते हुए श्री रामचन्द्र जी से कहता है कि "दीनबन्धु और पतित पावन का यश प्राप्त करके जो तुम प्रसन्न हुए फिरते हो यह यश झूठा है क्यों कि तुमने मेरा तो उद्धार नहीं किया"

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में सख्य–भाव की भक्ति का प्रतिपादन हुआ है।
2. भक्त ने बहुत ही सुन्दर ढ़ंग से अपना उपालम्भ व्यक्त किया है।
3. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
4. आकर्षक गेयता।
5. तद्‌भव शब्दों के साथ तत्सम का सुन्दर योग।
6. दोहा अलंकार का प्रयोग
7. कवि के कथन में वक्रता के कारण सम्पूर्ण दोहे में प्रभावोत्पादकता आ गई है।
8. (क) तूठे–तूठे में पुनरूक्तिप्रकाश अंलकार।
   (ख) समस्त दोहे में वक्रोक्ति अलंकार।

## (27)

**मैं तोसौं कैवा कहयौ, तू जिन इन्हैं पत्याइ। लगालगी करि लोइननु उर मैं लाई लाइ।।**

## शब्दार्थ

तोसौं = तुझसे। कैवा = कई बार। कहयौ = कहा है। जिन = मत। पत्याइ = विश्वास कर। लगालगी = मेलजोल। करि = करके। लोइननु = आँखों ने। लाई = लगा दी। लाइ = अग्नि (प्रेम की)।

## प्रसंग

नायिका अपने प्रियतम के प्रति आसक्ति रखती थी किन्तु जब प्रियतम छोड़कर चला गया तो नायिका का मन विरह की अग्नि में दग्ध हो गया। नायिका की सखी ने उसे कई बार समझाया था कि नायक से आँखे न मिला अर्थात् प्रेम–सम्बन्ध स्थापित न कर किन्तु नायिका नहीं मानी और इसका परिणाम यह हुआ कि नायिका के हृदय में प्रेम की अग्नि प्रज्वलित हो गई। प्रस्तुत दोहे में कवि ने यही भाव व्यक्त किया है।

## व्याख्या

प्रेमानुरक्त नायिका को संबोधित करते हुए उसकी अन्तरंग सखी कहती है कि 'हे नायिका, मैने तुझसे कितनी बार कहा था (समझाया था) कि इन नेत्रों पर विश्वास मत कर अर्थात् इन्हें पूर्ण स्वच्छन्द न रहने दे किन्तु तूने मेरा कहा नहीं माना परिणाम यह हुआ कि तेरे इन नेत्रों ने प्रियतम अर्थात् नायक के नेत्रों से मेल जोल स्थापित कर लिया और इस प्रकार अपने हृदय में प्रेम की अग्नि प्रज्वलित कर ली कहने का तात्पर्य यह है कि यदि नायिका आरम्भ में ही सखी की शिक्षा मान लेती है और नायक के साथ प्रेम–सम्बन्ध स्थापित नहीं करती तो उसे यह प्रेम का रोग लगता ही नहीं"

## विशेष

1. कवि बिहारी ने प्रस्तुत दोहे में पूर्वानुरागिनी नायिका का सुन्दर चित्रण किया है।
2. शृंगार रस का सुन्दर प्रस्तुतीकरण।
3. ब्रज भाषा का प्रयोग।
4. दोहा छंद स्वरूप।
5. सुन्दर भावाभिव्यंजना
6. भावसाम्य की दृष्टि से निम्नपंक्तियाँ देखिए –लगालगी लोइन करैं नाहक मन बधि जाए।
7. अलंकार – (क) लाई–लाइ मे यमक अलंकार। (ख) सम्पूर्ण दोहे में असंगति अलंकार। (ग) सम्पूर्ण दोहे में अनुप्रास अलंकार।

## (28)

**बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न। हरिनी के नैनानु तैं, हरि, नीके ए नैन।।**

## शब्दार्थ

बरजीते = बलपूर्वक जीत लिया है। सर = बाण। मैने के = कामदेव के। नैनानु तैं = आँखों की अपेक्षा। नीके = अच्छे, सुन्दर। नैन = आँख।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका की दूती के माध्यम से नायिका के आकर्षक नेत्रों का वर्णन किया है।

## व्याख्या

नायक के समक्ष नायिका के आकर्षक नेत्रों की शोभा का वर्णन करते हुए नायिका की सखी कह रही है कि "हे नायक, नायिका के नेत्रों ने तो कामदेव के नेत्र रूपी बाणों पर बलपूर्वक, विजय प्राप्त कर ली है अर्थात् काम के साक्षात् अवतार कामदेव के नेत्रों में भी वह कामोद्दीपन और आकर्षक नहीं है जो कि नायिका के नेत्रों में है। हे हरि मैनें तो ऐसे आकर्षक नेत्र कहीं भी नहीं देखे। नायिका के ये नेत्र हरिणी के नेत्रों से भी अधिक विस्फारित एवं आकर्षक हैं।"

## विशेष

1. कवि ने नायिका के नेत्रों को कामदेव के नेत्रों से भी अधिक कामोद्दीपक सिद्ध किया है और उनकी उपमा हरिणी के नेत्रों से दी है। हरिणी के नेत्रों की विशेषता यह होती है कि वे आकर्षक और विस्फारित होते हैं। नारी के नेत्रों का सौन्दर्य भी उनके आकर्षक और विस्फारित होने में हैं।
2. कवि ने उपरोक्त दोहे में कामदेव के बाणों का उल्लेख किया है। कामदेव के पाँच बाण माने जाते हैं सम्मोहन, उन्माद, शोषण, तापन तथा स्तम्भन।

3. नायिका के नेत्रों का सुन्दर चित्रण। 4. प्रस्तुत दोहे में कवि ने परकीया नायिका का वर्णन किया है।
5. ब्रज भाषा का प्रयोग। 6. सुन्दर भावाभिव्यक्ति।
7. (क) काव्यलिंग अलंकार सम्पूर्ण दोहे में। (ख) यमक अलंकार 'मैन' तथा 'मैंन' में।
(ग) 'हरिनी' के तथा 'हरि नीके' में संयम यमक तथा काव्यलिंक अलंकारों का चमत्कार द्रष्टव्य है।

## (29)

**अंग–अंग–नग जगमगत दीपसिखा सी देह। दिया बढ़ाऐं हूँ रहै बड़ौ उज्यारौ गेह।।**

## शब्दार्थ

अंग–अंग= शरीर के अंग–प्रत्यंग। नग=नगीना जगमगत= प्रकाशित है। दीपसिखा= दीपक की शिखा। दिया बढ़ाऐं हूँ=दीपक बुझाने पर भी। उज्यारौ=प्रकाश गेह= घर।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में नायिका की कोई सखी अथवा दूती नायक के समक्ष नायिका के शरीर के अंग–प्रत्यंग की शोभा का वर्णन कर रही है। नायिका की सखी यह बता रही है कि गहरे अन्धकार में भी नायिका के शरीर की कान्ति अलग ही चमकती है।

## व्याख्या

नायिका के अंग–प्रत्यंग से (आभूषणों के) नगीनों की कान्ति जगमगा रही है और उसकी सम्पूर्ण देह दीपक की शिखा की तरह सुशोभित हो रही है। रात के समय दीपक बुझाने पर भी उसके घर में अत्यधिक प्रकाश रहता है। कहने का अभिप्राय यह है कि उसकी सम्पूर्ण देह आभूषणों में जड़े हुए नगीनों के कारण अंधेरे में भी दीपशिखा की तरह जगमगाती रहती है।"

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में नायिका के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। 2. शृंगार रस का सुन्दर वर्णन।
3. ब्रज भाषा प्रयोग। 4. दोहा, छन्दों का प्रयोग।
5. सुन्दर भावाभिव्यक्ति 6. प्रसाद– माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
7. सूक्ष्म अभिव्यक्ति 8. आकर्षक बिम्ब–विधान
9. 'अंग–अंग' में पुनरूक्तिप्रकाशन अंलकार। सम्पूर्ण दोहे में पूर्वरूप अलंकार।
'दीपशिखा सी देह' में उपमा अलंकार।

## (30)

**छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अंग। दीपति देह दुहून मिलि दिपति ताफता–रंग।।**

## शब्दार्थ

सिसुता= शैशव। झलक्यौ= झलक मार रहा है। जोबनु=यौवन। दीपति= कान्ति। देह= शरीर। दुहून= दोनों से। ताफ्ता रंग= ताफता जैसा रंग। (ताफ्ता ऐसे रेशमी कपड़े को कहते हैं जिसका ताना और बाना अलग–अलग रंग का होता है।) हिन्दी में इस रंग को धूपछाँही

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका की वयः सन्धि अवस्था का वर्णन किया है। नायिका की सखी अथवा दूती नायक के समक्ष नायिका की वयः सन्धि अवस्था का वर्णन कर रही है।

## व्याख्या

नायिका की वयः सन्धि की अवस्था का वर्णन करते हुए नायिका की सखी अथवा दूती नायक से कहती है कि "हे नायक,

अभी तो उस नायिका के शरीर से शैशव का भोलापन भी नहीं गया है अर्थात् शैशवोचित भोलापन बना हुआ है साथ ही उसमें यौवन की झलक अर्थात् आभा भी दीखने लगी है। कहने का आशय यह है कि यौवन पूरी तरह अभी आया नहीं है और शैशव और यौवनागमन के मिलन बिन्दु पर खड़ी है। शास्त्रीय भाषा में नारी की इस अवस्था को वयः सन्धि की अवस्था कहते हैं। शैशव और यौवन दोनों की कान्ति के मिलन के कारण उसकी देह में ताफ्ता रंग प्रकाशित हो रहा है अर्थात् नायिका का शरीर धूपछाँही रंग वाले कपड़े जैसा प्रतीत हो रहा है।"

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने वयः सन्धि अवस्था का सुन्दर चित्रण किया है।
2. भावसाम्य की दृष्टि से निम्न पंक्तियाँ देखिए –

   **सैसव जोबन दुहु मिलि गेलि, श्रवनक पथ दुहु लोचन लेल।**
   **वचनक चातुरि लहु–लहु हास, धरनि ये चाँद करिल परगास।**
   × × × **माधव देखब अपूरब बाला, सैसव जोबन दूहूँ एक भेला।**
3. ब्रज भाषा का प्रयोग। 4. सुन्दर लयात्मकता
5. अलंकार – (क) 'दीपति देह दुहून' में वृत्यानुप्रास अलंकार। (ख) 'दिपति ताफ्ता–रंग' में वाचक धर्म लुप्तोपमा अलंकार

## (31)

**कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाई। तुमहूँ लागी जगत– गुरू, जग–नाइक, जग–बाइ।।**

## शब्दार्थ

कबकौ= कब से अर्थात् बहुत समय से। टेरत= पुकारना गुहार लगाना। दीन रट =दैन्य भाव से परिपूर्ण रट। सहाइ= सहायक जगनाइक= संसार के नायक। जग बाइ= संसार की हवा।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में भक्त श्री कृष्ण भगवान को उपालम्भ दे रहा है। उसकी धारणा यह है कि भगवान् श्री कृष्ण को संसार की हवा लग गई है, तभी तो भक्त की प्रार्थना की ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया गया और उसका उद्धार भी नहीं हो पाया यदि भगवान् श्री कृष्ण को संसार की हवा नहीं लगी होती अर्थात् यदि वे सांसारिक स्वार्थपरता में ग्रस्त नहीं होते तो उन्होंने उसका (भक्त का) उद्धार अवश्यक कर दिया होता।

## व्याख्या

भगवान श्री कृष्ण को उपालम्भ देते हुए उनका एक भक्त कहता है कि "हे भगवान, मैं कितने समय से अर्थात् बहुत समय से दीनता–पूर्ण गुहार लगा रहा हूँ किन्तु एक तुम हो कि मेरे सहायक ही नहीं बन रहे हो। हे जगतगुरू, जगत के नायक भगवान श्री कृष्ण, मेरे प्रति तुम्हारी इस उपेक्षा को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम्हें भी संसार की हवा लग गई है अर्थात् जिस प्रकार संसार के लोग अधिकतर क्रूर और निर्दयी होते हैं तथा दीन–हीनों पर कृपा नहीं करते, उसी प्रकार तुम भी मुझ पर कृपा नहीं कर रह हो।"

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में भक्त की सख्य–भक्ति का प्रतिपादन किया गया है।
2. कवि ने 'संसार की हवा लगना' मुहावरे का अत्यन्त सार्थक प्रयोग किया है। कहने का आशय यह है कि सांसारिक लोग प्रायः अपने ही स्वार्थों में उलझे रहते हैं और उन्हें किसी अन्य की कठिनाई आदि की कोई चिन्ता नहीं रहती। प्रस्तुत दोहे में भगवान श्री कृष्ण को भी इसी आशय का उपालम्भ दिया गया है। यदि भगवान सांसारिकता में लिप्त नहीं होते तो उन्होंने भक्त का उद्धार अवश्यक कर दिया होता।
3. भाव साम्य की दृष्टि से निम्न दोहा देखिए –

**थौरें ही गुन रीझते, बिसराई वह बानि। तुम हूँ कान्ह मनौ भए आजकल्हि के दानि॥**

4. बिहारी सतसई में विशुद्ध भक्ति और नीति सम्बंधी दोहों की संख्या अत्यल्प है क्यों कि इस दोहा संग्रह का मूल रस शृंगार रस ही है तथा भक्ति परक एवं नीतिपरक दोहों में भी कवि ने अपनी मौलिक कवि–प्रतिभा का परिचय दिया है।
5. अलंकार–
   (क) 'स्याम सहाई' में छेकानुप्रास अलंकार
   (ख) सम्पूर्ण दोहे में लोकोक्ति अलंकार।
   (ग) सम्पूर्ण दोहे में गम्योत्प्रेक्षा अलंकार।
   (घ) उत्प्रेक्षा अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
6. 'जगबाइ' मुहावरे का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

## (32)

**पत्रा ही तिथि पाइयै वा घर कैं चहुँ पास। नितप्रति पून्यौई रहै आनन–ओप–उजास।।**

## शब्दार्थ

पत्रा ही =पंचांग जिसमें तिथि आदि के विवरण रहते हैं। पाइयै= प्राप्त कर सकते हैं। वा = उसके अर्थात् नायिका के। पून्यौई= पूर्णिमा। आनन= मुख। ओप= आभा। उजास =उजाला।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में नायिका की सखी अथवा दूती नायक के समक्ष नायिका की मुखछवि का वर्णन कर रहा है।

## व्याख्या

नायक के समक्ष नायिका की मुखछवि का वर्णन करते हुए नायिका की सखी अथवा दूती कहती है कि "हे नायक, नायिका के घर के चारों ओर तो पूर्णिमा ही रहती है और इस कारण वहाँ तिथि आदि का निर्णय केवल पत्रा (पंचांग) देखकर ही किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि नायिका के मुख की अनुपम कान्ति और आभा के कारण उसके घर के आसपास सदैव पूर्णमासी रहती है। अर्थात् रातभर चाँद की ज्योत्स्ना चमकती रहती है और चाँद का अपना प्रकाश दिखाई ही नहीं देता नायिका के घर के आस–पास चन्द्रमा को देखकर तिथि निर्णय करना असम्भव है।"

## विशेष

1. भावसाम्य के लिए "रतनहजारा" का निम्न दोहा देखिए –

**कुहू निसा तिथि पत्र में, बाँचन कौं रहि जाइ। तब मुख ससी की चाँदनी, उदे कारक है आइ।।**

2. नायिका के मुख की चन्द्रमा जैसी छवि का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया गया है।
3. तिथि–निर्णय के मुख्यतः दो साधन होते हैं – पंचांग अथवा चन्द्रोदय का समय। नायिका की मुख छवि अपने आप में इतनी आभापूर्ण है कि उसके कारण उसके घर के आस–पास सदैव चाँदनी चमकती रहती है। ऐसी स्थिति में चन्द्रोदय स्पष्टतः लक्षित नहीं होता।
4. ब्रज भाषा का प्रयोग। 5. सुन्दर गेयता। 6. दोहा, अलंकारों का प्रयोग।
7. अनुपम सौन्दर्य चित्रण 8. प्रसाद– माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
9. अलंकार–
   (क) 'आनन–ओप' में छेकानुप्रास अलंकार।
   (ख) सम्पूर्ण दोहे में काव्यलिंक अलंकार।
   (ग) सम्पूर्ण दोहे में परिसंख्या अलंकार।
   (घ) सम्पूर्ण दोहे में अत्युक्ति अलंकार।

## (33)

**बसि सकोच–दसबदन–बस, साँचु दिखावति बाल। सियालौं सोधति तिय तनहिं लगनि–अगनि– की ज्वाल।।**

## शब्दार्थ

सकोच= संकोच, लज्जा। दसबदन=दस मुख वाला अर्थात् रावण। साँचु= सच्चापन। बाल बाला अर्थात् नायिका। सियलौं= सीता की तरह। सोधति=तपा कर शुद्ध करती है। लगनि–अगनि=प्रेम की अग्नि

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने पूर्वानुरागिनी नायिका की मनोदशा का वर्णन किया है। बहुत समय तक तो नारी सुलभ लज्जा और संकोच के कारण नायक को अपनी प्रेम–भावना से अवगत नहीं करा सकी किन्तु अब प्रेम की अग्नि ने उसे इतना व्याकुल बना दिया है कि अब उसके लिए अपनी प्रेम–भावना को लज्जा और संकोच के आवरण में छिपा रखना कठिन है। विरह की अग्नि में नायिका का इस प्रकार संतप्त हो जाना यह सिद्ध करता है कि नायक के प्रति उसका प्रेम सच्चा और निष्कलुष है। प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका की सखी के माध्यम से यही कथन कहलवाया है।

## व्याख्या

पूर्वानुरागिनी नायिका की सखी नायक से कह रही है कि "हे नायक अभी तक तो वह नायिका संकोच व लज्जा रूपी रावण के वश में रही और इस कारण अपनी प्रेम–भावना को व्यक्ति नहीं कर सकी। तथापि उसकी स्थिति बदल गई। अब उसने अपने आप को सीता की तरह तुम्हारे वियोग की अग्नि में तपा कर शुद्ध प्रमाणित कर दिया है। अर्थात् संकोच और लज्जा से आवरण को त्याग कर तुम्हारे प्रति अपने प्रेम की सच्चाई व्यक्त कर दी है। वह नायिका प्रेम का जो भाव लज्जा और संकोच के कारण व्यक्त नहीं कर पाती थी, अब प्रेम की अग्नि में शुद्ध होकर वह उसी प्रेम–भाव की शुद्धता और सच्चाई प्रकट कर रही है।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने राम कथा की एक प्रासंगिक कथा का उल्लेख किया है जिसके अनुसार रावण से मुक्त होने के पश्चात् सीता ने अपनी शुद्धता और सच्चरित्रता सिद्ध करने के लिए अग्नि–परीक्षा दी थी। कवि ने इस कथांश का अत्यन्त सार्थक प्रयोग किया है।
2. नायिका की विरहावस्था का सुन्दर चित्रण।
3. सरल भाषा का आकर्षक रूप।
4. ब्रज भाषा का प्रयोग।
5. मुक्तक शैली।
6. दोहा छन्द प्रयोग।
7. उत्तम शब्द चयन।
8. ध्वन्यात्मकता।
9. अलंकार–
   (क) 'संकोच दस बदन' तथा 'लगनि–लगनि' में रूपक अलंकार।
   (ख) 'सियलौं सोधति' में अनुप्रास अलंकार।
   (ग) 'सियलौं सोधति' में उपमा अलंकार।
   (घ) सम्पूर्ण दोहे में सांगरूपक अलंकार।

## (34)

**जो न जुगति पिय मिलन की, धूरि मुकति–मुँह दीन। जौ लहियै सँग सजन, तौ धरक नरक हूँ कीन।।**

## शब्दार्थ

जुगति= युक्ति, तरकीब। धूरि= धूल। मुकति= मुक्ति अर्थात् मोक्ष। जौ= यदि। लहियै= प्राप्त होता है। सजन= परिजन धरक = धड़क अर्थात् डर। की न= नहीं करनी चाहिए।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि वास्तविक मुक्ति प्रियतम के सान्निध्य में है। जिस मुक्ति में प्रियतम का मिलन नहीं हो पाता, वह मुक्ति सर्वथा त्याज्य है, उपेक्षणीय है प्रस्तुत दोहे में नायिका इसी भाव को अपनी सखी से कह रही है।

## व्याख्या

अपनी सखी को सम्बोधित करते हुए नायिका कहती है कि "हे सखी यदि मुक्ति अथवा मोक्ष में प्रियतम से मिलन की कोई युक्ति अथवा व्यवस्था नहीं है तो हे सखी ऐसी मुक्ति पर धूल डालो अर्थात् मुझे ऐसी मुक्ति की तनिक भी कामना नहीं है। साथ ही, हे सखी, यदि किसी उपाय से प्रियतम का मिलन सम्भव हो जाता है तो मुझे वह स्वीकार है भले ही उसमें नरक की यातनाओं का भय हो। कहने का आशय यह है कि मेरी वास्तविक मुक्ति तो प्रियतम के सान्निध्य में हैं। और यदि मुझे प्रियतम का सान्निध्य प्राप्त हो जाता है तो मुझे स्वर्ग– नरक की कोई चिन्ता नहीं है।"

## विशेष

1. प्रिय का मिलन, सुजन का संग मोक्ष के आनंद से भी अधिक सुखदायक होता है।
2. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
3. भाषा सरल।
4. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम् का सुन्दर योग।
5. शृंगार रस का परिपाक
6. आकर्षक गेयता।
7. दोहा छंद का प्रयोग।
8. भाव साम्य की दृष्टि से निम्न दोहा देखिए –

   **कहा करौ बैकुण्ठ लै, कल्प वृक्ष की छाँह। अहमद ढाक, सुहावने, जो गल प्रियतम बाँह।।**
9. अनुप्रास अलंकार का यहाँ सुन्दर प्रयोग हुआ है।
   (क) 'मुकति–मुँह' तथा 'संग–सजन' में छेकानुप्रास अलंकार
   (ख) 'धूरि मुकति–मुँह दीन' में लोकोक्ति अलंकार।

## (35)

**चमक, तमक, हाँसी, ससक, मसक, झपट, लपटानि। ए जिहिं रति, सो रति मुकति, और मुकाति अति हानि।।**

## शब्दार्थ

चमक= चौंक पड़ना तमक= उत्तेजित हो जाना ससक= सीत्कार करना। मसक= मसलना, अंग–मर्दन। झपट=झपट कर। लपटानि=बाहुपाश में बाँध लेना। जिहिं= जिस। मुकति= मुक्ति।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी के युग की राजनीतिक परिस्थितियों का सच्चा चित्र प्रस्तुत करता है। उनके युग में राजमहल केवल विलास और रति क्रीड़ा के केन्द्र बने हुए थे। राजनीति के कर्णधार जनता के हित की ओर से आँख मूंदकर भोग–विलास में डूबे हुए थे। प्रस्तुत दोहे में कवि ने तत्कालीन राजाओं की इसी विलासमयता का चित्र खींचा है। उन राजाओं की दृष्टि में मुक्ति का सच्चा अर्थ क्या था– इस दोहे में इसी बात का वर्णन किया गया है।

## व्याख्या

कवि कहता है कि तत्कालीन राजाओं की दृष्टि में "जिस रति–क्रीड़ा में चौंकना, उत्तेजित होना, हँसना, सीत्कार करना, अंगमर्दन करना और फिर झटके के साथ बाहुपाश में बाँध लेना जैसी विविध क्रियाएँ होती हैं, वहीं रति–क्रीड़ा वस्तुतः मोक्षदायिनी है। मुक्ति का वास्तविक वास केवल वहीं है। धर्म–ग्रन्थों एवं शास्त्रों आदि में जिन अन्य प्रकार की मुक्तियों का विवेचन किया गया है, वे सभी मुक्तियाँ हानिप्रद हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि रति–क्रीड़ा जन्य सुख ही सच्चा मोक्ष है, शेष सभी कुछ हेय है।"

## विशेष

1. कवि ने प्रस्तुत दोहे में कामशास्त्र संबंधी गहरे ज्ञान का परिचय दिया है।
2. भावसाम्य की दृष्टि से बिहारी का ही निम्न दोहा देखिए

**तंत्रीनाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग। अनबूड़े, बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग।।**

3. चमक, तमक, ससक, मसक जैसे शब्दों के प्रयोग से नादसौन्दर्य उत्पन्न हुआ है।
4. शृंगार रस का सुन्दर परिपाक।
5. सूक्ष्म भावों का सुन्दर–चित्रण
6. प्रसाद– माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
7. सुन्दर बिम्ब–प्रधान।
8. ब्रज भाषा प्रयोग।
9. दोहा, छंद का अनुप्रयोग।
10. सम्पूर्ण दोहे में अनुप्रास अलंकार। सम्पूर्ण दोहे में व्यतिरेक अलंकार।

## (36)

**कंज–नयनि मंजनु किए, बैठी ब्यौरति बार। कच– अँगुरी बिच दीठि दै, चितवति नंदकुमार।।**

## शब्दार्थ

कंज नयनि= कमल जैसी आँखों वाली नायिका मंजनु किए= स्नान करके। ब्यौरति= सुलझा रही है। बार= बाल, केश। कच अंगुरी बिच= बालों और उंगलियों के बीच में से। दीठि= दृष्टि। चितवनि= देखती है। नन्दकुमार= श्री कृष्ण (नायक)।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने पूर्वानुरागिनी नायिका की क्रिया– विदग्धता का वर्णन किया है। नायिका की एक सखी, दूसरी सखी से नायिका की इसी क्रिया– विदग्धता का संजीव वर्णन कर रही है।

## व्याख्या

नायिका की क्रिया–विदग्धता का वर्णन करते हुए उसकी एक सखी दूसरी सखी से कह रही है कि "हे सखी कमल जैसी आँखों वाली वह नायिका स्नान करके अपने केश सुलझा रही है और इसी प्रकार केश सुलझाने में वह अपने प्रियतम का दर्शन लाभ भी उठा रही है। "नायिका की इस क्रिया – विदग्धता का रहस्योद्‌घाटन करती हुई सखी कहती है कि "वह (नायिका) बाल सुलझाते हुए उँगली और बालों के बीच की दरार में से अपने प्रियतम के दर्शन कर लेती है।

## विशेष

1. कवि ने नायिका की क्रिया– विदग्धता का अत्यन्त संजीव वर्णन किया है।
2. बाल सुलझाती हुई नायिका का सुन्दर चित्र यहाँ अंकित हुआ है।
3. सरल एवं सुगम भाषा का प्रयोग।
4. ब्रज भाषा का प्रयोग।
5. सुन्दर अभिव्यंजना।
6. प्रसाद– माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
7. कंज नयन में रूपक अलंकार। 'बैठी ब्यौरति बार' में वृत्यानुप्रास अलंकार। पर्यायोक्ति अलंकार सम्पूर्ण दोहे में।

## (37)

**मोहि दयौ, मेरौ भयौ, रहतु जु मिलि जिय साथ। सो मनु बाँधि न सौं पियै, पिय, सौतिनि के हाथ।।**

## शब्दार्थ

मोहि दयौ= मुझको दिया हुआ। मेरौ भयौ= मेरा हो गया रहतु जु मिलि जिय साथ= जो अब मेरे हृदय के साथ मिलकर रहता है। बाँधि= बाँध करके। सौतिनि कैं हाथ= सपत्नी को।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में नायिका अपने प्रियतम से यही आग्रह कर रही है कि "हे प्रियतम, अपना हृदय तो तुम मुझे दे चुके हो, अब उस हृदय को सपत्नी को मत दो। मुझे दिए हुए हृदय को मरे पास ही रहने दीजिए।"

## व्याख्या

प्रियतम को सम्बोधित करते हुए नायिका कहती है कि "हे प्रियतम, जो हृदय तुमने मुझे दिया था, वह तो मेरा हो गया अर्थात् अब तो उस पर मेरा अधिकार हो गया। अब तुम्हारा दिया हुआ वह हृदय मेरे हृदय के साथ एकाकार होकर रह गया है। अब मेरा आग्रह यही है कि उस हृदय को बाँधकर अर्थात् पूर्णतः सपत्नी को मत सौंपिए क्यों कि यदि आपने ऐसा किया तो तुम्हारे हृदय के साथ बँधा हुआ मेरा हृदय भी सपत्नी को प्राप्त हो जाएगा। कहने का आशय यह है कि नायिका यह नहीं चाहती की उसका प्रियतम सपत्नी से प्रेम करे और इसीलिए वह उससे निवेदन कर रही है कि उसे अपना हृदय सपत्नी को नहीं देना चाहिए। सपत्नी के प्रति नायक की आसक्ति सवभावतः नायिका के मन में ईर्ष्या का भाव उत्पन्न करती है।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में धीरा नायिका का वर्णन किय गया है।
2. नायिका के मन में नायक के प्रति गहन अनुराग की यहाँ अभिव्यक्ति हुई है।
3. कवि ने नायिका के माध्यम से प्रियतम को उपालम्भ दिये हैं। प्रेम भाव का चरम–स्वरूप सर्वात्म समर्पण में होता है और सर्वात्म समर्पण में किसी प्रकार की भी उपेक्षा सहन नहीं होती। प्रस्तुत दोहे में नायिका ने नायक के प्रति सर्वातम समर्पण किया है। अतः वह यह सहन नहीं कर सकती कि उसका प्रियतम किसी सपत्नी के प्रति आकृष्ट हो। इस दृष्टि से नायिका का यह भाव–मनोविज्ञान के सर्वथा अनुरूप है।
4. मध्ययुगीन सामन्तीय जीवन में बहु–पत्नी विवाह, या परकीया प्रेम की ओर यहाँ संकेत किया गया है।
5. ब्रज भाषा का प्रयोग।
6. सुन्दर बिम्ब–विधान।
7. दोहा छंद का अनुप्रयोग।
8. प्रभावी लयात्मकता।
9. अलंकार–
   (क) सम्पूर्ण दोहे में काव्यलिंग।
   (ख) 'न सौंपिए' में श्लेष।
   (ग) सभंग यमक तथा अनुप्रास अलंकार।

## (38)

**कहति न देवर की कुबत, कुल–तिय कलह डराति। पंजर–गत मंजार–ढिग सुक ज्यौं सूकति जाति।।**

## शब्दार्थ

कुबत= अनुचित व्यवहार। कुल–तिय= घर की बहू। कलह डराति= गृह कलह के डर से। पंजर गत=पिंजरे में बंद। मंजार=बिल्ला (बिलौटा)। ढिंग=निकट। सुक=तोता। ज्यौं =जैसे, की तरह। सूकति जाति=सूखती जाती है।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने एक ऐसी कुल–वधू की मनोदशा का वर्णन किया है, जिसका देवर उसके प्रति अनुचित व्यवहार करता है और वह उसकी शिकायत भी नहीं कर सकती क्योंकि शिकायत करने पर घर में कलह का होना निश्चित है। अब वह उसके अनुचित व्यवहार को सहन करती रहती है और मन ही मन कुढ़ती रहती है। कवि ने प्रस्तुत दोहे में ऐसी ही दुविधा पूर्ण नायिका का वर्णन किया है।

## व्याख्या

देवर के अनुचित व्यवहार से दुखी नायिका की द्विविधापूर्ण मनोदशा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि "कुल वधू गृह-कलह के भय से देवर के अनुचित व्यवहार की बात नहीं कहती (क्योंकि उसे यह पता है कि यदि उसने देवर के अनुचित व्यवहार की शिकायत कर दी तो घर में क्लेश हो जाएगा)। ऐसी स्थिति में वह यह सारा अनुचित व्यवहार चुपचाप सहन करती रहती है। उसकी स्थिति पिंजरे में बंद ऐसे तोते की तरह है जिसके निकट ही बिलौटा उपस्थित है जिसके भय से तोता बराबर सूखता रहता है। यही स्थिति नायिका की भी है। देवर के रहते हुए वह दोहरी चिन्ता में गली जाती है (एक ओर तो उसे यह चिन्ता है कि कहीं देवर उसकी चुप्पी का गलत अर्थ लगाकर अपनी सीमा से न बढ़ जाए और दूसरी ओर उसे यह चिन्ता है कि यदि अपने पति से देवर के अनुचित व्यवहार की शिकायत कर दी तो घर में कलह हो जाएगी।)"

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने एक कुलीन वधू की चिन्ता का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया है
2. ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. सरल, सुगम भाषा का प्रयोग
4. तद्भव के साथ तत्सम् शब्दों का सुन्दर प्रयोग।
5. सुन्दर अभिव्यंजना।
6. आकर्षक बिम्ब–विधान।
7. संवादात्मक शैली का प्रयोग।
8. दोहा छंद का प्रयोग।
9. (क) सम्पूर्ण दोहे में पूर्णोपमा अलंकार।
   (ख) दोहे के पहले चरण में अनुप्रास अलंकार
   (ग) सभंग यमक अलंकार का प्रयोग।

## (39)

**चलन ना पावतु निगम–मगु जगु उपज्यौ अति श्रासु। कुच–उतंग गिरिबर गहयौ मैना मैनु पवासु।।**

## शब्दार्थ

निगम– मगु= धर्म अथवा वेदों में प्रतिपादित मार्ग। जगु= संसार में। श्रासु= भय। कुच–उतंग गिरिबर= कुच रूपी उत्तुंग पहाड़। गहयौ=अधिकार कर रखा है। मैना=राजपूताने के वनों में रहने वाली एक ऐसी जाति जिसका काम केवल लूटमार करना है। इस जाति को मैना अथवा मीना कहते हैं। मैनु= कामदेव। मवासु= स्थाई निवास।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका के कामोद्दीपक उरोजों की आपार शोभा का वर्णन किया है।

## व्याख्या

नायिका के उन्नत उरोजों का वर्णन करते हुए नायक कहता है कि "नायिका के उन्नत उरोजों रूपी ऊँची पर्वतों पर कामदेव रूपी मैना अथवा मीना जाति ने स्थायी निवास बना रखा है। परिणामतः संसार में सर्वत्र भय छाया हुआ है और संसार के लोगों के लिए वैदिक–धर्म तथा धर्म शास्त्र आदि में निर्धारित नियमित जीवन व्यतीत करना सम्भव नहीं हो पा रहा है क्योंकि नायिका के उन्नत उरोजों को देखकर सांसारिक व्यक्ति धर्म और वेद में निहित सिद्धांतों को सहज ही विस्मृत कर देता है, सारा संसार उन्हीं उरोजों के आकर्षण में जकड़ा हुआ है।"

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने 'निगम–मगु' का प्रयोग किया है जिसका आशय यह है कि मनुष्य को धर्मशास्त्र आदि में निहित सिद्धांतों का पालन करना चाहिए। धर्मशास्त्र आदि में परस्त्री को माता के समान समझने का आग्रह किया गया है।
2. प्रस्तुत दोहे में कवि ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि नारी का सौन्दर्य महान तपस्वियों और साधकों की साधना भी भंग कर सकता है, फिर सांसारिक पुरूषों की तो बात ही क्या है।
3. ब्रज भाषा का प्रयोग। 4. शृंगार रस परिपाक। 5. शब्द–चयन उत्तम।
6. भावात्मक गहराई। 7. मुक्तक शैली। 8. ध्वन्यात्मकता।
9. 'मैना मैनु मवासु' में वृत्यानुप्रास अलंकार। 10. 'कुच–उतग गिरिबर' तथा 'मैना मैनु में रूपक अलंकार।
11. सम्पूर्ण दोहे में सांगरूपक अलंकार।

# (40)

**त्रिबली, नाभि दिखाइ, कर सिर ढकि, सकुचि, समाहि। गली, अली की ओट कै, चली भली बिधि चाहि।।**

## शब्दार्थ

नारी शरीर में नाभि के ऊपर तीन रेखाएँ सी पड़ती हैं जिन्हें त्रिबली कहते। कर सिर ढकि=सिर ढकने के बहाने हाथ ऊपर उठाना। सकुचि= लज्जा। समाहि= सामने आने पर। अली की ओट कै= सखी की ओट करके अर्थात् सखी की दृष्टि से बचकर। चली भली बिधि चाहि=अच्छी तरह अपनी चाह प्रकट करके।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने एक क्रिया–विदग्धा नायिका की अनुराग व्यंजक चेष्टाओं का वर्णन किया है। वह नायिका सभी से छिप कर नायक के प्रति अपने अनुराग को प्रकट करने में सफल हो जाती है। इस प्रकार के वर्णनों में बिहारी निश्चय ही अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय देते हैं। प्रस्तुत दोहे में नायिका की इन अनुराग–व्यंजक चेष्टाओं का वर्णन कर रही है।

## व्याख्या

नायिका की अनुराग–व्यंजक चेष्टाओं का वर्णन करते हुए उसकी एक सखी दूसरी सखी से कह रही है कि "उसने (नायिका ने) नायक के सामने आने पर लज्जा का प्रदर्शन किया और फिर सिर ढ़कने के बहाने हाथ ऊपर की ओर उठाया और इसी प्रक्रिया में नायक को अपनी त्रिबली और नाभि के दर्शन करा दिए (प्रत्यक्षतः तो उसने लज्जा का भाव प्रदर्शित किया किन्तु वस्तुतः उसने नायक के प्रति अपने अनुराग को प्रकट करने के लिए अपनी त्रिबली और नाभि के दर्शन करा दिए)" इसके पश्चात् वह नायिका सखी की ओट होकर अर्थात् उसकी दृष्टि से बचकर और अपने प्रियतम के प्रति अपने को भली प्रकार व्यक्त करके गली में चली गई।"

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने नारी मनोविज्ञान का भी गहरा परिचय दिया है। नारी स्वभावतः लज्जाशील होती है अतः वह अपने अनुराग को प्रत्यक्षतः व्यक्त करने में संकोच करती है। प्रस्तुत दोहे में नायिका ने अपनी क्रिया–विदग्धता का परिचय दिया है। नायक के प्रति अपनी आसक्ति भी व्यक्त कर दी है (जिसे नायक समझ गया है) और वह सर्वथा निष्कलुष भी बनी रही है (सखी की दृष्टि से भी बचकर)।
2. प्रस्तुत दोहे में कवि ने क्रिया–विदग्धा नायिका का वर्णन किया है।
3. भावसाम्य की दृष्टि से बिहारी का ही निम्न दोहा देखिए :

**करू उठाइ घूँघट करत उझरत पट–गुझ रोट। सुख–मौटै लूटीं ललन लखि ललनां की लौट।।**

4. शृंगार रस का सुन्दर वर्णन। 5. ब्रजभाषा प्रयोग।
6. सुन्दर भावाभिव्यक्ति। 7. दोहा, छन्द का प्रयोग।

8. आकर्षक सौन्दर्य चित्रण। 9. आकर्षक बिम्ब–विधान।
10. 'सकुचि समाहि' 'गली–गली' तथा 'चली–भली' में छेकानुप्रास अलंकार।
11. सम्पूर्ण दोहे में स्वभावोक्ति अलंकार।

## (41)

**तंत्री नाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग, अनबूड़ बूड़े, तेरे जे बूड़े सब अंग।।**

## शब्दार्थ

तन्त्री=वीणा। नाद=स्वर। कवित्त रस=काव्य का आनन्द। सरस राग=रसपूर्ण राग। रति–रँग=रति क्रीड़ा से प्राप्त होने वाला सुख। अनबूड़े=जो पूरी तरह से न डूबे हों। बूड़े=डूब गए अर्थात् समाप्त हो गए। तरे जे=जो पार कर गए अर्थात् जिन्होंने लक्ष्यसिद्धि प्राप्त कर ली। बूड़े सब अंग=उनके सारे अंग डूब गए।

## प्रसंग

प्रस्तुत पद में कविवर बिहारी लाल जी ने कविता, संगीत कला तथा रति–कला आदि की महत्ता का वर्णन किया है। कवि की दृष्टि में उसी व्यक्ति का का जीवन सार्थक हो सकता है जो कि इन विभिन्न कलाओं में अपने आपको पूर्णतः निमग्न कर ले।

## व्याख्या

संगीत कला, काव्यकला और कामकला की संस्तुति करते हुए कवि कहता है कि "जिन व्यक्तियों ने वीणा आदि वाद्य यंत्रों के मधुर सुरों, काव्यकला, रसयुक्त गीतों और रतिक्रीड़ाजन्य सुख को पूरी तरह नहीं भोगा। अर्थात् जो विभिन्न रसों में पूर्णतः नहीं डूबे, वे पूर्णतः डूब गए अर्थात् वे नष्ट हो गए अर्थात् उनका सम्पूर्ण जीवन निष्फल हो गया। इसके विपरीत जिन लोगों ने इन विभिन्न प्रकार के सुखों को भरपूर भोगा है अर्थात् जो इन विभिन्न रसों में पूर्णतः डूब गए हैं, वे ही वस्तुतः सफल कहलाए जाने के अधिकारी हैं। ऐसे ही लोगों का जीवन सार्थक कहला सकता है।" कवि का अभिप्राय यह है कि संगीतकला, काव्यकला, गीतकला तथा कामकला ये सभी ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें पूरी तरह डूबकर ही जीवन के सच्चे सुख की प्राप्ति हो सकती है।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे से बिहारी के युग की नैतिक, राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों पर भी प्रकाश पड़ता है। उस युग के लोगों का जीवन भोग तथा विलासमय था और उनकी दृष्टि में जीवन की एकमात्र सार्थकता ललित कलाओं और रतिक्रीड़ा में निहित थी।
2. शृंगार रस का सुन्दर चित्रण।
3. ब्रज भाषा का प्रयोग।
4. तद्भव शब्दों का प्रभावी प्रयोग।
5. दोहा छन्द प्रयोग।
6. आकर्षक गेयता।
7. सूक्ष्म भाव का स्पष्ट चित्रण।
8. प्रसाद–माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
9. 'अनबूड़े' 'बूड़े' में विरोधाभास अलंकार। सम्पूर्ण दोहे में अनुप्रास अलंकार।

## (42)

**सहज सचिक्कन, स्याम–रुचि, सुचि, सुगन्ध, सुकुमार। मनतु न मनु पथु अपथु, लखि बिथुर सुपरे बार।।**

## शब्दार्थ

सहज सचिक्कन=सहज रूप से चिकने। स्याम रुचि=काले रंग वाले। सुचि=स्वच्छ। सुगन्ध=श्रेष्ठ गन्ध से युक्त। सुकुमार=कोमल। गनतु=गिनता है। मनु=मन। पथु अपथु=उचित अनुचित का विवेक। लखि=देखकर। बिथुरे=बिखरे हुए। सुथरे=सुन्दर। बार=बाल, केश।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका की केशराशि के सौन्दर्य का वर्णन किया है।

## व्याख्या

ऐसे सुन्दर, स्निग्ध और सुकुमार बालों वाली नायिका का प्रियतम अपने सखा को सम्बोधित करते हुए कहता है कि "(हे मित्र) जब मैं उस नायिका के सहज रूप से चिकने, श्यामवर्ण काले, स्वच्छ, श्रेष्ठ गन्ध से युक्त कोमल तथा सुन्दर बालों को बिखरे हुए देख लेता हूँ तो फिर मेरा उचित– अनुचित का विवेक नष्ट हो जाता है अर्थात् फिर मैं अपने मन पर अंकुश नहीं लगा पाताहूँ।" कहने का आशय यह है कि नायिका के चिकने, सुकुमार काले बालों में इतना अधिक आकर्षण और कामोद्दीपन भरा हुआ है कि उन्हें एक बार देख लेने के पश्चात् मनुष्य का मन उसके वश में नहीं रहता।

## विशेष

1. भाव साम्य की दृष्टि से कवि मनोहर का निम्न दोहा देखिए–
   **बिथुरे सुथरे चीकने, घने घने घुघवार। रसिकन कौ जंजीर से, बाला तेरे बार।।**
2. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग। 3. नायिका के केशों का सुन्दर चित्रण।
4. आकर्षक गेयता। 5. दोहा, छन्द स्वरूप है।
6. सुन्दर भावाभिव्यंजना। 7. वृत्यानुप्रास अलंकार दोहे के पूर्वार्द्ध में। स्वभावोक्ति अलंकार सम्पूर्ण दोहे में।

# (43)

**केसरि कै सरि क्यौं सकै, चंमकु कितकु अनूपु। गाल–रूप लखि जातु दुरि जातरूप कौ रूपु।।**

## शब्दार्थ

केसरि=केशर, कुंकुम। कै सरि=बराबरी करना, तुलना करना। सकै=सकती है। चम्पकु=एक प्रकार का फूल। कितकु=कितना। अनूपु=अनुपम। गात–रूपु=शरीर का सौन्दर्य। लखि=देखकर। दुरि=छिप जाता है। जातरूप=स्वभावतः सुन्दर अर्थात् स्वर्ण। कौ=का। रूपु=सौन्दर्य।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका के अनुपम शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन किया है। नायिका की एक सखी नायक के समक्ष नायिका के इस सौन्दर्य का वर्णन कर रही है।

## व्याख्या

नायक के समक्ष नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए नायिका की एक सखी कहती है कि "हे नायक, उस नायिका के शरीर का सौन्दर्य अनुपम है, केशर उसकी बराबरी कैसे कर सकता है अर्थात् उसके शरीर का सौन्दर्य केशर से भी कहीं अधिक सुन्दर, आकर्षक और मनमोहक है। यही नहीं चम्पक नामक फूल भी कितना सुन्दर है, किन्तु नायिका के शारीरिक सौन्दर्य के सामने वह भी कुछ नहीं। हे नायक उस नायिका के शारीरिक सौन्दर्य के सामने तो स्वभावतः सुन्दर अर्थात् स्वर्ण भी छिप–छिप जाता है। कहने का आशय यह है कि केशर, चम्पक और स्वर्ण ये सभी पदार्थ रूप–सौन्दर्य के प्रतिमान हैं किन्तु नायिका का शारीरिक सौन्दर्य इन सभी से बढ़कर है अर्थात् वह अनुपम है।"

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने परकीया नायिका का वर्णन किया है। 2. ब्रज भाषा प्रयोग।
3. शृंगार रस परिपाक। 4. आकर्षक अभिव्यक्ति।
5. दोहा छन्द प्रयोग। 6. प्रसाद–माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
7. अलंकार : (क) 'चम्पकु कितनु अनूपु' में काकु वक्रोक्ति अलंकार। (ख) सम्पूर्ण दोहे में प्रतीप अलंकार।
   (ग) सम्पूर्ण दोहे में अनुप्रास अलंकार।

## (44)

**मकराकृति गोपाल कैं सोहत कुंडल कान। धर्‌यौ मनौ हिय–धरू समरू ड्यौढ़ी लसत निसान।।**

### शब्दार्थ

मकराकृति=मछली की आकृति वाले। गोपाल=श्री कृष्ण। सोहत=सुशोभित हैं। धर्‌यौ=विजित कर लिया है। मनौ=मानो। हिय र=हृदय रूपी प्रदेश। समरू=कामदेव। ड्यौढ़ी=द्वार। लसत=सुशोभित हो रहे हैं। निसान=ध्वजा।

### प्रसंग

प्रस्तुत पद में कवि ने श्री कृष्ण के मछली के आकार के सुन्दर कुण्डलों की अद्वितीय शोभा का वर्णन किया है।

### व्याख्या

मछली के आकार के कुंडल धारण किए हुए श्री कृष्ण की अपूर्व शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि श्री कृष्ण ने अपने, कानों में मछली के आकार के जो कुंडल धारण कर रखे हैं उनकी शोभा अनिर्वचनीय है। इनके इन कुंडलों की शोभा को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो उनके हृदय रूपी प्रदेश पर कामदेव का आधिपत्य हो गया है। और उसके प्रतीक स्वरूप ड्यौढ़ी पर विजय पताकाएँ फहर रही हैं।

### विशेष

1. इस दोहे में कवि ने मछली के आकार वाले कुण्डलों की तुलना कामदेव की विजय–ध्वजा से दी है। यह उपमा कवि की बहुज्ञता की परिचायक है क्योंकि पुराणों के अनुसार कामदेव की ध्वजा पर मकर बना हुआ होता है।
2. प्रस्तुत दोहे में कवि ने श्री कृष्ण के कानों में लहराते हुए कुण्डलों को हृदय–प्रदेश की ड्यौढ़ी पर लहराते हुए दर्शाया है जो कि सर्वथा सार्थक है। पुराने समय में राजा तथा सम्पन्न लोग घर की ड्यौढ़ी इस प्रकार बनवाते थे कि आगन्तुक को घर का भीतरी भाग नहीं दीख पड़ता था। भीतर की दो दीवारें ड्यौढ़ी करके बनवाई जाती थी और इसी कारण उसे ड्यौढ़ी कहा जाता है। कान की रचना भी कुछ इसी प्रकार की होती है। अतः कवि ने कान को ड्यौढ़ी माना है।
3. सरल एवं सुगम भाषा प्रयोग।
4. ब्रज भाषा का प्रयोग।
5. सुन्दर भावाभिव्यक्ति।
6. (क) सम्पूर्ण दोहे में वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार।
   (ख) सम्पूर्ण दोहे में पर्यायोक्ति अलंकार।
   (ग) 'हिय घर' में रूपक अलंकार।

## (45)

**खौरि–पनिच भृकुटी–धनुषु बधिकु समरु, तजि कानि। हनतु तरून–मृग तिलक–सर सुरक–भाल, भरि तानि।**

### शब्दार्थ

खौरि=माथे पर लगा हुआ तिरछा तिलक जो बीच में खुरचा होता है। पनिच=धनुष की प्रत्यंचा। बधिकु=शिकारी। समरु=समर अर्थात् कामदेव। तजि=त्यागकर, छोड़कर। कानि=रूकावट, मर्यादा। हनतु=हत्या करता है। तरून–मृग=तरूण युवकों रूपी मृग। तिलक सर=तिलक रूपी बाण। सुरक=नाक पर अंकित तिलक (भाले की आकृति का)। भाल=बाण का फलक। भरि तानि=पूरी तरह तान कर।

### प्रसंग

नायिका की तनी हुई भृकुटियों को देखकर नायक कहता है कि "हे नायिका, तुमने अपने तिरछे तिलक रूपी प्रत्यंचा से युक्त भृकुटी रूपी धनुष को पूरी तरह तान रखा है और लोक–मर्यादा को पूर्णतः विस्मृत करके तिलक रूपी फलक वाले बाण से युवक रूपी हिरणों का शिकार आरम्भ कर दिया है।" कहने का आशय यह है कि नायिका के माथे पर लगा हुआ आड़ा तिलक उसकी भृकुटियों रूपी धनुष की प्रत्यंचा है जिसे पूरी तरह तानकर वह युवकों के मन को आकर्षित कर रही है।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने 'तजि कानि' का प्रयोग किया है जिसका अभिप्राय लोक–लज्जा को त्याग देना है। इस प्रयोग से ऐसा ध्वनित होता है कि प्रस्तुत दोहे में वर्णित नायिका कुलीन परिवार की नहीं है।
2. ब्रजभाषा का प्रयोग।
3. दोहा, छन्दों का प्रयोग।
4. सुन्दर लयात्मकता।
5. सांगरूपक अलंकार सम्पूर्ण दोहे में।
6. 'सरसुरक' तथा 'भाल भरि' में छेकानुप्रास अलंकार।
7. अभेद रूपक अलंकार का प्रयोग।

# (46)

**ज्यौं–ज्यौं जोबन जेठ रटि–छपा छीन परति नित जाति। त्यौं–त्यौं छिन छिन कटि–छपा छीन परति नित जाति।**

## शब्दार्थ

जोबन जेठ=यौवन रूपी जेठ का महीना। दिन कुच=स्तन रूपी दिन। मिति=लम्बाई। छिन–छिन=क्षण–क्षण। कटि–छपा=कटि रूपी रात्रि। छीन परति=क्षीण होती रहती है।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका के उत्तंग उरोजों और कटि की कृशता का वर्णन किया है। नायिका का प्रियतम अर्थात् नायक अपने किसी गहरे सखा से नायिका के उरोजों और क्षीण कटि की प्रशंसा कर रहा है।

## व्याख्या

नायिका के उरोजों और कटि की कृशता का वर्णन करते हुए नायक अपने एक सखा से कहता है "हे मित्र, जैसे–जैसे उस नायिका के यौवन–रूपी जेठ मास में कुच रूपी दिवस की लम्बाई बढ़ती रहती है वैसे–वैसे प्रतिदिन कटि रूपी रात्रि क्षण–क्षण क्षीण अर्थात् छोटी होती जाती है। कहने का आशय यह है कि जैसे–जैसे नायिका के उरोजों का (यौवनागमन के कारण) आकार बढ़ता रहता है, वैसे–वैसे उसकी कटि का आकार छोटा होता रहता है।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने परकीया नायिका का वर्णन किया है।
2. प्रस्तुत दोहे में उरोजों के क्रमिक विकास के साथ–साथ कटि के क्रमशः क्षीण हो जाने का मूल रहस्य यह है कि उरोजों के विकास से कटि का आकार आप ही घटा हुआ प्रतीत होने लगता है। वस्तुतः कटि के आकार में कोई लघुता नहीं आती, वह लघुता तो केवल भासित होती है।
3. भावसाम्य की दृष्टि से निम्न दोहा देखिए :

**कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीनु। कटि को कंचन काटि विधि, कुचन मध्य भर दीनु।**

4. शृंगार रस परिपाक।
5. ब्रज भाषा प्रयोग।
6. आकर्षक सौन्दर्य–चित्रण।
7. सुन्दर अभिव्यक्ति।
8. दोहा, छन्द का प्रयोग।
9. अलंकार :

1. छेकानुप्रास–'अति अधिकाति' में।
2. पुनरूक्तिप्रकाश–'ज्यौं–ज्यौं', त्यौं–त्यौं' तथा 'छिन–छिन' में।
3. सांगरूपाक–'जोबन–जेठ', 'दिन कुच' तथा 'कटि छपा' में।
4. श्लेष–'भान' में।

# (47)

**या अनुरागी चित्त की गति समझै नहिं कोइ। ज्यौं–ज्यौं बूड़ै स्याम रँग, त्यौं–त्यौं उज्जलु होइ।**

## शब्दार्थ

अनुरागी=प्रेमी, लाल रंग से युक्त। बूड़ै=डूबता है। स्याम=श्री कृष्ण, काला रंग। उज्जलु=पवित्र, निष्पाप, सफेद।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि श्री कृष्ण भगवान के प्रति अपनी अनन्य भक्ति के भाव को व्यक्त करता है।

## व्याख्या

श्री कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति का परिचय देते हुए कवि कहता है कि "इस प्रेमी–हृदय की गति को कोई भी नहीं समझ सकता । मेरा यह मन जैसे–जैसे श्री कृष्ण के प्रति आसक्त होता जाता है अर्थात् श्री कृष्ण–प्रेम में जितना डूबता जाता है उतना ही अधिक पावन होता जाता है।" प्रस्तुत दोहे में अनुरागी का आशय लाल रंग से भी होता है। उस दृष्टि से इस दोहे की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। श्री कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति का परिचय देते हुए कवि कहता है कि "मेरे लाल रंग वाले चित्त की स्थिति को कोई नहीं समझ सकता। मेरा यह (लाल रंग वाला) मन जैसे– वैसे श्याम वर्ण अर्थात् काले रंग (जो कि श्री कृष्ण का परिचायक है) में डूबता जाता है, वैसे–वैसे श्वेत होता जाता है।

## विशेष

1. इस दोहे की विलक्षणता यह है कि सामान्यतः काले रंग में डूबने वाली वस्तु का रंग भी काला हो जाता है किन्तु कवि के अनुसार लाल रंग का मन श्याम–वर्ण के श्री कृष्ण के अनुराग में और अधिक उज्जवल, पावन और श्वेत हो जाता है
2. कई टिकाकारों ने 'ज्यौं–ज्यौं बूड़े स्याम रंग, त्यौं–त्यौं उज्जलु होई, का अर्थ यह लगाया है कि भक्त का मन श्री कृष्ण की भक्ति में जितना अधिक लगता जाता है, वह उतना ही अधिक गाढ़े प्रेम में पड़ता जाता है। भक्ति का उन्माद ही ऐसा होता है। भक्त को सच्चा आनन्द तभी मिलता है जब कि वह पूर्णतः अपने आराध्य के साथ तदाकार हो जाता है। स्वभावतः इस प्रकार भक्त के मन का परिष्कार हो जाता है जिसे कवि बिहारी ने 'उज्जलु होइ' कहकर व्यक्त किया है।
3. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
4. भक्ति भाव का सुन्दर चित्रण।
5. सुन्दर लयात्मकता।
6. प्रसाद–माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
7. सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति।
8. दोहा, छन्द प्रयोग।
9. (क) 'ज्यौं–ज्यौं' तथा 'त्यौं–त्यौं' में पुनरूक्तिप्रकाश अलंकार।
   (ख) 'अनुरागी', 'स्याम रंग' तथा 'उज्जलु' में श्लेष अलंकार।
   (ग) दूसरे चरण में विरोधाभास अलंकार।

## (48)

**जपमाला, छापैं, तिलक सरै न एकौ कामु। मन–काँचै नाचै वृथा, साँचे राँचे रामु।।**

## शब्दार्थ

जपमाला=माला के माध्यम से ईश्वर का जप करना। छापैं=माथे पर लगाना। सरै=साधना, पूरा होना। मन–काँचै=कच्चे मन वाला व्यक्ति (जो ईश्वर पर पूर्ण विश्वास न रखता हो)। नाचै=नाचना। यहाँ इसका आशय ईश्वर भक्ति में तल्लीन होकर नाचने से है। साँचै=सच्चे मन वाला (जो ईश्वर पर पूर्ण आस्था रखता है)। राँचै=प्रसन्न होते हैं। रामु=भगवान रामचन्द्र जी।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने भक्ति के बाह्याडम्बरों की भर्त्सना करते हुए सच्चे मन से ईश्वर की आराधना करने पर बल दिया है। कवि की दृढ़ धारणा है कि ईश्वर उसी पर प्रसन्न होता है जो भक्ति के आडम्बरों को त्याग कर सच्चे मन से ईश्वर की स्तुति करता है। प्रस्तुत दोहे में कवि का यही भाव व्यक्त हुआ है।

## व्याख्या

आडम्बरपूर्ण भक्ति की भर्त्सना करते हुए कवि कहता है कि "माला के मनकों से ईश्वर का नाम जपने, माथे पर तिलक लगाने आदि से एक भी काम नहीं सधता। कच्चे मन का भक्त अर्थात् जिस व्यक्ति के मन में ईश्वर के प्रति पूर्ण विश्वास नहीं है

यदि वह ईश्वर की स्तुति करते समय भजन, कीर्तन तथा नर्तन करता है तो वह सब वृथा है। भगवान तो उसी भक्त से प्रसन्न होते हैं जो सच्चे मन वाला होता है अर्थात् जो भगवान में अटूत श्रद्धा और विश्वास रखता है। कहने का अभिप्राय यह है कि ईश्वर की वास्तविक भक्ति सच्चे मन से होती है और माला जपने, तिलक लगाने आदि से ईश्वर प्रसन्न नहीं होता है।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में सन्तों की विचारधारा का सुस्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए सन्त काव्य के प्रवर्तक महात्मा कबीर का निम्न दोहा देखिए–

**माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर। कर का मनका डारि दै, मनका, मनका फेर।।**

2. प्रस्तुत दोहे में कवि ने निष्काम भक्ति का प्रतिपादन किया है।
3. प्रस्तुत दोहा बिहारी–सतसई के उन गिने चुने दोहों में से है जिसमें भक्ति पद्धति का विवेचन किया गया है। बिहारी सतसई का मूल विषय श्रृंगार है किन्तु कुछेक दोहे भक्ति तथा नीतिपरक हैं। प्रस्तुत दोहे की गणना भक्ति परक दोहों में की जाएगी।
4. ब्रजभाषा प्रयोग।
5. तद्भव के साथ तत्सम शब्दों का सुन्दर योग।
6. सुन्दर अभिव्यंजना।
7. प्रसाद माधुर्य गुण शैली।
8. सम्पूर्ण दोहे में अनुप्रास अलंकार।
9. 'राँचै रामु' में छेकानुप्रास अलंकार।
10. परिसंख्या अलंकार का भी प्रयोग है।

## (49)

**जौ वाकै तन की दसा देख्यौ चाहत आपु। तौ बलि, नैक बिलौकियै चलि अचकाँ, चुपचापु।।**

## शब्दार्थ

जौ=यदि। वाकै=उसके अर्थात् नायिका के। बलि=बलिहारी जाना। नैक=तनिक। बिलोकियै=देखिए। चलि=चलकर। अचका=अचानक, अर्थात् पूर्व सूचना दिए बिना।

## प्रसंग

प्रस्तुत पद में कवि ने विरहिणी नायिका की विरह दशा का वर्णन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब नायिका की सखी ने नायक के समक्ष नायिका की विरह दशा का वर्णन किया तो उसे सहज ही विश्वास नहीं आया। ऐसी स्थिति में नायिका की सखी नायक से यही आग्रह करती है कि वह बिना पूर्व सूचना के चलकर नायिका की दशा देखे। उसे स्वयं विश्वास आ जाएगा। प्रस्तुत दोहे में कवि ने यही भाव व्यक्त किया है।

## व्याख्या

विरहिणी नायिका की विरह–दशा का वर्णन करते हुए नायिका की एक सखी नायक से कहती है कि "हे नायक, विरहिणी नायिका की जिस विरह–दशा का वर्णन मैंने किया है, यदि तुम्हें उस पर विश्वास नहीं है और इसलिए यदि तुम स्वयं चलकर उसके विरह–दग्ध शरीर को अपनी आँखों से देखना चाहते हो तो मैं तुम्हारे इस निश्चय पर बलिहारी जाती हूँ। (क्योंकि इस प्रकार कम से कम तुम उसे दर्शन तो दोगे) किन्तु मेरा यह आग्रह है कि तुम बिना पूर्व सूचना दिए ही चुपचाप चलकर उसके शरीर की दशा को देखो। (तब तुम्हें सहज ही विश्वास हो जाएगा कि जो कुछ मैंने कहा था वह सत्य है)।"

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में विरहिणी नायिका की सखी का नायक से चुपचाप चलने और नायिका के विरह दग्ध शरीर को देखने

का आग्रह करने के स्पष्टतः दो कारण हैं : पहला, तो यह कि यदि नायक पूर्वसूचना न देकर विरहिणी नायिका के तन की दशा देखने जाएगा तो नायक के दर्शन प्राप्त करके वह (नायिका) सहज ही प्रफुल्लित हो जाएगी और उसके विरह–तप्त शरीर में हर्ष की लहर दौड़ जाएगी। दूसरा कारण यह है कि नायिका की सखी अपने इस आग्रह से यह भी सिद्ध करती है कि नायिका के मन में नायक के प्रति अगाध प्रेम है तभी तो नायक के विरह मे उसका शरीर इतना कृशकाय हो गया है।

2. वियोग रस का सुन्दर चित्रण।
3. ब्रज भाषा प्रयोग।
4. सुन्दर भावाभिव्यक्ति।
5. सूक्ष्म भाव का स्पष्ट–चित्रण।
6. आकर्षक गेयता।
7. सुन्दर बिम्ब–विधान।
8. दोहा–छन्द का अनुप्रयोग।
9. सम्पूर्ण दोहे में अत्युक्ति अलंकार।
10. सम्पूर्ण दोहे में सम्भावना अलंकार।

## (50)

**घरू घरू डोलत दीन है, जनु–जनु जाचतु जाइ। दियैं लोभ चसमा चखनु लघु पुनि बड़ौ लखाई।।**

## शब्दार्थ

घरू–घरू=घर घर। ह्वै=होकर। जनु जनु=प्रत्येक व्यक्ति से। जाचतु=याचना करता है। जाइ=जाकर। लोभ चसमा=लोभ रूपी ऐनक। चखानु=आँखों पर। लघु=छोटा आदमी। लखाइ=दिखाई देता है।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने मनुष्य की लोभ वृत्ति की निन्दा की है। प्रस्तुत दोहे में कवि ने लोभी व्यक्ति की निन्दनीय लाभवृत्ति का वर्णन किया है।

## व्याख्या

मनुष्य की लोभवृत्ति की निन्दा करते हुए कवि कहता है कि "लोभी व्यक्ति घर–घर गरीब, निर्धन बनकर जाता है और प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष याचना का हाथ फैलाता है। जिस समय वह लोगों के सामने याचना का हाथ फैलाता है, उस समय उसके आँखों पर लोभ का चश्मा चढ़ा हुआ होता है और ऐसी स्थिति में उसे छोटा व्यक्ति भी बहुत बड़ा दिखाई देता है। कहने का आशय यह है कि लोभवृत्ति के कारण मनुष्य को साधनहीन लोग भी बहुत सम्पन्न दिखाई देते हैं।

## विशेष

1. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
2. आकर्षक गेयता।
3. सुन्दर भावाभिव्यक्ति।
4. तद्भव शब्दों का प्रभावी प्रयोग।
5. मुक्तक शैली।
6. ध्वन्यात्मकता।
7. दोहा, छन्द प्रयोग।

## अलंकार

(क) सम्पूर्ण दोहे में काव्यलिंग अलंकार।
(ख) 'जनु जनु जाचतु जाइ' में वृत्यानुप्रास अलकार
(ग) 'चसमा चखनु' में छेकानुप्रास अलंकार।
(घ) 'घरू घरू' तथा 'जनु जनु' में पुनरूक्तिप्रकाश अलकार
(ङ) 'लोभ चसमा' में रूपक अलंकार।
(च) 'लघु पुनि बड़ौ लखाइ' में विरोधाभास अलकार।

## (51)

**कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल। कहुँ मुरली, कहुँ पीत पटु, कहूँ मुकुट बनमाल।।**

## शब्दार्थ

कहा=कैसे। लडैते=लाडले। दृग=नेत्र। परे=पड़े हुए हैं। लाल=नायक। बेहाल=बेचैन। पीत पटु=पीताम्बर।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका के नेत्रों के कटाक्षों की प्रहार–क्षमता का वर्णन किया है। नायिका के कटाक्ष नायक को बुरी तरह आहत कर देते हैं। और उसे अपनी देह की भी सुध–बुध नहीं रहती।

## व्याख्या

नायिका की कटाक्षों की प्रभाव–क्षमता का वर्णन करते हुए उसकी एक सखी उसी से कहती है कि "हे नायिका तूने अपने इन नेत्रों को कैसा लाड़ला बना रखा है कि इनके कटाक्षों के प्रहार से नायक बेहाल हुए पड़े हैं। उन्हें अपनी देह की सुध–बुध भी नहीं रही और उनकी मुरली कहीं, उनका पीताम्बर कहीं, तथा उनकी वनमाला कहीं पड़ी हुई है अर्थात् उन्हें इन वस्तुओं का कोई ध्यान नहीं रह गया है।

## विशेष

1. भावसाम्य की दृष्टि से निम्न पंक्तियाँ देखिए–

**कहूँ वनमाल कहूँ गुंजन की माल कहूँ, संग सखा ग्वाल ऐसे हाल भूलि गए हैं।**
**कहूँ मोर चन्द्रिका कहूँ लकुट पीतपट मुरली मुकुट कहूँ न्योर डार दिए हैं**
**कुंडल अडोल कहूँ सुन्दर न बोले बोल लोचन अलोल मानो कहूँ हर लये हैं।**
**घूघट की ओट है के चितयौ की चोट करी लालन तौ लोट–पोट तबही वे भये हैं।**

2. प्रस्तुत दोहे में परकीया नायिका का वर्णन किया गया है।
3. प्रस्तुत दोहे पर 'राधा वल्लभ सम्प्रदाय' का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। राधावल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार पति और पत्नी को क्रमशः भक्त और ईश्वर रूप माना जाता है।
4. ब्रज भाषा प्रयोग।
5. सुन्दर गेयता।
6. सूक्ष्म भावों का सुन्दर चित्रण।
7. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
8. सुन्दर बिम्ब–विधान।
9. (क) सम्पूर्ण दोहे में व्याजस्तुति अलंकार।
   (ख) 'पीत पटु' में छेकानुप्रास अलंकार।

## (52)

**राधा हरि, हरि राधिका बनि आए संकेत। दंपति रति–बिपरीत–सुखु, सहज सुरतहुँ लेत।।**

## शब्दार्थ

राधा हरि=राधा ने हरि के वस्त्र धारण कर लिये हैं। हरि राधिका=हरि ने राधा के वस्त्र धारण कर रखे हैं। संकेत=संकेत स्थल। यहाँ इसका आशय मिलन स्थल से है। दम्पति=राधा–कृष्ण की जोड़ी। रति विपरीत सुखु=विपरीत रति का सुख। सुरतहुँ=रतिक्रिड़ा से।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने राधा–कृष्ण के माध्यम से नायक–नायिका द्वारा विपरीत रति से उठाए जाने वाले सुख का वर्णन किया है। नायक और नायिका ने परस्पर वस्त्र बदल लिए हैं अर्थात् नायक ने नायिका के वस्त्र धारण कर लिए हैं और नायिका

ने नायक के। इस प्रकार वेष परिवर्तित हो जाने के कारण इन दोनों ने सहज रूप में जो रतिक्रीड़ा का आनन्द उठाया, वस्तुत विपरीत रति का ही आनन्द था। प्रस्तुत दोहे में नायिका की एक सखी दूसरी सखी से इसी प्रसंग का वर्णन कर रही है।

## व्याख्या

नायिका की एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि "हे सखी, राधा जी ने तो हरि अर्थात श्री कृष्ण का वेश धारण कर लिया और श्री कृष्ण ने राधा का वेष बना लिया और इस प्रकार ये दोनों अर्थात् राधाकृष्ण मिलन स्थल पर आ गए। इस प्रकार वेष परिवर्तन करके राधा कृष्ण दोनों सहज रूप में अर्थात् स्वाभाविक रीति से भी विपरीत रति का सुख भोग रहे हैं।

## विशेष

1. सहवास में नारी का पुरूष के समान आचरण करना 'विपरीत रति' कहलाता है। बिहारी सहित रीतिकाल के अनेकानेक कवियों ने विपरीत–रति का वर्णन अपने काव्यों में किया है।
2. यहाँ सहज 'रति' को ही 'विपरीत' इसलिये कहा गया है कि कृष्ण राधा के वेश में हैं और राधा कृष्ण के वेश में।
3. ब्रज भाषा प्रयोग।
4. प्रेम का सुन्दर चित्रण।
5. सुन्दर लयात्मकता।
6. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
7. सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति।
8. दोहा, छन्द प्रयोग।
9. बोधगम्य शब्दावली।
10. अलंकार :

(क) 'सुख सहज सुरतहूँ' में वृत्यानुप्रास अलंकार। (ख) दूसरे चरण में विभावना अलंकार।

## (53)

**आवत जात न जानियतु, तेजहिं तजि सियरानु। घरहँ जँवाई लौं घट्यौ खरौ पूस–दिन–मानु।।**

## शब्दार्थ

आवत जात=आना जाना। न जानियतु=पता नहीं लगता। तेजहिं तजि=ग्रीष्म के ताप को त्याग कर। सियरानु=शीतल पड़ गया। घरहँ जँवाई=घर जमाई। खरौ=अधिक। पूस दिन मानु=पूस महीने के दिन की दीर्घता।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने पूस के निरन्तर घटते हुए दिनों का वर्णन किया है। पूस के माह में दिन छोटे हो जाते हैं– कवि ने प्रस्तुत दोहे में इस तथ्य को कलात्मक ढंग से व्यक्त किया है।

## व्याख्या

पूस महीने के दिनों के निरन्तर घटते हुए मान का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि "अब पूस महीने के दिन का मान अर्थात् दीर्घता इतनी घट गई है कि उसका आना और जाना पता ही नहीं लगता अर्थात् दिन इतने छोटे हो गये हैं कि यह भी पता नहीं लगता कि कब निकला और कब अस्त हुआ। पूस के दिन की स्थिति घर जमाई की तरह है। जिसका आना–जाना पता ही नहीं लगता अर्थात उसकी उपेक्षा की जाती है। इसी प्रकार पूस महीने के दिन ग्रीष्म का ताप छोड़कर शीतल हो गए हैं। ठीक यही स्थिति घर जमाई की भी होती है। घर जमाई बनने के पश्चात् उसके स्वभाव में उष्णता नहीं रहती, शीतलता ही रह पाती है।

## विशेष

1. घर जमाई का मान हमेशा घट जाता है। यह लोक व्यवहार से सिद्ध है।
2. पौस मास में दिन छोटा हो जाता है, यह भी प्रकृति सिद्ध है।
3. ब्रज भाषा प्रयोग।
4. आकर्षक गेयता।
5. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
6. सुन्दर भावाभिव्यक्ति।

7. सुन्दर बिम्ब–विधान। 8. सरल भाषा का आकर्षक रूप।
9. दोहा छन्द प्रयोग। 10. अलंकार :
तेजहिं तजि' में छेकानुप्रास अलंकार। सम्पूर्ण दोहे में श्लेषपरिपुष्ट उपमा अलंकार।

## (54)

**जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ स्यामु सुभग–सिरमौरू। बिन हूँ उन छिनु गहि रहतु दृगनु अजौं वह ठौरू।।**

## शब्दार्थ

ठाढ़ौ=खड़े हुए। लख्यौ=देखा। स्यामु=श्री कृष्ण को। सुभग–सिरमौरू=भाग्यवानों के शिरोमणि। बिन हूँ उन=उनके अर्थात् श्री कृष्ण के बिना भी। अजौं=अब भी। ठौरू=स्थान।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहा श्री कृष्ण की जीवन–कथा से सम्बन्धित है। श्री कृष्ण मथुरा चले गए हैं और उनके वियोग में ब्रज की गोपियाँ परस्पर बातचीत कर रही हैं। ब्रज की गोपिकाओं को ब्रज–प्रदेश के वे सभी स्थल आज भी मनमोहक लगते हैं जहाँ उनके प्रिय श्री कृष्ण खड़े हुआ करते थे। अब श्री कृष्ण की अनुपस्थिति में भी उन स्थलों का आकर्षण बराबर बना हुआ है।

## व्याख्या

श्री कृष्ण के मथुरा चले जाने के पश्चात् ब्रज की गोपियाँ आपस में बातचीत कर रही हैं कि "हमनें भाग्यवानों के शिरोमणि श्री कृष्ण को जहाँ जहाँ खड़े हुए देखा था, वे स्थल उनकी अनुपस्थिति में अर्थात् उनके मथुरा चले जाने के पश्चात् भी हमारी आँखों में क्षणभर के लिए जकड़ लेते हैं अर्थात् उन स्थलों को देखते ही श्री कृष्ण की स्मृति कोंध जाती है।" कहने का अभिप्राय यह है कि संयोग के मधुर क्षण वियोगावस्था में भी अपना आकर्षण बनाए रखते हैं।

## विशेष

1. भावसाम्य की दृष्टि से विक्रम सतसई की निम्न पंक्तियाँ देखिए–
**जहाँ जहाँ नागरि नवल, गई निकुंज मझाइ। तहाँ तहाँ लखियत अजौं, रही वही छबि छाइ।**
2. प्रिय की अनुपस्थिति में प्रिय के साथ बिताए मधुर क्षण कभी भी नहीं भुलाए जा सकते। विरहिणी नायिका इन्हीं मधुर स्मृतियों के सहारे अपना जीवन काट देती है। श्री कृष्ण के मथुरागमन के पश्चात् ब्रज की गोपियों की मनःस्थिति भी कुछ ऐसी ही है। कवि ने प्रस्तुत भाव को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है।
3. ब्रजभाषा प्रयोग। 4. वियोग रस का सुन्दर चित्रण।
5. भाषा का सरल एवं आकर्षक रूप। 6. सुन्दर गेयता।
7. आकर्षक ध्वन्यात्मकता। 8. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
9. दोहा, छन्द प्रयोग। 10. अलंकार :
(क) सम्पूर्ण दौहे में स्मरण अलंकार। (ख) दोहे के दूसरे चरण में विभावना अलंकार।
(ग) 'स्यामु सुभग–सिर' में वृत्यानुप्रास अलंकार। (घ) 'जहाँ जहाँ में पुनरूक्तिप्रकाश अलंकार।

## (55)

**मरकत–भाजन–सलिल–गत इन्दुकला कैं बेख। झीनं झगा मैं झलमलै स्यामगत नखरेख।।**

## शब्दार्थ

मरकत=नीलमणि। भाजन=पात्र। सलिल=जल। इन्दुकला=चन्द्रकला अर्थात् चाँदनी। झीन=झीना अर्थात् बारीक। झगा=अंगरखा की तरह की एक पोशाक (जिसे पुरुष पहना करते हैं)। नखरेख=नखक्षत। (रतिक्रीड़ा के समय नायिका के नाखूनों के चिह्न)।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने एक ऐसे नायक का वर्णन किया है जिसके शरीर पर स्त्रीगमन के कारण नख–क्षत स्पष्टत दीख रहे हैं। नायिका नायक के शरीर पर अंकित इन नख–क्षतों का वर्णन कर रही है।

## व्याख्या

परकीया के साथ सहवास करके लौटे नायक को सम्बोधित करते हुए नायिका कहती है कि "हे नायक, तुमने अपने साँवले शरीर पर बारीक कपड़े का जो अंगरखा पहना हुआ है, उसमें से (परकीया के साथ सहवास के कारण) नख–क्षत इसी प्रकार दीख रहे हैं मानो नीलमणि के पात्र में पड़े हुए जल में चन्द्रकला का प्रतिबिम्ब पड़ रहा हो।"

## विशेष

1. परम्परा के अनुसार किसी पात्र में जल रखकर उसमें चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब देखना बहुत अशुभ माना जाता है। कवि ने प्रस्तुत दोहे में संभवतः इसी परम्परा की ओर संकेत किया है। नायक के साँवले शरीर पर अंकित परकीया के नख–क्षत स्वभावतः नायिका के लिए अशुभ एवं कष्टदायक ही होंगे।
2. प्रस्तुत दोहे में कवि ने खंडिता नायिका के मनोभावों का वर्णन किया है।
3. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
4. उत्तम शब्द–चयन।
5. भावात्मक गहराई।
6. सुन्दर लयात्मकता।
7. मुक्तक शैली।
8. ध्वन्यात्मकता।
9. दोहा, छन्द प्रयोग।
10. (क) 'झीन–झगा' में छेकानुप्रास अलंकार।
    (ख) दूसरे चरण में गम्योत्प्रेक्षा अलंकार।
    (ग) रूपक अलंकार का भी प्रयोग हुआ है।

# (56)

**सोनजुही सी जगमगति अँग अँग जोबन–जोति। सुरँग कसूँमी कंचुकी दुरँग देह–दुति होति॥**

## शब्दार्थ

सोनजुही=पीले रंग की जुही। जगमगति=प्रकाशित होती है। जोबन–जोति=यौवन की आभा। सुरंग=सुन्दर रंग। कसूँमी=कुसुमी फूल के रंग से युक्त। दुरंग=दो रंग। यहाँ इसका आशय पीले और लाल रंग से है।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका के रूप सौन्दर्य का वर्णन किया है। नायिका की एक सखी नायक से कह रही है

## व्याख्या

नायक को सम्बोधित करते हुए एक सखी कहती है कि "हे नायक, उस नायिका के यौवन की आभा पीले रंग की जुही की तरह प्रकाशित हो रही है अर्थात् उस नायिका के अंग–प्रत्यंग सोनजुही की तरह चमक रहे हैं। साथ ही उस नायिका ने कुसुमी रंग की कंचुकी पहन रखी है और इस कारण एक तो कंचुकी का कुसुभी अर्थात् लाल रंग और दूसरे नायिका का सोनजुही सा रंग–इन दोनों रंगों की मिली–जुली आभा के कारण उसके शरीर की आभा दुरंगी हो रही है।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में परकीया नायिका का वर्णन किया गया है।
2. कवि की वर्ण (रंग) योजना देखने लायक है।
3. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
4. सुन्दर भावाभिव्यक्ति।

5. ध्वन्यात्मकता।
6. सुन्दर गेयता।
7. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
8. दोहा, छन्द प्रयोग।
9. अलंकार–
   (क) दोहे के पहले चरण में पूर्णोपमा अलंकार।
   (ख) 'कसूंभी कंचुकी' तथा 'जोबन जोति' में छेकानुप्रास अलंकार।
   (ग) 'दुरग देह दुति' में वृत्यानुप्रास अलंकार।
   (घ) 'अंग–अंग' में पुनरूक्तिप्रकाश अलंकार।

## (57)

**बड़ै न हूजै गुननु बिनु बिरद–बड़ाई पाई। कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गद्यौ न जाई।।**

## शब्दार्थ

हूजै = हो सकते हैं। बिरद = यश, कीर्ति। कनकु = सोना, धतूरा। गहनौ = गहना, आभूषण।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वही मनुष्य बड़ा हो सकता है जिसमें महान गुण हों अर्थात् मनुष्य की महानता की एकमात्र कसौटी उसकी गुण सम्पन्नता है।

## व्याख्या

कवि कहता है कि 'गुणों के बिना कोई भी बड़ा नहीं हो सकता अर्थात् बड़ा वही होता है जिसमें महान गुण होते हैं। केवल यश अथवा कीर्ति प्राप्त करके ही कोई बड़ा बन जाता। यदि धतूरे को कनक अर्थात् सोने का नाम दे भी दिया जाए, तो भी उससे अर्थात् धतूरे से आभूषण तो नहीं गढ़े जा सकते इसका स्पष्ट कारण यही है कि भले ही धतूरे को कनक का नाम दे दें, तो भी उसमें कनक अर्थात् सोने के गुण तो नहीं आ पाते। इस प्रकार बड़प्पन की एक मात्र कसौटी गुणवत्ता है।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने अपने व्यावहारिक ज्ञान का भरपूर परिचय दिया है। महानता की एक मात्र कसौटी गुणवत्ता होती है, प्रशंसात्मक नाम नहीं। कवि ने प्रस्तुत दोहे में इसी महान सत्य का उद्घाटन किया है।
2. लोकनीति व लोक व्यवहार का प्रभावशाली वर्णन हुआ है।
3. ब्रजभाषा प्रयोग।
4. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम का सुन्दर योग।
5. सूक्ष्म भाव का स्पष्ट चित्रण।
6. आकर्षक गेयता।
7. सुन्दर बिम्ब–विधान।
8. प्रसाद–माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
9. दोहा छन्द प्रयोग।
10. अलंकार– (क) 'बिरद बड़ाई' तथा 'गहना गढ़यौं' में छेकानुप्रास अलंकार।
    (ख) 'गुननु बिनु– में विनोक्ति अलंकार। (ग) सम्पूर्ण दोहे में अर्थान्तरन्यास अलंकार।

## (58)

**कनकु कनक तै सौगुनी मादकता अधिकाइ। उहिं खाऐं बौराइ, इहिं पाऐं ही बौराइ।।**

## शब्दार्थ

कनकु = सोना। कनक = धतूरा। मादकता = उन्मत्त कर देने की क्षमता। अधिकाइ = बढ़ जाना, अधिक हो जाना। उहिं = उसे (धतूरे को)। इहिं = इसे (सोने को)। बौराइ = पागल होना।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने संपत्ति के मद को धतूरे से होने वाले नशे से कहीं अधिक उन्मत्त बना देने वाला सिद्ध किया है। स्वर्ण और धतूरा दोनों ही मनुष्य को उन्मत्त बना देते हैं किन्तु पैसे का नशा अर्थात् धन–सम्पत्ति का नशा कहीं अधिक गहरा होता है। प्रस्तुत दोहे में कवि की यही स्थापना रही है।

## व्याख्या

कवि कहता है कि "सोने अर्थात् धन–सम्पत्ति में उन्मत्त करने की क्षमता धतूरे से सौगुना अधिक होती है। कहने का आशय यह है कि धन–सम्पत्ति और धतूरा -- दोनों ही मनुष्य को उन्मत्त बना देते हैं। फिर भी सोना अर्थात् धन–सम्पत्ति का नशा धतूरे की तुलना में अधिक होता है, क्योंकि धतूरे को खाकर मनुष्य पागल होता है, किन्तु धन–सम्पत्ति को तो प्राप्त करके ही मनुष्य पागल हो जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि धतूरे का नशा तो उसे खाकर होता है किन्तु धन-सम्पत्ति का नशा तो उसे प्राप्त होते ही हो जाता है (उसे खाने की भी आवश्यकता नहीं होती)।"

## विशेष

1. सम्पत्ति–धन को पाकर मनुष्य को अहंकार नहीं करना चाहिए।
2. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
3. सुन्दर भावाभिव्यक्ति।
4. आकर्षक गेयता।
5. ध्वन्यात्मकता।
6. उत्तम शब्द–चयन।
7. दोहा छन्द प्रयोग।
8. माधुर्य–गुण सम्पन्न शैली।
9. (क) 'कनकु–कनक' में अभंग यमक अलंकार। (ख) सम्पूर्ण दोहे में काव्यलिंग अलंकार।

## (59)

**तजि तीरथ, हरि–राधिका–तन–दुति करि अनुरागु। जिहिं ब्रज–केलि–निकुंज–मग पग पग होत प्रयागु।।**

## शब्दार्थ

तजि = छोड़कर। तन–दुति = शरीर की कान्ति। अनुरागु = प्रेम। जिहिं = जिससे। प्रयागु = तीर्थराज, सगम

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने श्री कृष्ण और श्री राधिका जी के शरीर की कान्ति को ही तीर्थराज प्रयाग की उपमा दी है। कवि के मतानुसार विभिन्न तीर्थ–स्थानों की कोई महत्ता नहीं है। वास्तविक तीर्थ तो श्री कृष्ण और श्री राधिका की युगल मूर्ति है कवि अपने मन को उसी तीर्थ की ओर प्रवृत्त कर रहा है।

## व्याख्या

कवि अपने मन को सम्बोधित करते हुए कहता है कि "हे मन, तीर्थों का आकर्षण छोड़ दे और श्री कृष्ण एव राधिका के शरीर की शोभा के प्रति अनुराग का भाव रख। हे मन, इसी अनुराग के कारण ब्रज प्रदेश के बिहार–कुंजों में पग–पग पर तीर्थराज प्रयाग के दर्शन होते हैं। कहने का आशय यह है कि विभिन्न तीर्थों की यात्रा करने से कोई लाभ नहीं होने का। वास्तविक तीर्थ तो श्री कृष्ण–राधिका की युगलमूर्ति में स्थिति है, अतः मनुष्य को उसी ओर ध्यान लगाना चाहिए।

## विशेष

1. श्री कृष्ण की छवि श्याम है और राधा की छवि गौर। गंगा का जन स्वच्छ, श्वेत है और यमुना का जल श्याम। ब्रज में ये दोनों रंग तो विद्यमान हैं हीं, तुम्हारे अनुराग के मिल जाने से यहाँ सरस्वती का भी प्रवेश हो जाएगा। इस प्रकार गंगा, जमुना और सरस्वती तीनों के कारण ब्रज का पग–पग तीर्थराज प्रयाग बन जाएगा। इसलिए सामान्य तीर्थों में भटकना छोड़कर हे तीर्थ यात्री! श्री कृष्ण–राधा में अनुराग लगा– वही तेरे लिए तीर्थराज प्रयाग है।
2. प्रस्तुत दोहे में कवि के भक्त रूप का परिचय मिलता है।

3. ब्रज भाषा का प्रयोग। 4. भक्ति रस का परिपाक।
5. सुन्दर भावाभिव्यक्ति। 6. ध्वन्यात्मकता।
7. सुन्दर गेयता। 8. लयात्मकता।
9. दोहा, छन्द का प्रयोग। 10. माधुर्य–गुण सम्पन्न शैली।
11. अलंकार– (क) 'तजि तीरथ' में छेकानुप्रास अलंकार। (ख) 'पग–पग' में पुनरूक्तिप्रकाश अलंकार।
(ग) दोहे के दूसरे चरण में तद्‌गुण अलंकार। (घ) दोहे के पहले चरण में व्यतिरेक अलंकार।
(ङ) सम्पूर्ण दोहे में अनुप्रास अलंकार।

## (60)

**खिन खिन में खटकति सु हिय, खरी भीर मैं जात। कहि जु चली, अनहीं चितै, ओठनु ही बिच बात।।**

## शब्दार्थ

खिन–खिन मैं = क्षण–क्षण में। हिय = हृदय में। खरी = अत्याधिक। भीर = भीड़। अनहिं चितै = बिना देखे हुए। बिच = बीच में।

## प्रसंग

नायक भीड़ में खड़ा है, तभी नायिका वहाँ से होकर निकल जाती है। नायिका, नायक की ओर देखती भी नहीं, और ओठों के बीच में ही कुछ कहकर निकल जाती है। जब नायक नायिका की इस क्रिया को देखता है तो वह स्वभावतः दुःखी हो उठता है। क्योंकि नायिका ने जो कुछ कहा, नायक को उसका ज्ञान नहीं हो सका। प्रस्तुत दोहे में नायक अपने इसी भाव को नायिका की सखी से कह रहा है।

## व्याख्या

नायिका की सखी को सम्बोधित करते हुए नायक कहता है कि "हे सखी, जब वह नायिका अत्यधिक भीड़ में से होकर जाती है और मेरी ओर देखे बिना ही ओठों के बीच में कुछ कह कर चली जाती है। तो क्षण–क्षण मेरे हृदय में बहुत खटकती है। कहने का आशय यह है कि इतनी भीड़ में से उसका इस प्रकार ओठों ही ओठों में कुछ कहना (जिसका मुझे पता नहीं चल सका)। और मेरी ओर देखे बिना ही चला जाना मेरे हृदय को बहुत खटकता है।

## विशेष

1. नायिका का ओठों ही ओठों में कहने का कारण यही प्रतीत होता है कि वह इतनी भारी भीड़ में प्रकट रूप से अपनी बात नहीं कह सकती। इतनी भारी भीड़ में नायक को देखे बिना ही निकल जाने का कारण भी यही लोक लाज है।
2. भाव साम्य की दृष्टि से 'विक्रम सतसई' का निम्न दोहा देखिए–
**ललचौंहीं कछु बात कहि, तिरछौंहीं अंखियान। खटकी उर अटकी रहत, वा मुख की मुसकान।।**
3. ब्रज भाषा प्रयोग। 4. सुन्दर भावाभिव्यक्ति।
5. आकर्षक गेयता। 6. ध्वन्यात्मकता।
7. लयात्मकता। 8. माधुर्य–गुण सम्पन्न शैली।
9. दोहा, छन्द प्रयोग। 10. अलंकार–
(क) सम्पूर्ण दोहे में स्मृति अलंकार। (ख) 'बिच बात' में छेकानुप्रास अलंकार। (ग) 'खिन–खिन' में पुनरूक्तिप्रकाश अलंकार।

## (61)

**निसि अँधियारी, नील पटु पहिरि, चली पिय–गेह। कहौ, दुराई क्यौं दुरै दीप–सिखा सी देह।।**

## शब्दार्थ

निसि = रात। नील पटु = नीले रंग की पोशाक। पियगेह = प्रियतम के घर। कहौ = (तुम्हीं) बताओ। दुराई क्यों दुरै = छिपाने से कैसे छिप सकती है।

## प्रसंग

अंधेरी रात में नायिका नीली पोशाक पहन कर प्रियतम से अभिसार के लिये जा रही थी। उसने नीली साडी इसलिए पहन रखी थी कि अँधेरी रात में नीले रंग की साड़ी चमकेगी नहीं। तथापि उसके शरीर का कान्ति ऐसी थी कि वह अँधेरी रात में, नीले परिधानों में भी छिपी नहीं रह सकती थी। नायिका की एक सखी नायक को इसी तथ्य से अवगत करा रही है।

## व्याख्या

नायिका की एक सखी नायिका से कहती है कि "हे नायिका, इस अँधेरी रात में तुम नीले वस्त्र धारण करके प्रियतम के घर जा रही हो। (तुमने स्वाभावतः यह सोचकर नीले रंग के वस्त्र पहने होंगे कि अँधेरी रात में तुम्हें कोई देख नहीं पाएगा)। तथापि हे सखी, तुम्हीं बताओ कि दीपशिखा की तरह चमकने वाली तुम्हारी सुन्दर देह, क्या इस प्रकार (नीली साडी आदि पहनने से) छिपाने से छिप सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि तुम्हारे शरीर की कान्ति अपने आप में इतनी चमकीली है कि वह छिपाने से भी नहीं छिप सकती।"

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने कृष्णाभिसारिका नायिका के मनोभावों का वर्णन किया है।
2. कवि ने रंगों की, सुन्दर योजना की है। अन्धेरे की काली पृष्ठभूमि में नायिका की दीप–शिखा सी देह की प्रस्तुति कवि की सुन्दर कल्पना है।
3. ब्रजभाषा प्रयोग।
4. माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
5. आकर्षक गेयता।
6. ध्वन्यात्मकता।
7. सुन्दर शब्द चयन।
8. दोहा छन्द प्रयोग।
9. सुन्दर भावाभिव्यक्ति।
10. अलंकार–
    (क) 'दीपसिखा सी' में उपमा अलंकार। (ख) दूसरे चरण में अनुप्रास अलंकार।
    (ग) 'पटु पहिरि' में छेकानुप्रास अलंकार। (घ) सम्पूर्ण दोहे में विशेषोक्ति अलंकार।

## (62)

**औंधाई सीसी, सु लखि बिरह–बरनि बिललात। बिच हीं सूखि गुलाबु गौ, छींटौ हुई न गात।।**

## शब्दार्थ

औंधाई = उड़ेल दी। सीसी = शीशी। सुलखि = उसे देखकर। बिरह–बराने = विहर ज्वाला। बिललात = विलाप करते हुए बिलखते हुए। गुलाबु = गुलाबजल। छीटौं = छींटा, बूंद। गात = शरीर।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में विरहिणी नायिका की अत्यन्त मार्मिक दशा का निरूपण किया गया है। उसकी ऐसी कातर दशा से करुणाद्रवित हो एक सखी दूसरी सखी से कहती है–

## व्याख्या

हे सखी, उसे बिरह–ज्वाला में दग्ध होते हुए और विलाप करते हुए देखकर हमने उस पर गुलाब जल की शीशी उड़ेल दी किन्तु आश्चर्य है कि सारा गुलाबजल उसके विरह–ताप से बीच में ही वाष्प बनकर उड़ गया और एक बूँद भी उसके शरीर को स्पर्श न कर सकी।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में विरह् का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है।
2. प्रोषित पतिका नायिका का वर्णन।

3. भावसाम्य की दृष्टि से निम्न दोहा देखिये:

**विरह आँच नहिं सटि सकी, सखी भई बेताब। चनकि गई सीसी गयौ छिकरत छनकि गुलाब।।**

4. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
5. यह वर्णन निश्चय ही अत्युक्तिपूर्ण है, चमत्कार युक्त है, पर हृदय को प्रभावित नहीं कर पाता।
6. ऐसी उक्तियों में कल्पना का चमत्कार होता है, जो यहाँ स्पष्ट है।
7. आकर्षक गेयता।
8. दोहा, छन्द प्रयोग।
9. सुन्दर अभिव्यंजना।
10. तद्भव के साथ तत्सम शब्दों का सुन्दर प्रयोग।
11. अलंकार–

(क) विरह–बरानि' में रूपक अलंकार।

(ख) 'बरनि बिललात' और 'छींटो छुई' में छेकानुप्रास अलंकार।

## (63)

**हौं हीं बौरी बिरह–बस कै बौरौ सबु गाउँ। कहा जानि ए कहत हैं! ससिहिं सीतकर–नाउँ।।**

### शब्दार्थ

बौरी = बावली, पागल सी। ससिहिं = चन्द्रमा को। सीतकर = ठण्ड करने वाले, शान्तिदायक।

### प्रसंग

नायिका पूर्वानुरागिणी है। चन्द्र की किरणें उसे दुःख दे रही हैं, ताप दे रही हैं। वह मन में सोचती है कि लोगों ने चन्द्रमा का नाम शीतकर कैसे रखा है।

### व्याख्या

विरह के सन्ताप वश या तो मैं बावली हो रही हूँ जिससे शीतल किरणों वाला चन्द्रमा भी मुझे ताप–कारी लग रहा है या फिर यह सारा गाँव ही बावला हो गया है जो इस सन्तापकारी चन्द्रमा को शीतल मानते हैं, शीतल कहते हैं। पता नहीं लोगों ने कैसे चन्द्रमा को 'शीतकर' नाम दिया है जब कि वह मुझे जला रहा है।

### विशेष

1. नायिका की बिरह–व्यथा का, उसके सन्ताप का स्वाभाविक वर्णन हुआ है।
2. मिलनावस्था में प्रकृति के जो उपकरण सुखद होते हैं, विरहकाल में वे सब दुःखदायी बन जाते हैं।
3. वियोगावस्था का सुन्दर चित्रण है। 4. ब्रज भाषा प्रयोग।
5. सुन्दर भावाभिव्यक्ति। 6. उत्तम शब्द चयन।
7. ध्वन्यात्मकता। 8. सुन्दर गेयता।
9. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली। 10. दोहा छन्द प्रयोग। 11. यहाँ सन्देह अलंकार है।

## (64)

**गोवत, जागत, सुपन–बस, रस, रिस, चैन, कुचैन। सुरति स्यामघन की, सुरति बिसरै हूँ बिसरै न।।**

### शब्दार्थ

गोवत = सोते। जागत = जागते। सुपन = स्वप्न। रिस = रोष। सुरति = स्मृति। रति = कामसुख। बिसरै = भूलना।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने प्रोषित पतिका नायिका का अपनी सखी से अपनी स्मृति दशा का वर्णन करने का चित्रण किया है

## व्याख्या

नायिका अपनी सखी से कहती है कि सोते, जागते, स्वप्न देखते, रस में (सरसता से कोई काम करते रिस म राष स कुछ करते या कहते), चैन करते, विकल होते (इन सब दशाओं में से किसी में भी) घनश्याम की जो स्मृति है जो भूलन स भी (भुलाने से भी) रत्ती भर नहीं भूलती।

## विशेष

1. वियोग की अवस्था में नायिका के मन में प्रियतम की स्मृति का, उसकी गहराई का मार्मिक वर्णन किया गया है।
2. कवि का शब्द चयन चित्रात्मक एवं प्रभावशाली है।
3. श्याम घन (कृष्ण) की 'सुरति' को मैं भुला नहीं पाती–यह अर्थ भी व्यंजित होता है।
4. ब्रज भाषा प्रयोग।
5. सुन्दर भावाभिव्यक्ति।
6. ध्वन्यात्मकता।
7. आकर्षक गेयता।
8. दोहा, छन्द प्रयोग।
9. माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
10. अलंकार – यमक अलंकार। विशेषोक्ति अलंकार।

## (65)

**संगति सुमति न पावहिं परे कुमति कै धंध। रासौ मेल कपूर मैं, हींग न होइ सुगंध।।**

## शब्दार्थ

संगति = साथ। सुमति = सद्‌बुद्धि। पावहिं = मिले। कुमति = दुर्बुद्धि। कै = के। धंध = जाल। राखौ = रखना। मेलि = मिलाना

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि ने कुमति की भर्त्सना की है। कवि की मान्यता है कि जो व्यक्ति दुर्मति के जाल में फँस होते हैं उन्हें सत्संगति भी सद्‌बुद्धि प्रदान नहीं कर सकती है– इसी भावसत्य को उद्‌घाटित करते हुए कवि कहता है कि

## व्याख्या

कुमति के धंधे में फँसे हुए लोग सत्संगति पाकर भी सद्‌बुद्धि नहीं प्राप्त कर सकते हैं जैसे कि लम्बे समय तक हींग को कपूर में मिलाकर रखा जाये तब भी हींग में से कपूर की सुगंध नहीं आ सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि संगति गुण- ग्रहण करना सिखाये या नहीं परन्तु अवगुणों का प्रभाव अवश्य डालती है।

## विशेष

1. नीतिपरक दोहे में संगदोष का निरूपण किया गया है।
2. संगति का सुन्दर चित्रण किया गया है
3. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
4. सुन्दर शब्द चयन।
5. आकर्षक लयात्मकता।
6. सुन्दर गेयता।
7. माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
8. दोहा, छन्द प्रयोग।
9. अलंकार– (क) सम्पूर्ण दोहे में दृष्टान्त अलंकार। (ख) दोहे के द्वितीय चरण में अतद्‌गुण अलकार।
   (ग) 'संगति सुमति', 'पावहिं पेर' में छेकानुप्रास अलंकार।

## (66)

**तन भूषण, अंजन दृगनु, पगनु महावर रंग। नहिं सोभा कौं साजियतु कहिबैं हीं कौ अंग।।**

### शब्दार्थ

तन भूषण = शरीर को गहनों से। अंजन = काजल। दृगनु = आँखें। पगनु = पग, पैर। साजियतु = सौन्दर्य को बढ़ाना।

### प्रसंग

सखी नायक के प्रति नायिका के सहज, स्वाभाविक सौन्दर्य का वर्णन कर रही है।

### व्याख्या

नायिका स्वभाव से ही अपने प्राकृतिक रूप में ही इतनी सुन्दर है कि उसके तन को आभूषणों से, आँखों को काजल से और पाँवों को महावर के रंग से नहीं सजाया जाता है। ये सब उसके अंगों के सौन्दर्य को बढ़ाने का साधन नहीं होते। नायिका का शरीर पहले से ही कंचन जैसा है फिर भला सोने के आभूषण उसके सौन्दर्य को कैसे बढ़ायेंगे? उसकी आँखें पहले से ही कजरारी हैं, फिर काजल से उसका सौन्दर्य क्या बढ़ेगा। उसके पाँव महावर के बिना ही लाल हैं। अतः ये तीनों चीजें उस सुन्दरी के शरीर का अंग–मात्र तो बन जाती हैं, पर उसके सौन्दर्य में कोई वृद्धि नहीं करतीं।

### विशेष

1. नायिका के सहज सौन्दर्य का उत्कृष्ट वर्णन हुआ है।
2. ब्रज भाषा प्रयोग।
3. सहज भावाभिव्यक्ति।
4. सुन्दर गेयता।
5. ध्वन्यात्मकता।
6. माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
7. सुन्दर बिम्ब–विधान।
8. शृंगार रस वर्णन।
9. दोहा छन्द का प्रयोग।
10. यहाँ मीलित अलंकार का प्रयोग है।

## (67)

**गिरि ते ऊँचे रसिक–मन बूढ़े जहाँ हजारू। वहै सदा पसु–नरनु कौ प्रेम–पयोधि पगारू।।**

### शब्दार्थ

गिरि तैं = पर्वत से। रसिक = काव्यादि के रस के ज्ञाता, अनुभवी तथा भक्त। बूड़े = डूबे। जहाँ = जिसमें। वहै = उसी प्रेम सिन्धु को। पसु नरनु कौं = नर पशुओं अर्थात् अरसिकों के लिए। प्रेम पयोधि = प्रेम रूपी सागर। पगारू = खाई या गड्ढा।

### प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में प्रेम की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है। प्रेम का महत्त्व रसिक जन ही समझ सकते हैं, अरसिक नहीं। इसी भाव सत्य को कवि ने यहाँ उद्घाटित किया है।

### व्याख्या

प्रेम के अनन्त सिन्धु में पर्वत से भी ऊँचे रसिक मन सहस्त्रों बार डूबे हैं किन्तु वही प्रणयसिन्धु साक्षात् नरपशुओं अर्थात् अरसिकों के लिए कए गड्ढे के समान है जिसको वे बिना देखे ही लांघ जाते हैं। कहने का आशय यह है कि प्रेम की सत्ता को केवल सहृदय रसिक ही अनुभव कर सकता है कोई मूर्ख या अरसिक उसे एक खाई या गड्ढे से अधिक महत्त्व नहीं देता। वह प्रेम की गुरू–गम्भीरता को नहीं जान सकता है।

### विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में रसिक और अरसिक के मध्य अन्तर को स्पष्ट करते हुए प्रेम के महत्त्व को निरूपति किया गया है।
2. स्वामी हरिदास के रसिक सम्प्रदाय के प्रेम तत्व का संकेत किया गया है।

3. शास्त्रों में भी अरसिकों को साक्षात् नरपशु बतलाया गया है।
4. भावसाम्य की दृष्टि से निम्न दोहा देखिये

**तंत्री–नाद, कवित्त रस, सरस राग, रति–रंग। अनबूड़े, बूड़े, तेर जे बूड़े सब अंग।।**

5. ब्रज भाषा का सरल प्रयोग।
6. सुन्दर बिम्ब–विधान।
7. तद्भव के साथ–तत्सम शब्दों का सुन्दर योग।
8. आकर्षण गेयता।
9. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली
10. अलंकार –

(क) 'पसु नरनु' तथा 'प्रेम–पयोधि' में रूपक अलंकार। (ख) 'गिरि तै ऊँचे रसिक–मन' में व्यतिरेक अलंकार
(ग) 'प्रेम–पयोधि पगारू' में अनुप्रास अलंकार।

## (68)

**जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार। अब, अलि रही गुलाब मैं अपतु कँटीली डार।।**

## शब्दार्थ

कुसुम–फूल। बहार–बसंत ऋतु। अलि = भौंरा। अपत = पत्र हीन।

## प्रसंग

जिसका यौवन काल बीत गया है ऐसी नायिका या जिसकी सम्पत्ति नष्ट हो गई है, राज्य–वैभव समाप्त हो गया है ऐसे व्यक्तियों के विषय में कवि का कथन है।

## व्याख्या

हे भ्रमर, जिन सुन्दर, सुहावने दिनों में तूने वे सुन्दर फूल देखे थे, उनकी सुगन्धि का पान किया था, वह बसन्त ऋतु तो अब बीत गई है। अब तो गुलाब के पौधे में बिना पत्तों के काँटेदार शाखा–भर ही रह गई है।

## विशेष

1. किसी विगत यौवना अथवा नष्ट सुख व्यक्ति पर अन्योक्ति।
2. 'बहार' यौवन अथवा सुख–सम्पत्ति का प्रतीक।
3. ब्रज भाषा का सरल एवं आकर्षण रूप।
4. आकर्षक भावाभिव्यक्ति।
5. सुन्दर गेयता।
6. ध्वन्यात्मकता।
7. सुन्दर शब्द चयन।
8. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम का सुन्दर प्रयोग।
9. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
10. दोहा छन्द प्रयोग।
11. (क) 'जिन दिन' में अन्त्यानुप्रास अलंकार। (ख) 'बीति बहार' तथा 'अब अलि' में छेकानुप्रास अलंकार।
    (ग) कवि ने अन्योक्ति अलंकार का मार्मिक प्रयोग किया है।

## (69)

**सुनत पथिक–मुँह, माह–निसि चलति लुवैं उहिं गाम। बिनु बूझै, बिनु ही कहैं, जियति बिचारी बाम।।**

## शब्दार्थ

पथिक = राही। माह = माघ का महीना, ठण्ड का मौसम। निसि = रात्रि। लुवैं = लू। उहिं = उस। गाम = गाँव। जियति = जीवित। बाम = स्त्री, नायिका।

## प्रसंग

किसी पथिक ने आकर बताया कि उस गाँव में तो माघ महीने की ठण्डी रातों में भी लू चलती है। इससे प्रदेश में निवास करने वाले नायक को इस बात की प्रसन्नता होती है कि उसकी विरहिणी स्त्री जीवित है।

## व्याख्या

गाँव की ओर से आए हुए नायक ने, पथिक के मुँह से यह सुनकर कि वहाँ (उस गाँव में), माघ मास की शीतल रात्रि में भी लू चलती है, बिना अपनी पत्नी के सम्बन्ध में कुछ पूछे या बिना उस पथिक से कुछ कहे, यह अनुमान कर लिया कि उसकी विरहिणी स्त्री, शोक सन्तप्त अवस्था में रहते हुए भी जीवित तो है।

## विशेष

1. नायक के अनुमान से उसके मन में विरहिणी स्त्री के प्रति मधुर भाव का आभास होता है।
2. विरह सन्ताप से गांव में लूएँ चलना – अत्युक्ति तो है, अस्वाभाविक एवं ऊहात्मक कल्पना भी है।
3. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
4. आकर्षक भावाभिव्यक्ति।
5. सुन्दर गेयता।
6. ध्वन्यात्मकता।
7. तत्सम शब्दों के साथ तद्भव शब्दों का सुन्दर प्रयोग।
8. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
9. दोहा छन्द प्रयोग।
10. सुन्दर बिम्ब विधान।
11. अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग।

# (70)

**सघन कुँज, घन घन तिमिरू अधिक अंधेरी राति। तऊ न दुरिहै, स्याम वह, दीपसिखा–सी जाति।।**

## शब्दार्थ

सघन=घना। घन–तिमिरू=बादलों का अन्धकार। तऊ=तो भी। न दुरिहै=नहीं छिपेगी।

## प्रसंग

नायक दूती से प्रार्थना करता है कि वह इस अंधेरी बादलों में घिरी रात में नायिका को सघन कुंजों में ले आये परन्तु दूती स्पष्ट करती है कि अंधेरी रात होने पर भी वह दीपशिखा की भांति भासित होगी जिससे सारा भेद खुल जाने का भय है।

## व्याख्या

हे नायक, यद्यपि अंधेरी रात है, बादल भी घिरे हुए हैं और अभिसार के लिए पर्याप्त सघन कुंज भी हैं तथापि वह लावण्यमयी सुन्दरी अंधेरे में भी छिप नहीं पायेगी और जाती हुई दीपशिखा की भांति आलोकोज्ज्वल होगी। कहने का आशय यह है कि रात अंधेरी होने के कारण उसकी कांति और अधिक दीप्तिमयी हो उठेगी।

## विशेष

1. वाग्विदग्धा दूती नायिका के दिव्य सौन्दर्य का वर्णन कर नायक के अनुराग भाव को और अधिक उद्दीप्त करना चाहती है।
2. कवि को 'दीपशिखा' उपनाम अधिक प्रिय है। इसका प्रयोग उन्होंने अन्य दोहों में भी किया है। जैसे–
   **रहै वहै लागी दृगनु दीपशिखा–सी देह। निसि अँधियारी नील, पटु पहिरि चली पिय–गेह।**
   **कहौ दुराई क्यौं दुरै, दीपशिखा सी देह।**
3. भाषा में ध्वनन की शक्ति है।
4. ब्रज भाष का प्रयोग।
5. शृंगार रस का सुन्दर चित्रण।
6. सुन्दर बिम्ब–विधान।
7. आकर्षक भावाभिव्यक्ति।
8. गेयता।
9. ध्वन्यात्मकता।
10. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
11. दोहा छन्द प्रयोग।
12. अलंकार–

    (क) 'घन–घन' में यमक अलंकार।(ख) 'दीपशिखा–सी' में उपमा अलंकार। (ग) सम्पूर्ण दोहे में विशेषोक्ति अलंकार।

## (71)

**स्वारथु सुकृतु न, श्रम वृथा, देखु बिहग विचारि। बाज, पराऐं पानि परि, तू पच्छीनु न मारि।।**

## शब्दार्थ

स्वारथु=अपना लाभ। सुकृत=पुण्य का काम। श्रमु=श्रम, परिश्रम। वृथा=व्यर्थ। बिहँग=आकाश में विचरण करने वाला पक्षी। पराऐं पानि परि=पराये हाथों में पड़कर। पच्छीनु=पक्षियों को, अपने पक्ष वालों को। पानि=शोभा, महत्त्व।

## प्रसंग

प्रस्तुत अन्योक्तिपरक दोहे में कवि ने राजा जयसिंह को बाज के माध्यम से यह समझाने की चेष्टा की है कि अपने ही पक्ष के लोगों अर्थात भारतीय राजाओं से युद्ध न करें। कहा जाता है कि राज जयसिंह मुगलो के प्रति वफादारी निभाने के लिए हिन्दू राजाओं से युद्ध करते थे। छत्रपति शिवाजी के भी विरूद्ध युद्ध के लिए गये परन्तु सफल न हो पाये। कविवर बिहारी भी राजा जयसिंह के इस कुकृत्य से अप्रसन्न थे। मुगल शासकों को प्रसन्न करने के लिए अपने ही भरतीय राजाओं से युद्ध करना उन्हें न्याय संगत नहीं लगता था। बाज पक्षी के माध्यम से उन्होंने राजा को समझाने की चेष्टा की।

## व्याख्या

हे, बाज! पराये हाथों में पड़कर अर्थात् परवश होकर तू अपनी जाति के पक्षियों को मत मार। जरा सोच–विचार कर देख हे विहंग! इससे न तो तेरे किसी स्वार्थ की सिद्धि ही होती है, न यह कोई पुण्य कार्य है इससे तुम्हारी कोई प्रशंसा नहीं करेगा। अपितु तुम्हें अपयश का भागी ही बनना पड़ेगा, इस प्रकार यह तुम्हारा सारा श्रम व्यर्थ है। अतः इस कार्य में जब तुम्हारा कोई मनोरथ सिद्ध नहीं होता तब तुम्हारा छोटे–छोटे पक्षियों का वध करना सर्वथा अनुचित है।

दूसरा अर्थ है यह है कि हे राजा! आप दूसरों के लिए अर्थात् मुगल शासकों के राज्य–विस्तार के लिए अपना ही जाति के राजाओं से युद्ध कर रहे हैं, यह कहाँ तक उचित है? फिर इस कार्य से न तो तुम्हारा कोई स्वार्थ ही सिद्ध होता है न ही तुम्हें इसमें पुण्यफल प्राप्त होता है। हे राजा! जरा सोच–विचार कर देखो इस कार्य में तुम्हारी शक्ति और उर्जा व्यर्थ में ही विनष्ट हो रही है। अतः आप हिन्दू राजाओं से युद्ध करना छोड़ दें।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में अन्योक्ति के माध्यम से राजा जयसिंह को मुगलों की प्रसन्नता के लिए भारतीय राजाओं पर आक्रमण करने से रोकने का प्रयास किया गया है। कहा जाता है कि छत्रपति शिवाजी ने भी जयसिंह के इस निन्दनीय कर्म की कठोर शब्दों में भर्त्सना की थी उनके द्वारा लिखित पत्र आज भी उपलब्ध है।
2. चूँकि 'विहंग' का आशय आकाश में उन्मुक्त विचरने वाले पक्षी से है और राजा जयसिंह भी अपनी शूरवीरता के लिए प्रख्यात थे। अतः विहंग शब्द का साभिप्राय प्रयोग हुआ है।
3. ब्रज भाषा का सरल एवं सहज प्रयोग।
4. सुन्दर भावाभिव्यक्ति।
5. प्रबल वाक्पटुता।
6. सुन्दर लयात्मकता।
7. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
8. सुन्दर अभिव्यजंना।
9. तद्भव के साथ तत्सम शब्दों का सुन्दर योग।
10. आकर्षक बिम्ब–विधान।
11. प्रेरक उद्बोधन।
12. अलंकार–

    (क) सम्पूर्ण दोहे में अन्योक्ति अलंकार।(ख) दोहे के प्रथम चरण में परिकरांकुकर अलंकार।(ग) सम्पूर्ण दोह में अनुप्रास अलंकार।

## (72)

**सीस–मुकुट, कट–काछनी, कर–मुरली, उर–माल। इहिं बानक मो मन सदा बसौ, बिहारी लाल।।**

## शब्दार्थ

सीस=सिर। कट=कमर। काछनी=करघनी। उर=कण्ठ। इहिं=ऐसे। बानक=वेश।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में कवि अपने अराध्य श्री वृन्दावन बिहारी को इसी वेश में अपने हृदय में बसने की प्रार्थना करता है।

## व्याख्या

कवि कहता है कि हे आनंदपूर्ण क्रीड़ाएँ करने वाले श्री कृष्ण! मेरे हृदय में तुम सदा ऐसे रूप में बसे रहो जिसमें सिर पर मोर मुकुट, कमर में करघनी, हाथ में बाँसुरी तथा हृदय पर वनमाला सुशोभित हो।

## विशेष

1. कवि को कृष्ण का गोप वेश प्रिय है, अतः इसी रूप में ही कवि कृष्ण को हृदय में बसाये रखना चाहता है।
2. प्रथम पंक्ति के चारों पद समस्त पद हैं जो बानक के विशेषण हैं।
3. भक्ति भाव का सुन्दर चित्रण।
4. सुन्दर बिम्ब–बिधान।
5. दोहा छन्द स्वरूप।
6. ब्रज भाषा प्रयोग।
7. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली है।
8. प्रभावी लयात्मकता।
9. सुन्दर भावाभिव्यंजना।
10. सुन्दर गेयता।
11. यहाँ स्वाभोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

## (73)

**संगति–दोषु लगै सबनु, कहे ति साँचे बैन। कुटिल–बक–भ्रुव–सँग भए कुटिल, बंक–गति।।**

## शब्दार्थ

दोषु=दोष। सबनु=सबको। बैन=वचन। कुटिल=कपटी, छली। बंक=टेढ़ी। भ्रुव=भौंहें। नैन=नेत्र, जिसमें नीति का आचरण न हो। बंक=तिरछी।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में संगति–दोष के विषय में बताया गया है। संगति का सुप्रभाव पड़े न पड़े परन्तु कुप्रभाव अवश्य पड़ता है। कुसंगति को दोष विवेचन करते हुए कवि कहता है।

## व्याख्या

आचार्यों–चिन्तकों द्वारा कहे गये ये वचन सत्य ही हैं कि संगति का दोष सबको लगता है। जैसे नैन–भृकुटी की संगति को ही देखिए कुटिल और वक्राकार वाली भृकुटियों के संग रहने से नेत्रों की गति भी कुटिल और बंकिम हो गई है। दूसरा अर्थ–सखी ने जो कहा था संगति का दोष अवश्य लगता है, वह सत्य ही हुआ है। देखो न किसी कुटिल और टेढ़ी भौंह वाली स्त्री के साहचर्य से मेरे स्वामी (नायक) भी कुटिल गति वाले हो गये हैं। और इनका आचरण नीति विरूद्ध हो गया है।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कुसंगति के प्रभाव की विवेचना हुई है।
2. नेत्रों में सौंमान्यता कुटिलता या वक्रता नहीं होती है, किन्तु वक्राकार भौंहों की संगति से (यौवनावस्था में) इनकी गति में कुटिलता और वक्रता आ जाती है।
3. कतिपय टीकाकारों ने इसको खंडिता नायिका की उक्ति माना है। वह अपनी सखी को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे सखी! तुम्हारे द्वारा कहा गया ये वचन सत्य है कि संगति का दोष सभी को लगता है। देखो, किसी कुटिल और भौंहों वाली स्त्री की संगति से मेरे प्रियतम भी कुटिल गति वाले हो गये हैं और इनमें अब नीति के आचरण नहीं रहे।
4. भावसाम्य की दृष्टि से बिहारी का ही निम्न दोहा देखिए–

7. सुन्दर लयात्मकता।
8. प्रसाद माधुर्य गुण शैली।
9. आकर्षक अभिव्यक्ति।
10. दोहा छन्द प्रयोग।
11. अलंकार–

(क) सम्पूर्ण दोहे में अर्थान्तरन्यास अलंकार (ख) सम्पूर्ण दोहे में उल्लास अलंकार।

## (74)

**इत आवति चलि, जाति उत चली, छसातक हाथ। चढ़ी हिंडोरैं सैं रहे लगी उसासनु साथ।।**

## शब्दार्थ

इत=इधर आवति=आती है। उत=उधर। छसातक=छ सात के अनुमान। =हिंडोरैं=हिंडोले पर। उसासनु=लम्बी साँस

## प्रसंग

विरह में नायिका की अत्यन्त कृशता एवं उसके उच्छ्वासों की प्रबलता का वर्णन एक सखी दूसरी सखी से कर रही है

## व्याख्या

हे सखी! हमारी प्रिय सखी (नायिका) नायक के विरह में इतनी दुर्बल हो गई है और उसकी साँसे इतनी प्रबल है कि उसास के साथ मानो हिंडोरे पर चढ़ी सी रहती है। जब वह जोर से साँस लेती है तो छः सात हाथ कभी इधर से उधर चली जाती है। तो कभी उधर से इधर चली आती है।

## विशेष

1. नायिका की विरहावस्था का यह चमत्कारपूर्ण वर्णन हृदय को नहीं छूता।
2. ऊहात्मक–उक्ति है, जो काव्य की स्वाभाविकता के विपरीत होती है।
3. ब्रज भाषा का प्रयोग है।
4. आकर्षक ध्वन्यात्मकता।
5. सुन्दर बिम्ब–विधान।
6. तत्सम् के साथ तद्भव शब्दों का सुन्दर प्रयोग।
7. दोहा छन्द प्रयोग।
8. आकर्षक गेयता।
9. सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति।
10. उत्तम शब्द चयन।
11. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
12. वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग।

## (75)

**नर की अरू नल–नीर की गति एकै करि जोइ। जेतौ नीची है चलै, तेतौ ऊँचौ होइ।।**

## शब्दार्थ

नलनीर=फुहारे का पानी। जोई=देख। जेतो=जितना। तेतो=उतना।

## प्रसंग

कवि ने इस दोहे में नीति का वचन कहा है

## व्याख्या

मनुष्य और फुहारे के जल की एक जैसी दशा, एक जैसी अवस्था होती है। इसे भली–भाँति देख लो, समझ लो। नल जितना नीचा होकर चलता है, उसका जल उतना ही अधिक ऊँचाई तक पहुँचता है। वैसे ही मनुष्य जितना विनम्र होता है वह उतना ही श्रेष्ठ, उतना ही महान बनता है।

## विशेष

1. ब्रज भाषा का प्रयोग।
2. बोधगम्य शब्दावली।
3. सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति।
4. सुन्दर लयात्मकता।
5. दोहा छन्द प्रयोग।
6. प्रसाद, माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
7. सुन्दर अभिव्यंजना।
8. तद्भव के साथ तत्सम् शब्दों का सुन्दर योग।
9. दीपक अलंकार का प्रयोग है।

## (76)

**कहत सबै, बेंदी दियैं आँकु दसगुनौ होतु। तिय–लिलार बेंदी दियैं अगिनितु बदतु उदोतु।।**

### शब्दार्थ

बेंदी=बिंदी, टीका। आँकु=अंक, गिनती लिखने के लिये सांकेतिक अक्षर। तिय–लिलार=स्त्री के ललाट पर। उदोत=प्रकाश, सौन्दर्य, मूल्य।

### प्रसंग

बिहारी ने नारी–सौन्दर्य के अंकन के लिये गणित का उपयोग करके अपनी अपूर्व क्षमता का प्रदर्शन किया है। अन्यत्र मुख पर छूट पड़ी कुटिल अलक के लिये कवि ने कहा है कि तिरछी बिकारी लगाने से दाम रूपया बन जाता है।

### व्याख्या

प्रस्तुत दोहे में कवि बिहारी कहते हैं कि किसी अंक के साथ (दाहिनी ओर) बिन्दी देने से, बिन्दी लगाने से उस अंक का मूल्य दस गुना बढ़ जाता है, किन्तु स्त्री के, नायिका के ललाट पर बिन्दी लगाने से तो उसका मूल्य उसका सौन्दर्य अगणित गुणा बढ़ जाता है।

### विशेष

1. कवि ने गणित के नियम का उपयोग नारी–सौन्दर्य के संदर्भ में किया है जो उसकी कल्पना शक्ति का सूचक है।
2. भावसाम्य की दृष्टि से निम्न दोहा देखिये–
   **कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतो उदोत। बंक बिहारी देत ज्यौं दाम रूपैया होत।।**
3. ब्रज भाषा का आकर्षक प्रयोग।
4. सुन्दर भावाभिव्यक्ति।
5. आकर्षक लयात्मकता।
6. सुन्दर बिम्ब–विधान।
7. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
8. दोहा छन्द का प्रयोग।
9. तद्भव के साथ तत्सम् शब्दों का प्रयोग।
10. व्यतिरेक अलंकार का प्रयोग।

## (77)

**बढ़त–बढ़त संपति–सलिलु मन सरोज बढ़ि जाइ। घटल–घटत सु न फिरि घटै, बरू समूल कुम्हिलाइ।।**

### शब्दार्थ

सलिल=जल। बरू=चाहे। समूल=जड़ सहित। कुम्हिलाइ=मुरझाना।

### प्रसंग

इस दोहे में कवि ने नीति का वचन एक उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया है।

### व्याख्या

सम्पत्ति (धन–वैभव) रूपी जल के बढ़ने से मन रूपी कमल की नाल बढ़ती जाती है। कहते हैं कि सरोवर में पानी के बढ़ते जाने पर कमल–पुष्प की नाल स्वतः बढ़ती जाती है, इसीलिए कमल पानी में डूबता नहीं किन्तु जब सरोवर में पानी घटने लगता है तब वह नाल छोटी नहीं होती, चाहे जड़ से सूख भले ही जाये। कहने का आशय यह है कि जब व्यक्ति के पास धन आता है तो इच्छाएँ भी साथ–साथ पैदा होती है और धन बढ़ने के साथ इच्छाएँ और महत्त्वाकांक्षाएँ भी बढ़ती जाती है। परन्तु जब धन घटता है तो इच्छाएँ नहीं घटती चाहे व्यक्ति ही समूल रूप से नष्ट क्यों न हो जाये।

### विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में मानव सुलभ सहज दुर्बलता को चित्रित किया गया है।
2. शृंगार हो या भक्ति या फिर नीति सम्बन्धी दोहे हों, बिहारी सभी का चित्रण इतने प्रभावशाली ढंग से करते हैं कि सहृदय पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता।
3. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
4. सुन्दर भावाभिव्यक्ति।
5. आकर्षक लयात्मकता, गेयता।
6. शब्दों का चयन उत्तम।
7. सुन्दर बिम्ब–विधान।

8. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
9. दोहा छन्द प्रयोग।
10. अलंकार—
    (क) 'संपति–सलिलु', 'मन सरोजु' में रूपक अलंकार।
    (ख) 'बढ़त–बढ़त', 'घटत–घटत' में पुनरूक्ति–प्रकाश अलंकार।
    (ग) 'समूल' में श्लेष अलंकार।

## (78)

**कोरि जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहिं बीचु।**
**नल–बल जलु ऊँचैं चढ़ै, अंत नीच कौ नीचु।।**

## शब्दार्थ

कोरि=कोटि, अनेक। जतन=उपाय। करौ=करे। प्रकृति=स्वभाव। बीचु=अन्तर, भेद।

## प्रसंग

कवि ने यहाँ पर मनुष्य जाति के स्वभाव का बड़ा ही सुन्दर ढंग से वर्णन किया है।

## व्याख्या

कवि कहता है कि कोई चाहे कितना भी यत्न क्यों न कर ले, पर मानव स्वभाव में उसकी प्रकृति में अन्तर नहीं आता। इस नल के जोर से जल ऊपर को चढ़ता तो है, परन्तु अन्त में वह फिर नीचे को ही बहने लगता है। नल से बाहर आते ही पानी की गति नीचे की ओर हो जाती है।

## विशेष

1. मनुष्य अपने नीच स्वभाव को नहीं छोड़ता है।
2. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
3. सुन्दर भावाभिव्यक्ति
4. उत्तम शब्द चयन।
5. सुन्दर बिम्ब–विधान।
6. आकर्षक गेयता।
7. तद्भव के साथ तत्सम् शब्दों का सुन्दर प्रयोग।
8. आकर्षक ध्वन्यात्मकता।
9. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।10. दोहा छन्द प्रयोग।
11. अर्थान्तरन्यास अलंकार का प्रयोग।

## (79)

**लिखन बैठि जाकी सबी गहि–गहि गरब गरूर। भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।।**

## शब्दार्थ

सबी (सबीह अरबी भाषा का शब्द है) यथार्थ चित्र, सुन्दरता। गरब–गरूर=गर्व। कूर=नष्ट बुद्धि।

## प्रसंग

अंकुरित–यौवना नायिका की सखी नायक से उसके क्षण–क्षण बढ़ते यौवन की प्रशंसा कर रही है।

## व्याख्या

संसार के बड़े–बड़े चित्रकार, जिन्हें अपनी चित्रकला पर अभिमान है, वे भी पल–पल परिवर्तनशील नायिका के यौवन सौन्दर्य को अपने चित्रों में अंकित नहीं कर पाये। वे भी विमूढ़ होकर रह गये क्योंकि जितनी देर में वे नायिका का चित्र बनाते थे उतनी देर में उसका रूप यौवन बदल कर कुछ का कुछ हो जाता था, फिर भला नायिका के सौन्दर्य का यथार्थ चित्र वे कैसे बना सकते थे। वे चित्रकार मूढ़ बनकर रह जाते थे।

## विशेष

1. नायिका के पल–पल बदलते रूप का यौवनोत्थान का सुन्दर वर्णन किया गया है।
2. ब्रज भाषा का आकर्षक प्रयोग।
3. गम्भीर भावाभिव्यक्ति है।

4. सुन्दर बिम्ब–विधान।
5. आकर्षक गेयता।
6. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
7. दोहा छन्द प्रयोग।
8. सुन्दर भावाभिव्यंजना।
9. सुन्दर शब्द–चयन
10. ध्वन्यात्मकता।
11. अलंकार– (क) वक्रोक्ति अलंकार। (ख) विशेषोक्ति अलंकार।

## (80)

**दृगनु लगत, बेधत हियहिं, बिकल करत अँग आन। ए तेरे सब तैं विषम ईछन–तीछन बान।।**

## शब्दार्थ

दृगनु=आँख। बेधत=लगना। हियहिं=हृदय में। बिकल=व्याकुल। आन=अन्य, दूसरे। ईछन=दृष्टि। तीछन=तीखे। वान=बाण।

## प्रसंग

नायक नायिका के कटाक्षों की काममयी प्रशंसा करते हुए नायिका से कहता है।.

## व्याख्या

तेरे ये नेत्र तीक्ष्ण बाण के समान हैं तथा अन्य सब बाणों से भयंकर हैं वही प्रहार करते हैं जब कि तेरे नेत्र रूपी तीक्ष्ण बाण मेरे नेत्रों को लगते हैं और भेदते हृदय को हैं और यही नहीं हृदय के साथ–साथ अन्य अंगों को भी विकल कर देते हैं, अतः तेरे नेत्र रूपी बाण का प्रहार तीक्ष्ण एवं अद्‌भुत है। जिससे मैं। अत्यन्त व्याकुल हो उठा हूँ।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में कटाक्षों की मारक क्षमता का अत्यन्त कलात्मक निरूपण हुआ है।
2. ब्रजभाषा प्रयोग।
3. सुन्दर भावाभिव्यक्ति।
4. उत्तम शब्द चयन।
5. ध्वन्यात्मकता।
6. आकर्षक गेयता।
7. दोहा छन्द प्रयोग।
8. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
9. तद्‌भव के साथ तत्सम शब्दों का प्रयोग।
10. अलंकार– (क) 'ईछन–तीछन बान' में रूपक अलंकार। (ख) 'दृगनु लगत, बेधत हियहिं, बिकल करत अंगआन में असंगति अलंकार। (ग) सम्पूर्ण दोहे में काव्यलिंग अलंकार।

## (81)

**दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यों न बढ़ै दुख–दंदु। अधिक अंधेरो जग करत मिलि मावस रबि–चंदु।।**

## शब्दार्थ

दुसह=दुसह्य। दुराज=दो राजाओं का राज्य। प्रजानु=प्रजा को। दंदु=द्वन्द्व। मावस=अमावस्या रबि–चंदु=सूर्य और चन्द्र।

## प्रसंग

कवि राजपूत राजाओं के आश्रय में रहता था, जिन पर स्वयं मुगलों का अधिकार था। प्रजा दो–दो राजाओं के राज्य में अनेक प्रकार के दुःख द्वन्द्वों से पीड़ित थी, कवि सामान्य जनता की पीड़ा से भली–भाँति अवगत था, इसलिए दोहरे शासन की मार की भर्त्सना करते हुए कहता है–

## व्याख्या

दो राजाओं के दुसह्य राज्य में प्रजा के दुःख–द्वन्द्व क्यों न बढ़ेंगे अर्थात् एक राज्य में जब दो–दो राजाओं का शासन होगा तब प्रजा को निश्चित रूप से कष्ट तो उठाने ही पड़ेंगे। जिस प्रकार अमावस्या के दिन यदि सूर्य और चन्द्र एक राशि में स्थिति हो जायें तो सूर्यग्रहण होने से दिन अंधकारमय हो जाएगा, जबकि रात्रि तो पहले ही अमावस्या के कारण अँधियारी थी।

## विशेष

1. कवि ने अमावस्या के दिन लगे सूर्य ग्रहण से दो राजाओं के दुसह्य राज्य की तुलना कर कष्टों की कालिमा को अधिक प्रखरता से व्यंजित किया है।
2. इतिहास इस कुख्यात तथ्य का साक्षी है कि इस प्रकार का शासन (दो राजाओं का नवाब तथा कम्पनी शासन) बंग प्रदेश की प्रजा को सहना पड़ा था जिससे प्रजा अत्यन्त दुःखी तथा पीड़ित थी।

3. भावसाम्य की दृष्टि से निम्न दोहा देखिए—
   एक रजाई समै प्रभु द्वैसु, तमोगुन को बहु भाँति बढ़ावत।
   होत महादुख द्वंदु प्रजान को, और सबै सुभकाज थकावत।
4. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
5. गम्भीर भावाभिव्यक्ति।
6. आकर्षक गेयता।
7. ध्वन्यात्मकता।
8. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
9. दोहा छन्द प्रयोग।
10. अलंकार—
    (क) सम्पूर्ण दोहे में दृष्टान्त अलंकार।
    (ख) 'क्यौं न बढ़ैं दुख–द्वंदु' में काकुवक्रोक्ति अलंकार।
    (ग) 'दुसह–दुराज', 'दुख द्वंदु', 'अधिक अंधेरो', 'मिलि मावस' में अनुप्रास अलंकार।

## (82)

**दृगु उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर–चित प्रीति। परति गाँठि दुरजन–हियै, दई नई यह रीति।।**

## शब्दार्थ

दृग उरझत=नेत्र उलझते हैं या मिलते हैं। टूटत कुटुम=कुटुम्ब के सम्बन्ध टूट जाते हैं। गाँठि=गाँठ। हियै=हृदय म। दई=विधाता।

## प्रसंग

नायिका अपनी सखी से प्रेम मार्ग की विचित्रता के विषय में वर्णन कर रही है।

## व्याख्या

हे सखी! प्रेम का भी कैसा विलक्षण विधान है कि उलझते नेत्र हैं और टूटता परिवार है अर्थात् दोनों के प्यार से उनके परिवारों को सामाजिक अपयश का भागी बनना पड़ता है। जिससे दोनों के पारिवारिक सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। जबकि चतुर प्रेमियों के चित्त प्रीत की डोरी से बँध जाते हैं और जो इस प्रेम के निन्दक हैं, उन दुर्जनों के हृदय में ईर्ष्या की गाँठ पड़ जाती है। इस प्रकार विधाता ने प्रेम के रीति–रिवाज, कायदे–कानून सर्वथा भिन्न बनाये हैं जब कि सामान्यतः होता यह है कि यदि रस्सी उलझ जाये तो वह टूट जाती है और यदि जोड़ना चाहे तो उनमें गाँठ पड़ जाती है परन्तु प्रेम में इसके सर्वथा विपरीत है

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहा नायिका का स्वगत कथन भी माना जा सकता है।
2. संसार में जो चीज उलझती है, वही टूटती है, जो टूटती है वही जुड़ती है, जो जुड़ती है उसमें गाँठ पड़ती है परन्तु प्रेम में यह विलक्षण स्थिति है कि उलझते तो हैं नेत्र और टूटता है परिवार। यहाँ अद्भुत और शृंगार दोनों रसों की स्थिति है।
3. नायिका परकीया कोटि की है।
4. ब्रजभाषा का प्रयोग है।
5. सुन्दर अभिव्यजंना।
6. आकर्षक गेयता, लयात्मकता।
7. सुन्दर बिम्ब–विधान।
8. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
9. दोहा छन्द प्रयोग।
10. सम्पूर्ण सोरठे में असंगति अलंकार।

## (83)

**लरिका लैबे कैं मिसनु लंगरू मो ढ़िग आइ। गयौ अचानक आँगुरी छाती छैलु छुवाइ।।**

## शब्दार्थ

लरिका = बच्चा। मिसनु = बहाने से। लंगरू = ठीस। ढिग = समीप। आँगुरी = उँगली। छैलु = चतुर।

## प्रसंग

किसी चतुर नायक की चतुराई के संबंध में परकीया नायिका अपनी अन्तरंग सखी से कह रही है।

## व्याख्या

मेरी गोद से लड़का लेने के बहाने से वह ढीठ मेरे पास आकर अचानक मेरी छाती में बड़ी चतुराई से अँगुली छुआ गया। यहाँ नायिका परकीया है, पर पत्नी के उरोजों को स्पर्श करने के लिए चतुर नायक ने कैसा उपाय खोजा है।

## विशेष

1. नायक की इस चेष्टा से नायिका भी प्रसन्न प्रतीत होती है, तभी तो वह अन्तरंग सखी को यह वृत्तान्त सुना रही है।
2. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
3. सहज भावाभिव्यक्ति।
4. सुन्दर बिम्ब–विधान।
5. आकर्षक गेयता।
6. ध्वन्यात्मकता।
7. उत्तम शब्द चयन।
8. प्रसाद माधूर्य गुण सम्पन्न शैली।
9. दोहा छन्द प्रयोग।
10. अलंकार– (क) छाती, छैल, छुवाई में अनुप्रास अलंकार(ख) पर्यायोक्ति अलंकार।

# (84)

**रनित भृंग–घंटावली, झरति दान मधु–नीरू। मंद–मंद आवतु चल्यौं कुंजरू कुंज समीरू।।**

## शब्दार्थ

रनित = बजती हुई। भृंग–घंटावली = भौंरों रूपी घंटिकाएँ। दान = गज का मद। मधु–नीरू = मकरन्द रूपी जल। कुंजरू = हाथी। समीरू = पवन।

## प्रसंग

प्रस्तुत दोहे में वासन्ती पवन का इतना मनमोहक चित्र उपस्थित किया है कि अपनी सम्पूर्ण छवि–छटा के साथ बरबस ही नेत्रों के सम्मुख आ खड़ा होता है।

## व्याख्या

बसन्त समीर का वर्णन हाथी के रूप में करते हुए कवि कहता है कि मन्द–मन्द मंथर गति से चलती हुई बसन्ती समीर ऐसी प्रतीत हो रही है जैसे कि कोई उन्मत हाथी आ रहा हो। पवन के साथ भ्रमरों की मधुर गुंजार ऐसी लग रही है मानो हाथी की घंटिकाएँ बज रही हों और उसकी चाल से मद ऐसे झर रहा है जैसे पुष्पों से मकरन्द। कहने का आशय यह है कि जिस प्रकार हाथी धीमी–धीमी गति से झूमता–मदमाता हुआ चलता है, उसी प्रकार समीर भी भ्रमर की गुँजार तथा पुष्पों की सुगन्ध से युक्त मन्द–मन्द गति सें बह रही है।

## विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में प्रकृति का आलम्बनगत चित्रण हुआ है।
2. नाद एवं गत्यात्मक बिम्ब का सफल बिम्बांकन हुआा है।
3. ब्रजभाषा प्रयोग।
4. सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति।
5. आकर्षक गेयता।
6. सुन्दर बिम्ब–विधान।
7. तद्भव के साथ तत्सम् शब्दों का प्रयोग।
8. दोहा छन्द प्रयोग।
9. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
10. अलंकार –

(क) सम्पूर्ण दोहे में सांगरूपक अलंकार (ख) 'मंद–मंद' में पुनरूक्तिप्रकाश अलंकार।(ग) 'कुंजरू कुंज' में यमक अलंकार।

# (85)

**नासा मोरि, नचाइ जे करी कका सी सौंह। काँटे सी कसकैं ति हिय गढ़ी कँटीली भौंह।।**

## शब्दार्थ

नासा = नासिका, नाक। कसकैं = चुभती है। मोरि = सिकोड़ कर। सौंह = शपथ। कटीली = काटने वाली।

## प्रसंग

नायिका की कंटीली भौंहों के विषय में नायक सखी से कह रहा है।

## व्याख्या

जिस समय नायिका ने नाक को सिकोड़ कर आँखें मटका कर और भौंहें टेढ़ी करके कका (चाचा) की शपथ ली थी, उस समय की उसकी कंटीली भौंहों का बाँकी चितवन अब भी मेरे हृदय में काँटे की तरह गड़ी हुई है।

## विशेष

1. स्त्रियाँ स्वभाव से ही अपनी बात की सच्चाई को प्रकट करने के लिए 'कका की सौंह', 'बाबा की सौंह' इत्यादि बोला करती है। कवि ने यहाँ नायिका से भी यही सौंह कहलवाई है।
2. नायिका की चेष्टाओं का सुन्दर वर्णन हुआ है।
3. नायक के हृदय पर नायिका के कटाक्षपात का प्रभाव यहाँ वर्णित है।
4. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
5. सूक्ष्म भाव का स्पष्ट चित्रण।
6. सुन्दर गेयता।
7. सुन्दर बिम्ब–विधान।
8. सूक्ष्य भावाभिव्यक्ति।
9. आकर्षक ध्वन्यात्मकता।
10. पूर्णोपमा अलंकार का प्रयोग।

## (86)

**क्यौं बसियै, क्यों निवाहियौ, नीति नेह–पुर नाँहि। लगा लगी लोइन करैं, नाहक मन बँधि जाहि।।**

## शब्दार्थ

बसियै = बसेंगे, रहेंगे। निवाहियौ = निर्वाह होगा, काम चलेगा। नेहपुर = प्रेम का गाँव। नाँहि = नहीं। लगा लगी = धोखा देखा चोरी। लोइन = लोचन, आँख। नाहक = अनुचित, व्यर्थ।

## प्रसंग

प्रस्तुत भावगम्भीर दोहा रीतिकालीन चर्चित कवि बिहारी की रचना से लिया गया है। इस दोहे में नायक अपने अभिन्न मित्र से अथवा नायिका आली अन्तरंग सखी से एक नगर विशेष के प्रेम की चर्चा करती है।

## व्याख्या

नायक अथवा नायिका प्रेम के सन्दर्भ में विशेष गम्भीर होकर कह रही है। कि यह नगर बड़ा विचित्र है यहां किसी में भी नैतिकता का भाव नहीं है। नियम और कानून यहाँ है ही नहीं। ऐसे प्रेमनगर में रहना असम्भव है क्योंकि यहां जीवन जीने के लिए कोई आधार नहीं, यहाँ प्रेम से अथवा सुखी रहकर जीना असम्भव है। बहुत विचित्र है। यहाँ के लोग एक–दूसरे पर आकर्षिक होते हैं, एक–दूसरे को देखते भी हैं, एक–दूसरे के प्रेम में बंध भी जाते हैं, किन्तु ऐसे में बेचारा मन बंध जाता है और घायल हो जाता है। नेत्रों की लुकाछिपी केवल आँखों को सुख देती है। लेकिन बेचारा मन दण्डित होता है। इस प्रकार प्रेमी के मानसिक रूप से घायल होने की व्यथा–कथा बताता है।

## विशेष

1. प्रेमी–प्रेमिका की मानसिक विकलता का चित्रण।
2. प्रेम की रीति का हृदयस्पर्शी चित्रण।
3. सूक्ष्मभावों की सुन्दर अभिव्यक्ति।
4. दोहा छन्द का भावगम्भीर रूप।
5. शृंगार–रस का अनुकरणीय परिपाक।
6. ब्रजभाषा का आकर्षक प्रयोग।
7. मनोहारी गेयता।
8. लगालगी और बंधिजाँहि में श्लेष अलंकार
9. असंगति अलंकार का सुन्दर प्रयोग।
10. माधुर्य–प्रसाद गुण सम्पन्न शैली।

## (87)

**समै समै सुन्दर सबै, रूपु कुरूपु न कोइ। मन की रूचि जेती जितै, तिततेती रूचि होइ।।**

## शब्दार्थ

समै = समय। सबै = सब ही। कुरूप = बदसूरत। जेती = जितनी, जितने। जितै = जिधर। तित = उधर, उसकी ओर। तेती = उतनी।

## प्रसंग

रीतिकालीन कवि बिहारी द्वारा रचित 'बिहारी सतसई' भावप्रधानता के लिए चर्चित है। प्रस्तुत दोहा उक्त श्रेष्ठ रचना से लिया गया है। इस दोहे में सौन्दर्य और उसकी अनुभूति के सन्दर्भ में भाव व्यक्त किया गया है।

## व्याख्या

सौन्दर्यपारखी बिहारी का कथन कि कोई भी वस्तु, व्यक्ति, पदार्थ स्वयं में सुन्दर या असुन्दर नहीं होता है। समय के अनुसार कोई भी वस्तु सुन्दर, मनमोहक और आकर्षक हो सकती है। यही वस्तु अथवा व्यक्ति भिन्न अथवा विषम समय में सुन्दर विहीन लग सकती है। अर्थात् अनुकूल और प्रतिकूल समय ही वस्तु, व्यक्ति और पदार्थ को सुन्दर अथवा असुन्दर बना देते हैं। मनुष्य का मन जिसमे जितना लगता है अथवा आकर्षित होता है उसमें उतनी ही सुन्दरता दिखाई देने लगती है। उसमें ही उसे अपनापन झलकता है। उसके साथ रहकर अधिक सुख का अनुभव करता है। निश्चय ही जिसमें जिसकी विशेष रूचि होगी उसे वह अधिक सुन्दर समझेगा और उसी को वह सुन्दर मानेगा।

## विशेष

1. सुन्दरता सहृदय की अनुभूति में है।
2. सौन्दर्य का रूचि से गहन संबंध।
3. सौन्दर्यशास्त्र का प्रभावी ज्ञान।
4. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
5. दोहा छंद का प्रयोग।
6. सुन्दर गेयता और लयात्मकता।
7. आकर्षक भावभिव्यंजना।
8. मधुर और प्रसाद गुण सम्पन्नता।
9. 'समै–समै' में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार।
10. 'जेती–जित' और 'तित–तेती' में छेकानुप्रकाश।
11. 'समै समै सुन्दर सबै' में वृतानुप्रास।

# (88)

**बतरस–लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ। सौंह करैं भौहनु हँसै, दैन कहैं नटि जाइ।।**

## शब्दार्थ

बतरस = बातों का रस, बात करने में सुख की अनुभूति। लाल = कृष्ण। लालच = लोभ। मुरली = वंशी। धरी = रखा, रख लिया। लुकाइ = छिपा करके। सौंह = शपथ। भौहनु = भौंहें। दैन = देना। नटि जाइ = मना कर देना।

## प्रसंग

बिहारी कृत प्रस्तुत दोहे में राधा और कृष्ण की प्रेमलीला की मनभावन चर्चा है। गोपियों के लिए कृष्ण की वंशी कष्टदायक बन गई है। कृष्ण का मन वंशी में लगा रहता है। राधा की ओर आता ही नहीं इसलिए राधा वंशी को कृष्ण से दूर करना चाहती है। इन पंक्तियों में राधा और कृष्ण की वार्ता को सहज रूप में प्रस्तुत किया गया है।

## व्याख्या

राधा कृष्ण से संवाद करने का अधिक से अधिक लाभ लेना चाहती है इसलिए उन्होंने कृष्ण की वंशी को छिपा दिया है। जब कृष्ण अपनी वंशी के विषय में राधा से पूछते है तो वह कभी तो पूरी तरह मना कर देती है कि मैं नहीं जानती वंशी कहाँ है। कभी–कभी उनकी भौंहें हँसने लगती है। जिससे यह प्रकट होता है कि राधा वंशी के विषय में जानती हैं। भौंहों की हँसी को देखकर कृष्ण समझ जातें हैं और राधा से वंशी माँगते हैं। ऐसे में राधा स्पष्ट मना कर देती है कि उनसे मुरली नहीं छिपाई। इन पंक्तियों में कृष्ण और राधा के परस्पर प्रेम और उनकी प्रेमलीला का भाव सामने आता है।

## विशेष

1. राधा के अनुभावों का आकर्षक चित्र।
2. कृष्ण–राधा संवाद का मोहक वर्णन।
3. प्रेम–प्रलाप का आकर्षक सन्दर्भ।
4. दोहाछंद का प्रयोग।
5. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
6. संवादात्मक शैली।
7. तदभव् शब्दों के साथ तत्सम् शब्दों का सुन्दर पुट।
8. 'भौंहन हँसै' मुहावरे का प्रयोग।
9. 'लालच लाल' में छेकानुप्रास अलंकार।
10. शृंगार सर का सुन्दर परिपाक।

# (89)

**भौ यह ऐसोई समौ, जहाँ सुखद दुखु देत। चैत–चाँद की चाँदनी डारति किए अचेत।।**

## शब्दार्थ

भौ = हुआ, हो गया। ऐसोई = ऐसा ही। समौ = समय। दुख = दुःख या कष्ट। डारति = डाल देती है, कर देती है। अचेत = बेहोश।

## प्रसंग

रीतिकालीन चर्चित कवि बिहारी के प्रस्तुत दोहे में नायिका के विरही दशा का मार्मिक चित्रण किया गया है। नायक दूर चला गया है इसलिए नायिका विरह में व्याकुल है।

## व्याख्या

नायिका अपने प्रियत्तम के दूर चले जाने पर विरह में व्याकुल है। वह कह रही है कि पहले का सुखद मिलन का समय बीत गया है और विरह का समय कष्ट देने के लिए आ गया है। जो चीजें पहले सुखदायी थीं आप वही दुःखदायी बन गई हैं। मिलन के समय में चैत की चाँदनी मन में खुशियाँ भर देती थी। ऐसे में लगता था मनमोहक शीतलवर्षा हो रही है आप वही चन्द्रमा की चाँदनी मेरे मन को घायल कर रही है। ऐसी चाँदनी में मेरी चेतना भी गायब हो रही है। मैं बहोशी की स्थिति में जाने वाली हूँ मेरा विरह जीवन बहुत कष्टप्रद हो गया है।

## विशेष

1. नायिका की हृदयस्पर्शी विरह दशा।
2. विरह गति का सहज चित्रण।
3. नायिका की अचेतना की प्रस्तुति।
4. दोहा छंद का सुन्दर प्रयोग।
5. सुन्दर गेयता और लयात्मकता।
6. प्रसाद, माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
7. आकर्षक भाव–अभिव्यंजना।
8. भावानुकूल ब्रजभाषा प्रयोग।
9. 'चैत–चाँद' में छेकानुप्रास अलंकार।
10. शृंगार रस का परिपाक।

# (90)

**मैं लखि नारी–ज्ञानु करि राख्यौ निरधारू यह। बहई रोग–निदानु, वहै बैदु, औषधि वहै।।**

## शब्दार्थ

लखि = देखकर। नारी = नाड़ी, स्त्री। राख्यौ = रखना। निरधारू = निश्चित। निदानु = रोगग्रस्त होने के कारण। बैदु = वैद्य। औषधि = दवा। वहै = नायक।

## प्रसंग

रीतिकालीन चर्चित कवि बिहारी के इस भावपूर्ण दोहे में विरही नायिका की स्थिति का हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है नायिका विरह के कारण जटिल रोग से ग्रस्त है। अनेक प्रकार से उपचार करने पर भी कोई लाभ नहीं हो रहा है सभी दवाइयां बेकार हो रही है। लाभ होने के स्थान पर रोग बढ़ता जा रहा है। ऐसे में नायिका की एक सखी सब कुछ समझ जाती है और उसके विषय में स्पष्ट करती है।

## व्याख्या

नायिका की सखी कह रही है कि मैंने तुम्हारी नाड़ी की गति अर्थात् तुम्हारी भावनाओं और भंगिमाओ का परखकर अच्छी तरह समझ लिया है कि यह शारीरिक रोग नहीं है। इसलिए इसका उपचार किसी सामान्य वैद्यय की किसी भी दवा से ठीक होना सम्भव नहीं है। यह रोग तो नायक के प्रति होने वाले प्रेम से जुड़ा है। वह ही इस रोग की चिकित्सा कर सकता है अर्थात् जब नायक का प्रेम तुम्हें मिलेगा तो वह औषधि के रूप में तुम्हे स्वस्थ ही नहीं प्रसन्न कर देगा।

## विशेष

1. नायिका के विरह विदग्ध स्थिति का चित्रण।
2. सहेली का संवेदनात्मक सवाद।
3. शृंगार रस का सुन्दर परिपाक।
4. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति।
5. सरल सुगम और सुबोध भाषा।
6. ब्रज भाषा का आकर्षक प्रयोग।
7. प्रसाद और माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
8. दोहा छन्द का प्रयोग।
9. 'नारी–ज्ञानु' और 'रोग–निदानु' में समस्त पद।
10. नारी में श्लेष अलंकार।
11. पूरे दोहे में हेतु अलंकार।

# (91)

**नावक–सर से लाइ कै तिलकु तरूनि इत ताँकि। पावक–झर सी झझकि कै, गई झरोखा झाँकि।।**

## शब्दार्थ

नावक = नलिका, नाली। सर = तीर, बाण। लाइ = लाना, ले आना। तरूनि = नवयुवती। इत = इधर। ताकि = तर्क करके। पावक = आग, अग्नि। झर = ज्वाला, लपट। झझकि = शिघ्रता से अपनी झलक दिखाना। झरोखा = खिड़की। झाँकि = झुक कर अथवा छुप कर देखना।

## प्रसंग

कविवर बिहारी कृत बिहारी सतसई के इस भावपूर्ण दोहे में नायिका की मोहक गतिविधियों का चित्रण किया गया है। ऐसे में नायक के मन मे नायिका के प्रति आकर्षण बढ़ गया है। वह उससे मिलना चाहता है। वह दुति से नायिका को मिलाने का निवेदन भी करता है।

## व्याख्या

नायक के मन में नायिका के प्रति लगातार आकर्षण बढ़ रहा है। वह दुति से कह रहा है कि नायिका झरोखे से कटाक्ष कर के ओझल हो गई है। रूप–सौन्दर्य मन को खींच रहा है इसलिए मिलने की इच्छा बढ़ती जा रही है। उसका मेरी ओर क्षण भर का कटाक्ष अग्निज्वाल की तरह मुझे झुलसा रहा है। जिस प्रकार बहेलिया नावक के प्रखर तीर से अपने शिकार को घायल करता है। उसी प्रकार नायिका ने अपनी तिरछी नजरों से नायक को बेचैन व घायल कर दिया है।

## विशेष

1. नायिका के रूप सौन्दर्य का चित्रण।
2. नायिका के कटाक्ष का प्रभाव–प्रदर्शन।
3. नायक के वेदनाजन्य स्थिति का चित्रण।
4. दोहा छन्द का सुन्दर प्रयोग।
5. ब्रज भाषा का आकर्षक स्वरूप।
6. तदभव् शब्दों के साथ तत्सम शब्दों का आकर्षक योग।
7. श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक।
8. सूक्ष्म भावों की मनभावन अभिव्यक्ति।
9. 'तिलकु तरूनि' में छेकानुप्रास।
10. 'पावक–सर सी झझकि कै' में पूर्णोपमा अलंकार।
11. द्वितीय पंक्ति में आकर्षक ध्वन्यात्मकता।

# (92)

**चमचमात चंचल नयन विच घूँघट–पट झीन। मानहुँ सुरसरिता विमल जल उछरत जुग मीन।।**

## शब्दार्थ

विच = मध्य में, बीच में। पट = वस्त्र। झीन = पलता, महीन। सहुरसरिता = गंगा। विमल = स्वच्छ, पवित्र, विमल। उछरत = उछलता है, उछलना। जुग = दो। मीन = मछली।

## प्रसंग

कविवर बिहारी कृत बिहारी सतसई से लिये गये इस श्रृंगारिक दोहे में नायिका की सखी अपनी सहेली के नेत्रों के सौन्दर्य की प्रशंसा कर रही है। उसका प्रयास और प्रयास में विश्वास है कि नायिका के सौन्दर्य की चर्चा के बाद नायक अवश्य आकर्षित होगा।

## व्याख्या

नायिका की सखी नायक के सम्मुख नायिका के नेत्रों के सौन्दर्य की चर्चा करती हुई कहती है कि उसके चंचल नयनों की आभा से कौन नहीं प्रभावित होगा? जब ये नेत्र पतले घूँघट पट से बाहर झाँकते हैं तो उसकी शोभा दर्शनीय हो जाती है उन नेत्रों को देख कर ऐसा लगता है कि मानों पतित पावनी गंगा की लोग लहरों में उछलती हुई दो मछलियाँ हैं। ऐसा दृश्य दुर्लभ और मनुष्य को धन्य करने वाला होता है।

## विशेष

1. नायिका के सौन्दर्य का चित्रण।
2. चंचल नयनों की आकर्षित शक्ति–उद्‌बोधन।
3. दोहा छन्द का सुन्दर प्रयोग।
4. श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक।
5. आकर्षक अप्रस्तुत विधान।
6. मनोरम बिम्ब विधान।
7. 'चमचमात चंचल' में छेकानुप्रास।
8. द्वितीय पंक्ति में उत्प्रेक्षा उलंकार।
9. 'घूँघट–पट' में सुन्दर समस्त पद।
10. आकर्षक भावाभिव्यंजना।

# (93)

**अनियारे, दीरघ दृगनु किती न तरूनि समान। वह चितवनि औरें, जिहिं बस होत सुजान।।**

## शब्दार्थ

अनियारे = लम्बे और नुकीले। दीरघ = बड़े। दृगनु = आँखें। तरूनि = नवयुवती। चितवनि = देखने का ढंग। कछू = कुछ। सुजान = सज्जन, नायक।

## प्रसंग

मध्यकालीन चर्चित कवि बिहारी की लेखनी से बिहारी सतसई का सृजन हुआ। प्रस्तुत शृंगार प्रधान दोहा उक्त रचना से लिया गया है। इसमें नायिका के आँखों के सौन्दर्य की चर्चा उसकी सखी करती है। जिसे विश्वास है कि इन्हीं आँखों के आकर्षण के कारण नायक वंश में आता है।

## व्याख्या

नायिका की सखी उसके नेत्रों की सुन्दरता का वर्णन करती हुई कहती है कि इस गाँव की सुन्दरियों की आँख एक से एक बढ़कर है। उनके बड़े–बड़े और नुकीले नेत्रों के समान नेत्र कहीं नहीं मिलते किन्तु तुम्हारे नेत्र उन सबमें विलक्षण है। वह अपनी बात को अधिक स्पष्ट और पक्का करती हुई कहती है कि तुम्हारे नेत्रों की अनुठी सुन्दरता के कारण ही नायक वंश में रहता है। इस प्रकार नायिका के नेत्रों के अलौकिक सौन्दर्य के प्रति नायक पूर्णरूपेण आकर्षित है।

## विशेष

1. नायिका–सौन्दर्य–चित्रण।
2. नेत्रों की अलौकिकता का चित्रण।
3. कवि की वचन वक्रता की अभिव्यक्ति।
4. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
5. 'कछू' में कुछ से विपर्यय का बोध।
6. 'दृग' से 'दृगनु' बहुवचन का स्वरूप।
7. शृंगार रस का सुन्दर परिपाक।
8. प्रसाद और माधुर्य गुण सम्पन्नता।
9. 'दीरघ दृगनु' मे छेकानुप्रास अलंकार।
10. पूरे दोहे में वक्रोक्ति और अतिश्योक्ति अलकारो का प्रयोग।

## (94)

**नाँक चढ़ै सीबी करै जितै छबीली छैल। फिरि फिरि भूलि वहै गहै प्यौ कँकरीली गैल।।**

## शब्दार्थ

नाँक = नासिनाक। सीबी = सी–सी की आवाज करना। जितै = जितना। छबीली = सजधज कर रहने वाली। छैल = बन ठन कर दूसरों को आकर्षित करने वाली। गहै = ग्रहण करना। प्यौ = प्रिय या प्रियतम। गैल = रास्ता मार्ग।

## प्रसंग

प्रस्तुत भावप्रधान शृंगारिक दोहा कविवर बिहारी कृत सतसई से लिया गया है। पति–पत्नि दोनों एक साथ कँकरीले मार्ग से गुजर रहे हैं। ऐसे मार्ग पर चलते हुए जहाँ नायिका को कुछ कठिनाई का अनुभव हो रहा है, चाल में मचलन आ रही है, मुह से कुछ आवाज निकल रही है तो दूसरी ओर नायक का प्रेम बढ़ता जा रहा है।

## व्याख्या

कवि नायक नायिका के प्रेम की अभिव्यक्ति को मनोरम रूप प्रदान करते हुए लिखता है कि जब नायिका सजधज कर छबीला बन कर अत्यन्त मनोहारी वेशभूषा और भावभंगिमा में प्रियतम के साथ चलती है तो प्रियतम मुग्ध हो जात है। एसे में वह जब कंकरीले–पथरीले मार्ग से गुजरती है, पैर लचकते है और पतली होने के कारण कमर मचकर्ता है तो नायक पूर्णरूपेण मुग्ध हो जाता है। यह पूर्ण सत्य है कि युवती की मचलती चाल और सजधज कर निकलना आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। ऐसे में जब नायिका के मुख से सीत्कार सुनाई देता है तो नायक का हृदय–कमल खिल जाता है। ऐसे में उसे अपने मन चाहे रूप का दर्शन और उसकी मनभावनी भंगिता की अनुभूति होती है।

## विशेष

1. संयोग शृंगार का मनोरम चित्रण।
2. प्रेमाभिव्यक्ति की नयी योजना।
3. आकर्षक गेयता और लयात्मकता।
4. दोहा छन्द का सुन्दर प्रयोग।
5. ब्रज भाषा का सुन्दर प्रयोग।
6. सहज सरल बोधगम्य तदभव शब्दावली की बहुलता
7. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
8. मोहक भावाभिव्यंजना।
9. 'फिरी–फिरी' में पुनरूक्ति प्रकाश अलंकार।
10. 'छबीली छैल' में छेकानुप्रास अलंकार।
11. पूरे दोहे में असंगति अलंकार क्योंकि नायिका को पीड़ा हो रही है और नायक को रस आ रहा है

## (95)

**कर–मुँदरी की आरसी प्रतिबिंबित प्यौ पाइ। पीठि दियैं निधरक लखै इकटक डीठि लगाइ।।**

## शब्दार्थ

कर = हाथ। मुँदरी = अभिज्ञान, आँगुठी। आरसी = दर्पण, शीशा। प्रतिबिंबित = छाया प्रकट होना। प्यौ = प्रिय या प्रियतम। पीठि = पीछे। निधरक = बिना संकोच के, निर्भय हो कर। लखै = गम्भीरता से देखना। इकटक = लगातार देखना। डीठि = दृष्टि नजर।

## प्रसंग

प्रस्तुत भावात्मक शृंगार प्रधान दोहा कविवर बिहारी की बिहारी सतसई से लिया गया है। इसमें नायिका के हृदय में विकसित नायक के प्रति प्रेम का चित्रांकन है वह अकेले में ही नहीं भीड़ में भी अपने प्रियतम को लगातार देखना चाहती है। सखी नायिका के इस चातुर्थ का वर्णन अपनी अन्य सखी से कर रही है।

## व्याख्या

नायिका के मन में उठी प्रियतम दर्शन की भावना और उसके चातुर्थ के विषय में दो सखियाँ आपस में बात कर रही है कि नायिका बहुत लज्जालु है वह अपने प्रियतम को आमने सामने होने पर भी आँख उठा कर नहीं देख सकती। उसमें प्रियतम को देखने की प्रबल इच्छा है इसलिए वह अपनी अंगुठी को दर्पण बना कर प्रियतम का प्रतिबिम्ब देख रही है। उसके प्रियतम उसके पीछे हैं उसकी अंगुठी में प्रियतम का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई दे रहा है। नायिका अपना हाथ उपर किये हुए लगातार अपलक नयनों से देख रही है। ऐसे में वह शंकामुक्त है कि कोई आमने–सामने देखते हुए देख लें। किसी को पता भी नहीं और वह अपलक प्रियतम दर्शन का रस ले रही है।

## विशेष

1. नायिका की प्रेमभावना का चित्रण।
2. नायिका के चातुर्य की अभिव्यक्ति।
3. ब्रजभाषा का आकर्षक प्रयोग।
4. शृंगार रस का प्रभावी परिपाक।
5. दोहा छन्द का सुन्दर प्रयोग।
6. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति।
7. प्रसाद और माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
8. अन्त पद में सुन्दर समानान्तरता।
9. आकर्षक बिम्ब विधान।
10. 'प्यौ पाइ' में छेकानुप्रास अलंकार।
11. पूरे दोहे में विभावना अलंकार।

# (96)

**कर लै, सँधि सराहि हूँ रहे सबै गहि मौनु। गंधी अंध, गुलाब कौ गवई गाहकु कौनु।।**

## शब्दार्थ

कर = हस्त, हाथ। सराहि = प्रशंसा करके। गंधी = इत्र विक्रेता। गवई = ग्रामीण। ग्राहकु = ग्राहक, खरीददार। कौनु = कौन।

## प्रसंग

कविवर बिहारी कृत बिहारी सतसई से प्रस्तुत भावात्मक नीति प्रधान दोहा उद्धत हैं। कवि का कहना है कि सभी व्यक्ति सभी गुणों के ग्राहक नहीं हो सकते हैं। मनुष्य की सफलता उसके अनुकूल साथ, निकटता और परिचय से होती है। विषम व्यक्ति की निकटता, साथ और परिचय सदा ही कष्टप्रद या दुःखदाई होता है। यहाँ इत्र विक्रेता की सफलता के संदर्भ में नैतिक तथ्य का उदघाटन किया गया है।

## व्याख्या

कविवर बिहारी का कथन है कि नासमझ इत्र विक्रेता गाँव में जाकर इत्र बेचने का प्रयास उचित नहीं है क्योंकि वहाँ के लोग इत्र का महत्व जानते ही नहीं। इसलिए यहाँ गुलाबजल का ग्राहक कौन होगा? ये ग्रामीण गुलाबजल से अपरीचित होने के कारण इसे सूघेंगे और फिर चुप हो जाएगें। इस प्रकार यहाँ गुलाबजल का कोई खरीददार नहीं होगा। इस प्रकार संकेत किया गया है कि मूर्खों को सुझाव देना उचित नहीं होता है।

## विशेष

1. लोकनीति का उद्बोधन।
2. उद्बोधनात्मक दोहा।
3. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
4. जीवनोपयोगी नीति तथ्य का उद्घाटन।
5. प्रसाद माधुर्य गुण सम्पन्नता।
6. तद्भव शब्दों के साथ तत्सम शब्दों का योग।
7. आकर्षक बिंब–विधान।
8. आकर्षक अभिव्यंजनां
9. 'संधि सराहि' और 'गवई गाहकु' में छेकानुप्रास अलंकार।
10. पूरे दोहे में अन्योक्ति अलंकार।

## (97)

**कर लै चूमि, चढ़ाइ सिर, हर लगाइ, भुज भेटि। लहि पाती प्रिय की लखति, बाँचति धराति समेटि।।**

### शब्दार्थ

कर = हाथ। उर = हृदय। भुज = हाथ। मेटि = समेटना। लहि = प्राप्त करके। पाती = पत्र। प्रिय = प्रियतम लखति = गंभीरता से देखना। बाँचलि = पढ़ना। धरति = रखती है।

### प्रसंग

प्रस्तुत भावपूर्ण दोहा शेलिकालीन श्रृंगार प्रधान कवि की बिहारी सतसई से लिया गया है। नायिका अपने प्रियतम के दूर चले जाने पर विह्वल है। विरह वेदना उसे हिला रही है। जब प्रियतम की पाती आती है तो नायिका मन में भावों का आन्दोलन शुरू हो जाता है। नायिका की ऐसे समय की चेष्टाएँ विशेष मार्मिक हो गई है। नायिका की सखिया आपस में उसकी गतिविधियों की चर्चा करती हैं।

### व्याख्या

नायिका की भाव भंगिमा की चर्चा करती हुई एक सखी दूसरे से कहती है कि नायिका को पत्र मिला है। उसकी गतिविधियां अनोखी हो गई हैं। वह पत्र को हाथ में लेकर हर्षातिरेक में उसका चुम्बन करती है। प्रेम के प्रतीक पत्र को सिर पर लगाती है, छाती से लगा कर शीतलता का अनुभव करती है। पत्र को प्रियतम मिलन के भाव से उसे अपनी भुजाओं में भरती है। प्रेम में विह्वल हो कर पत्र को देखती है और संदेश पढ़ती है, अपनी धरोहर के रूप में उस पत्र को संभाल कर रख लेती है। दोहे में पत्र प्राप्ति से मिली खुशी की मनोहारी प्रस्तुति की गई है।

### विशेष

1. नायिका में अतीवप्रेम की अभिव्यक्ति।
2. नायिका की कामिल और मानसिक चेष्टाओं की आकर्षक अभिव्यक्ति
3. लघु वाक्यों की अनूठी संरचना।
4. भावानुकूल ब्रजभाषा का सरस रूप।
5. प्रसाद और माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
6. सुन्दर ल्यात्मकता और गेयता।
7. दोहा छंद का अनुकरणीय प्रयोग।
8. सूक्ष्य भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति।
9. 'चूमि चढ़ाई', भुज भेटि' 'पाती प्रिय' में छेकानुप्रास अलंकार।
10. श्रृंगार रस का सुन्दर परिपाक।
11. अनुकरणीय अभिव्यंजन।

## (98)

**कोटि जतन कोऊ करौ, तन की तपनि न जाई। जौ लौ भीजै चीर लौ, रहै न प्यौ लपटाइ।।**

### शब्दार्थ

कोटि = करोड़। जतन = प्रयत्न। कोऊ = कोई। तन = शरीर। तपनि = आग, गर्मी। जाई = समाप्त होना। जौ लौ = जब तक। भीजै = भीगे हुए। चीर = वस्त्र। प्यौ = प्रियतम।

### प्रसंग

प्रस्तुत श्रृंगार प्रधान दोहा बिहारी कृत 'बिहारी सतसई' से लिया गया है। इसमें विरही नायिका की विषम दशा का हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है। उसके मन में मिलन की प्रबल आकांक्षा है। नायिका अपनी विरह संतप्त दशा के विषय में अपनी सखी से कहती है।

### व्याख्या

नायिका अपनी मनोदशा को सखी के सम्मुख व्यक्त करती हुई कहती है कि हे सखी ! मेरी तपन को दूर करने के लिए कोई कितना भी प्रयत्न करे, उसका कोई प्रभाव नहीं होना है। मेरे मन में प्रियतम मिलन की भावना गहरी हो गई है। इसीलिए शरीर की तपन बढ़ती जा रही है। इस तपन से छुटकारा तभी मिलेगा जब प्रियतम भीगे हुए कपड़े की भाँति शरीर से लग जाएँगे। यहाँ नायिका का आश्रय यह है कि प्रियतम का प्रगढ़ परिरंभण ही शरीर की तपन शांत होगी और मन को शांति मिलेगी। नायिका अपने प्रियतम के मिलन की आशा में डूबी और उदास है।

### विशेष

1. नायिका की श्रृंगारिक भावना की अभिव्यक्ति।
2. विरह–ताप के प्रभाव का हृदयस्पर्शी चित्रण
3. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
4. दोहा छन्द का अनुकूल स्वरूप।

5. प्रसाद और माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
6. सूक्ष्म भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति।
7. 'कोऊ करौ' में छेका अनुप्रास अलंकार।
8. आकर्षक बिम्ब–विधान।
9. शृंगार रस का सुन्दर परिपाक।
10. 'जौ लौ भीजे चीर लौ' रहै न प्यौ लपटाइ' में उपमा अलंकार।

## (99)

**सघनकुंज छाया सुखद शीतल सुरभि–समीर। मनु है जातु अजौं वहे, उहि जमुना के तीर।।**

## शब्दार्थ

सघन = घना। कुंज = लताओं का झुरमुट। सुखद = सुख देने वाला। शीतल = ठंडी। सुरभि = सुगंध। समीर = हवा। उहि = उस। जमुना = यमुना।

## प्रसंग

प्रस्तुत भावपूर्ण दोहा कविवर बिहारी कृत 'बिहार सतसई' से उद्धंत है। कृष्ण मथुरा चले गऐ हैं। गोपियों को कृष्ण के साथ कुंज की छाया में किए गए सुखद विहार की याद आती रहती है। सभी गोपियाँ कृष्ण की विरह में खोई हुई भी आपस में चर्चा करती रहती हैं।

## व्याख्या

हे सखी ! वह समय आँखों के सामने बार–बार उमड़ आता है जब हम कृष्ण के साथ यमुना के तट पर विहार करती थीं। कृष्ण के साथ सघर कुंजों में घुमते हुए शीतल मंद सुगंध में मुस्कराती–हँसती रहती थी। आज जब कृष्ण मथुरा चले गए हैं तब भी उस मधुर समय की याद मन को आन्दोलित कर रही है। सच है अब गोपियों के अपने कृष्ण उनके साथ नहीं हैं, किन्तु मधुर स्मृतियाँ उन्हें जीवन–जीने का आधार बनी हुई हैं।

## विशेष

1. गोपियों का कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम–चित्रण।
2. यादों की मधुरता की अभिव्यक्ति।
3. ब्रजभाषा का सुन्दर स्वस्थ।
4. दोहा छंद में भाव–प्रवण रूप।
5. आकर्षक गेयता और लयात्मकता।
6. आकर्षक बिम्ब–विधान।
7. प्रसाद और माधुर्य गुण सम्पन्न शैली।
8. 'सुखद शीतल सुरभि–समीर' में वृत्यानुप्रास अलंकार।
9. 'मनु है जातु अजौ वहै, उहि जात' में स्मरण अलंकार।
10. आकर्षक भावाभिव्यंजना।

## (100)

**हुकुम पाइ जयसाहि कौ, ही राधिका–प्रसाद। करी बिहारी सतसई भरी अनेक संवाद।।**

## शब्दार्थ

हुकुम = आदेश। प्रसाद = कृपा। करी = रचना की। भरी = सम्मिलित किया। संवाद = विषय।

## प्रसंग

प्रस्तुत भावप्रधान दोहा कविवर बिहारी के 'बिहारी सतसई' के परिसमाप्ति से लिया गया है। इसमें कवि ने अपना रचना के आधार और उसमें अपनाएं गए विविध विषयों की ओर संकेत किया है। इस दोहे से स्पष्ट है कि यह दोहा बहुत विषयों से सुसज्जित मुक्तक काव्य से लिया गया है।

## व्याख्या

सहृदय कविवर बिहारी के आदेशानुसार आराध्य राधा और कृष्ण की कृपा से की गई है। इसमें बहुत से विषयों को अपनाया गया है। रसों की विविधता भी इस कवि की अपनी विशेषता है, कवि का कहना है मानव–जीवन के विविध विषय या संदर्भ इस सतसई में अपनाए गए हैं।

## विशेष

1. सतसई–निर्माण का परिचय।
2. अपने आराध्य राधा–कृष्ण की कृपा की चर्चा।
3. आत्म–परिचय की परम्परा।
4. ब्रजभाषा का सुन्दर प्रयोग।
5. दोहा छन्द का प्रयोग।
6. मुक्तक काव्य के विविध विषयों का संकेत।
7. तद्भव शब्दों का आकर्षक प्रयोग।
8. अनुकूल लयात्मकता और गेयता।